महाकवि-कालिदास-विरचितम्

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(मूल, संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, भूमिका एवं
छात्रोपयोगी टिप्पण सहित)

सुबोधचन्द्र पन्त

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, बंगलौर,
वाराणसी, पुणे, पटना

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९७०
द्वितीय संशोधित संस्करण : वाराणसी, १९७४
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९७९, १९८३, १९८८, १९९५, २००४

मोतीलाल बनारसीदास
४१ यू०ए० बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
८ महालक्ष्मी चैम्बर, २२ भुलाभाई देसाई रोड, मुम्बई ४०० ०२६
२३६ नाइंथ मेन III ब्लाक, जयनगर, बंगलौर ५६० ०११
सनाज प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड, पुणे ४११ ००२
१२० रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, चेन्नई ६०० ००४
८ केमेक स्ट्रीट, कोलकाता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्य : रु० १९५ (सजिल्द)
रु० ९५ (अजिल्द)

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

पात्र-परिचय

पुरुष—

दुष्यन्त—नायक (हस्तिनापुर का राजा)
माढव्य—विदूषक
सूत्रधार—नाटक का व्यवस्थापक
सर्वदमन (भरत)—दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र
सोमरात—उपाध्याय, दुष्यन्त का पुरोहित
सूत—दुष्यन्त का सारथि
मातलि—इन्द्र का सारथि
कञ्चुकी (वातायन) अंतःपुर का सेवक
वैतालिक—स्तुति करने वाला
रैवतक—द्वारपाल
सूचक—पुलिस का सिपाही
जानुक—पुलिस का सिपाही
श्याल—नगर-पुलिस का प्रधान
बालक—संदेश-वाहक
मारीच (कश्यप)—इन्द्र के पिता
काश्यप—कण्व; शकुन्तला के धर्म-पिता जिन्होंने उसका पालन-पोषण किया था।
गालव—काश्यप का शिष्य
शार्ङ्गरव—कण्व का शिष्य
शारद्वत—कण्व का शिष्य
वैखानस—कण्व के आश्रम का एक तपस्वी
गौतम—कण्व का शिष्य
नारद—कण्व का शिष्य
हारीत—कण्व का शिष्य

स्त्री—

शकुन्तला—नायिका, राजा दुष्यन्त की पत्नी
अनसूया—शकुन्तला की गम्भीर सखी
प्रियंवदा—शकुन्तला की हँसमुख सखी
सानुमती—मेनका व शकुन्तला की सखी एक अप्सरा
अदिति—इन्द्र की माँ
गौतमी—कण्व-आश्रम की बूढ़ी तपस्विनी
परभृतिका—उद्यान-रक्षिका दासी
मधुकरिका—उद्यान-रक्षक दासी
वेत्रवती—द्वारपालिका (प्रतीहारी)
चतुरिका—दुष्यन्त की व्यक्तिगत दासी (परिचारिका)
यवनी—यूनानीदासी
नटी—सूत्रधार की पत्नी

सूचित पात्र

दुर्वासा—एक क्रोधी ऋषि
इन्द्र—देवताओं के राजा
जयन्त—इन्द्र का पुत्र
कौशिक (विश्वामित्र) शकुन्तला के पिता
मेनका—शकुन्तला की माँ
नारद—देवलोक के ऋषि
मित्रावसु—राजा का साला और वसुमती का भाई: राज्य की पुलिस का प्रधान
पिशुन—अमात्य (मन्त्री)
तरलिका—एक दासी
वसुमती—दुष्यन्त की पटरानी
हंसपदिका—दुष्यन्त की रानी

कालिदास

कालिदास निर्विवाद रूप से संस्कृत के महान् कवि हैं। हमारे देश की जनता ने उन्हें जो सम्मान दिया वह संसार के किसी कवि के लिये स्पृहणीय हो सकता है। कवियों ने अपनी रचनायें निःस्पृह भाव से उनके नाम पर प्रसिद्ध कर दीं, जनता ने उन्हें विक्रमादित्य और भोज का समकालीन बनाकर हजारों कथाओं का नायक बना दिया और विभिन्न-भाषाओं में पहेलियों और लोक-कथाओं में उनकी विद्वत्ता, कविता और चामत्कारिक वाक्सिद्धि का विवरण देकर उन्हें अमर बना दिया। कवियों, विद्वानों और आलंकारिकों ने उन्हें कविकुलगुरु, महाकवि, कविशिरोमणि आदि विरुदों से अलंकृत किया है। उन्हें भारती का विलास[1] कहा गया है। एक कवि ने कहा है कि पहले कभी कवियों की गणना की जाने लगी तो सबसे पहली उँगली—कनिष्ठिका—पर कालिदास का नाम आया। दूसरी उँगली—अनामिका—पर बहुत सोचने पर भी जब दूसरा नाम न आ सका तो उसका "अनामिका" (बिना नाम वाली) नाम सार्थक हो गया[2]। भारत के प्राचीन पद्धति के पण्डित, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों के चित्र, श्लेष, कल्पना और पण्डित्य से प्रभावित होकर उन्हें कालिदास से भी बढ़कर और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कवि बताते हैं पर ऐसा करने में वे कालिदास की हृदय-स्पर्शिता भूल जाते हैं। आधुनिक–विशेषतः पाश्चात्य विद्वान् कालिदास की रचनाओं पर मन्त्रमुग्ध हैं। कवि का सबसे बड़ा गुण कृत्रिमता से दूर रहना और हृदय के निकट रहना जितना अधिक कालिदास के विषय में घटता है, उतना किसी के बारे में नहीं। वे भारतीय शेक्सपियर माने जाते हैं। खेद की बात है कि ऐसे महान् कवि के विषय में हम निश्चित रूप से कुछ नहीं जानते जिसका फल यह है कि उनके समय के निर्धारण में ७००-८०० वर्षों का अन्तर है। ईसा पूर्व प्रथम शती से लेकर ईसा की सातवीं शती तक उन्हें रखा जाता है।

जन्मस्थान—उनका जन्मस्थान बंगाल, मिथिला, काश्मीर, प्रयाग, उज्जयिनी आदि सिद्ध किया जाता है। उज्जयिनी के विषय में ज्यादा संभावना प्रतीत होती है। इसका कारण यह है कि "मेघदूत" में उन्होंने उसे विशेष दर्शनीय कहा है और लम्बा रास्ता पड़ने पर भी उधर से जाने के लिये बादल से अनुरोध किया है। प्राचीन लोग इस भय से अपने विषय में कुछ नहीं लिखा करते थे कि कहीं आत्मप्रशंसा न हो जाय! अन्तःसाक्ष्य और दूसरे कवियों और लेखकों की रचनाओं से जो थोड़ा बहुत विदित होता है, वह इतना अपर्याप्त है कि उसके आधार पर अटकल ही लगाई जा सकती है।

---

१. कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ॥

२. पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥

विद्वत्ता—कालिदास अपने समय के समस्त विद्याभण्डार से परिचित थे जिसमें राजनीति, धर्मशास्त्र, ज्यौतिष, वेद, कर्मकाण्ड, साहित्य और कामशास्त्र का समावेश किया जा सकता है। अश्वमेध, विश्वजित्, पुत्रेष्टि आदि यज्ञों का वर्णन, स्थान-स्थान पर आश्रमों का सजीव वर्णन, यज्ञधूम, समिधायें, होमधेनु, अग्निशरण आदि का वर्णन बताता है कि वे वेदों के विद्वान् थे, आश्रम-संस्कृति के अनुरागी थे, योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शनों के वर्णन से उनका दर्शनशास्त्रों का विद्वान् होना सिद्ध है। इसके साथ ही वे लोकव्यवहार के पूर्ण ज्ञाता थे। जगह-जगह व्यावहारिक सूक्तियाँ, कण्व के मुख से विदा हो रही बेटी को उपदेश, शार्ङ्गरव का पति के घर में पत्नी का दास्य भी अच्छा है, कहकर लौटना, पुरोहित का शकुन्तला की देख रेख के लिये तैयार होना, माँ-मेनका का पुत्री को असहाय अवस्था में देखकर ले जाना, मिलन का संदेश कण्व तक पहुँचाना न भूलना आदि अनेक प्रसंग कवि की व्यवहार-कुशलता के परिचायक हैं, स्वाभाविकता की रक्षा करने में जहाँ उन्होंने दुष्यन्त को लंपटों की तरह छिपकर युवतियों की बातें सुनने वाला और विदूषक से झूठ बोलने वाला दिखाया, वहीं उनके धर्माचरण की पराकाष्ठा भी दिखाई, उनका मन शकुन्तला के प्रति आसक्त ही नहीं हो सकता यदि वह वरणयोग्य न हो, यह दृढ़ विश्वास और परम चारुता की मूर्ति होने पर भी उसे तब तक स्वीकार न करना जब तक कि मन को भरोसा न हो जाय, धर्म के ऐसे उदाहरण हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। ये कवि के धर्म-शास्त्र-ज्ञान के बिना संभव नहीं हैं। इनके अतिरिक्त वेद, रामायण, जातक, महाभारत और पुराणों से कवि का पूर्ण परिचय है जिसका उपयोग उनके काव्यों और नाटकों में यथास्थान हुआ है। मेघदूत और रघु-विजयादि से उनका भूगोल-ज्ञान सिद्ध है। व्यापारी के बारे में दिया गया दुष्यन्त का निर्णय कवि के धर्म-शास्त्र (न्याय), और राजनीति-शास्त्र के ज्ञान की सूक्ष्मता बताता है।

समय—कालिदास के समय को निर्धारित करने के लिए विद्वानों ने बहुत प्रयत्न किये हैं पर अभी तक कोई बात तथ्य रूप में सर्वमान्य नहीं हो सकी है। अभी तक विद्वान् मुख्यतः ईसा की चतुर्थ शताब्दी में उनका आविर्भाव मानते रहे हैं। इधर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में उनके होने की बात सिद्ध की गई है, पर वह सबको ग्राह्य नहीं हुई है। समय निश्चित करने के लिये हमें पहले सबसे पुरानी सीमा और उसके बाद सबसे बाद की सीमा जाननी आवश्यक है। कालिदास के मालविकाग्निमित्र में इतिहासप्रसिद्ध अग्निमित्र शुंग नायक है जिससे कालिदास निश्चित रूप से अग्निमित्र के समय–लगभग ई० पू० १२५—से पहले के नहीं हो सकते। ऐहोल के शिलालेख में जो शक संवत् ५५६ (ई० ६३४) का है कालिदास की कीर्ति[1] का उल्लेख है और इसी समय के आस-पास बाणभट्ट ने (ई० ६०६–६४७) हर्षचरित की भूमिका में कालिदास की मधुर उक्तियों की प्रशंसा की है[2]। इस तरह ई० पू० १२५ से ई० ६३४ के बीच—७५९ वर्षों में कहीं कवि को रखा जा सकता

१. येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

२. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

है। ई० पू० प्रथम शती में कवि का होना मानने वालों में प्रमुख पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय हैं जिन्होंने "डेट आफ कालिदास" शीर्षक अंग्रेजी लेख में विस्तृत तर्क दिये हैं। इसके बाद की मुख्य बातें निम्न हैं :—

१—जनश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के दरबारी कवि कहे जाते हैं। विदेशियों पर विजय पाने वाले हर महान् भारतीय राजा के साथ यह पदवी जुटती रही है, पर अधिक पुष्ट प्रमाण यह है कि विक्रम संवत्, ई० पू० ५७ से चला है। पहले इसे मालव संवत् कहते थे। मालव गण को अपनी उपाधि से अधिक महत्त्व देने के लिये पहले ऐसा किया गया होगा, बाद में जनता ने या किसी विक्रमादित्य ने विक्रमादित्यों की परम्परा अमर बनाने के लिये संवत् को विक्रम संवत् कहकर चलाया होगा। मेरुतुङ्ग-रचित "पद्यावली" से पता चलता है कि उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों से उज्जयिनी का राज्य महावीर निर्वाण के ४७० वें वर्ष में (ई० पू० ५७) छीन लिया था। "प्रबन्धकोष" और "शत्रुञ्जय" ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है। हाल (शती १) की "गाथासप्तशती" (५।६४) में भी विक्रमादित्य का उल्लेख है जिसने सेवकों को लाखों का पारितोषिक दिया था। विक्रमोर्वशीय में "विक्रम" का नाम अमर बनाने के लिये कालिदास ने द्वन्द्व समास के अन्त में लगने वाला "ईय" प्रत्यय लगाया है।

२—नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक का नायक प्रसिद्ध होना चाहिये। "मालविकाग्निमित्र" के नायक अग्निमित्र का यश चौथी शताब्दी तक मन्द पड़ चुका था, तब उन्हें नायक बनाने की बात ही नहीं उठती। इसका यह बहुत पुष्ट प्रमाण है कि कालिदास अग्निमित्र के समकालीन थे अथवा कुछ ही बाद हुये। शुंगवंश का इतिहास पुराणों तक में नहीं मिलता पर कालिदास को उसके विषय में खूब पता था जो उन्होंने नाटक में यत्र तत्र दिया है। अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र का यवनों को सिंधु के तट पर जीतने तक की घटनायें इसमें दी हैं।

३—भीटा (प्रयाग) के एक मुद्रा-चित्र में हरिण का आखेट करता हुआ एक रथी राजा दिखाया गया है; उक्त स्थान शुङ्ग राज्य की सीमा में पड़ता है और ऐसा दृश्य संस्कृत वाङ्मय में अन्यत्र नहीं मिलता। यह सिद्ध करता है कि कालिदास शुङ्गों का शासन समाप्त होने (ई० पू० २५) के पूर्व थे।

४—कालिदास की शैली कृत्रिमता रहित है जो महाभाष्य के निकट है। बाद के नासिक और गिरनार के शिलालेखों से पता चलता है कि उक्त शैली बाद में समाप्त हो गई और कृत्रिम शैली का प्रचार हुआ।

५—"परमेष्ठी" और "पेलव" का व्यवहार बाद के ग्रन्थ अमरकोष में भिन्न अर्थ में आया है जिससे पता चलता है कि कवि पहले के हैं जब विद्वानों की बोलचाल की भाषा संस्कृत थी और उसमें शब्दों में अर्थ-परिवर्तन होते रहते थे।

६—कवि ने "ह" आदि वैदिक शब्दों के प्रयोग किये हैं पर लौकिक संस्कृत के व्याकरण का पालन किया है जो यह बताता है कि वे दोनों के मध्य (ई० पू० ३०० से ईसवी आरम्भ) के हैं।

७—कवि ने परशुराम को केवल ऋषि माना है, बाद के ही साहित्य में वे अवतार माने गये हैं

८—कवि के ग्रन्थों में जीव हिंसा के विरोध की चर्चायें आई हैं जिनसे पता लगता है कि उनके समय बौद्धधर्म का प्रचार था। "सरस्वती श्रुतिमहतां महीयसाम्' में श्रुति को दिया गया महत्त्व भी इसकी पुष्टि करता है। यह समय ईसवी के आरम्भ से पहले का है।

९—ऐतिहासिक विद्वान् अश्वघोष, कनिष्क के समकालीन होने से ई० पू० प्रथम शती के हैं। कालिदास और अश्वघोष की रचनाओं में अनेक स्थलों पर इतना साम्य है कि यह मानना पड़ता है कि दोनों में से किसी ने नकल की है। महाकवि कालिदास से नकल की आशा नहीं की जाती। अश्वघोष, कवि न होकर शास्त्र-वेत्ता थे, जनता में नैतिकता के प्रचार के लिये वे "सौन्दरनन्द" काव्य लिखने को विवश हुये थे, ऐसा उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है[१]। ऐसा व्यक्ति दूसरे की रचना को आधार बनाकर अपनी बात आकर्षक रूप में रखे तो वह स्वाभाविक ही है। बारात देखने के लिये औरतों का झाँकना रघुवंश (७।५–१५) और बुद्धचरित (३।१३–२४) में बहुत मिलता है। "न ययौ न तस्थौ" उक्ति कुमारसंभव के सर्ग ५ के अन्त में आई है और उपमा के चमत्कार का उदाहरण है। अश्वघोष ऐसी अच्छी चीज ग्रहण करने का लोभ संवरण न कर पाये और उन्होंने "नापि ययौ न तस्थौ" कहकर पूर्णतः अनुकरण किया, उनकी उपमा भी वैसी अच्छी नहीं बैठती। यदि कालिदास ने अनुकरण भी किया होता तो वे ऐसा भोंड़ा अनुकरण न करते।

१०—ईसवी पहली दूसरी शती में गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में "बृहत्कथा" नामक कथाग्रन्थ लिखा है जो अब अप्राप्य है। उसके आधार पर सोमदेव ने १३ वीं शती में "कथासरित्सागर" ग्रन्थ की रचना संस्कृत में की। उसमें महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य की कथा आई है। "महेन्द्र" और "विक्रम" नाम विक्रमोर्वशीय में अनेक बार आये हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि करते हैं कि कालिदास के आश्रयदाता उक्त दोनों राजा थे।

११—ई० पू० छठी शताब्दी के उदयन की कथा का गाँव गाँव में प्रचार होना मेघदूत (पूर्व ३०) में आया है जो कवि को उदयन के अनतिदूर का सूचित करता है।

१२—रघुवंश में सूर्य-वंश का वर्णन और महेन्द्रादित्य और "विक्रमादित्य" में "आदित्य" का होना यह बताता है कि कवि के आश्रय दाता सूर्य वंशी थे। दिलीप और रघु के रूप में कवि ने अपने आश्रय-दाताओं को प्रस्तुत किया है।

१३—इस नाटक में धीवर के लिये जिस दण्ड का विधान सिपाहियों ने सोचा है, वह स्मृतियों की व्यवस्था के निकट है जिनका समय ई० पू० प्रथम शती है।

इस मत की आलोचना में निम्नलिखित बातें कही जाती है :—

१—विक्रमादित्य का ई० पू० ५७ में होना इतिहास-सिद्ध नहीं है।

---

१. इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृतिः
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात् कृता।
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया तत् काव्यधर्मात् कृतं
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति॥

२—भीटा के मुद्रा-चित्र का प्रमाण पुरातत्व-विभाग नहीं मानता।

३—प्राकृत तथा भाषा शैली के विकास की दृष्टि से अश्वघोष पुराने हैं। यह बहुत पुष्ट प्रमाण है। इस पर अधिक गवेषण से निःसन्दिग्ध रूप से पता चल सकता है कि कौन प्राचीनतर है।

४—बृहत्कथा न मिलने से यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें उक्त कथा है भी या नहीं, फिर कथा की प्रामाणिकता नहीं मानी जा सकती।

५—उदयन और अग्निमित्र की कथा बाद में भी प्रचलित हो सकती है।

६—पुरूरवा चन्द्र वंशी थे, उनको "विक्रमोर्वशीय" का नायक बनाया गया है जिससे कवि का सूर्यवंशी राजा के आश्रित होना सिद्ध नहीं होता।

७—शेष प्रमाण भी केवल अटकल पर आधारित हैं, उन्हें ऐतिहासिक प्रमाणों के रूप में नहीं माना जा सकता।

प्रायः कवि को गुप्त काल का (ई० ४००) माना जाता है। इस संदर्भ में निम्न तर्क दिये जाते हैं :—

१—विक्रमादित्य के रूप में अधिक प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० ३५७ से ४१३) हैं। उनके पौत्र स्कन्दगुप्त ने भी यह उपाधि धारण की थी। विंसेंट स्मिथ ने "अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया" में लिखा है कि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय से स्कन्दगुप्त (ई० ४५५–४७०) तक के साथ थे।

२—साहित्य, विज्ञान, कला आदि की दृष्टि से यह युग स्वर्ण-काल था। इसमें पुराणों के अंतिम संस्करण हुये और वैदिक धर्म का प्रचार हुआ। कालिदास का ऐसे समय होना ज्यादा संभव है।

३—मन्दसौर (मध्यभारत) के ई० ४७३ के शिलालेख में वत्सभट्टि ने ऋतुसंहार और मेघदूत के भाव लिये हैं।

४—भास का समय तीसरी-चौथी शती है और कालिदास ने उनके नाम का उल्लेख मालविकाग्निमित्र की भूमिका में किया है।

५—'कुमारसंभव' में "कुमार" कुमारगुप्त के जन्म का संकेत करता है।

६—रघु की दिग्विजय समुद्रगुप्त की दिग्विजय है।

७—"रघुवंश" और 'मालविकाग्निमित्र' का अश्वमेध यज्ञ समुद्रगुप्त का अश्वमेध यज्ञ है।

८—"गुप्" धातु का प्रयोग "गुप्त" से संबद्ध होने के कारण कवि ने किया है।

९—कालिदास ने पारसीकों व हूणों का उल्लेख भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर किया है। वे प्रतापी गुप्तों के बाद उस स्थिति में नहीं रह सकते थे।

१०—मेघदूत और रघुवंश (रघु-दिग्विजय और राम का लंका से लौटना) में जो भूगोल है, वह गुप्त-काल के भूगोल से समता रखता है।

११—मल्लिनाथ की टीका के अनुसार मेघदूत में दिङ्नाग और निचुल की ओर संकेत किया गया है। दिङ्नाग के गुरु वसुबन्धु का ग्रन्थ ई० ४०४ में चीनी भाषा में अनूदित हुआ था।

१२—कालिदास ने माना है कि चन्द्र-ग्रहण चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया से होता है। उन्होंने यह विचार रोमक सिद्धान्त (ई० ४००) या आर्यभट्ट (ई० ४९९) से लिया होगा।

१३—"कुमारसंभव" में "जामित्र" पद का प्रयोग है। यह यूनानी ज्योतिष का प्रतीत होता है जिससे कवि, ई० ३२० के पहले के नहीं हो सकते, ऐसा प्रो० ए० बी० कीथ का मत है।

१४—कालिदास की प्राकृत अश्वघोष की प्राकृत के बाद की है।

१५—शकारि विक्रमादित्य की उपाधि इसके पहले किसी ने धारण नहीं की थी।

१६—रघुवंश में वर्णित सामाजिक दशा और शासन-प्रबन्ध गुप्तकाल की सामाजिक दशा व शासन-प्रबन्ध से मिलते हैं।

उक्त मत यद्यपि बहुत प्रचलित है, पर इसकी आलोचना भी खूब हुई है। पहले बाद में उनका समावेश है नीचे शेष बातें दी जाती हैं :—

१—सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों को राज-गद्दी से हटाकर वैदिक धर्म की स्थापना की। संस्कृत और वैदिक संस्कृति की जो महिमा कालिदास की रचनाओं में दिखती है, वह उस समय ही संभव हो सकती है। उस समय संस्कृत और काव्य का इतना प्रचार था कि बौद्ध कवि अश्वघोष तक को संस्कृत में और काव्य में रचना करने के लिये विवश होना पड़ा। स्वयं बुद्ध ने पालि में उपदेश दिये थे और बौद्ध ग्रन्थ पालि में ही लिपिबद्ध किये जाते थे।

२—भास का समय बहुत पुराना है, यह मुख्यतः उनकी भाषा से सिद्ध है जो पाणिनीय नियमों का उल्लंघन करती है। ऐसा समय वह रहा होगा जब पाणिनि ने अपने नियम बनाये होंगे या उनका मत सर्व-मान्यता न प्राप्त कर पाया होगा।

३—मल्लिनाथ बहुत बाद के हैं; उनकी टीका के ऐतिहासिक प्रसंग संदिग्ध हैं। कालिदास की शैली श्लेष के विरुद्ध है। टीकाकार के अनुसार[1] "दिङ्नाग" नामक विद्वान् कालिदास का विरोधी था, अतः उसका परिहास-पूर्ण चित्रण किया गया है। "दिङ्नाग" का बहुवचन का प्रयोग यह सिद्ध कर देता है कि मल्लिनाथ को भ्रम था। यदि दिङ्नाग विरोधी होते तो उनके लिये आदरसूचक बहु-वचन न दिया गया होता।

४—यह इतिहास से सिद्ध हो चुका है कि यूनानी ज्योतिर्विद्या भारत में ईसवी पूर्व ही आ गई थी।

फर्गुसन का कहना है कि ई० ५४४ में विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर यह संवत् चलाया और उसे महत्त्व देने के लिये ६०० वर्ष पूर्व (ई० पू० ५७) से आरम्भ माना। मैक्समूलर ने पाँचवी-छठी शताब्दी को संस्कृत का पुनरुज्जीवन काल माना है। उनके अनुसार ६०० वर्षों तक संस्कृत की साहित्यिक प्रगति अवरुद्ध थी। हार्नली के अनुसार कारूर की लड़ाई में हूण-वंश के राजा मिहिरकुल को हराने वाले यशोधर्मा (छठी शती) ही वे विक्रमादित्य हैं जिनके समय में कालिदास थे। रघुवंश की रघु-विजय के अनुसार हूण केसर पैदा होने वाले देश में थे और यशोधर्मा, काश्मीर के राजा थे।

---

१. दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्

उक्त वाद भ्रामक है :—

१—फ्लीट ने भारतीय शिलालेखों की खोज कर यह सिद्ध कर दिया है कि मालव संवत् ई० ५४४ से कम से कम १०० वर्ष पहले भी था ।

२—इस समय शकों का पश्चिमी भारत में होना संभव नहीं है । वे एक शताब्दी पूर्व गुप्त सम्राटों द्वारा भगाये जा चुके थे ।

३—मैक्समूलर के संस्कृत-पुनरुज्जीवनवाद का आधार यह था कि छठी शती के पहले के जितने शिला-लेख तब तक मिले थे, वे सब प्राकृत में थे । अब संस्कृत के शिलालेख भी प्रचुर संख्या में मिल चुके जिनसे यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि संस्कृत की कोई विशेष उन्नति एकाएक बाद में नहीं हुई ।

के० बी० पाठक ने रघुवंश के वंक्षु नदी के जिसे आक्सस या आमू दरया कहते हैं किनारे हूणों के हराये जाने के उल्लेख (४ ६७) के आधार पर कालिदास को स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है ।

इनके अतिरिक्त कथाओं के आधार पर कालिदास के समय पर प्रकाश पड़ता है पर वह भ्रामक है । "ज्योतिर्विदाभरण" के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य के दरबार में थे और धन्वन्तरि, क्षप-णक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, वराहमिहिर और वररुचि के साथी थे । ये नौ व्यक्ति नवरत्न कहलाते थे । यह प्रमाद पूर्ण है क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि अमरसिंह और वराह-मिहिर बाद के हैं ।

"भोजप्रबन्ध" में बल्लालसेनसूरि ने कालिदास को भवभूति आदि के साथ दिखाया है जो असंभव है । उन्होंने "नवसाहसाङ्कचरित" के लेखक पद्मगुप्त को जिन्हें परिमल कालिदास या परिमल भी कहा जाता था कालिदास समझ लिया है, ऐसा प्रतीत होता है ।

एक अन्य कथा के अनुसार कालिदास लंका के राजा संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कुमारदास के समय के (लगभग ई० ५००) हैं । राजा कवि के परम भक्त थे और उन्हीं की वैदर्भी-शैली में काव्य-रचना करते थे । लंका में उनकी एक प्राकृत समस्या कालिदास ने पूर्ण कर एक वेश्या को दे दी थी जिसने अपने नाम और पुरस्कार के लोभ से कवि की हत्या कर दी थी । पद्य के भावादि से राजा ने यथार्थता का अनुमान लगा लिया था ।

शैली—कालिदास वैदर्भी रीति के कुशल कवि हैं ।[1] उनकी रचना में व्यंजना की चारुता और प्रसाद गुण की प्रचुरता है । जिस तरह स्वच्छ जल में पड़ी वस्तु स्पष्ट दिखाई पड़ती है, उसी तरह उनका काव्य पढ़ते ही अर्थ, हृदय में रस के रूप में परिणत होकर पुलकित कर देता है । यह शैली पुराणों की परमप्रसाद-शीलता और बाद की कृत्रिमता के मध्य की है जिससे प्रसादगुण के साथ-

१. लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विवशा गिरः ।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ॥ (दण्डी)

साथ सरसता के दर्शन होते हैं। श्लेष की अभिरुचि न होने से इस प्रसाद-गुण को बहुत बल मिला। यमक के प्रति रघुवंश के नवम सर्ग में रुचि दिखाई गई है और द्रुतविलम्बित छन्द का अंतिम चरण यमकमय किया गया है पर वह भी सीमित स्थान में। उससे प्रसाद गुण को कोई क्षति नहीं पहुँचती। उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रयोग उन्होंने सफलता के साथ किया है, पर इन सबसे बढ़कर उनको प्रसिद्धि उपमाओं के लिये है।[1] अनुरूपता और कमनीयता उनमें कूट कूटकर भरी है। स्वयंवर के समय इन्दुमती जिस-जिस राजा को नापसन्द कर-करके आगे बढ़ती जाती है, वह-वह उस महल की तरह कान्ति-हीन हो जाता है जिससे होकर दीपशिखा रात में आगे बढ़ जाती है।

मदन-दाह के पश्चात् रति इस प्रकार शोक-विधुर हो जाती है जिस प्रकार जलरहित सरोवर में अकेली बची कमलिनी शोभाहीन हो जाती है। व्यावहारिक उपमाएँ भी हैं ; बेटी को विदा कर पिता को ऐसा अनुभव होता है जैसे सँभालकर रखी धरोहर उसके वास्तविक मालिक को सौंप दी जाय।[2] भोजनभट्ट विदूषक चन्द्रमा को मक्खन के गोले की तरह देखता है। कठिन स्थलों पर भी कवि को सटीक उपमायें सूझती हैं। दिलीप और सुदक्षिणा के बीच नन्दिनी गाय इस तरह शोभित होती है जैसे दिन और रात के बीच सन्ध्या।[3] उपमायें व्याकरण, अलंकार-शास्त्र जैसे शास्त्रों तक से ली गई हैं जो विद्वानों को आत्मविभोर कर देने की क्षमता रखती हैं, ब्रह्म सरोवर से निकल रही सरयू नदी सांख्यशास्त्रीय अव्यक्त मूल प्रकृति से निकलने वाली बुद्धि के सदृश है। नन्दिनी और सुदक्षिणा क्रमशः आगे-पीछे इस तरह चल रही हैं जैसे श्रुति के अर्थ का अनुसरण स्मृति करती है।[4] कवि की सबसे सुन्दर उपमा कुमारसंभव के अंत में आई है। शिवजी अपने लिये तप कर रही उमा को अपनी ही निन्दा से क्रुद्ध कर देते हैं; न पहचानकर जब वह अन्यत्र जाने लगती है, तब अपने रूप में प्रगट होकर उसे चौंका देते हैं; वह स्तब्ध रह जाती है; शरीर काँपने लगता है और आगे बढ़ा हुआ कदम अधर में ही रह जाता है। वह उस समय उस नदी की तरह न तो बढ़ पाती है और न रुक ही पाती है जो पर्वत की बाधा पाकर न बढ़ पाती है और न रुक ही पाती है।[5]

छन्दों के प्रयोग में कालिदास को दक्षता प्राप्त है। इन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ और श्लोक (अनुष्टुप्) छन्दों के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं। जहाँ मेघदूत में उन्होंने केवल मन्दाक्रान्ता छन्द से ही कमाल दिखा दिया है, वहाँ रघुवंश में छन्दों की विविधता की निपुणता दिखाई है।

---

१. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं.......................॥

२. जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा"।
अभिज्ञान शाकुन्तल ४।२१

३. दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या। (रघुवंश)

४. श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

५. तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥
(कुमारसंभव ५)

कालिदास का प्रकृति-प्रेम चरम कोटि पर पहुँचा है। वे वर्डसवर्थ की तरह प्रकृति निरीक्षण में इतने तन्मय हो जाते हैं कि प्रकृति का मानवीकरण (Personification) कर देते हैं। उर्वशी को खोजते हुये पुरूरवा बादल, मोर, कोयल, भौंरे, हाथी, हरिण और नदी से पूछते फिरते हैं। मेघदूत का यक्ष बादल को इतना योग्य समझ लेता है कि उससे प्रिया तक संदेश भेज देता है। स्वप्न में आलिंगन के लिये यक्ष बाँहें फैलाता है, उसकी विवशता पर वनदेवियाँ तक द्रवित हो जाती हैं और मुक्ता के बराबर बड़े-बड़े आँसू उनकी आँखों से गिरकर पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। शकुन्तला की सज्जा के लिये वन-देवियाँ अपनी भुजायें बढ़ाकर अलंकरण और लाक्षारसादि देती हैं, शकुन्तला से बिछुड़ती हुई लतायें पीले पत्तों के रूप में आँसू गिराती हैं, हरिणियाँ कुश के ग्रास त्याग देती हैं और मोर नाचना बन्द कर देते हैं। दुष्यन्त अंगूठी को अपनी तरह भाग्य-हीन समझते हैं जिसने शकुन्तला को छोड़ दिया। वसन्त मलयानिलरूपी करस्पर्श से सुख देता हुआ कलरव से अग्निमित्र को सान्त्वना देता है।

चरित्र-चित्रण में कालिदास अप्रतिम हैं। जिस कुशलता के लिये शेक्सपियर इतने बाद प्रसिद्ध हुये, वह उतने प्राचीन काल में कालिदास को प्राप्त थी। यह गुण अंतिम नाटक—अभिज्ञान-शाकुन्तल—में बहुत निखरा है। कोई दो पात्र एक जैसे नहीं है; हर एक का अपना व्यक्तित्व है। ऋषि ३ हैं—कण्व, दुर्वासा और कश्यप। तीनों का व्यक्तित्व भिन्न भिन्न है। जहाँ कण्व तपस्या में लीन रहते हैं, वहाँ इतने पुत्री-वत्सल हैं कि उसके बुरे ग्रहों की शांति के लिये सोम-तीर्थ जाते हैं। व्यवहारकुशल इतने हैं कि विरक्त होते हुये भी बिदाई के समय शकुन्तला को ऐसा व्यावहारिक उपदेश देते हैं जो कुशल गृहस्थ पिता ही दे सकता है। भावुकता इतनी है कि बिदाई के समय रो पड़ते हैं, गला रुंध जाता है और सोच नहीं पाते कि यादगारें देखकर कैसे धैर्य रखूँगा। प्रगतिशील इतने हैं कि कन्या ने तपोवन में रहते हुये बिना पूछे गान्धर्व विवाह कर लिया तो उसका तुरन्त अनुमोदन करने में पश्चात्पद नहीं हुये। दुर्वासा क्षण भर के लिये आये पर अपने क्रोध की छाप सब पर छोड़ गये। वे महान् तपस्वी हैं और जो आदर प्राप्य है, उसके न मिलने पर दण्ड देना जानते हैं। कश्यप विष्णु, इन्द्र के साथ समग्र स्थावर जंगम के स्रष्टा होकर और स्वर्ग-सुख प्राप्त होने पर भी तपस्या में लीन रहते हैं, पर लौकिकता से भी विमुख नहीं हैं। उनके आश्रम में दुखिया शकुन्तला और मेनका को शरण मिलती है, जबर्दस्त सर्वदमन पाला जाता है और वे पतिव्रत धर्म के विषय में पत्नी को उपदेश देते हैं। वे गृहस्थों के कष्ट दूर करते हैं; दुष्यन्त और शकुन्तला के मन में पैदा हुई गलत-फहमी दूर करने के लिये वे शाप का रहस्य खोलते हैं और उनका ख्याल कर पुत्र व पत्नी मिलन का समाचार कण्व तक भिजवाते हैं। सखियाँ दो हैं पर दोनों का स्वभाव भिन्न है। एक प्रियंवदा है जो हंसमुख व चंचल है और छेड़ छेड़कर शकुन्तला के प्रेम को चरम सीमा पर ले जाकर दुष्यन्त से मिलन कराने में सहायक होती है। दूसरी अनसूया है जो बहुत गंभीर और ऊँचा-नीचा समझने वाली है। शिष्य २ हैं, एक शार्ङ्गरव है जो गलती सह नहीं सकता और निर्भीक इतना है कि राजा तक को फटकार देता है और शकुन्तला को डाँटकर साथ लौटने से रोकता है और कहता है कि कन्या का पिता के घर में रहने की अपेक्षा अनादृत होकर भी पति के साथ रहना

अच्छा है। उधर दूसरा शिष्य शारद्वत शांत है। वह बढ़े मामले को शांत कर काम की बातें सुझाता और काम बनाता है।

भाषा और भाव पात्रों के अनुरूप हैं। ऋषियों की वाणी गुरुता के अनुरूप है, राजा की वाणी में आदेशात्मक प्रभुता है, पुरोहित दार्शनिक सूत्रों का प्रयोग करता है उच्च शिक्षित पुरुष और वृद्धा स्त्रियाँ संस्कृत बोलती हैं तथा अन्य स्त्रियाँ, धीवर, पुलिस वाले व विदूषक प्राकृत बोलते हैं।

रचनायें—कालिदास के नाम से ५१ रचनाओं का पता लग चुका है। इनके अतिरिक्त लोक-साहित्य के रूप में बहुत-सी रचनायें कालिदास के नाम से हैं। लेखक के नाम का पता न चलने पर कालिदास का नाम जोड़ दिया जाता रहा, ऐसा प्रतीत होता है। इसी आधार पर कई कालिदास माने जाते हैं। ९ वीं शती में कवि राजशेखर ने श्रृंगार-रस के ३ कालिदास नामक महान् कवियों का उल्लेख किया है। कवि के ग्रन्थों की भाषा व शैली आदि के तुलनात्मक अध्ययन से विद्वानों ने निर्णय किया है कि निम्न-लिखित ७ ग्रन्थ एक ही और उन्हीं कालिदास के हैं जो संस्कृत में कविकुलगुरु आदि विरुदों से पहचाने जाते हैं।

नाटक—(१) मालविकाग्निमित्र, (२) विक्रमोर्वशीय और (३) अभिज्ञानशाकुन्तल।

महाकाव्य—(१) कुमारसंभव और (२) रघुवंश।

गीतिकाव्य—(१) ऋतुसंहार और (२) मेघदूत।

ग्रन्थों का क्रम ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश और अभिज्ञान-शाकुन्तल है। इनमें से कुमारसंभव, मेघदूत और रघुवंश के क्रम के सम्बन्ध में यह कथा मिलती है कि कालिदास पहले मूर्ख थे। विद्योत्तमा नामक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में हारे पण्डितों ने बदले की भावना से छल करके उसका ब्याह कालिदास से करा दिया था। वस्तुस्थिति जानने पर उसने द्वार बन्द कर लिये और अपने दुर्भाग्य को कोसती रही। कालिदास को यह अपमान असह्य हो उठा और उन्होंने सफल विद्याओं में पारङ्गत होकर ही फिर पत्नी से भेंट की। द्वार तब भी बन्द था। कवि ने "अनावृतकपाटं द्वारं देहि" कहकर द्वार खोलने को कहा। अन्दर से पत्नी ने पूछा "अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः।" कवि ने आरम्भ के ३ पद लेकर क्रमशः कुमारसंभव, मेघदूत और रघुवंश की रचना कर दी। कथा चाहे सही न हो, पर ग्रन्थ-क्रम सही प्रतीत होता है।

ऋतु-संहार उत्तम काव्य है पर कालिदास की परिपक्वता के दर्शन उसमें नहीं मिलते, जिसके आधार पर कुछ विद्वान् इसे किसी और की रचना कहते हैं। पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता। आरम्भिक रचना में कमियाँ स्वाभाविक हैं। सन्देह के कारण निम्न हैं :—

(१) इसमें इन्द्रियानन्द को प्रमुखता दी गई है जो कालिदास के अन्य ग्रन्थों में नहीं है।

(२) मल्लिनाथ ने कालिदास के समस्त काव्यों की टीका की है पर इसकी नहीं की है।

(३) अलंकार के ग्रन्थों में कालिदास के अन्य ग्रन्थों से उदाहरण लिये गये हैं; इससे नहीं।

१—एकोपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥ (सूक्तिमुक्तावली से उद्धृत)

तुलनात्मक अध्ययन तथा वत्समट्टि के मन्दसोर शिलालेख में मेघदूत तथा इस काव्य के अनुकरण से यह सिद्ध है कि यह भी कालिदास की ही रचना है। इस प्रथम रचना में ही कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। भारतीय ऋतुओं का जितना अन्तरंग परिचय इस काव्य में है, उतना और किसी में नहीं। प्रकृति के प्रति कवि की सहानुभूति और प्रसाद-गुण का अतिशय दर्शनीय हैं। प्रकृति का जितना सुन्दर चित्रण इसमें है, उतना कालिदास के अन्य ग्रन्थों में नहीं है।

ग्रन्थ में ६ सर्ग हैं और ग्रीष्म से लेकर वसन्त तक का वर्णन १–१ सर्ग में किया गया है। ऋतुओं का ठीक यही क्रम अभिज्ञानशाकुन्तल में भी मिलता है। कुल पद्य १५३ हैं; और अनेक प्रकार के हैं।

क्रम की दृष्टि से "मालविकाग्निमित्र" दूसरा ग्रन्थ है, विल्सन के अनुसार इस रचना के कालिदासीय होने में सन्देह है, पर हस्तलिखित प्रतियों, प्रस्तावना, चमत्कारी उपमाओं, चरित्रांकन, शैली, भाषा और सामान्य कथा को भी असामान्य बना देने की कला के आधार पर यह निर्णीत-सा है कि यह कालिदास की ही कृति है। यह उनका प्रथम नाटक है जो इससे सिद्ध होता है कि प्रस्तावना में वे कहलाते हैं कि भास, सौमिल्ल और कविपुत्र-जैसे नाटककारों के नाटक रहते हुए इस नाटक की क्या आवश्यकता है। इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि वस्तु की प्राचीनता या नवीनता उसे श्रेष्ठ नहीं बनाती; श्रेष्ठता का निर्णय सज्जन करते हैं और परम्परा को मानने वाले मूर्ख होते हैं। इसमें ५ अंक हैं और विदिशा के राजा अग्निमित्र, जो पुष्यमित्र के पुत्र और वसुमित्र के पिता थे, तथा विदर्भ की राजकुमारी मालविका की प्रेमकथा है जो सुखान्त है।

तीसरी रचना "विक्रमोर्वशीय" है। इसमें भी ५ अंक हैं। चन्द्रवंशी महाराज पुरूरवा और स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी का प्रेम और बाद में विवाह का वर्णन है। बीच में कई बार के दुःखदायी विरह के बाद दोनों का मिलन होता है और इन्द्र के वरदान से दोनों जीवन भर साथ रहते हैं।

चौथी कृति "कुमारसंभव" है जिसमें १७ सर्ग हैं और शिव-पार्वती के विवाह से लेकर कुमार कार्तिकेय के जन्म और उनके द्वारा तारकासुर के वध तक की कथा दी गई है। सर्ग ९ से १७ तक किसी दूसरे कवि की रचना है, यह कहा जाता है। इसमें निम्न तर्क दिये जाते हैं :—

(१) मल्लिनाथ ने कालिदास के प्रायः सब ग्रन्थों की तरह इस पर भी टीका लिखी है पर ८ वें सर्ग तक ही।

(२) इस काव्य के अनेक स्थल रघुवंश से लिये गये हैं।

(३) ग्रन्थ के आरम्भ में पार्वती और शिव को संसार के माता-पिता के रूप में मानकर प्रणाम किया गया है और फिर उनका श्रृङ्गार वर्णन किया गया है। उक्त आलोचना आनन्दवर्धन ने की है और शायद कवि के समय में भी हुई या कविता की तन्मयता में नायक-नायिका का वर्णन करने में कवि ने सुध-बुध खो दी और बाद में चैतन्यावस्था में उसे मर्यादा से हटा हुआ देखकर उन्होंने उसे नष्ट करने को सोचा। नष्ट करने के पहले ही कवि की मृत्यु हो जाने से सौभाग्य-वश ग्रन्थ बच गया। पूरा ग्रन्थ उन्हीं का लिखा माना जा सकता है। उसका प्रचार न चाहकर उन्होंने उसके

अच्छे स्थल रघुवंश में ले लिये होंगे। मल्लिनाथ ने टीका शायद इसीलिये नहीं लिखी क्योंकि माता-पिता का वर्णन श्रृंगार-पूर्ण है। ग्रन्थ अपूर्ण रहने का कोई कारण नहीं है जबकि इसके बाद रघुवंश लिखा गया जो अपूर्ण है।

पाँचवाँ ग्रन्थ मेघदूत है। यह कवि की प्रौढ़ होने पर की गई रचना है। यह दो भागों में है (१) पूर्व मेघ जिसमें बादल को दूत बनाकर रामटेक (नागपुर के पास) पहाड़ी से कुबेर की नगरी—अलकापुरी—तक का मार्ग बताया गया है और (२) उत्तर मेघ जिसमें यक्ष ने जिसे अपने कृत्य (ड्यूटी) में लापरवाही करने से उसके शासक कुबेर ने १ वर्ष के लिये शाप (दण्ड) द्वारा निर्वासित कर दिया है अपनी विरहिणी प्रिया को पहचानने के उपाय मेघ को बताये हैं और अपना सन्देश दिया है। यह भाग बहुत करुण है और यूनानी "एलेजी" की कोटि का है। कुल पद्यों की संख्या ११० से १२९ तक मानी जाती है। सारा काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में है जिसमें वर्षाकाल और विरह का वर्णन खूब निखरा है। कवि इस छन्द में सिद्धहस्त है। शिलर ने मेरिया स्टुअर्ट में ऐसी ही कथा दी है जिसमें बादल को दूत बनाया गया है। मन्दसौर शिलालेख में इसकी अनुकृति की गई है। इसका तिब्बती अनुवाद तंजौर में सुरक्षित है। सिंहली में भी एक अनुवाद मिलता है। हिन्दी में इसके दर्जनों अनुवाद हुए हैं। ब्रजभाषा में राजा लक्ष्मणसिंह का अनुवाद बहुत सुन्दर हैं। ८ वीं शती के जिनसेन ने मेघदूत के १२९ पद्यों के उद्धरणों को समस्या की तरह लेकर पार्श्वनाथ का जीवन लिखा है। १२ वीं शती में धोयीक कवि ने "पवनदूत" लिखा है जो इस काव्य का अनुकरण है; बादल की जगह पवन को दूत बनाया है। इसी तरह के दर्जनों दूत-काव्यों का पता चला है।

बादलों और नायिका के ऐसे सुन्दर काव्यांकन हुए हैं कि उनका चित्र सामने आ जाता है। इसके आधार पर कहा जाता है कि कालिदास की आँखें फोटोग्राफिक थीं। इसमें भारत के भूगोल की भी अच्छी जानकारी है।

छठा ग्रन्थ रघुवंश है। इसमें १९ सर्ग हैं और यह महाकाव्य है। यह कवि का अन्तिम काव्य और प्रौढावस्था की कृति के रूप में प्रसिद्ध है। इसके पढ़ने-पढ़ाने का बहुत प्रचलन रहा है। राम के वंश से सम्बद्ध होने से कहीं-कहीं इसकी कथा भी होती है। रघु-वंश के महान् आदर्शों की कथायें सम्बद्ध राजाओं के प्रसङ्ग में दी गई हैं। वंश का वर्णन होने से बहुत विस्तार हो गया है। बाद के कवियों ने ऋतु-आदि के लम्बे वर्णन देकर इस विशालता से होड़ करने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थ में सूर्यवंश के दिलीप से लेकर कुश और उनके अनेक उत्तराधिकारियों तक की कथा दी गई है; कुछ के तो नाम धर दिये गये हैं। कवि ने कथा, रामायण और पुराणों से ली है पर काव्य कमनीयता से सर्वथा अपनी वस्तु बना ली है। काव्य अधूरा रह गया है जिसका कारण कवि की मृत्यु प्रतीत होता है।

सातवीं और अन्तिम रचना अभिज्ञानशाकुन्तल है जो सर्वसम्मति से कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। इसमें ७ अंक हैं। यह कृति कवि की प्रौढावस्था की कही जाती है।

कथास्रोत

वाल्मीकि रामायण—हनुमान् जी का सीता जी को अँगूठी देने का वृत्तान्त रामायण में आता है, इसका उपयोग पहचान के लिये कालिदास ने किया है यह माना जाता है।

कट्ठहारी जातक—इस जातक में वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त एक बार जंगल में जाते हैं। वहाँ फलमूल की खोज में वे गा-गाकर लकड़ी बीन रही एक लड़की को देखते हैं। उस पर मोहित होकर उससे ब्याह कर उसके साथ कुछ दिन रहते हैं। वह प्रसववती हो जाती है। राजा उससे विदा होने के समय उसे अपनी अँगूठी देकर यह कहते हुए जाते हैं कि यदि लड़की हो तो उसके भरण-पोषण के लिये अँगूठी बेच देना और लड़का हो तो उसे अँगूठी के साथ मेरे दरबार में ले आना। उसके गर्भ से बोधिसत्त्व जन्म लेते हैं। वह दरबार में अँगूठी-सहित जाती है तो राजा उसे पहचानने से लज्जा के कारण इनकार कर देते हैं। इस पर लड़की यह कहकर उसे आकाश में फेंक देती है कि यदि यह तुम्हारा लड़का होगा तो भूमि पर नहीं गिरेगा और नहीं होगा तो गिरकर मर जायेगा। लड़का पलथी मारकर आकाश में बैठ जाता है और आकाशवाणी होती है कि हे राजा, यह तुम्हारा ही पुत्र है। राजा हाथ फैलाते हैं और लड़का उनकी गोद में आ जाता है। वे उस लड़की को पटरानी और लड़के को युवराज बनाते हैं। पिता के मरने पर पुत्र राजा कट्ठवाहन के नाम से प्रसिद्ध होता है। अँगूठी की पहचान यहीं से ली गई हो सकती है।

पद्म-पुराण (स्वर्ग-खण्ड)—पद्म-पुराण की कथा में महाभारत और अभिज्ञान-शकुन्तला का मिश्रण है। यह माना जाता है कि यह कथा अभिज्ञान-शाकुन्तल से लेकर उसे अपनी शैली में लिख लिया गया है।

महाभारत—कालिदास ने कथा महाभारत से ली है पर उसके भोंड़े रूप को अपनी कला से परिष्कृत कर उसे सर्वथा नया रूप दे दिया है। उन्होंने नई उद्भावनाओं और नाटकीय तत्त्वों से उसमें असीम चारुता ला दी है। नीचे दोनों कथाओं का अन्तर दिया जाता है :—

महाभारत में	इस नाटक में
१—कण्व उस समय फल लेने गये हैं जब दुष्यन्त आश्रम में प्रविष्ट होते हैं।	१—कण्व शकुन्तला के प्रतिकूल ग्रहों की शांति के लिये सोमतीर्थ गये हैं।
२—उक्त सूचना स्वयं शकुन्तला राजा को देती है।	२—वैखानस उक्त सूचना राजा को देता है।
३—शकुन्तला दुष्यन्त से अपना जन्म वृत्तान्त कहती है।	३—सखी शकुन्तला का जन्म-वृत्तान्त दुष्यन्त को बताती है।
४—शकुन्तला इस शर्त पर ब्याह करने को राजी होती है कि मेरा पुत्र गद्दी का अधिकारी हो।	४—यह सौदेबाजी नायिका के लिये निकृष्ट मानकर यहाँ स्वाभाविक रूप से सखियों के वार्तालाप, परस्पर-दर्शन-संभाषण, आदि

	से राजा के देखने-सुनने, पारस्परिक अनुराग, प्रेम-पत्र-प्रेषण आदि के द्वारा प्रेम को परिपाकावस्था तक पहुँचाकर ब्याह कराया जाता है ।
५—कण्व के डर से दुष्यन्त राजधानी चल देते हैं ।	५—राजधानी जाने का कारण यहाँ नहीं दिया गया है ।
६—कण्वाश्रम में ही शकुन्तला पुत्र को जन्म देती है ।	६—अस्वीकृति हो जाने के बाद कश्यप के आश्रम में शकुन्तला के पुत्र होता है ।
७—युवराज के योग्य वय हो जाने पर शकुन्तला राजा के पास जाती है।	७—प्रसववती अवस्था में वह राजा के पास जाती है ।
८—शकुन्तला अनुनय करती है कि बालक का युवराज-पद पर अभिषेक कर दें ।	८—यह प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि अभी पुत्र उत्पन्न ही नहीं हुआ ।
९—राजा लोकापवाद के डर से पहचानने से इनकार कर देते हैं ।	९—यह स्थिति नायक के लिये अशोमनीय है, अतः दुर्वासा के शाप के कारण स्मृति न आने से दुष्यन्त अस्वीकार करते हैं, यह बताया गया है । पहचान की अँगूठी शची-तीर्थ में गिर जाती है, आश्रम के वृत्तांत राजा को याद करने पर भी याद नहीं आते और चेहरा दिखाने पर भी वे उसे पहचान नहीं पाते ।
१०—शकुन्तला कण्वाश्रम की ओर लौटती है ।	१०—जब वह पिता के घर लौटने लगती है तब उसे शार्ङ्गरव डाँटता है और कहता है कि विवाहित लड़की का पिता के यहाँ रहना ठीक नहीं है, पति के घर दास्य भी अच्छा है ।
११—आकाश-वाणी पर विश्वास कर राजा पौरों की उपस्थिति में शकुन्तला को स्वीकार करते हैं ।	११—बच्चा होने तक राज-पुरोहित उसे अपने घर ले जाते हैं । राह में मेनका उसे उठाकर ले जाती है। इन्द्र-पिता कश्यप के यहाँ पुत्र उत्पन्न होता है और माँ व नानी के साथ रहता है । मछुये से अँगूठी मिलने पर राजा को याद आती है। इन्द्र के बुलावे पर वे दैत्यों को मारने स्वर्ग जाते हैं । राह में हेम-कूट पर्वत पर स्थित कश्यप के आश्रम में मिलन होता है और वे क्षमा माँगते हैं । कश्यप, शाप-वृत्तान्त सुनाकर दोनों को यथार्थ स्थिति बताकर एक दूसरे के प्रति हुई कटुता दूर कर देते हैं ।

अनुराग का विकास, नये पात्रों की सृष्टि, शाप और अभिज्ञान (पहचान) की अंगूठी की उद्भावना, नाटकीयता और औत्सुक्य बनाये रखना कालिदास का चमत्कार है।

जहाँ तक कथा-मात्र का संबंध है, वह प्रायः सारी की सारी महाभारत से ली गई है। मुख्य-पात्र—कण्व, दुष्यन्त, शकुन्तला और सर्वदमन—महाभारत के ही हैं। शिकार खेलते हुये आश्रम में पहुँचना, गान्धर्व विवाह, कण्व द्वारा उसका अनुमोदन, पहचानने से इनकार और फिर स्वीकार आदि महाभारत से ही लिया गया है।

घटना की अवधि—ग्रीष्म के आरंभ की सूचना सूत्रधार देता है। उसी समय राजा हिरन का पीछा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। वसंत आने तक अँगूठी मिल जाती है, वसंत ऋतु में आम पर पहला बौर आने के दिन राजा शकुन्तला के चित्र को देखकर अधीर होते हैं और मातलि आता है। इस प्रकार एक वर्ष का समय निश्चित रूप से बीत जाता है। भरत इस बीच सिंह शावक को खींचने और बोलने लायक हो गया है जिससे १ से ५ वर्ष तक का समय व्यतीत हुआ माना जा सकता है। ऋषि कश्यप के प्रताप से बालक सर्व-दमन १–२ वर्ष में ही इतना शक्तिशाली और बोलने लायक हो गया हो, यह भी संभव है। बालक को राजा प्यार से गोद में लेते हैं जिससे वह बहुत बड़ा नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार २ से ६ वर्ष तक की अवधि की कथा इस नाटक में दी गई है।

प्रशंसा—कालिदास की यह रचना परम प्रौढ़ है। इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा इसके अनुवाद-मात्र पर योरप के शिक्षित समाज में हुई थी। अंग्रेजी अनुवाद ई. १७८९ में सर विलियम जोन्स ने किया। उसका जर्मन भाषा में अनुवाद ई. १७९१ में जार्ज फोस्टर-ने किया जिसे देखकर जर्मन के महाकवि गेटे ने अपनी भाषा में एक कविता लिखी थी: शेक्सपियर तक को यह सम्मान नहीं मिल पाया। उस कविता का भाव निम्न लिखित है :—

क्या तू उदित हो रहे वर्ष के फूल और क्षीण हो रहे वर्ष के फल देखना चाहता है? क्या तू वह सब कुछ देखना चाहता है जिससे आत्मा मोहित, प्रफुल्लित, हर्ष-विभोर और तृप्त हो जाती है? क्या तू स्वर्ग और पृथ्वी का एक ही नाम की सीमा में होना चाहेगा? यदि हाँ तो मैं तेरे सामने "शकुन्तला" को प्रस्तुत कर रहा हूँ और बस सब कुछ एक साथ इसमें आ गया है।

उक्त कविता उसी साल (ई. १७९१) "Deutsche Monatsschrift" नामक जर्मन मासिक पत्रिका में छपी थी और हेर्डर ने "on the Eastern Drama" नामक लेख के आरंभ में उसे उद्धृत कर इस नाटक की सर्व-श्रेष्ठता स्वीकार की है।

कथा-सार

अङ्क १—प्रस्तावना में सूत्रधार नटी से कहता है कि कालिदास रचित "शकुन्तला" नाटक खेलना है। ग्रीष्म का आरंभ है। नटी उस पर एक गीत गाती है जिस पर सूत्रधार कहता है कि तुम्हारे गीत से मेरा हृदय इस पर आकृष्ट हो गया है, जैसे दुष्यन्त हरिण से खिंचकर यहाँ तक चले

आये हैं। इसके बाद वैखानस आकर राजा को रोकता है कि आश्रम-मृग अवध्य है। दुष्यन्त धनुष से बाण उतार लेते हैं। वैखानस से उन्हें पता लगता है कि यह काश्यप कण्व का आश्रम है, वे अपनी पुत्री शकुन्तला के भाग्य-दोष की शांति के लिये सोम-तीर्थ गये हैं, अतिथि-सत्कार के लिये शकुन्तला नियुक्त की गई है। वैखानस ने आतिथ्य ग्रहण करने का निवेदन किया। कण्व के दर्शन की इच्छा से राजा ने आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ वे शकुन्तला व उसकी दो सखियों की बातें छिपकर सुनने लगे और अवसर पाकर उनमें मिल गये। उन्हें सखियों से यह पता चला कि शकुन्तला कुलपति कण्व की पोषित संतान है। उसकी माँ अप्सरा मेनका और उसके पिता राजर्षि विश्वामित्र हैं। अब राजा को आशा हो चली कि शकुन्तला का वरण क्षत्रिय (मेरे) द्वारा हो सकता है। दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। सखी प्रियंवदा शकुन्तला को छेड़ती है जिस पर वह रुष्ट होती है। इसी बीच एक जंगली हाथी के उत्पात से लड़कियाँ आश्रम में चली जाती हैं और राजा उससे आश्रम की रक्षा के लिये बढ़ते हैं। शकुन्तला के प्रति आकृष्ट होकर वे राजधानी जाना स्थगित कर देते हैं।

अङ्क २—राजा विदूषक और सेनापति की बातों में आखेट का प्रसंग उपस्थित होता है। आलसी विदूषक जो पहले ही आखेट से परेशान है, अपनी जान बचाना चाहता है। राजा भी शकुन्तला के कारण आखेट से बचाना चाहते हैं, अतः वे आदेश देते हैं कि आखेट बन्द कर दिया जाय। आश्रम में राक्षस उपद्रव आरंभ करते हैं। तपस्वियों की प्रार्थना पर राजा रक्षा के लिये रुक जाते हैं। इस बहाने से राजा माँ के बुलावे पर भी राजधानी न जाकर विदूषक को सेना के साथ वापस भेज देते हैं और इस डर से कि बातूनी विदूषक कहीं मेरे शकुन्तला के प्रति अनुरक्त होने की बात अन्तःपुर में न कह दे, वे पहले स्वयं की गई उस अनुराग की चर्चा को परिहास बताते हैं।

अङ्क ३—राजा यज्ञ की रक्षा के कार्य से छुट्टी पाकर मन-बहलाव के लिये मालिनी नदी के किनारे के वेतस-लता-मण्डप में जाते हैं। वह शकुन्तला का भी प्रिय स्थान है जहाँ वह अपनी दोनों सखियों—प्रियंवदा और अनसूया—के साथ रहती है राजा और शकुन्तला दोनों काम-पीड़ा से अत्यन्त व्यथित और कृश हो गये हैं। सखियाँ शकुन्तला को रोगी समझकर रोग का कारण पूछती हैं। जब उन्हें पता चलता है कि वह दुष्यन्त से प्रेम करती है तब वे उसके कार्य का अनुमोदन करती हैं। और प्रेम-पत्र लिखवाती हैं। उसमें शकुन्तला अपनी विरह-पीड़ा का वर्णन करती हुई कहती है कि "आपका हाल तो नहीं जानती पर मैं रात-दिन विरह की आग में जलती जा रही हूँ।" लताओं के पीछे छिपे हुये राजा यह सब देख-सुन रहे हैं। उचित अवसर समझकर वे प्रगट हो जाते हैं और दोनों का गन्धर्व रीति से विवाह हो जाता है।

अङ्क ४—गान्धर्व विवाह के शीघ्र बाद ही राजा को राजधानी जाना पड़ता है। उधर यज्ञ-रक्षा का कार्य भी समाप्त हो गया है जिससे ऋषि भी उन्हें नहीं रोकते और विदा कर देते हैं। शकुन्तला पत्र या दूत की प्रतीक्षा करती थक जाती है और सोच में पड़ी रहती है। एक दिन प्रसिद्ध क्रोधी

ऋषि दुर्वासा आश्रम में पधारते हैं; आस-पास शकुन्तला के अलावा कोई नहीं रहता। वे आवाज देते हैं पर सोच में डूबी शकुन्तला कुछ नहीं सुन पाती। इस पर वे यह शाप देते हुये क्रोध में तमतमाये चल देते हैं कि जिसकी चिन्ता में तू इस तरह मग्न है कि मेरी बात तक नहीं सुनती, वह याद कराये जाने पर भी तुझे याद न करेगा। शाप एक सखी सुन लेती है, वह ऋषि से अनुनय-विनय करती है कि शकुन्तला दुःखी है, उसकी गलती क्षमा कर दी जाय पर वे नहीं मानते, सिर्फ इतना बता देते हैं कि यदि पहचान की कोई चीज दिखा देगी तो उसका शाप निवृत्त हो जायेगा। सखियों को परेशानी है कि शकुन्तला ने जो अपने मन से ब्याह कर लिया, उसे कण्व को कैसे बतायें। सौभाग्य से कण्व को आकाशवाणी से सारा हाल मालूम हो गया। सत्पात्र के चुनाव पर वे विवाह का अनुमोदन करते हैं और गर्भवती शकुन्तला को दो शिष्यों और वृद्धा गौतमी के साथ हस्तिनापुर भेजते हैं। यहाँ करुणा की अति हो गई है। तपस्वी और वीतराग कण्व तक रो पड़ते हैं और असीम विकलता से विदाई करते हैं। पौधे, पशु-पक्षी आदि से युक्त सारा तपोवन जीवन्त आत्मीय जन की तरह प्रतीत होता है। कण्व, बहुत सुन्दर उपदेश देते हैं और देर होती देखकर जलाशय के पास से लौट आते हैं। कन्यारूपी अमानत उसके अधिकारी-पति-को सौंपकर उनका हृदय हलका हो जाता है।

अङ्क ५—शकुन्तला दोनों कण्व-शिष्यों और गौतमी के साथ राज दरबार में पहुँचती है। राजा शाप के कारण सारा वृत्तान्त भूल जाते हैं। सौन्दर्य की अपार छटा देखकर वे शकुन्तला की ओर आकृष्ट होते हैं पर उसे शाप-वश पराई स्त्री समझकर धर्मनिष्ठा के कारण अस्वीकार कर देते हैं। गौतमी शकुन्तला का मुख दिखाती है। शकुन्तला अँगूठी दिखाना चाहती है पर वह उँगली में नहीं मिलती। साथ बिताये दिनों के मधुर प्रसंग सुनाती है, पर राजा को कुछ याद नहीं आता। अँगूठी की बात उठाकर न दिखा पाने से उन्हें उलटे यह आशंका होती है कि ये लोग मुझे धर्म से गिराने आये हैं। शकुन्तला और शार्ङ्गरव (कण्व-शिष्य) राजा को भला बुरा भी कहते हैं पर राजा नहीं बदलते। अन्त में शकुन्तला को छोड़कर सब यह कहकर चल देते हैं कि 'बिना बड़ों से पूछे जो कार्य (ब्याह) किया है, उसका फल भुगतो; विवाहित लड़की के लिये पिता के घर की अपेक्षा पति के घर में रहना लाख-गुना अच्छा है, भले ही पति-गृह में दासता भी करनी पड़े।' राज-गुरु ऐसी स्थिति में परिस्थिति संभालते हैं और यह सुझाव देते हैं कि बच्चा होने तक शकुन्तला मेरे घर में रहे। यदि सिद्ध पुरुषों की भविष्य-वाणी के अनुसार पुत्र में चक्रवर्ती के लक्षण मिले तो निश्चय हो जायेगा कि शकुन्तला की बात सत्य है और इसका उलटा हुआ तो दोनों को कण्व के आश्रम में पहुँचा दिया जायेगा। राजा सुझाव मान लेते हैं। रास्ते में शकुन्तला अपने भाग्य को कोसती हुई जाती है कि अप्सरस्तीर्थ में स्त्री-आकार की एक दिव्य ज्योति उसे उठा ले जाती है। राजा को इस घटना से सन्देह होता है कि कहीं मैं ही तो नहीं भूल कर रहा हूँ।

अङ्क ६—सिपाही एक मछुये को राजा की अँगूठी बेचते हुए पकड़ते हैं। वह बताता है कि शक्रावतार तीर्थ में यह अँगूठी मुझे फँसाई गई मछली का पेट फाड़ने पर अन्दर से मिली है। उसकी

बात की पुष्टि के लिये पुलिस-अधिकारी राजा के पास जाता है। वहाँ राजा को गौतमी की कही बात याद आ जाती है कदाचित् अँगूठी शक्रावतार तीर्थ में नहाते समय उँगली से फिसलकर गिर गई। उसे देखते ही उनके शाप का अन्त हो जाता है और वे अपनी विस्मृति, शकुन्तला को स्वीकार न करने और उसके वियोग से आकुल हो जाते हैं। विदूषक को साथ लेकर वे अपने दुःख को हलका करने के लिये शकुन्तला का स्व-चित्रित चित्र देखते हैं और उसमें कुछ परिवर्धन करना चाहते हैं। इसी समय एक बड़ा व्यापारी सन्तान-रहित मर जाता है और मंत्री उसकी सम्पत्ति सरकारी खजाने में जमा करना चाहते हैं। संतान-हीन की बात उठने पर राजा और दुःखी हो जाते हैं और वंश-विच्छेद से अत्यन्त आकुल हो रहे पितरों की दशा सोचते रहते हैं। यह दृश्य मेनका के द्वारा भेजी गई एक अप्सरा देखती है और राजा का निश्छल प्रेम व उनकी विरह-पीड़ा कहकर मिलन-आशा दिलाने के लिये चली जाती है। इसी समय इन्द्र का सारथि मातलि विदूषक को पकड़कर पीटना शुरू कर देता है। बचाने के लिये राजा के दौड़ने और शर-सन्धान करने पर वह प्रगट हो जाता है और बताता है कि इन्द्र ने आपको अपने शत्रु-राक्षसों—को मरवाने के लिये आमंत्रित किया है तथा वीरोचित कार्य के लिये आपको उत्तेजित करने के लिये विदूषक को पकड़कर मैंने पीटा है। राजा रथ पर चढ़कर स्वर्ग जाते हैं।

अङ्क ७—राजा दैत्यों का संहार कर इन्द्र की आशा पूरी करते हैं। इन्द्र से उन्हें अभूतपूर्व सम्मान मिलता है। लौटते समय हेमकूट पर्वत पर वे इन्द्र सारथि मातलि के साथ उतरकर इन्द्र, विष्णु आदि देवताओं के पिता और ब्रह्मा के पौत्र कश्यप तथा उनकी धर्म-पत्नी अदिति के दर्शन करने जाते हैं। वहाँ मातलि कश्यप से मिलने की आज्ञा लेने जाता है और राजा एक बालक को शेर के बच्चे से खेलता हुआ देखकर उधर चले जाते हैं। वह जबरदस्त है, सिंह शावक को माँ का दूध नहीं पीने देता। राजा का वात्सल्य उमड़ता है, वे उसे गोद में ले लेते हैं। दोनों का चेहरा मिलता देखकर तपस्विनियाँ ठगी रह जाती हैं। यह आश्चर्य चरम सीमा पर पहुँच जाता है जब ये देखती हैं कि बालक का तावीज जमीन से उठा लेने पर भी राजा का कुछ नहीं हुआ, माता पिता के अतिरिक्त कोई उसे उठा ले तो वह साँप बनकर डस लेता था। यह समाचार शकुन्तला तक जाता है। वह देखने आती है। दोनों का मिलन होता है और राजा अपने लिये क्षमा माँगते हैं। योग बल से शाप की बात जान लेने वाले कश्यप शाप की बात से अवगत कराकर दुष्यन्त और शकुन्तला को शांत करते हैं। और यह मिलन-समाचार कण्व तक पहुँचाने के बाद पुत्र-सहित दम्पति को आशीर्वाद देकर विदा करते हैं।

●

अथ

अभिज्ञानशाकुन्तलम्[1]

प्रथमोऽङ्कः

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः [2]सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः [3]प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १ ॥

अभिज्ञान-शाकुन्तल

पहला अङ्क

हिन्दी-अनुवाद—जो (देह) विधाता की प्रथम कृति है, जो (देह) विधिपूर्वक हवन किये गये पदार्थ वहन करती है, जो (देह) हवन करनेवाली है, जो दो (देहें) समय का विधान करती हैं, जो (देह) श्रुति गोचर गुणवाली होती हुई विश्व को व्याप्त कर विद्यमान है, जिस (देह) को समस्त बीजों का मूल कारण कहते हैं और जिससे जीव जीवधारी हैं, उन प्रत्यक्ष आठ देहों से युक्त शिव आपकी रक्षा करें ।

अन्वय—या स्रष्टुः आद्या सृष्टिः, या विधिहुतम् हविः वहति, या होत्री, ये द्वे कालम् विधत्तः, या श्रुतिविषयगुणा (सती) विश्वम् व्याप्य स्थिता, याम् सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः, यया च प्राणिनः प्राणवन्तः, ताभिः प्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः ईशः वः अवतु ।

संस्कृत टीका—**या** (तनुः) । **स्रष्टुः** विधातुः । **आद्या** प्रथमा । **सृष्टिः** रचना । जलरूपा इयम् । **या** (तनुः) । **विधिना** विधिपूर्वकम् । **हुतम्** अग्निमुखेभ्यः देवेभ्यः समर्पितम् । **हविः** घृतादि देवार्पितम् भोज्यम् । **वहति** धारयति । अग्निरूपा इयम् । **या** (तनुः) । **होत्री** हवनकर्त्री । यजमानरूपा इयम् । **ये** (तनू) । **द्वे** द्विसङ्ख्ये (सत्यौ) । **कालम्** समयम् । **विधत्तः** रचयतः । इमे सूर्यरूपा चन्द्ररूपा च । **या** (तनुः) । **श्रुतिः** श्रोत्रम् **विषयः** गोचरः यस्य स श्रुतिविषयः (शब्दः इत्यर्थः) **गुणः** यस्याः सा श्रुतिविषयगुणा (सती) । **विश्वम्** जगत् **व्याप्य** व्याप्तं कृत्वा । **स्थिता** विद्यते । आकाशरूपा इयम् । **याम्** (तनुम्) । **सर्वाणि** समस्तानि च तानि **बीजानि** सस्यानि

पाठा०—१—शकुन्तलम् । २—भूत । ३—प्रसन्नः ।

(**व्रीह्यादीनि** इत्यर्थः) सर्वबीजानि । तेषां **प्रकृतिः** निदानं मूलकारणम् इति यावत् । **इति** एवम् । **आहुः** कथयन्ति । विद्वांसः इति शेषः । पृथ्वीरूपा इयम् । **यया** (तन्वा) । च । **प्राणिनः** जीवाः । **प्राणवन्तः** जीवधारिणः । वायुरूपा इयम् । **ताभिः** उक्ताभिः । **प्रत्यक्षाभिः** इन्द्रियगोचराभिः । **अष्टाभिः** अष्टसङ्ख्याकाभिः । **तनुभिः** मूर्तिभिः । **प्रपन्नः** प्राप्तः युक्तः भक्तैः सेवितः वा । **ईशः** शङ्करः । **वः** युष्मान् । **अवतु** पातु ।

हिन्दी व्याख्या—ओम् की तरह अथ का प्रयोग आरम्भ में किया जाता है और यह मङ्गलार्थक है । ब्रह्मा के मुख से ये ही दो शब्द पहले निकले हैं :—

ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ ॥

नाटक का प्राचीन नाम अभिज्ञान-शकुन्तलम् है । अन्य अनेक नाम भी मिलते हैं, जिनकी व्युत्पत्ति नीचे दी जाती है :—

अभिज्ञान-शकुन्तलम्—अभिज्ञानेन (अभि + ज्ञा + ल्युट् करणे) स्मृता शकुन्तला यत्र (नाटके) तत् अभिज्ञान-शकुन्तलम् । शाकपार्थिवादि समास से "स्मृता" का लोप हो गया है । बहुव्रीहि समास प्रधान है । अर्थ होगा जिसमें शकुन्तला निशानी (अँगूठी) से याद की गयी है, वह (नाटक) ।

अथवा—अभिज्ञानं (भावे ल्युट्) (अभिज्ञानभूतम् इत्यर्थः) च तत् शाकुन्तलम् (शकुन्तलायाः इदं शाकुन्तलम् इति अण्) च । अर्थ होगा शकुन्तला-सम्बन्धी वह (नाटक), जो अभिज्ञान (परिचय) स्वरूप हो ।

अथवा—अभिज्ञानेन (करणे ल्युट्) स्मृतं शाकुन्तलम् यत्र (नाटके) । अर्थ होगा शकुन्तला-सम्बन्धी वृत्त या पाणिग्रहण जिस (नाटक में निशानी से याद आये । **अथवा**—अभिज्ञानं परिचय-स्वरूपम् शाकुन्तलम् शकुन्तलावृत्तं यत्र (नाटके) । अर्थ होगा, जिस (नाटक) में शकुन्तला का वर्णन (पाणिग्रहणादि) परिचयमय है । **अथवा**—अभिज्ञानप्रधानं (मध्यमपदलोपी समास) शाकुन्तलं यत्र (नाटके) । अर्थ होगा, जिस (नाटक) में शकुन्तला का विवाह आदि वृत्त अभिज्ञान-प्रधान हो ।

अथवा—अभिज्ञानं च शकुन्तला च अभिज्ञानशकुन्तले । ते आश्रित्य कृतं (दृश्य-) काव्यम् अभिज्ञान-शाकुन्तलम् । अर्थ होगा निशानी या परिचय तथा शकुन्तला के विषय में रचा दृश्यकाव्य । "आ" वृद्धि होने से आ गया है । अथवा अभिज्ञानेन स्मृता शकुन्तला अभिज्ञान-शकुन्तला । नाम् आश्रित्य कृतं (दृश्य-) काव्यम् अभिज्ञान-शाकुन्तलम् । "आ" वृद्धि होने से आ गया है ।

अथवा—अभिज्ञानं च तत् शाकुन्तलं च अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, अभिज्ञानेन स्मृतं शाकुन्तलम् अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अभिज्ञानं च शाकुन्तलं च अभिज्ञान-शाकुन्तले और अभिज्ञान प्रधानं च तद् शाकुन्तलं च अभिज्ञान-शाकुन्तलं करके तत् (अथवा ते) आश्रित्य कृतं (दृश्य-) काव्यम् अभिज्ञान-शाकुन्तलम् बनेगा ।

इनके अतिरिक्त समाहार द्वन्द्व से शकुन्तला को शकुन्तल करके अभिज्ञान शकुन्तल बनाया जा सकता है।

अभिज्ञान+शकुन्त+ल (लानेवाला) अभिज्ञान+श (धारक या पहुँचानेवाला)+कुन्तल (बाल) आदि व्युत्पत्तियाँ भी दी जा सकती हैं, पर वे अभीष्ट प्रतीत न होने के कारण त्याज्य हैं।

संस्कृत में पारिभाषिक शब्द व्यवहार-वश उस लिंग में रखे जाते हैं जिसके लिये या भेद रूप में वे आते हैं (जैसे समास-नाम पुल्लिङ्ग होते हैं)। इस आधार पर नाटक का विशेषण होने से "शकुन्तला" पद शकुन्तलम् में बदला जा सकता है।

व्युत्पत्ति में दो शब्द हैं जिनमें से अभिज्ञान (अभि+ज्ञा+ल्युट्) को करण अर्थ में लेने पर "अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम्" व्युत्पत्ति से अर्थ निकलेगा जिस साधन से पहचान की जाय अर्थात् निशानी। इसे भाव अर्थ में लेने पर "विशेष ज्ञान" अर्थ निकलेगा। इसका तीसरा अर्थ "अभि+अङ्क् (भावे)+अन (अदादि)+णिच्+अण् (कर्त्तरि)" व्युत्पत्ति से अभिज्ञान (पहचान) को प्रेरणा देने वाला भी निकल सकता है। "सेयं शकुन्तला" (अङ्क ७) पद इस व्युत्पत्ति की सार्थकता बताता है।

दूसरा पद "शकुन्तैः पक्षिभिः लाल्यते पाल्यते इति शकुन्तला" व्युत्पत्ति से पक्षियों द्वारा पाले जानेवाली अर्थ देता है। महाभारत में "शकुन्तला" नाम पड़ने का यह कारण दिया गया है कि माँ-बाप से त्यागी गई नव-जात कन्या का पालन-पोषण पक्षियों ने किया।

नाटक को अङ्क में, काव्य को सर्ग में, उपन्यास को मयूख, उच्छ्वास, परिच्छेद, उल्लास आदि में और सामान्यतः ग्रन्थ को अध्याय में विभक्त किया जाता है।

"भूतार्कचन्द्रयज्वानो मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः" के अनुसार शिव की ८ मूर्तियाँ बताई गई हैं जिनमें यजमान, सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त ५ महाभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) हैं। अग्नि के लिए तेज शब्द भी आता है। यादव के अनुसार सोम यज्ञ करने वाला ही शिव-मूर्ति है। विष्णु व कूर्म पुराण ने दीक्षित ब्राह्मण को शिव-मूर्ति माना है।

भविष्य-पुराण में जल-मूर्ति, यजमान मूर्ति, सूर्य-मूर्ति, चन्द्र-मूर्ति, आकाश-मूर्ति, पृथ्वी-मूर्ति, अग्नि मूर्ति और वायु-मूर्ति के लिये क्रमशः भव, पशु-पति, ईशान, महादेव, भीम, शर्व, रुद्र और उग्र नाम दिये गये हैं।

मनुस्मृति के "अप एव ससर्जादौ" (१।८) वचन के अनुसार जल की सृष्टि सबसे पहले हुई है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के क्रम से सृष्टि हुई है। मनुस्मृति १।७८ से इसका समर्थन होता है। "अग्निमुखा वै देवाः" स्मृति-वचन के अनुसार देवताओं का मुख अग्नि है जिसमें देवों को दिये जाने वाले पदार्थ (हवि) होमे जाते हैं।

विना शास्त्रोक्त विधि के हवन किया गया राख हो जाता है, देवों तक नहीं पहुँचता, अतः "विधिहुतम्" कहा गया है।

यजमान को शिव की मूर्ति कहने का अभिप्राय यह है कि शिव सर्व-व्यापक हैं और शास्त्राज्ञा के अनुसार हवि देने वाला यजमान तो उनका साक्षात् रूप है। यह वचन इस बात की पुष्टि करता है कि

कालिदास ऐसे समय में हुए जब कि बहुत समय के बौद्ध-प्रभाव के बाद वैदिक धर्म का उद्धार हो पाया था और यज्ञों की परम्परा का पुनरुज्जीवन हो सका था। बचे-खुचे बौद्ध धर्म के अनीश्वर-वाद को अभिभूत करने के लिए यहाँ शङ्कर को प्रत्यक्ष दिखाने का प्रयत्न किया गया है। तनु का विशेषण होने से "होत्री" शब्द स्त्रीलिंग में है। वायु-पुराण में यजमान की जगह आत्मा को मूर्ति कहा गया है।

सूर्य से सौर मास और चन्द्र से चान्द्र मास की गणना होती है जिससे सूर्य के साथ चन्द्र भी काल के विधान का कारण माना जाता है। यदि गणना से इनका कारणत्व न भी माना जाय तो इनके दिनकर और निशाकर होने की प्रसिद्धि से इन्हें कारण माना जा सकता है।

शब्द कान का विषय है, यह नैयायिक मानते हैं और कालिदास ने केवल यही न्याय-वचन अपनी कृतियों में दो स्थानों पर प्रयुक्त किया है।

"प्रकृतिः" "आहुः" का कर्म है और कर्तृ-वाच्य में कर्म के लिए द्वितीया विभक्ति आती है, पर "इति" (और अपि इन दो निपातों) का प्रयोग बाद में करते हुए उद्धरण के रूप में देने पर पद प्रथमा विभक्ति में होता है। हिन्दी में "इति" का लोप सर्वत्र करके विशेषण या विशेषण बताने वाली संज्ञा (केस इन अपोजीशन) में विभक्ति नहीं लगाई जाती।

वायु से संसार जीवित रहता है। उसे आयु (वायुरायुः) कहा गया है। प्राण (ऑक्सीजन) वायु के बिना जीवित रहना असंभव है; ऐसा विज्ञान भी कहता है।

मूल में प्राणी और प्राणवान् शब्द समानार्थक हैं जिनमें पहला जीव के लिए रूढ़ मानकर दूसरा विशेषण मान लेने पर पुनरुक्ति का अवकाश नहीं रहेगा।

प्रत्यक्ष का अर्थ केवल नेत्र-गोचर न होकर इन्द्रिय-गोचर है, क्योंकि वायु का स्पर्श त्वचा इन्द्रिय का गोचर है। आकाश यद्यपि शून्य है, किन्तु आधार के ऊपर या दो वस्तुओं के बीच या भीतर का स्थान दिखाई पड़ता है या सामान्य जन आकाश नीला समझता है, अतः उसे भी प्रत्यक्ष कहा जा सकता है। न्याय आकाश और वायु को प्रत्यक्ष नहीं मानता; वेदान्त मानता है।

कालिदास के इष्ट देव शिव हैं जिनकी स्तुति उन्होंने रघुवंश के मङ्गलाचरण और कुमारसंभव में भी की है। यों वे शैव हैं और सभी देवों विशेषतः ब्रह्मा और विष्णु को भी मानते हैं।

मातृ-गुप्त और धनञ्जय (दशरूपक ३।४) के अनुसार नान्दी श्लोक काव्यार्थ-सूचक होना चाहिये। तदनुसार विधाता ब्रह्मा या दूसरे विधाता विश्वामित्र की आद्य (श्रेष्ठ) सृष्टि शकुन्तला है। अग्नि में हवन का वर्णन विवाह के समय का हवन है। होत्री वियोगावस्था में शकुन्तला के देवाराधक या कण्व को सूचना देता है। काल-सूचक दो व्यक्ति अनसूया और प्रियंवदा हैं, जिन्हें दुर्वासा के शाप देने और उससे बचने का उपाय विदित था। वाटिका सींचकर काल (वर्षा) की सृष्टि करने वाली या विरहिणी शकुन्तला को धैर्य बँधाकर काल-क्षेप की शक्ति देने वाली होने के कारण भी इनके लिये काल का विधान करने वाली कहा जा सकता है। विश्व-व्यापक व्यक्ति शकुन्तला के लिए है। जिसकी प्रसिद्धि जगद्व्यापी थी। सर्व-बीज-प्रकृति पद से संसार-रक्षक भरत की जन्म-दात्री शकुन्तला

[1](नान्द्यन्ते) **सूत्रधारः**—[2](नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) **आर्ये यदि नेपथ्यविधानमवसितं [3]तर्हीतस्तावदागम्यताम् ।**

की सूचना दी गई है। प्राणियों को प्राणवान् बनाने वाले व्यक्ति से शकुन्तला और भरत के साथ लौटकर प्रजा को पुनर्जीवन देने वाले दुष्यन्त की सूचना है। अष्टमूर्ति दुष्यन्त की सूचना देता है जिनके शरीर की रचना में पंच महाभूत हैं, राजा के सभी देवों का अंश होने से वे सूर्य और चन्द्र हैं तथा यज्ञ में यजमान भी हैं।

शब्दार्थ—ईशः प्रभौ महादेवे (मेदिनी)। सान्नाय्यं हविरग्नौ तु हुतम् (अमर)। कालश्च समये वने (विश्व) श्रुतिः श्रवणवेदयोः (धरणि)। स्रष्टुः=विधाता का। आद्या=प्रथम। होत्री=हवन करने वाली अर्थात् यजमान। विभृतः=बनाते हैं। श्रुतिविषयगुणा=जिसका गुण श्रवण इन्द्रिय का गोचर (शब्द) है। प्रकृति=मूल कारण। प्राणिनः=जीव। प्राणवन्तः=प्राण-धारी अर्थात् जीवित। प्रपन्नः=प्राप्त, युक्त या भक्तों द्वारा सेवित। तनुभिः=शरीरों से। अवतु=रक्षा करे। वः=तुम लोगों को। ईशः=शङ्कर।

व्युत्पत्ति—सृष्टि=सृज्+क्तिन्। स्रष्टा=सृज्+तृच्। आद्या=आदि+यत्। विधि=वि+धा+कि। हुत=हु+क्त। हविः=हु+इस्। होत्री=हु+तृच्+ङीप्। श्रुति=श्रु+क्तिन्। विषय=वि+सि+अच्। स्थिता=स्था+क्त। व्याप्य=वि+आप्+ल्यप्। प्रत्यक्ष=प्रति+अक्षि+अच्। प्रकृति=प्रकृ+क्तिन्। प्राणवन्तः=प्राण+मतुप्। प्रपन्न—प्र+पद्+क्त। ईश=ईश्+क।

समास—विधिना हुतम् विधिहुतम् (तृतीया तत्पुरुष)। श्रुतिः विषयः यस्य सः (बहुव्रीहि)। श्रुतिविषयः गुणः यस्य सः (बहुव्रीहि)। सर्वाणि च तानि बीजानि च सर्वबीजानि (कर्मधारय)। सर्वबीजानां प्रकृतिः सर्वबीजप्रकृतिः (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्=मगण, रगण, भगण, नगण और ३ यगणों और सात-सात अक्षरों पर ३ यतियों के प्रत्येक चरण में होने पर स्रग्धरा नामक छन्द होता है (म=SSS, र=S I S, भ=SII, न=III और य=I SS)।

अलङ्कार—यहाँ "प्राणिनः" और "प्राणवन्तः" पर्याय होते हुये भी भिन्नार्थक हैं अतः "पुनरुक्त-वदाभास" अलङ्कार है:—

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्यावभासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः॥ (साहित्यदर्पण)

दोष—"श्रुतिविषयगुण" पद में अर्थ की प्राप्ति कठिनता से होने के कारण क्लिष्टत्व दोष माना जाता है। श्रुति का प्रचलित अर्थ सुनना या वेद होने और साङ्ख्य के अनुसार वायु का गुण भी श्रुति-विषय होने से भी अर्थप्राप्ति में न्यूनाधिक बाधा होती है।

हिन्दी-अनुवाद— नान्दी के बाद) **सूत्रधार**—(साज-सज्जा कक्ष की ओर देखकर) देवी, यदि साज-सज्जा का प्रबन्ध समाप्त हो गया हो, तो जरा यहाँ आ जाइये।

पाठ०—१=प्रविशति सूत्रधारः। २=अलमतिविस्तरेण। ३=० या तदितः।

संस्कृत-टीका—**नान्द्याः** (उक्तस्य श्लोकात्मकस्य) मङ्गलपाठस्य। **अन्ते** समाप्तौ सत्याम्। **सूत्रधारः** प्रधाननटः (कथयति) **नेपथ्यस्य** सज्जागृहस्य। **अभिमुखम्** पुरतः। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। **आर्ये** हे देवि। **यदि**। **नेपथ्यस्य** सज्जायाः। **विधानम्** तन्त्रम् कार्यम् इति यावत्। **अवसितम्** समाप्तम् (भवेत्)। **तर्हि** तदा। **इतः** इह। **तावत्** प्रथमम्, शीघ्रम् इति यावत्। **आगम्यताम्** उपगम्यताम्। त्वया इति शेषः।

हिन्दी-व्याख्या—नाटक में सूत्रधार, राजा आदि श्रेष्ठ पात्र संस्कृत बोलते हैं:—

पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम्। (दशरूपक २।६४)

आशीर्वाद से युक्त देव, ब्राह्मण और नृपों की स्तुति नान्दी कहलाती है:—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥ (साहित्य-दर्पण)

यद्यपि रङ्गमञ्च पर पहले सूत्रधार का प्रवेश होता है; उसके बाद नान्दी पढ़ी जाती है, किन्तु नान्दी को आदि में रखना अभीष्ट होने से उससे ही ग्रन्थ का आरम्भ किया जाता है।

नान्दी (४,) ८ या १२ (या) १६ पदों की होती है और पद का अर्थ वाक्य भी किया जाता है:—

पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत। (साहित्य-दर्पण)
(तां षोडशपदामेके केचिदाहुश्चतुष्पदाम्।)
श्लोकपादः पदं केचित् सुप्तिङन्तमथापरे।
परेऽवान्तरवाक्यैकस्वरूपं पदमूचिरे॥ (नाट्य-प्रदीप)

ऊपर दी गई नान्दी में कुल ८ वाक्य या उपवाक्य होने से वह अष्टपदा है।

नाटक में आनेवाली वस्तु का आभास नान्दी से मिलने के कारण उसे पत्रावली-नामक नान्दी कह सकते हैं:—

यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा॥ (नाट्य-दर्पण)

नाटक की सामग्री सूत्र कहलाती है; उसे धारण करने या संभालने वाला सूत्रधार कहलाता है:—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः॥

ब्राह्मण, मंत्री, बड़े, नटी और सूत्रधार परस्पर "आर्य" या "आर्या" संबोधन का प्रयोग करते हैं।

विप्रामात्याग्रजा आर्या नटीसूत्रकृतौ मिथः। (भरतानुशासन)

सूत्रधार मध्यम स्वर से नान्दी पढ़ता है:—सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः।

शब्दार्थ—आकल्पवेशौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम् (अमरकोष), रङ्गाद् बहिस्तु नेपथ्यम्

(प्रविश्य) नटी अ[1]ज्जउत्त, इयं ह्मि । आणवे[2]दु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति ।
[आर्यपुत्र इयमस्मि । आज्ञापयतु आर्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति ।]

(भरत)। नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिः प्रसाधनम् (अजय)। रामादिव्यञ्जको वेषो नटे नेपथ्य-मुच्यते (भरत)। कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते ।

नान्दी = मङ्गल पाठ । सूत्र-धार = प्रधान नट । नेपथ्य = (१) सज्जा अर्थात् राम आदि का वेश जो नट ग्रहण करता है, (२) सज्जा-कक्ष जो रङ्ग मञ्च के पीछे होता है (३) परदा, (४) रङ्ग-मञ्च और (५) वह जगह जहाँ नट का कुटुम्ब हो यहाँ सज्जा-कक्ष या परदा अर्थ ठीक बैठेगा। आर्य = हे देवि । नेपथ्य = (इस दूसरे "नेपथ्य" का अर्थ) वेश (है)। विधान = प्रबन्ध । संस्कृत में प्रबन्ध (इन्तजाम) के लिये तन्त्र और विधान शब्द आते हैं, प्रबन्ध नहीं। अवसितम् = समाप्त हो गया हो। इतः = यहां । तावत् = जरा, पहले या शीघ्र ।

व्युत्पत्ति—नान्दी = नन्द् + घञ् + अण् । सूत्रधारः = सूत्र + धृ + अण् । (नेत्र या नायक का) + पथ्य । अवसितम् = अव + सो + क्त ।

समास—नान्द्याः अन्ते नान्द्यन्ते (षष्ठी तत्पुरुष)। नेपथ्यस्य अभिमुखम् नेपथ्याभिमुखम् (षष्ठी तत्पुरुष) नेपथ्यस्य विधानम् नेपथ्यविधानम् (षष्ठी तत्पुरुष)।]

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) नटी—आर्य-पुत्र, मैं आ गई। श्रीमान् आज्ञा दें कि क्या करूँ।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य रङ्गस्थले आविर्भूय । नटी सूत्रधारपत्नी (कथयति यत्)। आर्यस्य सुजनवर्यस्य पुत्रः सुतः तत्सम्बुद्धौ आर्यपुत्र हे स्वामिन् । इयम् तव पुरस्तात् (अहम्)। अस्मि विद्ये। आज्ञापयतु आदिशतु । आर्यः श्रीमान् । कः कतमः । नियोगः कर्त्तव्यम् । अनुष्ठीयताम् क्रियताम् । इति ।

हिन्दी-व्याख्या—नाटक में संन्यासिनी, महारानी और कभी-कभी मन्त्रीपुत्री और वेश्या संस्कृत में बोलती हैं और शेष स्त्रियाँ प्रायः प्राकृत में:—

पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम् ।
लिङ्गिनीनां महादेव्या मन्त्रिजावेश्ययोः क्वचित् ॥
स्त्रीणां तु प्राकृतं प्रायः··· ··············। (दशरूपक २।६४–६५)

नाटक में प्रवेश करने का अर्थ है रङ्ग-मञ्च पर प्रकट होना। साधारणतः प्रवेश का अर्थ होता है चलकर अन्दर आना, पर नाटक में लेटे या बैठे हुए भी प्रवेश करना दिखाया जाता है।

यह नटी सूत्रधार की पत्नी है जिसे सूत्रधार ने इसके पूर्व बुलाया था।

"आर्य-पुत्र" पति के लिये संस्कृत में अत्यन्त प्रचलित संबोधन है। आर्य का अर्थ सज्जन है न कि कोई प्राचीन जाति। इतिहास में मैक्समूलर का अनुसरण करते हुये इतिहासकारों ने यह शब्द "प्राचीन भारतीय" अर्थ में रूढ़ बना लिया है पर संस्कृत में इसका अर्थ अपरिवर्तित है—

---

१ = अज्ज [आर्य]। २ = ०।

सूत्रधारः—आर्ये[1] अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। [2]अद्य खलु[3] कालिदासग्रथित-वस्तुना[4]भिज्ञान[5]शाकुन्तलनामधेयेन [6]नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः तत्। प्रति-पात्रमाधीयतां यत्नः।

सर्वस्त्रीभिः पविर्वाच्य आर्यपुत्रेति यौवने (नाटक-लक्षण-रत्न कोष २२५४–२२५५)
आर्य की परिभाषा निम्न लिखित दी गई है :—

कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः॥

"इयम् अस्मि" का अक्षरशः अनुवाद "यह हूँ" है पर हिन्दी में इस प्रकार बोलने की परिपाटी न होने से "आ गई" इसका ठीक अनुवाद होगा।

शब्दार्थ—प्रविश्य=रङ्गमञ्च पर दिखकर। नटी—व्यवस्थापिका। आर्य-पुत्र महोदय। आर्य= श्रीमान्। नियोगः=कृत्य (ड्यूटी)। अनुष्ठीयताम्=की जाये।

व्युत्पत्ति—आर्यः=ऋ+ण्यत्। नियोगः=नि+युज्+घञ्।

समास—आर्यस्य पुत्रः आर्यपुत्रः (षष्ठी तत्पुरुष)।]

हिन्दी-अनुवाद—सूत्रधार—हे देवी, इस सभा में विद्वानों की अधिकता है। आज हमें एक नये नाटक (को प्रस्तुत करने) के लिये उपस्थित होना है जिसकी विषय-वस्तु कालिदास द्वारा गुम्फित है और जिसका नाम अभिज्ञानशाकुन्तल है, इसलिये आप प्रत्येक पात्र के विषय में यत्न-शील रहें।

संस्कृत टीका—**सूत्रधारः** प्रधाननटः (कथयति यत्)। **आर्ये** हे देवि। **अभिरूपैः** प्राज्ञैः **भूयिष्ठा** बहुला अभिरूपभूयिष्ठा। **परिषत्** सभा **इयम्** सम्मुखस्था। **अद्य** अस्मिन् दिवसे। **खलु** निश्चयेन। **कालिदासेन** एतन्नामधेयेन कविना **ग्रथितम्** रचितम् कालिदासग्रथितं **वस्तु** कथा यस्य तेन कालिदासग्रथितवस्तुना। **अभिज्ञानशकुन्तलम् नामधेयं** नाम यस्य तेन। **नवेन** नूतनेन। **नाटकेन** रूपकेण। **उपस्थातव्यम्** उपस्थितैः भाव्यम्। **अस्माभिः** सर्वेण कुशीलवदलेन। **तत्** अतः। **पात्रं** कुशीलवः। **प्रतिपात्रं** पात्रे पात्रे। प्रतिकुशीलवमिति यावत्। **आधीयताम्** क्रियताम्। त्वया इति शेषः। **यत्नः** प्रयत्नः सावधानया भवितव्यं त्वया इति अर्थः।

हिन्दी-व्याख्या—यत्न करने में विशेष कारण विद्वानों की सभा बताया गया है। भरत ने (नाट्य शास्त्र २७) प्राश्निकों का वर्णन किया है जो प्राचीन काल में नाटक को देखकर अपना प्रतिवेदन राजा को देते थे। उसके आधार पर पुरस्कारादि राज-सम्मान दिया जाता था और इस प्रकार कला की उन्नति होती थी। सम्भव है, इन प्राश्निकों की ओर संकेत किया गया हो। दूसरा कारण कालिदास जैसे कवि की रचना है जिसके प्रति विशेष सम्मान होने के कारण अभिनय अच्छा

पाठा०—१=+इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्य। २=अस्यां। ३=च। ४=+ नवेन ५=शकुन्तल, शकुन्तलाख्येन। ६=०।

नटी—सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं वि परिहाइस्सदि[1] [सुविहितप्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते]।

से अच्छा होना चाहिये। तीसरा कारण नाटक की नवीनता है, नई चीज को जमाना या प्रतिष्ठित करना कठिन होता है।

विलियम ने अंग्रेजी अनुवाद में "प्रतिपात्रम्" का अर्थ "हर एक पात्र के द्वारा (यत्न किया जाय)" लगाया है जो संस्कृत की प्रकृति के अनुरूप नहीं है।

नटी के कार्य पूछने पर सूत्रधार ने न केवल कार्य बताया है, बल्कि उसके पूर्व विशेष परिस्थिति भी बता दी है जिससे वह कार्य विशेष सावधानी से किया जाय।

शब्दार्थ—प्राप्तरूपस्वरूपाभिरूपा बुधमनोज्ञयोः (अमरकोष)।

अभिरूपभूयिष्ठा = जिसमें अभिरूप (विद्वान्) बहुत (संख्या में) हों। परिषत् = सभा। वस्तु = विषय-सामग्री। नामधेय = नाम। उपस्थातव्यम = उपस्थित होना है। प्रतिपात्रम् = प्रत्येक पात्र के विषय में। आधीयताम् = किया जाय।

व्युत्पत्ति—भूयिष्ठ = बहु + इष्ठन्। परिषत् = परि + सद् + क्विप्। ग्रथित = ग्रन्थ + क्त। अभिज्ञान = अभि + ज्ञा + ल्युट्। नामधेय = नामन् + धेय (भाग, रूप और नामन् शब्द से धेय प्रत्यय लगाने पर अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता)। नाटक = नट् + ण्वुल्। उपस्थातव्यम् = उप + स्था + तव्यत्।

समास—अभिलक्ष्यं रूपं येषां ते अभिरूपाः (बहुव्रीहि) अभिरूपः भूयिष्ठः (भूयिष्ठ-भागः) यस्याः सा, अभिरूपाः भूयिष्ठाः यस्यां सा (बहुव्रीहि) तथा अभिरूपैः भूयिष्ठा अभिरूपभूयिष्ठा (तृतीया-तत्पुरुष), ये तीन विग्रह हो सकते हैं। पहले विग्रह में भूयिष्ठ को 'भूयिष्ठ भाग' के अर्थ में संज्ञा माना गया है, जिसके लिए प्रमाण है कि विशेषण से विशेष अर्थ लेने का प्रचलन है। हिन्दी में "भलों का साथ करना चाहिये" वाक्य में "भलों" विशेषण होने पर भी "भले आदमियों" संज्ञा का अर्थ देता है। संस्कृत में भी ऐसे प्रयोग बहुतायत से होते हैं। इसके लिये वामन की निम्नलिखित उक्ति प्रमाण के रूप में रखी जा सकती है :—

विशेषमात्रप्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तौ। (काव्यालङ्कार सूत्र ५।१।१०)

दूसरे विग्रह में "वाहिताग्न्यादिषु" (अष्टाध्यायी २।२।३७) सूत्र के अनुसार विशेषण विशेष्य के पहले न आकर बाद में आया है।

कालिदासेन ग्रथितम् कालिदासग्रथितम् (तृतीया-तत्पुरुष)। कालिदासग्रथितं वस्तु यत्र तेन कालिदासग्रथितवस्तुना (बहुव्रीहि)। अभिज्ञानशाकुन्तलं नामधेयं यस्य तेन अभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन (बहुव्रीहि)। पात्रे पात्रे प्रतिपात्रम् (अव्ययीभाव)।

हिन्दी-अनुवाद—नटी—श्रीमान् के अभिनय का विधान सुचारु होने के कारण कोई कमी न रहेगी।

पाठा०—१=परिहावयिस्सदि [परिहापयिष्यते]।

सूत्रधारः—[1]आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् ।

संस्कृत-टीका—नटी सूत्रधारपत्नी (कथयति यत्)। **सुष्ठु** समीचीनरूपेण **विहितः** कृतः **सुविहितः** । सुविहितः **प्रयोगः** अभिनयविधानम् येन तस्य भावः **सुविहितप्रयोगता** तया **सुविहितप्रयोगतया** "यतः श्रीमतः अभिनयविधानम् शोभनम् अतः" इत्यर्थः । **आर्यस्य** श्रीमतः भवतः । **न** । **किमपि** किञ्चित् । (**परिहास्यते** परिहीणं भविष्यति) न कोऽपि दोषः तत्र आपद्येत इति अर्थः ।

हिन्दी-व्याख्या—बड़ों के प्रति विशेष सम्मान दिखाने के लिये उनकी आज्ञा का पालन करने के पूर्व उनके सहयोग चाहने पर यह कहने की परिपाटी है कि आप स्वयं अमुक कार्य करने में क्षम हैं । तदनुसार नटी सहयोग देने के पूर्व प्रशंसा कर सूत्रधार का उत्साह बढ़ाती है और साथ ही साथ अपनी नम्रता दिखाती है कि मेरा कर्तृत्व कुछ नहीं है; आपकी योग्यता से ही कार्य पूर्ण हो गया है ।

नाटककार के नाम से प्रारम्भ होकर यहाँ तक प्रस्तुत विषय की प्रशंसा है । यह नाटक के आरम्भ में भारतीय वृत्ति के अंग प्ररोचना के अन्तर्गत आती है जिससे श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट किया जाता है ।

उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना । [दशरूपक ३।६]

शब्दार्थ—सुविहितप्रयोगतया = सुव्यवस्थित रूप से किये गये प्रयोग (अभिनय) वाला होने के कारण अर्थात् जिसने अभिनय का प्रबन्ध भली-भाँति कर लिया है । परिहास्यते = घटिया होगा । (आर्यस्य का संबंध "सुविहित प्रयोगतया" और "किमपि" दोनों से लगाया जा सकता है ।)

व्युत्पत्ति—सुविहित = सु + वि + धा + क्त ।

समास—सुष्ठु विहितः प्रयोगः येन सुविहितप्रयोगः (बहुव्रीहि) तत्ता तया सुविहितप्रयोगतया ।

हिन्दी-अनुवाद—सूत्रधार—हे देवी, आपसे वास्तविक बात कहता हूँ ।

संस्कृत-टीका—**सूत्रधारः** प्रधाननटः (कथयति यत्)। **आर्ये** हे देवि **कथयामि** वदामि । ते भवत्यै भूतः यथार्थः च सः अर्थः तत्त्वम् च ।

हिन्दी व्याख्या—अवसर की गुरुता की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाने के लिए सूत्रधार इस वाक्य में यह आशय व्यक्त कर रहा है कि वास्तविकता कुछ और है; कुशल व्यक्ति को भी ऐसे अवसरों पर कुछ कमी का अनुभव होता है ।

शब्दार्थ—भूतं सत्योपमानयोः (हैम) । भूतार्थ = यथार्थ अर्थ (बात) ।

व्युत्पत्ति—ते = चतुर्थी विभक्ति "कर्मणा यमभिप्रैति···" या "चतुर्थी कर्मणि" से हुई है । भूत = भू + क्त ।

समास—भूतः च सः अर्थः च (कर्मधारय) भूतार्थः ।

पाठा०—१ = + [सस्मितम्] ।

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥

हिन्दी-अनुवाद—विद्वानों को जब तक संतोष न हो जाय, तब तक मैं अभिनय के ज्ञान को ठीक नहीं मानता। अत्यधिक सीखे हुओं का भी चित्त आत्मविश्वास-रहित होता है।

अन्वय—विदुषाम् परितोषात् आ प्रयोगविज्ञानं साधु न मन्ये। बलवत् अपि शिक्षितानाम् चेतः आत्मनि अप्रत्ययम् (भवति)।

संस्कृत-टीका—विदुषाम् बुधानाम्। **परितोषात्** सन्तुष्टेः। **आ** तत्पर्यन्तम्। यावत् सन्तुष्टिः न भवति तावत्पर्यन्तम् इति आशयः। **प्रयोगस्य** अभिनयस्य **विज्ञानम्** विशिष्टो बोधः अभिनय-विज्ञानम्। **साधु** समीचीनं पर्याप्तम् इति यावत्। **न**। **मन्ये** स्वीकरोमि। **बलवत्** अतितराम् **अपि**। **शिक्षितानाम्** अस्मादृक्षाणाम् निपुणानाम्। **चेतः** चित्तम्। **आत्मनि** स्वस्य विषये। **अविद्यमानः प्रत्ययः** विश्वासः यस्मिन् तत् अप्रत्ययम् (भवति)।

हिन्दी-व्याख्या—अभिनय करने वालों को, विशेषतः सूत्रधार को बहुत कड़ी परीक्षा में से गुजरना होता है जब वह विद्वानों के सामने नवीन और प्रसिद्ध नाटककार द्वारा लिखित नाटक अभिनीत करता है। परीक्षार्थी कितना भी तैयार हो, उसका हृदय धड़कता ही है। यहाँ विद्वानों के संतोष को अभिनय की कसौटी माना गया है। यों अपना काम तो सभी को अच्छा लगता है और हर व्यक्ति अपने को योग्य समझता है। यह भी ध्वनि निकलती है कि निपुण व्यक्ति जब तक फल की प्राप्ति नहीं करते तब तक अपनी दक्षता को पूर्ण नहीं मानते; प्रयत्न करते रहते हैं।

"बलवत्" को क्रियाविशेषण के रूप में ऊपर अन्वित किया गया है। उसे "चेतः" का विशेषण बनाकर भी अर्थ निकाला जा सकता है। अर्थ "निपुण पुरुषों को सुदृढ चित्त भी" निकलेगा।

शब्दार्थ—आ = तक। साधु = समीचीन। प्रयोग = अभिनय। विज्ञान = विशिष्ट ज्ञान। बलवत् = अत्यन्त या बलवान्। शिक्षित = कुशल। आत्मनि = अपने बारे में। अप्रत्ययम् = विश्वास-रहित।

व्युत्पत्ति—विद्वान्—विद्+शतृ (वस्)। विज्ञानम् = वि+ज्ञा+ल्युट्। बलवत् (अव्यय होनेपर क्रिया विशेषण और विशेषण होनेपर) = बल+मतुप्। शिक्षित = शिक्ष्+क्त (नपुंसके भावे क्तः)+अच् = (शिक्षण युक्त)।

समास—प्रयोगस्य विज्ञानम् प्रयोगविज्ञानम् (षष्ठी तत्पुरुष)। अविद्यमानः प्रत्ययः यस्मिन् तत् अप्रत्ययम् (बहुव्रीहि)।

छन्द—छन्द आर्या है, जिसका लक्षण निम्नलिखित है—

लक्ष्मैतत्सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः।
षष्ठोऽयं नलघू वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः॥
षष्ठे द्वितीयलात्परके न्ले मुखलाच्च सयतिपदनियमः।
चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः॥ (वृत्तरत्नाकर २।१·२)

पूर्वार्ध में चार मात्राओं के सात गण तथा एक गुरु होता है, विषम (१, ३ आदि) गणों में जगण नहीं होता व छठा गण जगण या चार लघुओं का होता है; शेष गण स्वेच्छया रखे जा सकते

नटी—[1]एवं ण्णेदं[2]। अणन्तरकरणिज्जं दाव[3] अज्जो आणावेदु। [एवं न्विदम्। अनन्तरकरणीयं तावदार्य आज्ञापयतु।]

सूत्रधारः—किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसाधनतः।

हैं। यदि षष्ठ गण चार लघुओं का हो तो पहले लघु के बाद यति होती है और यदि सातवाँ गण चार लघुओं का हो तो छठे गण के बाद यति होती है, यदि उत्तरार्ध के पाँचवें गण में चार लघु हो तो चौथे गण के बाद यति होती है और (उत्तरार्ध में) छठे गण में केवल एक लघु होता है (चार मात्रायें नहीं होतीं)।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास है जिसका लक्षण निम्नलिखित है.—

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः॥

किसी बात को प्रस्तुत कर उसके साधन में समर्थ दूसरी बात रखना अर्थान्तरन्यास है। श्लोक के पूर्वार्ध में कही गई बात के समर्थन में उत्तरार्द्ध आया है।

हिन्दी-अनुवाद—ऐसी बात है? श्रीमान् पहले आदेश दें कि अब क्या करना है।

संस्कृत टीका—**एवम्** इत्थम्। **नु** किम् (वितर्के)। **इदम्** पूर्वोक्तम्। **अनन्तरम्** एतत्पश्चात्। **करणीयं** (यत्) कर्त्तव्यम् (तत्)। **तावत्** सर्वप्रथमम्। **आर्यः** श्रीमान्। **आज्ञापयतु** आदिशतु।

हिन्दी-व्याख्या—"नु" से व्यक्त किया गया वितर्क समर्थन ध्वनित करता है और बातचीत को तत्काल समाप्त कर कार्य के निर्वाह में शीघ्रता लाता है।

शब्दार्थ—नु = क्या। अनन्तर = तत्काल बाद। तावत् = पहले।

व्युत्पत्ति—करणीय = कृ + अनीयर्।

समास—अविद्यमानम् अन्तरं यस्मिन् (बहुव्रीहि) तत् यथा स्यात् तथा (सुप्सुपा)। अनन्तर का प्रयोग विशेषण की तरह हुआ है।

हिन्दी-अनुवाद—इस परिषद् के कानों को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और क्या (करना है)?

संस्कृत-टीका—**किम्**। **अन्यत्** भिन्नम्। **अस्याः** प्रस्तुतायाः। **परिषदः** सामाजिकगणस्य। **श्रुत्योः** कर्णयोः। **प्रसादनतः** प्रीतेः।

हिन्दी-व्याख्या—नटी ने इसके पूर्व सर्वप्रथम करणीय पूछा था जो नट ने इस वाक्य में बताया है कि सर्व-प्रथम श्रोताओं के कानों को प्रसन्न करना है।

शब्दार्थ—श्रुति = कान। प्रसाधन = प्रसन्न करना।

व्युत्पत्ति—परिषत् = परि + सद् + क्विप्। प्रसादनतः = प्रसादन + तस्।

समास—श्रुत्योः प्रसादनतः श्रुतिप्रसादनतः (षष्ठी तत्पुरुष)।

पाठा०—१ एव्वं। २. इदम्। ३ = ०

नटी—अध कदमं उण उदुं अधिकरिअ गायिस्सम्। [अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि।]

सूत्रधारः—नन्विममेव[1] तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम्। संप्रति हि—

हिन्दी-अनुवाद—तो किस ऋतु के विषय में गाऊँ ?

संस्कृत-टीका—अथ अधुना। कतमम् कम्। ऋतुम्। अधिकृत्य विषयीकृत्य। गास्यामि गानं श्रावयामि।

हिन्दी-व्याख्या—नाटक में कथोपकथन की शृंखला कायम रखने और वक्ता को वक्तव्य बोझिल न होने देने के लिये छोटे-छोटे वाक्यों में बात समाप्त कर दी गई है। सूत्रधार के इच्छानुसार ही सब कार्य हों, इसलिये नटी गान-विषय तक अपने मन का नहीं चुन रही है। रेफ में "ऋ" की मात्रा विशेष रूप से लगती है; यह प्रसङ्ग कम आता है, अतः ध्यान देने योग्य है।

शब्दार्थ—कतमम् = कौन-सा। अधिकृत्य = विषय बनाकर। गास्यामि = गाऊँगी।

व्युत्पत्ति—कतमम् = किम् + डतमच्। अधिकृत्य = अधि + कृ + ल्यप्।

हिन्दी-अनुवाद—अरे बस इसी ग्रीष्मकाल के विषय में गाओ जो अभी-अभी आया है तथा जो उपभोग के योग्य है। इस समय तो।

संस्कृत-टीका—ननु स्पष्टम् एव। इमम् अमुम्। एव। तावत्। अचिरम् अधुना एव। प्रवृत्तम् आगतम्। उपभोगस्य अनुभवगोचरतायाः। क्षमम् योग्यम्। ग्रीष्मस्य तपस्यस्य। समयम् कालम्। अधिकृत्य विषयीकृत्य। गीयताम् गानं श्राव्यताम्। सम्प्रति अधुना। हि।

हिन्दी-व्याख्या—"ननु" मधुर उलाहना है। हिन्दी में "इतना भी बताना होगा" या "अरे" से इसका अनुवाद होगा।

"तावत्" "पहले" या "बस" के अर्थ में आता है। कभी-कभी इसका अर्थ हिन्दी में कुछ नहीं बैठता; केवल वाक्य की शोभा के लिये आता है।

हिन्दी में कर्म-वाच्य या भाव-वाच्य विरल है, पर संस्कृत में इसका प्रयोग बहुत होता है। अलग-अलग गणों के रूप न भी याद हों केवल भ्वादि आत्मनेपद के रूप याद हों तो भी भाव-वाच्य या कर्म-वाच्य के द्वारा काम बखूबी चलाया जा सकता है।

"हि" का अनुवाद हिन्दी में कुछ नहीं होगा। संस्कृत में इसे "निश्चय ही" या "क्योंकि" के अर्थ में भी प्रयुक्त करते हैं।

शब्दार्थ—ननु = अरे। तावत् = बस। अचिर = हाल में। प्रवृत्त = शुरू हुए। उपभोग = आनन्द लूटना। क्षमम् = उपयुक्त। गीयताम् = (तुम्हारे द्वारा) गाया जाय।

व्युत्पत्ति—प्रवृत्त = प्र + वृ + क्त। उपभोग = उप + भुज् + घञ्।

पाठा०—१. तदिममेव। तदमुमेव।

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥३॥

समास—अचिरं प्रवृत्तम् अचिरप्रवृत्तम् । उपभोगस्य क्षमः उपभोगक्षमः (षष्ठी तत्पुरुष) तम् उपभोगक्षमम् । ग्रीष्मस्य समयः ग्रीष्मसमयः (षष्ठी तत्पुरुष) तम् ग्रीष्मसमयम् ।

हिन्दी-अनुवाद--जल में स्नान करना अच्छा लगता है, जंगल की हवा पाटल (पुष्प) के संग से सुगंधित होती है और घनी छाया में आसानी से नींद आ जाती है, दिनों का अन्त (सायंकाल) सुहावना होता है ।

अन्वय—दिवसाः सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः प्रच्छायसुलभनिद्राः परिणामरमणीयाः (च) ।

संस्कृत-टीका—**दिवसाः** दिनानि । **सुभगः** प्रीतिकरः **सलिले** जले **अवगाहः** स्नानम् येषु तादृशाः । **पाटलस्य** पाटलपुष्पस्य **संसर्गेण** सम्बन्धेन **सुरभयः** सुगन्धपूर्णाः **वनस्य** विपिनस्य **वाताः** वायवः येषु तादृशाः । **प्रच्छाये** घनच्छायायुक्ते स्थाने **सुलभा** सुखप्राप्या **निद्रा** येषु तादृशाः । **परिणामे** अन्ते सायंकाले इति यावत् **रमणीयाः** कमनीयाः (भवन्ति) ।

हिन्दी-व्याख्या—"प्रच्छाय" पद विशेषण है, पर संज्ञा की तरह प्रयुक्त है । ऐसे स्थलों में व्यक्ति, स्थान या वस्तु जोड़कर अर्थ किया जाता है । वामन का वचन "विशेषणमात्रप्रयोगो विशेष्य-प्रतिपत्तौ" इसका ज्ञापक है ।

पाटल लाल रंग का एक विशेष पुष्प है जो हिन्दी में भी इसी नाम से प्रचलित है । कभी-कभी इसे गुलाब कहते हैं ।

ग्रीष्म में स्नान, सुरभित वायु, छाँह में आई नींद और सायंकाल की रमणीयता का विशेष महत्त्व है जिसे एक साथ रखकर एक ही श्लोक में पूरा वर्णन कर दिया गया है ।

श्लोक ऊपर आये "उपभोग-क्षम" विशेषण की सार्थकता प्रतिपादित करता है ।

शब्दार्थ—सुभगसलिलावगाहाः = जिनमें जल में स्नान प्रीतिकर लगता है । पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः = जिनमें जङ्गल की हवा पाटल (पुष्प) के संग से सुगन्धित होती है । प्रच्छायसुलभ-निद्राः = जिनमें घनी छाँह में नींद आसानी से आती है । परिणामरमणीयाः = जो अन्त में (सायंकाल) रमणीय होते हैं ।

व्युत्पत्ति--अवगाह = अव + गाह् + घञ् । संसर्ग = सम् + सृज् + घञ् । सुलभ = सु + लभ् + खल् । परिणाम = परि + नम् + घञ् ।

समास—सलिलस्य सलिले वा अवगाहः सलिलावगाहः (षष्ठी या सप्तमी तत्पुरुष) । सुभगः सलिलावगाहः येषु ते सुभगसलिलावगाहाः (बहुव्रीहि) । पाटलस्य संसर्गः पाटलसंसर्गः (षष्ठी-तत्पुरुष) तेन सुरभयः (तृतीया तत्पुरुष) वनवाताः येषु (बहुव्रीहि) वनस्य वाताः वनवाताः (षष्ठी तत्पुरुष) । प्रच्छाये सुलभा (सप्तमी तत्पुरुष) निद्रा येषु ते प्रच्छायसुलभनिद्राः (बहुव्रीहि) । परिणामे रमणीयाः (सप्तमी तत्पुरुष) ।

नटी—तहं। [तथा] (गायति)।

ईसीसिचुम्बिआइं भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं।
ओदंसयन्ति दअमाणा पमदाओ सिरिषकुसुमाइं॥ ४॥
[ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि॥ ४॥]

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य)]

हिन्दी-अनुवाद—नटी—ठीक है (गाती है)।

संस्कृत-टीका—तथा एवम् (गायति गानं श्रावयति)।

हिन्दी-व्याख्या—"तथा" शब्द संस्कृत में "और" के अर्थ में प्रयुक्त न होकर "ठीक", "अच्छा" "उसी प्रकार" या "हाँ" अर्थ में प्रयुक्त होता है।

शब्दार्थ—तथा = ठीक है।

व्युत्पत्ति—तथा = तत् + थाल्।

हिन्दी-अनुवाद—स्त्रियाँ दया करती हुई सिरस के फूलों को, जिन्हें भौंरों ने थोड़ा-थोड़ा चूमा है और जिनके तंतुओं के शिखर मुलायम हैं, कर्ण-भूषण बनाती हैं।

अन्वय—दयमानाः प्रमदाः भ्रमरैः ईषत् ईषत् चुम्बितानि सुकुमारकेसरशिखानि शिरीषकुसुमानि अवतंसयन्ति।

संस्कृत-टीका—प्रमदाः नार्यः। दयमानाः दयालवः सत्यः भ्रमरैः मधुपैः। ईषत् ईषत् अल्पम् अल्पम् यथा स्यात् तथा चुम्बितानि। सुकुमाराः मृदवः केसराणां किञ्जल्कानां शिखाः येषां तादृशानि। शिरीषकुसुमानि शिरीषाख्यपुष्पाणि। अवतंसयन्ति कर्ण-भूषणं कुर्वन्ति।

हिन्दी-व्याख्या—"भ्रमरों द्वारा जरा-जरा चुम्बन" दुष्यन्त से मिलन बताता है तथा "दयालु" पद, अप्सरा द्वारा रक्षण।

शिरीष अत्यंत कोमल पंखुड़ियों वाला और कर्ण-भूषण जैसा होता है। कालिदास ने "कुमार-संभवम्" में कहा है कि "पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः॥" (शिरीष पुष्प भौंरे के पैर सह सकता है, पक्षी के नहीं)।

यहाँ "दयमानाः" का अर्थ "सिरस के फूल पर दया करती हुई अतः सँभालकर कर्ण-भूषण बनाती हुई" है भौंरे ने थोड़ा-थोड़ा चूमा है; कहीं उसकी मनमानी से बिगड़ न जाय, यह सोचकर भी दया हो सकती है। यह शकुन्तला से दुष्यन्त का प्रेम और फिर निर्मोहिता का करुण संकेत माना जा सकता है।

ऊपर नट और नटी दोनों ने ग्रीष्म का वर्णन किया है, पर एक ने आनन्दपक्ष ग्रहण किया है तो दूसरे ने करुण-पक्ष। पुरुष और स्त्री का मनो-विज्ञान यहाँ सुन्दरता से चित्रित है। भवभूति की निम्न-लिखित उक्ति इस प्रसङ्ग में बरबस याद आती है:—

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति॥

सूत्रधारः—आर्ये साधु गीतम्। अहो रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमत्[1] [2]प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयामः।

शकुन्तला, दुष्यन्त और अप्सरा की पूर्व सूचना के लिये क्रमशः शिरीष, भ्रमर और प्रमदा शब्द आये हैं।

यहाँ चित्रित नारियाँ शहर की शृङ्गार-प्रिय ओछी स्त्रियाँ न होकर जङ्गल की सौन्दर्य-उपासक, करुणा-शील और श्रेष्ठ नारियाँ प्रतीत होती हैं।

शिरीष पुष्प इतना कोमल होता है कि भौंरे भी उसका बहुत ख्याल रखते हैं; यह "ईषत्" पद का दो बार प्रयोग कर बताया गया है।

वृक्ष के प्रति दया-भाव कालिदास की नारियों में कई स्थान पर व्यक्त किया गया है (कुमार-संभव २।४१, रघुवंश १६।९ तथा यही ४।१२)

शब्दार्थ—ईषत् ईषत् = हलके प्रकार से (प्रकारे गुणवचनस्य) सुकुमारकेसरशिखानि = जिनकी शिखायें (सिरे) अत्यन्त कोमल तन्तुओं वाली हैं या जिनके रेशों के सिरे बहुत मुलायम हैं। अवतंसयन्ति = कर्ण-भूषण की तरह काम में लाती हैं। दयमानः = दयालु या दया करती हुई। प्रमदा = नारी। शिरीष = शिरस नामक पेड़ का फूल जो बहुत कोमल होता है।

व्युत्पत्ति—चुम्बित = चुम्ब् + क्त। अवतंस + णिच् (तत् करोति तदाचष्टे)। दयमान = दय् + शानच्।

समास—सुकुमारा केसराणां शिखा (षष्ठी तत्पुरुष) (सुकुमाराणि केसराणि येषां ताः सुकुमारकेसराः तथा सुकुमार-केसराः शिखाः) येषां तानि सुकुमारकेसरशिखानि (बहुव्रीहि) सुकुमाराणि (कर्मधारय) सुकुमाराः वा केशराणि एवं शिखाः येषां तानि (बहुव्रीहि)।

छन्द—उद्गाथा या गीति है। मूल प्राकृत में होने के कारण छन्द का लक्षण उसी में घटता है। संस्कृत-छाया में छन्द न रहकर गद्य हो जाता है। परिभाषा निम्न-लिखित है :—

आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः।
दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः॥ (वृत्तरत्नाकर ८।२)

आर्या छन्द के पूर्वार्ध का लक्षण ही यदि उत्तरार्द्ध में घटित हो तो गीति छन्द होता है। आर्या के लिये १।२ देखा जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—देवी, बहुत अच्छा गाया है। अहो! हर ओर श्रोताओं की चित्त-वृत्ति राग से बँध गई है और वे चित्रित-से हो गये हैं। (अब बताओ कि) किस प्रकरण को लेकर इनका मनोरंजन करूँ।

संस्कृत-टीका—**आर्ये** देवि। **साधु** मधुरम् यथा तथा। **गीतम्** गानम्। श्रावितम्। **अहो**। **रागेण** गीतरागेण **बद्धा** आवर्जिता **चित्तस्य** मनसः **वृत्तिः** यस्य तादृशः। **आलिखितः** चित्रितः। **इव** यथा। **सर्वतः** सर्वासु दिक्षु। **रङ्गः** नाटयगृहम् (लक्षणया तत्रत्याः जनाः)।

पाठा०—१ कतमं। २ प्रयोगं।

नटी—णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्त अहिण्णाणसा¹उन्दलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए²अधिकरीअदुत्ति। [नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति।]

हिन्दी व्याख्या—सूत्रधार नटी को आर्या कहता है और यह उसे आर्यः—

आर्या नटीसूत्रभृतौ मिथः (दशरूपक २।६७)।

"ऊपर सूत्रधार कह चुका है कि अमुक नाटक खेलना है; यहाँ नटी से पूछता है कि किस प्रकरण से श्रोताओं का मनोरंजन करूँ। प्रकरण का अर्थ प्रसंग है जिससे यह आशय लग सकता है कि नाटक का आरम्भ किस प्रसंग से करूँ। नटी के गान से सुध-बुध खोकर सूत्रधार प्रसंग ही भूल गया (जैसा कि आगे श्लोक में तथा उसके पहले सूत्रधार ने स्वयं स्वीकार किया है), नाटक की जगह प्रकरण कह गया या नाटक-नाम भूल गया कहना भी उचित हो सकता है। प्रकरण दस प्रकार के रूपकों (रङ्ग-मञ्च पर दिखाये जाने वाले १० प्रकार के नाटकादि खेल) में दूसरा माना जाता है—

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगाविति॥ (दशरूपक १.८)

सूत्रधार ने समग्र रङ्ग-शाला को चित्रवत् स्थिर बताया है। मनोहारी गीत का ऐसा ही प्रभाव होता है जिससे चित्त-वृत्तियाँ परम एकाग्र होकर आनन्द प्राप्त करती हैं।

राग स्वर-वर्ण-विभूषित ध्वनि विशेष है :—

योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥ (संगीतरत्नाकर)

शब्दार्थ—साधु = (क्रियाविशेषण के रूप में होने से) अच्छा। गीतम् = (भाववाच्य की क्रिया होने से) तुमने गाया। रागबद्धचित्तवृत्तिः = जिसका मनोव्यापार राग (संगीत की राग या अनुराग) से बँध (आकृष्ट हो) गया है। आलिखित = चित्रित। सर्वतः = सब ओर से। कतमत् = कौन सा। प्रकरण = प्रसङ्ग।

व्युत्पत्ति—गीतम् = गै + क्त (भावे)। राग = रञ्ज् + घञ् (करणे), बद्ध = बन्ध् + क्त। वृत्ति = वृ + क्तिन्। आलिखित = आ + लिख् + क्त। कतमत् = किम् + डतमच्। प्रकरण = प्र + कृ + ल्युट्। आश्रित्य = आ + श्रि + ल्यप्। एनम् में अन्वादेश के कारण "एन" आदेश हुआ है। सामान्यतः एतम् होता है, पर जब किसी पूर्व संज्ञा या उसी शब्द के अनन्तर आता है तब बीच के "त्" को "न्" करके रूप बनता है; यहाँ "रङ्गः" शब्द के बाद में आने से "एतत्" शब्द का यह रूप अन्वादेश के नियम से बना है।

समास—रागेण बद्धा (तृतीया तत्पुरुष) चित्तस्य वृत्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) यस्य सः रागबद्धचित्तवृत्तिः (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—अरे ! अभिज्ञानशाकुन्तल-नामक अभूतपूर्व नाटक, जिसके बारे में श्रीमान् ने (स्वयं) पहले ही आज्ञा दी है, अभिनीत करना है।

---

१. सउन्दलं (शकुन्तलं)। २. पओएण।

सूत्रधारः—आर्ये सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृत खलु मया। कुतः—

संस्कृत-टीका—**ननु** निश्चितं स्मरामि। **आर्यमिश्रैः** श्रीमद्भिर्भवद्भिः। **प्रथमम्** पूर्वम् **एव**। **आज्ञप्तम्** आदिष्टम्। **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**। **नाम** निश्चयेन। **अपूर्वम्** अभूतपूर्वम्। **नाटकम्** रूपकविशेषः। **प्रयोगे** अभिनये। **अधिक्रियताम्** विषयीक्रियताम् **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—"ननु" उलाहने के लिये है जिसके द्वारा स्मरण दिलाया जा रहा है। "आर्यमिश्र" में "आर्य" सम्बोधन सूत्रधार के लिये है, जैसा पहले लिखा जा चुका है। इसका पूर्व निपात (रखना) "प्रशंसावचनैश्च" के अनुसार है। "मिश्र" शब्द सम्मान-सूचक है और अन्त में प्रायः बहुवचन में आता है। यह मतल्लिका, मचर्चिका, प्रकाण्डम्, उद्धः और तल्लजः की तरह अन्त में आकर प्रशंसा या आदर का सूचक है। "आदरे बहुवचनम्" के अनुसार बहुवचन आने से विशेष आदर प्रदर्शित है। मिश्र का अर्थ प्रसङ्गानुसार वेदान्तवेदी (जगद्धर की मालतीमाधव-टीका) और बहु-शास्त्र-अभ्यासी (पृथ्वीधर की मृच्छकटिक-टीका) भी किया जाता है।

"नाम" अव्यय है जिसका प्रयोग किसी संज्ञा की प्रथमा विभक्ति के साथ होता है और हिन्दी में "नामक" क जोड़कर किया जाता है। इसका वास्तविक अर्थ "निश्चय ही" है जो हिन्दी-अनुवाद में न बैठने से छोड़ दिया जाता है।

अभिनय करने या नाटक खेलने के लिये "प्रयोगेऽधिक्रियताम्" प्रयोग स्मरणीय है। "अधिक्रियताम्" विषय बनाने के अर्थ में है।

"इति" का प्रयोग अन्त में आने पर किसी की बात को समाप्ति सूचित करता है जिसके लिये हिन्दी और अंग्रेजी में २ ऊपरी कामों (") का चलन है। बात के आरंभ में "कि" का अनुवाद "यत्" या "यथा" से न करने पर अन्त में "इति" लिखना गद्य में अनिवार्य है। "शिवराजविजय" में अम्बिका दत्त व्यास ने "यत्" और "इति" दोनों का प्रयोग किया है, वह व्याकरण की दृष्टि से ठीक है पर चलन की दृष्टि से त्याज्य है।

शब्दार्थ—आर्य-मिश्रैः=आदरणीय श्रीमान् के द्वारा। आज्ञप्तम्=आज्ञा दी गई या कहा गया। प्रयोगे=अभिनय में। अधिक्रियताम्=विषय बनाया जाय।

व्युत्पत्ति—आज्ञप्त=आ+ज्ञप्+क्त। प्रयोग=प्र+युज्+घञ्।

समास—न पूर्वम् अपूर्वम्।

हिन्दी-अनुवाद—देवी, अच्छी याद दिलाई। इस समय (मैं तो) भूल ही गया था। क्योंकि—

संस्कृत-टीका—**आर्ये** देवि। **सम्यक्** सुष्ठु। **अनुबोधितः** स्मारितः। **अस्मि**। **अस्मिन्** एतस्मिन् (पूर्वे इत्यर्थः)। **क्षणे** काले। **विस्मृतम्**। **खलु** निश्चयेन। **मया** अनेन जनेन। **कुतः** यतः।

हिन्दी-व्याख्या—सूत्रधार स्वयं स्वीकार करता है कि मैंने ऊपर जो प्रकरण पूछा है, वह प्रमाद है, जो गीत राग से सुध बुध खोने के कारण हुआ है।

शब्दार्थ—अनुबोधितः=जिसे स्मरण दिलाया गया है (वैसा)।

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।
एष राजेव दुष्यन्तः[1] सारङ्गेणातिरंहसा ।। ५ ।।

(निष्क्रान्तौ) इति प्रस्तावना[2] ।

व्युत्पत्ति—अनुबोधित = अनु + बुध् + णिच् + क्त । विस्मृत = वि + स्मृ + क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—तुम्हारा मनोहर गीत-राग जबर्दस्ती मुझे वैसे ही खींच ले गया है जैसे अत्यन्त वेग वाला हिरन इन राजा दुष्यन्त को (खींच ले गया है) । (दोनों बाहर जाते हैं) यह प्रस्तावना हुई ।

अन्वय—हारिणा तव गीतरागेण अतिरंहसा सारङ्गेण एषः राजा दुष्यन्तः इव प्रसभम् हृतः अस्मि ।

संस्कृत-टीका—हारिणा मनोहरेण । तव त्वदीयेन । गीतस्य गानस्य रागेण । अति अतिशायि रंहः वेगः यस्य तेन अतिरंहसा बहुवेगेन । सारङ्गेण चित्राङ्गेण हरिणेन । एषः पुरो दृश्यमानः । राजा नृपः । दुष्यन्तः । इव । प्रसभम् बलात् हृतः विषयान्तरम् प्रापितः । अस्मि । निष्क्रान्तौ रङ्गमञ्चात् बहिः गतौ । इति समाप्ता । प्रस्तावना ।

हिन्दी-व्याख्या—सारङ्ग एक प्रकार का हिरन है, जिसका अंग शबल (एकाधिक रंग का) होता है । भरम से मुनि भी शबल हो सकते हैं या उच्चारण कौशल से "साराङ्ग" (मुनि) की भ्रांति उत्पन्न की जा सकती है, जिससे क्रोध में शकुन्तला के आतिथ्य की अपेक्षा न कर तेजी से जाते हुये दुर्वासा की भावी कथा का आभास हो जाता है । "एषः" पद से उँगली से दिखाया गया है कि सज्जा-कक्ष से दुष्यन्तादि निकल रहे हैं और परदे पर आ रहे हैं । जिससे अब अलग से बताने की जरूरत नहीं है । "राग" की परिभाषा पीछे दी गई है ।

"अस्मि" का हिन्दी अनुवाद "हूँ" है, पर "मैं" के अर्थ में इसे अव्यय भी माना जाता है । यहाँ इसकी जरूरत नहीं है । संस्कृत में "तु" "अपि" आदि के साथ न होने पर युष्मद् व अस्मद् के प्रथमा (केवल कर्ता में) के रूप आने पर उन्हें छोड़ देने में शोभा होती है । यदि क्रिया दी गई हो तो उससे कर्त्ता का बोध आसानी से हो जाता है । नटी, विदूषक या पारिपार्श्वक प्रस्तुत विषय पर सूत्रधार से जहाँ बात करते हैं, उसे प्रस्तावना या आमुख कहते हैं:—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

(साहित्य-दर्पण)

यहाँ साहित्य-दर्पण के अनुसार अवलगित नाम की प्रस्तावना है जिसका लक्षण निम्न-लिखित बताया गया है:—

पाठा०—१ = दुष्मन्तः । २ = स्थापना ।

(ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च) **सूतः** (राजानं मृगं चावलोक्य) **आयुष्मन् ।**

यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः ॥

शब्दार्थ—हारी = मन को चुरा लेने वाला। प्रसभम् = जबर्दस्ती। हृतः = आकर्षित हूँ। सारङ्ग = चितकबरा या एकाधिक रंग वाला मृग। अतिरहंस् = बहुत वेग वाला।

व्युत्पत्ति—हारी = हृ + णिनि (हृ + घञ् + इनि)। हृत = हृ + क्त। निष्क्रान्तः च निष्क्रान्ता च निष्क्रान्तौ (एकशेष वृत्ति)। प्रस्तावना = प्र + स्तु + णिच् + युच्।

समास—गीतस्य रागेण गीतरागेण। अतिशायि रंहः यस्य तेन अतिरंहसा।

छन्द—श्लोक (अनुष्टुप्) जिसका लक्षण अधोलिखित है:—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

प्रत्येक चरण में आठ अक्षर, चरण के अन्त में यति, पाँचवाँ अक्षर लघु, छठा अक्षर गुरु, दूसरे और चौथे चरण में सातवाँ अक्षर लघु और शेष चरणों में वही (सातवाँ अक्षर) गुरु होने पर "श्लोक" नामक छन्द होता है।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद हिरन का पीछा करने वाले तथा बाण और धनुष से युक्त हाथ वाले राजा तथा सारथि रङ्ग-मञ्च पर आते हैं।)

सारथि—(राजा और हिरन को देखकर) आयुष्मन्।

संस्कृत टीका—**ततः** तत्पश्चात् (प्रस्तावनायाः अन्ते) **प्रविशति** रङ्गमञ्चे दृश्यते सामाजिकैः। **मृगम्** हरिणम् **अनुसरति** अनुगच्छति इति **मृगानुसारी। शरेण** बाणेन **चापेन** धनुषा च सहितौ **हस्तौ** करौ यस्य सः **सशरचापहस्तः। राजा** नृपः (दुष्यन्तः)। **रथेन** स्यन्दनेन (तस्मिन् उपविश्य)। **सूतः** सारथिः। **च।**

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर दुष्यन्त की चर्चा की जा चुकी है। अब उन्हें रङ्ग-मञ्च पर दिखाया जाता है।

क्षत्रिय और ब्राह्मणी से उत्पन्न होनेवाले को सूत कहते हैं। इसका काम कोचवानी भी है—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। (मनुस्मृति १०।११)
सूतानामश्वसारथ्यम् (,, १०।४७)

सूत "आयुष्मन्" कहकर राजा को पुकारता है, ऐसा नाटकों में सर्वत्र देखा जाता है :—

आयुष्मन्निति वाच्यस्तु रथी सूतेन सर्वदा (भरत का नाट्यशास्त्र १७।७४)

अपने से छोटे को "आयुष्मान्" कहा जाता है जिससे प्रतीत होता है कि किसी बड़े-बूढ़े को सूत के रूप में नियुक्त किया जाता है जो राजकुमार को बचपन से हो पुकारता आया है और अब वह सम्बोधन बदलना उचित नहीं है।

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ॥ ६ ॥

क्षत्रिय चाहे राजा या राजकुमार ही क्यों न हों युद्ध में लड़ते थे जिससे उनकी उम्र कम होने का डर लगा रहता था। वैसी स्थिति में उनके लिये "आयुष्मान्" जैसा आशीर्वादात्मक व माङ्गलिक संबोधन विशेष रूप से उचित था। सारथि अपनी सारथ्य-कला से आयुष्मत्ता देने का उत्तरदायित्व भी लेता था, अतः उसके मुख से यह संबोधन विशेष शोभा देता था।

रथेन में तृतीया विभक्ति का प्रयोग ध्यान देने योग्य है; जिस सवारी से जाते हैं, उसमें तृतीया विभक्ति होती है।

व्युत्पत्ति—मृगानुसारी=मृग+अनु+सृ+णिनि। अवलोक्य=अव+लोक्+ल्यप्। आयुष्मान्=आयुष्+मतुप्।

समास—शरः च चापः चः शरचापौ (द्वन्द्व) ताभ्यां सह सशरचापः (या सहशरचापौ) (बहुव्रीहि) तादृशौ हस्तौ यस्य सः (बहुव्रीहि)। शरेण सह सशरः (बहुव्रीहि) तादृशः च सः चापः च सशरचापः (कर्मधारय) सः हस्तयोः यस्य सः सशरचापहस्तः (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—हिरन (के ऊपर) तथा प्रत्यञ्चा-युक्त धनुष लिये तुम्हारे ऊपर दृष्टि डालते हुए मुझे लगता है कि हिरन का पीछा करने वाले साक्षात् पिनाकधारी (महादेव) को जैसे देख रहा हूँ।

अन्वय—कृष्णसारे अधिज्यकार्मुके त्वयि च चक्षुः ददत् (अहम्) मृगानुसारिणम् साक्षात् पिनाकिनम् पश्यामि इव।

संस्कृत टीका—कृष्णसारे चित्राङ्गे हरिणे। अधिज्यः मौर्वी-युक्तः कार्मुकः चापः यस्य सः तादृशे। त्वयि भवति। चक्षुः दृष्टिम्। ददत् निक्षिपन् (अहम्) मृगम् हरिणम् अनुसरति अनुधावति इति मृगानुसारी तादृशम्। साक्षात् प्रत्यक्षरूपेण। पिनाकिनम् पिनाकाख्यचापधारिणम् महादेवम्। पश्यामि अवलोके। इव इति प्रतीयते।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ सारथि ने राजा की प्रशंसा की है। कर्मचारी राजा की चाटुकारिता का अवसर ढूँढ़ते रहते हैं। नाटक को अलङ्कार से सरस बनाना कवि का उद्देश्य हो सकता है। आप रुद्र के समान भीषण हैं और आपका धनुष पिनाक के समान, यह आशय है। इसमें उस कथा (महाभारत पर्व १८) की ओर सकेत है जिसके अनुसार रुद्र भगवान् ने अपने ससुर दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करते समय मृग-रूप में भागते हुये यज्ञ का पीछा किया था या अर्जुन के साथ पशु (वराह) का पीछा भील-रूप-धारी महादेव ने किया था। पहली कथा पार्वती के पिछले जन्म की है जब उनके पिता दक्ष और पति महादेव ही थे। दक्ष ने एक यज्ञ किया जिसमें अपने जामाता महादेव को छोड़कर सबको बुलाया और शिव को अपशब्द कहे। इस अपमान से क्रुद्ध होकर महादेव ने यज्ञ का विध्वंस कर दिया। दूसरी कथा के अनुसार अर्जुन पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिये शङ्कर भगवान् की आराधना में लगे। शङ्कर भगवान् ने उनकी परीक्षा के लिये भील के रूप में एक सुअर का पीछा किया। उधर अर्जुन ने भी उसे देखा और बाण छोड़ा। इस पर दोनों में विवाद हो गया कि मेरे शिकार

राजा—दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः । अयं पुनरिदानीमपि—

पर दूसरे ने हस्त क्षेप क्यों किया। यह विवाद आगे चलकर भयंकर युद्ध में बदला जिसमें अर्जुन के सारे अस्त्र व्यर्थ हो गये। अन्त में उसी दिन अर्पित की गई माला भील के गले में देखकर अर्जुन समझ गये कि ये मेरे आराध्य हैं और चरणों पर गिर पड़े। इस संदर्भ में मृग का अर्थ पशु लेना चाहिये जो सुअर भी हो सकता है।

महाभारत के उसी पर्व में यज्ञ के हिरन के रूप में भागने की दूसरी कथा भी आती है जिसमें यज्ञ कर्त्ता की जगह देवता और शिव जी के क्रोध का कारण यज्ञ में उन्हें भाग न मिलना बताया गया है। वायु-पुराण ३०।१५६ के अनुसार शिव जी की आज्ञा से वीरभद्र ने हरिण का पीछा किया था। एक दूसरी कथा का उल्लेख महिम्न-स्तोत्र के २२ वें श्लोक में आया है जिसके अनुसार ब्रह्मा अपनी पुत्री सन्ध्या के प्रति कामुक हुये जिसे जानकर वह हरिणी हो गई। तब ब्रह्मा ने हरिण का रूप धारण कर पीछा किया। शिव जी ने यह देखकर ब्रह्मा का पीछा किया और सिर काट दिया।

शङ्कर का पिनाकी नाम यहाँ आया है। महान् व्यक्तियों के धनुष, शङ्ख तथा उनकी वीणाओं के विशेष नाम देखे जाते हैं। धनुषों में विष्णु का धनुष शार्ङ्ग और अर्जुन का (धनुष) गाण्डीव भी इसी तरह प्रसिद्ध हैं।

शब्दार्थ—कृष्णसार = काला और चित्तीदार हिरन। अधिज्यकार्मुक = जिसके धनुष पर डोर चढ़ी हुई है।

व्युत्पत्ति—ददत् = दा + शतृ (पुंलिङ्ग होने पर भी प्रथमा विभक्ति के एक वचन में "ददन्" "नाभ्यस्ताच्छतुः" से नहीं हुआ)।

समास—कृष्णः च असौ सारः च कृष्णसारः (कर्मधारय)। अधिरूढः ज्याम् अधिज्यः (प्रादि) अधिरूढा ज्या यस्य सः अधिज्यः। (बहुव्रीहि)। अधिज्यः कार्मुकः यस्य सः अधिज्यकार्मुकः (बहुव्रीहि)।

छन्द—श्लोक (अनुष्टुप्)। लक्षण १।५ में देखा जा सकता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा (या उपमा)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-सारथि, हमें यह हिरन दूर तक खींच लाया है। यह तो इस समय भी-

संस्कृत-टीका-राजा नृपः (कथयति यत्)। **सूत** सारथे। **दूरम्** दूरस्थानम्। **अमुना** अनेन। **सारङ्गेण** कृष्णसारेण। **वयम्** (अहम् आवाम् वा)। **आकृष्टाः** आकृष्य आनीताः। **अयम्** असौ (पुरः दृश्यमानः)। **पुनः** तु। **इदानीम्** अधुना। **अपि**।

हिन्दी-व्याख्या—कथा के प्रसङ्ग को बनाये रखने के लिए यहाँ पिछली घटना का संदर्भ दिया गया है कि राजा हिरन का पीछा बहुत दूर से करते आये हैं। यह बात आगे आने वाली इस बात के प्रसंग में है कि अभी तक हिरन नहीं थका, यद्यपि बहुत दूर तक दौड़ चुका है।

शब्दार्थ—सारङ्ग = चित्तीदार हिरन।

व्युत्पत्ति—आकृष्ट = आङ् + कृष् + क्त।

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने [1]बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥७॥

(सविस्मयम् ।) तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्त ।

हिन्दी-अनुवाद—देखो, (अपने) पीछे आ रहे (हमारे) रथ पर बार-बार इस तरह दृष्टि लगाये हुए है कि गरदन के मुड़ने से वह (दृष्टि जमाना) बहुत अच्छा लगे, बाण गिरने के डर से पीछे के अधिक भाग से शरीर के अगले भाग में प्रविष्ट हुआ और थकावट के कारण खुले मुँह से गिरते अधचूसे कुशों से रास्ते को भरता हुआ गजब की कुदान से इस प्रकार जा रहा है कि आसमान में ज्यादा और भूमि पर कम है ।

(अचरज के साथ) (तो) मेरे पीछा करते-करते कैसे इस हिरन का दर्शन प्रयत्न-सापेक्ष हो गया ।

अन्वयः—पश्य अनुपतति स्यन्दने मुहुः ग्रीवाभङ्गाभिरामं बद्धदृष्टिः (सन्) शरपतनभयात् भूयसा पश्चार्धेन पूर्वकायम् प्रविष्टः (सन्) अर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः दर्भैः कीर्णवर्त्मा (सन् अयम् मृगः) उदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरम् उर्व्याम् (च) स्तोकम् प्रयाति ।

संस्कृत टीका—**पश्य** अवलोकय । **अनुपतति** (स्वस्य) पृष्ठे धावति । **स्यन्दने** (अस्माकम्) रथे । **मुहुः** पुनः पुनः । **ग्रीवायाः** कन्धरायाः **भङ्गेन** वलितेन **अभिरामम्** कमनीयम् यथा स्यात् तथा । **बद्धा** एकाग्रीकृता **दृष्टिः** चक्षुः येन तादृशः (सन्) । **शरस्य** बाणस्य (अस्माभिः मोक्ष्यमाणस्य) पतनस्य क्षेपस्य **भयात्** भीतेः । **भूयसा** अधिकतरेण । **पश्चार्धेन** (अपरेण अर्धेन) शरीरस्य पृष्ठभागेन । **पूर्वम्** अग्रवर्तिनम् **कायस्य** शरीरस्य । **प्रविष्टः** आगतः । **अर्धम्** अपूर्णम् यथा स्यात् तथा **अवलीढैः** भुक्तैः । **श्रमेण** धावनजन्यया क्लान्त्या **विवृतात्** उद्घाटितात् **मुखात्** वदनात् **भ्रंशिभिः** पतद्भिः **दर्भैः** कुशैः । **कीर्णम्** व्याप्तम् **वर्त्म** मार्गः येन सः **कीर्णवर्त्मा** (सन् अयम् मृगः) **उदग्रम्** उत्कटम् च तत् प्लुतम् लम्फः यस्य स **उदग्रप्लुतः** तस्य भावः तत्त्वम् तस्मात् **उदग्रप्लुतत्वात्** । **वियति** आकाशे । **बहुतरम्** अधिकतरम् । **उर्व्याम्** पृथिव्याम् (च) **स्तोकम्** अल्पम् । **प्रयाति** गच्छति ।

तत् अतः परम् । **कथम्** । **अनुपततः** अनुधावतः । **एव** । **मे** मम । **प्रयत्नेन** यत्नेन **प्रेक्षणीयः** दर्शनयोग्यः संवृत्तः जातः ।

हिन्दी-व्याख्या—स्पष्ट है कि बहुत सूक्ष्म निरीक्षण से यह श्लोक प्रस्तुत किया गया है । प्रत्येक चरण में हिरन का एक स्वरूप व्यक्त किया गया है जो देखने पर भी शब्दों में बाँधना कालिदास जैसे शिल्पी के लिये ही शक्य है; विशेष रूप से दूसरे चरण में कही गई शरीर के सिकोड़ने की क्रिया को

पाठा०—१ = दत्त ।

तस्वीर हूबहू प्रस्तुत की गई है। इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास ने ऐसे दृश्य ध्यान से देखे हैं। आश्रय-भूत राजा के सहचर के रूप में दर्शक होने की अधिक संभावना है।

गद्य-भाग के "एव" का अर्थ है कि माना यह तेज दौड़ रहा है, पर हम भी तो पीछे ही लगे हैं, फिर इसे देखने में कोशिश क्यों करनी पड़ रही है।

"अभिराम" ग्रीवा मोड़ने के कारण है। कल्पना में भी यह दृश्य आनन्द देता है, फिर साक्षात् सामने आने पर तो कितना देगा, यह कहा नहीं जा सकता।

बार-बार लम्बी कूद से शरीर भूमि के जरा-से भाग में, पर आकाश (हवा) के ज्यादा भाग में रहता है जिससे श्लोक का चतुर्थ चरण बहुत सार्थक है।

हिरन का गला मोड़-मोड़कर पीछे रथ को देखने का वर्णन पहले चरण में आया है। यह पशु का स्वभाव हो सकता है, पर उससे अधिक भी है। यह सफलता के लिए आश्वासन प्राप्त करने के लिये है। इससे गति कम हो जाती है और असफलता हो अधिक सम्भावित है जैसे जरूरत से ज्यादा गति-विश्वस्त दौड़ाकों के मामले में देखा जाता है; वे लक्ष्य तक पहुँचते-पहुँचते पीछे मुँह मोड़कर देखते हैं कि प्रतिद्वन्द्वी कितने पीछे है जिससे गति कम हो जाती है और वे कभी-कभी इसी कारण पीछे भी रह जाते हैं। यहाँ रथ को पर्याप्त (इतना कि बाण की मारक दूरी—किलिंग रेंज—से अधिक अन्तर रहे) दूर पर रखने के लिए हिरन बार-बार पीछे देखता है। ऐसी स्थिति में जब जीवन मृत्यु के झूले में झूल रहा है, तो हिरन ही क्या किसी जीव को उत्कण्ठा होती है; कभी-कभी उसी हिसाब से गति बढ़ाई जाती है या छिपने का उपक्रम किया जाता है। बाण पिछले भाग में लगने की अधिक सम्भावना होने से हिरन पिछले भाग को अगले भाग में समेटने की कोशिश करता है, यह अर्थ पशु के बुद्धि-हीन विशेषतः भय के कारण हतप्रभ होने पर स्वाभाविक है। इसे बुद्धिमत्ता कहा जाता है। मनुष्यों मे भी यह सामान्य बात है। ढेले आदि का दूर से आता प्रहार झेलने के लिये आदमी भी शरीर को सिकोड़कर पतला बनाने की कोशिश करता है। प्रहार पीछे से होने के कारण पिछले अर्ध की जगह एक पार्श्व का अर्थ शेष में प्रविष्ट करना अधिक बचाव होगा, पर वह संभव या परिज्ञात न होने से हिरन विपरीत करता है। ठीक पीछे न होकर अगल बगल होने पर तो संकोच-क्रिया बहुत लाभदायक है। स्टेन-गन के पाठ में सैनिक को सिखाया जाता है कि अपने (शरीर-रूपी) लक्ष्य-टार्गेट—के छोटे से छोटा बनाने के लिए शत्रु के सामने किसी बगल को करे न कि पीठ या छाती। इसके लिए एक पैर आगे कर खड़े होते हैं। पशु अपनी बुद्धि से पिछले भाग को जिस पर बाण लगने की सम्भावना है लुप्त कर आश्वस्त होने का प्रयत्न करता है, यह भी कहा जा सकता है, जिस तरह शुतुर्मुर्ग अपने सिर को रेत में छिपाकर यह सोचता है कि (मेरी आँखें बन्द हो गई तो शिकारी की आँखें भी बन्द हो गई होंगी) मैंने अपने को छिपा लिया है। द्वितीय चरण में मृग का अपने ही शरीर के पूर्वार्ध में प्रविष्ट होने की बात कही गई है जो भाषा के विशेष प्रयोग का उदाहरण तो कहा ही जा सकता है, मन की क्रिया और बेचैनी का भी द्योतक है।

शब्दार्थ—ग्रीवाभङ्गाभिराम=इस सुन्दरता से जिसमें गरदन मुड़ गई है। अनुपतति=(रथ के) पीछे चलने पर ("पत्" का अर्थ उड़ना, गिरना और चलना है)। स्यन्दन=रथ। पश्चार्ध=

सूतः—आयुष्मन् उद्घातिनी[1] भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः[2]। संप्रति समदेशवर्तिन[3]स्ते न दुरासदो भविष्यति।

पिछला (आधा) भाग। भूयसा=प्रचुर रूप से या प्रचुर (पश्चार्ध से)। पूर्वकाय=शरीर का पूर्व (अगला) भाग। दर्भ=कुश। अर्धावलीढ=आधे चाटे हुए, खाये हुए। विवृत=खुला। मुखभ्रंशी=मुँह से गिरते हुए। कीर्णवर्त्मा=जिसने (कुशों से) रास्ते को भर दिया है। उदग्रप्लुतत्वात्=उदग्रप्लुत (जिसकी कूद उत्कट हो, ऐसा) होने के कारण। वियत्=आसमान। स्तोकम्=थोड़ा।

व्युत्पत्ति—भङ्ग=भञ्ज्+घञ्। अभिराम=अभि+रम्+घञ्। स्यन्दन=स्यद्+ल्यु। बद्ध=बन्ध्+क्त। दृष्टि=दृश्+क्तिन्। प्रविष्ट=प्र+विश्+क्त। पतन=पत्+ल्युट्। भय=भी+अच् (नपुंसकलिङ्ग)। भूयस्=बहु+ईयसुन्। अवलीढ=अव+लिह्+क्त। विवृत=वि+वृ+क्त। मुखभ्रंशी=मुख+भ्रंश्+णिनि। कीर्ण=कॄ+क्त। प्लुतत्व=प्लु+क्त+त्व। बहुतर=बहु+तरप्। अनुपतत्=अनु+पत्+शतृ। प्रेक्षणीय=प्र+ईक्ष्+अनीयर्।

समास—ग्रीवायाः भङ्गः ग्रीवाभङ्गः (षष्ठी तत्पुरुष)। बद्धा दृष्टिः यस्य सः बद्धदृष्टिः (बहुव्रीहि)। अपरं (पश्च आदेश) च तत् अर्द्धम् च पश्चार्द्धम् (कर्मधारय)। शरस्य पतनम् शरपतनम् (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात् भयात् (पञ्चमी तत्पुरुष)। पूर्वम् (भागम्) कायस्य पूर्वकायम् (एकदेशि तत्पुरुष)। अर्द्धम् अवलीढैः अर्द्धावलीढैः (सहसुपा)। श्रमेण विवृतम् (तृतीया तत्पुरुष) च तत् मुखं च। (कर्मधारय) कीर्णम् वर्त्म येन सः कीर्णवर्त्मा (बहुव्रीहि) यहाँ दर्भ का सम्बन्ध कीर्ण से है और "दर्भकीर्णवर्त्मा" समास बनता है; दर्भ को समस्त पद से बाहर कर देने से "कीर्ण" को उसकी अपेक्षा रह जाती है, पर अर्थ में बाधा नहीं पड़ती। ऐसी स्थिति में "सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः" उक्ति से प्रयोग को ठीक समझा जाता है। उदग्रम् प्लुतम् यस्य सः उदग्रप्लुतः (बहुव्रीहि) तत्त्वात् उदग्रप्लुतत्वात्। प्रयत्नेन प्रेक्षणीयः प्रयत्नप्रेक्षणीयः (तृतीया तत्पुरुष)।

छन्द—स्रग्धरा (१.१ द्रष्टव्य)।

अलंकार—स्वभावोक्ति (या जाति)। [काव्य प्रकाश (४) ने यह पद्य भयानक रस के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।]

हिन्दी-अनुवाद—आयुष्मान्, जमीन समतल नहीं है, इस कारण मैंने बागडोर खींचकर रथ का वेग धीमा कर दिया है। इससे इस हिरन का अन्तर अधिक हो गया है। अब समतल स्थान में वर्तमान आपके लिये इसे पाना मुश्किल न होगा।

संस्कृत-टीका—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्)। **आयुष्मन्** चिरंजीविन् **उद्घातिनी** विषमा। **भूमिः** (अत्रत्या) भूः। **इति** (हेतोः)। **मया** अनेन जनेन सारथिना। **रश्मेः** प्रग्रहस्य **संयमनात्** आकर्षणात्। **रथस्य** स्यन्दनस्य। **वेगः** गतिः। **मन्दीकृतः** (अमन्दः मन्दः कृतः) अल्पीकृतः। **तेन** (कारणेन)। **मृगः** हरिणः। **एषः** पुरः दृश्यमानः। **विप्रकृष्टम्** सातिशयम् **अन्तरम्** अवकाशः यस्य

पाठा०—१=उत्खातिनी। २=०। ३=समदेशवर्त्ती न ते।

राजा—तेन हि मुच्यन्तामभीषवः ।

तादृशः । **संवृत्तः** जातः । **सम्प्रति** अधुना । **समः** च सः **देशः** स्थानम् च **तद्वर्तिनः** तत्र विद्यमानस्य । **ते** भवतः दुष्यन्तस्य । **न** । **दुरासदः** दुष्प्रापः । **भविष्यति** ।

हिन्दी व्याख्या—ऊँची-नीची जमीन पर रथ तेज नहीं दौड़ सकता। ऐसी जगहों पर जहाँ जितना ऊँचा चढ़ा जाय, उतना ही नीचा उतरा जाय, (जैसे पानी खींचने वाले बैल की) गति न तो औसत रहती है और न तेज; कम हो जाती है और खींचने वाले को थकावट भी आ जाती है। बागें खींचकर जानवरों को रोकते और सीमित रूप में खींचकर वेग कम करते हैं। "मन्दीकृत" से यह बताया गया है कि गति स्वाभाविक रूप से कम नहीं हुई है, बल्कि जानबूझकर अमन्द से मन्द कर दी गई है। उद्देश्य रथ के उलटने या जानवरों के गिरने को बचाना है। घोड़ों की चाल मन्द करने से हिरन और रथ का अन्तर अधिक हो गया। इसका कारण यह है कि ऊँची-नीची भूमि हिरन के लिये उतनी बाधक नहीं हुई, जितनी रथ के लिये हुई। समतल प्रदेश में आने पर सारथि आश्वासन देता है कि हिरन दुर्लभ न होगा जिससे स्पष्ट है कि विषम स्थान में मृग की गति रथ की गति से अधिक हो जाती है और समतल प्रदेश में इसके विपरीत होता है अर्थात् रथ हिरन की गति से अधिक दौड़ता है।

शब्दार्थ—उद्घातिनी="उद्घात" का अर्थ ऊपर उठना अर्थात् हिचकोले है जिससे उद्घातिनी का अर्थ हिचकोले वाली या विषम है। रश्मि=वाग या बागडोर (अभीषुः प्रग्रहे रश्मौ—अमरकोश)। संयमन=संयत करना या रोकना। विप्रकृष्टान्तर=जिसका अन्तर अधिक हो गया है। विप्रकृष्ट का शाब्दिक अर्थ दूर है। समदेशवर्त्ती=समतल स्थान पर वर्त्तमान। दुरासदः=दुर्लभ।

व्युत्पत्ति—उद्घाती=उद्+हन्+णिनि। संयमन=सम्+यम्+ल्युट्। मन्दीकृत=मन्द+च्वि+कृ+क्त। च्वि प्रत्यय लगने पर अभूततद्भाव—जो नहीं था और हो गया या कर दिया गया—अर्थ होता है। यहाँ जो वेग मन्द नहीं था, उसे मन्द कर दिया गया है, अतः च्वि का प्रसंग आ गया है। विप्रकृष्ट=वि+प्र+कृष्+क्त। देशवर्ती=देश+वृत्+णिनि। दुरासद=दुर्+आ+सद्+खल्।

समास—रश्मेः संयमनात् रश्मिसंयमनात् (षष्ठी तत्पुरुष)। विप्रकृष्टम् अन्तरम् यस्य सः विप्रकृष्टान्तरः (बहुव्रीहि)। समः च असौ देशः च समदेशः (कर्मधारय)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—तब ठीक है; ढीली छोड़ दो बागडोर।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) **तेन** तस्मात् कारणात्। **हि** निश्चयेन। **मुच्यन्ताम्** श्लथीक्रियन्ताम् **अभीषवः** प्रग्रहाः।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर सारथि ने कहा है कि अब हिरन दुर्लभ न रह जायेगा अर्थात् गति तेज कर उसके निकट पहुँचा जायेगा। यहाँ राजा याद दिला रहे हैं कि गति तेज करने के लिये बागें ढीली कर दो।

शब्दार्थ—तेन=इस कारण। "तेन" का अर्थ उससे या उस कारण होता है, पर हिन्दी में ऐसा कहने का रिवाज न होने से इससे या इस कारण अनुवाद किया जाता है। हि=निश्चय ही।

सूतः—यथा[१] ज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन् पश्य पश्य।

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया
[२]निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ॥ ८ ॥

यहाँ अनुवाद में इसका अर्थ उतना अच्छा नहीं बैठेगा। मुच्यन्ताम्=तुम्हारे द्वारा छोड़ (या ढीली कर) दी जाय। अभीषु=बाग डोर।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—आयुष्मान् की जैसी आज्ञा। (रथ की चाल का अभिनय कर] आयुष्मान् देखिये-देखिये।

संस्कृत-टीका—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्) **यथा** उचितम्। **आज्ञापयति** आदिशति। **आयुष्मान्** चिरम् जीवी (श्रीमान् दुष्यन्तः)। (**रथस्य** स्यन्दनस्य **वेगम्** गतिम्। **निरूप्य** नाटयित्वा) **आयुष्मन्** चिरम् जीविन्। **पश्य पश्य** अवलोकय अवलोकय।

हिन्दी व्याख्या—"यथाज्ञापयति" के आगे "आयुष्मान्" या "देवः" लगाकर राजा की आज्ञा शिरोधार्य की जाती है। हिन्दी में "जी हाँ" "जी सरकार" आदि प्रचलित हैं। मध्य प्रदेश में "हुकुम" कहने का रिवाज है। "आयुष्मान्" युवराज या कम उम्र के राजा के लिये और "देवः" प्रौढ़ या वृद्ध राजा के लिये आता है। रंग-मंच पर रथ को दौड़ना संभव न होने से बागें ढीली कर अभिनय-मात्र किया गया है। "पश्य पश्य" में "पश्य" की आवृत्ति से कौतुक की बात आने पर उसका प्रभाव दिखाया गया है।

शब्दार्थ - यथा=जैसी। आज्ञापयति=(आप) आज्ञा (देते हैं, वैसा ही करूँगा)। निरूप्य= अभिनय कर।

व्युत्पत्ति—निरूप्य=नि+रूप्+णिच्+ल्यप्।

समास—रथस्य वेगः रथवेगस्तम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—बागडोरों के छूटते ही ये रथ में जुते घोड़े, जिनके शरीर का अगला भाग अत्यन्त विस्तृत हो गया है, जिनकी कलंगी की चोटी स्थिर है, जिनके कान शान्त और उठे हुए हैं तथा जो अपने द्वारा उठाई हुई गर्द के द्वारा भी लङ्घनीय नहीं हैं, ऐसे दौड़ते हैं जैसे हिरन का वेग न सह पा रहे हों।

अन्वयः—रश्मिषु मुक्तेषु निरायतपूर्वकायाः निष्कम्पचामरशिखाः निभृतोर्ध्वकर्णाः आत्मोद्धतैः अपि रजोभिः अलङ्घनीयाः अमी रथ्याः मृगजवाक्षमया इव धावन्ति।

पाठा०—१=यया (या यदा)।
२=स्तेषामपि प्रसरतां रजसामलङ्घ्याः।
निष्कम्पचामरशिखाश्च्युतकर्णभङ्गा
धावन्ति वर्त्मनि तरन्ति नु वाजिनस्ते ॥

संस्कृत-टीका—**रश्मिषु** प्रग्रहेषु । **मुक्तेषु** शिथिलीकृतेषु । **अमी** एते । **नि** नितराम् **आयतम्** विस्तृतम् **पूर्वम्** अग्रम् **कायस्य** देहस्य येषाम् ते **निरायतपूर्वकायाः** । **निष्कम्पाः** निश्चला **चामराणां** चमरीपुच्छानाम् **शिखाः** अग्राणि येषां ते **निष्कम्पचामरशिखाः** । निभृतौ शान्तौ **ऊर्ध्वौं** ऊर्ध्वगतौ **कर्णौं** श्रवणे येषां ते **निभृतोर्ध्वकर्णाः** । **आत्मना स्वेन उद्धतैः** उत्थापितैः । **अपि** । **रजोभिः** धूलिभिः **न लङ्घनीयाः** पराजययोग्याः अलङ्घनीयाः । **रथ्याः** रथवाहिनः (अश्वाः) **मृगस्य** हरिणस्य **जवे** वेगे (वेगविषये) **अक्षमया** असहनशीलतायाः हेतोः । **इव** यथा । **धावन्ति** द्रवन्ति ।

हिन्दी व्याख्या—स्वभावोक्ति का सुन्दर वर्णन है। बढ़िया नस्ल के घोड़े किस तरह बाग के हिलने पर उड़ जाते हैं, इसका वर्णन है। शरीर के अगले भाग को फुलाना, कलंगी को निश्चल रखना तथा धूल के उठने के पहले ही आगे बढ़ जाना आदि वर्णन सूक्ष्म निरूपण के उदाहरण हैं। स्पर्द्धा में प्रत्याशी का उत्कर्ष न सहकर सारी शक्ति से पराजित करने की चेष्टा की जाती है, यहाँ घोड़ों ने हिरन को पराजित करने के लिए सारा जोर लगाया है, अतः वैसी उत्प्रेक्षा की गई है। चमरी मृग के सफेद बालों की कलँगी से घोड़े को सजाने की प्रथा थी। तेज गति से हवा के रुकने से कलँगी का हिलना बन्द हो गया है। सारी ताकत लगाने से कान एकाग्रता से स्थिर हो गये हैं। विलियम के अनुसार दौड़ते समय घोड़े के कान न केवल खड़े होते हैं, बल्कि कुछ पीछे की ओर झुके होते हैं। उन्होंने निभृत से "पीछे झुके हुए" अर्थ लगाया है जो नहीं निकलता। धूल पैरों की शक्ति और अनुकूल हवा—दोनों—से उठ सकती है। हवा प्रतिकूल भी मानी जा सकती है। घोड़े धूल से आगे बढ़ जाते हैं। वे हवा से भी तेज हैं, ऐसी प्रतीति होती है। "अपि" से जोर दिया गया है जिससे यह अर्थ निकलता है कि पहिये से निकली धूल तो पीछे रह ही गई, स्वयं घोड़ों की टापों से उठी धूल भी पीछे रह गई।

शब्दार्थ—निरायतपूर्वकाय = जिनके शरीर का अगला भाग विशेष विस्तृत है। निष्कम्पचामर-शिख = जिनकी चमरी मृग की पूँछ की शिखा स्थिर है। निभृतोर्ध्वकर्णाः = जिनका कान शान्त और खड़ा (ऊर्ध्व) है। उद्धत = उठाया हुआ। अलङ्घनीय = अपराजेय (जिनसे आगे नहीं बढ़ा जा सकता)। जव = वेग। अक्षमा = न सहना। इव = मानो। रथ्य = रथ में जोतने योग्य (घोड़े)।

व्युत्पत्ति—मुक्त = मुच् + क्त। निरायत—निर् = आङ् + यम् + क्त। निष्कम्प = निस् + कम्प् + घञ्। निभृत = नि + भृ + क्त। उद्धत = उद् + हन् + क्त। अलङ्घनीय = अ + लङ्घ् + अनीयर्। रथ्य = रथ + यत्।

समास—निरायतः पूर्वकायः येषाम् ते निरायतपूर्वकायाः (बहुव्रीहि)। चामराणाम् शिखा चामरशिखा (षष्ठी तत्पुरुष)। निष्कम्पा चामरशिखा येषाम् ते निष्कम्पचामरशिखाः (बहुव्रीहि)। निर्गतः कम्पः यस्याः सा निष्कम्पा (बहुव्रीहि)। निभृतौ ऊर्ध्वौं च कर्णौं येषाम् ते निभृतोर्ध्वकर्णाः (बहुव्रीहि)। आत्मना उद्धतैः आत्मोद्धतैः (तृतीया तत्पुरुष)। न लङ्घनीयाः अलङ्घनीया (नञ् तत्पुरुष)। मृगस्य जवः मृगजवः (षष्ठी तत्पुरुष) तत्र अक्षमा (सप्तमी तत्पुरुष)। तथा।

छन्द—वसन्ततिलका (या वसन्ततिलक) जिसका लक्षण निम्नलिखित है—

राजा—सत्यमतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः । तथा हि—

ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

तगण, भगण, दो जगणों और दो गुरुओं से वसन्ततिलका छन्द होता है ।

अलंकार—समासोक्ति और उत्प्रेक्षा ।

हिन्दी-अनुवाद—सचमुच; घोड़े हरितों (हरित=सूर्य के घोड़े) और हरियों (इन्द्र के घोड़ों) को लाँघ रहे हैं । प्रमाण के लिये :—

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (कथयति) । **सत्यम्** तथ्यम् । इदम् वक्ष्यमाणम् । **अतीत्य** उल्लङ्घ्य (विजित्य) । **हरितः** सूर्याश्वान् । **हरीन्** (इन्द्राश्वान्) च । **वर्त्तन्ते** विद्यन्ते । **वाजिनः** अश्वाः । **तथा हि** प्रमाणम् तु वक्ष्यते ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ राजा ने अतिशयोक्ति में बोलते हुए अपने घोड़ों को सूर्य तथा इन्द्र के घोड़ों से अधिक गति वाला सिद्ध किया है और उसके समर्थन के लिये आगे की पंक्तियाँ दी हैं । कालिदास का दरबारी संस्कृति से ओत-प्रोत होने या कवि के लिये अतिशयोक्ति-प्रिय होने का यह प्रमाण है । "सत्यम्" का प्रयोग कौतुक के कारण या उसकी पुष्टि के लिये है । "अतीत्य वर्तन्ते" प्रयोग कम प्रचलित है । एक ही क्रिया रखने से अधिक अच्छी अभिव्यक्ति हो सकती है । "हरित्" का अर्थ सूर्य, दिशा, हरा या सूर्य का घोड़ा है । यहाँ सूर्य का घोड़ा अर्थ लेना ठीक है (हरित आदित्यस्य—निघण्टु १।१५) । ये घोड़े सात और हरे रंग के होते हैं । इनके नाम जय, अजय, विजय, जितप्राण, जितश्रम, मनोजव और जितक्रोध हैं :—

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः ।
मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्त्तिताः ॥

हरि का अर्थ इन्द्र, इन्द्र के घोड़े, विष्णु, घोड़ा आदि हैं । यहाँ इन्द्र के घोड़े के लिये आया है । इस अर्थ में ऋग्वेद में इसका अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है । "हरिः इन्द्रस्य" (निघण्टु १।१५) इस अर्थ का समर्थन करता है । हरि का अर्थ सुनहला होने से इन्द्र के घोड़े सुनहले माने जा सकते हैं :—

स्वर्णवर्णे हरिः स्मृतः (अनेकार्थकोष) ।

"हरि" का अर्थ हरा भी मिलता है । इन्द्र का प्रसिद्ध घोड़ा उच्चैःश्रवा सफेद है और सफेद घोड़े वाले इन्द्र का ही चित्रण संस्कृत में पाया जाता है । "हरि" का अर्थ केवल घोड़ा प्रचलित है । इन्द्र का घोड़ा वैदिक कालीन अर्थ है जो यह सूचित करता है कि कालिदास वैदिक काल के निकट हैं ।

शब्दार्थ—अतीत्य = लाँघकर । हरित्=सूर्य का घोड़ा । हरि = इन्द्र का घोड़ा (नाम) । वाजी = घोड़ा । तथा हि = प्रमाण-स्वरूप ।

व्युत्पत्ति—अतीत्य = अति + इ + ल्यप् ।

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदद्धा[1] विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत् ।
प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयो·
र्न मे दूरे[2] किञ्चित्क्षणमपि न [3]पार्श्वे रथजवात् ॥९॥

हिन्दी-अनुवाद—रथ के वेग के कारण जो वस्तु देखने में बारीक है, वह एकाएक बड़ी हो जा रही है, जो (वस्तु) वास्तव में अलग है, वह जोड़ दी गई-सी बन जारही है और जो (वस्तु) स्वाभाविक रूप से टेढ़ी है, वह भी सरल रेखा वाली हो जा रही है। मेरी दृष्टि में क्षण भर के लिये भी न तो कोई वस्तु दूर रहती है और न पास।

अन्वय—रथजवात् यत् आलोके सूक्ष्मम् (भवति) तत् सहसा विपुलताम् व्रजति । यत् अद्धा विच्छिन्नम् (भवति) तत् कृतसन्धानम् इव भवति । यत् प्रकृत्या वक्रम् (भवति) तद् अपि समरेखम् भवति । नयनयोः मे किञ्चित् (वस्तु) क्षणम् अपि न दूरे न (च) पार्श्वे ।

संस्कृत-टीका—**रथस्य** स्यन्दनस्य । **जवात्** वेगात् । **यत्** (वस्तु) । **आलोके** दृष्टौ । **सूक्ष्मम्** अणु (भवति) **तत्** (वस्तु) । **सहसा** अकस्मात् । **विपुलताम्** स्थूलताम् **व्रजति** प्राप्नोति स्थूलं भवति इत्यर्थः । **यत्** (वस्तु) । **अद्धा** वस्तुतः **विच्छिन्नम्** खण्डितम् (भवति) **तत्** (वस्तु) । **कृतम्** विहितम् **सन्धानम्** योजनम् यस्य तादृशम् संहितम् इत्यर्थः । **भवति** जायते । **यत्** (वस्तु) **प्रकृत्या** स्वभावतः । **वक्रम्** अरालम् (भवति) **तत्** (वस्तु) । **अपि** । **समा** अवक्रा **रेखा** पङ्क्तिः यस्य तादृशम् (भवति) । **नयनयोः** मे मम लोचनयोः अन्तः **किञ्चित्** किमपि (वस्तु) । क्षणम् निमिषम् (यावत्) । **अपि** । **न दूरे** विप्रकृष्टे स्थाने (वर्त्तते), **न** (च) । **पार्श्वे** समीपे (वर्त्तते) ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ बहुत ही अकृत्रिम वर्णन किया गया है। जो चीज दूर से सूक्ष्म है वह निकट से स्थूल दिखती है और जो स्थूल है वह रथ के दूर चले आने पर सूक्ष्म दिखती है। जो चीज अलग-अलग है, वह दूर पहुँचने पर सटी दिखती है और जो टेढ़ी है, वह दूर से देखने पर सीधी दिखती है। जो चीज दूर है वह क्षण भर में निकट हो जाती है। इस प्रकार रथ की तीव्र-गति का वर्णन अतिशयोक्ति-युक्त होने पर भी मन को लुभाता है। पुराने कवियों की स्वाभाविकता बाद के कवियों की घोर कृत्रिमता से ऊबे हुये को विशेष आनन्द देती है और यह सिद्ध करती है कि यथार्थ वर्णन भी अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन से सुन्दर हो सकता है। रेल-गाड़ी या अन्य किसी तीव्र यान पर बैठकर ये अनुभव सभी को होते हैं, पर कवि-दृष्टि न होने से सभी इन्हें शब्दों में नहीं बांध पाते। पहले उदाहरण दूर से निकट का और फिर दो उदाहरण निकट से दूर के दृश्य के दिये गये हैं। विच्छिन्न वस्तु की विच्छिन्नता वाला अन्तर दूर से दृष्टि-संकोच के कारण नहीं दिखता जिससे चीज जुड़ी हुई दिखती है। इसी प्रकार वक्र रेखा सरल रेखा दिखती है, क्योंकि मोड़ के भाग दूर से शेष से अलग नहीं दिखते। "रथजवात्" परिवर्तनों का कारण है जो बाद में वाक्य-व्यवस्था के लिये ही

पाठा०—१=यदर्धे (या यदन्तः) । २=पार्श्वे । ३=दूरे ।

सूत ! पश्यैनं व्यापाद्यमानम् (शरसन्धानं नाटयति) ।

नहीं है, यह बताने के लिये भी है कि विस्मय से राजा कारण का अनुसंधान अन्त में करते हैं, जब विस्मय का प्रभाव कम होने के बाद प्रकृतिस्थता आती है।

शब्दार्थ—आलोक=आ+लोक्+घञ्। अद्धा=वास्तव में। कृतसन्धान=जिसे जोड़ा गया है। प्रकृत्या=स्वाभाविक रूप से। समरेख=समान रेखा वाला (सीधा)। जव=वेग।

व्युत्पत्ति—विपुलता=विपुल+तल्। विच्छिन्न=वि+छिद्+क्त। कृत=कृ+क्त। सन्धान=सम्+धा+ल्युट्। किञ्चित्=किम्+चित्।

समास—कृतम् सन्धानम् यस्य तत् कृतसन्धानम् (बहुव्रीहि)। समा रेखा यस्य तत् (बहुव्रीहि)। रथस्य जवात् रथजवात् (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—शिखरिणी छन्द है जिसका लक्षण निम्न-लिखित है :—

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु तथा गुरु से शिखरिणी होती है। जिसमें ६ और ११ (चरणान्त) पर यति होती है।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि, देखो इसका मरना (बाण सन्धान का अभिनय करते हैं)।

संस्कृत टीका—**सूत** सारथे। **पश्य** वीक्षस्व। **एनम्** अमुम् मृगम्। **व्यापाद्यमानम्** (मया) हन्यमानम् (**शरस्य** वाणस्य **सन्धानम्** धनुषा योगम्। **नाटयति** निरूपयति)।

हिन्दी-व्याख्या—दुष्यन्त सारथि को हिरन का अपने बाण से मारना दिखाने के लिये उत्सुक होकर उसका ध्यान अपने कौशल की ओर आकृष्ट करते हैं। यह प्रवृत्ति युवकों में प्रायः अधिक होती है कि अपना कृतित्व दूसरों को दिखाकर वाहवाही लूटें।

"इसको (मेरे द्वारा) मारा जाता हुआ देखो" और "इसका मरना देखो" ये वाक्य क्रमशः संस्कृत और हिन्दी के प्रयोगों का अन्तर बताने के लिये दिये जा रहे हैं। यह अन्तर ध्यान देने योग्य है।

"नाटयति" का प्रयोग जगह-जगह इसलिये किया जाता है कि नाटक में वास्तविक रूप से कुछ न कर केवल अभिनय किया जाता है।

शब्दार्थ—व्यापाद्यमान=(मेरे द्वारा) मारा जाता हुआ (=मरना)। सन्धान=(बाण को धनुष से) जोड़ना। नाटयति=अभिनय करता है।

व्युत्पत्ति—एनम्="एतम्" की जगह एनम् अन्वादेश के कारण है। पहले आये "मृगः एषः" के लिये होने से यह सर्वनाम-प्रयोग अन्वादेश की सीमा में आता है। व्यापाद्यमान=वि+आ+पद+यक्+शानच्। सन्धान=सम्+धा+ल्युट्।

समास—शरस्य सन्धानम् शरसन्धानम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

(नेपथ्ये) **भो भो राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।**

सूतः—(आकर्ण्यावलोक्य च) **आयुष्मन् अस्य खलु ते बाणपथ वर्त्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः ।**

हिन्दी अनुवाद—(नेपथ्य में) सुनिये सुनिये राजन्, आश्रम का यह हरिण हन्तव्य (मारने-योग्य) नहीं है; हन्तव्य नहीं है ।

संस्कृत-टीका—**भोः भोः** हे हे । **राजन्** नृप (दुष्यन्त) । **आश्रमस्य** तपोवनस्य **मृगः** हरिणः । **अयम्** एषः । **न** । **हन्तव्यः** मारणयोग्यः । **न** । **हन्तव्यः** मारणयोग्यः ।

हिन्दी-व्याख्या—"न हन्तव्यः" का दो बार प्रयोग (घबड़ाहट) में किया गया है । आश्रम के हरिण को हत्या और वह भी मर्यादा-रक्षक राजा के द्वारा होना अनर्थ है जिसको रोकने के लिये व्यग्रता होनी स्वाभाविक है । किसी आश्रम-वासी की पुकार की अधिक सम्भावना है–"भोः" का प्रयोग भी दो बार हुआ है । यह उद्वेग और दूर से पुकारने में बहुत स्वाभाविक लगता है ।

"भोः" का अपभ्रंश "हो" है जो ग्रामीणों के द्वारा अब भी इस्तेमाल में आता है । हिन्दी में इसका अनुवाद "सुनत हो" "जी", "हे", "सुनो" आदि पदों से किया जा सकता है । अहिंसा का तपोवन में ही प्रचार हमें प्राप्त होता है । अहिंसा का प्रचार अन्यत्र नहीं था; बाद में तपोवनों के शान्त जीवन और जैन-धर्म के प्रबल और मर्म-स्पर्शी प्रचार से अहिंसा गृहस्थों में भी प्रचलित हो गई ।

शब्दार्थ—भोः=हे । हन्तव्य=मारने योग्य ।

व्युत्पत्ति—हन्तव्य=हन्+तव्यत् ।

समास—आश्रमस्य मृगः आश्रममृगः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—(सुन और देखकर) आयुष्मन्, तुम्हारे बाण के रास्ते में स्थित इस हिरन के (और तुम्हारे) बीच तपस्वी उपस्थित हैं ।

संस्कृत-टीका—**सूतः** सारथिः (**आकर्ण्य** श्रुत्वा । **अवलोक्य** दृष्ट्वा **च** ।) (कथयति यत्) । **आयुष्मन्** (हे) चिरं जीविन् । **अस्य** एतस्य (मृगस्य) । **खलु** निश्चयेन । **ते** तव (दुष्यन्तस्य) **बाणस्य** शरस्य **पन्थाः** मार्गः **तद्वर्त्तिनः** तत्र विद्यमानस्य । **कृष्णसारस्य** सारङ्गस्य । **अन्तरे** अवकाशे (मृगस्य च रथस्य च मध्ये) । **तपस्विनः** तापसाः । **उपस्थिताः** प्राप्ताः ।

हिन्दी व्याख्या—दुष्यन्त बाण-सन्धान में मग्न हैं; सामने धनुष होने से शायद न देख पा रहे हों, इसलिये सारथि यहाँ रास्ते में ऋषियों के आ जाने की सूचना देता है । तापसों ने हरिण की रक्षा के लिये उसके आगे स्वयम् को कर दिया है जो उनकी शरणागत-वत्सलता का प्रतीक है । तापस न तो रथ से कचरने की परवाह करते हैं और न बाण से घायल होने की ।

शब्दार्थ—अन्तरे=मध्य में ।

पाठा०—१=पात ।

राजा—(ससंभ्रमम् ।) तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः ।

सूतः—तथा (रथं स्थापयति) ।

(ततः प्रविशत्यात्मना[1] तृतीयो वैखानसः)

वैखानसः—(हस्तमुद्यम्य) राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।

व्युत्पत्ति—आकर्ण्य=आङ्+कर्ण्+ल्यप् । अवलोक्य—अव+लोक्+ल्यप् । पथ=पथिन्+अ (ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे—अष्टाध्यायी ५।४।७४) । पथवर्ती=पथ+वृत्+णिनि । तपस्वी=तपस्+विनि । उपस्थित=उप+स्था+क्त ।

समास—बाणस्य पन्थाः बाणपथः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(घबड़ाहट के साथ) तो घोड़ों को रोको ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) **संभ्रमेण** त्वरया सह यथा स्यात् तथा (**ससंभ्रमम्**) । **तेन** तस्मात् कारणात् । **हि** निश्चयेन । **प्रगृह्यन्ताम्** (त्वया) स्थिरीक्रियन्ताम् **वाजिनः** हयाः ।

हिन्दी-व्याख्या—जल्दी करते हुए रथ को रोकने का आदेश देते हैं । रथ की गति तेज होने से उसे तापसों से पहले ही रोकना कठिन है जिससे तापसहत्या का भय उपस्थित हो गया है ।

शब्दार्थ—ससम्भ्रम=सम्भ्रम (घबड़ाहट) के साथ । हि निश्चय ही (यहाँ अनुवाद में अच्छी तरह नहीं बैठता) । प्रगृह्यन्ताम्=(तुम्हारे द्वारा) रोके जायँ ।

समास—सम्भ्रमेण सह (बहुव्रीहि) ससंभ्रम् ।

हिन्दी अनुवाद—सारथि—जी अच्छा (रथ रोकता है) ।

संस्कृत-टीका—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्) । **तथा** एवम् (**रथम्** स्यन्दनम्) **स्थापयति** स्थिरीकरोति ।

हिन्दी व्याख्या—"तथा" का प्रयोग "यथाज्ञापयति भवान् तथा करोमि" (आपकी जैसी आज्ञा है, वैसा ही करता हूँ) का अर्थ देता है । कालिदास इसका प्रयोग बहुत करते हैं । "अथ किम्", "आम्", "बाढम्", "ओम्" आदि प्रयोग बाद के साहित्य में अधिक आते हैं ।

शब्दार्थ—तथा=अच्छा (शाब्दिक अर्थ "वैसा" है) ।

व्युत्पत्ति—तथा=तत्+थाल् ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्वी (हाथ उठाकर) राजन्, यह आश्रम-मृग है; हन्तव्य नहीं है; हन्तव्य नहीं है ।

संस्कृत-टीका—**ततः** तदनन्तरम् । **प्रविशति** रङ्गमञ्चे आविर्भवति । **आत्मना** शरीरेण । **तृतीयः** द्वाभ्याम् सह । **वैखानसः** तापसः ।

वैखानसः तापसः (**हस्तम्** करम् । **उद्यम्य** उत्थाप्य) (कथयति यत्) । **राजन्** नृप ।

पाठा०—१=सशिष्यः ।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे [1]पुष्पराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाताः वज्रसाराः शरास्ते ॥

आश्रमस्य । तपोवनस्य **मृगः** हरिणः । **अयम्** एषः । **न** । **हन्तव्यः** मारणयोग्यः । **न** । हन्तव्यः मारणयोग्यः ।

हिन्दी-व्याख्या—अभी तक आवाज अन्दर से आ रही थी; अब रङ्ग-मञ्च पर तीन व्यक्ति दिखते हैं जिनमें से एक तापस बोलता है । हाथ उठाकर रोका जाता है । दूर होने पर उठाया हाथ बीच की छोटी मोटी आड़ों के होने पर संकेत करने में विशेष उपयोगी है । ऐसे सङ्केतों की उपयोगिता देखकर स्काउटिंग और फौज में संकेत-भाषा का विकास किया गया है जिसे स्काउटिंग में ममोमा और फौज में फील्ड सिग्नल कहते हैं । हथेली दिखाना या बाँह उठाते हुये दूर से हथेली दिखाना आज भी निषेध का सूचक बना हुआ है ।

शब्दार्थ—आत्मना = अपने से (को लेकर)। वैखानस = वनवासी (वैखानसो वने वासी वानप्रस्थश्च तापसः—वैजयन्ती-कोष)।

व्युत्पत्ति—तृतीय = त्रि + तीय । वैखानस = विखनसम् ब्रह्म ब्रह्माणं वा वेत्ति इति वैखानसः या विखनसप्रोक्तेन मार्गेण वर्तत इति वैखानसः (गौतम धर्म-सूत्र ३।२ पर टीका करते हुये हरदत्त १।९।८)। उद्यम्य = उद् + यम् + ल्यप् ।

समास—आत्मना तृतीयः आत्मनातृतीयः (अलुक्)। ऐसे समास में कोई परिवर्तन नहीं होता ।

हिन्दी-अनुवाद—(निवेदन है कि) हिरन के इस कोमल शरीर पर यह बाण, फूल के ढेर पर आग की तरह मत छोड़ो, मत छोड़ो । हाय ! कहाँ हिरन के छौनों का अत्यन्त चंचल प्राण और कहाँ तुम्हारे तेज नोक वाले वज्र के समान बली बाण ।

अन्वय—मृदुनि अस्मिन् मृगशरीरे अयम् बाणः पुष्पराशौ अग्निः इव न खलु न खलु सन्निपात्यः । बत क्व च अतिलोलम् हरिणकानाम् जीवितम् क्व च निशितनिपाताः वज्रसाराः ते शराः ।

संस्कृत-टीका—**मृदुनि** कोमले । **अस्मिन्** एतस्मिन् (पुरः दृश्यमाने)। **मृगस्य** हरिणस्य **शरीरे** देहे । **अयम्** एषः (तव)। **बाणः** शरः । **पुष्पाणाम्** प्रसूनानाम् **राशौ** चये । **अग्निः** हुताशनः । **इव** । **न** । **खलु** निवेदने । **न** । **खलु** निवेदने । **सन्निपात्यः** पातनीयः (भवता)। **बत** हन्त । **क्व** कुत्र । **च** । **अतिलोलम्** अतिचञ्चलम् **हरिणकानाम्** अनुकम्पितानाम् मृगाणाम् । **जीवितम्** जीवनम् । **क्व** कुत्र । **च** । **निशितः** तीक्ष्णः **निपातः** अग्रभागः येषाम् ते **निशित-निपाताः** । **वज्रस्य** कुलिशस्य **सारः** काठिन्यम् इव **सारः** काठिन्यम् येषां ते **वज्रसाराः** । **ते** तव । **शराः** मार्गणाः । द्वौ क्वशब्दौ महत् अन्तरम् सूचयतः उभयोः पक्षयोः ।

पाठा०—१ तूल (पूरा श्लोक ही राघव भट्ट की टीका में नहीं लिया गया है ।)

तत्साधुकृतसंधानं[1] प्रतिसंहर सायकम् ।
आर्त्तत्राणाय वः[2] शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ॥ ११ ॥

हिन्दी-व्याख्या—"न" के साथ "खलु" लगने पर निषेधार्थक निवेदन होता है। यहाँ फूल के ढेर से आश्रम के करुणा-ललित हिरन को और अग्नि से बाण की तुलना की गई है। आशय है कि जैसे फूल की ढेरी पर आग छोड़ना उचित नहीं है, उसी तरह हिरन पर बाण छोड़ना (उचित नहीं है)। हिरन कोमल पशु है जो मामूली प्रहार से ही मर सकता है, अतः उसके जीवन को अत्यन्त चञ्चल बताया गया है। प्रार्थना में करुणा स्पष्ट है। "न खलु" का दो बार प्रयोग आवेग व्यक्त करता है। "पुष्प" की जगह "तूल" पाठ भी मिलता है, पर वनवासी के मुँह से "फूल" की उपमा कोमलता दिखाने के लिये अधिक स्वाभाविक है। इससे न केवल करुण ही, बल्कि सौन्दर्य-भावना को भी ठेस पहुँचती है। तपस्वी की अपेक्षा नागरिक रुई (तूल) के सम्पर्क में अधिक रहते हैं और उसकी कोमलता का अनुभव करते हैं। यों चञ्चल जीवनवाले हिरन के साथ तत्काल जल जानेवाली रुई की उपमा ज्यादा अच्छी है। "क्व" का प्रयोग दो जगह करने से हिरन और बाण में बहुत दूरी या भिन्नता दिखाई गई है। दो भिन्न वस्तुओं को सम्पर्क में लाना जिस तरह अनुचित है, उसी प्रकार हिरन और बाण का संयोग उपस्थित करना भी अनुचित है। हिन्दी में भी यह ढंग प्रचलित है, जो "कहाँ राजा भोज, कहाँ गांगू तेली" जैसे वाक्यों में बहुत प्रचलित है। काव्यप्रकाश (१०) में यह श्लोक "विरोध" के अन्तर्गत आया है। "वज्रसाराः" कहकर राजा की तुलना इन्द्र से दी जा रही है। वज्रतुल्य बाण वाले के लिये यह विरोध (अत्यन्त अनुचित) है कि वह हिरन-जैसे कमजोर जानवर को मारे। राशि शब्द हिन्दी में स्त्री-लिङ्ग पर संस्कृत में पुंलिङ्ग है, यह अन्तर ध्यान देने योग्य है।

शब्दार्थ—सन्निपात्य = गिराने योग्य। हरिणक = अनुकम्पित मृग। जीवित = जीवन। लोल = चंचल। निशित-निपात = जिसकी नोक (गिरना या लगना) बहुत तेज है। वज्रसार = जिसकी कठोरता वज्र की कठोरता के समान है।

व्युत्पत्ति—सन्निपात्य = सम् + नि + पत् + णिच् + यत्। हरिणक = हरिण + कन्। जीवित = जीव् + क्त (नपुंसके भावे क्तः)। निशित = नि + शो + क्त। निपात = नि + पत् + घञ्।

समास—मृगस्य शरीरे मृगशरीरे (षष्ठी तत्पुरुष)। पुष्पाणां राशौ पुष्पराशौ (षष्ठी तत्पुरुष) निशितः निपातः येषां ते निशितनिपाताः (बहुव्रीहि) वज्रसाराः वज्रस्य सारः इव सारः येषाम् ते (वज्र इव सारः येषाम् ते) (बहुव्रीहि)।

छन्द—मालिनी छन्द है जिसका लक्षण अधोलिखित है :—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

दो नगणों, मगण, दो यगणों से युक्त छन्द मालिनी होता है जिसमें ८ तथा ७ (चरणान्त) पर यति होती है।

अलङ्कार—उपमा (तूलराशाविवाग्निः तथा वज्रसाराः) तथा विषम।

हिन्दी-अनुवाद—तो (इसलिये) जिसका निशाना भली-भाँति साधा है, (अपना) वह बाण

पाठा १. तदाशु। २. वे।

राजा—एष प्रतिसंहृतः (इति यथोक्तं करोति)।

(धनुष से) उतार लें। आपका हथियार पीड़ित की रक्षा के लिये है न कि निरपराध पर प्रहार करने के लिये।

अन्वय—तत् साधुकृतसंधानं सायकं प्रतिसंहर। शस्त्रं वः आर्त्तत्राणाय अनागसि प्रहर्त्तुम् न।

संस्कृत-टीका—तत् तर्हि। **साधु** सुष्ठु **कृतम्** विहितम् **सन्धानम्** धनुषि स्थापनम् यस्य। **सायकम्** शरम्। **प्रतिसंहर** तूणीरम् प्रत्यानय। **शस्त्रम्** आयुधम्। **वः** युष्माकम् (राजर्षीणाम्) **आर्त्तानाम्** पीडितानाम् **त्राणाय** रक्षणाय (अस्ति) **अनागसि** अपराधरहिते। **प्रहर्त्तुम्** प्रहारकरणाय। न।

हिन्दी-व्याख्या—सन्धान और प्रतिसंहार पारिभाषिक शब्द हैं जिनका अर्थ क्रमशः धनुष पर चढ़ाना और उतारकर तरकस में रखना है। इस पद्य में भी निषेध किया गया है और यह बताया गया है कि आप-जैसे का हथियार अच्छे काम के लिये है न कि निरपराध पर प्रहार करने के लिये। योग्य का अयोग्य से संगम कराना योग्य व्यक्ति को उचित नहीं है। इसके पूर्व के पद्य में अनुनय करने के बाद राजा पर अनुकूल प्रभाव देखकर आज्ञापात्र समझकर राजा को इस पद्य में आदेश दिया गया है। बाण चढ़ा लेने पर उसे उतारना प्रतिष्ठा का प्रश्न होता है, फिर भी राजा का रुख देखकर यहाँ वैसी आशा की गई है। इस पद्य में अस्त्र का उद्देश्य बहुत सुन्दरता से बताया गया है। अस्त्र उठाने का उद्देश्य पीड़ितों की रक्षा करना है, यदि वह न पूरा हो तो उसे नहीं उठाना चाहिये; वापस कर लेना चाहिये "साधु" का प्रयोग "कृत" के पूर्व होने से सन्धान, क्रिया का क्रिया-विशेषण मानना ज्यादा स्वाभाविक है, भले ही सन्धानक्रिया को साधु बताने का कोई विशेष उद्देश्य न हो और दुष्यन्त तथा उनकी धनुर्धरता को देखते हुये यह अपमान-जनक हो। "साधु" वाक्यालङ्कार के रूप में भी माना जा सकता है। "अच्छा होता" के रूप में उसका अनुवाद हो सकता है।

शब्दार्थ—साधु=भली-भाँति। कृतसन्धान=जिसे चढ़ाया गया है। प्रतिसंहर=(धनुष से) उतारो (और तरकस में रखो)। आर्त्त=पीड़ित व्यक्ति। वः=तुम्हारा (आदर के लिए बहुवचन)। अनागाः=निरपराध।

व्युत्पत्ति—कृत=कृ+क्त। सन्धान=सम्+धा+ल्युट्। सायक=सो+ण्वुल्। आर्त्त=आ+ऋ+क्त। त्राण=त्रै+ल्युट्। प्रहर्तुम्=प्र+हृ+तुमुन्।

समास—कृतम् सन्धानम् यस्य तम् (बहुव्रीहि)। आर्त्तस्य त्राणाय आर्त्तत्राणाय (षष्ठी तत्पुरुष)। अविद्यमानम् आगः यस्य तस्मिन् अनागसि (बहुव्रीहि)।

छन्द—श्लोक (अनुष्टुप्)। लक्षण १।५ में द्रष्टव्य।

हिन्दी-अनुवाद—लो वापस कर लिया (यह कहकर कहे-अनुसार करते हैं)।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति)। **एषः** अयम् (बाणः)। **प्रतिसंहृतः** तूणीरम् प्रत्यानीतः (इति एवम् कथयित्वा। **उक्तम्** कथितम् अनतिक्रम्य **यथोक्तम्** स्ववचनानुसारेण। **करोति** विदधाति)

हिन्दी व्याख्या—"एषः" "अविलम्ब" का अर्थ देता है।

वैखानसः—सदृशमेतत् पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः ।

[1]जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव ।
पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ॥ १२ ॥

राजा ने तत्काल बाण वापस ले लिया। श्रेष्ठ धनुर्धर के लिये चढ़ाया बाण उतारना अपशकुनकारी और प्रतिष्ठा-नाशक होता है। फिर दुष्यन्त सार्वभौम राजा हैं। उन्हें कोई आदेश देकर चढ़ा बाण वापस लेने को विवश नहीं कर सकता है। उनके वापस लेने से उनकी विनय-शीलता और तपस्वियों के प्रति आदर-भावना स्पष्ट है।

शब्दार्थ—एष=यह। प्रतिसंहृतः=वापस ले लिया गया। इति=ऐसा कहकर। यथोक्तम्=कहे-अनुसार।

व्युत्पत्ति—प्रतिसंहृत=प्रति+सम्+हृ+क्त। उक्त=वच्+क्त।

समास—उक्तम् अनतिक्रम्य इति यथोक्तम् (अव्ययीभाव)।

हिन्दी-अनुवाद—वैखानस—यह पुरु-कुल के दीपक आपके अनुरूप (ही) है।

संस्कृत-टीका—**वैखानसः** तापसः (कथयति)। **सदृशम्** अनुरूपम्। **एतत्** इदम्। **पुरोः** ययातितनयस्य **वंशस्य** कुलस्य **प्रदीपस्य** दीपकस्य, (दीपकः इव प्रकाशकस्य)। **भवतः** तव।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ तापस दुष्यन्त की सराहना करते हुये उसे पुरु वंश को उजागर करनेवाला कहता है। इस तरह न केवल उनको (तारीफ करता है), बल्कि कुल मात्र की तारीफ करता है। आशय यह है कि पुरु और उनके वंश में उत्पन्न सभी तपस्वियों के प्रति आदर-भाव रखने वाले होते आये हैं। यहाँ पुरु को वंश-प्रवर्त्तक बताते हुये उनके वंश की प्रशंसा की गई है। चन्द्रवंश में उत्पन्न होकर पुरु की श्रेष्ठता से पुरु-वंश चला जिस प्रकार रघु से सूर्य-वंश में रघुवंश चला। अत्रि के पुत्र सोम चन्द्र वंश के आदि-पुरुष हैं। इस वंश में सोम, बुध, पुरूरवा, आयु, नहुष और ययाति बहुत प्रसिद्ध राजे हुए। ययाति के पाँच पुत्र थे जिनमें से यदु और पुरु बहुत प्रसिद्ध और वंश-प्रवर्त्तक हुये। पुरु-वंश में तम्सु, अनिल, दुष्यन्त और भरत प्रसिद्ध राजे हुए। पुरु की १९वीं पीढ़ी में दुष्यन्त और बीसवीं में भरत हुए, यह महाभारत से पता चलता है। भरत के कुल का वर्णन महाभारत में मिलता है। यहाँ "प्रदीप" और "सदृश" के बीच षष्ठी विभक्ति ध्यान देने योग्य है।

शब्दार्थ—सदृश=अनुरूप।

व्युत्पत्ति—सदृश=समान+दृश्+कञ्।

समास—पुरोः वंशस्य (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रदीपस्य (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—जिसका जन्म पुरु के कुल में हुआ है, उस आपके लिए यह अत्यन्त उचित है। इस प्रकार के गुण से युक्त चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करो।

अन्वय—यस्य जन्म पुरोः वंशे (तस्य) तव (कृते) इदम् युक्तरूपम्। एवं गुणोपेतम् चक्रवर्तिनम् पुत्रम् आप्नुहि।

पाठा०—१ (श्लोक ही नहीं)।

संस्कृत-टीका—यस्य (भवतः दुष्यन्तस्य)। **जन्म** उत्पत्तिः। **पुरोः** ययातिपुत्रस्य पितृभक्तशिरोमणेः गुरुभक्तस्य। **वंशे** कुले (बभूव तस्य)। **तव** भवतः (दुष्यन्तस्य)। (कृते) **इदम्** एतत् तापसानुरोधरक्षणरूपम् कार्यम्। **युक्तरूपम्** अतिशयेन **युक्तम्** उचितम्। **एवम्** एतादृशैः **गुणैः उपेतम्** युक्तम्। **चक्रवर्त्तिनम्** राजाधिराजम्। **पुत्रम्** सुतम्। **आप्नुहि** लभस्व।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "पुरुवंश" न कहकर "पुरोर्वंशे" कहा गया है। समास न करने में ही ठीक अर्थ की व्यक्ति होती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि समास का प्रयोग कब किया जाय और कब नहीं। समास में आने पर "वंश" पर जोर हो जाता और "पुरु" शब्द केवल वंश के पहचानने में सहायक होता है। यहाँ उस वंश का गौरव बताता है, क्योंकि षष्ठी तत्पुरुष समास से अलग कर देने से उसकी स्वतन्त्र सत्ता हो गई है। पुरु की धार्मिकता, भक्ति आदि गुणों की याद दिलाने के लिए यह शब्द विशेष रूप से आया है। पुरु चन्द्र वंश में भी पुरुवंश चलाने में अपने महान् गुणों से समर्थ हुए। गुरु-जन-भक्ति उनमें इतनी थी कि ययाति को ससुर शुक्राचार्य ने जब अपनी बेटी देवयानी की अपेक्षा दैत्य-राज वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा को अधिक मानते समझकर वृद्ध होने का शाप दे दिया, तब उन्होंने अपने ५ बेटों से युवावस्था माँगी। ४ ने इनकार कर दिया; केवल पुरु ने युवावस्था देकर बुढ़ापा शिरोधार्य किया। १००० वर्षों के बाद ययाति ने युवावस्था देते हुए वरदान दिया कि तुम यशस्वी कुल-प्रवर्त्तक होओगे। यहाँ भी गुरु-जन तापसों के अनुरोध की रक्षा कर गुरु-भक्ति का परिचय देने से पुरु की परम्परा याद की गई है। आगे भी यह परम्परा चले, इसलिये ऐसे गुण से युक्त पुत्र पाओ, यह आशीर्वाद दिया गया है। पुत्र की समृद्धि पिता के लिए सबसे बड़ा आशीर्वाद माना जाता था, ऐसा प्रतीत होता है। इससे यह भी प्रतीति होती है कि दुष्यन्त तब तक निःसन्तान थे; पुत्र (सर्वदमन या भरत) पाने का आशीर्वाद भी इस श्लोक में दिया गया है। "चक्रवर्त्ती" शब्द पारिभाषिक है। चक्र का अर्थ भू-मण्डल, राज्य-मण्डल या सेना है और वर्त्ती का अर्थ रहने या चलाने के स्वभाव वाला है। इस प्रकार निम्नलिखित व्याख्यायें की जाती हैं :—

चक्रं राजसमूहं वर्त्तयितुं चालयितुं प्रशासितुं शीलमस्य। चक्रं सैन्यं वर्त्तयितुं सर्वभूमौ चालयितुं शीलमस्य। चक्रे भूमण्डले राजमण्डले वा वर्त्तितुं शीलमस्य। नारद के अनुसार चक्रवर्ती और सम्राट् ऐसा राजा है जो अन्य राजों—सकर और अकर—से कर लेता है :—

राजा तु त्रिविधो ज्ञेयः सम्राट् च सकरोऽकरः।
सर्वेभ्यः क्षितिपालेभ्यो नित्यं गृह्णाति वै करम्॥
स सम्राडिति विज्ञेयश्चक्रवर्ती स एव हि।

यहाँ "यस्य" के "यत्" शब्द का सम्बन्धी (co-relative) "तस्य" का "तत्" शब्द न होने से खटकता है।

शब्दार्थ—युक्तरूप = अत्यन्त उचित। एवंगुणोपेत = इस प्रकार के गुणों से युक्त। चक्रवर्त्ती = सम्राट्। आप्नुहि = पाओ।

व्युत्पत्ति—युक्तरूप = युज् + क्त + रूपप् (प्रशंसायाम्)। उपेत = उप + इ + क्त। चक्रवर्ती = चक्र + वृत् + णिनि।

राजा—(सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम् ।

वैखानसः—राजन् समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् । एषः खलु कण्वस्य कुलपते-रनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते । न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः । अपि च—

समास—एवम् ईदृशैः गुणैः (सह सुपा) उपेतम् एवंगुणोपेतम् (तृतीया तत्पुरुष)।

छन्द—श्लोक (अनुष्टुप्) जिसका लक्षण १।५ में देखा जा सकता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (प्रणाम-सहित)—शिरोधार्य है ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (**प्रणामेन** नत्या सह तत् यथा स्यात् तथा सप्रणामम्) (कथयति)। **प्रतिगृहीतम्** अङ्गीकृतम् ।

हिन्दी-व्याख्या—संक्षिप्त उत्तर देते हुए आशीर्वाद को स्वीकार करना राजा की सुशीलता का परिचायक है ।

शब्दार्थ—प्रतिगृहीत=(मेरे द्वारा) स्वीकार किया गया ।

व्युत्पत्ति—प्रणाम=प्र+नम्+घञ् । प्रतिगृहीत=प्रति+ग्रह्+क्त ।

समास—प्रणामेन सह सप्रणामम् (बहुव्रीहि) ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्वी—महाराज, समिधायें लाने के लिए हम रवाना हुये हैं यही (सामने) मालिनी (नदी) के तीर पर कुलपति कण्व का आश्रम दिखता है । यदि दूसरे काम में बाधा न हो तो प्रवेश कर अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिये । इसके अतिरिक्त ।

संस्कृत-टीका—**वैखानसः** तपोधनः (कथयति) । **राजन्** (हे) नृप । **समिधाम्** यज्ञकाष्ठानाम् **आहरणाय** आनयनाय । **प्रस्थिताः** प्रचलिताः (स्मः) । **वयम्** इमे जनाः । **एषः** पुरः दृश्यमानः । **खलु** निश्चयेन । **कण्वस्य** कण्वनाम्नः ऋषेः । **कुलपतेः** अयुतशिष्यपोषकस्य मुनिकुलेश्वरस्य । **मालिन्याः** मालिन्याख्यायाः नद्याः **तीरे** तटे **अनुमालिनीतीरम्** । **आश्रमः** मुनिवासः । **दृश्यते** विलोक्यते । **न** । **चेत्** यदि । **अन्यस्य** परस्य **कार्यस्य** कृत्यस्य **अतिपातः** व्याघातः (तर्हि) । **प्रविश्य** आश्रमान्तः गत्वा । **प्रतिगृह्यताम्** स्वीक्रियताम् । **आतिथेयः** अतिथियोग्यः । **सत्कारः** पूजा । **अपि** अन्यत् । **च** ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ तपस्वी राजा के अनुकूल आचरण से प्रसन्न होकर उनसे कुलपति कण्व के आश्रम में चलकर अतिथि-सत्कार ग्रहण करने के लिए अनुरोध करता है । अतिथि तपस्वियों से बड़ा न होने पर भी राजा और उपकारक है । जब किसी अज्ञात व्यक्ति के भी द्वार पर आ जाने पर उसे अतिथि मानकर उसका सत्कार किया जाता है, तब राजा के सत्कार का तो कहना ही क्या । राजा दिन रात राजकर्त्तव्यों में उलझे रहते हैं, उन्हें इनकार करने का कटु कर्त्तव्य वहन न करना पड़े, इसलिये उनके ऊपर अनुरोध हठ के रूप में नहीं लादा गया है । तपस्वी बुद्धिमान् और दूसरे की परिस्थिति समझने वाले हैं । हम लोग समिधायें लाने जा रहे हैं; न लाने से यज्ञ-कार्य में विघ्न और कुलपति की आज्ञा का उल्लंघन होगा, अतः स्वयं चले जायँ; हमारी विवशता देखते हुए बुरा न मानें,

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य ।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ॥ १३ ॥

यह भाव है। कवि राजा को आश्रम में अचानक पहुँचाना चाहता है जिससे शकुन्तला और उनका सम्बन्ध होने में आसानी हो । "एषः" उँगली से संकेत करना बताता है। हिन्दी में "यह रहा" से इसका अनुवाद किया जाता है।

कुलपति का अर्थ वंश का स्वामी है। यहाँ मुनि-वंश के स्वामी से अभिप्राय है। यह शब्द पारिभाषिक भी है। ब्राह्मण जाति का जो ऋषि १०,००० मुनि-छात्रों को अन्न-पान से पालन करता हुआ पढ़ाता है, उसे कुलपति कहते हैं।

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नपानादिपोषणात् ।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ (स वै) कुलपतिः स्मृतः ॥

(राघवभट्ट द्वारा पुराणोक्त कहकर तथा विद्यासागर द्वारा उद्धृत)।

इसी आधार पर अपने काशीस्थ हिन्दू विश्वविद्यालय में १०,००० छात्र रखने का लक्ष्य स्वर्गीय मदनमोहन मालवीय जी ने बनाया था और इसी आधार पर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर को कुलपति या उपकुलपति कहते हैं। चांसलर के लिए कुलपति शब्द अधिक प्रचलित है। आजकल पढ़ाने और भोजनादि की व्यवस्था करने की बात नहीं रह गई है; केवल प्रशासन रह गया है। पद्मपुराण में कुलपति को अयुत शिष्यों का आचार्य, मुनि-प्रमुख तथा प्रचुर व्रत, यज्ञादिक कर्म वाला कहा गया है—

आचार्यो बहुशिष्याणां मुनीनामग्रणीस्तु यः ।
व्रतयज्ञादिकर्माढ्यः स वै कुलपतिः स्मृतः ॥

शब्दार्थ—समित् = यज्ञ की लकड़ी (समिधा)। प्रस्थितः = रवाना। एषः = यह रहा। खलु = ही (जो अनुवाद में यह के साथ जोड़ा जा सकता है या छोड़ा भी जा सकता है)। कुलपति = मुनि-वंश के स्वामी। अनुमालिनीतीरम् = मालिनी (नदी) के किनारे। अतिपात = बाधा। प्रतिगृह्यताम् = (आपके द्वारा) ग्रहण किया जाय। आतिथेय = अतिथि योग्य। अपि = इसके अलावा।

व्युत्पत्ति—समित् = सम् + इन्ध + क्विप्। आहरण = आ + हर् + ल्युट्। प्रस्थित = प्र + स्था क्त। कार्य = कृ + ण्यत्। अतिपात = अति + पत् + घञ्। प्रविश्य = प्र + विश् + ल्यप्। आतिथेय = अतिथि + ढञ् (एय)। सत्कार = सत् + कृ + घञ्।

समास—कुलस्य पतिः कुलपतिः (षष्ठी तत्पुरुष) । मालिन्याः तीरम् मालिनीतीरम् (षष्ठी तत्पुरुष) मालिनीतीरे इति अनुमालिनीतीरम् (अव्ययीभाव)। अन्यत् च तत् कार्यम् च अन्यकार्यम् (कर्मधारय) तस्य अतिपातः (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी अनुवाद—जिनका धन तपस्या है, उनकी रमणीय और विघ्नरहित (जिनके विघ्न नष्ट कर दिये गये हैं) क्रियायें देखकर आप जानेंगे कि धनुष के डोर के चिह्न के भूषण वाली मेरी भुजा कितनी रक्षा करती है

राजा—अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः ।

अन्वय—रम्याः प्रतिहतविघ्नाः (च) तपोधनानाम् क्रियाः समवलोक्य (त्वम्) ज्ञास्यसि मौर्वीकिणाङ्कः मे भुजः कियत् रक्षति इति ।

संस्कृत टीका—**रम्याः** रमणीयाः । **प्रतिहताः** निरस्ताः **विघ्नाः** प्रत्यवायाः यासाम् तादृश्यः **प्रतिहतविघ्नाः** । **तपः** तपस्या **धनम्** वित्तम् येषाम् तेषाम् **तपोधनानाम्** तापसानाम् । **क्रियाः** कृत्यानि । **समवलोक्य** दृष्ट्वा । (त्वम्) **ज्ञास्यसि** अवगमिष्यसि **मौर्व्याः** धनुर्गुणस्य **किणः** चिह्नम् **अङ्कः** भूषणम् यस्य तादृशः । मे मम (दुष्यन्तस्य) । **भुजः** बाहुः । **कियत्** किम्परिमाणम् । **रक्षति** अवति । इति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ निर्विघ्न यज्ञादि-क्रियाओं का श्रेय राजा दुष्यन्त को दिया गया है, क्योंकि वे आश्रमों की रक्षा करते हैं। उनकी प्रभु-सत्ता से भय-भीत होने के कारण कोई दुष्ट बाधा नहीं डालता । उत्तरार्ध में "मे" का प्रयोग ध्यान देने योग्य है; आजकल हिन्दी ही नहीं संस्कृत में भी अंग्रेजी के अनुकरण पर ऐसे स्थलों पर सर्वनाम पुरुष को कर्त्ता के अनुसार रख देते हैं। अंग्रेजी का यह इनडाइरेक्ट हिन्दी या संस्कृत में चलाना उचित नहीं है। "मौर्वीकिणाङ्क" पद बहुत सार्थक है; भाव यह है कि आपकी भुजायें धनुष की डोरी से रगड़ खाती रहती हैं; आप धनुष को शस्त्रागार में रखकर आराम नहीं करते जिससे दुष्ट डरते हैं और रक्षा होती है । आश्रम जाने का एक बहुत बड़ा लाभ यहाँ बताया गया है कि वहाँ जाने से न केवल नवीन वस्तु देखने की उत्कण्ठा का शमन होगा, बल्कि यह सन्तोष भी होगा कि मेरी सतर्कता निर्विघ्नतारूप फल ला रही है। "तपोधन" शब्द के प्रयोग से तपस्वी ने अपना धन तप को बताया है और धन की रक्षा की जाती है, अतः राजा का तपस्या की रक्षा करना अर्थ अभिप्रेत है। अपनी सुकृति से सबको सन्तोष होता है, अतः दुष्यन्त को भी स्व-सुरक्षित तप वाले आश्रम को देखकर सन्तोष होगा, यह आशा की गई है।

शब्दार्थ—प्रतिहतविघ्न=जिसकी रुकावटें दूर कर दी गई हैं। कियत्=कितना। भुज=बाहु। मौर्वी=धनुष की डोर। किण=दाग। अङ्क=दाग, गहना या गोद। "डोर का दाग ही दाग है जिसका, डोर का दाग है गहना जिसका या डोर का दाग है गोद (ऊपर) में जिसके"—इन तीन तरीकों से तीनों अर्थ बैठ सकते हैं।

व्युत्पत्ति—रम्य=रम्+यत् । प्रतिहत=प्रति+हन्+क्त । विघ्न=वि+हन्+क । समवलोक्य=सम्+अव+लोक्+ल्यप् । मौर्वी (मूर्वायाः विकारः)=मूर्वा+अण्+ङीप् ।

समास—तपः धनम् येषाम् तेषाम् तपोधनानाम् (बहुव्रीहि) । प्रतिहताः विघ्नाः यासाम् ताः प्रतिहतविघ्नाः (बहुव्रीहि) । मौर्व्या कृतस्य (मध्यमपदलोपी) मौर्व्याः वा (षष्ठी तत्पुरुष) किणः (एव) अङ्कः (अङ्के वा) यस्य सः मौर्वीकिणाङ्कः (बहुव्रीहि) ।

छन्द—आर्या जिसका लक्षण १।२ में देखा जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—यहाँ कुलपति उपस्थित तो हैं न ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) **अपि** किम् । **संनिहितः** उपस्थितः । **अत्र** इह (आश्रमे) । **कुलपतिः** कण्वाख्यः मुनिकुलेश्वरः ।

वैखानसः—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः ।

हिन्दी-व्याख्या—"अपि" आरम्भ में "प्रश्न" के लिये आता है। कालिदास इसका प्रयोग इस रूप में प्रायः करते हैं। कुमार-सम्भव के सर्ग ५ में आस-पास ही ३ जगह ऐसे प्रयोग किये हैं—

१—अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं (कुमारसम्भव ५.३३)
२—अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं
प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम् । (कुमारसम्भव ५।३४)
३—अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः (कुमारसम्भव ५।३५)

इस वचन से ऐसा लगता है कि राजा आश्रम में जाने के पूर्व यह जानना चाहते हैं कि कुलपति के दर्शन हो सकेंगे या नहीं।

शब्दार्थ—अपि = क्या (हैं तो न)। सन्निहित = उपस्थित।

व्युत्पत्ति—संनिहित = सम् + नि + धा + क्त।

हिन्दी-अनुवाद—अभी-अभी बेटी शकुन्तला को अतिथि-सत्कार के लिये नियुक्त कर इस (शकुन्तला) के विपरीत भाग्य की शान्ति के लिये सोम-तीर्थ गये हैं।

संस्कृत टीका—वैखानसः तापसः (कथयति यत्)। **इदानीम्** अधुना। एव। **दुहितरम्** पुत्रीम्। **शकुन्तलाम्** शकुन्तलाख्याम्। अविद्यमाना (आगमनस्य) **तिथिः** दिवसः यस्य तस्य **अतिथेः** अभ्यागतस्य जनस्य **सत्काराय** पूजायै। **नियुज्य** आज्ञाप्य। **अस्याः** एतस्याः (शकुन्तलायाः)। **प्रतिकूलम्** विरुद्धम्। **दैवम्** भाग्यम् **शमयितुम्** शमनोपायेन अनुकूलयितुम्। **सोमतीर्थम्** तदाख्याम् तीर्थविशेषम्। **गतः** यातः (अस्ति)।

हिन्दी-व्याख्या—आगे शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य की बात आयेगी। कुलपति ने भविष्य जानने, अभी तक ब्याह न होने या भाग्य-प्रतिकूलता की सम्भावना से (कि भाग्य प्रतिकूल होगा तो ठीक हो जायेगा; नहीं होगा तो कोई हानि नहीं है) सोम-तीर्थ की यात्रा की है। किसी मुनि को इतना न मानकर शकुन्तला को मानने का कारण उसकी गुणवत्ता से अधिक उसे बचपन से पालने के कारण पुत्री-वत्सलता है। वह इतनी गुणी है कि स्त्री होते हुए भी कुलपति का प्रतिनिधित्व करती है और अतिथि-सत्कार-जैसी भारी जिम्मेदारी का कार्य उसे सौंपा जाता है। यह अतिथि-सत्कार में उसकी निपुणता का भी सूचक है। यह भी माना जा सकता है कि भाग्य-विपरीतता के शमन के लिए यह पुण्य कार्य सौंपा गया। यह भी सूचना है कि कुलपति के न रहने पर भी आपको अतिथि-सत्कारके अभाव, और उससे हुई असुविधा के अनुभव की सम्भावना नहीं करनी चाहिये।

"इदानीमेव" से यह सूचना मिल जाती है कि कण्व के शीघ्र लौटने की आशा नहीं है। ठीक ज्ञान न होने पर संभावना मूलक ज्ञान से ही काम चलाया जाता है। दुष्यन्त को इस सूचना से शकुन्तला के सम्पर्क में आने में शङ्कित नहीं होना पड़ा। दोनों को निकट लाने में यह परिस्थिति सहायक हुई।

सोमतीर्थ काठियावाड़ में सोमनाथ मन्दिर के समीप है। इसे वाराह-पुराण में प्रभास-तीर्थ कहा गया है। दक्ष के शाप से सोम (चन्द्रमा) को क्षय हो गया था जिससे मुक्ति इस तीर्थ के प्रताप से हुई थी।

पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम यत्रोडुराड् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां प्रभासनात्तस्य तु स प्रभासः।

[वाचस्पत्य में उद्धृत भागवत]

कवि ने कण्व को प्रभास-तीर्थ जैसे दूर-वर्त्ती स्थान पर भेजकर इस समय आगे की नाटक-वस्तु के लिये अनुकूल भूमि तैयार की है। शकुन्तला इतनी समझदार हो गई है कि वह अतिथि व्यवस्था कर सके। जब कण्व ने उसे इतना योग्य समझा तब ब्याह के लिये निर्णय की योग्यता भी समझ ली, ऐसा माना जा सकता है। शकुन्तला के विपरीत भाग्य से दुर्वासा के शाप और उस विपरीत भाग्य को अनुकूल बनाने के लिये कण्व का तीर्थाटन करना उस शाप के बाद पुनर्मिलन को पूर्व सूचना देता है। यह भी आभास मिलता है किसी का भाग्य पूरे तौर पर बदला नहीं जा सकता, हाँ विपरीतता का कुछ शमन पुण्य कार्यों से हो सकता है, जैसा शकुन्तला के जीवन में देखा जाता है। शकुन्तला के लिये कण्व की दुहिता का प्रयोग सूचित करता है कि पुत्री न होने पर भी कण्व ने उसे पुत्री बना लिया था।

शब्दार्थ—दुहिता = लड़की (इसका रूप पूर्वी हिन्दी में धिया और फारसी में दुख्तर है। शाब्दिक अर्थ दुहने वाली है। इससे प्रतीत होता है कि पहले पशुओं को दुहने का काम लड़की करती थी।) प्रतिकूल = विपरीत ("प्रतिकूलमस्या दैवम्" गद्य की प्रचलित शैली को यहाँ उलट दिया गया है। यह प्रयोग विशेष ध्यान देने-योग्य है। बोल-चाल में शब्दों में इस तरह का व्यत्यास सभी भाषाओं में देखा जाता है। "कूल" शब्द जुटा होने से प्रतिकूल और अनुकूल शब्द नाविकों से आये ऐसा माना जा सकता है। जो हवा किनारे (कूल) ले जाने में विरोधी (प्रति) हो, वह प्रतिकूल और जो सहायक (अनु) हो वह अनुकूल कही जा सकती है।

व्युत्पत्ति—दुहिता = दुह् + तृच्। अतिथि = अत् + इथिन् (जो हमेशा यात्रा करे)। एक रात रहने वाला व्यक्ति अस्थायी निवास के कारण अतिथि कहलाता है;

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ (मनुस्मृति ३।१०२)

इस पर टीका करते हुये कुल्लूक भट्ट का कहना है कि अस्थायी निवास से जिसके रहने में दूसरी तिथि न आने पाये वह अतिथि है—

अनित्यावस्थानान्न विद्यते द्वितीया तिथिरस्येत्यतिथिरुच्यते।

बहुव्रीहि समास से इसका अर्थ निकलता है कि जिसके (आने की) कोई तिथि न हो, एकाएक आ जाय।

अविद्यमाना (न विद्यते वा) तिथिः यस्य सः।

इसी आधार पर यह कहा जाता है कि अतिथि वह होता है जो अपरिचित हो। यदि वह परिचित होगा, तो पूर्व सूचना देकर या सुविधा के समय और अच्छी तिथि में ही आयेगा। पञ्च महायज्ञ

राजा—भवतु । तामेव द्रक्ष्यामि[1]। सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः कथयिष्यति ।[2]

करने वालों के लिये अतिथि उसी को मानना होता है जो अपरिचित और भूखा हो तथा भोजन के समय आ जाय । घर में आने वाला भी अतिथि कहलाता है;

अतिथिरभ्यतितो गृहान् भवति (पराशर-स्मृति १।४२) ।

तिथियों पर दूसरों के घर या कुल में पहुँचने वाला भी अतिथि माना गया है ।
'अभ्येति तिथिषु परगृहाणि वा परकुलानि वा ।' (निरुक्त ४।४।५)

व्युत्पत्ति—सत्कार = सत् + कृ + घञ् । इसमें चतुर्थी का प्रयोग लुप्त तुमुन्युक्त क्रिया के कर्म में लगता है । यहाँ "अतिथिसत्कारम् विधातुम्" के स्थान पर "विधातुम्" तुमुन्नन्त क्रिया को हटाकर उसके कर्म सत्कार में चतुर्थी विभक्ति रखते हैं । नियुज्य = नि + युज् + ल्यप् । शमयितुम् = शम् + णिच् + तुमुन् । गत = गम् + क्त ।

समास—अविद्यमाना तिथिः यस्य सः अतिथिः (बहुव्रीहि) तस्य सत्काराय अतिथिसत्काराय (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—कोई बात नहीं । उसी को देखूँगा । (कण्व के प्रति) मैं भक्ति करना जानता हूँ, यह बात वह महामुनि से अवश्य कहेगी ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) । **ताम्** पूर्ववर्णिताम् शकुन्तलाम् । **एव द्रक्ष्यामि** अवलोकयिष्यामि । **सा** पूर्ववर्णिता शकुन्तला । **खलु** निश्चयेन **विदिता** स्फुटा **भक्तिः** श्रद्धा यस्य तादृशम् । **माम्** इमम् जनम् । महान् परः च असौ **ऋषिः** मुनिः च तस्य **महर्षेः** (समक्षम्) । **कथयिष्यति** वदिष्यति ।

हिन्दी-व्याख्या—अभी तक यह प्रश्न था कि कण्व के न होने से जायेंगे या न जायेंगे, अब दुष्यन्त ने "भवतु" शब्द से यह स्पष्ट निश्चय प्रदर्शित कर दिया है कि वे अवश्य जायेंगे ।

शकुन्तला मेरे आश्रम में पहुँचने से मुझे कण्व के प्रति भक्तिमान् समझकर उनसे कहेगी, यह आशय है । यह अर्थ भी हो सकता है कि कण्व की प्रतिनिधिभूत शकुन्तला के प्रति भक्ति प्रगट कर कण्व के प्रति भक्ति प्रकट करूँगा जिससे वह उनसे कहेगी कि राजा आपके प्रति इतने भक्तिमान् हैं कि प्रतिनिधि होने पर भी दुष्यन्त ने मेरे प्रति आप के पद के गौरव को देखते हुये भक्ति दिखाई । "मेरी भक्ति कण्व से कहेगी" वाक्य यह बताता है कि दुष्यन्त इतना समझ चुके थे कि मेरे लौटने तक कण्व नहीं आयेंगे ।

शब्दार्थ—भवतु = कोई बात नहीं ("भवतु" अव्यय है । क्रिया होने पर इसका अर्थ "हो" है जिससे आशय निकल सकता है) । खलु = अवश्य । विदितभक्ति = जिसे भक्ति ज्ञात है, जिसकी भक्ति जग-विदित है या मेरे द्वारा विदित है, यह अर्थ ठीक नहीं बैठेगा । महर्षेः = महर्षि के सामने ।

व्युत्पत्ति—विदित = विद् + क्त । भक्ति = भज् + क्तिन् । "महर्षेः" में किसी अन्य विभक्ति का प्रसङ्ग न होने से "शेषे षष्ठी" या "सम्बन्धसामान्ये षष्ठी" से षष्ठी विभक्ति हुई है ।

पाठा०—१ पश्यामि । २ करिष्यति ।

वैखानसः—साधयामस्तावत् । (सशिष्यो निष्क्रान्तः ।)

समास—विदिता भक्तिः यस्य सः विदितभक्तिः (बहुव्रीहि) । अष्टाध्यायी ६।३।६६ के अनुसार विदिताभक्तिः होना चाहिये । सूत्र निम्नलिखित है :—

'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु'

इसके अनुसार बहुव्रीहि समास में यदि पूर्व पद आ या ई से अन्त होने वाला स्त्रीलिङ्ग शब्द हो और उसका पुंलिङ्ग रूप प्राप्त होता है तो पुंलिङ्ग ही रखा जायेगा, पर अन्तिम पद क्रम-वाचक विशेषण (प्रथमा, द्वितीया आदि) और प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा और भक्ति में से किसी शब्द के होने पर उक्त परिवर्तन नहीं होता अर्थात् पूर्व-पद स्त्रीलिङ्ग में ही रहता है । तदनुसार "भक्ति" पद के बाद में होने पर "विदिता" पद "विदित" (पुंलिङ्ग) नहीं होगा । इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास ने पाणिनि-व्याकरण का पालन नहीं किया है। यह इस बात का द्योतक है कि कालिदास बहुत प्राचीन हैं जब संस्कृत भाषा बोलचाल की थी जिससे लोग जन-भाषा से अधिक प्रभावित होते थे, न कि व्याकरण के नियमों से । कालिदास ने दृष्टभक्ति, दृढभक्ति, विश्राम जैसे अपाणिनीय और ह—जैसे वैदिक प्रयोग भी किये हैं जो उनकी प्राचीनता सिद्ध करते हैं । इतना होने पर भी विद्वानों ने इस प्रयोग को पाणिनीय सिद्ध करने के लिये प्रयास किये हैं जिनका ब्यौरा नीचे दिया जाता है :—

१—पाणिनि के द्वारा सूत्र-प्रयुक्त भक्ति शब्द का अर्थ है जिसे पूजा जाय (भज्यते इयम्) इस अर्थ में आने पर पूजा का कर्म होने से यह शब्द कर्म साधन कहा जायेगा । इसके विपरीत यहाँ आया "भक्ति" शब्द पूजा (भाव) अर्थ में आने से भाव-साधन है, अतः यहाँ सामान्य नियम लागू होकर पुंलिङ्ग रखा (पुंवद्भाव कर दिया) जायेगा । कर्मसाधनस्यैव भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठात् भवानी-भक्तिरित्यादौ कर्मसाधनत्वम् पुंवद्भावप्रतिषेधः । दृढभक्तिरित्यादौ तु भावसाधनत्वात् पुंवद्भावसिद्धिः पूर्वपदस्य (भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण) ।

२—मल्लिनाथ के अनुसार (मेघदूत के ३८वें श्लोक की टीका) पूर्व पद में स्त्रीलिङ्ग उपयोगी होने पर ही रखा जाता है—

अदार्ढ्यनिवृत्तिपरत्वे दृढशब्दाल्लिङ्गविशेषस्यानुपकारित्वात् स्त्रीत्वमविवक्षितम् ।

अर्थात् जब भक्ति के साथ स्त्रीलिंग की आवश्यकता हो तभी पुंवद्भाव नहीं होता । "दृढ" शब्द से अदृढ़ता की निवृत्ति होने से भाव का प्रसङ्ग है जहाँ लिङ्ग की अपेक्षा ही नहीं है ।

३—विशेषण को विशेष्य की तरह मानकर विदित का अर्थ विदित वस्तु (यत् विदितम् तत्) लेने पर उनमें विदित वस्तु एकमात्र भक्ति है यह अर्थ होगा तब नपुंसक लिङ्ग होने से स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता ।

४—"नपुंसके भावे क्तः" सूत्र के अनुसार "विदित" का अर्थ "ज्ञान" भी हो सकता है (जिस प्रकार "गतम्" का अर्थ गति होता है, उदाहरणार्थ:—गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः (शिशुपालवध १।२ ।); तब "जिनका ज्ञान-मात्र, भक्ति है", अर्थ लग सकता है ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्वी—तो हम चले । (शिष्य के साथ रङ्ग-मञ्च से हट जाता है) ।

राजा—सूत ! नोदयाश्वान्[1] । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं[2] पुनीमहे ।

संस्कृत-टीका—वैखानसः तपस्वी (कथयति यत् वयम्) **साधयामः** गच्छामः । **तावत्** तर्हि । **शिष्याभ्याम्** अन्तेवासिभ्याम् सह **सशिष्यः** । **निष्क्रान्तः** रङ्गमञ्चात् अपगतः ।

हिन्दी-व्याख्या—"साधयामः" का अर्थ "जाते हैं" है । इस अर्थ में इसका प्रयोग हर्षचरित (५) रघुवंश, नैषध आदि ग्रन्थों में, पर बहुत कम देखा जाता है, अतः ध्यान देने योग्य है । "साध्" में णिच् प्रत्यय लगने पर प्रायः "जाना" अर्थ होता है—

प्रायेण ण्यन्तकः साधिर्गमेरर्थे प्रयुज्यते (साहित्य दर्पण ६।१४४) ।

यहाँ "प्रायेण" इस अर्थ में ही प्रचलन तथा द्व्यर्थकता को बताता है । एस. रे ने इसके दो कारण दिये हैं—(१) नाटक में ही नहीं, अन्यत्र भी ऐसा प्रयोग होता है तथा (२) नाटक में इसके अतिरिक्त अन्य गत्यर्थक धातुओं का भी प्रयोग होता है । ये दोनों कारण उचित नहीं प्रतीत होते । नैषध में दो अर्थों में इसका प्रयोग मिलता है :

अयि साधय (गच्छ) साधये-(सिद्धताम् नय) प्सितं (नैषध २।६२)

विदा होने के अर्थ में ही इसका प्रयोग प्रचलित है, यद्यपि ऊपर विदा करने के अर्थ में प्रयोग हुआ है :—

साधयाम्यहमविघ्नमस्तु ते (रघुवंश ११।६१)

हर्षचरित (५) में भी विदा होने के ही समय ("साधयामो वयम्" का प्रयोग हुआ है ।

शब्दार्थ—साधयामः = (हम) जाते हैं ।

व्युत्पत्ति—साधयामः = साध् + णिच् + लट् + उत्तम पुरुष + बहुवचन । निष्क्रान्त = निस् + क्रम् + क्त ।

समास—शिष्याभ्यां सह सशिष्यः (बहुव्रीहि) । जिसे आशीर्वाद दिया जाय, उसमें बहुव्रीहि होने पर "सह" का "स" नहीं होता तथा गो वत्स और हल के अन्त में रहने पर "सह" के स्थान पर "स" ही होता है, शेष स्थानों पर "सह" और "स" दोनों में से एक का प्रयोग होता है । तदनुसार यहाँ "सहशिष्य" प्रयोग भी ठीक है ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—सारथि, घोड़ों को बढ़ाओ । पुण्य आश्रम के दर्शन से जरा अपने को पवित्र करें ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्) । **सूत** सारथे । **नोदय** प्रेरय । **अश्वान्** हयान् । **पुण्यस्य** पावनस्य **आश्रमस्य** तपोवनस्य **दर्शनेन** अवलोककेन । **तावत्** । **आत्मानम्** स्वम् । **पुनीमहे** पवित्रीकुर्महे ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा रथ से नहीं उतरे । सामान्य तापसों के प्रति ऐसा शिष्टाचार प्रतीत होता है । "पुण्य" को "दर्शन" का विशेषण भी माना जा सकता है । संस्कृत में षष्ठी विभक्ति से सम्बद्ध

पाठा०—१ चोदय । २ ("तावत्" नहीं है) ।

राजा—(समन्तादवलोक्य) सूत ! अकथितोऽपि ज्ञायत एव [1]यथाय[2]माभोगस्तपोवनस्येति।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (भूयो रथवेगं निरूपयति ।)

शब्द तत्काल बाद में रखा जाता है और बाद वाले शब्द का विशेषण बीच में न रखकर आरम्भ में रखना प्रचलित है। उसी क्रम से समास भी होता है। यह प्रयोग हिन्दी प्रयोग से मेल नहीं खाता। यदि आश्रम का पुण्य दर्शन अर्थ इष्ट हो तो "आश्रमस्य पुण्यम् दर्शनम्" न कहकर "पुण्यम् आश्रमस्य दर्शनम्" या "पुण्याश्रमदर्शनम्" ही कहना उचित है, जबकि हिन्दी में "आश्रम का पुण्य दर्शन" ही कहना ठीक है। पुण्य को "आश्रम-दर्शन" समस्त पद का विशेषण बनाकर कभी-कभी विशेषतः पद्य में देखा जा सकता है पर उसे वाग्व्यवहार नहीं माना जा सकता।

"आत्मानम्" में एकवचन ध्यान देने योग्य है। यद्यपि "वयम्" बहुवचन (क्रिया द्रष्टव्य) के लिये आया है। "आत्मन्" शब्द का एकवचन में ही प्रयोग प्रचलित है।

"पुनीमहे" में लट् लकार लोट् लकार जैसा अर्थ देता है, यह अर्थ ध्यान देने योग्य है।

शब्दार्थ—चोदय = प्रेरित करो। पुण्य = पावन। तावत् = जरा (शाब्दिक अर्थ "पहले" नहीं बैठेगा, ऐसे स्थलों में हिन्दी में "जरा" कहने का चलन है)। पुनीमहे = (हम) पवित्र करें।

व्युत्पत्ति—अश्र = अंश + क्वन्। पुण्य = पू + यण् (णुक्, ह्रस्व)। दर्शन् = दृश् + ल्युट्।

समास—पुण्यः च सः आश्रमः च पुण्याश्रमः (कर्मधारय) तस्य दर्शनेन पुण्याश्रमदर्शनेन (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—आयुष्मान् की जैसी आज्ञा (पुनः रथ की चाल का अभिनय प्रदर्शित करता है)।

संस्कृत-टीका—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्) **यत्** यथा। **आज्ञापयति** आदिशति। **आयुष्मान्** चिरजीवी (तथैव करिष्यामि) **भूयः** पुनः। **रथस्य** स्यन्दनस्य। **वेगम्** गतिम्। **निरूपयति** नाटयति।

हिन्दी-व्याख्या—रथ को चाल का अभिनय दिखाने का अर्थ है रथ चल रहा है, ऐसा दिखाना। इसके लिए अभिनेता हाथ चलाकर या पैर पटककर सारथियों जैसा अभिनय करेगा।

समास—रथस्य वेगम् रथवेगम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (चारों ओर देखकर)—सारथि, किसी के कहे बिना भी अपने आप ठीक पता लग जाता है कि यह आश्रम का विस्तार है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (**समन्तात्** चतसृषु दिक्षु। **अवलोक्य** दृष्ट्वा) (कथयति यत्)। **सूत** सारथे। न **कथितः** वर्णितः **अकथितः**। **अपि** (यद्यपि न कथितः तथापि) **ज्ञायते** अवगम्यते। **एव** स्वतः। **यथा** सम्यक्। **अयम्** एषः। **आभोगः** विस्तारः। **तपोवनस्य** आश्रमस्य। **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—"अकथितः" पद यह सूचित करता है कि पहले तपस्वी ने उँगली के सकेत

पाठा० १ ०।२ आश्रमाभोगः (या आश्रमस्तपोधनस्य)।

सूतः—कथमिव ।

राजा—किं न पश्यति भवान् । इह हि ।

से जो आश्रम की अवस्थिति बताई थी, उससे ठीक पता नहीं चला, फिर भी मैं लक्षणों से जान लेता हूँ । यह अर्थ भी हो सकता है कि मुझे तो बता दिया गया है पर इस आश्रम की समीपता का पता तो लक्षणों से ही लग जाता है; कहने की आवश्यकता ही नहीं है ।

आभोग के स्थान पर आश्रम पाठ भी मिलता है पर वह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि आगे चलने पर आश्रम का द्वार मिलता है; अभी केवल पड़ोस या सीमा में पहुँचे हैं ।

आभोग का अर्थ पूर्णता है, पूर्णत्वायतनावाभोगौ (त्रिकाण्डशेषः) ।

यहाँ "विस्तार" अर्थ लेने का कारण यह है कि भाव द्रव्य की तरह प्रकाशित होता है, भाव ग्रहण करने से द्रव्य का ग्रहण होता है :—

कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते ।
भावानयने द्रव्यानयनम् ।

शब्दार्थ—समन्तात् = चारों तरफ । अकथित = वह जिसका वर्णन नहीं किया गया है । एव = ही (यहाँ जोर देने के लिए हिन्दी में अपने आप ठीक अनुवाद है) । यथा = ठीक (यहाँ अन्त में "इति" होने से "कि" अर्थ न लेकर "ठीक" अर्थ लेना अधिक अच्छा है) । आभोग = विस्तार ।

व्युत्पत्ति—अवलोक्य = अव + लोक् + ल्यप् । अकथित = अ + कथ् + क्त । यथा = यत् + थाल् । आभोग = आङ् + भुज् + घञ् ।

समास—न कथितः अकथितः (नञ् तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—कैसे ?

संस्कृत-व्याख्या—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्) । **कथम्** केन प्रकारेण । **इव** ।

हिन्दी-व्याख्या—"इव" वाक्यालङ्कार के लिये है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—क्या नहीं देखते आप ? यहाँ तो ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) **किम्** । **न** । **पश्यति** अवलोकते । **भवान्** त्वम् । **इह** अत्र स्थाने **हि** निश्चयेन ।

हिन्दी-व्याख्या—ध्यान आकृष्ट करने के लिये राजा यह वाक्य कह रहे हैं । "भवान्" का प्रयोग ध्यान देने-योग्य है । आजकल प्रचलन है कि बड़े के लिये हिन्दी में प्रयुक्त आपका अनुवाद "भवत्" से किया जाय; संस्कृत में "भोज-प्रबन्ध" (बल्लाल-कृत) में एक स्थान पर "युष्मत्" से "भवत्" का यह अन्तर दिखाया गया है, किन्तु संस्कृत-साहित्य में अर्थ की दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है । बाण ने हर्ष-चरित के पञ्चम उच्छ्वास में पिता के मरने पर शोकाकुल राज्यवर्धन के मुख से हर्षवर्धन के लिये एक साथ दोनों शब्दों का प्रयोग कराया है । यहाँ भी ऊपर "नोदय" के प्रयोग में "त्वम्" कर्त्ता छिपा हुआ है जो युष्मद् का रूप है । यह ध्यान देना चाहिये कि "भवत्" प्रथम पुरुष है, अतः तिङन्त क्रिया के प्रयोग के समय सावधानी अपेक्षित है ।

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः ॥ १४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—नीवार (मुनि-अन्न) वृक्षों के नीचे अन्दर तोते लिये हुए कोटरों (पेड़ के खोखले भागों) के द्वार से गिरे पड़े हैं । कहीं तेल से सने पत्थर बरबस इङ्गुदी फल तोड़ने वाले सूचित होते हैं, विश्वास हो जाने से अविचलित-गति वाले हिरन आवाज सह लेते हैं और जल धारण करने वाले (जलाशय आदि स्थानों के) मार्ग वल्कलों (पेड़ की छालों) के सिरे टपकने से रेखाङ्कित हैं ।

अन्वय—नीवाराः तरूणाम् अधः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टाः विद्यन्ते, क्वचित् प्रस्निग्धाः उपलाः इङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्ते एव, विश्वासोपगमात् अभिन्नगतयः मृगाः शब्दम् सहन्ते, तोयाधारपथाः च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः ।

संस्कृत-टीका—नीवाराः मुन्यन्नानि । तरूणाम् वृक्षाणाम् । अधः तले । शुकाः कीराः गर्भे मध्ये येषाम् तादृशानाम् कोटराणाम् बिलानाम् मुखात् द्वारात् भ्रष्टाः पतिताः क्वचित् कुत्रापि । प्रस्निग्धाः प्रकर्षेण तैलयुक्ताः । उपलाः प्रस्तराः इङ्गुदीफलानि तापसतरुफलानि भेत्तुम् शीलम् एषाम् ते इङ्गुदीफलभिदः । सूच्यन्ते अनुमीयन्ते । एव । विश्वासस्य विश्रम्भस्य । उपगमात् आविर्भावात् अभिन्ना अविकृता गतिः वेगः येषां ते अभिन्नगतयः मृगाः हरिणाः । शब्दम् ध्वनिम् । सहन्ते अचकिताः शृण्वन्ति । तोयस्य जलस्य आधाराः अधिकरणभूताः जलाशयाः तेषाम् पन्थानः मार्गाः । च । वल्कलानाम् वृक्षत्वग्रूपवस्त्राणाम् शिखाभ्यः अग्रेभ्यः यः निष्यन्दः जलस्रावः तस्य या रेखा पंक्तिः तया अङ्किताः चिह्निताः (दृश्यन्ते) ।

हिन्दी-व्याख्या—नीवार, तेल से सने पत्थर, विश्वस्त हिरन, जलाशय के मार्ग का पानी गीला होना—ये लक्षण तपोवन के अलावा कहीं नहीं देखे जाते । नीवार का इस्तेमाल मुनियों के अलावा कोई नहीं करता । तपस्वी पत्थरों से इङ्गुदी-फल तोड़कर तेल निकालते हैं जिसे अपने इस्तेमाल में लाते हैं । हिरनों की जीभ कुश से छिल जाने पर यह तेल लगाया जाता है । बच्चे इस फल के बीज की गिरी खाते हैं, तांत्रिक इसकी माला पुत्र-दायक बताते हैं और मुनि इसे दीपक में जलाते हैं (रघुवंश १४।८१) ।

नीवार बिना जोते-बोये होने वाला अन्न है जिसे मुनि खाते हैं । तोते अपने बच्चों के लिये मुँह में भरकर अनाज खेतों से लाते हैं; चुगाते, उनके संचित करते या दयालु मुनियों के रखते समय कुछ दाने गिर जाते हैं । "कोटरार्भक" बंगीय पाठ है जिससे यह अर्थ अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है । सिल या लोढ़े का काम करने वाले पत्थरों में बहुत अधिक तेल होना यह बताता है कि बहुत से तपस्वी हैं जिससे इङ्गुदीफल कूँचने का काम बहुत होता है । "स्वप्नवासवदत्तम्" के आरम्भ में भास ने हिरनों का इसी प्रकार विश्वस्त चरना आश्रम के नैकट्य की पहचान बताया है—

पाठा० १ कोटरार्भक ।

अपि च—

कुल्याम्भोभिः[1] पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन ।
एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ॥ १५ ॥

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्ययाः (स्वप्न० १।१२)

आश्रम में हिरनों को डराने या परेशान करने की जगह प्यार से पालते हैं; बचपन में पाले हुये पशु गृहस्थों के यहाँ भी विश्वस्त होते हैं और बात-बात में डरते नहीं। मन की न करने देने पर पशु डरते और आवाज से चौंकते हैं। यहाँ की आवाज रथ की घरघराहट आदि हो सकती है।

वल्कल धोने के बाद उन्हें आश्रम के वृक्षों पर लटकाकर सुखाने के लिये लाने में जलाशय और कुटी के बीच का मार्ग जल की रेखा धारण करता है।

निष्यन्द का अर्थ टपकाव है। भाव-वाचक संज्ञा होते हुये भी इसका अर्थ जल हो जाता है क्योंकि भाव-ग्रहण से द्रव्य-ग्रहण होता है। प्रकृति-वर्णन की क्षमता दर्शनीय है।

शब्दार्थ—नीवार=मुनि-अन्न। शुकगर्भ=जिनके अन्दर तोते हैं। मुख=द्वार। प्रस्निग्ध=खूब चिकने। सूच्यन्ते=ज्ञात होते हैं। उपगम=आना (यहाँ "होना")। अभिन्नगति=जिनकी चाल नहीं बदलती अर्थात् जो भागते नहीं। सहन्ते=सह लेते हैं अर्थात् सुनकर उद्विग्न नहीं होते। तोयाधार=जलाशय। शिखा=ऊपरी भाग। निष्यन्द=टपकाव।

व्युत्पत्ति—भ्रष्ट=भ्रश्+क्त। प्रस्निग्ध=प्र+स्निह्+क्त। फलभिदः=फल+भिद्+क्विप्। विश्वास=वि+श्वस्+घञ्। उपगम=उप+गम्+अप्। अभिन्न=अ+भिद्+क्त। गति=गम्+क्तिन्। आधार=आ+धृ=घञ्। निष्यन्द=नि+स्यन्द्+घञ्। अङ्कित=अङ्क+क्त।

समास—शुकाः गर्भे येषाम् (बहुव्रीहि) तेषाम् कोटराणाम् मुखात् (षष्ठी तत्पुरुष) भ्रष्टाः (पञ्चमी तत्पुरुष)। विश्वासस्य उपगमात् विश्वासोपगमात् (षष्ठी तत्पुरुष) भिन्ना गतिः येषाम् ते भिन्नगतयः (बहुव्रीहि) न भिन्नगतयः अभिन्नगतयः (नञ् तत्पुरुष) तोयस्य आधारस्य (षष्ठी तत्पुरुष) पन्थानः (षष्ठी तत्पुरुष) तोयाधारपथाः। वल्कलस्य शिखानाम् (षष्ठी तत्पुरुष) निष्यन्दस्य (षष्ठी तत्पुरुष) रेखया अङ्किताः (तृतीया तत्पुरुष)।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण निम्न-लिखित है:—

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगणों तथा एक गुरु से बनने वाला छन्द शार्दूल-विक्रीडित है; इसमें १२ तथा ७ (चरणान्त) पर यति होती है।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, अनुमान, समुच्चय और स्वभावोक्ति।

हिन्दी-अनुवाद—इसके अतिरिक्त वायु से चंचल कृत्रिम नदी के जल से वृक्षों की जड़ें धुल गई हैं, घी से निकले धुयें से नये पत्तों की कान्ति की लालिमा भिन्न हो गई है और निकट ही ये

पाठा०—१ ०। श्लोक ही नहीं।

छौने, जिनका डर नष्ट हो गया है उपवन की उस भूमि पर धीमी चाल से चल रहे हैं जिसके कुश-अग्र-भाग काट डाले गये हैं।

अन्वय—पवनचपलैः कुल्याम्भोभिः शाखिनः धौतमूलाः। किसलयरुचाम् रागः आज्यधूमोद्गमेन भिन्नः। अर्वाक् च एते नष्टाशङ्काः हरिणशिशवः छिन्नदर्भाङ्कुरायाम् उपवनभुवि मन्दमन्दम् चरन्ति।

संस्कृत-टीका—अपि अन्यत् **च**। **पवनेन** वायुना **चपलैः** चञ्चलैः **कुल्यायाः** कृत्रिमायाः सरितः **अम्भोभिः** जलैः। **शाखिनः** वृक्षाः। **धौतानि** प्रक्षालितानि **मूलानि** अधोभागाः येषाम् तादृशाः। **किसलयानाम्** पल्लवानाम् **रुचाम्** प्रभाणाम्। **रागः** लौहित्यम् **आज्यस्य** घृतस्य यः **धूमः** शिखिध्वजः तस्य **उद्गमेन** उद्भवेन। **भिन्नः** परिवर्तितः। **अर्वाक्** समीपे। **च**। **एते** इमे पुरः दृश्यमानाः। **नष्टा** दूरीकृता **आशङ्का** भयम् येषाम् ते **नष्टाशङ्काः**। **हरिणानाम्** मृगाणाम् **शिशवः** पोताः। **छिन्नाः** लूनाः **दर्भाणाम्** कुशानाम् **अङ्कुरा** अग्रभागाः यस्याः तादृश्याम्। **उपवनस्य** उद्यानस्य **भुवि** भूमौ। **मन्दमन्दम्** शनैः शनैः **चरन्ति** चलन्ति।

हिन्दी-व्याख्या—आश्रम के पड़ोस के तीन प्रमाण यहां और दिये गये हैं, (१) नहर के वायु-चञ्चल जल से वृक्षों की जड़ों का धुलना, (२) घी के धुयें से पल्लवों की ललाई में परिवर्तन आना और (३) पास ही कुश के कटे खेतों में हिरनों का धीरे-धीरे चलना। ये नहरें दूरवर्ती वृक्षों तक जल पहुंचाने के लिये बनी हैं, मुनि-कन्यायें एक ओर जल गिराकर सींचती हैं, नालियों से पानी चारों ओर के वृक्षों में पहुँच जाता है और हवा चलने से यह पानी जड़ों को धोता है। घी की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के लिये संस्कृत में बहुत अच्छे शब्द हैं। मक्खन को नवनीत कहते हैं, उसे गलाकर सर्पिष् (पिघला घी) बनाते हैं, वह जम जाता है तब घृत (जमा घी) कहलाता है। कल के दुहे दूध का घी हैयङ्गवीन कहलाता है:—

> सर्पिर्विलीनमाज्यं स्याद् घनीभूतं घृतं भवेत्।
> तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम्॥ (अमर कोष २।९।५२)

नई पत्तियों का रंग लाल है, पर धुयें से वह बदल गया है। दूसरे रंग का नाम न लेने से ऐसा प्रतीत होता है कि रंग में थोड़ा ही परिवर्तन हुआ है। इसका कारण यज्ञ के धुयें से कुछ दूर होना है। ऐसा भी माना जा सकता है कि कभी-कभी मुनि इधर के इलाके में भी यज्ञ करते हैं जिससे पत्तियों का रंग बदल गया है। कुश का ऊपरी भाग बहुत नुकीला होता है; उसे काट देने से हिरनों के लिये खतरा नहीं रह जाता।

इससे पूर्व के श्लोक में आये वर्णन से यह वर्णन कुछ भिन्न है। इसमें सिंचाई की नालियाँ, कुश के कटे खेत और पत्तियों पर धुयें का असर और हिरनों के बच्चे (जो छोटे होने से हिरनों की भांति दूर नहीं जाते) आश्रम के अधिक निकटता के सूचक हैं।

श्री एस० रे ने इस श्लोक को प्रक्षिप्त बताकर पुष्टि में कुछ तर्क दिये हैं जो उचित नहीं प्रतीत होते -

१—श्लोक का पूर्वार्द्ध आश्रम का वर्णन है; पड़ोस का नहीं।

२—उत्तरार्ध पूर्व श्लोक की आवृत्ति भर है और कालिदास जैसे कुशल कवि से ऐसी स्थूल भूल

सूतः—सर्वमुपपन्नम् ।

को आशा नहीं है । पूर्व श्लोक आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक (९ वीं शताब्दी) में उद्धृत किया है, अतः वह प्रामाणिक और यही प्रक्षिप्त है !

३—मुनि-कन्यायें हर वृक्ष सींचती थीं (नाली से सिंचाई नहीं होती थी) ।

४—यज्ञ पड़ोस में नहीं किये जाते और आश्रम का धुआं इतना नहीं होता कि पड़ोस के पत्तों की ललाई में परिवर्तन ला दे ।

५—पूर्व श्लोक में हिरन जाति के लिए है जिसमें मादा और बच्चों का भी समावेश है, अन्यथा मृगियों का वर्णन जो जल्दी घबड़ा सकती हैं विशेष रूप से होता ।

सारथि को तपोवन की निकटता का पता न लगना पर राजा को लग जाना यह सूचित करता है कि चिह्न ऐसे सूक्ष्म और साधारण थे कि केवल ध्यान से देखने पर ही पकड़े जा सकते थे । इस श्लोक की बातें इतनी स्पष्ट हैं कि सारथि की आंखों से ओझल नहीं हो सकतीं ।

शब्दार्थ—कुल्या = नाली (कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्—अमरकोष) । शाखी = वृक्ष । धौतमूल = जिनकी जड़ें धुल गई हैं । भिन्न = परिवर्त्तित । राग = लालिमा । रुच् = कान्ति । आज्य = घी । धूमोद्गम = धुयें का निकलना ।

"निकले हुये धुयें से" अर्थ अनुवाद में ठीक बैठेगा । उद्गम भाववाची संज्ञा है और भाव से द्रव्य का ग्रहण होता है, अतः उद्गम से उद्गम-युक्त धुआँ अर्थ लगेगा । कौतूहल युक्त नेत्र के लिये "नेत्र-कौतूहलानाम्" जैसे प्रयोग कालिदास ने किये हैं (मेघदूत ४७) । अर्वाक् = निकट । छिन्न-दर्भाङ्कुरा = जहाँ कुश के सिरे काटे जा चुके हैं । नष्टाशङ्का = जिनका डर नष्ट हो चुका है अर्थात् निडर । मन्द-मन्द = मन्द प्रकार से । चरन्ति = चलते या चरते हैं ।

व्युत्पत्ति—धौत = धाव् + क्त । भिन्न = भिद् + क्त । राग = रञ्ज् + घञ् । उद्गम = उत् + गम् + अप् । छिन्न = छिद् + क्त । नष्ट = णश् + क्त ।

समास—कुल्यायाः अम्भोभिः (षष्ठी तत्पुरुष) । पवनेन चपलैः पवनचपलैः (तृतीया तत्पुरुष) धौतम् मूलम् येषाम् ते धौतमूलाः (बहुव्रीहि) । किसलयानाम् रुचाम् किसलयरुचाम् (षष्ठी तत्पुरुष) । आज्यस्य धूमः (षष्ठी तत्पुरुष) धूमस्य उद्गमेन (षष्ठी तत्पुरुष) आज्यधूमोद्गमेन । उपवनस्य भुवि उपवनभुवि (षष्ठी तत्पुरुष) छिन्नाः दर्भाणाम् अङ्कुराः (षष्ठी तत्पुरुष) यस्याः तस्याम् छिन्न-दर्भाङ्कुरायाम् (बहुव्रीहि) । नष्टा आशङ्का येषाम् ते नष्टाशङ्काः (बहुव्रीहि) । हरिणस्य शिशवः हरिणशिशवः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

छन्द—मन्दाक्रान्ता छन्द है जिसका लक्षण निम्नलिखित है—

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मोभनौ तौ गयुग्मम् ।

मगण, भगण, नगण, दो तगणों और दो गुरुओं से मन्दाकान्ता छन्द होता है जिसमें ४, ६ तथा ७ (चरणान्त) पर यति होती है ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, अनुमान, समुच्चय और स्वभावोक्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—सब यथार्थ है ।

राजा—(स्तोकमन्तरं गत्वा ।) तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत् । एतावत्येव रथं स्थापय यावदवतरामि ।

सूतः—धृताः प्रग्रहाः । अवतरत्वायुष्मान् ।

संस्कृत-टीका—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्) । **सर्वम्** सकलम् (भवता उक्तम्) **उपपन्नम्** युक्तम् (युक्तिभिः प्रतिपादितम्) ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ सारथि ने राजा के बुद्धिमत्ता-पूर्ण तर्क मान लिये हैं और यह तपोवन का विस्तार ही है, यह स्वीकार कर लिया है।

शब्दार्थ—उपपन्न=ठीक ।

व्युत्पत्ति—उपपन्न=उप+पत्+क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (कुछ दूर चलकर)—आश्रम में रहने वालों को असुविधा न हो । इतने पर ही रथ रोक दो, अब उतरूँगा ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) । (**स्तोकम्** अल्पम् । **अन्तरम्** अवकाशम् । गत्वा यात्वा) **तपसः** तपस्यायाः **वने** विपिने **तपोवने** आश्रमे **निवासिनाम्** कृतवसतीनाम् । **उपरोधः** असौविध्यम् । मा न । **भूत्** स्यात् **एतावति** एतावन्तम् प्रदेशम् । उल्लङ्घ्य । **एव - रथम्** स्यन्दनम् । **स्थापय** स्थिरीकुरु । **यावत्** यथा । **अवतरामि** अवतीर्य पद्भ्याम् गच्छामि ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा का सौजन्य देखने लायक है । तपोवन में घरघराहट और राजसी शान से शान्ति में विघ्न हो सकता है, यह सोचकर राजा उतर कर पैदल चलते हैं । सवारी से दूर पर ही उतर जाना आदर के लिये भी होता है । सवारी से जाना अच्छा न मानकर तीर्थ, मन्दिर आदि में पैदल जाते हैं । वाहन से घमण्ड व्यक्त होता है, यह मानकर भी उसे दूर रखने का रिवाज यहीं नहीं इङ्गलैण्ड आदि विदेशों में भी है । आजकल के राजपुरुषों की दुर्विनीतता को देखते हुए प्राचीन शालीनता बरबस ध्यान आकृष्ट कर लेती है । दूसरे की असुविधा का ख्याल रखना बहुत ऊँची बात है । "एतावति एव" का ठीक भाव "इतने पर ही" है जो आज भी बोला जाता है ।

शब्दार्थ—स्तोक=थोड़ा । अन्तर=दूरी । उपरोध=असुविधा । मा=न । भूत्=हो । एतावति=इतने पर । यावत्=अब । अवतरामि=उतरूँगा । वर्त्तमान का प्रयोग निकट भविष्य के लिये होता है ।

व्युत्पत्ति—गत्वा=गम्+क्त्वा । निवासी=नि+वस्+णिनि । उपरोध=उप+रुध्+घञ् । भूत्=भू+लुङ् (प्रथम पुरुष एक वचन) । "माङि लुङ्" के अनुसार लुङ् लकार का प्रयोग "मा" के साथ आता है । ऐसी स्थिति में आरम्भिक "अ" निकाल दिया जाता है ।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—बागें खींच ली हैं, आयुष्मान् उतरें ।

संस्कृत टीका—**सूतः** सारथिः (कथयति यत्) । **धृताः** संयमिताः **प्रग्रहाः** रश्मयः । **अवतरतु** रथात् नीचैः आगच्छतु । **आयुष्मान्** चिरञ्जीवी ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा आश्रम के पड़ोस के दृश्यों को देखने में लीन हैं जिससे रथ रुकने पर उतरने की सुध उन्हें नहीं रह गई है । सारथि ध्यान खींचकर उतरने की याद दिलाता है ।

राजा—(अवतीर्य[1]) सूत! विनीतवेषेण[2] प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम[3]। इदं[4] तावत् गृह्यताम्[5] (सूतस्याभरणानि [6] धनुश्चोपनीय[7]) सूत ! यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः ।

शब्दार्थ—प्रग्रह=वाग।

व्युत्पत्ति—धृत=धृ+क्त। प्रग्रह=प्र+ग्रह्+अच्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (उतरकर)—सारथि, तपोवनों में विनम्र वेष में प्रवेश करना चाहिये। यह जरा ले लो। (सारथि को गहने और धनुप देकर) सारथि, मैं आश्रम-वासियों को देख कर वापस आता हूँ; इस बीच घोड़ों की पीठ गीली करो।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (**अवतीर्य** रथात् अधः आगत्य)। **सूत** सारथे। **विनीतः** नम्रः च असौ **वेषः** स्वरूपम् च तेन। **प्रवेष्टव्यानि** प्रवेशयोग्यानि। **तपोवनानि** आश्रमाः। **नाम** निश्चयेन। **इदम्** एतत्। **तावत् गृह्यताम्** गृहीत्वा रक्ष्यताम्। **सूतस्य** सारथेः **आभरणानि** आभूषणानि। **धनुः** कार्मुकम्। **च**। **उपनीय** उपहृत्य) **सूत** सारथे। **यावत्** यावत्पर्यन्तम् **आश्रमे** तपोवने ये **वसन्ति** तिष्ठन्ति तान्। **प्रत्यवेक्ष्य** दृष्ट्वा। **अहम्** अयम् जनः। **उपावर्त्ते** प्रत्यागच्छामि। **तावत्** तावत्पर्यन्तम्। **आर्द्रम्** सजलम् **पृष्ठम्** पृष्ठदेशः येषाम् तादृशाः **आर्द्रपृष्ठाः**। **क्रियन्ताम्** विधीयन्ताम्। **वाजिनः** अश्वाः।

हिन्दी-व्याख्या—आश्रम में हथियारों और गहनों के साथ ठाट-वाट और रोब से जाना वर्जित माना जाता है। पूजनीय व्यक्तियों और स्थानों के लिए यह नियम आज भी वैसा है। मन्दिरों में जाते समय टोपी और जूता उतारने के रूप में उक्त रिवाज आज भी चला आ रहा है।

दान-पात्र में चतुर्थी होती है। यदि दान-पात्र न हो या दान न देकर सौंपा जाय तो षष्ठी या सप्तमी होती है।

"उपनीय" की जगह "उपनयति" प्रयोग निर्देश की दृष्टि से अच्छा है।

घोड़े की पीठ पर पानी डालने से उनकी थकावट दूर होती है और वह फिर तरोताजा हो जाता है। यह उन्हें विश्राम देना है।

निरीक्षण के समय वेष और आभरण विनीत होने चाहिये—

विनीतवेषाभरणः पश्येत् कार्याणि कार्यिणाम् (मनुस्मृति ८।२)।

शब्दार्थ—उपनीय=सौंपकर। यावत्=जब तक। प्रत्यवेक्ष्य=देखकर। उपावर्त्ते=लौटूँ। तावत्=तब तक। आर्द्रपृष्ठ=जिसकी पीठ गीली हो।

व्युत्पत्ति—अवतीर्य=अव+तॄ+ल्यप्। विनीत=वि+नी+क्त। प्रवेष्टव्य=प्र+विश्+

पाठा०—१ "आत्मानमवलोक्य च" अधिक पाठ है। २ वेशेन। ३ यह पाठ नहीं है। ४ तदिमानि। ५ गृह्यन्तामाभरणानि धनुश्च। [इति सूतस्यार्पयति] इसके आगे नहीं है) ६ सूताय। ७ अर्पयति (अधिक पाठ है)।

सूतः —(निष्क्रान्तः) ।

राजा—(परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमद्वारम् । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य । [1]निमित्तं [2]सूचयन्) ।

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य ।
अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ १६ ॥

तव्यत् । आभरण=आ+भृ+ल्युट् । उपनीय=उप+नी+ल्यप् । आश्रमवासी=आश्रम+वस्+णिनि । प्रत्यवेक्ष्य=प्रति+अव+ईक्ष्+ल्यप् ।

समास—विनीतः च असौ वेषः च तेन विनीतवेषेण (कर्मधारय) । अथवा विनीतः वेषः यस्य सः विनीतवेषः तेन विनीतवेषेण (बहुव्रीहि) । तपसः वनानि तपोवनानि (षष्ठी तत्पुरुष) । आर्द्रम् पृष्ठम् येषाम् ते आर्द्रपृष्ठाः (बहुव्रीहि) ।

हिन्दी-अनुवाद—सारथि—जो अच्छा (निकल जाता है) ।

संस्कृत-टीका—सूतः सारथिः (कथयति यत्) । तथा एवम् । (**निष्क्रान्तः** रङ्ग-मञ्चात् बहिः गतः)

हिन्दी-व्याख्या—सारथि ने गहने और हथियार सँभाल लिये हैं और रंगमंच से हट गया है। आशय है कि अब रङ्ग-मञ्च पर उसकी जरूरत नहीं है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (घूम और देखकर)—यह रहा आश्रम का दरवाजा । अच्छा अन्दर चलूँ । (प्रवेश कर । शकुन की सूचना देते हुये) ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (**परिक्रम्य** रङ्गमञ्चे परितः कतिचित् पदानि गत्वा । **अवलोक्य** दृष्ट्वा । **च** ।) **इदम्** एतत् पुरः स्थितम् । **आश्रमस्य** तपोवनस्य । **द्वारम्** मुखम् । **यावत्** तत् । **प्रविशामि** अभ्यन्तरम् गच्छामि । (प्रविश्य अन्तः गत्वा । **निमित्तम्** शकुनम् । **सूचयन्**) ।

हिन्दी-व्याख्या—रङ्ग-मञ्च पर जगह न होने से चलने की क्रिया परिक्रमा करके, इधर-उधर घूमकर दिखाई जाती है ।

शकुन का वर्णन आगे आएगा । "सूचयन्" से आशय है कि फड़क रही दाहिनी भुजा को ऊपर करके चौंकने का अभिनय करते है । जब और नाटक जहाँ खेला जा रहा हो, उस समय और वहाँ प्रचलित अभिनय ऐसे स्थलों पर करना चाहिये । हो सकता है कि नाटक लिखते समय कुछ विशेष अभिनय ऐसे स्थलों के लिये प्रचचित हों ।

शब्दार्थ—परिक्रम्य=घूमकर । निमित्त=शकुन । सूचयन्=अभिनय करते हुये ।

व्युत्पत्ति—परिक्रम्य=परि+क्रम+ल्यप् । अवलोक्य=अव+लोक्+ल्यप् । प्रविश्य=प्र+विश्+ल्यप् । सूचयन्=सूच्+शतृ (पुंल्लिङ्ग प्रथमा एकवचन ।

समास—आश्रमस्य द्वारम् आश्रमद्वारम् (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—आश्रम का यह स्थान शान्त है, पर मेरी भुजा फड़क रही है, यहाँ इसका फल कैसे होगा । या हो भी सकता है; होनी के द्वार सर्वत्र होते हैं ।

पाठा १. "प्रवेष्टकेन" (अधिक है) । २. सूचयित्वा] अये ।

(नेपथ्ये) इदो इदो सहीओ । [इत इत सख्यौ ।]

अन्वय—इदम् आश्रमपदम् शान्तम् बाहुः च स्फुरति । अस्य फलम् इह कुतः । अथवा भवितव्यतानाम् द्वाराणि सर्वत्र भवन्ति ।

संस्कृत-टीका—**इदम्** एतत् पुरो दृश्यमानम् । **आश्रमस्य** तपोवनस्य **पदम्** स्थानम् । **शान्तम्** शम-युक्तम् । **बाहुः** भुजः (दक्षिणः) **च** परम् । **स्फुरति** स्पन्दते । **अस्य** दक्षिणबाहुस्फुरणस्य । **फलम्** परिणामः । **इह** अस्मिन् शान्ते तपोवने । **कुतः** कथम् (स्यात्) । **अथवा** यद्वा (अस्य फलम् स्यात् यतः) । **भवितव्यतानाम्** अवश्यम्भाविनाम् अर्थानाम् । **द्वाराणि** आगमनमार्गाः । **सर्वत्र** सर्वेषु स्थानेषु **भवन्ति** प्राप्यन्ते ।

हिन्दी-व्याख्या—आश्रम शांत है और भुजा फड़कने का फल सुन्दर नारी से परिणय है। परिणय के लिये दोनों पक्षों में अनुराग की आवश्यकता है जो शान्त तपोवन में विकार माना जाता है; सम्भव नहीं है। पुरुष की दाहिनी भुजा का फड़कना शुभ और वराङ्गना-प्राप्ति कराने वाला माना जाता है :

वामेतरकरस्पन्दो वरस्त्रीलाभसूचकः । (अद्भुत सागर)

नागानन्द में जीमूतवाहन को ऐसे शकुन के फल-रूप में मलयवती मिली थी।

"च" का प्रयोग विरोध दिखाने के लिये हुआ है। "अथवा" का प्रयोग पहले की बात के खण्डन के लिये है।

"अथवा" से यह भी व्यक्त होता है कि राजा शकुन-शास्त्र पर पूरा विश्वास रखते हैं। यह भी हो सकता है कि अच्छा शकुन मानकर उसपर अविश्वास कर संभावित फल का मूल्य घटाना नहीं चाहते थे। मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि अच्छे भविष्य-फल पर विश्वास कर लेता है और बुरे पर ज्योतिष को झूठ कहता है।

शब्दार्थ—स्फुरति=फड़कती है। भवितव्यता–होनी।

व्युत्पत्ति—शान्त=शम्+क्त । आश्रम=आङ्+श्रम्+घञ् । भवितव्यता=भू+तव्यत्+तल् ।

समास—आश्रमस्य पदम् आश्रमपदम् (षष्ठी तत्पुरुष) ।

छन्द—आर्या । लक्षण १।२ में द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास (सामान्य से विशेष का समर्थन) ।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) इधर से इधर से, सखियो ।

संस्कृत टीका—(**नेपथ्ये** सज्जाकक्षे) इतः इह आगच्छतः । इतः इह आगच्छतः । सख्यौ हे, मित्रे ।

हिन्दी व्याख्या—घबड़ाहट में "इतः" का दो बार प्रयोग हुआ है।

व्युत्पत्ति—इतः=इदम्+तसिल् ।

राजा—(कर्णं दत्वा) **अये दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते । यावदत्र गच्छामि ।** (परिक्रम्यावलोक्य च) **अये एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्त्तन्ते** (निपुणं निरूप्य) **अहो मधुरमासां दर्शनम् ।**

हिन्दी-अनुवाद—राजा (कान लगाकर)—ऐं ! वृक्ष-वाटिका से दक्षिण दिशा में बातचीत-सी सुनाई पड़ रही है । अच्छा यहाँ चलूँ । (घूम और देखकर) ये तपस्वियों की कन्यायें अपने आकार के अनुसार सिंचाई के घड़ों से छोटे पेड़ों को पानी देने के लिये इधर से ही आ रही हैं । (गौर से देखकर) अहा मधुर है इनका दर्शन ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (**कर्णं** श्रोत्रम् **दत्वा** श्रवणार्थम् प्रेरयित्वा) (कथयति यत्) । **अये** (सम्भ्रमे) । **दक्षिणेन** दक्षिणस्याम् दिशि । **वृक्षाणाम्** तरूणाम् वाटिकाम् उद्यानम् (वाटिकाया दक्षिणदिशि) । **आलापः** चर्चा । **इव** प्रतीयते । **श्रूयते** कर्णगोचरीक्रियते (अस्माभिः) । **यावत्** तर्हि **अत्र** आलापोद्गमस्थाने । **गच्छामि** प्राप्नोमि । (**परिक्रम्य** कतिचित् पदानि गत्वा । **अवलोक्य** दृष्ट्वा । **च**) **अये** (सम्भ्रमे) । (**एताः** इमाः पुरो दृश्यमानाः । **तपस्विनाम्** तापसानाम् । **कन्यकाः** कुमार्यः । **स्वस्य** निजस्य **प्रमाणस्य** आकारस्य **अनुरूपैः** उचितैः । **सेचनाय** उक्षणाय **घटैः** कलशैः । **बालेभ्यः** ह्रस्वेभ्यः **पादपेभ्यः** वृक्षेभ्यः । **पयः** जलम् । **दातुम्** अर्पयितुम् । **इतः** अस्याम् दिशि । **एव** । **अभिवर्त्तन्ते** आगच्छन्ति । (**निपुणम्** सूक्ष्मम् । **निरूप्य** दृष्ट्वा) **अहो** (आश्चर्ये) **मधुरम्** नेत्राह्लादजनकम् । **आसाम्** एतासाम् कन्यकानाम् । **दर्शनम्** अवलोकनम् ।

हिन्दी व्याख्या—"अये" से राजा को संभ्रम होता है, क्योंकि उस नीरव स्थान में यह पता लगाने की दिक्कत थी कि आदमी कहाँ हैं; आवाज से यह समस्या हल हो जाने से उस ओर आकृष्ट होने का संभ्रम यहाँ दिखाया गया है । दूसरी बार "अये" का प्रयोग यह आश्चर्य व्यक्त करने के लिये है कि यहाँ लड़कियाँ कैसे आई, एक लड़की की सूचना तो मिली थी, शेष की आशा नहीं थी । "अहो" आश्चर्य के लिये है; इससे लगता है कि राजा ने वैसी सुन्दरता उसके पूर्व या तो नहीं देखी थी या कभी ही देखी थी । आश्चर्य इस बात से भी हो सकता है कि राजा के लिये जंगल में सुन्दर रूप अप्रत्याशित था । अभी तक राजा तीनों का वर्णन एक-जैसा कर रहे हैं जिससे लगता है कि अभी किसी के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुये हैं या सामान्य रूप से तीनों देखने में एक-जैसी सुन्दर हैं ।

"प्रमाण" का अर्थ है नाप और "स्व" का अर्थ है शरीर या बल । घड़े शरीर या बल के अनुरूप होने से नागरिक औचित्य के दर्शन होते हैं, ग्राम्यत्व के नहीं । छोटी लड़की बड़ा-सा घड़ा उठा ले तो ग्राम्यत्व (गवाँरूपन) के कारण देखने वाले को हँसी आवेगी ।

शब्दार्थ—दक्षिणेन = दक्षिण दिशा में । वृक्ष-वाटिका = मन्त्री या नर्तकी के घर में लगा बगीचा (अमात्यगणिकागेहोपवने वृक्षवाटिका—अमरकोष) । यहाँ मन्त्री या नर्तकी के बगीचे जैसा सुन्दर बगीचा देखकर राजा ने यह नाम दिया है । तपस्विकन्यका = तपस्वियों की कन्या । अभिवर्त्तन्ते = आती हैं । निपुण = गौर से । निरूप्य = देखकर । मधुरम् = प्रिय (मधुरं रसवत्स्वादुप्रियेषु—विश्व-कोष) ।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ।। १७ ।।

व्युत्पत्ति—दत्त्वा=दा+क्त्वा । दक्षिणेन=दक्षिण+एनप् "एनपा द्वितीया" अष्टाध्यायी २।३।३१—के अनुसार षष्ठी के अलावा द्वितीया विभक्ति आती है जिससे "वृक्ष-वाटिका" में द्वितीया हुई है। आलाप=आङ्+लप्+घञ् । कन्यका=कन्या+कन् (स्वार्थे । (कन्याः एव कन्यकाः) । सेचन=सिच्+ल्युट् । दातुम्=दा+तुमुन् । निरूप्य=नि+रूप्+ल्यप् । दर्शन=दृश्+ल्युट् । "अहो" के बाद विशेषण और फिर विशेष्य तथा क्रिया का न होना ध्यान देने योग्य है ।

समास—वृक्षाणाम् वाटिकाम् वृक्षवाटिकाम् (षष्ठी तत्पुरुष) तपस्विनाम् कन्यका अनुरूपैः (षष्ठी तत्पुरुष) । सेचनस्य (षष्ठी तत्पुरुष) (सेचनार्थैः---शाकपार्थिवादि) घटैः सेचनघटैः । बालाः च ते पादपाः च (कर्मधारय) बालपादपाः ।

हिन्दी-अनुवाद—अगर आश्रम-निवासी व्यक्ति की यह देह रनिवास में दुष्प्राप्य है तो (मैं कहूँगा कि) निश्चय ही जंगली लताओं ने गुणों में उद्यान की लताओं को दूर (परास्त) कर दिया ।

अन्वय—यदि इदम् आश्रमवासिनः जनस्य वपुः शुद्धान्तदुर्लभम् (तदा) वनलताभिः खलु उद्यानलताः गुणैः दूरीकृताः ।

संस्कृत-टीका—**यदि** । **इदम्** एतत् पुरः दृश्यमानम् । **आश्रमे** तपोवने यः वसति तस्य । **जनस्य** व्यक्तेः (कन्यकानाम्) । **वपुः** शरीरम् । **शुद्धान्ते** अन्तःपुरे **दुर्लभम्** दुष्प्राप्यम् (तदा) । **वनस्य** विपिनस्य (वनवर्त्तिनीभिः) **लताभिः** वल्लरीभिः । **खलु** निश्चयेन । **उद्यानस्य** उपवनस्य (तत्र पोषिताः) । **लता** व्रततयः । **गुणैः** (सौन्दर्यादिभिः) । **दूरीकृताः** अपास्ताः पराजिताः इत्यर्थः ।

हिन्दी व्याख्या--राजा को विश्वास था कि रनिवास में चुन-चुनकर सुन्दरियाँ एकत्र की जाती हैं, अतः वहाँ के रूप की तुलना अन्यत्र नहीं मिल सकती । उनका यह विश्वास यहाँ खण्डित हो गया जिसपर उन्हें इतना आश्चर्य है कि वे इसे उसी प्रकार समझ रहे हैं जैसे जंगली लता उपवन-लता को नीचा दिखा दे । "यदि" संभवता का सूचक है ।

दूर करने का अर्थ है बहुत नीचे स्तर का समझकर दूर हटाना, बराबर की ही संगति की जाती है, घृणित या अननुरूप का तिरस्कार कर हटाया जाता है । "दुरदुराना" दूर-दूर करने के लिए हिन्दी में इसी अर्थ का सूचक है जिसमें घृणा और अपमान का मिश्रण है ।

सर्वत्र "जन" शब्द एक-वचन में भी बहु-वचन का अर्थ दे सकता है और साथ ही पुंलिङ्ग होते हुए भी स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होता है ।

नृत्यति युवतिजनेन समं सखि (गीत-गोविन्द)

युवति के साथ यहाँ जन शब्द आया है जिसका अर्थ गण है । जन शब्द व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के अर्थ में आता है । उर्दू में "जन" का अर्थ ही स्त्री है:—

कर दिया कर्जन ने जन मर्दों की सूरत देखिये ।

यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि। (विलोकयन् स्थितः।)

[ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला]

शकुन्तला—इदो इदो सहीओ [इत इतः सख्यौ।]

शुद्ध का अर्थ पवित्र और अन्त का अर्थ मध्य भाग या सीमान्त लेने पर "शुद्धः अन्तः यस्य सः शुद्धान्तः" समास करने पर वह स्थान शुद्धान्त है जहाँ पवित्रता हो, व्यभिचार न घुस सके। इस शब्द के प्रयोग से रूप के साथ पवित्रता की तुलना भी इष्ट प्रतीत होती है।

वन-लताओं में सौन्दर्य प्रकृति-प्रेमी या ग्राम-प्रेमी देखते हैं। प्राकृतों और अपभ्रंशों के विकास की चर्चा में उन्हें वन-लता से तुलित किया जाता है।

शब्दार्थ—शुद्धान्त=रनिवास। वपु=शरीर या सुन्दरता (वपुः शरीरे लावण्ये जले दीप्तौ च सज्जने—केशव)।

व्युत्पत्ति—दुर्लभ=दुस्+लभ्+खल्। आश्रमवासी=आ+श्रम्+घञ्+वस्+णिनि। दूरीकृत=दूर+च्वि+कृ+क्त।

समास—शुद्धान्ते दुर्लभम् शुद्धान्तदुर्लभम् (सप्तमी तत्पुरुष)। उद्यानस्य लताः उद्यानलताः (षष्ठी तत्पुरुष)। वनस्य लताभिः वनलताभिः (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—आर्या। लक्षण १।१ में द्रष्टव्य।

अलङ्कार—निदर्शना। अलङ्कार से वस्तु की ध्वनि।

हिन्दी-अनुवाद—जरा इस छाँह की शरण लेकर प्रतीक्षा करूँ। (देखते हुए ठहर जाते हैं।)

[इसके बाद दो सखियों के साथ जैसा कहा गया है वैसा करती शकुन्तला का रंगमंच पर प्रवेश होता है।]

शकुन्तला—इधर से, इधर से सखियों !

संस्कृत-टीका—यावत् प्रथमम् (कञ्चित् कालम्)। इमाम् एताम् पुरोवर्त्तिनीम्। छायाम् अनातपं। आश्रित्य शरणीकृत्य। प्रतिपालयामि प्रतीक्षे। (विलोकयन् पश्यन्। स्थितः तिष्ठति)।

[ततः तदनन्तरम्। प्रविशति रङ्गमञ्चे प्रवेशं करोति यथोक्तः पूर्ववर्णितानुरूपः व्यापारः चेष्टा यस्याः तादृशी। सह साकम्। सखीभ्याम् आलिद्वयेन। शकुन्तला तन्नाम्नी बाला।]

हिन्दी-व्याख्या—"यावत्" के योग में भविष्य काल में भी वर्तमान (लट्) होता है जिसके अनुसार "प्रतिपालयिष्यामि" के अर्थ में "प्रतिपालयामि" आया है।

'यथोक्त' हिन्दी के 'उपर्युक्त' के अर्थ में आया है। ऊपर लड़कियों को घड़े लिये हुए बताया गया है। कुलपति की कन्या को भी घड़े में पानी लाना पड़ता था, तपोवन की यह समानता स्पृहणीय है।

शब्दार्थ—यावत्—जरा। प्रतिपालयामि=बाट जोहूँगा। यथोक्तव्यापारा=जैसा बताया गया है, वैसे कार्य वाली।

व्युत्पत्ति—आश्रित्य=आङ्+श्रि+ल्यप्। विलोकयन्=वि+लोक्+शतृ (पुंलिङ्ग प्रथमा एकवचन)। स्थित=स्था+क्त। उक्त=वच्+क्त। व्यापार=वि+आ+पृ+घञ्। यथोक्त=

अनसूया—हला सउन्दले तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरुक्खआ पिअदरेत्ति तक्केमि । जं[1] इमिणा णोमालिआकुसुमपेलवा[2] तुमं वि एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता । [हला शकुन्तले त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि यदनेन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषामालवालपूरणे नियुक्ता ।]

यथा उक्त (विशेषण) अथवा यथोक्तम् = यथा उक्त (भावे क्त) + अच् (यथोक्तम् विद्यते अस्य) ।

समास—यथोक्तः व्यापारः यस्याः सा यथोक्तव्यापारा ।

हिन्दी अनुवाद—सखी शकुन्तला, मुझे लगता है कि आश्रम के पौधे पिता काश्यप को तुमसे भी अधिक प्यारे हैं जो इन्होंने नवमालिका फूल के समान कोमल तुम्हें भी इन (पौधों) के थाले भरने के लिये लगाया है ।

संस्कृत टीका—**हला** हे सखि । **शकुन्तले** । **त्वत्तः** त्वत् । **अपि** (का कथा अन्यस्य) **तातस्य** पितुः **काश्यपस्य** कण्वस्य । **आश्रमस्य** तपोवनस्य वृक्षकाः बालद्रुमाः । **प्रियतराः** प्रेयांसः । **इति** एवम् । **तर्कयामि** मन्ये । **यत्** । **अनेन** अमुना (पित्रा) । **नवमालिकाकुसुमम्** नवमालिकाख्य-पुष्पम् इव **पेलवा** कोमला । **त्वम्** भवती (शकुन्तला) **अपि** (का कथा अन्यस्य) । **एतेषाम्** अमीषाम् (वृक्षकाणाम्) **आलवालस्य** जलाधारस्य **पूरणे** पूर्तौ । **नियुक्ता** आदिष्टा ।

हिन्दी व्याख्या—कश्यप (ऋषि के) गोत्र में उत्पन्न होने से कण्व काश्यप कहे गये हैं । "अपि" का प्रयोग दोनों जगह यह अर्थ बताने के लिये है कि हम जैसी कन्याओं की बात तो दूर रही, तुम्हें भी इन वृक्षों की सेवा में लगाया है जब कि तुम्हें वे अपनी बेटी मानते हैं और प्रतिनिधि बना गये हैं । यह बात यह सूचित करती है कि तपोवन में वृक्षों तक के प्रति कितनी आत्मीयता रखी जाती थी तथा कुलपति की कन्या भी काम करने में छूट नहीं पा सकती थी । शकुन्तला की कोमलता उसके समान सौन्दर्य वाली अनसूया भी स्वीकार करती है ।

समान स्त्रियाँ एक दूसरे को "हला" करती हैं, यह नाट्य-लक्षण ग्रन्थों में पाया जाता है:—

समानाभिस्तथा सख्यो 'हला' भाष्याः परस्परम् । (नाट्यशास्त्र १७।८९)

हलेति सदृशो (साहित्य-दर्पण ४।१५५)

हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति । (अमरकोष)

शब्दार्थ—पेलव = कोमल (पेलवं कोमलम्–त्रिकाण्ड-कोष) । आलवाल = थाला ।

व्युत्पत्ति—त्वत्तः = त्वत् + तसिल् (स्वार्थे) । काश्यप = कश्यप + अण् । वृक्षक = वृक्ष + कन् (अल्पार्थे) । प्रियतर = प्रिय + तरप् । "यत्" सर्वनाम का प्रयोग बाद के वाक्य में होने पर पहले वाक्य में सम्बन्धी सर्वनाम "तत्" आना आवश्यक नहीं है, अन्य स्थिति में यत् के आने पर तत् का आना आवश्यक है । आलवाल = आ + लव + आ + ला + क । पूरण = पूर् + ल्युट् । नियुक्त = नि + युज् + क्त ।

पाठा०—१. जेण [येन] । २. पेसला [पेसला] ।

शकुन्तला[1]—ण केअलं तादणिओओ एव्व । अत्थि मे सोदरसिणेहो एदेसु ।

[न केवलं ताननियोग एव अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु ।] (वृक्षसेचनं रूपयति)

राजा—कथमिदं सा कण्वदुहिता । असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः य इमा-माश्रमधर्मे नियुङ्क्ते ।

समास—तातः च असौ काश्यपः च (कर्मधारय)। आश्रमस्य वृक्षकाः (षष्ठी तत्पुरुष)। नवमालिकायाः कुसुमम् नवमालिकाकुसुमम् (षष्ठी तत्पुरुष) तदिव पेलवा (उपमान)। आलवालस्य पूरणे आलवालपूरणे (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—न सिर्फ पिता जी की आज्ञा ही है, इनके प्रति मेरा सहोदर-स्नेह भी है। (पेड़ सींचने का अभिनय करती है।)

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** (कथयति यत्) । [न । **केवलम्** परम् । **तातस्य** पितुः (कण्वस्य) **नियोगः** आदेशः । **एव** । **अस्ति** वर्त्तते । **मे** मम (हृदये) **सोदरस्य** सहोदरस्य **स्नेहः** प्रेम । **एतेषु** अमीषु (वृक्षेषु) ।] (**वृक्षस्य** तरोः **सेचनम्** उक्षणम् । **रूपयति** नाटयति ।)

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर अनसूया की बातों से यह ध्वनि निकलती है कि सिंचाई का काम शकुन्तला के कोमल शरीर के योग्य है, पर पिता की आज्ञा से विवश होकर उसे करना पड़ रहा है। यहाँ शकुन्तला यह गलतफहमी दूर करने के लिये वास्तविक बात बताती है। पिता का आदेश ही नहीं सगे भाई के प्रति जैसा स्नेह होता है, वैसा स्नेह वृक्षों के प्रति होने से शकुन्तला सिंचाई करती है। काम को भार न मानकर रुचि से करने की यह चरम सीमा है। बड़ी बहन को छोटे भाइयों के पालन की जिम्मेदारी वहन करनी होती है, यह ध्वनित होता है। आशय यह है कि यदि पिता की आज्ञा न भी होती तो यह स्नेहानुरोधमय कार्य मैं बिना किये न रहती।

शब्दार्थ—नियोग=आदेश। सोदर-स्नेह=सगे भाई के प्रति होने वाला स्नेह। रूपयति= अभिनय करती है।

व्युत्पत्ति—नियोग=नि+युज्+घञ्। स्नेह=स्निह्+घञ्। सेचन=सिच्+ल्युट्।

समास—तातस्य नियोगः तातनियोगः (षष्ठी तत्पुरुष) । सोदरस्य स्नेहः सोदरस्नेहः (षष्ठी तत्पुरुष)। समानम् उदरम् यस्य सः सोदरः (सहोदरः, बहुव्रीहि) वृक्षस्य सेचनम् वृक्षसेचनम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—क्या यह वह कण्व-पुत्री है? आदरणीय कण्व निश्चय ही अन्याय-शील हैं जो इसे आश्रम के कर्त्तव्य में लगाते हैं।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) । **कथम्** किम् । **इयम्** एषा पुरः वर्त्तमाना। **सा** पूर्व-वर्णिता। **कण्वस्य** काश्यपस्य **दुहिता** पुत्री। न साधु सम्यक् पश्यति इति **असाधुदर्शी**

पाठा ३. "हला अणसूए [हला अनसूये]" अधिक।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं[1] साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां[2] छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥१८॥

अन्यायदर्शी । **खलु** निश्चयेन । **तत्रभवान्** पूज्यः । **काश्यपः** कण्वः । **यः** । **इमाम्** एनाम् (शकुन्तलाम्) । आश्रमस्य तपोवनस्य । **धर्मे** कर्त्तव्ये । **नियुङ्क्ते** = आदिशति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ दुष्यन्त ने तीनों कन्याओं में से शकुन्तला के प्रति विशेष दृष्टि दिखाई है । निकट से देखने पर उसकी सुन्दरता और कोमलता से उनका ठीक-ठीक परिचय हुआ । अनसूया की बात से उसको बल मिला । दुष्यन्त को दया आती है कि ऐसी कोमल-बाला को तपस्वियों के आश्रम के कठोर अनुष्ठानों में लगाया है, जब कि उसके लिये सुख का प्रबन्ध होना चाहिये । यहीं से राजा के मन में शकुन्तला के लिये जगह बनती है ।

"सा" का अर्थ उपर्युक्त (वैखानस द्वारा वर्णित) है । "पूर्व-वर्णित" के लिये संस्कृत में प्रक्रान्त शब्द आता है । "तत्" शब्द का अर्थ प्रक्रान्त, प्रसिद्ध और अनुभूत है और ऐसे अर्थों में वह पूर्ण भाव व्यक्त करता है—उसे सम्बन्धी (co-relative) "यत्" की आवश्यकता नहीं होती ।

प्रक्रान्तप्रसिद्धानुभूतार्थविषयस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नापेक्षते ।

(काव्य-प्रकाश ७)

"तत्रभवान्" और "अत्रभवान्" "पूज्य" के अर्थ में हैं, इनमें पहला अनुपस्थित के लिये और दूसरा उपस्थित के लिये आता है ।

'कथम्' का प्रयोग अप्रत्याशित रूप से मिले व्यक्ति के दर्शन के समय आता है । "अच्छा, आप !" कहकर हिन्दी में यही भाव व्यक्त किया जाता है ।

शब्दार्थ—असाधु = अनुचित । तत्रभवान् = अनुपस्थित पूज्य । धर्म = कर्त्तव्य ।

व्युत्पत्ति—साधुदर्शी = साधु + दृश् + णिनि (ताच्छील्ये । दर्शन के स्वभाव वाला) ।

समास—कण्वस्य दुहिता कण्वदुहिता (षष्ठी तत्पुरुष) । न साधु असाधु (नञ् तत्पुरुष) । आश्रमस्य धर्मे आश्रमधर्मे (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—जो (ऋषि) **इस** अकृत्रिम मनोहर शरीर को तपस्या के योग्य बनाने की आशा करते हैं, वे ऋषि निश्चय ही नील-कमल की पंखुड़ी के किनारे से शमी की (कठोर) लता (डाल) काटने का अरुचिकर यत्न करते हैं ।

अन्वयः—यः इदम् अव्याजमनोहरम् वपुः तपःक्षमम् साधयितुम् इच्छति सः ऋषिः ध्रुवम् नीलोत्पलपत्रधारया शमीलताम् छेत्तुम् व्यवस्यति किल ।

संस्कृत-टीका—यः (ऋषिः कण्वः) । **इदम्** पुरः दृश्यमानम् । **अव्याजम्** अकृत्रिमम् । **मनोहरम्** हृदयहारि । **वपुः** (शकुन्तलायाः) शरीरम् । **तपसः** तपस्यायाः **क्षमम्** योग्यम् । **साधयितुम्** कर्तुम् । **इच्छति** वाञ्छति । **सः** । **ऋषिः** मुनिः **ध्रुवम्** निश्चयेन । **नीलस्य** असितस्य

पाठा० १. चलमं । २. समिल् ।

भवतु पादपान्तर्हित[1] एव[2] विस्रब्धां[3] तावदेनां[4] पश्यामि। (तथा करोति)।

उत्पलस्य कमलस्य धारया प्रान्तभागेन। **शमीलताम्** कठिनाम् शमीद्रुमस्य शाखाम्। **छेत्तुम्** कर्तितुम् (खण्डयितुम्)। **व्यवस्यति** यतते। **किल** (अरुचौ) न श्रद्धे।

हिन्दी-व्याख्या—भाव यह है कि नील कमल की कोमल पंखुड़ी के किनारे से जैसे कठोर शमी-शाखा नहीं काटी जा सकती, उसी तरह शकुन्तला के कोमल शरीर से तपस्या नहीं कराई जा सकती। नील कमल की पंखुड़ी का किनारा चाकू की धार-जैसा देखने भर को होता है, उसी तरह शरीर देखने भर को शरीर है, उससे तपस्वी के शरीर-जैसा काम नहीं लिया जा सकता जिस तरह नील-कमल की पंखुड़ी की धार डाल नहीं काट सकती। नील-कमल की पंखुरी से उपमा देकर शकुन्तला के शरीर की कोमलता बताई गई है। तपस्या की कठिनाई काठ की तरह है। नीलोत्पल का नील शब्द तलवार आदि के लोहे के काले रंग की समता के लिये है। शमी पवित्र वृक्ष है। इसकी लकड़ी कड़ी होती है और यज्ञ के लिए तपस्वियों द्वारा काटी जाती है। आस-पास शमी वृक्ष खड़े होने से उनकी कड़ाई का स्मरण कर राजा ने यह तुलना की है। "अव्याज" का अर्थ है कि कृत्रिम गहने बिना पहने भी शरीर सुन्दर है। "व्याज" का अर्थ बहाना या छल है जिससे छिपाया जाय। आज-कल असुन्दरता छिपाकर सुन्दरता-प्रदर्शन चल पड़ा है।

शब्दार्थ—अव्याज=कृत्रिमता-रहित। क्षम=योग्य। किल=मुझे अरुचिकर है (वार्त्तायामरुचौ किल-त्रिकाण्डशेष) साधयितुम्=करना। धारा=धार, किनारा। लता=डाल। व्यवस्यति=यत्न करते हैं।

व्युत्पत्ति—अव्याज=अ+वि+अज्+घञ्। मनोहर=मनस्+हृ+अच्। साधयितुम्=साध्+णिच्+तुमुन्। छेत्तुम्=छिद्+तुमुन्।

समास—अविद्यमानः व्याजः यत्र तत् अव्याजम् (बहुव्रीहिः)। तपसः क्षमम् तपःक्षमम् (षष्ठी तत्पुरुष)। नीलम् च तत् उत्पलम् च नीलोत्पलम् (कर्मधारय) तस्य धारया (षष्ठी तत्पुरुष)। शम्याः लताम् शमीलताम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—वंशस्थ या वंशस्थविल जिसका लक्षण निम्नलिखित है:—

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

नगण, तगण, जगण और रगण से वंशस्थ छन्द होता है।

अलङ्कार—निदर्शना (निदर्शन) और विभावना।

हिन्दी-अनुवाद—ठीक है। वृक्ष की आड़ में छिपकर ही जरा इसे विश्वस्त रूप में देखता हूँ (वैसा करते हैं)।

संस्कृत-टीका—**भवतु** अस्तु **पादपेन** वृक्षेण **अन्तर्हितः** तिरोहितः। **एव**। **विस्रब्धाम्** विश्वस्ताम्। **तावत्**। **एनाम्** इमाम् (पुरः दृश्यमानाम् शकुन्तलाम्)। **पश्यामि** अवलोकयिष्यामि (तथा उक्तानुसारेण। **करोति** आचरति)।

पाठा०—१ अन्तरित। २ एनाम् (अधिक है)। ३ विश्रब्धम्। ४ नहीं है।

शकुन्तला—सहि अणसूए अदिपिणद्धेण वक्कलेण पिअंवदाए णिअन्तिदम्हि । सिढिलेहि दाव णं । [सखि अनसूये, अतिपिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रितास्मि । शिथिलय तावदेतत् ।]

अनसूया—तह । (शिथिलयति) (तथा)

हिन्दी-व्याख्या—राजा को इतना कौतूहल हुआ कि वे उनकी अकृत्रिम बातें और आचरण जानने का लोभ संवरण नहीं कर पाते । इस तरह किसी, विशेषकर एक युवक, के लिये छिपकर दूसरे विशेषतः युवतियों और प्रिययुवतियों की बातें सुनना अच्छा नहीं माना जाता, पर कौतूहल शिष्टाचार-सम्पन्न राजा को भी ऐसी अवस्था में ला देता है । "एव" यह सूचित कर सकता है कि पहले से ही वे पेड़ की आड़ में थे किन्तु बाद में अभिनय-निदेश में "तथा करोति" से खण्डन हो जाता है । इसके पूर्व पेड़ की छाया में होने की बात कही गई है; तब वे धूप से बचने का उद्योग कर रहे थे; अब-कौतूहल-वश वे छिपकर रहना चाहते हैं जिससे कन्याओं के देखकर संकुचित होने की डर न रह जाय ।

"भवतु" का आशय है कि यह बात सोचने में ज्यादा समय खपाने से कोई लाभ नहीं है ।

शब्दार्थ—अन्तर्हित=आड़ में छिपा । विश्रब्धा=विश्वस्त ।

व्युत्पत्ति—पादप=पाद+पा+क । अन्तर्हित=अन्तः+धा+क्त । विश्रब्ध=वि+श्रम्भ+क्त ।

समास—पादपेन अन्तर्हिताम् पादपान्तर्हिताम् (तृतीया तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—सखी अनसूया, कसकर बँधे वल्कल से प्रियंवदा ने मुझे जकड़ दिया है । जरा इसे ढीला कर दो ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) । **सखि** आलि । **अनसूये** । **अतिपिनद्धेन** सुदृढबद्धेन । **वल्कलेन** वृक्षत्वग्वस्त्रेण । **प्रियंवदया** तन्नामवत्या सख्या । **नियन्त्रिता** निरुद्धा । **अस्मि । शिथिलय** श्लथीकुरु । **तावत् । एतत्** इदम् (वल्कलम्) ।

हिन्दी-व्याख्या—सहेलियों में इतना लगाव है कि स्वयम् न पहनने देकर वस्त्र पहनने तक में एक दूसरे की मदद करती हैं । आश्रम की वेश-भूषा चाहे कितनी ही खराब या कष्टकर क्यों न हो—कुलपति की कन्या को भी अपनानी पड़ती है ।

शब्दार्थ—पिनद्ध=बँधा हुआ । शिथिलय=ढीला करो ।

व्युत्पत्ति—पिनद्ध=अपि+नह्+क्त । "अपि" और "अव" के "अ" का लोप ऐच्छिक है (जिससे अपिनद्ध रूप भी होगा), यह लोप भागुरि के मत से होता है :

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपञ्चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—अच्छा (ढीला करती है ।) ।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) । **तथा** एवम् (**शिथिलयति** शिथिलम् करोति) ।

प्रियंवदा--(सहासम्) एत्थ पओहरवित्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालह । मं किं उवालम्भेसि । [अत्र पयोधरविस्तारयितृकमात्मनो यौवनमुपालभस्व । [1]मां किमुपालभसे ।]

[2]राजा—सम्यगियमाह ।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर के वाक्य में शकुन्तला के अनुरोध को मानकर अनसूया ने वल्कल ढीला कर दिया है ।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (हँसी के साथ)—इस विषय में स्तनों को बढ़ाने वाली अपनी युवावस्था को उलाहना दो, मुझे क्यों उलाहना देती हो ?

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) । अत्र अस्मिन् विषये । पयोधरयोः स्तनयोः विस्तारयितृकम् विस्तारकम् । आत्मनः स्वस्य । यौवनम् युवावस्थाम् । उपालभस्व निन्द । माम् इमम् जनम् । किम् केन हेतुना । उपालभसे निन्दसि ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला ने ऊपर प्रियंवदा को वल्कल कसकर बाँधने का दोषी बताया है और ठीक बताया है । शरीर के उभरने के साथ-साथ बाँधने में ढीलापन रखना बाँधने वाले के लिए उचित है । वल्कल वही है, शकुन्तला के वक्ष पर स्तन युवावस्था के कारण उन्नत हो रहे हैं और बाँधने वाली प्रियंवदा पहले की तरह ही बाँधती रही है जिससे असुविधा हो रही है । प्रियंवदा पर आरोप है, इसलिये वह खण्डन करने का यत्न करती है । परिहास में हँसकर कहती है । अपनी गलती न समझ कर दूसरे पर दोष देना त्रुटि है जिस पर हँसी आती है । यहाँ यह भी पता लगता है कि शकुन्तला तपोवन के सरल वातावरण में रहकर यौवन के उभार से भी अपरिचित है । वह सखियों की अपेक्षा पहले युवती हो गई है, पर प्रियंवदा से ज्यादा भोली और अमुखर है ।

"पयोधर" शब्द स्तन के अर्थ में रूढ़ है, जिससे दूध (पयस्) न होने पर भी पयोधर का प्रयोग होता है । कवि ने दुष्यन्त को छिपकर देखने के लिए बैठाकर ये बातें और वल्कल ढीला करना दिखाया है, कौतूहली के लिये यह सब प्रेमोद्रेक की भूमिका है ।

छाती के हिस्से में वल्कल का कसना अभी-अभी शुरू हुआ है जिससे यौवन का नव-उद्रेक व्यञ्जित होता है

शब्दार्थ—विस्तारयितृक = विस्तार करने वाला । उपालभस्व = उलाहना दो ।

व्युत्पत्ति—हास = हस् + घञ् । पयोधर = पयस् + धृ + अच् । विस्तारयितृक = वि + स्तृ + णिच् + तृच् + कन् । यौवन + युवन् + अण् ।

समास—हासेन सह सहासम् (बहुव्रीहि) । पयसः धरः पयोधरः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य विस्तारयितृकम् पयोधरविस्तारयितृकम् (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-इसने ठीक कहा ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्) । सम्यक् उचितम् । इयम् असौ । आह वदति ।

पाठा० १.-२. (यह वाक्य ही नहीं मिलता) ।

[1]इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिमा स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन ।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण ॥ १९ ॥

हिन्दी व्याख्या—बातचीत में राजा को भी रस आने लगा। कारण बहुत विनोदात्मक है। राजा को प्रियंवदा के पक्ष की संभावना अधिक प्रतीत होती है, जो विश्वास की श्रेणीतक पहुँच जाती है—शायद छाती का उभार विशेष रूप से देखने के बाद। प्रेम की प्रगति अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हुई है; अभी सौन्दर्य के प्रति आश्चर्य, सहानुभूति तथा अभिनिवेश (रुचि) का क्रम चल रहा है।

राजा रङ्ग-मञ्च पर ही कह रहे हैं और आशा की जाती है कि दर्शक सुन लेंगे, पर रङ्ग-मञ्च पर स्थित पात्र नहीं सुनेंगे। विवशता और संस्कृत नाटकों में खटकने की बात है। दर्शक-कक्ष से अधिक बड़ा रङ्ग-मञ्च सम्भव नहीं है कि दुष्यन्त को कन्याओं की अपेक्षा दर्शकों के अधिक निकट बैठाया जाय। ऐसी स्थिति में दर्शक कन्याओं की बातें नहीं सुन सकेंगे, ध्वनि-विस्तारक यंत्र तब नहीं था कि कन्याओं के पास रखकर यह व्यवस्था की जाती।

शब्दार्थ—सम्यक् = ठीक। आह = कहती है।

व्युत्पत्ति—आह = ब्रू (लट् लकार-वर्तमान काल—प्रथम पुरुष का एक वचन)।

हिन्दी-अनुवाद—जिसकी बहुत छोटी गाँठ कंधे के स्थान में लगी है और जो दोनों स्तनों के उभार को ढके हुये हैं, इसकी उस वल्कल से बँधी हुई नई-नई यह देह अपनी शोभा का विकास उसी प्रकार नहीं कर पा रही है, जैसे तने पर पंखुड़ी के आन्तरिक सफेद भाग से कसा हुआ फूल।

अन्वय—स्कन्धदेशे उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना (च) वल्कलेन (पिनद्धम्) अभिनवम् इदम् अस्याः वपुः (स्कन्धदेशे) पाण्डुपत्रोदरेण पिनद्धं कुसुमम् इव स्वां शोभां न पुष्यति।

संस्कृत टीका - **स्कन्धस्य** भुजशिखरस्य **देशे** स्थाने। **उपहितः** निहितः **सूक्ष्मः** ह्रस्वः **ग्रन्थिः** बन्धः यस्य तेन। **स्तनयोः** कुचयोः **युगम्** युगलम् तस्य **परिणाहं** विस्तारं आच्छादयति इति एवं-शीलेन (च) **वल्कलेन** वृक्षत्वचा **पिनद्धम्** बद्धम्। **अभिनवम्** नवम् (तदिव कान्तिमत्)। **इदम्** एतत् (पुरोवर्त्ति) **अस्याः** एतस्याः (शकुन्तलायाः)। **वपुः** शरीरम्। **स्कन्धदेशे** प्रकाण्डे **पाण्डोः** श्वेतस्य **पत्रस्य** दलस्य **उदरेण** गर्भेण। **पिनद्धम्** बद्धम् **कुसुमम्** पुष्पम्। **इव**। **स्वाम्** निजाम्। **शोभाम्** प्रभाम्। **न**। **पुष्यति** विकासयति।

हिन्दी व्याख्या—बहुव्रीहि समास में होने के कारण यह पता नहीं चलता कि ग्रन्थि केवल एक लगती है या दो। दोनों कन्धों पर एक-एक गाँठ का लगना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। "ग्रन्थि" और "स्कन्धदेश" को एक वचन में "जाति" के अर्थ में लेने पर द्विवचन का भी अर्थ निकल सकता है।

पाठा०—१. (पूरा श्लोक नहीं मिलना)।

"स्व" सर्वनाम और विशेषण तीनों लिङ्गों में होता है, यहाँ विशेषण है।

"सूक्ष्म" से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि वक्ष के उभार से पहले लगी हुई डोर छोटी पड़कर इस स्थिति में आ गई कि गाँठ बहुत किनारे पर लग पाती है जिससे सूक्ष्म दिखती है। यह स्थिति वल्कल को फिट कर देने के बाद आई है। शरीर को नया बताया गया है। नई वस्तु कान्तिमान् होती है और नवयौवन से शैशवापन्न शरीर नया हो जाता है।

शरीर की तुलना फूल से की गई है। "पाण्डु" "उदर" (अन्दरूनी हिस्सा) का विशेषण है और पत्र का अर्थ पंखुड़ी है—वह पंखुड़ी जो अभी-अभी खिले फूल को नीचे कसे रहती है; उसका रंग बाहर से हरा और भीतर से सफेद होता है। वल्कल भी पाण्डु (सफेद) रंग का है। पंखुड़ी से कसे फूल की शोभा कम होने के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि अभी-अभी विकसित पर अपूर्ण विकसित से तात्पर्य है। स्कन्ध का अर्थ कन्धा और तना दोनों है। तने के ऊपरी भाग पर जहाँ डाल जुड़ती है, डाल से लटककर तने पर आये फूल का अर्थ लग सकता है जिससे "स्कन्ध"–शब्द का अन्वय दोनों ओर हो सकता है।

"पुष्यति" के साथ शोभा वाची शब्द का प्रयोग कालिदास ने अन्यत्र भी किया है—[पुष्यति स्वामभिख्याम्–मेघदूत २।८२। वर्णं, पुष्यति—रघुवंश १६।५८।, यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यत्—कुमारसम्भव ७।१८] यह मुहावरा बन गया है।

सामने के वल्कल ने युवावस्था ढक दी है; कसावट की चर्चा न होती तो पता भी न चलता, यह स्पष्ट है। फूल से उपमा देना राजा का काव्य-रसिक, उपवन-प्रेमी तथा नैसर्गिक वातावरण से अनुप्राणित होना सूचित करता है।

शब्दार्थ—उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना = ऐसा (वल्कल) जिसकी छोटी गाँठ (कन्धे पर) रखी (पड़ी) हुई है। परिणाहाच्छादी = (स्तन-युगल) विस्तार (विस्तृत स्तन-युगल) को ढकने वाला। (परिणाहो विशालता–अमरकोष) पुष्यति = पुष्ट करता है। पिनद्ध = बँधा हुआ। पाण्डु = सफेद (उदर का विशेषण) पत्र = पंखुड़ी, उदर = गर्भ।

व्युत्पत्ति—उपहित = उप + धा + क्त। परिणाहाच्छादी = परि + नह् + घञ् + आङ् + छद् + णिनि। पिनद्ध = अपि + नह् + क्त ("अ" का लोप)। "इव" के प्रयोग को ध्यान से देखना चाहिये। यह उपमान से जुड़ता है और इसके रहने पर उपमान को समानाधिकरण (case in apposition) मानकर उसी विभक्ति और वचन में रखा जाता है जिसमें उपमेय होता है।

समास—उपहितः सूक्ष्मः ग्रन्थिः यत्र तेन उपहितसूक्ष्मग्रन्थिना (बहुव्रीहि)। सूक्ष्मः चासौ ग्रन्थिः च (कर्मधारय)। स्कन्धस्य स्कन्धयोः वा देशे स्कन्धदेशे (षष्ठी तत्पुरुष)। स्तनस्य युगम् (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य परिणाहः (षष्ठी तत्पुरुष) तम् आच्छादयतीति तेन। पाण्डु च तत् पत्रोदरम् च पाण्डुपत्रोदरम् च (कर्मधारय)। पत्रस्य उदरम् पत्रोदरम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—मालिनी जिसका लक्षण १।१० में देखा जा सकता है।

अलङ्कार—उपमा (श्रौती)।

अथवा[1] काममननुरूपमस्या वपुषो[2] वल्कलं न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्यति । कुतः—

हिन्दी-अनुवाद—या यह भी कहें कि माना इसके शरीर के लिये (होकर भी) वल्कल अयोग्य है, किन्तु अलङ्कार-शोभा पुष्ट नहीं करता, ऐसी बात नहीं है क्योंकि—

संस्कृत-टीका—**अथवा** इदम् अपि स्यात् । **कामम्** (मया) अनुमन्तव्यम् **अनुरूपम्** अयोग्यम् **अस्याः** एतस्याः (शकुन्तलायाः) **वपुषः** शरीरस्य । **वल्कलम्** वृक्षत्वक् । **पुनः** किन्तु । **अलङ्कारस्य** भूषणस्य **श्रियम्** शोभाम् । **न** । **पुष्यति** बिभर्त्ति इति न अपितु बिभर्त्ति एव **कुतः** यतः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर के श्लोक में एक पक्ष यह बताया गया है कि वल्कल शोभा को दबाने वाला है । पुनः विचार करने पर दुष्यन्त को दूसरा पक्ष भी सूझा कि वल्कल विशेष शोभा-कारक न होने पर भी अलंकृत करता है । वस्त्रालङ्कारों से हुई शोभा वल्कल से उच्च स्थान रखती है पर वल्कल से शोभा मारी नहीं जाती; बढ़ती ही है, यह भाव है । राजा भावुकता में इतना नहीं बहते कि वल्कल को वस्त्रालङ्कारों की अपेक्षा श्रेष्ठ स्वीकार कर लें । उनके मन में यह भाव है कि यदि ऐसे शरीर को वस्त्रालङ्कारों से सजाया गया होता तो कितना अच्छा होता । फिर भी ऐसे मनोहर स्वरूप की निन्दा सोचने में भी प्रसन्न नहीं हैं, अतः वल्कल से भी संतुष्ट हो जाते हैं ।

"अथवा" से विपरीत बात व्यक्त की गई है । दो तरह की बातें राजा क्यों करने लगे, यह सोच-कर अनेक लोग पूर्व श्लोक को क्षेपक मानते हैं, पर जहाँ तक संगति का प्रश्न है, वह लगती है यदि सूक्ष्म और मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय । राजा ने वस्त्रालङ्कारों से सजा दिव्य रूप रनि-वास में बचपन से ही देखा है; वे कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि वल्कल वस्त्रालङ्कारों का स्थान ले सकता है; पूर्व श्लोक में यही प्रतिक्रिया है जो राजा को यौवन पर अत्याचार सोचकर दुःखी करती है । यहाँ यह सूक्ष्म अन्तर भी ध्यान देने योग्य है कि राजा उस रूप के पक्षपाती होने पर भी इस उत्कृष्ट और सूक्ष्म विशेष तक पहुँच गये हैं कि अलङ्कार रूप के वर्धक हो सकते हैं, पर अनिवार्य अङ्ग नहीं; रूप स्वयं पर्याप्त है और ऐसा प्रबल है कि हीन वस्तुओं को भी शोभाधायक होने को विवश करता है । "काममननुरूपम्" की संगति के लिये भी पूर्व श्लोक अधिक सहायक है । "न" का दो बार प्रयोग किसी जोरदार ढंग से कही गई बात का खण्डन प्रतीत होता है जो पूर्व श्लोक का परिचायक है ।

"वपुष्" की जगह "वयस्" पाठ प्रसंग का हनन तथा अगले श्लोक में आये "आकृति" शब्द को देखते हुये त्याज्य है ।

दो निषेधार्थक शब्द (यहाँ "न") से (हाँ) अर्थ निकलता है । अर्थ-भ्रान्ति प्रतीत होने पर पहले दोनों "न" प्रयोगों को निकालकर सही अर्थ समझा जा सकता है ।

शब्दार्थ—कामम्=मेरा मत है कि (कामं प्रकामेऽनुमतः–विश्वकोष) । अननुरूप=अयोग्य, अनुचित । पुनः=किन्तु भिन्न बात (पुनरप्रथमे भेदे) । कुतः क्योंकि, कारण यह है कि ।

व्युत्पत्ति—अलङ्कार=अलम्+कृ+घञ् ।

समास—रूपम् अनुगतम् अनुरूपम् (प्रादितत्पु०) न अनुरूपम् अननुरूपम् (नञ् तत्पुरुष) । अलङ्कारस्य श्रीः अलङ्कारश्रीः (षष्ठी तत्पुरुष) । अलङ्कारकृता श्रीः अलङ्कारश्रीः (शाकपार्थिवादि) ।

पाठा०—१ (नहीं है) । २ वयसो ।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ २० ॥

हिन्दी-अनुवाद—सिवार से सम्बद्ध होकर भी कमल रमणीय होता है । कलङ्क काला होने पर भी चन्द्रमा की शोभा बढ़ाता है । वल्कल से भी यह कृशाङ्गी बहुत कमनीय है । भला कौन-सी वस्तु है जो मधुर शरीरों का भूषण नहीं होती ।

अन्वय—शैवलेन अपि अनुविद्धम् सरसिजम् रम्यम् (भवति) । लक्ष्म मलिनम् अपि हिमांशोः लक्ष्मीम् तनोति । इयम् तन्वी वल्कलेन अपि अधिकमनोज्ञा । किमिव हि मधुराणाम् आकृतीनाम् मण्डनम् न ।

संस्कृत-टीका—**शैवलेन** = जलनील्या । **अपि** (किमुत अन्येन श्रेष्ठेन वस्तुना) **अनुविद्धम्** सम्पृक्तम् । **सरसिजम्** कमलम् । **रम्यम्** कमनीयम् (भवति) । **लक्ष्म** चिह्नम् । **मलिनम्** कृष्णम् । **अपि** (का कथा सद्वर्णतायाः, **हिमांशोः** चन्द्रस्य । **लक्ष्मीम्** शोभाम् । **तनोति** विस्तारयति । **इयम्** एषा । **तन्वी** कृशाङ्गी (शकुन्तला) । **वल्कलेन** वृक्षत्वचा । अपि किमुत भूषणेन । **अधिकम्** बहु यथा स्यात् तथा **मनोज्ञा** हृद्या । **किम् इव** कतमत् वस्तु । **हि** यतः **मधुराणाम्** कमनीयानाम् । **आकृतीनाम्** वपुषाम् । **मण्डनम्** भूषणम् । **न** (भवति) (अपि तु सर्वम् एव भवति) ।

हिन्दी-व्याख्या—"अपि" का प्रयोग और उपमान बहुत सुन्दर है । जब तुच्छ सिवार, काले चिह्न और वल्कल से भी कमल, चन्द्र तथा शकुन्तला की शोभा बढ़ती है तब श्रेष्ठ पत्ते, सुन्दर रंग के निशान और आभूषण का तो कहना ही क्या; उनसे तो शोभा दिव्य हो जायेगी । अन्तिम पंक्ति में कारण या परिणाम बहुत सुन्दर दिया गया है कि सुन्दर स्वरूप का अलङ्कार हर वस्तु है; खराब से खराब प्रसाधन भी सुन्दर अङ्ग पर बुरा नहीं लगता; आभूषण ही बन जाता है, भले ही उतना सुन्दर न हो ।

साहित्यदर्पण (३।९७) में यह श्लोक "माधुर्य" गुण के अन्तर्गत उदाहरण रूप में उद्धृत किया गया है ।

"तन्वी" प्रयोग से यह स्पष्ट है कि न केवल आज, पहले भी दुबले शरीर वाली युवतियाँ सुन्दर मानी जाती थीं । इसका विरोध पुष्टि से नहीं है, पर पुष्टि पर ध्यान देने वाले व्यक्ति को व्यायाम और दौड़ से शरीर को स्थूल होने से बचाना चाहिये । विश्वभर में स्त्रियों की सुन्दरता दुबलेपन में मानी जाने के कारण स्त्रियाँ दुबली बनने की कोशिश करती हैं; रूस में अधिक स्त्रियाँ तगड़ी होती हैं और वहाँ दुबलेपन पर इस आधार पर हँसते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था वाले और पिछड़े देशों में पोषक आहार के अभाव और स्त्रियों पर अत्याचार से दुबलापन आता है जो सुन्दरता के स्थान पर असुन्दरता है ।

श्लोक में ३ बातें कहकर अन्त में परिणाम निकालकर अपनी बात पुष्ट की गई है, यही क्रम

युक्ति-युक्त है। इसमें अपनी बात जोरदार ढंग से पुष्ट होती है। दण्डी का कहना है कि पहले परिणाम देकर उसे दृष्टान्तों से पुष्ट करना चाहिये—

वस्तु प्रस्तुत्य तत्साधनसमर्थस्य न्यासः।

सोचने में यही क्रम रहता है। पहले कोई बात सोचते हैं; फिर उसे पुष्ट करना चाहते हैं। शायद उक्त मत में दण्डी यही कहना चाहते हैं।

प्रेम की प्रगति कौतूहल और सहानुभूति से बढ़कर प्रशंसा तक हो गई है। किरातार्जुनीय (७।५) में इससे मिलती-जुलती बात कही गई है कि विकृति भी सुन्दर रूप वालों की बन जाती है—

कान्तानां कृतपुलकः स्तनाङ्गरागे वक्त्रेषु च्युततिलकेषु मौक्तिकाभाः।
संपेदे श्रमसलिलोद्गमो विभूषा रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति॥

कृत्रिम प्रसाधन की अपेक्षा रमणीय व्यक्तियों को नहीं होती, भाव मिलता जुलता है जिस पर निम्न उक्ति बहुत सुन्दर है—

पतन्ति नास्मिन् विशदाः पतत्रिणो धृतेन्द्रचापा न पयोदपङ्क्तयः।
तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्॥

(किरातार्जुनीय ४।२३)

प्रतिमा-नाटक में भास का निम्न-लिखित वचन कालिदास की उक्ति के चतुर्थ चरण का सार-रूप है :—सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम।

शब्दार्थ—अनुविद्ध=मिला हुआ। शैवल-सिवार। लक्ष्म=चिह्न (चिह्नं लक्ष्म च—अमर कोष)। मनोज्ञ=मनोहर (शाब्दिक अर्थ मन को जानने वाला है। "जो मन को बेसुध कर उसके रहस्य जान ले" व्याख्या से मनोहर अर्थ निकलता है)। तन्वी=दुबले अंगों वाली।

व्युत्पत्ति—सरसिज=सरस्+सप्तमी (अलुक्)+जन्+ड (सप्तमी का लोप ऐच्छिक होता है, अतः दूसरा रूप सरोज बनेगा)। अनुविद्ध=अनु+विध्+क्त। मनोज्ञ=मनस्+ज्ञा+क। आकृति=आ+कृ+क्तिन्। किमिव में "इव" शोभा के लिये है (इवेति ईषदर्थोपमोत्प्रेक्षा-वाक्यालङ्कारेषु—वर्द्धमान)।

समास—हिमाः अंशवः यस्य सः हिमांशुः (बहुव्रीहि)। अधिकम् यथा स्यात् तथा मनोज्ञा अधिकमनोज्ञा (सह सुपा)।

छन्द—मालिनी, जिसका लक्षण १।१० में देखा जा सकता है।

अलङ्कार—प्रतिवस्तूपमा। अर्थान्तरन्यास। चतुर्थ चरण में। सामान्य से विशेष का समर्थन)।

दोष—यहाँ दूसरे चरण में "प्रक्रम भङ्ग"-दोष है। पहले और तीसरे चरण में तृतीया का जिस तरह प्रयोग हुआ है, एक रूपता के लिये उसी तरह का प्रयोग द्वितीय चरण में भी अपेक्षित है। हिमांशु को प्रथमा-विभक्ति में न रखना भी एक-रूपता का हनन है। टीकाकार राघव-भट्ट ने इसे निम्नलिखित प्रकार से होना चाहिये कहकर सुधार का सुझाव भी [illegible] किया है।

शकुन्तला—(अग्रतोऽवलोक्य) **एसो वादेरिदपल्लवङ्गुलीहिं तुवरेदि विअ मं केसररुक्खओ। जाव णं संभावेमि** [एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः। यावदेनं संभावयामि।] (परिक्रामति)।

प्रियंवदा—हला सउन्दले एत्थ एव्व दाव मुहुत्तअं चिट्ठ। [हला शकुन्तले अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ।]

शिशिरकिरणमाला सुन्दरी लक्ष्मणापि।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (आगे देखकर) यह (सामने) मौलसिरी का पौधा हवा से प्रेरित पल्लवरूपी उँगलियों से मुझे जल्दी करने को कह रहा है। जरा इसका सम्मान करूँ (घूमती है)।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) **एषः** पुरोवर्त्ती। वातेन पवनेन **ईरितैः** प्रेरितैः **पल्लवैः** पत्रैः एव **अङ्गुलीभिः**। **त्वरयति** "शीघ्रम् आगच्छ" इति आह्वयति। **इव** इदम् प्रतीयते। **माम्** इमम् जनम्। **केसरवृक्षकः** लघुः बकुलतरुः। **यावत्। एनम्। संभावयामि** सम्मानयामि। **परिक्रामति** रङ्गमञ्चम् परितः गच्छति।

हिन्दी-व्याख्या—"त्वरयति" और अंगुलि-संचालन से नायक द्वारा नायिका का संकेत करना ध्वनित होता है जो दुष्यन्त के द्वारा संकेत की पूर्व सूचना-सा है। दुष्यन्त के लिये ऐसा वर्णन प्रेम-समुद्र में ज्वार लाने जैसा है। यह प्रेम की प्रगति की एक उन्नत अवस्था है।

सम्मानित करने से अर्थ लिया जा सकता है कि सींचना, गले लगाना या हाथ फेरना। यह पवित्र स्नेह दर्शनीय है।

शब्दार्थ—ईरित = चलित। त्वरयति = जल्दी करने का संकेत करता है। केसर = मौलसिरी। वृक्षक = पौधा। संभावयामि आदर करती हूँ। परिक्रामति = घूमती है।

व्युत्पत्ति—ईरित् = ईर् + क्त। वृक्षक = वृक्ष + कन्।

समास—वातेन ईरितम् (तृतीया तत्पुरुष)। ईरितम् च तत् पल्लवम् च (कर्मधारय)।

अलङ्कार—रूपक। समासोक्ति। उत्प्रेक्षा। सङ्कर।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा-सखी शकुन्तला, यहीं जरा घड़ी भर ठहरना।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। **हला** हे सखि। **शकुन्तले** (सम्बुद्धौ)। **अत्र** इह (केसरवृक्षकसमीपे)। **एव। तावत्। मुहूर्त्तकम्** कञ्चित् कालम्। **तिष्ठ** विरम।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा मुखर और परिहास-प्रिय है। यहाँ बिना कारण बताये शकुन्तला को रोककर कौतूहल पैदा करती है। कवि इस प्रकार के वर्णन से दर्शकों, श्रोताओं और पाठक के मन में कौतूहल पैदा कर कथा-सूत्र का कुशलता से संचालन करता है। प्रियंवदा प्रेम-क्षेत्र की ज्यादा जानकार है, उसने नायक का संकेत पल्लवाङ्गुलि के वर्णन में ढूँढ़ लिया है और इसी पर विनोद करती है जो आगे स्पष्ट होगा।

शकुन्तला—किंणिमित्तं। [किं[1] निमित्तम्।]

प्रियंवदा—जाव तुये उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि।
[यावत् त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति।]

शब्दार्थ—मुहूर्त्त=दो घड़ी। २४ मिनट की एक घड़ी (घटिका) होती है, यहाँ "क्षण-भर" के अर्थ में मुहूर्त्त शब्द आया है।

व्युत्पत्ति—मुहूर्त्त=हुर्छ+क्त (धातु के पूर्व मुट्)।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—किस कारण ?

संस्कृत टीका—**शकुन्तला** (कथयति यत्)। **किम्** कतमत्। **निमित्तम्** कारणम् (अस्ति)।

हिन्दी व्याख्या—ऊपर बिना कारण बताये प्रियंवदा ने रोक दिया है जिससे कौतूहल होता है। कथा-प्रवाह को बनाये रखने के लिए यह प्रश्न किया गया है। लम्बे वाक्य से कथोपकथन बोझिल हो जाता है, अतः इसको क्षेपक न मानना अधिक युक्ति-संगत है। कौतूहल पैदा होने के बाद विनोद के शब्द और फबेंगे।

शब्दार्थ--निमित्त=कारण, बात।

हिन्दी अनुवाद—जिससे निकट पहुँची हुई तुमसे यह मौलसिरी का पौधा लता से सनाथ-सा प्रतीत हो।

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** (कथयति यत्)। **यावत्** यथा। **त्वया** (शकुन्तलया)। **उपगतया** निकटवर्त्तिन्या। **लतया** वल्लर्या (त्वद्रूपया)। **सनाथः** युक्तः। **इव**। **अयम्** एषः पुरोवर्त्ती। **केसरवृक्षकः** ह्रस्वः बकुलवृक्षः। **प्रतिभाति** प्रतीयेत।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा ने मौलसिरी-वृक्ष को नायक और शकुन्तला को उससे युक्त नायिका बनाकर विनोद किया है। यह विनोद दुष्यन्त, शकुन्तला और सखियों को विवाह की संभावना और औचित्य के प्रति जागरूक करता है।

सनाथ का शाब्दिक अर्थ नाथ (पति या स्वामी) से युक्त है। व्यवहार में यह शब्द "युक्त" मात्र के अर्थ में आता है जिससे यहाँ सनाथ वृक्ष के लिये आया है जो स्वयं नाथ है, न कि नाथ से युक्त। "नाथ" शब्द मात्र कुछ परोक्ष प्रभाव रखता है जो घटना में सहायक है।

लता पतली होती है और शकुन्तला तन्वी (पतली) है, अतः उपमा दी गई है। शकुन्तला के रूप की प्रशंसा की गई है। प्रियंवदा का यौवन और विवाह से सम्बद्ध विनोद देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों सखियों के व्याह की चर्चा अभी न होकर शकुन्तला के व्याह की जल्दी है या वह पहले युवती हो गई है जिससे उसे ऐसे विनोदों की मीठी मार सहनी पड़ रही है। जिसके व्याह की चर्चा होती है, या जिसमें विवाहोचित लक्षणों का प्राकट्य होता है, उसे सखियाँ ऐसे विनोदों से छेड़ती हैं। यौवन के शीघ्र उन्मेष का कारण अप्सरा (मेनका) और राजा (विश्वामित्र) की कन्या तथा विशेष सुख में पालित होना सम्भव है। बातचीत से दोनों सखियाँ अधिक उम्र वाली और प्रौढ़

पाठा० १. (वाक्य ही नहीं है)।

शकुन्तला—अदो क्खु पिअंवदा सि तुमं। [अतः खलु प्रियंवदासि त्वम्।]

राजा—[1]प्रियमपि तथ्यमाह शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु—

विचारों की प्रतीत होती हैं। शकुन्तला अपेक्षाकृत भोली है, कुलपति की विशेष सावधानी इसका कारण हो सकती है।

शब्दार्थ—यावत्=जिससे (पहले आये "तावत्" से सम्बद्ध)। उपगत=निकट आई। सनाथ=युक्त। प्रतिभाति=प्रतीत हो (लट् लकार विधि लिङ् का अर्थ दे रहा है)।

व्युत्पत्ति—उपगत=उप+गम्+क्त।

समास—लतया सनाथः लतासनाथः (तृतीया तत्पुरुष)। नाथेन (सहायेन) सह सनाथः (बहुव्रीहि) (या सहनाथः)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला-इसीलिए प्रियंवदा हो तुम।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। अतः अनेन। खलु=एव (निश्चयेन)। प्रियंवदा (अन्वर्थनामपदा)। असि भवसि। त्वम् (प्रियंवदा)।

हिन्दी व्याख्या—"प्रियं वदति इति प्रियंवदा" इस व्युत्पत्ति से "प्रियंवदा" शब्द का अर्थ "प्रिय वचन बोलने वाली" है। यहाँ शकुन्तला ने लता बनाकर अपनी प्रशंसा करने से प्रिय बोलने वाली कहा है। इस तरह नाम अन्वर्थ (सार्थक) है।

यहाँ शकुन्तला के द्वारा अभिनन्दन है या प्रशंसा अस्वीकार करना, यह स्पष्ट नहीं है। तुम प्रिय बोलने वाली हो, सत्य नहीं, इस अर्थ में लेने पर प्रशंसा न स्वीकार कर शालीनता दिखाई गई प्रतीत होती है जिसका समर्थन अगले (दुष्यन्त के) वचन से भी होता है। सुलझे हुये लोग प्रशंसा को औपचारिक समझकर हँसी में उड़ा देते हैं, उनपर मुँह पर की गई प्रशंसा का तो बिलकुल ही असर नहीं होता।

शब्दार्थ—खलु=ही। प्रियंवदा=सखी का नाम, प्रिय बोलने वाली।

व्युत्पत्ति—प्रियंवदा=प्रिय+मुम्+वद्+खच् (प्रियवशे वदः खच् अष्टाध्यायी ३।२।३८)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—प्रिय होते हुये भी सत्य (ही) प्रियंवदा शकुन्तला से कहती है। इस (शकुन्तला) का तो।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) प्रियम् चाटु। अपि (यद्यपि वचनम् चाटु अस्ति तथापि)। तथ्यम् सत्यम्। आह वदति। शकुन्तलाम् (प्रति)। प्रियंवदा। अस्याः एतस्याः (शकुन्तलायाः) खलु निश्चयेन।

हिन्दी-व्याख्या—"अपि" का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। "यद्यपि ऐसा है तथापि" के अर्थ में "अपि" ही समर्थ है। "प्रिय" और "तथ्य" दोनों वचन के लिये हैं। "अपि" का अर्थ और लेकर अर्थ आसानी से समझा जा सकता है, यद्यपि सूक्ष्म विशेषता 'भी' का प्रयोग करने पर ही आएगी। आशय है कि शकुन्तला सचमुच मौलसिरी वृक्ष के निकट लता-सी दिखती है।

पाठा०—१ न पुनः प्रियंवदा (अधिक)।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥

मीठी बात और वह भी मुँह पर कही हुई अकसर झूठ और चापलूसी के लिए होती है। यह बात जानते हुए राजा ने "झूठी प्रशंसा तो नहीं है" सन्देह मन से निकालने के लिए यह प्रतिपादन किया है।

रघुवंश (१४।६) में ऐसा ही भाव "प्रियमप्यमिथ्या" प्रयोग से व्यक्त किया गया है।

शब्दार्थ—तथ्य=सच ।

व्युत्पत्ति—तथ्य=तथा+यत् ।

हिन्दी-अनुवाद—निचले ओंठ की ललाई नये पत्ते की सी है, भुजाएँ मुलायम डण्ठल की नकल करती हैं तथा फूल की भाँति आकर्षक युवावस्था अङ्गों में सचेष्ट है।

अन्वय—अधरः किसलयरागः बाहू कोमलविटपानुकारिणौ कुसुमम् इव लोभनीयम् यौवनम् (च) अङ्गेषु सन्नद्धम् ।

संस्कृत-टीका—अधरः निम्नोष्ठः । **किसलयस्य** नवदलस्य रागः लौहित्यम् इव **रागः** लौहित्यम् यस्य तादृशः । **बाहू** भुजौ । **कोमलयोः** मृदुलयोः**विटपयोः** शाखयोः **अनुकारिणौ** सदृशौ । **कुसुमम्** पुष्पम् । **इव** । **लोभनीयम्** आवर्जकम् । **यौवनम्** युवावस्था । **अङ्गेषु** अवयवेषु । **सन्नद्धम्** विजृम्भितम् ।

हिन्दी व्याख्या—दुष्यन्त पूर्ववत् पत्ते, डाल और फूल जैसे जङ्गली या उपवन लभ्य पदार्थों को उपमान बनाते हैं। कालिदास और उनके पात्रों का यह प्रकृति-प्रेम स्थान-स्थान पर देखा जाता है।

राजा ने अपने पूर्व-वचन का समर्थन करते हुए इस पद्य में प्रियंवदा के वचन को सत्य बताया है।

अधर, बाहु और यौवन क्रमशः किसलय-लालिमा, कोमल डाल और कुसुम के समान हैं जिनसे देह लता के समान है, यह आशय है।

अभी तक दुष्यन्त सामान्य बात ही कह रहे हैं; विशेष रूप से मुझे कैसा लगता है, इसका वर्णन नहीं है। उक्त भाव व्यक्तिगत सम्पर्क न होने से अभी अव्यक्त अवस्था में है। फिर भी शकुन्तला का यौवन लोभनीय स्तर तक पहुँच चुका है जिससे आकृष्ट होने की सम्भावना है।

"किसलय-राग" समास के विग्रह से उपमा-वाचक "इव" शब्द मिल जाता है। "अनुकारी" भी उपमा-वाचक है :—तस्य चानुकरोतीति शब्दाः सादृश्यसूचकाः (काव्यादर्श २।६५)।

"सन्नद्ध" का अर्थ कवच-युक्त, युद्ध के लिए उद्यत और उद्यत के रूप में विकसित हुआ है।

शब्दार्थ—किसलयराग=जिसकी ललाई किसलय की ललाई के समान है। अनुकारी=अनुकरण करने वाला; तुल्य। लोभनीय=आकर्षक। सन्नद्ध=सचेष्ट।

व्युत्पत्ति—राग=रञ्ज्+घञ् । विटप=विट+पा+क । अनुकारी=अनु+कृ+णिनि । लोभनीय=लुभ्+णिच्+अनीयर् । यौवन=युवन्+अण् । सन्नद्ध=सम्+नह्+क्त ।

अनसूया—हला सउन्दले इअं सअंवरवहू सहआरस्स तुए किदणामहेआ वणजोसि-णित्ति णोमालिआ। णं विसुमरिदा सि। [हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरवधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतासि।]

समास—किसलयस्य रागः किसलयरागः (षष्ठी तत्पुरुष)। किसलयरागः इव रागः यस्य सः (बहुव्रीहि)। विग्रह के अनुसार "किसलयरागराग" बनना चाहिये, पर बाद का "राग" 'सप्तम्युपमानपूर्वस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' इस वार्त्तिक से हट जाता है।

कोमलौ च तौ विटपौ च (कर्मधारय) तयोः अनुकारिणौ कोमलविटपानुकारिणौ (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—आर्या, जिसका लक्षण १.२ में देखा जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया-सखी शकुन्तला, यह नवमालिका है। आम्र वृक्ष को स्वयं वरकर उसकी वधू है तथा जिसका नाम तुमने वन-ज्योत्स्ना (जंगल की चाँदनी) रखा है। तुमने इसे भुला दिया है।

संस्कृत टीका—हला सखि। **शकुन्तले**। **इयम्** असौ पुरोवर्त्तिनी। **स्वयंवर**-प्राप्ता **वधूः** पत्नी। **सहकारस्य** आम्रस्य। **त्वया** भवत्या। **कृतम्** विहितम् **नामधेयम्** संज्ञा यस्याः तादृशी। वनज्योत्स्ना **वनस्य** अरण्यस्य **ज्योत्स्ना** कौमुदी। **इति नवमालिका** (नाम कुसुमवल्ली)। **एनाम्** (नवमालिकाम्) **विस्मृता** स्मरणपथात् अपनीतवती **असि**।

हिन्दी व्याख्या—अनसूया स्वयंवरण-रूप-श्रृंगारमय घटना का वर्णन करती है जिससे शकुन्तला और दुष्यन्त के हृदय के श्रृंगारिक भाव की पुष्टि हो रही है, यह भावी स्वयंवर (गन्धर्व-विवाह) की सूचना दे रहा है।

अनसूया गम्भीर बातें ही करती है, यह उसके स्वभाव की विशेषता है। श्रृंगार उसे अभिप्रेत नहीं प्रतीत होता; प्रसंगवश आ गया है। केवल एक पात्र को विनोदी करने से गंभीरता की रक्षा हुई है, अन्यथा प्रहसन-जैसी स्थिति आने का डर रहता है।

लता स्वयं ऊपर चढ़कर पेड़ को अपना लेती है जो काव्यात्मक भाषा में स्वयंवर है। स्वयंवर में वधू पति का वरण स्वयं करती है। यह प्रथा सामान्यतः निर्लज्जता-द्योतक मानी जाने पर भी समय-समय पर आदर्श मानी जाती रही है। वास्तव में व्यवस्था में दोष होते हैं; गुणाधिक्य से उसे चलाया जाता है, पर बाद में दोष से परेशान होकर उसे बदल दया जाता है भले ही दोष किसी दूसरे कारण से अधिक स्पष्ट और प्रचुर हो गया हो। यही क्रम मण्डलाकार चलता रहता है। राज-व्यवस्था तक इसी क्रम से चलती है। गणतंत्र अधिनायकवाद आदि व्यवस्थायें बार बार अपनाई जाती हैं। योरोपीय देशों में पति की ओर से प्रस्ताव आने पर कन्या को सहमति देनी होती है पर प्रायः उसमें कन्या की ओर से वरण-प्रवृत्ति व्यक्त होती है। पुराने शासकों का जबर्दस्ती वरण करना या गौतम का राज-कन्याओं में से एक को चुनना पुरुष की ओर से स्वयंवर है।

सहकार आम, विशेषतः एक प्रकार के अति सुगंधित आम, को कहते हैं। सुगन्ध के कारण

शकुन्तला—तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं। (लतामुपेत्यावलोक्य च) **हला, रमणीए क्खु काले इमस्स लदापाअवमिहुणस्स वइअरो संवुत्तो। णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणी सिणिद्धपल्लवदाए उवभोअक्खमो सहआरो।** [तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि। (लतामुपेत्यावलोक्य च) हला रमणीये खलु काल एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। यन्नव[1]कुसुमयौवना वनज्योत्स्ना स्निग्ध[2]पल्लवतयोपभोगक्षमः सहकारः।] (पश्यन्ती तिष्ठति)

श्रृंगारिक भावना भरकर यह युगलों को मिलाता है, अतः इसका नाम ऐसा रखा गया है (सह कारयति द्वन्द्वम् वियुक्तम् अपि)।

"वन-ज्योत्स्ना" नाम से प्रतीत होता है कि नवमालिका के फूल चाँदनी की तरह प्रचुर, श्वेत, रात में खिलने वाले और आह्लादक होते हैं।

सींचने में सभी कन्यायें लगी हैं। उसी समय बात हो रही है जिससे लगता है कि भूलने का अर्थ सींचना भूल जाना है। "विस्मृता" का अर्थ "भूली हुई" होने पर भी दूसरी व्युत्पत्ति के कारण इसका अर्थ "भुला देने वाली" निकलता है।

शब्दार्थ—स्वयंवरवधू—स्वयंवर में मिली पत्नी। सहकार=आम या अत्यन्त सुगन्धित आम (आम्रश्चूतो रसालश्च सहकारोऽतिसौरभः)। कृतनामधेया—जिसका नाम (तुम्हारे द्वारा) रखा गया है। विस्मृता=भुला दिया या विस्मृति वाली। नामधेय=नाम+धेय (स्वार्थे)।

व्युत्पत्ति—स्वयंवर=स्वयम्+वृध् (अम्) या खच्। ज्योत्स्ना=ज्योतिस्+न। विस्मृत=वि+स्मृ+क्त [हर धातु को गत्यर्थक माने पर गौण वृत्ति से "स्मृ" को गत्यर्थक मानकर कर्म (एनाम्) का प्रयोग हो सकता है] या वि+स्मृ+क्त (नपुंसके भावे क्तः)+अच् (=विस्मृति वाली)।

समास—स्वयंवरं प्राप्ता वधूः (शाकपार्थिवादि) या स्वयंवरे वधूः (सप्तमी तत्पुरुष) या स्वयंवरा (स्वयं वरण करने वाली) च सा वधूः च (कर्मधारय) स्वयंवरवधूः। कृतम् नामधेयम् यस्याः सा कृतनामधेया (बहुव्रीहि)।]

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—तब अपने को भी भूल जाऊँगी (लता के पास पहुँच और देखकर) सखी, निश्चित रूप से रमणीय (इस) वेला में लता और वृक्ष की इस जोड़ी का मिलन हो गया है। वनज्योत्स्ना (नवमालिका) का पुष्प रूपी यौवन नया (या नव ऋतुकाल वाला) है तो सहकार (सुगंधित आम) चिकने पल्लवों वाला होने के कारण उपभोग (या उपभोग्य वस्तुयें देने) में समर्थ है (देखती हुई ठहरती है)।

संस्कृत टीका—**शकुन्तला** (कथयति यत्)—**तदा** तर्हि। **आत्मानम्** स्वम्। **अपि** (का कथा अन्यस्य)। **विस्मरिष्यामि** विस्मृतिम् नेष्यामि। (**लताम्** वल्लीम्। **उपेत्य** तत्समीपे गत्वा। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। च) **हला** अयि (अनसूये) **रमणीये** रम्ये। **खलु** निश्चयेन। **काले** समये।

पाठ०—१. (केवल "यत्" नहीं है)। २. बद्ध।

एतस्य अस्य। **लतायाः** (नवमालिका-) वल्ल्याः **पादपस्य** (सहकार-) वृक्षस्य **मिथुनस्य** युगलस्य। **व्यतिकरः** मिलनम्। **संवृत्तः** जातः। **यत्** यतः। **नवम्** प्रथमम् सद्यः प्राप्तम् च **कुसुमम्** पुष्पम् रजः एव (यत्र तादृशम् वा) **यौवनम्** युवावस्था यस्याः सा **वनज्योत्स्ना** नवमालिकापरनाम-धेया (**वनस्य** विपिनस्य ज्योत्स्ना चन्द्रिका), (ततः) **स्निग्धाः** चिक्कणाः मनोहारिणः च पल्लवाः पत्राणि यस्य तस्य भावः तत्ता तया (यतः सहकार; नवपल्लवः अतः)। **उपभोगस्य** भोगस्य भोगप्रदानस्य। **क्षमः** योग्यः। **सहकारः** अतिसौरभः आम्रवृक्षः।

हिन्दीव्याख्या—शकुन्तला की नवमालिका के प्रति ऐसी आत्मीयता है कि तादात्म्य स्थापित हो गया है। दोनों की आत्मायें एक हो गई हैं; शरीर ही अलग-अलग हैं। जिससे नवमालिका को भूल जाना अपने को भूल जाना होगा। यह दुर्वासा ऋषि के आने के समय दुष्यन्त की याद में भूली हुई शकुन्तला के वर्णन की पूर्व-सूचना है।

शकुन्तला ने लता और वृक्ष के मिलन, एक का नव-कुसुमयौवना होना और दूसरे का उपभोग-क्षम होना बताया है जिससे स्पष्ट है कि जन्म से ही तपोवन में रहने वाली कन्यायें भी दाम्पत्य जीवन से परिचित होती थीं। हो सकता है पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिये काम शास्त्र की आरम्भिक शिक्षा देने की प्रथा रही हो। यह वर्णन दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम की प्रगति का हेतु तो है ही, इस नई ऋतु में दोनों के मिलन की पूर्व-सूचना भी है।

देखती हुई ठहरना का अर्थ प्रेम से निहारना, प्रेम में खो जाना या स्वयं अपने भविष्य की चिन्ता कहा जा सकता है। प्रथम विकार परिवर्तन को साहित्य दर्पण में भाव कहा गया है—निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया।

विधेय के विशेषण या विशेषणस्थानापन्न संज्ञा होने पर "अस्" धातु का प्रयोग छोड़ देने में ही शोभा है, अन्तिम वाक्य में दो विधेय हैं पर "अस्" का प्रयोग नहीं है।

व्याह के लिये लड़की का युवती और लड़के का उपभोग की वस्तुयें प्रदान करने (यहाँ छाया देने) में योग्य होना आवश्यक माना गया है। आज भी लड़की से रूप-यौवन और लड़के से खिला सकने की क्षमता की ही अपेक्षा की जाती है, विद्यादि गुण गौण हैं।

काल (ग्रीष्म) लता के फूलों की सुगंध और वृक्ष की छाया से रमणीय हो गया है। साहित्य-दर्पण का "शोभा" नामक नाटक-लक्षण यहाँ घटित होता है:—

सिद्धैरर्थैः समं यत्राप्रसिद्धोऽर्थः प्रकाशते।
श्लिष्टलक्षणचित्रार्था सा शोभेत्यभिधीयते॥

शब्दार्थ—मिथुन = जोड़ी। व्यतिकर = मिलन। कुसुम = फूल, रजोदर्शन। स्निग्धपल्लवता = स्निग्ध (चिकने) पल्लव (पत्र) वाला होना। क्षम = योग्य। सहकार = अतिसुगंधित किस्म के एक आम का पेड़।

व्युत्पत्ति—उपेत्य = उप + इ + ल्यप्। अवलोक्य = अव + लोक् + ल्यप्। रमणीय = रम् + अनीयर। व्यतिकर् = वि + अति + कृ + अ। संवृत्त = सम् + वृ + क्त। यौवन = युवन् + अण्।

प्रियंवदा—अणसूए जाणासि किंणिमित्तं सउन्दला वणजोसिणीं अदिमेत्तं पेक्खदित्ति । [अनसूये जानासि किंनिमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति ।]

अनसूया—ण क्खु विभावेमि । कहेहि । [न खलु विभावयामि । कथय ।]

स्निग्ध = स्निह् + क्त उपभोग = उप + भुज् + घञ् । पश्यन्ती = दृश् + शतृ (प्रथमा एकवचन स्त्रीलिङ्ग) ।

समास—लता च पादपः च (द्वन्द्व) तयोः मिथुनस्य (षष्ठीतत्पुरुष) लतापादपमिथुनस्य । नवम् कुसुमम् यत्र (बहुव्रीहि) तादृशम् यौवनम् यस्याः सा (बहुव्रीहि) । नवम् च तत् कुसुमम् च नवकुसुमम् (कर्मधारय) तत् एव यौवनम् यस्याः सा (बहुव्रीहि) । वनस्य ज्योत्स्ना वनज्योत्स्ना (षष्ठी तत्पुरुष) । स्निग्धाः पल्लवाः यस्य सः स्निग्धपल्लवः (बहुव्रीहि) । उपभोगस्य क्षमः उपभोगक्षमः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

अलङ्कार—समासोक्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा-अनसूया, जानती हो किसलिये शकुन्तला के वन ज्योत्स्ना को देखने का अन्त ही नहीं है ।

संस्कृत-टीका—**प्रियवदा** परिहासप्रिया शकुन्तलासखी (कथयति यत्) । **अनसूये** (सम्बुद्धौ) । **जानासि** बुध्यसे । **किम्** कतमत् **निमित्तम्** हेतुः यत्र तत् यथा स्यात् तथा (केन कारणेन) । **शकुन्तला** । **वनज्योत्स्नाम्** नवमालिकाम् । **अतिमात्रम्** असीमम् । **पश्यति** अवलोकते । **इति** ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला की परिहास-प्रिय सखी प्रियंवदा यह अवसर भी नहीं खोती और दिल की बात ताड़कर कह देती है । किसी की हँसी करने में दोनों पक्षों के साथी को सम्बोधित कर कहने में सहयोग मिलने की सम्भावना से विनोद अधिक अच्छा होता है जिससे अनसूया को सम्बोधित किया गया है । यहाँ पुनः प्रश्न द्वारा कौतूहल पैदा किया गया है । नाटक पढ़ने या देखने में लगा व्यक्ति रसास्वादन में मग्न होकर गहराई में सोचने की स्थिति में नहीं रहता, अतः तत्काल कारण की उद्भावना करना उसके लिए सम्भव नहीं होता । उसे इस तरह प्रश्न द्वारा बताना अभिराम प्रकार है ।

शब्दार्थ—किंनिमित्तम् = किस कारण । अतिमात्रम् = असीम रूप से ।

व्युत्पत्ति—ज्योत्स्ना = ज्योतिस् + न ।

समास—किम् निमित्तम् यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा किंनिमित्तम् (बहुव्रीहि) । वनस्य ज्योत्स्ना वनज्योत्स्ना (षष्ठी तत्पुरुष) । अतिगता मात्रा (नाप या सीमा) यस्मिन् अतिमात्रम् (बहुव्रीहि) ।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—बिलकुल नहीं जानती । कहो ।

संस्कृत-टीका—**अनसूया** गम्भीरभावा शकुन्तलायाः सखी (कथयति यत्) । **न** । **खलु** निश्चयेन । **विभावयामि** अनुमातुम् शक्नोमि । **कथय** वद ।

हिन्दी व्याख्या—अनसूया पाठक या दर्शक का प्रतिनिधित्व करती है जो रसास्वादन में कारण

प्रियंवदा—जह वणजोसिणी अणुरूवेण पाअवेण संगदा। अवि णाम एव्वं अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअत्ति। [यथा वनज्योत्स्नानुरूपेण पादपेन संगता अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति।]

शकुन्तला—ऐसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो। [एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः।] (कलशमावर्जयति)

के चक्कर में नहीं पड़ता या एकाएक सोच नहीं पाता। हृदय पक्ष प्रबल होकर बुद्धि-पक्ष को दबा देता है। अनसूया जरूरत से ज्यादा भोली है या चिढ़ाने वाली बात अपने मुँह से नहीं कहना चाहती कि कहीं शकुन्तला नाराज न हो जाय। उधर प्रियंवदा शोख है और उसका बुद्धि-पक्ष बहुत प्रबल है, विनोद के लिए बुद्धि-प्राबल्य की बहुत अपेक्षा भी होती है। ऊपर की श्लिष्ट बातों के प्रसंग में अनसूया को अब तक तो अवश्य समझ जाना चाहिये या विशेष रूप से तब जब प्रश्न भी सुन लिया।

शब्दार्थ—विभावयामि=अनुमान लगा पाती हूँ।

व्युत्पत्ति—विभावयामि=वि+भू+णिच् (उत्तम पुरुष एक-वचन)।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—जिस प्रकार वन-ज्योत्स्ना (नवमालिका) (अपने) योग्य (वर) वृक्ष से मिली है उसी तरह क्या सम्भव है कि मैं भी अपने योग्य वर पा लूँ।

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** शकुन्तलासखी (कथयति यत्)। **वनस्य** विपिनस्य **ज्योत्स्ना** नवमालिका लता। **अनुरूपेण** स्वस्य योग्येन (वरेण)। **पादपेन** वृक्षेण। **सङ्गता** मिलिता। **अपि** किम्। **नाम** (सम्भावनायाम्)। **एवम्** तथा। **अहम्** अयम् जनः। **अपि**। **आत्मनः** स्वस्य। **अनुरूपम्** योग्यम्। **वरम्** पतिम्। **लभेय** प्राप्नुयाम् (प्राप्तुं शक्नोमि वा न वा)। **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा ने असली बात ताड़ ली है और मुखर होने के कारण कह दी है। देर तक एक जगह और वह भी जहाँ मिलन उत्प्रेक्षित हो कुमारी का रुकना स्पष्ट सूचित करता है कि उन दोनों के मिलन पर ईर्ष्या या वैसी स्थिति में स्वयं होने की लालसा हो रही है।

यह बात दुष्यन्त के सुप्त मन में पड़ी अनुरूप वर की भावना को जगाने के लिए पर्याप्त है। वे यह सुनकर सोचेंगे कि क्या मैं इस शकुन्तला के योग्य वर हो सकता हूँ या कौन हो सकता है?

शब्दार्थ—अपि=क्या (गर्हासमुच्चयप्रश्नसङ्ख्यासंभावनास्वपि—अमरकोष)। नाम=यह सम्भव है कि (नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने—अमरकोष ३।४।२५१)। अनुरूप=योग्य। लभेय=पा सकती हूँ या पा सकूँगी।

व्युत्पत्ति—संगत=सम्+गम्+क्त। "अपि" का एक स्थान पर "क्या" और दूसरे स्थान पर भी अर्थ एक ही वाक्य में है, यह ध्यान देने योग्य है। "नाम" और विधिलिङ्—दोनों संभावना (सकना) अर्थ देते हैं और साथ-साथ आ सकते हैं।

हिन्दी अनुवाद—यह निश्चय ही तुम्हारा स्वगत मनोरथ है। (घड़ा झुकाती है)।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **एषः** अयम् पूर्वोक्तः अनुरूपवरप्राप्तिविषयकः। **नूनम्** निश्चयेन। **तव** भवत्याः। **आत्मनि** स्वस्मिन् **गतः** प्राप्तः। **मनोरथः** अभिलाषः त्वम् एव

राजा—अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात् । अथवा कृतं सन्देहेन ।

मनसि करोपि यत् लता आम्रम् इवाहम् अनुरूपम् वरम् लभेय इति। (**कलशम्** सेचनघटम्। **आवर्जयति** अधोमुखम् करोति।)

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला गम्भीर है जिससे ठिठोली में उक्त बात स्वीकार नहीं करती। चिढ़कर उलटे वही आरोप प्रियंवदा पर करती है। कोई दूसरी बात न सूझने पर विनोद का शिकार खीझा हुआ व्यक्ति वही बात प्रतिद्वन्द्वी के प्रति जोड़ता है। शकुन्तला का आशय यह है कि तुम्हारे मन में यह भाव है कि मुझे अनुरूप वर मिल जाय, इसे छिपाने के लिये तुम यह बात मेरे मन में बता रही हो। ऐसा आदमी प्रायः करता है और इसे मनोविज्ञान की भाषा में "प्रोजेक्शन" (Projection) कहते हैं, किन्तु यहाँ वह स्थिति नहीं है। शकुन्तला का खण्डन विपरीत फल देता है और सुनने वालों की धारणा पुष्ट होती है कि प्रियंवदा की बात सही है।

प्रियंवदा की बात ऊपर से सम्बद्ध होने पर शकुन्तला पर घटित होती है पर स्वतन्त्र होने पर प्रियंवदा के लिए ही अन्वित होती है। शकुन्तला ने इस शब्दार्थ-योजना का लाभ उठाते हुये आक्षेप के ही ऊपर घटाने का यत्न किया है।

शब्दार्थ—आत्मगतः = अपने में स्थित। आवर्जयति = उलटा करती है।

व्युत्पत्ति—गतः = गम् + क्त।

समास—आत्मानम् गतः आत्मगतः (द्वितीया-तत्पुरुष)। आवर्जयति = आङ् + वृज् + णिच् (लट् लकार—वर्तमान काल-प्रथम पुरुष एक वचन)।

हिन्दी-अनुवाद—क्या यह सम्भव है कि यह कुलपति की विजातीय पत्नी से उत्पन्न हो, या शङ्का बेकार है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्)। **अपि** किम्। **नाम** इदं सम्भावितम् यत्। **कुलपतेः** मुनीश्वरस्य। **इयम्** एषा कन्या शकुन्तला। न **सवर्णम्** समानजातीयम्। **क्षेत्रम्** जाया **तत्सम्भवा** तज्जाता। **स्यात्** भवेत्। अथवा यद्वा। **कृतम्** अलम्। **सन्देहेन** शङ्कया।

हिन्दी-व्याख्या—उपर की बातों से शकुन्तला की अनुरूप वर की चाह सुनकर दुष्यन्त के मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि क्या मैं इस सुन्दरी के अनुरूप हो सकता हूँ। अभी तक धर्म-मर्यादा से बँधे हुये होने से उन्होंने अपना उक्त भाव दबाने की कोशिश की, अब "अति" हो जाने पर उन्होंने यह सम्भावना करनी शुरू की कि कौन जाने कुलपति की यह सजातीय कन्या न हो। उनकी पत्नी ब्राह्मणी के अलावा भी किसी जाति की हो जिससे शकुन्तला पैदा हुई हो। अपने से छोटी जाति में विवाह हो सकता है; ऊँची जाति में नहीं। ब्राह्मण-ब्राह्मणी की सन्तान के अलावा सभी जातियों की कन्याओं से क्षत्रिय दुष्यन्त का विवाह हो सकता है, भले ही वह जाति संकर (अनुलोम संकर) हो। इससे यह पता चलता है कि कालिदास के समय पिता के ब्राह्मण और माता के विजातीय होने पर सन्तान ब्राह्मण नहीं होती थी और असवर्ण विवाह सम्भव थे।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥

"क्षेत्र" शब्द का अर्थ पत्नी होने पर भी यह नपुंसक लिङ्ग में है। भाषा में लिङ्ग व्यवहार से निश्चित होता है। किसी संज्ञा को वैयाकरण किसी लिङ्ग में इसलिये रखते हैं जिससे रूप उसी वर्ग के शब्द के अनुसार चलाया जा सके और विशेषण व सर्वनाम को स्थिति भी तदनुसार की जा सके। स्त्री, दार (बहुवचन भी) तथा कलत्र (क्षेत्र) क्रमशः स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग हैं पर अर्थ स्त्री ही है।

शब्दार्थ—असवर्ण = विजातीय । क्षेत्र = स्त्री (क्षेत्रं पत्नीशरीरयोः—अमरकोष)।

व्युत्पत्ति—सम्भव = सम् + भू + अप् । कृतम् अव्यय है; इसका अर्थ "मत करो" है। "वारणार्थ-योगे तृतीया" के अनुसार "कृतम्" और "अलम्" के योग में तृतीया आती है। सन्देह = सम् + दिह् + घञ् ।

समास—न सवर्णम् असवर्णम् (नञ् तत्पुरुष)। असवर्णम् च तत् क्षेत्रम् (कर्मधारय) तत् तस्मिन् सम्भवः (उत्पत्ति-स्थानम्) यस्याः सा असवर्णक्षेत्रसम्भवा (बहुव्रीहि)। समानः वर्णः यस्य तत् सवर्णम् (बहुव्रीहि), या सह (सदृशम्) वर्णेन सवर्णम् (अस्वपदविग्रह बहुव्रीहि)।

इसी तरह की अन्य अनेक शब्दों की स्थिति है। जो पुरुष या स्त्री नहीं, वह नपुंसक लिङ्ग में रखा जाय, यह धारणा भ्रान्त है। लिङ्ग-व्यवस्था जानने के लिये श्लोक-बद्ध कोष याद करना बहुत अच्छा है जिससे पर्याय-वाची शब्द तो मालूम होंगे ही, साथ ही-साथ लिङ्ग-निर्देश भी होने से अलग से याद रखने की आवश्यकता न पड़ेगी। व्याकरणशास्त्र में इसका उल्लेख नहीं है, पर कुछ आधुनिक व्याकरणों में इसका अच्छा विवेचन है। पढ़ते समय शब्दों के रूप पर ध्यान देने से भी कुछ काम चल सकता है। "अथ" और "वा" दो अव्यय हैं, पर एक साथ लिखने का चलन हो गया है जो ठीक नहीं है। संस्कृत में शब्दों के बीच में अवकाश न रखने की रीति रही है क्योंकि बोलने में रुका (अवकाश रखा) नहीं जाता। यही पद्धति वैज्ञानिक और श्लेष तथा पहले को दृष्टि से उपयोगी है। कठिनता लाने वाली होने से आजकल अवकाश देकर लिखना चल पड़ा है।

हिन्दी-अनुवाद—मेरा सदाचारी मन इसका अभिलाषी है जिससे यह क्षत्रिय-द्वारा ग्रहण करने योग्य है, इसमें शक नहीं है; क्योंकि सन्देह वाली बातों में हृदय की प्रवृत्ति ही सज्जनों के लिये प्रमाण है।

अन्वय—असंशयम् (इयम्) क्षत्रपरिग्रहक्षमा यत् अस्याम् आर्यम् मे मनः अभिलाषि। अन्तः-करणप्रवृत्तयः हि सन्देहपदेषु वस्तुषु सताम् प्रमाणम्।

संस्कृत-टीका—न संशयः संदेहः यत्र तत् यथा स्यात् तथा **असंशयम्** (यत्)। (इयम्) **क्षत्रस्य** क्षत्रियद्वारा यः **परिग्रहः** (पत्नीत्वेन) ग्रहणम् तस्य **क्षमा** योग्या। **यत्** यतः। **अस्याम्** एतस्याम् शकुन्तलायाम्। **आर्यम्** सदाचारसम्पन्नम्। **मे** मम। **मनः** हृदयम्। **अभिलाषि** सस्पृहम् अनुरक्तम् इत्यर्थः। **अन्तःकरणस्य** हृदयस्य **प्रवृत्तयः** व्यापाराः। **हि** निश्चयेन। **सन्देहस्य** संशयस्य **पदेषु** स्थानभूतेषु। **वस्तुषु** पदार्थेषु। **सताम्** सज्जनानाम् **प्रमाणम्** कर्तव्यनिर्णायकम्।

हिन्दी-व्याख्या—राजा को अपने निष्कल्मष मन पर पूरा विश्वास है। वे इतने आस्तिक हैं जिससे यह कह सकते हैं कि उन्होंने मन शुद्ध रखा है संयोग-वश भी वह अशुद्ध नहीं हो सकता, वह अनुचित के लिये अभिलाषा कर ही नहीं सकता। मन की यह निर्णायकता स्वीकार करने में शुद्ध मन का होना आवश्यक है। कभी-कभी मन के दो पक्ष माने जाते हैं—(१) सत् और (२) असत्। (Rational Faculty) (Irrational Faculty) पहला अच्छी बात का आग्रह करता है और दूसरा बुरी का। ऐसा सामान्य जन के लिये ठीक है। जिसने मन को सत् पक्षपाती बना लिया है, उसके लिये असत् पक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता। मनोवैज्ञानिकों ने मन की अपार शक्ति से भूत, भविष्य और वर्त्तमान को जान लेना, क्रान्त-दृष्टि से किसी को वश-वर्त्ती कर लेना आदि रहस्यों का उद्घाटन करने में सफलता प्राप्त की है। मन की यह शक्ति प्राचीन ऋषियों को भी ज्ञात थी। मनु अपनी (मन की) तुष्टि को धर्म-मूल मानते हैं—

आत्मनस्तुष्टिरेव च (२।६)।

मन को बन्धन और मोक्ष का कारण तक बताया गया है:—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'। आधुनिक विद्वानों ने विशेषतः इतिहासकारों ने इसे जाति-विशेष के लिये रूढ़ कर लिया है।

अपने मन को आर्य कहना और सज्जनों के अन्तःकरण की चर्चा तुलना में करना इस पद्य को दुष्यन्त की आत्म-प्रशंसा बना देता है, जो दुष्यन्त जैसे धीरोदात्त नायक के लिये उचित नहीं है। अपने को ही सुनाने के लिये होने से यह बात आत्म-प्रशंसा के स्थान पर आत्म-विश्वास और उत्कर्ष समझा जा सकता है। दशरूपक ने यह श्लोक अयोग (मिलन न होना) की १० अवस्थाओं में एक—अभिलाष के उदाहरण में उद्धृत किया है और अभिलाष की परिभाषा सर्वाङ्ग सुन्दर कान्त के प्रति स्पृहा बताई है—अभिलाषः स्पृहा तत्र कान्ते सर्वाङ्गसुन्दरे।

कुमारिल-भट्ट ने तन्त्रवार्त्तिक (बनारस संस्कृत सीरिज के पृष्ठ १३३) के एक श्लोक का उत्तरार्ध इस श्लोक के उद्धरण से बनाया है।

साहित्य-दर्पण का "परिन्यास" नामक मुख-सन्धि का अङ्ग यहाँ घटित होता है—'तन्निष्पत्तिः परिन्यासः।' यहाँ दुष्यन्त में अनुराग की निष्पत्ति है।

शब्दार्थ—असंशयम्=असन्दिग्ध रूप से। क्षत्रं=क्षत्रिय (क्षत्रं क्षत्रियराजन्यौ—नाम-माला)। परिग्रह=ग्रहण, (परिग्रहः परिजने पत्न्यां स्वीकारमूलयोः—विश्व) क्षम=योग्य। आर्य=सदाचारी। अभिलाषि=अभिलाषा वाला। पदम्=स्थान (रूप) (पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु)। प्रमाण=निर्णायक तत्त्व। प्रवृत्ति=रुझान।

व्युत्पत्ति—असंशयं=अ+सम्+शीं+अच्। परिग्रह=परि+ग्रह+अप्। क्षम=क्षम्+ण। आर्य=ऋ+ण्यत्। अभिलाषि=अभि+लष्+णिनि। सन्देह=सम्+दिह्+घञ्। प्रमाण=(सदा एकवचन नपुंसकलिङ्ग में आता है) प्र+मा+ल्युट्। करण=कृ+ल्युट्। प्रवृत्ति=प्र+वृ+क्तिन्।

समास—न संशयः यत्र (बहुव्रीहि) या संशयस्य अभावः (अव्ययीभाव) असंशयम्। क्षत्रस्य

तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये ।

शकुन्तला (ससंभ्रमम्)— अम्मो सलिलसेअसंभमुग्गदो[1] णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ[2] [अम्मो सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्त्तते ।] (भ्रमरबाधां रूपयति)

(षष्ठी तत्पुरुष) क्षत्रेण (तृतीया तत्पुरुष) वा परिग्रहस्य क्षमा (षष्ठी तत्पुरुष) । सन्देहस्य पदेषु सन्देहपदेषु (षष्ठी तत्पुरुष) । अन्तःस्थम् करणम् अन्तःकरणम् (शाकपार्थिवादि) तस्य प्रवृत्तयः अन्तःकरणप्रवृत्तयः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

छन्द—वंशस्थ या वंशस्थविल जिसका लक्षण १।१८ में देखा जा सकता है ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास (सामान्य से विशेष का समर्थन) । अप्रस्तुतप्रशंसा । दुष्यन्त की निर्मलता ध्वनित होती है ।

हिन्दी-अनुवाद—फिर भी इसके बारे में ठीक-ठीक पता लगाऊँगा ।

संस्कृत टीका—**तथापि** (यद्यपि अन्तःकरणप्रवृत्त्यनुसारेण शकुन्तला क्षत्रपरिग्रहक्षमा एव) तदपि । **तत्त्वतः** वस्तुतः । **एनाम्** इमाम् (शकुन्तलाम्) । **उपलप्स्ये** ज्ञास्यामि ।

हिन्दी व्याख्या—ऊपर राजा दुष्यन्त ने अपने मन पर पूरा भरोसा रखा है, फिर भी वे प्रयत्नपूर्वक पता लगाने की बात कहते हैं । यह प्रेम की स्थिति में दोलायमान मन का उदाहरण माना जा सकता है । यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ तक हो सके प्रत्यक्ष, दूसरे या अधिक पुष्ट प्रमाण से किसी नाजुक बात का समर्थन कर लेना ही बुद्धिमानी है जिससे राजा ऐसा सोचते हैं । यह बात उत्सुकता वश कही गई भी हो सकती है । अलौकिक प्रमाण से जानी गई बात का लौकिक, प्रत्यक्ष या वैज्ञानिक प्रमाण से समर्थन देखने की उत्सुकता सभी में होती है; आस्तिकता को इससे कोई क्षति नहीं होती ।

शब्दार्थ—तत्त्वतः = वास्तव में । उपलप्स्ये = (इस शकुन्तला को) उपलब्ध करूँगा, शाब्दिक अर्थ है, इससे जानूँगा अर्थ निकलेगा (कोई वस्तु भली-भाँति जानी जा सकती है यदि उसे अपने पास ले आया जाय) ।

व्युत्पत्ति—तत्त्वतः = तत्त्व + तस् । उपलप्स्ये = उप + लभ् + लृट् (उत्तम पुरुष एक वचन) ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (घबड़ाकर)—अरे सींचने से घबड़ाकर ऊपर आया भौंरा नवमालिका को छोड़कर मेरे मुँह की ओर झपटा आ रहा है (भौंरे के उपद्रव का अभिनय करती है ।)

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** (**सम्भ्रमेण** संत्रासेन **सह** यथा स्यात् तथा) (कथयति यत्) । **अम्मो** (आवेगे) । **सलिलस्य** जलस्य **सेकेन** सेचनेन यः **संभ्रमः** आन्दोलनम् तस्मात् **उद्गतः** उत्पतितः । **नवमालिकाम्** वन-ज्योत्स्नापरनामधेयाम् लताम् । **उज्झित्वा** त्यक्त्वा । **वदनम्** मुखम् । **मे** मम । **मधुकरः** भ्रमरः । **अभिवर्त्तते** अनुधावति (**भ्रमरात्** षट्पदात् **बाधाम्** पीडाम् । **निरूपयति** अभिनयेन दर्शयति) ।

पाठा० १. संभन्तो (संभ्रान्तो) २. आदिहोदि (अभिभवति) ।

राजा—(सस्पृहं विलोक्य)—१

हिन्दी-व्याख्या—भौरे के पानी पड़ने से उड़कर मुँह के पास आने के दो कारण हो सकते हैं :—

१. पानी पड़ने से पुष्प-रस ले रहे भौरों को बाधा पहुँची और वह अपने स्वभाव के अनुसार बाधक की ओर चला।

२. शकुन्तला काम-शास्त्र के नायिका-भेदों में से पद्मिनी थी जो सर्वश्रेष्ठ प्रकार की स्त्री होती है और जिसके शरीर से कमल की खुशबू निकलती है (जिससे भौंरा अन्य हीन चीजें छोड़कर दौड़ता है)।

भवति कमलनेत्रा नासिकाक्षुद्ररन्ध्रा अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशाङ्गी।
मृदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा॥

—(रतिमञ्जरी)।

राघव-भट्ट की टीका में पद्मिनी को खिले कमल के गंध वाली बताया गया है:—कमलमुकुलमृद्वी फुल्लराजीवगन्धा सुरतवयसि यस्याः सौरभं दिव्यमङ्गे।

यहाँ घबड़ाहट में शकुन्तला अपने द्वारा रखा नाम "वन-ज्योत्स्ना" भूल कर प्रचलित नाम "नवमालिका" का ही उच्चारण करती है।

शब्दार्थ—अम्मो = अरे (विस्मय-सूचक स्त्री-शब्द—विस्मये दुःसहे अम्मो नित्यं स्त्रीभिः प्रयुज्यते-भरत)। सेक=सिंचाई। संभ्रम = घबड़ाहट (उद्गत = उठा, उड़ा, ऊपर गया हुआ। अभिवर्तते = निकट (अभि , हो रहा है।

व्युत्पत्ति—सेक=सिच्+घञ्। उद्गत = उत्+गम्+क्त। उज्झित्वा=उज्झ+क्त्वा। वदन=वद्+ल्युट् (करणे)। "अभि" के योग में कर्म-कारक होने से "वदनम्" में द्वितीया है। "अभि" उपसर्ग लगने से "वृत्" धातु को अकर्मक से सकर्मक मानकर भी इस प्रयोग की साधुता का समर्थन किया जा सकता है। (उपसर्गवशात् सकर्मकत्वम्)।

समास—सलिलस्य सेकेन (षष्ठीतत्पुरुष) संभ्रमेण उद्गतः (तृतीया तत्पुरुष) सलिलसेक-संभ्रमोद्गतः भ्रमरस्य बाधाम् भ्रमरबाधाम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दीअनुवाद—राजा (लालसा के साथ देखकर)—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (स्पृहया लालसया सह यथा स्यात् तथा विलोक्य दृष्ट्वा)।

पाठा १. इसके बाद निम्नलिखित पाठ अधिक मिलता है :—

साधु बाधनमपि रमणीयमस्याः।
यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते ततस्ततः प्रेरितलोललोचना।
विवर्तितभ्रूरियमद्य शिक्षते भयादकामापि हि दृष्टिविभ्रमम्॥
अपि च सासूयम्।

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
[1]करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ २३ ॥

हिन्दी-व्याख्या—राजा दुष्यन्त के ऊपर प्रेम ने आधिपत्य जमा लिया है और वे मुग्ध दृष्टि से शकुन्तला का सौन्दर्य देख रहे हैं।

शब्दार्थ—सस्पृह = लालसा या ईर्ष्या के साथ।

व्युत्पत्ति—विलोक्य = वि + लोक् + ल्यप्।

समास—स्पृहया सह यथा स्यात् तथा सस्पृहम् (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—ऐ भौंरे, हाथ हिलाती हुई इस (शकुन्तला) की चञ्चल-किनारे वाली तथा कम्पन-युक्त दृष्टि को बार-बार छू रहे हो, रहस्य कहने वाले जैसे कान के निकट घूमते हुये कोमलता से फुसफुसाते हो, प्रेम-सर्वस्वरूप निचले ओंठ का पान कर रहे हो; तुम्हीं कृत-कृत्य हो; हम (तो) तत्त्व-अन्वेषण के कारण मारे गये।

अन्वय—मधुकर करं व्याधुन्वत्याः (अस्याः शकुन्तलायाः) चलापाङ्गां वेपथुमतीं दृष्टिं बहुशः स्पृशसि। रहस्याख्यायी इव कर्णान्तिकचरः मृदु स्वनसि। रतिसर्वस्वम् अधरम् पिबसि। त्वम् खलु कृती। वयम् तत्त्वान्वेषात् हताः।

संस्कृत-टीका—**मधुकर** भ्रमर। **करम्** हस्तम्। **व्याधुन्वत्याः** निषेधार्थम् (हस्तम्) चालयन्त्याः (अस्याः शकुन्तलायाः)। **चलः** चञ्चलः **अपाङ्गः** प्रान्तः यस्याः तादृशीम्। **वेपथुमतीम्** कम्पनयुक्ताम्। **दृष्टिम्** चक्षुः **बहुशः** वारम् वारम्। **स्पृशसि**। **रहस्याख्यायी** निभृतवक्ता। **इव**। **कर्णयोः** श्रवणयोः **अन्तिके** समीपे चरति भ्रमति तथाभूतः सन्। **मृदु** कोमलतया। **स्वनसि** अव्यक्तम् भाषसे। **रतेः** प्रेम्णः **सर्वस्वम्** सारम्। **अधरम्** निम्नोष्ठम्। **पिबसि** चुम्बसि। **त्वम्** भवान्। **खलु** निश्चयेन। **कृती** कृतकृत्यः। **वयम्** अहम्। **तत्त्वस्य** सत्यस्य **अन्वेषात्** अनुसन्धानात्। **हताः** वञ्चिताः।

हिन्दी-व्याख्या—यह पद्य भ्रमर-अन्योक्ति के रूप में हो सकता है, पर यहाँ सन्दर्भ में उपयोगी होने के कारण इसका दूसरा अर्थ नहीं लिया जा सकता, अतः अन्योक्ति नहीं कह सकते।

भौंरे की चेष्टाओं और शकुन्तला का घबड़ाकर निवारण करने का वर्णन बहुत मनोहारी है। आँख, कान और निचले ओंठ के पास भौंरे का पहुँचना बहुत स्वाभाविक है। दृष्टि का काँपना भी सहज है; सामने किसी वस्तु के लपककर अपनी ओर आने पर वह बन्द हो जाती है, इसका सभी को अनुभव होता है।

राजा ने तत्त्वान्वेषण में रत रहने के कारण अपने को धिक्कारा है। मर्यादा का बन्धन कितना कष्टकर होता है, इसका अनुभव अनुभवी के मुख से सुनने लायक है।

१. करौ।

राजा की प्रेम दशा बहुत आगे बढ़ गई है; वे भौंरे को शकुन्तला के प्रेमी के स्थान पर देखकर उसके भाग्य से ईर्ष्या करते हैं; उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं। भाव यह है कि भौंरा ऐसा प्रेमी-का सा आचरण बार-बार करता है और मैं एक बार भी मर्यादा-बद्ध होने से नहीं कर पाता।

चंचल प्रान्त-भाग वाली दृष्टि सुन्दर मानी गई है; उसमें कम्पन आ जाने से चञ्चलता और बढ़ गई है जिससे सुन्दरता की पराकाष्ठा हो गई है; यह कम्पन भौंरे के भय के कारण प्रतीत होता है।

"कर" की जगह "करौ" पाठ ठीक नहीं है। एक हाथ में घड़ा था, अतः भौंरे को भगाने के लिये एक हाथ ही हिलाने की बात स्वाभाविक है। दोनों हाथ हिलाना श्रेष्ठ नायिका के लिये उचित भी नहीं है; कुछ गँवारू दिखेगा।

अधर-पान को कामशास्त्र और कवियों में बहुत महत्त्व प्राप्त है। अधरामृत पान तक कहा जाता है जिसका अर्थ हुआ अधर में अमृत या एक विलक्षण अमृत अधरामृत नामक होता है। यहाँ अधर-पान का अर्थ है, अधर छूते हुये निकल जाना। टीकाकार राघव-भट्ट का कहना है कि "अधर-पान यदि भौंरा करेगा तो उसका डंक लग जायेगा जो स्थिति यहाँ नहीं है।" भौंरे को निचले ओंठ के पास देखकर उद्भ्रान्त दुष्यन्त उसे अधर-पान-रत प्रेमी के रूप में देखते हैं।

"वयम्" का प्रयोग "अहम्" के अर्थ में है। बहु-वचन आदर के लिये आता है, पर "अस्मद्" शब्द का बहु-वचन सामान्य अर्थ में एक-वचन या द्विवचन के अर्थ में भी आता है। कभी-कभी अपने लिये बहु-वचन का प्रयोग अभिमान-द्योतक माना जाता है। ए० बी० गजेन्द्र गडकर यहाँ इसका प्रयोग तिरस्कार-परक मानते हैं और इसके लिये मराठी के उदाहरण का सहारा लेते हैं। ऐसे उदाहरण की पुष्टि संस्कृत-प्रयोग से न होने के कारण उक्त बात निराधार प्रतीत होती है।

अन्तिम पंक्ति राजा की भ्रान्तावस्था का चित्रण करती है। वे वंशान्वेषण की विवेक-शीलता पर अपने को धिक्कारते हैं। प्रेम की माया विचित्र है; तभी हिन्दी के महाकवि केशवदास ने "मनमथ केसर ग्यान घने ज्यों" लिखकर बता दिया कि ज्ञान तभी तक रहता है जब तक काम के बाण नहीं लगते।

राजा अपनी मर्यादाओं के विरुद्ध विद्रोह-सा कर रहे हैं। कम से कम मन से वे मर्यादाओं को तोड़ कर भ्रमर की तरह हठ-कामुक होते हैं। यह घटना दुष्यन्त के भावी मधुकर-आचरण का आभास देती है। जैसे मधुकर रस-पान कर फूल को छोड़ देता है उसी तरह उन्होंने शकुन्तला को अपनाकर त्याग दिया और जैसे फूल सर्वस्व खोकर मौन ही रह जाता है, वैसे ही शकुन्तला भी मौन रह जाती है।

शब्दार्थ—चलापाङ्ग=जिसका अपाङ्ग (नेत्र का प्रान्त) चंचल है। बहुशः=बार-बार। वेपथुमती=कम्पन वाली। आख्यायी=कहने वाला। स्वनसि=अव्यक्त ध्वनि कर रहे हो। अन्तिक-चर=समीप विचरण करने वाले। व्याधुन्वत्याः=हिला रही (शकुन्तला) का। रति=प्रेम। अन्वेष=गवेषणा। कृती=कृतकृत्य (जिसके कार्य अच्छे हों)।

व्युत्पत्ति—दृष्टि=दृश्+क्तिन्। वेपथुमती=वेप्+अथुच्+मतुप्। रहस्य=रहस्+यत्= आख्याया=आङ्+चक्ष् या ख्या+णिनि। अन्तिकचर=अन्तिक+चर्+ट। व्याधुन्वत्याः=वि+

शकुन्तला—ण एसो धिट्ठो[1] विरमदि। अण्णदो गमिस्सं। (पदान्तरे स्थित्वा। सदृष्टि-क्षेपम्) कहं इदो वि आअच्छदि। हला परित्ताअह म इमिणा दुव्विणीदेण[2] दुट्ठमहुअरेण पडिहूअमाणं। [न एष धृष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। (पदान्तरे स्थित्वा। सदृष्टिक्षेपम्) कथमितोऽप्यागच्छति। हला परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेण परिभूयमानाम्]।

आङ्+धु+शतृ (स्त्रीलिङ्ग षष्ठी एक वचन। यह षष्ठी "अनादरे षष्ठी" के अन्तर्गत भी रखी जा सकती है, क्योंकि भ्रमर ने शकुन्तला की या उसके हाथ चलाने की परवाह न कर अनादर किया है)। रति=रम्+क्तिन्। "वयम्" में बहुवचन "अस्मदो द्वयोश्च" सूत्र (अष्टाध्यायी १।२।५९) से हुआ है। तत्त्व=तत्+त्व। अन्वेष=अनु+इष्+घञ्। हता=हन्+क्त। कृती=कृ+क्त+इनि (कृतम् कर्म अथवा प्रशस्तम् कृतम् कर्म अस्य)।

समास—चलः अपाङ्गः यस्याः ताम् चलापाङ्गाम् (बहुव्रीहि)। कर्णस्य अन्तिके कर्णान्तिके (षष्ठी तत्पुरुष)। रत्याः सर्वस्वम् रतिसर्वस्वम् (षष्ठी तत्पुरुष)। तत्त्वस्य अन्वेषात् तत्त्वान्वेषात् (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—शिखरिणी जिसका लक्षण १।९ में देखा जा सकता है।

अलङ्कार—समासोक्ति। व्यतिरेक। काव्यलिङ्ग। उत्प्रेक्षा। संसृष्टि।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—यह उद्दण्ड बाज नहीं आता। अन्यत्र जाऊँगी। (दूसरे कदम पर रुककर। दृष्टि डालती हुई) यह क्या ? इधर भी आ रहा है। सखी, बचाओ मुझे; इस उच्छृङ्खल दुष्ट भौंरे से आक्रान्त हो रही हूँ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। न ! एषः अयम् समीपस्थः धृष्टः निरर्गलः। विरमति (दुष्टात् आचरणात् आत्मानम्) निवारयति। अन्यतः अन्यत्र। गमिष्यामि यास्यामि। (अन्यस्मिन् पदे चरणक्षेपे। स्थित्वा विरम्य। दृष्ट्याः लोचनयोः क्षेपेण पातेन सहसः यथा स्यात् तथा) कथम् इदम् किम्। इतः अत्र। अपि। आगच्छति एति। हला अये सखि। परित्रायेथाम्=(युवाम्) रक्षतम्। माम् इमम् जनम्। अनेन एतेन। दुर्विनीतेन (दुष्ठु यथा स्यात् तथा विनीतेन नम्रीकृतेन) उद्दण्डेन। दुष्टः खलः च असौ मधुकरः द्विरेफः च तेन। परिभूयमानाम् आक्रम्यमाणाम्।

हिन्दी-व्याख्या—भौंरे का शकुन्तला के जाने पर भी पीछा करना स्वभावतः शकुन्तला का पद्मिनी होना बताता है।

अकारण परेशान करने वाला धृष्ट और पिण्ड न छोड़ने वाला धृष्टतर दुर्विनीत और दुष्ट कहा जाता है।

पाठा० १. दुट्ठो (दुष्टो)। २. (दुट्ठ—दुष्ट—नहीं है)।

उभे—(सस्मितम् ।) का वअं परित्तादुं । दुस्सन्दं अक्कन्द । राअरक्खिदव्वाइं तवोवणाइं णाम । [का वयं परित्रातुम् । दुष्यन्तमाक्रन्द । राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम ।]

"अभिभूयमानाम्" में "शानच्" का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। "भ्रमर के आक्रमण से बचाओ" "भ्रमर आक्रमण कर रहा है, उससे बचाओ भ्रमर से आक्रान्त हो रही हूँ; बचाओ", इन सब हिन्दी के प्रयोगों का मुहावरेदार संस्कृत अनुवाद इस पद की मदद से होगा। भाव-वाची संज्ञा के आने पर शतृ या शानच् का प्रयोग करके यह स्थिति आसानी से लाई जा सकती है।

"विनीत" अनुशासित के लिये आता है और "विनय" अनुशासन के लिये।

शब्दार्थ—अन्यतः=दूसरी जगह। पदान्तर=दूसरा कदम। सदृष्टिक्षेप=नजर डालते हुये। कथम्=अरे। इतः=इधर। हला=सखी। दुर्विनीत=उद्दण्ड। परिभूयमान=जिस पर आक्रमण किया जा रहा है।

व्युत्पत्ति—धृष्ट=धृष्+क्त। विरमति=वि+रम् ("रम्" का आत्मनेपद से परस्मैपद में प्रयोग वि, आ या परि उपसर्गों के लगने पर होता है—व्याङ्परिभ्यो रमः—अष्टाध्यायी १।३।८३)। अन्यतः=अन्य+तसि (सप्तमी के अर्थ में) स्थित्वा=स्था+क्त्वा। दृष्टि+दृश्+क्तिन्। क्षेप=क्षिप्+घञ्। इतः=इदम्+तसिल्। दुर्विनीत=दुर्+वि+नी+क्त। दुष्ट=दुष्+क्त। परिभूयमान=परि+भू+यक्+शानच्।

समास—अन्यत् पदम् पदान्तरम् (मयूरव्यंसकादि)। दृष्ट्याः (षष्ठी तत्पुरुष) क्षेपेण सह (बहुव्रीहि) सदृष्टिक्षेपः (सः यथा स्यात् तथा सदृष्टिक्षेपम्)। दुष्टम् (या दुःस्थितम्) विनीतम् (=विनयः नपुंसके भावे क्तः) यस्य तेन दुर्विनीतेन (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों (सखियाँ) (मुस्कराती हुई)—हम कौन होती हैं रक्षा करने वाली। दुष्यन्त को पुकारो। आश्रमों की रक्षा तो राजा को करनी है।

संस्कृत-टीका—**उभे** द्वौ अपि (सख्यौ) (स्मितेन ईषद्हास्येन सह यथा स्यात् तथा सस्मितम्)। **का** के न के अपि। **वयम्** आवाम् अनसूया प्रियंवदा च। **परित्रातुम्** रक्षितुम्। **दुष्यन्तम्** राजानम्। **आक्रन्द** तारस्वरेण आह्वय। **राज्ञा** नृपेण **रक्षितव्यानि** रक्षायोग्यानि। **तपसः** तपस्यायाः **वनानि** विपिनानि। **नाम** निश्चयेन।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ मजाक में कहा गया है कि रक्षा करना जैसा वीर व्यक्ति बनने का काम हमसे नहीं हो सकता; यह काम राजा का है। यह बात ध्यान देने की है कि प्रियंवदा के द्वारा जो मीठी चुटकी का वातावरण पैदा कर दिया गया है और जिसमें भौंरे ने चार चाँद लगा दिये हैं. अनसूया को भी गम्भीर प्रकृति से च्युत करने में समर्थ हो गया है। कोई कितना भी तटस्थ क्यों न बने, परिस्थिति और उम्र का तकाजा उसे स्वाभाविकता की ओर खींच ही लाता है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि दोनों सखियाँ शकुन्तला के ब्याह की बात पहले से सोचा करती हों और कहती हों कि इसकी सुन्दरता को देखते हुए यह राज-रानी होने योग्य है; दुष्यन्त ही इसके योग्य वर है जिससे यहाँ इस स्वाभाविक रूप से दुष्यन्त का नाम आ गया है। शकुन्तला का भोलापन और भीरुता का सुन्दर चित्रण किया गया है।

राजा—अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम् । न[1] भेतव्यम् न भेतव्यम् (इत्यर्धोक्ते स्वगतम्) । राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत् । भवतु । एवं तावदभिधास्ये ।

किसी को विपत्ति में पड़ा देखकर हँसना अच्छी बात नहीं माना जाता, किन्तु यहाँ विपत्ति ऐसी है जिसके लिये सहायता की जरूरत नहीं है, घबड़ाहट में शकुन्तला साहाय्य की याचना करती है; एक भौंरे को भगाने के लिए दो या तीन व्यक्तियों की जरूरत नहीं होती। सखियों में ऐसी निर्दोष ठिठोली ही स्वाभाविक है।

शब्दार्थ—सस्मित = मुस्कराती हुई। आक्रन्द = पुकारो। रक्षितव्य = रक्षा-योग्य। नाम = कहना नहीं है कि (प्राकाश्य अर्थ में—नाम प्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने—अमरकोष)।

व्युत्पत्ति—स्मित = स्मि + क्त। परित्रातुम् = परि + त्रा + तुमुन्। रक्षितव्य = रक्ष् + तव्यत्। मूल प्राकृत में है जिसकी छाया के अनुसार "का वयं" लिखा गया है जो व्याकरण से शुद्ध भी है। प्राकृत में द्विवचन न होने से छाया "के आवाम्" भी ठीक है।

समास—राज्ञा रक्षितव्यानि राजरक्षितव्यानि (तृतीया तत्पुरुष)। तपसः वनानि तपोवनानि (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—अपने को प्रकट करने का यह (अच्छा) अवसर है। मत डरो, मत डरो (इस प्रकार आधा ही कहने पर अपने मन ही मन)। (मेरी) नृपता तो पहचान ली जा सकती है। ठीक है। जरा ऐसा कहूँगा।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्)। **अवसरः** उपयुक्तः समयः। **अयम्** एषः। **आत्मानम्** स्वम्। **प्रकाशयितुम्** प्रकटयितुम् न अलम् **भेतव्यम्** भयेन (इति एवम्। **अर्धे** अंशमात्रे। **उक्ते** कथिते सति एव)। **स्वगतम्** आत्मगतम्)। **राज्ञः** नृपस्य **भावः** तत्ता राजभावः। **तु**। **अभिज्ञातः** विदितः। **भवेत्** स्यात्। **भवतु** अस्तु। **एवम्** अनेन प्रकारेण। **तावत्** प्रथमम्। **अभिधास्ये** कथयिष्यामि।

हिन्दी-व्याख्या—राजा आश्रम में प्रविष्ट होना तो चाहते ही थे; अब शकुन्तला का सामीप्य भी चाहते हैं। उनके भाग्य से ऐसा मौका भी आ गया। अभी तक इस तरह बोल रहे थे कि तीनों सखियाँ न सुनें और पेड़ की आड़ में बैठे थे कि वे देख न पायें। अब प्रगट होना चाहते हैं। "अर्धोक्ते" आधी कही गई बात से ऐसा प्रतीत होता है कि राजा के मुख से "मैं दुष्यन्त ही आ गया" निकलने ही वाला था कि उन्होंने पुनर्विचार कर अपने स्वरूप को छिपाना ही उचित समझा। आड़ से ही चिल्लाने से सखियों के सामने यह प्रगट हो सकता है कि दुष्यन्त-जैसा राजा हम लोगों की व्यक्तिगत बातें सुनने का अधम कार्य करता है। यह अर्थ भी निकल सकता है कि वे साधारण व्यक्ति की तरह प्रकट होना चाहते हैं। कौतुक-वश ऐसा सम्भव है जिससे प्रथम मिलन बहुत औपचारिक न हो जाय। अगले श्लोक में "पौरवे शासति" से यह अर्थ निकालना ठीक न होगा कि "मुझ पुरुवंशी के शासक रहते"। वहाँ "अस्मद्" शब्द को हटाना सोद्देश्य है जिससे राजा का

पाठ—१. (इस वाक्य के स्थान पर) कः कोऽयमुपे।

प्रशंसक कोई व्यक्ति प्रतीत हो। इसका समर्थन अन्तिम वाक्य से भी होता है; वे पूरी तैयारी करके जाते हैं कि क्या नहीं कहना है।

अभी तक नाटककार की अभीष्टता के अनुसार सखियाँ दुष्यन्त की बात नहीं सुन पाई थीं और उन्हें उनका वहाँ रहना ज्ञात नहीं था, दर्शकों को सब श्रुत और ज्ञात था। लड़कियों के शोर-गुल में और राजा के दूर रहने के कारण' 'न भेतव्यम्'' वाक्य जोर से और दो बार कहे जाने पर भी नहीं सुनाई पड़ा।

''स्वगतम्'' का अर्थ है कि रंग-मंच वाले न सुन पायें और दर्शक सुन लें पर यह समझते हुये कि यह बात स्पष्ट नहीं कही जा रही है; मन में कही जा रही है, कुछ मन्द स्वर में और किसी विशेष अभिनय से कहने का चलन होना सम्भावित है। यह प्राचीन रंग-मंच की विवशता है—'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।' ''स्वगत'' के बाद स्पष्ट कहने के पूर्व ''प्रकाशम्'' निदेश आता है।

साधारण नाटककार राजा के प्रगट होने की बात में इतनी दूरदर्शिता न दिखाता जो कालिदास ने उन्हें सामान्य वेश में प्रकट कर के दिखाई है।

राजा रक्षक के रूप में युवतियों के बीच प्रकट होते हैं जिससे उनके सम्मान के अनुरूप स्थिति है; दूसरे रूप में उनके बीच पहुँच जाना उतना अच्छा न होता।

शब्दार्थ—राजभाव = राजा होना, नृपता। अभिज्ञात = पहचाना हुआ। तावत् = जरा, पहले। अभिधास्ये = कहूँगा।

व्युत्पत्ति—प्रकाशयितुम् = प्र + काश् + णिच् + तुमुन्। यहाँ ''तुमुन्'' का प्रयोग विशेष स्थिति में हुआ है। जिस क्रिया का समय हो उसमें तुमुन् लगता है (कालसमयवेलासु तुमुन्—अष्टाध्यायी ३।३।१६७। कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्—भट्टोजि। सामान्यतः ''तुमुन्'' प्रत्यय क्रिया उद्देश्य वाली क्रिया (मुख्य क्रिया) के समीप (आगे या पीछे) रहने पर धातु से लगता है। बिना क्रिया का प्रयोग किये यदि केवल दो शब्दों का संबन्ध दिखाना ही अभीष्ट हो (वाक्य न बनाना हो) और धातु के आस-पास काल-वाची शब्द हो तो उस धातु में तुमुन् प्रत्यय लग सकता है। यहाँ क्रिया-उद्देश्य वाली क्रिया के स्थान पर कालवाची शब्द ''अवसर'' उपपद (समीप) में है। यहाँ ''अस्ति'' क्रिया मानने पर वह न तो क्रियार्थ होगी और न इच्छार्थ, अतः सामान्य नियम नहीं लगता है। इस सूत्र को अलग देने का पाणिनि का उद्देश्य लेने पर ''प्रकाशयितुम् अवसरः'' का अर्थ ''प्रकाशनस्य अवसरः'' है। कभी-कभी इसे ''समानकर्तृकेषु ''तुमुन्'' सूत्र का अपवाद बनाकर कहा जाता है; यह ठीक नहीं है। यह सूत्र केवल अक्रियार्थ क्रियाओं के साथ तुमुन् किस स्थिति में लग सकता है, इसका विधायक है। ''गन्तुम् इच्छति'' प्रयोग में ''इच्छति'' का अर्थ इच्छा है, क्रिया (गति चलना-फिरना) नहीं, अतः सामान्य सूत्र से यहाँ ''तुमुन्'' नहीं लग सकता। यदि ''समानकर्तृकेषु तुमुन्'' से सभी स्थितियों में दोनों धातुओं (तुमुन् वाली और मुख्य क्रिया) का एक ही कर्त्ता रखना अभीष्ट होता तो सामान्य सूत्र की आवश्यकता ही न होती। फिर भी मुख्यक्रिया और तुमुन् का कर्त्ता एक ही रखना साधारणतः प्रचलित होने से अनुकरणीय है। शायद यही बात लक्ष्य कर ''अनुवाद-

शकुन्तला—(पदान्तरे स्थित्वा । सदृष्टिक्षेपम् ।) कहं । इदोवि मं अणुसरदि । [कथम् । इतोऽपि मामनुसरति ।]

राजा—(सत्वरमुपसृत्य) ।

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ॥ २४ ॥

कला" के "विषय-प्रवेश" में चारुदेव शास्त्री ने "तुमुन्नन्त" शीर्षक के अन्तर्गत एक-कर्तृकता का नियम बताया है जब कि नियम ऐसा नहीं है; केवल प्रचलन के आधार पर एक-कर्तृकता अभीष्ट है। भिन्न-भिन्न कर्त्ताओं के प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलते हैं पर ऐसे स्थल भी सीमित और किसी विवशतावश लिखे प्रतीत होते हैं :—

वाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि (यहीं ६।२२)
स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः (किरातार्जुनीय ५।२८)

इन दोनों उदाहरणों में क्रिया दानार्थक है और दान-पात्र में सम्प्रदान कारक आया है। ऐसी स्थिति में कर्त्ता कारक में दान-पात्र को रखना असंभव है, क्योंकि एक शब्द एक ही वाक्य में दो कारकों में नहीं हो सकता। यहाँ तुमुन्नन्त पद का प्रयोग कर्म की तरह हुआ है, यह ध्यान देने योग्य है। भेतव्य = भी + तव्यत्। उक्त = वच् + क्त। गत = गम् + क्त। भाव = भू + घञ्। अभिज्ञात = अभि + ज्ञा + क्त। अभिधास्ये = अभि + धा (लृट् लकार उत्तम पुरुष एक-वचन)। "अभि" उपसर्ग लगने पर "धा" धातु का अर्थ कहना है। नि + धा = जोड़कर रखना, आ + धा = डालना, उप + धा—तकिया लगाना, वि + धा = करना या प्रबन्ध करना, तिरस् + धा = छिपना, अपि या पि + धा = ढकना, सम् + धा = जोड़ना, प्र + धा = प्रधान होना, प्रति + नि + धा = प्रतिनिहित (Depute) करना आदि अर्थ ध्यान देने योग्य हैं।

समास—स्वम् गतम् स्वगतम् (द्वितीया तत्पुरुष)। राज्ञः भावः राजभावः (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (दूसरे कदम पर रुककर। नजर डालकर) अरे ! यहाँ भी मेरा पीछा कर रहा है।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। कथम् अहो। इतः इह। अपि | माम् इमम् जनम्। अनुसरति अनुगच्छति।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (शीघ्र पास जाकर)।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (त्वरया शीघ्रतया सह यथा स्यात् तथा उपसृत्य समीपं गत्वा) (कथयति यत्)।

शब्दार्थ—उपसृत्य = पास पहुँचकर।

व्युत्पत्ति—उपसृत्य = उप + सृ + ल्यप्।

हिन्दी-अनुवाद—उद्दण्डों को सीख देने वाले पौरव (पुरुवंशी] के पृथ्वी पर शासन करते रहने पर) कौन है यह जो भोली तापस-कन्याओं के प्रति अनुशासन-हीनता का आचरण करता है।

अन्वय—दुर्विनीतानां शासितरि पौरवे वसुमतीं शासति अयम् कः मुग्धासु तपस्विकन्यासु अविनयम् आचरति ।

संस्कृत-टीका— **दुर्विनीतानाम्** उद्दण्डानाम् । **शासितरि** शिक्षके दण्डदातरि इत्यर्थः । **पौरवे** पुरोः वंशे उत्पन्ने दुष्यन्ते । **वसुमतीम्** पृथ्वीम् । **शासति** रक्षति (सति) । **अयम्** असौ (पीडा-कारकः) । **कः** । **मुग्धासु** सरलासु । **तपस्विनाम्** तापसानाम् **कन्यासु** । **न विनयम् अविनयम्** औद्धत्यम् । **आचरति** करोति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "अस्मद्" का प्रयोग जान-बूझकर नहीं किया गया है, क्योंकि दुष्यन्त राजा के रूप में प्रकट होकर सबको इतना घबड़ाया हुआ नहीं बना देना चाहते कि उस स्वाभाविकता के रंग में भंग हो जाय ।

संस्कृत में "शासन" का अर्थ शिक्षा और "अनुशासन" का अर्थ परम्परा से प्राप्त शिक्षा है । इनके अर्थ में परिवर्तन द्रष्टव्य है । हिन्दी के अनुशासन के अर्थ में संस्कृत में "विनय" शब्द है । इसी तरह अनुशासन-हीनता के लिये "अविनय" ।

"दुर्विनीत", दुर्ललित आदि शब्द अनोखे प्रतीत होते हैं । दुर्विनीत के "दुर्" से दुष्ट अर्थ लेकर हिन्दी का छात्र परेशान होता है कि "दुष्ट विनीत" क्या वस्तु है । संस्कृत की व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ होता है जो खराब (गलत) तरीके से विनीत बनाया गया हो, ऐसा व्यक्ति विनय का प्रयोग गलत रूप में करता है ।

पौरवे में सप्तमी का प्रयोग "भावे सप्तमी (अनादरे)" के अनुसार है । इसके अनुसार भाव है मेरा "अनादर परवाह न—कर" । इसी अर्थ में षष्ठी भी आती है । ऐसे प्रयोगों में, जब कर्त्ता को षष्ठी या सप्तमी में रखा जाता है, दो वाक्यों का प्रयोग होता है जिनमें एक वाक्य "पर" पर समाप्त होता है ("उसके जाने पर" आदि) और दूसरा जो पश्चात् घटित होता है, सामान्य पूर्णार्थक वाक्य होता है । पहले (अधूरे से) वाक्य में क्रिया शतृ, क्त या क्तवतु, शानच् , प्रत्यय से बनती है जिससे विशेषण की तरह आती है । यहाँ पहले वाक्य में "पौरवे" कर्त्ता है और "शासति" क्रिया ।

"मुग्ध" का अर्थ संस्कृत में भोला है जब कि हिन्दी में इसका सामान्यतः प्रयोग "प्रेम या प्रसन्नता में सुध-बुध खोया" होता है ।

तपस्वी ब्रह्मचारी होते थे; घर-द्वार से विरक्त होने वाले की सन्तान कहाँ से आई, यह प्रश्न उठता है । इन सन्तानों को तपस्वियों द्वारा पालित या वानप्रस्थों के साथ वन-जीवन बिताने के लिये लाई सन्तानें समझना चाहिये ।

राजा ने पहले भौंरे का वर्णन किया है और वे सारी घटना से परिचित हैं, पर पूर्व-परिचय-वृत्तान्त प्रकट नहीं होने देना चाहते जिससे ऐसे कहते हैं जैसे कुछ पता ही न हो कि कौन अविनयी है । यदि भौंरे को जानता हूँ, यह कहना होता तो ऐसा हल्ला न करते और न "पौरव" जैसे महत्त्वपूर्ण विशेषण का प्रयोग करते । यह आचरण निर्दोष प्रेम की प्रगति की कड़ी होने से असत्य के स्थान पर रमणीय है, यही कहना न्याय-संगत होगा । कालिदास को कट्टर-पंथी नैतिकता पसन्द नहीं है, प्रेम-

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किञ्चिदिव संभ्रान्ताः ।)

रस में वह गाँठ है । "पौरव" का प्रयोग पराये के मुँह से राजा के प्रति श्रद्धा या प्रेम का सूचक और अपने (दुष्यन्त के) ही मुख से जोश में स्वाभिमानिता का द्योतक है

"मुग्धा तपस्विकन्या" के प्रयोग से भोलापन, कन्यात्व और वह भी तापसकन्यात्व अविनयी के अविनय की अधमता को चटक बना देता है ।

बहु-वचन देकर राजा यह भी व्यक्त नहीं होने देते कि मैं जानता हूँ कि कौन बाला पीड़ित है; इससे उनके पूर्वाग्रह ग्रस्त या पूर्व-दर्शक होने की बात प्रगट हो जाती ।

राजा की धमकी का आशय है कि वह अगर भूल गया हो तो कठोर नियन्त्रक शासक पौरव का स्मरण कर विरत हो जाय, अन्यथा दण्डित होगा । इससे मिलता-जुलता श्लोकार्धं निम्न-लिखित है—

अहो महीं शासति सूर्यवंशे निरागसः प्राणहरः क एषः ।

शब्दार्थ—पौरव = पुरु वंश में उत्पन्न (दुष्यन्त) । वसुमती [वसु (धन) + मती = वाली] = पृथ्वी । शासति = शासन करने पर । शासिता = शासक । दुर्विनीत = उद्दण्ड । अविनय = अनुशासन-हीनता । मुग्धा = भोली । कन्या = अविवाहित लड़की (यह) विशेषण की अधिकता हिन्दी में नहीं है, 'कन्या' शब्द का अर्थ लड़की है) ।

व्युत्पत्ति—"पौरवे" में सप्तमी का कारण यही 'हिन्दी-व्याख्या" शीर्षक में देखा जा सकता है (षष्ठी चानादरे-अष्टाध्यायी २।३।३८।) पौरव = पुरु + अण् । शासति = शास् + शतृ (पुंल्लिङ्ग, सप्तमी एक वचन । शासिता = शास् + तृच् । दुर्विनीत = दुर् + वि + नी + क्त । विनय = वि = नी + अक् । मुग्ध = मुह् + क्त । तपस्वी = तपस् + विनि । कन्या = कन् + यक् + टाप् ।

समास—दुष्टम् विनीतम् (विनयः । नपुंसके भावे क्तः) येषाम् तेषाम् दुर्विनीतानाम् (बहुव्रीहि) । न विनयः अविनयः (नञ् तत्पुरुष) तम् अविनयम् । तपस्विनाम् कन्यासु तपस्विकन्यासु (षष्ठी तत्पुरुष) ।

छन्द—आर्या जिसका लक्षण १।२ में देखा जा सकता है ।

हिन्दी-अनुवाद—(सभी कन्यायें) राजा को देखकर जरा-सा घबड़ा जाती हैं ।

संस्कृत-टीका—**सर्वाः** सकलाः कन्याः । **राजानम्** नृपम् दुष्यन्तम् । **दृष्ट्वा** अवलोक्य । **किञ्चित्** ईषत् । **इव** । **संभ्रान्ताः** आवेगे पतिताः ।

हिन्दी-व्याख्या—"राजानम्" के प्रयोग से यह नहीं समझना है कि कन्यायें राजा को पहचान गई हैं ; कन्यायें एक अपरिचित के घुसने से घबड़ा जाती हैं, क्योंकि आश्रम में वे अपरिचित विशेषतः शहरी व्यक्ति के स्वागत की अभ्यस्त नहीं हैं ।

यहाँ "किञ्चित्" से स्पष्ट है कि अधिक नहीं घबड़ाईं । यदि राजा राजवेश में और अकारण जाते तो बहुत घबड़ा जातीं । यहाँ प्रसङ्ग वश जाने से भी घबड़ाहट कम हुई । हिन्दी में संभ्रान्त का प्रयोग संभावित (सम्मानित) के अर्थ में भ्रान्त (प्रयोग) है ।

अनसूया—अज्ज ण क्खु किंवि अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही महुअरेण अहिहूअमाणा कादरीभूदा [आर्य, न खलु किमप्यत्याहितम्। इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता।]
(शकुन्तलां दर्शयति।)

राजा—(शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) **अपि तपो वर्धते।**

(शकुन्तला साध्वसादवचना तिष्ठति)।

शब्दार्थ—इव = सा। संभ्रान्ता = घबड़ाई हुई।

व्युत्पत्ति—दृष्ट्वा = दृश् + क्त्वा। किञ्चित् = किम् + चित्। संभ्रान्त = सम + भ्रम् + क्त।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया–श्रीमन्, कोई गजब नहीं हुआ है। हम दोनों की यह प्रिय-सखी (शकुन्तला) भौंरे के आक्रमण से व्याकुल हो गई है। (शकुन्तला को दिखाती–संकेतित करती है)

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। **आर्य** महोदय। **न खलु** निश्चयेन **किमपि** किञ्चित्। **अत्याहितम्** महद् भयम् आपतितम्। **इयम्** एषा पुरः दृश्यमाना। **नौ** आवयोः। **प्रिया** स्निग्धा सखी आली। **मधुकरेण** षट्पदेन। **अभिभूयमाना** बाध्यमाना। **कातरीभूता** अकातरा कातरा भूता व्याकुलीभूता।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा विनोदी होती हुई भी कुछ छोटी या अपरिपक्व है जिससे उपयुक्त अवसर पर बढ़कर बोल नहीं पाती। अनसूया बड़ी प्रौढ़मति प्रतीत होती है जो गंभीर होने के साथ-साथ घबड़ाहट नियंत्रित कर बोलने में पहल करती हुई परिस्थिति संभालती है, प्रियंवदा केवल आपस में बात करते समय तेज है।

"आर्य" सामान्य शिष्टता का द्योतक संबोधन है। यहाँ दुष्यन्त रक्षक के रूप में आये हैं, अतः इस संबोधन का प्रयोग और उपयुक्त है।

"कातरीभूत" में "च्वि" प्रत्यय होने से अर्थ अभूतद्भाव (जो नहीं है वह होना—कातर नहीं है पर कातर होना) होना चाहिये पर शकुन्तला पहले से ही भ्रमर के कारण घबड़ाई थी, अतः अकातर से कातर होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस रूप में कहा जा सकता है कि "च्वि" का प्रयोग सामान्य अर्थ में भी आ सकता है; प्रचलन में वैयाकरणोक्त अर्थ पर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि "कातर" से "तत्कालीन (विशेष) कातरावस्था से युक्त लिया जाय तो व्याकरण की बात भी ठीक हो सकती है।

शब्दार्थ—आर्य = सज्जन (महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः)। अत्याहित = बहुत डर (अत्याहितं महाभीतिः—अमरकोष)। अभिभूयमाना = आक्रमण से (जिस पर आक्रमण किया जा रहा है)। कातरीभूत = व्याकुल। दर्शयति = दृश् + णिच् (लट्–वर्तमान–प्रथम पुरुष एक वचन)

व्युत्पत्ति—अभि + भू + शानच् (कर्म-वाच्य)। कातरीभूत = कातरा + च्वि + भू + क्त।

समास—प्रिया च सा सखी च प्रियसखी (कर्मधारय)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (शकुन्तला की ओर मुँह करके) तपस्या बढ़ तो रही है न ?
(शकुन्तला घबड़ाहट से चुप रहती है।)

अनसूया—दाणिं अदिहिविसेसलाहेण। हला सउन्दले गच्छ उडअं। फलमिस्सं अग्घं उवहर। इदं पादोदअं भविस्सदि। [इदानीमतिथिविशेषलाभेन। हला शकुन्तले गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्घमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।]

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (**शकुन्तलाम्** : **अभि** तया एकदिक् **मुखम्** वदनम् यस्य तादृशः। **भूत्वा**) **अपि** किम्। **तपः** तपस्या। **वर्धते** वृद्धिं याति। (**शकुन्तला साध्वसात्** संभ्रमेण भयेन वा। **अवचना** मौनव्रता। **तिष्ठति**।)

हिन्दी-व्याख्या—अनसूया ने शकुन्तला को परेशान बताया जिससे राजा सहानुभूति में उसकी ओर मुँह करते और पूछते हैं। तब तक भौंरा भाग गया जिससे उसे हटाने में नहीं लगते। "अपि" से प्रश्न होता है; सामान्यतः इसका अनुवाद—' है तो न ?" से किया जाता है। "आशा है कि" से भी अच्छा अनुवाद हो सकता है। तपोवन में सभी तपस्या करते हैं और तपोवन-वासियों के लिये तप की वृद्धि ही सबसे बड़ी कुशलता है, अतः कुशल-प्रश्न के रूप में तपस्या की वृद्धि पूछी गई है। पूछने का अर्थ है कि तपस्या की वृद्धि मैं भगवान् से चाहता हूँ। गृहस्थ से स्वस्थता पूछी जाती है, क्योंकि वही गृहस्थ-आश्रम में प्रधान है। "साध्वस" का अर्थ संस्कृत में भय माना गया है; यहाँ के प्रयोग से स्पष्ट है कि शकुन्तला डरी नहीं, बल्कि घबड़ा गई है, घबड़ाना एक प्रकार का डर ही है, पर दोनों भावों में सूक्ष्म अन्तर है। डरना हानि की संभावना से होता है और घबड़ाना ऐसी स्थिति में अपनी सामर्थ्य पर विश्वास की कमी बताता है। चुप रहना इसी का स्पष्ट द्योतक है। शकुन्तला को ही अतिथि-सत्कार करना है, पर वह वचन-सत्कार भी नहीं कर पाती जो घबड़ाहट का द्योतक है। पहले भौंरे से घबड़ाई थी; अब विशेष अतिथि से यह सोचकर कि मुझसे आतिथ्य हो पायेगा या नहीं।

शब्दार्थ—अभिमुख=सम्मुख। साध्वस=डर (दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसम्—अमरकोश)। अवचना=चुप। तिष्ठति=रहती है।

व्युत्पत्ति—भूत्वा=भू+क्त्वा। साध्वस=साधु+अस्+अच्। वचन=वच्+ल्युट्।

समास—अभिगतम् मुखम् यस्य सः अभिमुखः (प्रादि बहुव्रीहि)। अविद्यमानम् वचनम् यस्याः सा अवचना (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया–इस समय विशिष्ट अतिथि की प्राप्ति से (तप बढ़ रहा है)। सखी शकुन्तला, कुटी में जाओ। फल-मिला अर्घ लाओ। यह पैर धोने के लिये पानी रहा।

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्)। **इदानीम्** सम्प्रति। **अतिथेः** प्राघुणिकस्य **विशेषस्य** श्रेष्ठतायाः **लाभेन** प्राप्त्या (तपः वर्धते अस्याः शकुन्तलायाः) **हला** अयि सखि। **शकुन्तले** (सम्बुद्धौ)। **गच्छ** याहि **उटजम्** पर्णशालाम्। **फलैः मिश्रम्** युक्तम्। **अर्घम्** अर्घार्थद्रव्यम्। **उपहर** आनय। **इदम्** एतत् (पुरतः स्थाप्यमानम्) **पादोदकम्** पाद्यम् जलम्। **भविष्यति** सम्पत्स्यते।

हिन्दी-व्याख्या—अनसूया शिष्टाचार-वचन की पराकाष्ठा कर देती है जब तपस्या के बढ़ने का कारण श्रेष्ठ अतिथि दुष्यन्त की प्राप्ति बताती है। यह परिष्कृत राज-सभा-लभ्य (दरबारी) स्वागत-

राजा—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम् ।

प्रकार वन-संस्कृति की उच्चता बताता है । "अतिथि-विशेष" का अर्थ अतिथि की विशिष्टता है जिसका प्रचलित रूपान्तर हिन्दी में विशिष्ट अतिथि होगा । भारतीय शिष्टाचार में अतिथि से शीघ्र संक्षेप में कुशल पूछकर पैर धोने के लिये जल और स्वागत के लिये अर्घ देने की प्रथा थी जो लुप्त हो रही है। वाचस्पत्य-कोष में काशीखण्ड का निम्न लिखित वचन उद्धृत किया गया है जो अर्घ में पड़ने वाली वस्तुओं के नाम गिनाता है—

आपः क्षीरं कुशाग्रं च दधि सर्पिः सतण्डुलम् ।
यवः (जौ) सिद्धार्थकं (सरसों) चैव अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः ।

इसमें फल का नाम नहीं आया, अतः फल अलग से कहा गया है । फल अर्घ की श्री वृद्धि करने वाला प्रतीत होता है ।

पैर धोकर बैठने या अन्दर जाने का प्राचीन तरीका स्वास्थ्य-नियम-सम्मत है; उस जमाने में भी ये चीजें प्रचलित थीं । विशेष का अर्थ है जो विशेष रूप से बच जाय (विशेषेण शिष्यते) फल का छिलका निकालने पर सार-भाग बचता है और भूसी निकालने पर अंदर से अन्न निकलता है। इस तरह फलसार और अनाज का दाना बच जाता है जो सार है । विशेष शब्द इस सार का वाचक है ।

शब्दार्थ—अतिथि-विशेष श्रेष्ठ अतिथि । उटज=पत्तों की कुटी (मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्—अमर-कोष) । मिश्र=मिश्रित । उपहर=(भेंट) दो । पादोदक=पैर (धोने) के लिये पानी ।

व्युत्पत्ति—विशेष=वि+शिष्+घञ् । लाभ=लभ्+घञ् । उटज+उट+जन्+ड । उदक=उन्द्+ण्वुल् ।

समास—अतिथेः विशेषः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य लाभेन (षष्ठी तत्पुरुष) । फलेन मिश्रम् फल-मिश्रम् (तृतीया तत्पुरुष) पादाय (चतुर्थी तत्पुरुष) पादार्थम् (शाकपार्थिवादि) उदकम् पादोदकम् ।

हिन्दी अनुवाद—राजा–आप (लोगों) की प्रिय वाणी से ही आतिथ्य पूरा हो गया है (या वाणी ने ही पूरा कर दिया है ।

संस्कृत-टीका—राजा (कथयति यत्) । **भवतीनाम्** युष्माकम् । **सूनृतया** मधुरया । **एव** । **गिरा** वचसा । **कृतम्** सम्पादितम् अतिथिसत्कारः ।

हिन्दी-व्याख्या—बहु-वचन आदरार्थक है । राजा ने अपने को केवल शकुन्तला और अनसूया की बात सुनने वाले के रूप में प्रगट किया है; इस कारण या तो एक के लिये एक-वचन या दो के लिये द्वि-वचन होना चाहिये । यह भी समझा जा सकता है कि राजा ने अन्तिम सखियों की एक साथ कही एक ही बात का श्रवण किया, ऐसा व्यक्त किया । बात-चीत का यह मनोहारी ढंग आज भी स्पृहणीय माना जाता है और दरबारी शिष्टाचार की श्रेष्ठता और कालिदास के समय भी विद्यमानता का परिचय देता है ।

प्रियंवदा--तेण हि इमस्सिं पच्छाअसीदलाए सत्तवण्णवेदिआए मुहुत्तअं उवविसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो। [तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्त्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः ।]

"सूनृत" का अर्थ है मीठी और सत्य (वाणी)। यहाँ सत्य का विशेष प्रयोजन न होने से पहला अर्थ ही किया गया है।

"कृतम्" का अर्थ है–किया गया है, जब यह कर्म-वाच्य में मुख्य क्रिया के रूप में है। इसके साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग करने पर "मत" अर्थ निकलता है। "कृतम् आतिथ्येन" का अर्थ है आतिथ्य मत करो। यदि दोनों अर्थों का विचार गहराई से किया जाय तो विपरीत अर्थ होने पर भी दोनों में समानता है, "कृतम् आतिथ्यम्" का अर्थ है आतिथ्य कर दिया गया, मैं संतुष्ट हो गया, अब बस करो"। इस तरह दोनों प्रयोग समानार्थक हो जाते हैं।

राजा का कहना है कि कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, पानी मिल गया है, अर्घ की जरूरत नहीं है। सभी के वचनों की प्रशंसा का यह भी आशय निकल सकता है कि मैं आप सभी के वचन सुनने को उत्कण्ठ हूँ। अर्घ की औपचारिकता में देर लगने से शकुन्तला की बात सुनने को नहीं मिलेगी, इसलिये भी राजा मना कर सकते हैं।

शब्दार्थ सूनृत=प्रिय (और सत्य) (सूनृतं मङ्गलेऽपि स्यात् प्रियसत्ये वचस्यपि। सूनृतं प्रिये सत्येऽथ—अमरकोष)

व्युत्पत्ति—सूनृत=सु+नृत्+क (नृत्यन्ति जनाः अनेन–भानुजिदीक्षित) । कृत=कृ+क्त। आतिथ्य=अतिथि+ष्यञ्। ष्यञ् लगने पर विशेषण से भाववाची संज्ञा बनती है जो नपुंसकलिङ्ग में होती है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—तो छितवन की घनी छाँह से ठण्डे चबूतरे पर दो घड़ी बैठकर श्रीमान् थकावट दूर करें।

संस्कृत-टीका--प्रियंवदा (कथयति यत्)। **तेन** (यदि सूनृतया एव वाचा तुष्यन्ति श्रीमन्तः)। **हि** निश्चयेन। **प्रच्छायायाम्** प्रकृष्टा छाया अनातपदेशः यस्याः तस्याम्। **शीतलायाम्** शिशिरायाम्। **सप्तपर्णस्य** अयुग्मच्छदाख्यस्य तरोः **वेदिकायाम्** मूलबन्धनभित्तौ। **मुहूर्त्तम्** क्षणम्। **उपविश्य** स्थित्वा। **परिश्रमस्य** क्लान्तेः **विनोदम्** अपाकरणम्। **करोतु** विदधातु। **आर्यः** श्रीमान् (दुष्यन्तः)।

हिन्दी-व्याख्या—अभी तक विनोदी सखी प्रियंवदा चुप होकर रुख देख रही थी, जब उसे विश्वास हो गया कि अपरिचित व्यक्ति अवाञ्छनीय नहीं है, बल्कि इसके साथ बात करना सौभाग्य की बात है, तब वह बिना पूछे भी बोलकर सम्पर्क बढ़ाती है, इस तरह अपनी सूनृत वाणी का परिचय भी दे देती है जिससे राजा को यह शिकायत न रह जाय कि मुझसे बात नहीं की; मधुर वाणी नहीं सुनाई। सप्तपर्ण को हिन्दी के कवि "छतवन" कहते हैं, इसकी गन्ध हाथी के मद की गन्ध की तरह बताई गई है (अयुग्मच्छदगन्धि···दन्तिनां मदः–किरातार्जुनीय १।१६) एक डण्ठल में ७ पत्तियाँ होने से इसे सप्तपर्ण कहते हैं।

राजा—ननु[1] यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः ।

अनसूया—हला सउंदले उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं । एत्थ उवविसम्ह । [हला शकुन्तले उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम् । अत्रोपविशामः ।] [सर्वा उपविशन्ति)

वेदिका ऐसे चतुष्कोण चबूतरे को कहते हैं जिसमें खम्मे हों और उन पर छत पड़ी हो। यहाँ वह चबूतरा पेड़ को घेर कर बना है।

शब्दार्थ—प्रच्छाय=घनी छाया वाला । सप्तपर्ण=छितवन (एक वृक्ष) (सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः—अमरकोष) । वेदिका=(छत और खम्मे वाला चौकोन चबूतरा ।) विनोद =निवारण (हिन्दी में विनोद शब्द मनोरंजन के अर्थ में आता है, खेद का निवारण मानकर ऐसा अर्थ विकसित हुआ है ।)

व्युत्पत्ति—"मुहूर्त्तम्" में द्वितीया "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" (अष्टाध्यायी २।३।५) से हुई है। जब तक क्रिया होती रहे, उस अवधि (दूरी या समय की) में द्वितीया होती है। "से" या "तक" के अनुवाद में यह ध्यान रखना चाहिये।

समास—प्रकृष्टा छाया यस्याः तस्याम् प्रच्छायायाम् (बहुव्रीहि) । सप्तपर्णस्य वेदिकायाम् (षष्ठी तत्पुरुष) परिश्रमस्य विनोदम् परिश्रमविनोदम् (षष्ठी तत्पुरुष) ।]

हिन्दी-अनुवाद—राजा—क्यों ? आप भी (तो) इस कार्य से थक गई हैं।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (कथयति उत) । **ननु** किम् न । **यूयम्** भवत्यः । **अपि । अनेन** एतेन वृक्षसेचनेन । **कर्मणा** कृत्येन । **परिश्रान्ताः** क्लान्ताः ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा ने राजा को बैठाया तो उन्होंने भी बैठने का अनुरोध किया। यह परस्पर अनुरोध आज के शिष्टाचार में भी महत्त्व रखता है। कोई नाम पूछे तो उसका भी उत्तर देने के बाद पूछना चाहिये। इसी तरह अन्य प्रश्नों में भी समानता अपेक्षित होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यहाँ तक कहा जाता है कि पूछने वाला स्वयं वैसे प्रश्न का उत्तर देना चाहता है, अतः पूछकर अपेक्षा करता है कि मुझसे भी इस तरह की बात पूछी जायेगी। राजा को कोमल-गात्र युवतियों पर दया आ गई जिससे उन्होंने "थक गईं (अतः बैठें)" कहा है, यह भी समझा जा सकता है।

शब्दार्थ—परिश्रान्त=थकी हुई ।

व्युत्पत्ति—परिश्रान्त=परि+श्रम्+क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—[सखी शकुन्तला, हमारे लिये अतिथि महोदय का सत्कार उचित है। यहाँ बैठा जाय ।] (सब बैठती हैं) ।

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत) [**हला** सखि । **शकुन्तले । उचितम्** योग्यम् कृत्यम् । **नः** अस्माकम् । **पर्युपासनम्** सत्कारः । अतिथीनाम् विशिष्टस्य अतिथेः (नृपस्य) । **अत्र** अस्मिन् स्थाने । **उपविशामः** ।] (**सर्वाः** सकलाः (तिस्रः अपि) सख्यः । **उपविशन्ति**) ।

पाठा० १ नूनम् ।

शकुन्तला--(आत्मगतम् ।) किं णु क्खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअह्मि संवुत्ता । [किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता ।]

हिन्दी-व्याख्या—अनसूया शकुन्तला को पुनः अतिथि-पूजा के लिये अनुरोध करती है। यह स्मरण दिलाना यह सूचित करता है कि शकुन्तला घबड़ाकर वहीं रुक गई है; अभी होश में आकर अन्दर आतिथ्य-व्यवस्था के लिए नहीं गई है। दोनों सखियों के साथ शकुन्तला बैठ जाती है जो सूचित करता है कि यह बात भी उसने सुनी-अनसुनी कर दी है।

बहुवचन में "अतिथिं" का प्रयोग आदरार्थक है।

पर्युपासन का अर्थ आस-पास (परि) पर समीप (उप) बैठना (आसन) है। इससे "सेवा" अर्थ विकसित हुआ है, क्योंकि सेवा के लिए हर समय तैयार रहने के लिए उस तरह बैठना आवश्यक है जिससे सेव्य के आदेश प्राप्त किये जा सकें।

शकुन्तला घबरा गई है; इसी बहाने अपने को व्यवस्थित करने के लिए अन्दर भेज दिया जाय या कुलपति की प्रतिनिधि-रूप होने से उसके लिए अतिथि-पूजा सर्व-प्रधान कर्त्तव्य है, इस दृष्टि से अनसूया उसे अन्दर भेजती है।

"पर्युपासन" का अर्थ इच्छानुसार चलना लगाकर अतिथि-पूजा की औपचारिकता छोड़कर वहीं बैठने का अतिथि-अनुरोध मानना उचित है, यह सोचकर सभी बैठती हैं; शकुन्तला भी इसी को निर्णायक मानकर बैठती है।

शब्दार्थ—पर्युपासन=सेवा।

व्युत्पत्ति—पर्युपासन=परि+उप+आस्+ल्युट्।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (मन ही मन)—क्या बात है कि इन्हें देखकर आश्रम के विरोधी (भाव) विकार का लक्ष्य हो गई हूँ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) किम्। नु (वितर्के)। खलु निश्चयेन। इमम् अमुम् दुष्यन्तम्। प्रेक्ष्य दृष्ट्वा। तपसः तपस्यायाः वनस्य विपिनस्य (आश्रमस्य) विरोधिनः अननुरूपस्य। विकारस्य विकृतेः (परिवर्तनस्य)। गमनीया लक्ष्यभूता। अस्मि। संवृत्ता जाता।

हिन्दी-व्याख्या—दुष्यन्त की सहानुभूति और व्यक्तित्व से शकुन्तला पहली बार के दर्शन में ही सुध-बुध भूल गई। संयम के वातावरण में रहने वाले की शृङ्गार भावना को भड़कने में जहाँ देर लगनी चाहिये वहाँ जल्दी होती है, यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। संयमी के लिये ऐसे अवसर उपस्थित नहीं होने देने चाहिये। शुद्ध और भोला मन चञ्चलता का कारण उपस्थित होने पर चंचल हो ही जाता है; शरीर से भले हो प्रदर्शित न किया जाय। यह मन का मिलनसार होना समाज और उसकी मर्यादा को चुनौती और समस्या है। फिर भी धैर्यवान् व्यक्ति बुद्धिमानी का सहारा लेकर भावों पर नियन्त्रण रखते हैं। शकुन्तला अपने मन से पूछती है जिससे प्रतीत होता है कि वह प्रेम के वशीभूत हो गई है, पर कारण नहीं ढूँढ़ पाती। नवयुवतियों के लिए उनके सहज भावुक होने से ऐसी स्थिति अस्वाभाविक नहीं है—विशेषतः शकुन्तला-जैसी भोली और उच्च वातावरण में पली हुई के लिये।

राजा—(सर्वा विलोक्य) **अहो समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम् ।**

प्रियंवदा—(जनान्तिकम्) **अणसूए को णु क्खु एसो चउरगम्भीराकिदी महुरं पिअं**

"स्वगत" और "आत्मगत" समानार्थक है। इसे इस ढंग से कहा माना जाता है कि दर्शक तो सुन रहे हैं, पर पात्र नहीं, जो अस्वाभाविक है "गमनीया" का अर्थ है वह जिसके पास पहुँचना है। इस तरह इसका अर्थ लक्ष्य है। विकार का अर्थ काम-विकार है जो आश्रम के प्रतिकूल होने से विरोधी कहा गया है।

शब्दार्थ—**नु**=संदेह-सूचक अव्यय (नु वितर्कावमानयोः—मेदिनी-कोष। गमनीय=लक्ष्य-स्वरूप। संवृत्ता=हो गई।

व्युत्पत्ति—प्रेक्ष्य=प्र+ईक्ष्+ल्यप्। विरोधी=वि+रुध्+णिनि। विकार=वि+कृ+घञ्। गमनीय=गम्+अनीयर्। संवृत्त=सम्+वृ+क्त।

समास—तपसः वनस्य (षष्ठी तत्पुरुष) विरोधी (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (सबको देखकर) धन्य है आप लोगों की मैत्री जो उम्र और रूप की समानता से रम्य है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (सर्वाः सकलाः तिस्रः अपि सखीः। विलोक्य=दृष्ट्वा)। **अहो** (आश्चर्ये)। **समेन** तुल्येन **वयसा रूपेण** आकृत्या **रमणीयम्** सुन्दरम्। **भवतीनाम्** युष्माकम्। सौहार्दम् मित्रता।

हिन्दी-व्याख्या—राजा को तीनों की उम्र और आकृति की समानता और ऐसी स्थिति में संयोग और मित्रता पर अचरज होता है। उम्र, संगति और मित्रता का एक होना तो माना जा सकता है, आकृति का मिलना-जुलना साधारणतः संभव नहीं होता। यह वेश के कारण संभव माना जा सकता है। एक ही गण-वेश में सभी समान दिखते हैं जिस तरह सिख, स्काउट या कैडेट।

यद्यपि राजा शकुन्तला के प्रति अनुरागी हो गये हैं, तथापि प्रथम दर्शन के समय की स्थिति का वर्णन कर रहे हैं। समूह में से एक की विशेष प्रशंसा अशिष्टता-मूलक हो सकती है जिसे बचाने के लिये सामान्यरूप से सभी का वर्णन कर रहे हैं। यह भी संभव है कि समानता न दिखाने पर कहीं सखियाँ यह न समझें कि पहले से ही छिप कर देख रहे थे जिससे विशेष सुन्दरता वाली शकुन्तला से इनका अनुराग हो गया है।

शब्दार्थ—समवयोरूपरमणीय=उम्र और आकृति की समानता से सुन्दर। सौहार्द=मैत्री।

व्युत्पत्ति—विलोक्य=वि+लोक्+ल्यप्। रमणीय=रम+अनीयर्। सौहार्द=सुहृद्+अण्।

समास—समे च ते वयोरूपे च (कर्मधारय) ताभ्याम् रमणीयम् समवयोरूपपरमणीयम् (तृतीया तत्पुरुष) वयः च रूपम् च वयोरूपे (द्वन्द्व)।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (अन्य पात्रों को न सुनाकर)—अनसूया! यह कौन है जिसका

आलवन्तो पहावववन्दो विअ लक्खीअदि । (जनान्तिकम्) [अनसूये को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव[1] लक्ष्यते ।]

अनसूया—सहि मम वि अत्थि कोदूहलं । पुच्छिस्सं दाव णं (प्रकाशम्) अज्जस्स महुरालावजणिदो विसम्भो मं मन्तावेदि । कदमो अज्जेण राएसिणो वंसो अलकरीअदि कदमो वा विरहपज्जुस्सुअजणो किदो देसो किंणिमित्तं वा सुउमारदरो वि तवोवणगम-

---

स्वरूप चतुर और गंभीर है तथा जो मधुर प्रिय वचन बोलता हुआ प्रभावित करने वाला सा दिखता है ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (जनान्तिकम् अपवार्य) कथयति यत् । **अनसूये** । कः । **नु** (वितर्के) **खलु** । **एषः** अयम् (निकटस्थः) । **चतुरा** निपुणा च **गम्भीरा** विकाररहिता च **आकृतिः** स्वरूपम् यस्य तादृशः । **मधुरम्** मिष्टम् (कर्णप्रसादकरम्) । **प्रियम्** मनसः अनुकूलम् । **आलपन्** कथयन् । **प्रभाववान्** प्रतापी । **इव** । **लक्ष्यते** अनुमीयते ।

हिन्दी-व्याख्या—कई के रहने पर बात-चीत के बीच हाथ की उँगलियाँ खड़ीकर और अनामिका को कुछ तिरछा कर जिसे सुनाना अभीष्ट नहीं होता उसकी ओर कर देते हैं जिसका अर्थ होता है कि शेष व्यक्ति सुन रहा है । कान में इसलिये नहीं कहा जाता कि असभ्यता तो होगी ही नाटक-श्रोता भी नहीं सुन पायेंगे जिससे उद्देश्य ही विफल हो जायेगा । "अपवारित" में भी यही उद्देश्य होता है, पर केवल घूमकर कहने से काम चलाया जाता है—

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।
रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् (दशरूपक १।६५-६६)

यहां दिखाया गया है कि दुष्यन्त के शिष्ट ढंग और प्रभावशाली व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव पड़ा है कि प्रियंवदा सखी से आलाप करती हुई उसे व्यक्त कर रही है । यह रोब कहा जा सकता है । दूसरे शब्द में इसे श्रद्धा भी कह सकते हैं; जिसमें स्वयं तो प्रशंसा करते ही हैं, चाहते हैं कि दूसरे भी प्रशंसा करें ।

आकृति ने पहले और वाणी ने बाद में प्रभावित किया है, यह पद-विन्यास क्रम से प्रतीत होता है । यदि पहले वाणी से ध्यान आकृष्ट हुआ हो तो भी यह कहा जा सकता है कि प्रथम वाणी उतनी प्रभावशाली नहीं थी, जितनी बाद की । व्यक्तित्व की श्रेष्ठता में पहले वेश का ही वर्णन अभीष्ट होता है, वचन का स्थान बाद में आता है । प्रियंवदा बाह्यस्वरूपादि की ओर अधिक आकृष्ट होती है । यह चरित्र की विशेषता है ।

शब्दार्थ—चतुरगम्भीराकृति = जिसका आकार चतुर और गम्भीर है ।

व्युत्पत्ति—आकृति = आ + कृ + क्तिन् । आलपन् = आङ् + लप + शतृ । भाववान् = भू + घञ् मतुप् ।

---

[1] पाठा०—प्रभवन् दाक्षिण्यमपि करोति ।

णपरिस्समस्स अत्ता पदं उवणीदो । [सखि ममाप्यस्ति कौतूहलम् । प्रक्ष्यामि तावदेनम् । (प्रकाशम्) आर्यस्य मधुरालापजनितो विस्रम्भो मां मन्त्रयते । कतम आर्येण राजर्षेर्वंशोऽलंक्रियते कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः किंनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीतः ।]

समास—चतुरा गम्भीरा च आकृतिः यस्य सः चतुरगम्भीराकृतिः (बहुव्रीहि), प्रकृष्टः च सः भावः च प्रभावः (प्रादि-तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया-सखी, मुझे भी उत्सुकता हो रही है। जरा इनसे पूछूँ। (प्रकाश-रूप में) श्रीमान् का मिष्ट संभाषण से उत्पन्न विश्वास मुझे बोलने को प्रेरित कर रहा है। श्रीमान् कौन-सा राजर्षि-वंश अलंकृत करते हैं, कौन-सा स्थान ऐसा है, जहाँ की जनता आपने (अपने) वियोग से उत्कण्ठित बनाई है और किसलिये अत्यन्त कोमल होने पर भी शरीर, आश्रम तक चलने के परिश्रम का विषय बनाया है ?

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्) । **सखि** आलि । **मम** मे । **अपि** । **अस्ति** विद्यते । **कौतूहलम्** उत्सुकता । **प्रक्ष्यामि** पृच्छामि । **तावत्** प्रथमम् । **एनम्** इमम् (दुष्यन्तम्) । **प्रकाशम्** व्यक्तम् **आर्यस्य** श्रीमतः (भवतः) । **मधुरेण** कर्णसुखकरेण **आलापेन** सम्भाषणेन **जनितः** उत्पादितः **विस्रम्भः** विश्वासः । **माम्** इमम् जनम् । **मन्त्रयते** कथयितुं प्रेरयति । **कतमः** कः । **आर्येण** श्रीमता (भवता) । **राजा** नृपः च सः **ऋषिः** मुनिः च **राजर्षिः** तस्य । **वंशः** कुलम् । **अलंक्रियते** भूष्यते । **कतमः** कः । **वा** च । **वा विरहेण** वियोगेन **पर्युत्सुकाः** उत्कण्ठाः **जनाः** नराः यस्मिन ताद‍ृशः । **कृतः** विहितः । **देशः** स्थानम् । **किम्** निमित्तम् हेतुः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । **वा** च । **सुकुमारतरः** विशेषेण कोमलः । **अपि** । **तपसः** तपस्यायाः **वने** विपिने (आश्रमे) यत् **गमनम्** प्रयाणम् तस्य **परिश्रमस्य** क्लान्तेः । **आत्मा** शरीरम् । पदम् स्थानम् । **उपनीतः** प्रापितः ।

हिन्दी व्याख्या—अनसूया—पहले संकुचित हो गई थी पर स्थिति ठीक होते ही उसकी गंभीरता और व्यवहार-पटुता प्रगट हो गई। वह व्यावहारिक है, अतः भावुक प्रश्नों का सिलसिला तोड़कर व्यावहारिक प्रश्न कर रही है जिससे कुछ ज्ञात हो सके और कौतूहल शान्त हो।

रोब की जगह सदाचार की प्रधानता होने से राजर्षि-वंश कहा गया है। उस समय "ऋषि" शब्द में क्या गौरव था, वह आज पाश्चात्य सभ्यता में रँगे शिष्ट कहलाने वाले लोग नहीं समझ सकते, जो अपनी संस्कृति का उपहास करने में अपनी बहादुरी समझते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि प्रियंवदा पहचान गई है। यह सामान्य शिष्टाचार है और आगामी कथा की सूचना देता है। बातचीत का दरबारी और शिष्ट ढंग देखने ही लायक है। जंगल में भी नागरिक शिष्टता लाई गई है, जंगलीपन का नाम निशान-नहीं है। वंश, स्थान और आने का कारण पूछा गया है, पर शैली काव्यात्मक है जिससे सुनने में आनन्द आता है। उर्दू में इस तरह की चीज देखकर चमत्कृत होने वालों में साधारणतः वे ही होते हैं जो संस्कृत में वैसी चीज होने से नितान्त अनभिज्ञ हैं। मौलिकता संस्कृत की है जिसका सम्मान अपेक्षित है। हर्षचरित और कादम्बरी में स्थान-स्थान पर ऐसा वर्णन आया है। हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास का निम्न-लिखित प्रश्न उद्धृत किया जाता है—

तत् कथयागमनेनापुण्यभाक् कतमो विजृम्भितविरहव्यथः शून्यतां नीतो देशः ।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) **हिअअ मा उत्तम्म । एता तुए चिन्तिदं[1] अणसूआ मन्तेदि**
[हृदय मोत्ताम्य । एषा त्वया चिन्तितं अनसूया मन्त्रयते ।]

कभी-कभी यह अलंकृत शैली मजाक-सी लगती है। उर्दू में किसी की बीमारी पूछते समय कहते हैं कि "सुना है, आपके दुश्मनों की तबीयत नाराज हो गई है।" चूँकि किसी को बीमार कहना अशकुन है, अतः दुश्मनों पर जबर्दस्ती बीमारी लादी गई है जो सामान्य व्यवहार की दृष्टि से ठिठोली है।

यहाँ मधुर आलाप से विश्वास का वातावरण और फिर उससे सौहार्द-पूर्ण बातचीत का आविर्भाव बताया गया है।

शब्दार्थ—प्रकाशम्–स्पष्ट रूप से ("स्वगत" या "आत्म-गत" का उलटा है)। विस्रम्भ=विश्वास (समौ विश्रम्भविश्वासौ—अमरकोष)। मन्त्रयते=बात करने को प्रेरित करता है। कतम=कौन (प्रायः कई में एक को छाँटने के लिये आता है। विरहपर्युत्सुक जन=जहाँ जन वियोग से उत्कंठित हों। किं निमित्त=किस कारण, सुकुमारतर=अत्यन्त मृदु ("तरप्" प्रत्यय से तुलना होती है, इसके साथ "सु" भी लगा है, यह ध्यान देने योग्य है। जहाँ तुलना का विषय नहीं होता, वहाँ "तरप्" और "तमप्" प्रत्यय लगने पर विशेष या अतिशय अर्थ लगता है। तुलना का आग्रह करने वालों के लिये कहा जा सकता है कि "सबसे ज्यादा सुकुमार" कहकर अर्थ लग सकता है)। आत्मा=शरीर (आत्मादेहमनोब्रह्मस्वभावधृतिबुद्धिषु। प्रयत्ने चापि—विश्व-कोष)। पद=स्थान (यह शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग एक-वचन में आता है। उपनीत=पहुँचाया गया।

व्युत्पत्ति—कौतूहल=कुतूहल+अण् (स्वार्थे)। प्रकाश=प्र+काश्+घञ्। आलाप=आङ्+लप्+घञ्। जनित=जन्+णिच्+क्त। विस्रम्भ=वि+स्रम्भ्=घञ्। मन्त्रयते—मन्त्र+णिच् (लट्–वर्तमान–प्रथम पुरुष+एकवचन। अलंक्रियते=अलम्+कृ (कर्म-वाच्य। लट्–वर्तमान प्रथम-पुरुष+एक वचन)। कृत=कृ+क्त। सुकुमारतर=सु+कुमार+तरप्। गमन=गम्+ल्युट्। परिश्रम=परि+श्रम्+घञ्। "आत्मा" में प्रथमा ध्यान देने योग्य है। द्विकर्मक धातुओं के होने पर यदि कर्म-वाच्य बनाया जाता है तो नी, हृ, कृष् और वह् धातुओं के योग में मुख्य कर्म को प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है और गौण कर्म (जहाँ जाया या ले जाया जाय) को द्वितीया में ही रहने दिया जाता है (यहाँ "पदम्" में द्वितीया है)। शेष धातुओं के योग में इसका उलटा होता है अर्थात् गौण कर्म (जिसे दुहा, पकाया, दण्ड दिया जाय आदि) प्रथमा में रखा जाता है और प्रधान कर्म (जो वस्तु दुहकर पाई जाय, जो पकड़कर तैयार हो, दण्ड में मिली वस्तु या द्रव्य) द्वितीया में।

समास—विरहेण पर्युत्सुकः (तृतीया तत्पुरुष) जनः यत्र (बहुव्रीहि) सः विरहपर्युत्सुकजनः। किम् निमित्तम् यस्य तत् (बहुव्रीहि) यथा स्यात् तथा किंनिमित्तम्। तपसः वने (षष्ठी तत्पुरुष) गमने (सप्तमी तत्पुरुष) परिश्रमस्य तपोवनगमनपरिश्रमस्य।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (मन ही मन)—हृदय, अधीर मत होओ। तुम्हारा सोचा यह अनसूया कह रही है।

पाठा०—१. चिन्तिदाइं [चिन्तितानि]।

राजा--(आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि कथं वात्मापहारं करोमि। भवतु। एवं तावदेनां वक्ष्ये। (प्रकाशम्) भवति यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।

संस्कृत-टीका--शकुन्तला। (**आत्मनि** स्वस्मिन् **गतम्** प्राप्तम् **आत्मगतम्** स्वगतम्) (कथयति यत । **हृदयं** मनः। **मा** अलम्। **उत्ताम्य** अधीरतया। **एषा** इयम् निकटस्था। **त्वया** भवता। **चिन्तितम्** इष्टम्। **अनसूया**। मन्त्रयते कथयति (जिज्ञासप्रकटनेन इत्यर्थः)।

हिन्दी व्याख्या--शकुन्तला पर दुष्यन्त के प्रेम का प्रभाव द्रुत-गति से हो रहा है और उसका हृदय इस सीमा तक उत्कंठित हो रहा है कि उसे रोकना पड़ रहा है। वह स्वयं नामादि नहीं पूछ पाई जिससे अधीर हो रही थी; अनसूया के पूछने पर उसे राहत मिली।

शब्दार्थ—उत्ताम्य=अधीर होओ। चिन्तित=सोची बात। मन्त्रयते=कहती है।

व्युत्पत्ति--मा और माङ् दो शब्द हैं, अतः यहाँ "माङि लुङ्" सूत्र के अनुसार "मा" के योग में लुङ् नहीं हुआ। उत्ताम्य=उद्+तम् (लोट् मध्यम पुरुष एक वचन)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मन ही मन)--कैसे अब अपने बारे में बताऊँ और कैसे अपने को छिपाऊँ ? अच्छा; ऐसे इससे कहूँगा। (स्पष्ट रूप से) देवी, पुरुवंशी राजा के द्वारा जो धर्म के अधिकारी पद पर नियुक्त (या ड्यूटी पर लगा हुआ) हुआ है, वह मैं विघ्न-रहित क्रिया (हो रही है या नहीं) जानने के लिये इस तपोवन में आया हूँ)

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (आत्मगतम् स्वगतम्) (कथयति यत्)। **कथम्** कया रीत्या। **इदानीम्** अधुना (यदा उत्तरयितव्यम् एव) **आत्मानम्** स्वस्य परिचयम्। **निवेदयामि** कथयामि। **कथम्** कया रीत्या। **वा** च। **आत्मनः** स्वस्य। **अपहारम्** गोपनम्। **करोमि**=करूँ। **भवतु** अस्तु (निर्णीतम्)। **एवम्** अनया रीत्या। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **एनाम्** इमाम् (अनसूयाम्)। **वक्ष्ये** वदिष्यामि। (**प्रकाशम्** स्पष्टम्) **भवति** देवि। **यः**। **पौरवेण** पुरुवंशोत्पन्नेन। **राज्ञा** नृपेण। **धर्मस्य** न्यायादिरूपस्य कर्तव्यस्य वा। **अधिकारे** कृत्ये (पदे)। **नियुक्तः** आदिष्टः। **सः** पूर्वोक्तः। **अहम्** अयम् जनः। अविद्यमानः **विघ्नः**=बाधा यत्र **अविघ्नाः** अबाधाः याः **क्रियाः** कर्माणि तासाम् **उपलम्भाय** ज्ञानाय। **धर्मस्य** तपोरूपस्य **अरण्यम्** वनम् (तपोवनम् रणे साधु रण्यम्। न रण्यम् अरण्यम्।) **इदम्** एतत्। **आयातः** आगतः।

हिन्दी-व्याख्या—राजा को अपने को छिपाकर सुविधा हो रही थी। अपने को प्रगट करने के बाद लड़कियाँ संकोच करेंगी और औपचारिकता में स्वाभाविकता का हनन होगा, यह सोचकर राजा परेशानी में पड़ गये हैं। प्रश्न का सीधा-सीधा उत्तर न देना असभ्यता है, यह सोचकर अपनी वाणी व्यवस्थित कर कहते हैं "स्वगत" के बाद "प्रकाश" आता है जिसके पूर्व "भवतु" से यह व्यक्त किया जाता है कि उपाय सोच लिया या निर्णय कर लिया। "पौरव" का अर्थ दुष्यन्त-पिता और दुष्यन्त दोनों होने से छिपाने का यत्न किया गया है। हँसी में यह छिपाव युधिष्ठिर-सत्य कहलाता है।

शब्दार्थ— अपहार=गोपन। पर-पत्नी व असंबद्ध स्त्री को भवती (देवी), सुभगा (शोभन

अनसूया—सणाहा दाणिं धम्मआरिणो [सनाथा इदानीं धर्मचारिणः] (शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति ।)

ऐश्वर्य वाली या भगिनी (बहन) कहा जाता है। पौरव = पुरु के वंश में उत्पन्न। अधिकार = पद। अविघ्न = बाधा-रहित। उपलम्भ = ज्ञान। धर्मारण्य = तपोवन। आयात = आगत (हूँ)।

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसंबद्धा च योनितः।
तां ब्रूयाद् भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥ (मनुस्मृति)

व्युत्पत्ति—गत = गम् + क्त। अपहार = अप + हृ + घञ्। प्रकाश = प्र + काश् + घञ्। "भवति" में संबोधन का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। "भवत्" शब्द आदरार्थक संज्ञा—"श्रीमत्" की तरह है। पौरव = पुरु + अञ्। अधिकार = अधि + कृ + घञ्। नियुक्त = नि + युज् + क्त। विघ्न = वि + हन् + क। उपलम्भ = उप + लम्भ् + घञ्। आयात = आङ् + या + क्त।

समास· आत्मनि गतम् आत्मगतम् (सप्तमी तत्पुरुष)। आत्मनः अपहारम् आत्मापहारम् (षष्ठी तत्पुरुष)। धर्मस्य अधिकारे धर्माधिकारे (षष्ठी तत्पुरुष) अविद्यमानः विघ्नः यत्र अविघ्नाः (बहुव्रीहि) ताः च ताः क्रियाः च (कर्मधारय) अविघ्नक्रियाः तासाम् उपलम्भाय (षष्ठी तत्पुरुष)। धर्मस्य (षष्ठी तत्पुरुष) धर्मसाधनम् धर्मार्थं वा (शाकपार्थिवादि) अरण्यम् धर्मारण्यम्। न रण्यम् अरण्यम् (नञ् तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—धार्मिक (तपोवन-वासी) इस समय (आपके आगमन से) सनाथ हो गये हैं। (शकुन्तला शृङ्गार-रस-युक्त लाज का अभिनय करती है।)

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्)। **नाथेन** रक्षकेण सह। **इदानीम्** सम्प्रति। **धर्मचारिणः** तपोवनवासिनः धार्मिकाः। (**शकुन्तला शृङ्गारलज्जाम्** शृङ्गाररसाश्रयाम् **लज्जाम्** त्रपाम्। **रूपयति** नाटयति)।

हिन्दी-व्याख्या—"नाथ" शब्द का प्रयोग आगामी घटना का सूचक है जिसमें दुष्यन्त शकुन्तला के नाथ (स्वामी) होते हैं। "धर्मचारी" शब्द पुंलिङ्ग होने पर भी जाति-वाची होने से स्त्री-पुरुष सबके लिये आ सकता है। पुरुष की प्रधानता मानकर भी पुंलिङ्ग करते हैं; उससे स्त्री-लिङ्ग का भी अर्थ लिया जाता है। "नाथ" शब्द के "पति" अर्थ से शकुन्तला लज्जित होती है। उसे दुष्यन्त के प्रगट होने के पूर्व की ठिठोली याद आती है। जिसमें रक्षक दुष्यन्त को बुलाने के लिये सखियों ने कहा था। तपोवनवासी युवती को दुष्यन्त के रूप में पति मिला यह अर्थ और हृदय में उमड़ रहा प्रेम और श्रेष्ठ होने से प्रेम-पात्रता भी इस लाज का कारण हो सकती है। "समझदार व्यक्ति जो जितना बड़ा होता है, उसके सामने उतनी ही लाज करते हैं और युवती के लाज करने में भी शृङ्गाररस उमड़ पड़ता है, अतः अभिनय करने का निर्देश दिया गया है," यह भी ठीक हो सकता है।

शब्दार्थ—सनाथ = रक्षक-युक्त। धर्मचारी = धार्मिक। शृङ्गारलज्जा = शृङ्गार रस-युक्त लाज। रूपयति = अभिनय करती है।

व्युत्पत्ति—नाथ = नाथ् + घञ् (जिससे याचक या वधू माँगे—याच्यते वध्वा याचकैः वा)। धर्मचारी = धर्म + चर् + णिनि।

सख्यौ—(उभयोराकारं विदित्वा । जनान्तिकम् ।) **हला सउन्दले जइ एत्थ अज्ज तादो संणिहिदो भवे** [हला शकुन्तले यद्यत्राद्य तातः संनिहितो भवेत्]

शकुन्तला–तदो किं भवे । [ततः किं भवेत् ।]

समास—नाथेन सह सनाथा (बहुव्रीहि) । शृङ्गारयुक्ता लज्जा शृङ्गारलज्जा (शाकपार्थिवादि) ।

हिन्दी अनुवाद—दोनों सखियाँ (दोनों की आकृति जानकर । (जनान्तिक) सखी शकुन्तला, अगर इस समय (आज) यहाँ पिता उपस्थित होते ।

संस्कृत-टीका—**सख्यौ** अनसूया प्रियंवदा च (उभयोः शकुन्तलायाः दुष्यन्तस्य च । **आकारम्** आकृतिम् । **विदित्वा** ज्ञात्वा–दृष्ट्वा । **जनान्तिकम्** । **हला** सखि । **शकुन्तले** (**यदि** चेत् । **अत्र** इह तपोवने । **अद्य** साम्प्रतम् अस्मिन् दिने वा । **तातः** पिता (काश्यपः कण्वः) **संनिहितः** उपस्थितः **भवेत्** स्यात् ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा की ठिठोली ने औचित्य स्थिति पा ली है जिससे अनसूया भी साथ दे रही है । यह परिहास ही नहीं औचित्य भी है कि शकुन्तला का ब्याह दुष्यन्त से हो जाय, इस निष्कर्ष पर दोनों सखियाँ पहुँच गई हैं, जब तक दुष्यन्त को उन दोनों ने नहीं देखा था, तब तक केवल परिहास था । सखियाँ दोनों—शकुन्तला और दुष्यन्त—के आकार देखती हैं, इससे आशय है कि दोनों के गजब के रूप और परस्पर-योग्यों के मिलन के विषय का निर्णय करती हैं । इसके बाद पछताती हैं कि "ऐसा अवसर हाथ से निकल जा रहा है, काश ! पिता कण्व यहाँ होते और दोनों का व्याह करा देते", यह स्थिति इतनी आगे बढ़ जाती है कि वे शकुन्तला तक से यह बात कह देती हैं । "जनान्तिक" का अर्थ पहले लिखा जा चुका है, यह अंश दुष्यन्त को न सुनने देने के लिये उनकी ओर हथेली कर कहा गया है । आकार का अर्थ न केवल सुन्दर रूप बल्कि मुख पर उभरे हृदय के भाव भी लिया जा सकता है । शकुन्तला और दुष्यन्त के चेहरे पर एक दूसरे की ओर आकर्षण स्पष्ट था जिसे दोनों सखियों ने जान लिया ।

शब्दार्थ—आकार = रूप या मुख पर प्रतिबिम्बित हृदय-भाव (आकाराविङ्गिताकृति—अमरकोष) । सन्निहित = उपस्थित ।

व्युत्पत्ति—आकार = आङ् + कृ + घञ् । विदित्वा = विद् + क्त्वा । संनिहित = सम् + नि + धा + क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—तो क्या होता ?

संस्कृत-टीका—**तत्** तदा । **किम्** । **भवेत्** स्यात् ।

हिन्दी-व्याख्या—कथा के सूत्र को लम्बे कथोपकथन से श्लथ होने देने से रोकने के लिये आधी बात कहकर प्रश्न के द्वारा शेष बात निकलवाई गई है । दोनों सखियों की बात अधूरी होने से शकुन्तला प्रश्न कर उसे पूरी कराती है । प्रश्न शंका होने या बातपूरी तौर पर अज्ञात होने पर किया जाता है । यहाँ शकुन्तला को शंका होती है कि पिता कण्व होते तो स्वागत ठीक तरह करते या मेरा संबंध स्थापित करने का यत्न करते, लगता है, वह बात वाली संभावना को पुष्टि चाहती है । पूरे तौर पर अज्ञात होना भी संभव है, क्यों कि शकुन्तला प्रेम में सुध-बुध खोने की अवस्था में है ।

सख्यौ—इमं जीवितसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि ।
[इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति ।]

शकुन्तला—तुम्हे अवेध । किं हिअए करिअ मन्तेध । ण वो वअणं सुणिस्सं ।
[युवामपेतम् । किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे । न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि ।]

यह अंश भी "जनान्तिक" है ।

शब्दार्थ—ततः=तो ।

व्युत्पत्ति—ऊपर के वाक्य में "यदि" का प्रयोग सखियों ने करके अधूरा वाक्य बनाया था, यदि का संबद्ध (co-relative) शब्द लेकर दूसरा वाक्य आना चाहिये, उसकी रूप-रेखा इस प्रश्न से बनाई गई है, अतः संबद्ध शब्द ततः (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः) आया है; उत्तर में "किम्" को रिक्त स्थान मानकर पूर्ति कर देनी है । चेत् व यदि के अन्य संबद्ध शब्द तत्, तर्हि और तदा हैं, "चेत्" के साथ संबद्ध शब्द नहीं भी देते और वाक्य के अन्त में रखते हैं, "यदि" के साथ भी ऐसा किया जाता है—विशेषतः तब जब "यदि" वाला वाक्य पहले नहीं आता । भविष्यति (लृट्) की जगह उपवाक्यों में भवेत् (विधि-लिङ्) का प्रयोग ध्यान देने-योग्य है ।

हिन्दी अनुवाद—दोनों सखियाँ–इस श्रेष्ठ अतिथि को जीवन के सर्वस्व से (तुमसे=तुमको देकर) भी कृतार्थ करते ।

संस्कृत-टीका—**इमम्** एनम् (दुष्यन्तम्) **जीवितस्य** (स्वस्य) जीवनस्य **सर्वस्वेन** सर्वोत्तम-धनेन (त्वद्रूपेण इति व्यङ्ग्यम्) । **अपि** । **अतिथेः** प्राघुणिकस्य **विशेषम्** (श्रेष्ठम् अतिथिम्) । **कृतार्थम्** कृतकृत्यम् (विवाहेन) । **करिष्यति**=विधास्यति ।

हिन्दी-व्याख्या—"जीवित-सर्वस्व" का अर्थ जीवन का सब कुछ है । इसके दो अर्थ हो सकते हैं :—(१) बड़ी से बड़ी वस्तु देकर खातिर करेंगे व (२) जीवन का सबसे बड़ा धन–शकुन्तला–को दे देंगे । दो अर्थों की संभावना या श्लेष से परिहास, युधिष्ठिर-सत्य या पहेली बहुत सुन्दर बनती है । विशिष्ट अतिथि को सब कुछ दिया जा सकता है; कन्या तक, यह बात यहाँ सुन्दर ढंग से बताई गई है । ऐसी हँसी उस समय उचित और मधुर हो जाती है जब दोनों के हृदय में प्रेम का अविर्भाव चेहरे से ज्ञात हो गया है । कण्व शकुन्तला को प्राणों से भी प्यारी पुत्री रूप में मानते थे । दुष्यन्त भी प्रेम में पग गये हैं, अतः शकुन्तला को पाकर सफल-मनोरथ होंगे, यह "कृतार्थ" शब्द से प्रगट किया गया है ।

यह अंश भी "जनान्तिक" के अन्तर्गत है ।

शब्दार्थ—जीवित=जीवन ।

व्युत्पत्ति—जीवित=जीव्+क्त (नपुंसके भावे क्तः) । विशेष=वि+शिष्+घञ् । कृत=कृ+क्त ।

समास—जीवितस्य सर्वस्वम् जीवितसर्वस्वम् (षष्ठी तत्पुरुष) । अतिथेः विशेषम् अतिथिविशेषम् (षष्ठी तत्पुरुष)]

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—हटो तुम दोनों । कुछ दिल में रखकर (छिपाकर) कहती हो ।

राजा--वयमपि तावद्भवत्योः सखीगतं किमपि पृच्छामः ।

तुम दोनों की बात नहीं सुनूँगी ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **युवाम्** भवत्यौ। **अपेतम्** दूरे गच्छतम्। **किमपि** किञ्चित् वस्तु। **हृदये** अन्तःकरणे। **कृत्वा** निधाय। **मन्त्रयेथे** वदथः। **न**। **युवयोः** भवत्योः। **वचनम्** वाणीम् **श्रोष्यामि** आकर्णयिष्यामि।

हिन्दी व्याख्या—"हटो" का प्रयोग प्यार की झिड़की है; आज भी ऐसा प्रयोग होता है। "सर्वस्व" से शकुन्तला की ओर जो इशारा है, उसे नजर अन्दाज करती हुई भी शकुन्तला नहीं कर पा रही है। दूसरे वाक्य से उसकी प्रतीति और अंतिम (वाक्य) से पुष्टि होती है। यह प्यार की झिड़की सखियों को इसी तरह की बात कहते रहने के लिये दी गई है। शकुन्तला के वचन विपरीत अर्थ देते हैं, पर वही (विपरीतार्थ) शकुन्तला का विवक्षित (इच्छित) भी है।

शब्दार्थ—अपेतम्=दूर हटो। कृत्वा=रखकर, छिपाकर। मन्त्रयेथे=कहती हो।

व्युत्पत्ति—अपेतम्=अप+इ (लोट् लकार मध्यमपुरुष द्विवचन)। कृत्वा=कृ+क्त्वा।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मैं भी जरा आपकी सखी के सम्बन्ध में कुछ पूछूँ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) **वयम्** अहम्। **अपि** (यथा भवत्यौ)। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **भवत्योः** युवयोः। **सखीम्** आलीम् (शकुन्तलाम्) **गतम्** तत्सम्बद्धम्। **किमपि** ईषत्। **पृच्छामः** प्रष्टुं इच्छामः।

हिन्दी व्याख्या—"अपि" से सूचित किया गया है कि आप दोनों मेरे बारे में बहुत पूछ चुकी हैं; अब मैं भी पूछना चाहता हूँ। "गत" का अर्थ "संबद्ध" है। राजा आरंभ में ही बिना विशेष प्रसङ्ग के शकुन्तला के विषय में पूछने लगे जिससे स्पष्ट है कि वे प्रेम की धारा में बह चुके हैं और दाक्षिण्य-वश पूछने वाली अनसूया और साथ-साथ बोलने वाली प्रियंवदा के विषय में कुछ न पूछकर शकुन्तला के बारे में पूछते हैं जो बिलकुल बोलती नहीं। यदि उसके घबड़ा जाने या कुलपति-प्रतिनिधि होने से विशेष ध्यान देने की जरूरत थी तो प्रश्न व्यक्तिगत न होकर सामान्य होना चाहिये था। राजा के दाक्षिण्य का समर्थन इस रूप में किया जा सकता है कि वे बहुत ऊँचे स्तर के हैं और सामान्य स्तर वाले के विषय में बात करने को उस समाज में वरीयता दी जाती है। दाक्षिण्य समर्थन की अपेक्षा प्रेम में बहने का समर्थन विवक्षित है। १।२२ के पूर्व जो "तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये" कहा गया है, उसको कार्यरूप में परिणत करने के लिये यहाँ भूमिका बाँधी गई है।

हिन्दी में "मैं" की जगह हम का प्रयोग ऐसे स्थल पर अस्वाभाविक होने से अनुवाद में छोड़ा गया है।

शब्दार्थ—गत=संबद्ध।

व्युत्पत्ति--गत=गम्+क्त। लोट् की जगह लट् (पृच्छामः) का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

समास--सखीम् गतम् सखीगतम् (द्वितीया-तत्पुरुष)।

सख्यौ—अज्ज अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा। [आर्य अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना।]

राजा—भगवान् काश्यपः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः[1]। इयं च वः सखी तदात्मजेति कथमेतत्।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों सहेलियाँ—श्रीमन्, आपका निवेदन (तो) कृपा-सरीखा है।

संस्कृत-टीका—सख्यौ अनसूया प्रियंवदा च (कथयतः यत्।) आर्य श्रीमन्। अनुग्रहः कृपा। इव तत्तुल्या। इयम् एषा जिज्ञासारूपा। अभ्यर्थना प्रार्थना।

हिन्दी-व्याख्या—"नेकी और पूछ पूछ" कहावत से मिलती-जुलती उक्ति है और वाक्पटुता व्यक्त करती है। बात-चीत का यह ढंग कितना मनोरम है। आशय है कि निवेदन करने की आवश्यकता नहीं है; यदि आप कुछ पूछेंगे तो यह हम-जैसे तुच्छों के ऊपर कृपा होगी।

शब्दार्थ—अनुग्रह = कृपा। अभ्यर्थना = निवेदन।

व्युत्पत्ति—अनुग्रह = अनु + ग्रह + अप्। अभ्यर्थना = अभि + अर्थ् + युच्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—श्रीमान् काश्यप (कण्व) (तो) सतत (आजन्म) ब्रह्मचारी के रूप में ख्यात हैं और आपकी यह सखी उनकी बेटी हैं; यह क्या बात है ?

संस्कृत टीका—राजा नृपः (कथयति यत्)। भगवान् श्रीमान्। काश्यपः कण्वः। शाश्वते ब्रह्मणि ब्रह्मचर्ये। स्थितः विद्यमानः (ब्रह्मचारी इत्यर्थः)। इति एवंरूपेण। प्रकाशः प्रसिद्धः। इयम् एषा किंतु च किंतु (पक्षान्तरे)। वः युष्माकम्। सखी आली। तस्य कण्वस्य आत्मजा औरसी पुत्री। इति इदं भवतीभ्याम् कथितम्। एतत् इदम्। कथम् केन प्रकारेण स्यात्।

हिन्दी-व्याख्या—नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्याह नहीं करता उसकी औरस कन्या कैसे हो सकती है, यह प्रश्न उठाया गया है जो शिष्टता-पूर्वक उठाया जाने से उद्वेजक नहीं है। यही बात निन्दा के स्वर में कही जाती तो अप्रिय होती।

"आत्मजा" का प्रयोग जान बूझ कर किया गया है जिससे तुरन्त पता चल जाय यदि उन्हीं की कन्या हो। इस प्रश्न के साथ प्रेम और मर्यादा का दाँव लगाकर राजा उत्कण्ठित रूप से उत्तर की प्रतीक्षा करते हैं। पहले सोचा था कि कण्व की विजातीय पत्नी से शकुन्तला उत्पन्न हुई होगी; अब उनके ब्रह्मचर्य की चर्चा करते हैं। पूर्व प्रसङ्ग भूल रहे हैं या ब्याह की बात कहने में संकोच करते हैं।

"प्रकाश" शब्द संस्कृत में स्पष्टता और स्पष्ट दोनों अर्थ में आता है। यहाँ स्पष्टता लेने पर "इयम् स्पष्टता अस्ति" वाक्य का अर्थ देगा और "स्पष्ट" लेने से "काश्यप" का विशेषण होगा। "प्रकाशम्" पाठ मानने पर "एति" का विशेषण होकर वाक्य की विशेषता बनायेगा। हिन्दी में यह केवल संज्ञा है, अतः यह अर्थ-परिवर्त्तन ध्यान देने योग्य है।

शब्दार्थ—भगवान् = भग (= ऐश्वर्य) वाला; श्रीमान् (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना)। हिन्दी में "भगवान्" का प्रयोग परमात्मा के लिये

पाठा०—१. प्रकाशम्।

अनसूया--सुणादु अज्जो। अत्थि को वि कोसिओत्ति गोत्तणामहेओ महाप्पहावो राएसी। [शृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।]

ही होता है; यह परिवर्तन ध्यान देने योग्य है। काश्यप=कश्यप में उत्पन्न (कण्व)। शाश्वत=सतत। ब्रह्म=तप (=ब्रह्मचर्य) (ब्रह्म तत्त्वतपोवेदे न द्वयोः पुंसि वेधसि-मेदिनीकोष)। प्रकाश=स्पष्टता; स्पष्ट।

व्युत्पत्ति—भगवान्=भग+मतुप्। काश्यप=कश्यप+अण्। शाश्वत=शश्वत+अण्। स्थित=स्था+क्त। प्रकाश=प्र—काश्+घञ्।

समास—तस्य आत्मजा (षष्ठी तत्पुरुष)।]

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया-श्रीमान् सुनें। कौशिक गोत्र–नाम वाले एक अत्यन्त प्रतापी राजर्षि (ऋषि-तुल्य राजा) हो चुके हैं।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) **शृणोतु** आकर्णयतु। **आर्यः** श्रीमान्। **अस्ति**= आसीत्। **कोऽपि** कश्चित्। **कौशिकः** कुशिकपुत्रः (विश्वामित्रः)। **इति** एवंप्रकारेण **गोत्रस्य** वंशस्य **नामधेयम्** नाम यस्य सः। महान् विशालः प्रभावः प्रतापः यस्य सः **महाप्रभावः राजर्षिः राजा** नृपः **ऋषिः** मुनिः इव।

हिन्दी-व्याख्या—"कौशिक" नाम कुशिक-गोत्र में उत्पन्न सभी व्यक्तियों का हो सकता है, पर विशिष्ट व्यक्ति होने के नाते विश्वामित्र के लिये रूढ़-सा हो गया है। विश्वामित्र ब्रह्मा-पुत्र कुश (या कुशिक) के प्रपौत्र, कुशनाभ के पौत्र और गाधि के पुत्र थे।

ब्रह्मयोनिर्महानासीत् कुशो नाम महातपाः।
अक्लिष्टव्रतधर्मज्ञः सज्जनप्रतिपूजकः॥
स महात्मा कुलीनायां युक्तायां सुमहाबलान्।
वैदर्भ्यां जनयामास चतुरः सदृशान् सुतान्॥
कुशाम्बं कुशनाभं च अमूर्तरजसं वसुम्। (वाल्मीकिरामायण,
कस्यचित्त्वथ कालस्य कुशनाभस्य धीमतः। बालकाण्ड, सर्ग ३२)
जज्ञे परमधर्मिष्ठो गाधिरित्येव नामतः॥
स पिता मम काकुत्स्थः गाधिः परमधार्मिकः।
कुशवंशप्रसूतोऽस्ति कौशिको रघुनन्दन॥ (वही, सर्ग ३४)

सर्ग ५७।१८ से १९ में भी यही वर्णन आता है।

विष्णुपुराण में कुशनाभ की जगह कुशाम्ब नाम आया है। महाभारत [आदिपर्व ७४।६९ के बाद] दाक्षिणात्य पाठ से रामायण का अनुसरण किया है पर एक जगह यह (कुशनाभ) नाम हटाकर एक पीढ़ी समाप्त कर दी है जिससे विश्वामित्र कुशिक के पौत्र हो जाते हैं—

कान्यकुब्जे महानासीत् पार्थिवो भरतर्षभ।
गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः॥

राजा—अस्ति । श्रूयते ।

अनसूया—तं ओ पिअसहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा। [तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ। उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तात-काश्यपोऽस्याः पिता।]

तस्य धर्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः॥

(ए. बी. गजेन्द्रगड़कर के अनुसार महाभारत, आदि पर्व, अध्याय, १९१)

शब्दार्थ—कौशिक = कुशिक वंश में उत्पन्न (विश्वामित्र)। गोत्रनामधेय = गोत्र से पड़े नाम वाला ("अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्" के अनुसार पुत्र के बाद की पौत्र आदि अक्सर पीढ़ियाँ गोत्र कहलाती हैं।

व्युत्पत्ति—कौशिक = कुशिक + अण्। नामधेय = नाम + धेय (स्वार्थे)। भाव = भू + घञ् (इसके बाद "प्र" जुटता है)।

समास—गोत्र (कृतम्) नामधेयम् यस्य सः गोत्रनामधेयः (बहुव्रीहि)। महान् प्रभावः यस्य सः (बहुव्रीहि) और कर्मधारय के प्रथम पद के रूप में "महत्" शब्द "महा" हो जाता है। प्रकृष्टः भावः यस्य सः प्रभावः (बहुव्रीहि)। राजा च असौ ऋषिः च (कर्मधारयः)।

आन्महतः समानाधिकरण्य-जातीययोः—अष्टाध्यायी ६।३।४२)।

हिन्दी-अनुवाद—थे। सुना है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्) अस्ति आसीत्। (इति) श्रूयते श्रुतः (मया)।

हिन्दी-व्याख्या—राजा ने यहाँ हुंकारी भरकर कथा को ध्यान से सुनना प्रदर्शित किया है, "अस्ति" के उद्धरण से "हाँ" अर्थ पर ध्यान देना चाहिये। राजा कथा से परिचित हैं; विश्वामित्र का महाप्रभाव-युक्त होना प्रसिद्ध है। तप से राजर्षि से ब्रह्मर्षि होना, शुनःशेप की रक्षा वरुण से करना, त्रिशंकु को मानव-शरीर से स्वर्ग भेजना और नई सृष्टि रचना उनके प्रभाव के उदाहरण हैं।

हिन्दी अनुवाद—विदित हो कि हम दोनों की प्यारी सहेली (शकुन्तला) के वे ही पिता हैं। त्याग दी गई इसके शरीर के—पालनादि के कारण पिता काश्यप इसके पिता हैं।

संस्कृत-टीका—तम् विश्वामित्रम्। आवयोः नौ। प्रियायाः स्निग्धायाः सख्याः आल्याः। प्रभवम् पितरम्। अवगच्छ जानीहि। उज्झितायाः त्यक्तायाः (शकुन्तलायाः) शरीरस्य देहस्य संवर्धनादिभिः पालनप्रभृतिकृत्यैः, तातः पिता काश्यपः कण्वः अस्याः (शकुन्तलायाः) पिता तातः।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ शकुन्तला के वास्तविक जन्म-वृत्तान्त का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इससे पता चलता है कि राजर्षि विश्वामित्र ने जन्म के बाद छोड़ दिया था, कण्व ने पाकर पाला-पोसा जिससे पिता कहलाये, केवल वृद्ध या कुलपति होने के कारण पिता नहीं है।

महाभारत (आदि पर्व ९३। २० से २४) में शकुन्तों (पक्षियों) से घिरी हुई शकुन्तला लेटी हुई कण्व को मिलने तथा प्राण-दाता और अन्न-दाता को भी पिता बताया गया है।

राजा—उज्झितशब्देन जनितं मे कौतूहलम्। आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि।

उपस्प्रष्टुं गतश्चाहमपश्यं शयितामिमाम्।
निर्जने विपिने रम्ये शकुन्तैः परिवारिताम्।
आनयित्वा ततश्चैनां दुहितृत्वे न्यवेशयम्।
... ...
शरीरकृत् प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते।
क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने॥

"त्रयोऽप्युक्ताः" तथा "शासने" की जगह "त्रयः प्रोक्ताः" और "साधनाः" पाठ भी मिलता है। ५ और ७ पिता भी कहे गये हैं तथा पोषक को भी पिता माना गया है।

अन्नदाता भयत्राता यस्य कन्या विवाहिता।
जनयितोपनेता च पञ्चैते पितरः स्मृताः॥
कन्यादातान्नदाता च ज्ञानदाताभयप्रदः।
जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठभ्राता च पितरः स्मृताः॥

स पिता यस्तु पोषकः। सभी उक्तियों में पोषण-कर्ता (अन्न-दाता) को पिता कहा गया है। विनीत बनाने वाले, रक्षण करने वाले, भरण-पोषण करने वाले और जन्म हेतु को परोक्षरूप से पिता कहा गया है—तेनास लोकः पितृमान् विनेत्रा (रघुवंश १४।२३)।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तेषां केवलं जन्महेतवः॥ (रघुवंश १।२४)

"आदि से रक्षण और ज्ञान-दान लेकर बहु-वचन की संगति दिखाई जा सकती है। यों व्युत्पत्ति के अनुसार "रक्षण करने वाला" अर्थ "पिता" शब्द से निकलता है।

शब्दार्थ—प्रभव=उत्पत्ति-कारण (स्याज्जन्महेतुः प्रभवः—शाश्वत कोष) उज्झिता= छोड़ी हुई।

व्युत्पत्ति—प्रभव=प्र+भू+अप्। "गम्" से "अव" उपसर्ग लगने पर "जानना" अर्थ होता है। इसी तरह उप, आ और उषा उपसर्ग लगने से आना या लौटना और "वि" व "निर" लगने से क्रमशः "विशेष रूप से जाना (बीतना)" व "निकलना" अर्थ निकलता है। उज्झित=उज्झ्+क्त। संवर्धन=सम्+वृध्+ल्युट्। पिता=पा+तृच्।

समास—प्रिया च सा सखी च प्रियसखी तस्याः प्रियसख्याः (कर्मधारय)। शरीरस्य सम्वर्धनम् (षष्ठी तत्पुरुष) आदिः येषां (बहुव्रीहि) तैः शरीर-सम्वर्धनादिभिः। तातः च सः काश्यपः च तातकाश्यपः (कर्मधारय)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—"उज्झित" (छोड़ी गई) शब्द ने मुझमें उत्सुकता उत्पन्न कर दी है। आरम्भ से सुनना चाहता हूँ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्)। **उज्झितशब्देन** उज्झिता (त्यक्ता) इति पदेन **जनितम्** उत्पादितम्। मे मम (मनसि)। **कौतूहलम्** जिज्ञासा (केन कस्मात् कुत्र च उज्झिता

अनसूया—सुणादु अज्जो पुरा[1] किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किंवि जातसङ्केहिं देवेहिं मेणआ-णाम अच्छरा पेसिदा णिअमविग्घकालिणी।
[शृणोत्वार्यः। पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।]

का माता। सा क्व गता इत्येवमादि) **आमूलात्** आरम्भात्। **श्रोतुम्** आकर्णयितुम्। **इच्छामि** कामये।

हिन्दी-व्याख्या—अनसूया ने कथा इतने संक्षेप में दे दी है कि उत्सुकता स्वाभाविक है। विश्वामित्र जैसे प्रतापी राजा और ऋषि से संबद्ध होने से कथा का महत्त्व तो था ही प्रिय-जन-शकुन्तला के विषय में होने से उसको सुने बिना रहा न जाना स्वाभाविक है। प्रश्नों से कथा निकाली गई है जिससे रोचकतर हो गई है, शिथिलता नहीं आने पाई है।

शब्दार्थ—आ = से। मूल = आरम्भ।

व्युत्पत्ति—जनित = जन् + णिच् + क्त। "मूलात्" की पञ्चमी "आ" के कारण है (पञ्चम्यपाङ्परिभिः—अष्टाध्यायी २।३।१०)। श्रोतुम् = श्रु + तुमुन्।

हिन्दी-अनुवाद—श्रीमान् सुनें। सुना जाता है कि पहले कभी उन राजर्षि के प्रबल तपस्या में लगे रहने पर कुछ शंकित होकर देवताओं ने विघ्नकारी मेनका-नामक अप्सरा भेजी थी।

संस्कृत-टीका—**शृणोतु** आकर्णयतु। **आर्यः** श्रीमान्। **पुरा** प्राचीनकाले। **किल** (ऐतिह्ये) **तस्य** उक्तस्य। **राजर्षेः** नृपस्य च मुनेः च। **उग्रे** उत्कटे। **तपसि** तपस्यायाम्। **वर्तमानस्य** विद्यमानस्य (आचरतः इत्यर्थः)। **किमपि** यत् किमपि। जाता उत्पन्ना **शङ्का** भयम् येषाम् तैः जातशङ्कैः **देवैः** अमरैः। **मेनका**। **नाम** निश्चयेन। **अप्सराः** स्वर्गवामा। **प्रेषिता** प्रहिता। **नियमे** तपसि **विघ्नम्** बाधाम् करोति इति **विघ्नकारिणी**।

हिन्दी व्याख्या—व्युत्पत्ति के अनुसार जल में चलने वाली या उससे उत्पन्न होने वाली को अप्सरा कहते हैं। पहले यह जल-देवता मानी जाती थी। कालान्तर में स्वर्ग की वेश्या, इन्द्र के दरबार की नर्तकी, बहुत सुन्दर और गान व नृत्य में निपुण मानी जाने लगी। इनकी संख्या अनेक है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के तप नष्ट करने या अन्य कार्यों की सिद्धि के लिये ये बनाई और भेजी जाती थीं। साधारणतः यह कथा मिलती है कि किसी उग्र तपस्वी के तप से यह डर पाकर कि कहीं यह इन्द्र-पद माँगकर मुझे च्युत न कर दे, इन्द्र तप से च्युत करने के लिये तपस्वी के पास कोई अप्सरा भेज देते हैं। अप्सरा सदा युवती, सन्तान को अपने साथ स्वर्ग न ले जाने वाली और एक ही व्यक्ति की पीढ़ियों के कई व्यक्तियों के प्रति अनुरक्त देखी जाती है। वाल्मीकि के अनुसार जल-मथन से उत्पन्न रस से श्रेष्ठ स्त्रियाँ पैदा हुई वे अप्सरायें कहलाई—

अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद्वरस्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्॥ (रामायण बालकाण्ड ४५।३३)

पाठा०—१. गौतमीतीरे (अधिक)।

राजा—अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम् ।

व्यास के अनुसार इनकी उत्पत्ति कश्यप और अरिष्टा से हुई है—

इमं त्वप्सरसां वंशं विदितं पुण्यलक्षणम् ।
अरिष्टासूत सुभगा देवी देवर्षितः पुरा ॥ महाभारत (आदि-पर्व ४६।४६)

महाभारत में इस कथा के प्रसङ्ग से उर्वशी, पूर्वचित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची में से मेनका को सर्व श्रेष्ठ और ब्रह्म-पुत्री कहा गया है—

उर्वशी पूर्वचित्तिश्च सहजन्या च मेनका ।
विश्वाची च घृताची च षडेवाप्सरसां वराः ॥
दिवः सम्प्राप्य जगतीं विश्वामित्रादजीजनत् (१।७४।६८–६९)

बाण भट्ट ने कादम्बरी में अप्सराओं के १४ कुलों का मनोहर वर्णन किया है देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों और अन्य जातियों में अप्सरायें मिलती हैं और ब्याह करती हैं। कहीं-कहीं इनका प्रेम निश्छल और मनुज कन्याओं जैसा भी देखा जाता है। अप्सराओं के लुभाने पर बड़े से बड़े ऋषि तपोवन के अनुशासन से च्युत होकर उनके वश में हो जाते हैं। अर्जुन की तरह विरले हैं जो वश में न किये जा सके।

यहाँ इन्द्र की जगह देवताओं के भयभीत होने का वर्णन आया है; यह स्वामी इन्द्र के प्रति सहानुभूति प्रतीत होती है।

शब्दार्थ—किल=परम्परा से सुना जाता है (वार्त्तासंभाव्ययोः किल—अमरकोष)। उग्र=उत्कट (उग्रः शूद्रासुते क्षत्रात्श्रीकण्ठे चोत्कटेऽपि च—विश्वकोष)। जातशङ्क=जिसे शङ्का हो गई है।

व्युत्पत्ति—"आर्य" संबोधन वाक्य के अन्त में है; अंग्रेजी का "सर" (sir) भी कभी-कभी ऐसे आता है। वर्त्तमान=वृत्+शानच् (इस शब्द का सम्बन्ध विघ्न से है जो अंत में रखा गया है; बातचीत में ऐसे प्रयोग होते हैं; यह ध्यान देने योग्य है)। तप में वर्तमान का अर्थ "तप कर रहे हैं"; यह मुहावरा है। जात=जन्+क्त। "अप्सराः" एक-वचन है; इसका प्रयोग ज्यादातर बहुवचन में होता है (आपः सुमनसो वर्षा अप्सराः सिकताः समाः। एते स्त्रियां बहुत्वे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरत्रयम्—अमरकोष)। विक्रमोर्वशीय (५.१) में कालिदास ने "अनप्सरेव प्रतिभासि" में आकारान्त "अप्सरा" शब्द का प्रयोग किया है। प्रेषिता=प्र+इष्+णिच्+क्त। विघ्नकारिणी=विघ्न+कृ+णिनि।

समास—राजा च सः ऋषिः च राजर्षिः (कर्मधारय)। जाता शङ्का येषाम् तैः जातशङ्कैः (बहुव्रीहि)। नियमस्य विघ्नः नियमविघ्नः (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—यह देवताओं का दूसरे की समाधि से डरना है।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्)। **अस्ति** भवति। **एतत्** इदम् पूर्वोक्तम् **अन्यस्य** परस्य **समाधेः** तपसः भीरुत्वम् भीतता। **देवानाम्** सुराणाम् (यत् ते विघ्नमाचरन्ति)।

अनसूया—तदो वसन्तोदारसमए से उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ [ततो वसन्तोदारसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं प्रेक्ष्य] (अर्धोक्ते लज्जया विरमति)।

हिन्दी-व्याख्या—राजा समर्थन कर यह व्यक्त करते हैं कि मैं रुचि ले रहा हूँ। इस हुँकारी से कहने वाले को प्रोत्साहन मिलता है।

समाधि का सामान्य अर्थ तप है; विशेष अर्थ पारिभाषिक होने पर है; समाधि योग की चरम—आठवीं अवस्था है जिसमें परमात्मा में अपने को विलीन कर दिया जाता है:—

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि (योगसूत्र २।२६)।

व्युत्पत्ति—समाधि=सम्+आ+धा+कि (यह शब्द संस्कृत में पुंलिङ्ग होते हुए भी हिन्दी में इकारान्त के कारण स्त्रीलिङ्ग मान लिया गया है)। भीरुत्व=भीरु+त्व (किसी शब्द से "त्व" लगाने पर जाति-वाचक शब्द बनता है, विशेषण से लगने पर विशेषता बताता है और हमेशा नपुंसक-लिङ्ग होता है)।

समास—अन्यस्य समाधेः (षष्ठी तत्पुरुष) भीरुत्वम् (पञ्चमी तत्पुरुष) अन्यसमाधिभीरुत्वम्।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—फिर वसन्त के श्रेष्ठ समय में उसका उन्मादक रूप देखकर (आधा कहे जाने पर लाज से रुकती है)।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। ततः तदनन्तरम्। **वसन्तस्य** मधोः। **उदारे** श्रेष्ठे **समये** काले। **तस्याः** (मेनकायाः)। **उन्मादयितृकम्** उन्मादकम्। **रूपम्** सौन्दर्यम्। **प्रेक्ष्य** दृष्ट्वा। (**अर्धे** अंशमात्रे। **उक्ते** कथिते। **लज्जया** त्रपया। **विरमति** तूष्णीम् भवति।)

हिन्दी-व्याख्या—कुमारी, तापस कन्या, अनसूया आगे लज्जा के कारण नहीं कह पा रही है। आगे की कथा में विश्वामित्र का मेनका पर आसक्त होना और फिर शकुन्तला का जन्म है। कवि तपोवन की भोली कन्या के मुख से श्रृंगारिक वर्णन करा देता तो अस्वाभाविक होता। यह पूरी कथा महाभारत आदि पर्व अध्याय ६८-७४ में आई है। प्रो० बी० गजेन्द्र गडकर ने अध्याय ९२-९३ कहा है। महाभारत में मेनका ने काम और पवन को सहायता के लिये इन्द्र से माँगा, जब उन्होंने तप-भंग का काम मेनका को सौंपा। पवन ने मेनका की इच्छानुसार ऋषि के सामने मेनका को विवस्त्र कर दिया; ऋषि ने उसे बुलाया। हिमालय की चोटी पर मालिनी नदी के किनारे नव-जात शकुन्तला को छोड़कर मेनका तत्काल इन्द्र-लोक चली गई। रामायण (बाल-काण्ड ६३) में मेनका के १० वर्ष कुटी में रहकर ऋषि-द्वारा परित्यक्त होने की चर्चा है। ऋषि तप के लिये उसे छोड़कर अन्यत्र चले गये। रामायण में शकुन्तला-जन्म का वृत्तान्त उस अवधि में नहीं प्राप्त होता।

संस्कृत छाया में "वसन्तावतारसमये" या टीकाकार राघव-भट्ट के अनुसार उदारवसन्तसमये भी ठीक है। "उदार" विशेषण षष्ठी तत्पुरुष समास के बीच में न आना ही अधिक उचित है। प्राकृत में पूर्व निपात होता है जो हिन्दी में भी पाया जाता है।

राजा—परस्ताज्ज्ञायत एव । सर्वथाप्सरःसंभवैषा ।

अनसूया—अहइं । [अथ किम् ।]

कालिदास और उनके पात्र को शिष्टता दर्शनीय है। महाभारत में तो उक्त शृंगारिक घटना पुत्री युवती शकुन्तला के ही मुँह से दुष्यन्त के प्रति कहलाई गई है। कालिदास की यह विशेषता है कि उन्होंने कथा को अपने युग के सुसंस्कृत और हृदयहर परिवेश में रखकर प्रस्तुत किया है।

शब्दार्थ—वसन्तोदारसमये=वसंत के श्रेष्ठ समय में, उन्मादयितृक=उन्मादक। अर्धोक्ते= आधा कहे जाने पर।

व्युत्पत्ति—उदार=उद्+ऋ+घञ्। उन्मादयितृक=उद्+मद+णिच्+तृन्+क। प्रेक्ष्य= प्र+ईक्ष्+ल्यप्। उक्त=वच्+क्त। "विरमति" में "वि"उपसर्ग लगाने से "रम्" धातु परस्मैपद हो गई है।

समास—वसन्तेन उदारः वसन्तोदारः (तृतीया तत्पुरुष) सः च समयः च वसन्तोदारसमयः तस्मिन् वसन्तोदारसमये (कर्मधारय)। अर्द्धम् च तत् उक्तम् च अर्द्धोक्तम् (कर्मधारय)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—बाद का वृत्तान्त ज्ञात ही है। यह सर्वथा अप्सरा-पुत्री है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्) **परस्तात्** परम्। **ज्ञायते** बुध्यते। **एव। सर्वथा** सर्वेण प्रकारेण। **अप्सराः** स्वर्वामा मेनका **संभवः** उत्पत्तिस्थानम् यस्याः तादृशो। **एषा**—इयम् निकटस्था शकुन्तला।

हिन्दीव्याख्या—राजा संकोच को समझते हुये सँभालते हैं—आगे की घटना विदित हो गई कि विश्वामित्र और मेनका से शकुन्तला पैदा हुई। अलौकिक रूप के परिप्रेक्ष्य में शकुन्तला का अप्सरा-कन्या होना ही युक्ति-संगत है जिसके लिये दूसरा वाक्य दुष्यन्त ने कहा है।

शब्दार्थ—परस्तात्=बाद की बात। अप्सरःसंभवा=जिसका उत्पत्ति स्थान अप्सरा है।

व्युत्पत्ति—परस्तात्=पर+अस्ताति।

समास—अप्सराः संभवः यस्याः सा अप्सरःसंभवा (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—जी हाँ।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। **अथ किम्** बाढम्।

हिन्दी-व्याख्या—राजा ने बाद की कथा अपने-आप समझ ली; गलती नहीं की; अनसूया इसका समर्थन करती है।

समर्थन सूचक "हाँ" के लिये संस्कृत में इसके अतिरिक्त आम्, ओम्, बाढम्, तथा और एवम् शब्द हैं जो संस्कृत की समर्थता का प्रमाण है। अन्य प्रचलित शब्दों में प्रायः सभी के बहुत-से एक से एक बढ़कर पर्याय-वाची और अन्वर्थ शब्द मिलते हैं, जब कि अन्य भाषाओं में कभी कभी एक भी नहीं मिलता और मिला भी तो दूसरी भाषा से अपनाया हुआ होता है। इस विशेषता से संस्कृत भाषा छन्दोबद्धता के इतने अनुकूल है कि वैद्यक, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, दर्शन आदि सभी शास्त्र श्लोक बद्ध मिलते हैं।

राजा—उपपद्यते ।

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ २५ ॥

"अथ किम्" का अनुवाद "और क्या" कर्ण-कटु और असभ्यता-सूचक है, जहाँ वैठे, वहीं ठीक है ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—युक्ति-युक्त है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्) । **उपपद्यते** युक्तियुक्तम् (अस्ति) ।

हिन्दी-व्याख्या—"को शोभा देता है" "पर फबता है" आदि अर्थों में सप्तमी के साथ "उपपद्यते" का प्रयोग होता है ।

हिन्दी अनुवाद—भला कैसे मानुषियों में इस सौन्दर्य की (उत्पत्ति हो सकती है । प्रकाश से चञ्चल ज्योति (बिजली) पृथ्वी-तल से उदित नहीं होती ।

अन्वय—कथम् वा मानुषीषु अस्य रूपस्य संभवः स्यात् । प्रभातरलम् ज्योतिः वसुधातलात् न उदेति ।

संस्कृत टीका—कथम् केन प्रकारेण । **वा मानुषीषु** मनुजस्त्रीषु । **अस्य** एतस्य (शकुन्तलालभ्यस्य) । **रूपस्य** सौन्दर्यस्य । **संभवः** उत्पत्तिः । **स्यात्** भवेत् । **प्रभाभिः** दीप्तिभिः **तरलम्** चपलम् । **ज्योतिः** प्रकाशः । **वसुधायाः** पृथ्व्याः । **तलात्** पृष्ठात् । **न उदेति** जायते ।

हिन्दी-व्याख्या—पृथ्वी पर किसी स्त्री के वैसी सुन्दर न होने के कारण स्वर्ग से संबन्ध जोड़ा गया है । मां का रूप पुत्री में भी आता है, अमानुषी माँ में यह अप्रतिम रूप था जो पुत्री में आया है यह भाव है । मानुषी होकर भी शकुन्तला ने ऐसा रूप पाया है, अतः यह किसी विशेष उद्गम (अप्सरा) से आया है, यह निश्चित है, जिस तरह बिजली पृथ्वी की नहीं है, दूसरी जगह से यहाँ आती है ।

स्त्री की विद्युत् से उपमा देना कालिदास को प्रिय है :

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः (मेघ । उत्तर १) । विद्युत् प्रिया न ममोर्वशी (विक्रमोर्वशी) ।

राघव भट्ट ने चन्द्रमा आदि के लिये "प्रभातरल ज्योति" मानी है, सही होकर भी यहाँ अप्रासंगिक है ।

शब्दार्थ—मानुषी—मनुष्य जाति की स्त्री । संभव=जन्म । प्रभातरल=दीप्ति से चंचल ।

व्युत्पत्ति—मानुषी=मनु+अञ्+ङीप् । संभव=सम्+भू+अप् ।

समास—प्रभाभिः तरलम् (तृतीया तत्पुरुष) । वसुधायाः तलात् वसुधातलात् (षष्ठी तत्पुरुष) ।

छन्द—श्लोक (अनुष्टुप्) जिसका लक्षण १।५ में देखा जा सकता है ।

अलङ्कार—प्रतिवस्तूपमा ।

(शकुन्तलाधोमुखी तिष्ठति ।)

राजा—(आत्मगतम्) लब्धावकाशो।मे मनोरथः । किम्[1] तु सख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः ।

हिन्दी-अनुवाद—(शकुन्तला मुँह नीचा कर लेती है ।)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । **अधः** नीचैः **मुखम्** वदनम् यस्याः तादृशी (सती) । **तिष्ठति** आस्ते ।

हिन्दी-व्याख्या—अपने रूप की प्रशंसा सुनकर सिर नीचा कर लेना शकुन्तला का उत्तम नायिका होना सूचित करता है। कुछ न बोलकर सिर झुकाने का अर्थ है संकुचित होना । अपनी प्रशंसा पर "लज्जित न करें" कहना या परिहास में "वह तारीफ भी क्या जो मुँह पर न की जाय" कहकर कहने वाले को ही लज्जित करना भी देखा जाता है। अच्छे लोग मुँह पर प्रशंसा होने पर नाराज हो जाते हैं, पर कभी-कभी उत्साहित करने, बेवकूफ बनाकर स्वार्थ साधने के लिए इसकी जरूरत पड़ती है। कभी-कभी श्रद्धा, स्नेह आदि के कारण बिना तारीफ किये नहीं रहा जाता–उस समय वक्ता औचित्य-अनौचित्य पर ध्यान देने की स्थिति में नहीं रहता। श्रेष्ठ प्रशंसा पीठ पीछे की जाती है और वही, प्रशंसा विषय के लिये—विशेषतः जब उसे सुनने का सौभाग्य अजाने ही प्राप्त हो जाय—सौभाग्य है, पर ऐसी प्रशंसा और श्रवण दुर्लभ और पात्र को ही कुछ सुलभ होती है। स्वप्नवासवदत्त (अङ्क ४।६) में वासवदत्ता की प्रशंसा राजा करते हैं जब कि उसका मर जाना प्रसिद्ध है, पर यह सुनकर कहती है—'अहो प्रियं नाम ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।'

शकुन्तला जैसे शान्त स्त्री-पात्र के लिये यह स्थिति बहुत रम्य है ।

समास—अधः मुखम् यस्याः सा अधोमुखी (बहुव्रीहि) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (मन ही मन)—मेरे मनोरथ को गुञ्जाइश हो गई । लेकिन, सखी की हँसी में कही हुई पति-प्रार्थना ने मेरे मन को दुविधाग्रस्त कर विह्वल कर दिया है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (**आत्मनि** स्वस्मिन् **गतम्** प्राप्तम् **स्वगतम्**) (कथयति यत्) । **लब्धः** प्राप्तः **अवकाशः** सफलतावसरः (स्थितिः) येन तादृशः (जातः) । **मे** मम । **मनोरथः** इच्छा । **किम् तु** परम् । **सख्याः** प्रियंवदायाः । **परिहासाय** विनोदाय **उदाहृताम्** कथिताम् (अनुरूपं वरं लभेयेति) । **वराय** पत्ये । **प्रार्थनाम्** इच्छाम् । **श्रुत्वा** निशम्य । **धृतः** अङ्गीकृतः **द्वैधीभावः** संशयदोलारूढता येन अतः **कातरम्** व्याकुलम् । **मे** मम । **मनः** मानसम् ।

हिन्दी व्याख्या—राजा ने अन्तःकरण पर विश्वास करके भी तत्त्वान्वेषण से जो पुष्टि करनी चाही थी, वह न केवल पुष्ट हुई है, बल्कि चाहे से भी ज्यादा उत्साहप्रद सूचना मिली है कि शकुन्तला ब्रह्मा और अप्सरा के कुल से सम्बद्ध है। इतना होने पर भी अभी वे शङ्का-ग्रस्त हैं कि शकुन्तला ब्याह करेगी या नहीं, प्रियंवदा की बात केवल हँसी हो सकती है ।

पाठा०—१–० (वाक्य ही नहीं है) ।

प्रियंवदा—(सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा) **पुणो वि वत्तुकामो विअ अज्जो।** [पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः ।]

परिहास में झूठ बात भी कही जा सकती है। ऐसा वर्णन बाद में भी आता है।

परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः। (२।१८)।

परिहास कभी कभी सत्य बात पर भी आधृत होता है; हो सकता है शकुन्तला के ब्याह की चर्चा होने की भूमिका को लक्ष्य कर प्रियंवदा कह रही हो, यह सोचकर राजा आशान्वित हो जाते हैं, पर परिहास में झूठ कहा होगा, सोचकर दुखी हो जाते हैं, यही द्वैधीभाव है, अभी किसी पक्ष की ओर ज्यादा झुकाव नहीं है। यों मनुष्य आशावादी होता है, वह अपने पक्ष की बात का समर्थन कर ही आशा करता है, भले हीं प्रिय के प्रति अनिष्ट की आशंका स्वाभाविक हो जबकि सभी को दुःख का अनुभव होता है। अनिष्ट की आशंका अनुचित होते हुए भी बरबस हृदय में घर करती है—

पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥

(स्वप्नवासवदत्त ५।२)

अन्तिम वाक्य को क्षेपक मानते हुये शारदारञ्जन राय ने बहुत विस्तार से लिखा है, पर ऐसे अवसरों पर तर्क से युक्ति-युक्तता का निर्धारण नहीं हो सकता जहाँ दुष्यन्त की मनःस्थिति चंचलता की है।

शब्दार्थ—अवकाश=सफलता का मौका। उदाहृता=कही हुई। प्रार्थना=कामना। द्वैधीभाव=दुविधा। कातर=उद्विग्न।

व्युत्पत्ति—गत=गम्+क्त। लब्ध=लभ्+क्त। अवकाश=अव+काश्+घञ्। परिहास=परि+हस्+घञ्। उदाहृत=उद्+आ+हृ+क्त। प्रार्थना=प्र+अर्थ+ल्युट्। श्रुत्वा=श्रु+क्त्वा। धृत=धृ+क्त। द्वैधीभाव=द्वि+धमुञ् च्वि+भू+घञ्।

समास—आत्मनि गतम् आत्मगतम् (सप्तमी तत्पुरुष)। लब्धः अवकाशः येन सः लब्धावकाशः (बहुव्रीहि)। परिहासेन उदाहृताम् परिहासोदाहृताम् (तृतीया तत्पुरुष) धृतः द्वैधीभावः येन तत् धृतद्वैधीभावम् (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (मुस्कान के साथ शकुन्तला को देखकर नायक दुष्यन्त—की ओर मुँह कर) [श्रीमान् फिर बोलना चाहते-से हैं।]

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (**स्मितेन** विहासेन सह यथा स्यात् तथा। **शकुन्तलाम्**। **विलोक्य** दृष्ट्वा। **नायकस्य** नाटकनेतुः दुष्यन्तस्य **अभिमुखी** वदननिहितदृष्टिः। **भूत्वा**। **पुनः** भूयः **अपि**। **वक्तुम्** वदितुम् **कामः** इच्छा यस्य सः **इव** प्रतीयते। **आर्यः** श्रीमान्।

हिन्दी व्याख्या—प्रियंवदा ने फिर चिढ़ाना शुरू कर दिया है। शकुन्तला मुँह पर की गई तारीफ पर लज्जित हो रही है, तारीफ और कराई जाय जिससे यह व्यग्रता अनुभव करे और हम लोगों के सामने शकुन्तला और दुष्यन्त की प्रेम-प्रगति घटित हो, इस दृष्टि से प्रियंवदा शकुन्तला की ओर देखकर कहती है। देखने का आशय है कि तुमको तंग करने के लिये ही कह रही हूँ।

(शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति ।)

राजा—सम्यगुपलक्षितं भवत्या । अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्।

शब्दार्थ—स्मित=मुस्कान । अभिमुखी=सामने मुँह की हुई । वक्तुकाम=कहने के इच्छुक ।

व्युत्पत्ति—स्मित=स्मि+क्त । विलोक्य=वि+लोक्=ल्यप् । भूत्वा=भू+क्त्वा । वक्तुकाम=वच्+तुमुन् (लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि) ।

समास—स्मितेन सह सस्मितम् यथा स्यात्तथा (बहुब्रीहि) (नायकस्य अभिमुखी) (षष्ठी तत्पुरुष) । वक्तुम् कामः यस्य सः वक्तुकामः (बहुब्रीहि) ।

हिन्दी-अनुवाद—(शकुन्तला सखी को उँगली से धमकाती है ।)

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** । **सखीम्** आलिम् प्रियंवदाम् । **अङ्गुल्या** तर्जन्या । **तर्जयति** भर्त्सयति ।

हिन्दी व्याख्या—प्रियंवदा के मजाक का अनुकूल असर शकुन्तला पर पड़ा और वह चिढ़कर उँगली दिखाकर रोकती है । यह रोकना "तर्जयति"—डराती है—से व्यक्त किया गया है । ऐसे रोकने में प्रायः दाहिने हाथ के अँगूठे के बगल वाली उँगली दिखाई जाती है जिससे उसका नाम ही तर्जनी पड़ गया ।

व्युत्पत्ति—"तर्ज" का प्रयोग अत्मनेपद में होना चाहिये, परस्मैपद के प्रयोग के निम्न कारण दिये जा सकते हैं—

(१) अनुदात्त "इ" (तर्जि) अन्त में रहने पर भी "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" से आत्मनेपद नहीं मानना चाहिये; उसके लिये "ङ" भी होना जरूरी है, अन्यथा "चक्षिङ् बनाने की आवश्यकता न पड़ती ।

(२) चान्द्र व्याकरण के अनुसार सभी धातुएँ उभयपद हैं ।

चन्द्रादयस्तु मन्यन्ते सर्वस्मादुभयं पदम् ।

(मध्वाचार्य के अणु-व्याख्यान-२।१२९ पर जयतीर्थ की सुधा टीका)

(३) "णिच्" लगाकर किसी भी धातु को उभय पद में कर सकते हैं; चाहे प्रेरणार्थकता अभीष्ट हो या नहीं ।

हिन्दी-अनुवाद— राजा–ठीक समझा आपने । शोभन जीवन-चरित सुनने के लालच के कारण मुझे और भी पूछना है ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) । **सम्यक्** तथ्यम् । यथा स्यात् तथा **उपलक्षितम्** निरूपितम् । **भवत्या** त्वया । **अस्ति** विद्यते । **नः** अस्माकम् । **सतः** शोभनस्य (सताम् सुजनानाम् वा) **चरितस्य** जीवनस्य शकुन्तलारूपस्य **श्रवणस्य** आकर्णनस्य **लोभात्** स्पृहायाः **अन्यत्** एतद्व्यतिरिक्तम् । **अपि** । प्रष्टव्यम् जिज्ञासितव्यम् (अस्ति) ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा को सोचता हुआ देखकर प्रियंवदा ने अनुमान लगाया था कि वे कुछ कहना चाहते हैं; यहाँ ... का अर्थ है कहने की तैयारी करना या कहना चाहना ।

प्रियंवदा—अलं विआरिअ। अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो णाम।
[अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।]

राजा सीधे सीधे वह नहीं कर पा रहे हैं जो कहना चाहते हैं, अतः धीरे-धीरे बातें निकलवा रहे हैं। राजा "सच्चरित" कहकर शकुन्तला और उसके माता-पिता का वृत्तान्त शोभन बताते हैं जो प्रशंसा कर मनोऽनुकूल स्थिति उत्पन्न करने के लिये है। औपचारिकता में सज्जनों से बातें करने में प्रशंसा का पुट देना पड़ता है।

शब्दार्थ—उपलक्षित=पहचाना (है)। सच्चरित=अच्छा या अच्छे का जीवन (चरित का अर्थ जीवन और चरित्र का अर्थ चाल चलन है; यह अन्तर ध्यान देने योग्य है)।

व्युत्पत्ति—उपलक्षित=उप+लक्ष्+क्त। चरित=चर्+क्त। श्रवण=श्रु+ल्युट्। लोभ=लुभ्+घञ्। प्रष्टव्य=प्रच्छ्+तव्यत्।

समास—सतः चरितम् सच्चरितम् (षष्ठी तत्पुरुष) सत् च चरितम् सच्चरितम् (कर्मधारय) तस्य श्रवणस्य (षष्ठी तत्पुरुष) लोभात् (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—विचार मत करें। तपस्वी लोगों से, निश्चय ही, पूछने में कोई रुकावट नहीं है।

संस्कृत-टीका—प्रियवंदा (कथयति यत्)। **अलम्** कृतम् (निषेधे)। **विचार्य** विचारणेन (पृच्छामि न वा इति) **अनियन्त्रणः** अनियन्त्रितः **अनुयोगः** प्रश्नः यस्मिन् तादृशः। **तपस्विजनः** तापसलोक। **नाम** निश्चयेन।

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला के निषेध करने पर भी प्रियंवदा नहीं मानती और प्रश्न करने के लिये राजा को प्रोत्साहित करती है। प्रश्न पर नियन्त्रण न होने का आशय है कि तपस्वियों के बारे में सब कुछ पूछा जा सकता है; उन्हें किसी बात का उत्तर देने में संकोच नहीं होगा; उनके पास गोपनीय-नाम को कोई चीज है ही नहीं।

प्रियंवदा विचार का निषेध करती है। उसे विश्वास हो गया है कि राजा इस विचार में मग्न है कि प्रश्न पूछ-पूछकर क्यों तापस-कन्याओं को परेशान करूँ जब कि राजा इस चिन्ता में थे कि अपने मन की बात जानने के लिये किस तरह प्रश्न का क्रम व्यवस्थित किया जाय कि शिष्टाचार ठीक रहे।

शब्दार्थ—अनियन्त्रितानुयोगः=जिनसे अनुयोग (=प्रश्न या पूछना—प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च—अमरकोष) पर नियन्त्रण (रोक) नहीं है।

व्युत्पत्ति—निषेधार्थक "अलम्" के योग में तृतीया या क्त्वा (जिसके स्थान में होने से ल्यप् भी) आता है (अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा)। नियन्त्रण=नि+यन्त्र+युच्। नियन्त्रणा=नि+यन्त्र+युच्+टाप्। अनुयोग=अनु+युज्+घञ्।

समास—अविद्यमानम् नियन्त्रणम् (नियन्त्रणा वा) यस्मिन् सः अनियन्त्रणः (बहुव्रीहि) अनियन्त्रणः अनुयोगः यस्मिन् सः अनियन्त्रणानुयोगः (बहुव्रीहि) तपस्वी च सः जनः च तपस्विजनः (कर्मधारय)

राजा—इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि ।

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्-
व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।
अत्यन्तमेव[1] [2]सदृशेक्षणवल्लभाभि-
राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ॥ २६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—आपकी सहेली के सम्बन्ध में यह जानना चाहता हूँ ।

संस्कृतटीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्)। **इति** एवम् (विवक्षितम्) **सखीम्** आलीम् । **ते** तव । **ज्ञातुम्** बोद्धुम् । **इच्छामि** वाञ्छामि ।

हिन्दी व्याख्या—"इति" का प्रयोग जहाँ बात समाप्त होती है, वहाँ होता है; यहाँ आरंभ में हुआ है । "इस प्रकार" के अर्थ में इसका प्रयोग वाक्य के किसी स्थान पर हो सकता है ।

व्युत्पत्ति—ज्ञातुम् = ज्ञा + तुमुन् ।

हिन्दी अनुवाद—प्रदान (व्याह) तक क्या इन्हें काम-व्यापार के अवरोधक तापसोचित व्रत का सेवन करना होगा ? अथवा क्या हमेशा के लिये वे समान दृष्टि के कारण प्रिय मृगियों के साथ रहेंगी ?

अन्वय—किम् अनया मदनस्य व्यापाररोधि वैखानसम् व्रतम् आप्रदानात् निषेवितव्यम् । आहो अत्यन्तम् एव सदृशेक्षणवल्लभाभिः हरिणाङ्गनाभिः समम् निवत्स्यति ।

संस्कृत-टीका—किम् (प्रश्ने)। **अनया** एतया (शकुन्तलया) **मदनस्य** कामस्य । **व्यापारम्** कृत्यम् रुणद्धि इति **व्यापाररोधि** । **वैखानसम्** तापसोचितम् । **व्रतम्** नियमः । **आ** यावत् । **प्रदानात्** विवाहे वराय प्रदानात् । **निषेवितव्यम्** पालनीयम् । **आहो** यद्वा । **अत्यन्तम्** सर्वकालाय । **एव** (परिभवार्थे । **सदृशाभ्याम्** समानाभ्याम् **ईक्षणाभ्याम्** नेत्राभ्याम् **वल्लभाभिः** प्रियाभिः । **हरिणस्य** मृगस्य **अङ्गनाभिः** प्रियाभिः (हरिणीभिः) । **समम्** सह । **निवत्स्यति** ।

हिन्दी व्याख्या—श्लोक के पूर्वार्ध में थोड़ी अपने लिये गुंजाइश रखी गई है । यदि व्याह तक ही तापस व्रत रखना होगा तब तो व्याह हो सकता है और वह भी शीघ्र ही और यह स्थिति समाप्त की जा सकती है; दूसरा विकल्प अवश्य निराशा-जनक है । आशावादिता की बातें पहले मुँह से निकली हैं, "अति" की बातें अन्त में आती हैं । पूर्वार्ध में मदन-विरोधी कहने से यह दिखाने की चेष्टा है कि तापस-जीवन नीरस जीवन है जो सुख का विरोधी है । उत्तरार्ध में हरिणियों के नेत्रों से शकुन्तला के नेत्रों की तुलना की गई है और थोड़ा यह सकेत देने की कोशिश की गई है कि मनुष्यों को छोड़कर जंगली जानवरों के बीच इतनी सुन्दरता लेकर रहना उचित नहीं है । जंगल में सुन्दर और प्रिय केवल हरिणियाँ हैं; जब कि गृहस्थ जीवन में सुन्दर वस्तुओं की गणना नहीं है ।

"सदृशेक्षणवल्लभाभिः" से "आभिः" को निकाल कर हरिणियों का विशेषण कर देने पर

पाठा—१. मात्म ("मेव"...की जगह) २. मदिरे ("सदृशे" की जगह) ।

प्रियंवदा—अज्ज धम्मचरणे वि परवसो अअं जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो। [आर्य धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः।]

"कर्त्ता" मिल जाता है, अन्यथा अन्वय में कठिनाई होती है, पर तब हरिणियों की प्रिय शकुन्तला अर्थ लगेगा।

यह घटना बहुत प्राचीन है जिसके लिये यम ने कहा है कि पुरा-कल्प में स्त्रियों का मौञ्जी-बन्धन, वेदाध्यापन और सावित्री-वाचन होता था :

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥

हारीत के वचनों से इसकी पुष्टि होती है: उनके अनुसार स्त्रियाँ दो प्रकार की होती हैं जिनमें एक घर में ही रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं और दूसरी ब्याह करती हैं:—

"द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या।"

कभी-कभी तपस्वी से ब्याह भी देखा जाता है; वैसी स्थिति में उत्तरार्ध से यह अर्थ भी निकल सकता है कि क्या यह तपस्वी से ब्याही जाकर हमेशा वन्य-जीवन ही बितायेगी।

दुष्यन्त साँस रोककर उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं, यदि उत्तरार्ध सत्य हुआ तो क्या स्थिति होगी; यह अधीरता "एव" से लक्षित होती है।

शब्दार्थ—वैखानस = तापसोचित। आ = तक। प्रदान = ब्याह (तक)। व्यापाररोधि = कार्य-विरोधी। अत्यन्तम् = हमेशा के लिये। एव = ही (तिरस्कार अर्थ में है—एवौपम्यपरिभवौ—हैम-कोष)। सदृशेक्षणवल्लभ = समान नेत्रों से प्रिय। आहो = अथवा (आहो उताहो किमुत विकल्पे किं किमूत च–अमरकोष)। समम् = साथ (समं सह—अमरकोष)।

व्युत्पत्ति—वैखानस = विखनस + अण्। व्रत = वृ + क्त। प्रदान = प्र + दा + ल्युट्। व्यापार-रोधि = वि + आङ् + पृ + घञ् + रुध् + णिनि। निषेवितव्य = नि + सेव् ("परिनिविभ्यः सेव…" अष्टाध्यायी-सूत्र से सेव् का "स्," "ष" हो गया है।) + तव्यत्। ईक्षण = ईक्ष् + ल्युट् (करणे)। निवत्स्यति = नि + वस् (लृट् प्रथम पुरुष एक वचन)। "समम्" में तृतीया "सहार्थकयोगे तृतीया" से हुई है जिसमें "सह" का अर्थ "पर्याय-वाची शब्दसहित" लगाया जाता है। अङ्गना = अङ्ग + न।

समास—अन्तस्य अत्ययः अत्यन्तम् (अव्ययीभाव)। अतिगतः अन्तः यस्मिन् तत् (यथा स्यात् तथा) अत्यन्तम् (बहुव्रीहि)। सदृशानि च तानि ईक्षणानि च सदृशेक्षणानि (कर्मधारय) ताभ्याम् वल्लभाभिः (तृतीया तत्पुरुष) (सदृशे ईक्षणे यास्याम् ताः सदृशेक्षणाः–बहुव्रीहि–अत एव वल्लभाभिः) सदृशेक्षणवल्लभाभिः। हरिणानाम् अङ्गनाभिः हरिणाङ्गनाभिः (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—वसन्ततिलका जिसका लक्षण १।८ में देखा जा सकता है। **अलङ्कार**—परिकर।

दोष—यहाँ अक्रम दोष है, पूर्वार्ध में कर्म-वाच्य और उत्तरार्ध में कर्तृवाच्य दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—श्रीमन्, धर्म के आचरण (के मामले) में भी यह जन (शकुन्तला) विवश है। (पिता) जी का तो लायक वर को इसे देने का संकल्प है।

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** (कथयति यत्)। **आर्य** श्रीमन्। **धर्मस्य** तपोरूपस्य **चरणे** आचरणे। **अपि** (का कथा विवाहादिकस्य)। **परवशः** विवशः। **अयम्** एषः। **जनः** व्यक्तिः (शकुन्तलारूपा)। **गुरोः** पितुः (कण्वस्य) **पुनः** तु। **अस्याः** एतस्याः (शकुन्तलायाः) **अनुरूपाय** एतद्योग्याय **वराय** पत्ये **प्रदाने** दाने (विवाहे)। **सङ्कल्पः** निश्चयः।

हिन्दी-व्याख्या—धर्मानुष्ठान में स्त्री को स्वतंत्रता होती है कि वह जीवन भर करे या नहीं, पर शकुन्तला को कण्व के निदेश में रहना पड़ता है; कण्व अपने अनुसार चलाते हैं; इच्छा-अनिच्छा नहीं देखते। अनुशासन-प्रिय अभिभावकों में यह स्वाभाविक है और तपस्वियों का अनुशासन प्रिय होना स्वयं सिद्ध है। यदि आप अपने को योग्य समझते हैं तो योग्यता, पद आदि न छिपाकर कण्व से बातें करें या करायें, यह ध्वनि है। राजा के लिये यह आशा-बीज है, अतः उद्भेद-नामक नाट्य-अङ्ग है। 'बीजार्थस्य प्ररोहः स्यादुद्भेदः।' (साहित्य-दर्पण)

प्रियंवदा पिता कण्व के अनुशासन से शंकित है। वह जानती है कि राजा शकुन्तला के लिये अधीर हैं और शकुन्तला राजा के लिये, जैसा कि पहले मुख के हाव भाव से पता चल गया है। कण्व दूर हैं, कहीं दोनों उनकी उपेक्षा कर ब्याह कर डालें और इस त्रुटि पर पिता कण्व नाराज हो जायँ तो रंग में भंग हो जाय। यही स्थिति तब आ सकती है जब दुष्यन्त ब्याह की प्रार्थना करें और शकुन्तला कण्व के डर के मारे इनकार कर दे और फिर दोनों प्रेमियों के बीच मन-मुटाव हो जाय। अधीरता कम करने के लिए भी ऐसे अनुत्साह पूर्ण वचन कहे जाते हैं जिससे धैर्य दृढ़ हो और प्रतीक्षा करने की शक्ति मिले। दूसरी ओर ब्याह की सम्भवता का संकेत कर आशा की किरण भी मिटने न देना बहुत प्रशंसनीय स्थिति उत्पन्न करता है। आप अनुरूप वर हैं ही; जल्दी करने से गड़बड़ी ही होगी; धैर्य रखने पर आपको निश्चित रूप से सफलता मिलेगी, यह भाव निकल सकता है। आप दोनों परस्पर के अनुरूप हैं और ब्याह धर्म-संगत है; फिर भी—इस धर्म के आचरण में भी—शकुन्तला पराधीन है, अतः उससे ब्याह का प्रस्ताव न कर कण्व से करना ठीक होगा, यह सुझाव छिपा कहा जा सकता है।

"अयं जनः" का प्रयोग "मैं" के अर्थ में होता है, यहाँ "इस व्यक्ति" के अर्थ में ही है, यह ध्यान देने का विषय है।

शब्दार्थ—चरण=आचरण। परवश=विवश। गुरु=पिता (जहाँ हिन्दी में इसका अर्थ अध्यापक प्रचलित है, वहाँ संस्कृत में पिता या पूज्य—गुरु जन-प्रचलित है)। अनुरूप=योग्य। प्रदाने=प्रदान (विवाह) का (सप्तमी का प्रयोग ध्यान देने-योग्य है।

व्युत्पत्ति—चरण=चर्+ल्युट्। प्रदान=प्र+दा+ल्युट्। सङ्कल्प=सम् क्लृप्+घञ्)

समास—धर्मस्य चरणे धर्मचरणे (षष्ठी तत्पुरुष)। अनुरूपः च असौ वरः च अनुरूपवरः (कर्मधारय) तस्मै प्रदाने अनुरूपवरप्रदाने (चतुर्थी तत्पुरुष)।

अलङ्कार—उत्तर।

राजा—(आत्मगतम्) न दुरवापेयं खलु प्रार्थना।
भव हृदय साभिलाषं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ॥ २७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मन में)—निश्चय ही यह इच्छा दुर्लभ नहीं है।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (**आत्मगतम्** स्वगतम्)। **न**। **दुरवापा** दुर्लभा। **इयम्** एषा (शकुन्तलाप्राप्तिरूपा)। **खलु** निश्चयेन। **प्रार्थना** इच्छा (इष्टस्य वस्तुनः प्राप्तिः)।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर की उक्ति की अपेक्षा इस उक्ति से "उद्भेद" (नाट्य-अंग) माना जा सकता है, क्योंकि राजा के मन में यहीं से आशाबीज प्रादुर्भूत होता है। "कन्या क्षत्रिय राजा के ग्रहण योग्य ही नहीं स्पृहणीय है, पिता प्रदान के इच्छुक हैं और मैं लेने का इच्छुक, राजा तथा योग्य और सुन्दर युवक होने से पात्र हूँ" यह आशा उत्पन्न हुई है। "दुर्लभ नहीं है" में "नहीं" दुर् (कठिनाई से) का विरोधी होने से आसानी से मिलने योग्य अर्थ देता है; ऐसी स्थिति में राजा का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। दुर्लभ वस्तु के लिये भी उद्योगी अपने पौरुष पर भरोसा रखते हैं; फिर जो दुर्लभ नहीं है, उसकी आशा क्यों न की जाय। विलियम्स ने "प्रार्थना" का सम्बन्ध कण्व (कण्व की प्रार्थना) से जोड़ा है कि मेरे उपस्थित रहने पर उनकी इच्छा पूरी हो जायेगी; यह अर्थ संगत नहीं है। दुष्यन्त को अपनी पड़ी है; वे कण्व की इच्छा की सफलता की बात क्यों सोचेंगे, हास्य रस में इस तरह की बात कही जा सकती है, सामान्य रूप से नहीं। न ऐसा सोचना ऐसे धीरोदात्त नायक के लिये उचित ही है। यदि यह बात मन में न कहकर स्पष्ट कही जाती तो शकुन्तला की प्रशंसा के साथ कण्व के प्रति शुभकामना हो सकती थी कि शकुन्तला-जैसी सुन्दरी को वर मिलने में कितनी देर है और कण्व की प्रार्थना भगवान् आसानी से पूरी करेंगे। वैसी स्थिति में "मैं योग्य वर जब यहीं हूँ" यह परोक्ष संकेत भी हो जाता।

शब्दार्थ—दुरवाप=दुर्लभ।

व्युत्पत्ति—दुरवाप=दुर्+अव+आप्+खल् (ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्)।

समास—आत्मनि गतम् आत्मगतम् (सप्तमी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—हे हृदय, अब सस्पृह रहो (क्योंकि) सन्देह का निर्णय हो गया है। जिसे तुम अग्नि मानते (मानकर डरते) हो, वही यह (शकुन्तला) स्पर्श-योग्य रत्न है।

अन्वयः—हृदय संप्रति साभिलाषम् भव (यतः) सन्देहनिर्णयः जातः। यत् अग्निम् आशङ्कसे तत् स्पर्शक्षमम् रत्नम् (अस्ति)।

संस्कृत-टीका—हृदय (हे मम) अन्तःकरण (सम्बुद्धौ)। **सम्प्रति** अधुना। **अभिलाषेण** स्पृहया सह **भव** एधि (शकुन्तलाप्राप्तिः न दुरवापा इति कृत्वा तद्रूपम् अभिलाषम् आत्मनि पोषय। **सन्देहस्य** शङ्कायाः (शकुन्तला वरणयोग्या वा न वा इति)। **निर्णयः** निराकरणम्। **जातः** भूतः। **यत्** (वस्तु शकुन्तलारूपम्)। **अग्निम्** हुताशनम् (ब्राह्मणपुत्रीत्वात्)। **आशङ्कसे** मन्यसे। **तत्** (वस्तु)। **इदम्** एतत् (पुरः वर्तमानम्)। **स्पर्शस्य** परामर्शस्य क्षमम् योग्यम् **रत्नम्** मणिः।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला वरण-योग्य है, कण्व ब्याहना चाहते हैं, मैं ब्याह करना चाहता हूँ और ऐसी श्रेष्ठ स्त्री के लिये राजा और सुन्दर युवक होने के कारण सर्वथा योग्य हूँ, अतः अभिलाषा (आशा) रखने को हृदय से कहा गया है। अपने हृदय को स्वयम् आश्वासन या धैर्य देने की स्थिति ऐसे ही समय आती है जब बात गुप्त होती है और अधीरता होती है। शकुन्तला जीवन भर ब्रह्मचारिणी तो नहीं रहेगी, यह ब्राह्मण-कन्या तो नहीं है आदि सन्देह थे जिनका निर्णय हो गया है। अग्नि समझने की भ्रांति की थी, पर शकुन्तला स्पर्शार्ह रत्न है, यह पता चल गया, अतः दूर हटने के स्थान पर प्राप्ति के लिये आगे बढ़ना उचित है। यहाँ हृदय को उकसाया गया है। उत्साहित करने से प्रवृत्ति होती है और फिर सफलता मिलती है, अन्यथा मन का दूसरा पक्ष-निराशावाद—अन्दर-ही-अन्दर जड़ता पैदा कर देता है।

ए० बी० गजेन्द्रगडकर के अनुसार सन्देह इस बात का भी हो सकता है, कि शकुन्तला का वाग्दान हो गया है, वह विवाहित है या उसने अपना मन किसी को दे दिया है, पर यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जब से सन्देह उत्पन्न हुआ है, तब से वंश-मात्र को लेकर हुआ है।

तपोवन में दाहात्मक तेज छिपा होता है; अपकार करने वाला जल सकता है, अतः ब्राह्मण-पुत्री शकुन्तला को ग्रहण करना विपत्ति मोल लेना है। तपोवन की दाहात्मकता आगे भी बताई गई है।

.........तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः (२।७)

"अग्नि" जहाँ ऋषि तेज को प्रगट करती है, वहीं दुष्यन्त के चरित्र पर भी प्रकाश डालती है। वे अनुचित कृत्य नहीं करते। ब्राह्मण-कन्या से क्षत्रिय का व्याह अनुचित है, अतः उनकी आस्तिकता और धर्म-भीरुता उसे अग्नि समझती है। आशय यह है कि जैसे अग्नि में हाथ डालकर जलना नहीं चाहूँगा, वैसे ही इसके लिये प्रयत्न नहीं करूँगा। दुष्यन्त ने अपनी स्थिति उस व्यक्ति की-सी बताई है जिसे रत्न (शकुन्तला) मिला पर भ्रांति से उसने उसे आग (ब्राह्मण-आत्मजा) समझा (क्योंकि दोनों में चमक होती है), अधिक खोजबीन करने पर निकट आने पर असलियत का पता लग गया कि यह रत्न है अतः स्पर्श योग्य है।

"आशङ्कसे" से वर्तमान है, यद्यपि पूर्व-घटित भूत काल में है। यह मन के चंचल होने को व्यक्त करता है।

शब्दार्थ—साभिलाष = अभिलाष (इच्छा-पूर्ति या आशा) से युक्त। आशङ्कसे = मानते हो। स्पर्श-क्षम = स्पर्श के योग्य।

व्युत्पत्ति—अभिलाष = अभि + लष् + घञ् (हिन्दी में अभिलाषा प्रचलित है, पर संस्कृत में अभिलाष लिखते हैं)। सन्देह = सम् + दिह् + घञ्। निर्णय = निर् + नी + अच्। जात = जन् + क्त स्पर्शक्षम = स्पृश् + घञ् + क्षम् + ण (क्षम् + अच् = क्षम)।

समास—अभिलाषेण सभं साभिलाषम् (बहुव्रीहि)। सन्देहस्य निर्णयः सन्देहनिर्णयः (षष्ठी तत्पुरुष)। स्पर्शस्य क्षमम् स्पर्शक्षमम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

छन्द—आर्या जिसका लक्षण १।२ में देखा जा सकता है।

शकुन्तला—(सरोषमिव) **अणसूए, गमिस्सं अहं।** [अनसूये गमिष्याम्यहम्।]
अनसूया—**किंणिमित्तं** [किंनिमित्तम्।]

अलङ्कार—काव्य-लिङ्ग। भ्रान्तिमान्। यहाँ हर्ष और औत्सुक्य भाव पाये जाते हैं तथा मुख-नामक नाटय संधि का प्राप्ति-नामक अङ्ग है (प्राप्तिः सुखागमः)।

दोष—दर्शन के अनुसार "सन्देह" शब्द का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो उदाहरण से उसकी पुष्टि नहीं होती। सन्देह का स्थूल अर्थ भ्रम मानकर काम चला सकते हैं। पारिभाषिक शब्द के रूप में संदेह का अर्थ है कोटि-द्वय-अवलम्वी एकधर्मी-गत भावाभावप्रकारक) ज्ञान। किसी चमकदार वस्तु को देखकर अग्नि और रत्न—दोनों—की प्रतीति पचास-पचास प्रतिशत होने पर सन्देह की स्थिति होती है, पर अग्नि को गलती से सौ प्रतिशत सही मान लेना भ्रान्ति है। इस तरह भ्रान्ति विपरीत पर निश्चित ज्ञान है, जब कि सन्देह अर्द्ध-निश्चित ज्ञान है। श्लोक के उत्तरार्ध में भ्रान्ति है जिसका निराकरण बाद में होता है। "आशङ्कसे" के कारण "अग्नि" को एक कोटि-मात्र मान लेने पर सन्देह का प्रसंग आ जाता है। एक कोटि अग्नि मानने पर दूसरी कोटि रत्न समझना पड़ेगा जो साथ-साथ न आने से सन्देह और भ्रान्ति गड़बड़ किये गये हैं, यह मानना पड़ेगा। यदि "आशङ्कसे" से सम्भावना या उत्प्रेक्षा की हैं, लिया जाय तो भी "सन्देह" शब्द के प्रयोग को सूक्ष्म न मानकर स्थूल मानना होगा, साहित्य में दर्शन की सूक्ष्मता और पारिभाषिकता यद्यपि दोष है, पर अधिक स्थूलता भी दोष है जिसे बचाना चाहिये। सम्भावना "उत्कटैककौटिक संशय" है। इस में दो कोटियाँ (ज्ञान के पक्ष) होती हैं और एक कोटि की ओर संशय (ज्ञान का झुकाव) अधिक होता है। यहाँ साथ-साथ दूसरा पक्ष "रत्न" न होने से भ्रान्ति की ही स्थिति है, सम्भावना की नहीं, "यत्" भी वस्तु का अर्थ देता है, रत्न का नहीं।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(चिढ़कर-जैसे) अनसूया, मैं जाऊँगी।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला (रोषेण** कोपेन सह तत् यथा स्यात् तथा। **इव**)। (हे) **अनसूये** (सम्बुद्धौ) (इतः) **गमिष्यामि** यास्यामि। **अहम्** अयम् जनः।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला इतना चिढ़ जाती है कि वहाँ से जाने की इच्छा व्यक्त करती है। आज भी ऐसी स्वाभाविक स्थिति देखने को मिलती है। ब्रह्मचारी-वेष-धारी शंकर के द्वारा शंकर की ही निन्दा से चिढ़कर पार्वती के मुख से कवि ने ऐसा ही कहलाया है (इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनो), पर वहाँ पार्वती ने ब्रह्मचारी को अपकारी मानकर प्रयाण किया था और यहाँ शकुन्तला केवल लोक-लाज दिखा रही है, उसे प्रियंवदा की ठिठोली और दुष्यन्त की बात और उनके दर्शन की लालसा है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि आदमी अपने मन की बात छिपाने के लिये प्रायः प्रयत्न करता है और यह प्रयत्न प्रायः विपरीत-प्रदर्शन तक सीमित होता है। "इव" से यह बात सूचित की गई है। अनसूया ने प्रियंवदा की शिकायत कर यह लाज प्रदर्शित की है।

हिन्दी अनुवाद—अनसूया—किस लिए!

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्)। **किम् निमित्तम्** हेतुः यत्र तत् यथा स्यात् तथा (गमिष्यति)।

शकुन्तला—इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमीए णिवेदइस्सं। [इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयिष्यामि ।]

अनसूया सहि ण जुत्तं अकितसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छन्ददो गमणं। [सखि न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य[1] स्वच्छन्दतो गमनत् ।]

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला का प्रदर्शन अपनी तरफ से तो ठीक था पर वह लाज से इतनी बातों पर भी गड़ी जा रही थी कि समवयस्क कन्या होते हुए भी अनसूया-जैसी समझदार और गम्भीर लड़की तक नहीं समझ पा रही है। यह लज्जा-शीलता शकुन्तला को श्रेष्ठ-नायिका सिद्ध करती है। प्रियंवदा शकुन्तला को छेड़ना अब अनसूया को भी बुरा नहीं लग रहा है, दुष्यंत की सौजन्य-पूर्ण बातें उसे भी अच्छी लग रही हैं, कदाचित् उसे भी इष्ट है कि शकुन्तला के प्रति यह रुचि और प्रवृत्ति प्रेम और विवाह में परिणत होने के लिए बढ़े।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—इस बेसिर-पैर की रट लगाने वाली प्रियंवदा की शिकायत (रिपोर्ट) पूज्य गौतमी से करूँगी।

संस्कृत टीका—**शकुन्तला** (कथयति यत्)। **इमाम्**। एताम्। **असंबद्धम्** असङ्गतम् प्रलपितुम् शीलम् अस्याः **असंबद्धप्रलापिनीम्**। **प्रियंवदाम्**। **आर्यायै** पूज्यायै। **गौतम्यै** (गौतमीम् बोधयितुम्) तन्नाम्न्यै तपस्विन्यै संरक्षणनियुक्तायै। **निवेदयिष्यामि** विज्ञापयिष्यामि विवादपदरूपेण।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ इशारा है कि तुम प्रियंवदा को रोको, तभी मैं रुक सकती हूँ। आशय है कि भले ही वह न रुके पर इस निषेध से लाज की रक्षा भी हो जाय और मेरे लिए रुकने का बहाना भी निकल आये।

शिकायत बात की न करके व्यक्तिकी की जाती है, यही संस्कृत का मुहावरा है जिसपर ध्यान देना चाहिये, कारण (बात) को विशेषण में डाल दिया जाता है। बात की शिकायत व्यर्थ है, क्योंकि जब तक इस बात को कहने वाले का सम्बन्ध नहीं आयेगा तब तक वह सामान्य और असम्बद्ध होने से व्यर्थ हो जायेगी।

असम्बद्ध और प्रलाप (= सम्बद्ध बात)। प्रलापिनी = रट लगाने वाली।

व्युत्पत्ति—असम्बद्ध प्रलापिनी = अ + सम् = बन्ध् + क्त + प्र + लप् + णिनि।

समास—न सम्बद्धम् असम्बद्धम्।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—सखी, श्रेष्ठ अतिथि को असत्कृत ही छोड़कर स्वच्छन्दता से चल देना ठीक नहीं है।

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्)। **सखि** (हे) आलि (सम्बुद्धौ)। **न**। **युक्तम्** उचितम्। न **कृतः** विहितः **सत्कारः** पूजा यस्य तम् **अकृतसत्कारम्**। **अतिथेः** अभ्यागतस्य **विशेषम्** विशिष्टताम् (विशिष्टम् अतिथिम् इत्यर्थः)। **विसृज्य** त्यक्त्वा। **स्वच्छन्दतः** स्वैरम् (न तु तस्य अतिथेः इच्छया)। **गमनम्** प्रयाणम्।

पाठा०—१. ("विसृज्य" के बाद जोड़ें) अस्समवाभिणो जणस्स [आश्रमवासिनः जनस्य]।

राजा—(आत्मगतम्)[1] आः कथं गच्छति। [ग्रहीतुमिच्छन्निगृह्यात्मानम्]
अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजन[2]मनोवृत्तिः। अहं हि—

हिन्दी-व्याख्या—अनसूया पुनः व्यावहारिकता बताती है और शकुन्तला को बताती है कि कुलपति की प्रतिनिधि स्वरूप होने से जो कर्त्तव्य है, उसकी उपेक्षा गौण बातों के अनुरोध से नहीं होनी चाहिये। अनसूया इस कोप को निरर्थक मानकर कहती है, अन्यथा छन्द (=इच्छा) न कहकर कारण कहती। उसका ध्यान, लगता है, प्रमुख कर्तव्य—अतिथि सत्कार—की ही ओर लगा है। साधारण अतिथि का भी सत्कार करते हैं; ये तो विशिष्ट अतिथि हैं; यह कहकर अपनी बात पर जोर दिया गया है।

शब्दार्थ—अकृतसत्कार=जिसका सत्कार नहीं किया गया है। अतिथिविशेष=विशिष्ट अतिथि। छन्द=इच्छा (अभिप्रायवशौ छन्दौ—अमरकोष)।

व्युत्पत्ति—युक्त=युज्+क्त। अकृत=अ+कृ+क्त। सत्कार=सत्+कृ+घञ्। विशेष=वि+शिष्+घञ्। विसृज्य=वि+सृज्+ल्यप्। स्वच्छन्दतः=स्व+छन्द+टा+तस्। गमन=गम्+ल्युट्।

समास—कृतः सत्कारः यस्य स कृतसत्कारः (बहुव्रीहि) न कृतसत्कारः अकृतसत्कारः (नञ् तत्पुरुष)। अतिथेः विशेषम् अतिथिविशेषम् (षष्ठी तत्पुरुष)। स्वस्य छन्दः स्वच्छन्दः।

हिन्दी-अनुवाद—(शकुन्तला कुछ न कहकर चल ही दी।)

संस्कृत टीका—**शकुन्तला**। **न**। **किञ्चित्** किमपि। **उक्त्वा** कथयित्वा। **प्रस्थिता** चलिता। **एव**।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला उत्तर न देकर चलती है। स्नेहज कोप में या तो कही बात सुनी नहीं या अपने को निर्लज्जता के आरोप से बचाने के लिये लज्जा का नाटक किया। अविवाहित युवतियों का यह स्वभाव है।

शब्दार्थ—प्रस्थिता=रवाना हो गई।

व्युत्पत्ति—उक्त्वा=वच्+क्त्वा। प्रस्थिता=प्र+स्था+क्त।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मन ही मन)—अरे! क्या जा रही है! (पकड़ने के इच्छुक होकर फिर अपने को रोककर) अरे! कामी लोगों की मनोवृत्ति शारीरिक गति को प्रतिबिम्ब होती है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (**आत्मगतम्** स्वगतम्) (कथयति यत्)। **आः** अहो। **कथम्** किम् आश्चर्यं। **गच्छति** याति। (**ग्रहीतुम्** धर्तुम्)। **इच्छन्** वाञ्छन्। **निगृह्य** निवार्य। आत्मानम् स्वम्) **अहो** (आश्चर्यं)। **चेष्टायाः** शरीरक्रियायाः **प्रतिरूपिका** प्रतिबिम्बः। **कामिनाम्** सकामानाम् **जनानाम्** नराणाम् **मनसः** चित्तस्य **वृत्तिः** व्यापारः **अहम्** अयम् जनः। **हि** निश्चयेन।

पाठा०—१. वाक्य ही नहीं मिलता। २. नः ("जन" की जगह)।

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥ २८ ॥

हिन्दी-व्याख्या—"आः" चौंकने में आता है । "कथम्" का इस तरह का प्रयोग भी अप्रत्याशित रूप से किसी के मिलने या कोई अन्य घटना घटित होने पर होता है ।

यहाँ राजा चेष्टा नहीं करते; इच्छा-मात्र करते हैं जो मन का व्यापार है; इसे रंग मंच पर दिखाना संभव नहीं है, अतः व्यर्थ है । यदि अधिकांश संस्करणों के अनुसार "आः" से शुरू होने वाला वाक्य न लिया जाय तो आगे के निदेशन का भाव तिल-मात्र भी दर्शकों की समझ में नहीं आ सकता । सर्वथा नया अनुभव होने पर जो अचरज होता है, उसे व्यक्त करने के लिये "अहो" आया है; इसके बाद का वाक्य बहुत पैनी सूझ है । सामान्यतः इसका उल्टा होता है, मन जैसा सोचता है, उसके अनुसार अंग कार्य करते हैं, पर ऐसा भी होता है कि शरीर की चेष्टायें मन (मनोवृत्ति) भी कर लेता या करता है । इसीको इच्छा कहते हैं । स्वप्न में यह बात पूर्णतः घटित होती है जब हमारा मन हमें सब कुछ बिना आँख खोले दिखा देता है । यहाँ राजा का मन भ्रान्ति के कारण शकुन्तला को अपने से दूर होता समझर पकड़ने दौड़ा, पर राजा ने उसे रोक लिया । जो जितना संयमी होता है वह मन को उतनी शीघ्रता से वश में कर लेता है, पर ऐसी भ्रांति की स्थिति में उस भ्रांति की मात्रा पर ही सब कुछ निर्भर करता है, यदि भ्रांति कम है तो मन जल्दी वश में आ जाता है । अभी भ्रम की शुरुआत हुई है, अतः राजा अपने को रोक लेते हैं ।

इच्छा की तीव्रता से मन अन्दर ही शारीरिक चेष्टाओं-जैसी चेष्टायें कर लेता है । दुष्यन्त हिलते तक नहीं पर मन ही मन शकुन्तला को पकड़कर फिर संकोच-वश छोड़ देते हैं ।

शब्दार्थ—निगृह्य=रोककर । प्रतिरूपिका=प्रतिबिम्ब ।

व्युत्पत्ति—गत=गम्+क्त । ग्रहीतुम्=ग्रह+तुमुन् । इच्छन्=इष्+शतृ । निगृह्य=नि+ग्रह+ल्यप् । प्रतिरूपा+कन्=प्रतिरूपिका । कामी=काम+इनि । वृत्ति=वृ+क्तिन् ।

समास—चेष्टायाः प्रतिरूपिका चेष्टाप्रतिरूपिका (षष्ठी तत्पुरुष) । कामिनः च ते जनाः च कामिजनाः (कर्मधारय) तेषाम् मनोवृत्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—मुनि-कन्या का अनुसरण करते हुये मेरी प्रगति जब एकाएक अनुशासन ने रोक दी तब लगा कि उस जगह से न उठता हुआ भी मैं जाकर फिर लौट आया ।

अन्वयः—सहसा मुनितनयाम् अनुयास्यन् विनयेन वारितप्रसरः स्थानात् अनुच्चलन् अपि गत्वा पुनः प्रतिनिवृत्तः इव ।

संस्कृत-टीका—**सहसा** अकस्मात् **मुनेः** ऋषेः कण्वस्य **तनयाम्** पुत्रीम् (शकुन्तलाम्) (प्रति) । **अनुयास्यन्** अनुगमिष्यन् । **विनयेन** दमेन । **वारितः** निरुद्धः **प्रसरः** प्रवृत्तिः यस्य तादृशः (अहम्) **स्थानात्** (अस्मात्) प्रदेशात् । **अनुच्चलन्** न उत्तिष्ठन् । **अपि** । **गत्वा** चलित्वा । **पुनः** भूयः । **प्रतिनिवृत्तः** प्रत्यागतः । **इव** एवम् प्रतीयते ।

हिन्दी-व्याख्या—चेष्टा के पहले मन चेष्टा करता है । मर्यादाशील पुरुष मन में ही अनुचित

प्रियंवदा—(शकुन्तला निरुध्य) हला ण दे जुत्तं गन्तुं । [हला न ते युक्तं गन्तुम् ।]

बात का प्रसार रोक लेते हैं। दुष्यन्त ने शारीरिक व्यापार तिल भर भी नहीं किया पर उन्हें लगा कि मैं एक बार शकुन्तला को पकड़ने के लिये जाकर वापस आ गया हूँ।"

"सहसा" और "विनय" एक दूसरे के विलोम हैं। पहले सहसा (बिना विचारे) मन ने अनुसरण का उपक्रम किया, पर फिर सद्विचार ने रोका।

मुनि-तनया का प्रयोग यहाँ सार्थक है। राजा का अनुसरण अविवेकपूर्ण था क्योंकि अनुसरण के लिये प्रवृत्त होते समय वे भूल गये थे कि वे ऐसी कन्या का अनुसरण कर रहे हैं जो मुनि की है—उनकी औरस न होती हुई भी पालित होने से कन्या ही है और उसके प्रति ऐसा व्यवहार खतरे से खाली नहीं है जो मुनि को नापसन्द हो।

"अनुयास्यन्" का अर्थ है "भविष्य में अनुसरण करता हुआ" जिसका अर्थ है उस समय अनुसरण नहीं कर रहा था, पर करने वाला था।

शब्दार्थ—अनुयास्यन्=भविष्य में अनुसरण करने वाला । विनय=अनुशासन, इन्द्रियों को जीत लेना (इन्द्रियाणां जयं प्राह विनयं भरतो मुनिः ।) वारितप्रसर=जिसकी प्रगति वारित (रोकी) हो। अनुच्चलन्=न उठते हुए। प्रतिनिवृत्त=लौट आया (हूँ)।

व्युत्पत्ति—अनुयास्यन्=अनु+या+लृट्+शतृ (प्रथमा विभक्ति पुंलिंग एक वचन) (भविष्य के अर्थ में "शतृ" का प्रयोग ध्यान देने योग्य है)। "सहसा" अव्यय है; वैदिक साहित्य में "सहस्" (बल) का तृतीया विभक्ति का रूप है जो बाद में अव्यय रूप में लौकिक साहित्य में रूढ़ हो गया। विनय=वि+नी+अच्। वारित=वृ+णिच्+क्त। प्रसर=प्र+सृ+अप्। स्थान=स्था+ल्युट्। अनुच्चलन्=अन्+उद्+चल+शतृ (प्रथमा विभक्ति पुंलिंग एक-वचन)। गत्वा=गम्+क्त्वा। प्रतिनिवृत्त=प्रति+नि+वृ+क्त।

समास—मुनेः तनयाम् (षष्ठी तत्पुरुष)। वारितः प्रसरः यस्य सः वारितप्रसरः (बहुव्रीहि)।

छन्द—आर्या जिसका लक्षण १।२ में देखा जा सकता है।

अलंकार—क्रियोत्प्रेक्षा। विरोधाभास। अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (शकुन्तला को रोककर) सखी, तुम्हारा जाना ठीक नहीं है।

संस्कृत टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। **हला** हे सखि। **न**। **ते** तव (कृते)। **युक्तम्** उचितम् (तर्कसम्मतम्)। **गन्तुम्** गमनम्।

हिन्दी-व्याख्या—प्रियंवदा वाणी से तो चंचल है ही, शरीर से भी चंचल है, वह शकुन्तला को रोकने के लिये आगे खड़ी हो जाती है। गम्भीर व्यक्ति ऐसे नाटक नहीं करते। अभी तक दुष्यन्त को राजा नहीं समझा जा रहा है। जिससे यह सब चल रहा है, औपचारिकता का दबदबा नहीं होने पाया है। "गन्तुम्" गमन के अर्थ में विरल है, अतः इस प्रयोग को याद रखना चाहिये।

व्युत्पत्ति—निरुध्य=नि+रुध्+ल्यप्। युक्त=युज्+क्त। गन्तुम्=गम्+तुमुन् (अव्ययकृतो भावे—भाष्य

शकुन्तला—(सभ्रूभङ्गम्) किंणिमित्तं। [किंनिमित्तम्।]

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (भौंहें टेढ़ी कर)—किसलिये।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (भ्रुवोः भंगेन भेदेन सह तत् यथा स्यात् तथा) (कथयति यत्)। किम् निमित्तम् हेतुः यत्र तत् यथा स्यात् तथा।

हिन्दी-व्याख्या—संस्कृत में जैसा बोला जाता है, ठीक वैसा ही लिखा जाता है, हिन्दी में भी साधारणतः ऐसा ही चलता है; परिवर्तित उच्चारणों और शब्दों को अलग-अलग लिखने से विराम की प्रतीति होने से अपवाद मिलते हैं। संस्कृत की हस्त-लिपियों में सर्वत्र शब्द परस्पर जुटे मिलते हैं जिससे जहाँ विराम नहीं है, वहाँ विराम की प्रतीति न हो। (इससे समझने में उतनी शीघ्रता भले न हो, पर उन पहेलियों का सर्वनाश नहीं होता जो समस्त या व्यस्त पद रखने से पहेलियाँ ही नहीं रह जातीं। पिता ने पुत्र से पत्र लिखने को कहा, पर उसने न लिखा (या नत होकर लिखा) और पिता की आज्ञा की भी रक्षा की। इसमें "नतेन" पहेली का कारण है. उसे "न तेन" लिखने पर "नतेन" अर्थ नहीं लगेगा और "नतेन" लिखने पर "न तेन" अर्थ इसलिये नहीं लगेगा कि शब्दों को अलग-अलग लिखने की परिपाटी चला कर तोड़कर अर्थ लगाना युक्ति-युक्त नहीं प्रतीत होता। दो अर्थ उच्चारण में न रुकने से निकलते हैं और जोड़कर लिखने से उच्चारण का ठीक प्रतिबिम्ब बनता है। यहाँ विद्यार्थियों को समझाने के लिये तोड़कर लिखा गया है और सन्धि वाक्य में अनिवार्य होने पर भी नहीं की गई है; "वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते" का अवलम्बन कर वाक्य में सन्धि को वैकल्पिक मानकर पाणिनि के नियमों और संस्कृत के (प्राचीन) लेखकों के विरुद्ध आचरण करने के लिये वैसा नहीं किया गया है; विद्यार्थियों को सन्धि अवश्य करनी चाहिये; थोड़ा-अभ्यास होते ही कठिनाई दूर हो जायेगी, आधुनिक व्याकरणों से सन्धि के नियम याद कर लेने और हठ पूर्वक प्रयोग करने से झिझक और अक्षमता दूर हो जायेगी। गद्य में यदि कोई भूल से असन्धि को दोष न भी माने तो पद्य-निर्माण में तो बिना सन्धि-प्रौढ़ता के काम ही नहीं चलेगा। इसके अनुसार यहाँ "किम्" को अलग मानकर अर्थ किया जा सकता है।

शब्दार्थ—सभ्रूभङ्ग=भौंहें तिरछी कर। किंनिमित्त=(जिसमें निमित्त क्या (अविदित) है, वह जिस प्रकार का होता है, उस तरह से (किस कारण ?) क्रिया-विशेषणों का अर्थ संस्कृत में "यथा स्यात् तथा" (वह जैसा होता है, वैसा) के द्वारा समझाया जाता है जो बहुत वैज्ञानिक है। विशेषण को नपुंसक लिङ्ग द्वितीया विभक्ति द्विवचन में किसी विशेषण (बहुव्रीहि समास से भी पूरा पद विशेषण बनता है, अतः वह भी) को रखकर क्रिया की विशेषता दिखाई जा सकती है। हिन्दी में अर्थ लगाने के लिये "ता (भाव-वाचक संज्ञा बनाने के लिये) से" जोड़कर सही अर्थ समझकर फिर भाषा के प्रवाहानुसार अर्थ करना या लिखना चाहिये।

शब्दार्थ—सभ्रूभङ्गम्=भौंहें टेढ़ी कर।

व्युत्पत्ति—भङ्ग=भन्ज्+घञ्।

समास—भ्रुवोः भङ्गः भ्रूभङ्गः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन सह (तत् यथा स्यात् तथा) सभ्रूभङ्गम् (बहुव्रीहि) किम् निमित्तम् यस्य तत् (यथा) किंनिमित्तम् (बहुव्रीहि)।

प्रियंवदा—रुक्खसेअणे दुवे धारेसि मे। एहि दाव। अत्ताणं मोआविअ तदो गमिस्ससि। [वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे। एहि तावत्। आत्मानं मोचयित्वा ततो गमिष्यसि।] (बलादेनां निवर्तयति)।

राजा—भद्रे वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः—

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—पेड़ों की मेरी दो सिंचाइयाँ तुम्हारे ऊपर ऋण हैं। आओ जरा, अपने को (ऋण से) छुड़ाकर तब जाओगी। (इसे जबर्दस्ती लौटाती है)

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) **वृक्षाणाम्** द्रुमाणाम् **सेचने** उक्षणे। **द्वे**। **धारयसि** ऋणरूपे (सेचने) (तव कृते द्विः सेचनं कृतवती अस्मि अतः तद्रूपम् ऋणम्) वहसि। **मे** मह्यम्। **एहि** आगच्छ। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **आत्मानम्** स्वम्। **मोचयित्वा** ऋणमुक्तम् (मम कृते द्विः सेचनम्) कृत्वा। **ततः** तदनन्तरम्। **गमिष्यसि** यास्यसि। (**बलात्** बलात्कारेण। **एनाम्** इमाम्—शकुन्तलाम्—**निवर्त्तयति** निवृत्ताम् करोति)।

हिन्दी व्याख्या—हर एक के जिम्मे कुछ वृक्षों की सिंचाई है; कभी शकुन्तला ने किसी काम में रहने के कारण या अभी घबड़ा जाने के कारण सिंचाई में देर की होगी जिसे प्रियंवदा ने कर दिया होगा; यही ऋण है जिसे प्रियंवदा के हिस्से की सिंचाई दो बार करके शकुन्तला को चुकाना है। ऋण लेने वाला कहीं भाग न जाय, इसलिये उसे रोका जाता है। यहाँ यह ध्यान देने-योग्य है कि अनसूया कर्त्तव्य-बोध कराकर रोकती है और प्रियंवदा ठिठोली करके। दोनों के व्यक्तित्व एक दूसरे के विलोम हैं।

प्राचीन काल में ऋण लेने वालों पर ऋणदाता का पूरा अधिकार होता था। वह बाजार में ऋणी को बेचकर भी कर्ज वसूल कर सकता था। हँसी में प्रियंवदा अपने को निर्दय साहूकार की तरह प्रस्तुत करती है।

यहाँ सामान्यतः "दो वृक्षों का सेचन" अर्थ लिया जाता है, पर "दो सेचन" अर्थ लेना ज्यादा भावानुकूल है।

शब्दार्थ—धारयसि = ऋणी हो। मे = मेरी।

व्युत्पत्ति—सेचन = सिच् + ल्युट्। "मे" में चतुर्थी "धारेरुत्तमर्णः—अष्टाध्यायी १।४।३३" के अनुसार हुई है; ऋण को कर्म, ऋण दाता को चतुर्थी और ऋणी को प्रथमा में रखा जाता है। मोचयित्वा—मुच् + णिच् + क्त्वा। निवर्त्तयति = नि + वृत् + णिच् (लट् प्रथम पुरुष एक वचन)।

समास—वृक्षाणाम् सेचने वृक्षसेचने। (षष्ठी तत्पुरुष)

हिन्दी-अनुवाद—राजा—कल्याणी, पेड़ सींचने के कारण ही आप (शकुन्तला) को थकी पा रहा हूँ; उदाहरणार्थ इनकी—

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्)। **भद्रे** कल्याणि। **वृक्षाणाम्** द्रुमाणाम् **सेचनात्** उक्षणात्। **एव परिश्रान्ताम्** क्लान्ताम्। **अत्रभवतीम्** आदरणीयाम् इमाम् (शकुन्तलाम्)। **लक्षये** पश्यामि। **तथा हि** पश्यत **अस्याः** एतस्याः शकुन्तलायाः।

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा-
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
बद्धं[1] कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥ २९ ॥

हिन्दी-व्याख्या—वृक्ष सींचने ही से थक गई है और ऋण चुकाने के लिये पुनः वही काम कराओगी तो दूनी विपत्ति आ जायेगी, एक तो परिश्रम का काम, दूसरे वही काम जिससे थकान हुई है और फिर ऋण चुकाने के लिये । तीनों स्थितियाँ अवांछनीय और थकान कई गुना करने वाली हैं । "एव" के प्रयोग ने इतने अवसर दिये हैं ।

राजा की सहानुभूति पराकाष्ठा पर पहुँच गई है और वे पक्षपात करने लगे हैं । तीनों की उम्र बराबर है और तीनों के ऊपर समान कार्य-भार है, फिर भी राजा को एक की श्रान्ति दिखती है । यह स्पष्ट कर देता है कि राजा का झुकाव शकुन्तला के प्रति हो गया है और वे इस स्थिति में नहीं हैं कि लोक लाज देखते हुये इतने दाक्षिण्य का तो निर्वाह करें कि शेष दोनों तापस-कन्याओं को पक्षपात की गंध न आये ।

शब्दार्थ—अत्रभवती=आदरणीया (जो उपस्थित है) ।

व्युत्पत्ति—सेचन=सिच्+ल्युट् । परिश्रान्त=परि+श्रान्त=परि+श्रम+क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—घड़ा उठाने से (इसकी) भुजाओं के कंधे झुके हैं और हथेलियाँ बहुत लाल हो गई हैं; मात्रा से अधिक श्वास अब भी स्तनों में कम्पन पैदा करता है, कान में लगे सिरस को रोकने (स्थिर करने) वाली पसीने के जल की बूँदें मुख पर जुट गई हैं और (अपने) बन्धन के खुलने से एक हाथ से रोके गये बाल बिखरे हुये हैं ।

अन्वयः—घटस्य उत्क्षेपणात् बाहू स्रस्तांसौ अतिमात्रलोहिततलौ (च) । अद्यापि प्रमाणाधिकः श्वासः स्तनवेपथुम् जनयति । कर्णशिरीषरोधि घर्माम्भसाम् जालकम् वदने बद्धम् । बन्धे च स्रंसिनि एकहस्तयमिताः मूर्धजाः पर्याकुलाः ।

संस्कृत-टीका—**घटस्य** कलशस्य **उत्क्षेपणात्** उत्थापनात् । (अस्याः शकुन्तलायाः) **बाहू** भुजौ । **स्रस्तौ** अवनतौ **अंसौ** स्कन्धभागौ ययोः तादृशौ (च) । **अतिमात्रम्** अत्यन्तम् यथा स्यात् तथा **लोहितौ** रक्तौ **तलौ** करतलौ ययोः तादृशौ च । **अद्य** अधुना । **अपि** (वहौ काले व्यतीते) । **प्रमाणात्** मात्रायाः **अधिकः** बहुतरः । **श्वासः** श्वसनम् । **स्तनयोः** उरोजयोः **वेपथुम्** कम्पम् । **जनयति** करोति । **कर्णयोः** श्रवणयोः दत्तम् **शिरीषम्** तदाख्यम् पुष्पम् **रोद्धुम्** स्थिरीकर्तुम् शीलम् अस्य इति **कर्णशिरीषरोधि** । **घर्माम्भसाम्** स्वेदजलस्य **जालकम्** बिन्दुसमूहरूपम् । **बद्धम्** समवेतम् । **बन्धे** स्वबन्धने । **च** । **स्रंसिनि** गलति (सति) । **एकेन** असहायेन **हस्तेन** करेण **यमिताः** नियन्त्रिताः । **मूर्धजाः** केशाः **पर्याकुलाः** विकीर्णाः ।

पाठा०—१. स्रस्तं ।

हिन्दी-व्याख्या—भारी चीज हाथ में लेने से कंधे झुके-झुके से दिखते हैं, कोमल हथेलियाँ अधिक परिश्रम या कड़ाई के सम्पर्क में न आने से रगड़ खाकर लाल हो जाती हैं और साँसें तेजी से चलने लगती हैं। परिश्रम करने का जो विशेष अभ्यासी नहीं होता, उसे ये कष्ट झेलने पड़ते हैं। श्रम से पसीना निकल आता है जिससे कानों में लगे सिरस के फूल जो झुमके जैसे होते हैं चिपक जाते हैं। हिलने-डुलने से बाल खुल जाते हैं जिन्हें एक हाथ में घड़ा होने से सामान्यतः दूसरे हाथ से सँभालकर पीछे किया जाता है, पर वे फिर हिलने से मुँह पर बिखर जाते हैं। थकान का बहुत स्वाभाविक वर्णन किया गया है। कालिदास की यही तारीफ है कि वे तन्मय होकर भावभरा वर्णन करते हैं; बहुत घुमा-फिराकर वर्णन को कृत्रिमता-युक्त नहीं बनाते।

शकुन्तला की हथेली लाल स्वाभाविक रूप से थी जो गोरी और सुकुमार कन्या की विशेषता है; "अतिमात्र" कहकर बताया गया है कि वे घर्षण से और लाल हो गईं। यद्यपि घड़ा उठाने से हथेली लाल हुई है, अन्य कष्ट सिंचाई-मात्र से हुए हैं, पर घड़े का भार प्रमुख होने से "घटोत्क्षेपण" सब कष्टों का कारण हो सकता है।

"बद्धं" की जगह "स्रस्तं" पाठ भी है; उसका अर्थ है "(पसीने की बूँदें) चू गईं"। यह पाठ ए. बी. गजेन्द्रगड़कर ने इस आधार पर हीन माना है कि पसीना चू जाने पर कान के शिरीष चिपक कर स्थिर नहीं होंगे। यह अर्थ ठीक नहीं है। फूल को चिपकाने में बूँदें उसके साथ सनती हैं और कुछ ढुड़ककर नीचे गिर जाती हैं जिससे अर्थ में कोई व्याघात नहीं आता। "स्रस्त" का दूसरी बार प्रयोग अस्वाभाविक प्रतीत होता है और "जालक" की रचना भूतकाल की बनाकर सुन्दरता लुप्त कर देता है।

शकुन्तला के ऊपर सिंचाई के श्रम का यह प्रभाव उसका उत्तम नायिका होना सूचित करता है।

"जालक" का अर्थ समूह (जाल) के साथ-साथ नई कलियों का समूह भी है, पसीने की बूँदें नई कलियों का समूह बनकर सोहीं, यह अर्थ रमणीय है।

श्वास का प्रमाण १२ अंगुल (लम्बा) माना गया है?

शब्दार्थ—स्रस्तांस = जिसके कंधे झुके हैं (स्कन्धो भुजशिरोऽसोऽस्त्री—अमरकोष)। अतिमात्र-लोहिततली = जिसमें हथेली अत्यन्त लाल थी। तल = हथेली ("नामैकदेशग्रहणे नाममात्रस्य ग्रहणम्" न्याय के अनुसार "कर-तल" में "तल" शब्द के हथेली के अर्थ में प्रचलित हो जाने से ऐसा किया गया है; "सत्यभामा" को जिस तरह "भामा" और देवदत्त को "दत्त" कह देते हैं)। उत्क्षेपण = उठाना। वेपथु = कम्पन। प्रमाण = मात्रा; स्वाभाविक स्थिति। बद्ध = गोल बनाई गई। रोधि = रोकने वाला। घर्माम्भस् = पसीना। जालक = समूह; नई कलियों का समूह। स्रंसी = खुलने वाला। यमित = नियन्त्रित। पर्याकुल = बिखरा हुआ।

व्युत्पत्ति—स्रस्त = स्रंस् + क्त। उत्क्षेपण = उद् + क्षिप् + ल्युट्। वेपथु = वेप् + अथुच्। श्वास = श्वस् + घञ्। प्रमाण + प्र + मा + ल्युट्। बद्ध = बन्ध् + क्त। शिरीषरोधि = शिरीष + रुध + णिनि। वदन = वद् + ल्युट् (करणे)। जालक = जाल + कन्। बन्ध = बन्ध् + घञ्। स्रंसी = स्रंस + णिनि। यमिता = यम् + णिच् + क्त।

तदहमेनामनृणां करोमि । (अङ्गुलीयं दातुमिच्छति ।)
(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः ।)

समास—स्रस्तौ अंसौ ययोः तौ स्रस्तांसौ (बहुव्रीहि)। अतिगता मात्रा यस्मिन् तत् यथा स्यात्तथा अतिमात्रम् (बहुव्रीहि)। अतिमात्रम् लोहितौ (सहसुपा) तलौ ययोः तौ लोहिततलौ (बहुव्रीहि)। घटस्य उत्क्षेपणात् घटोत्क्षेपणात् (षष्ठी तत्पुरुष)। स्तनयोः=वेपथुम् स्तनवेपथुम् (सप्तमी तत्पुरुष)। प्रमाणात् अधिकः प्रमाणाधिकः (पञ्चमी तत्पुरुष)। कर्णयोः (षष्ठी तत्पुरुष) (कर्णदत्तम् वा—शाकपार्थिवादि) शिरीषम् कर्णशिरीषम् तस्य रोधि कर्णशिरीषरोधि (षष्ठी तत्पुरुष)। घर्मस्य (षष्ठी तत्पुरुष) (घर्मजानि वा—शाकपार्थिवादि) अम्भांसि तेषाम् घर्माम्भसाम्। **एकः** च असौ हस्तः च (कर्मधारय) तेन यमिताः एक हस्तयमिताः (तृतीया तत्पुरुष)।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण अधोलिखित है :—

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

चार में से प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगणों और एक गुरु से बनने वाला छन्द शार्दूल विक्रीडित है। इसमें १२ और ७ (चरणान्त) पर यति होती है।

अलंकार—समुच्चय। स्वभावोक्ति। अनुमान।

दोष—साँस का जोर से चलना अस्वाभाविक प्रतीत होता है जिससे नायिका को टी. बी. की मरीज या बुढ़िया–जैसा चित्रित किया गया है। आश्रम तक पानी लाने में चढ़ाई पड़ी है और शकुन्तला को चढ़ाई का अभ्यास नहीं है, कहकर किसी तरह समर्थन किया जा सकता है। राजा अनुराग में पड़ जाने से अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन कर सहानुभूति दिखलाते हैं, यह भी माना जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—तो मैं इन्हें ऋण-रहित कर देता हूँ (अँगूठी देना चाहते हैं)।

(दोनों—सखियाँ—नाम की मुहर के अक्षर पढ़कर एक दूसरी को देखती हैं)।

संस्कृत टीका—**तत्** अतः। **अहम्** अयम् जनः। **एनाम्** इमाम् (निकटस्थाम् शकुन्तलाम्)। अविद्यमानम् ऋणम् यस्याः सा ताम् **अनृणाम्** ऋणरहिताम्। **करोमि** विदधामि (**अङ्गुलीयम्** ऊर्मिकाम्। **दातुम्** वितरितुम्। **इच्छति** यतते)।

(**उभे** द्वे अपि सख्यौ। **नाम्नः** संज्ञायाः **मुद्रायाः** मुद्रणस्य **अक्षराणि** वर्णान्–मुद्रितवर्णान्—**अनुवाच्य** पठित्वा। **परस्परम्** पराम् पराम्—अनसूया प्रियंवदाम् प्रियंवदा च अनसूयाम्—**अवलोकयतः** पश्यतः)।

हिन्दी व्याख्या—राजा शकुन्तला की इतनी तरफदारी करते हैं कि अँगूठी तक देने को तैयार हो जाते हैं। परिश्रम के रूप में लिए ऋण को द्रव्य से चुकाना उस समय प्रचलित था। ऋण चुकाने में परस्पर की सहमति अपेक्षित प्रतीत होती है। आज-कल कहीं-कहीं इसका विपरीत दिखाई पड़ता है जब धनादि ऋण न चुका पाने वाला व्यक्ति ऋण-दाता की सेवा निःशुल्क करता है। मजदूरी को या श्रम-रूप में लिये ऋण को पैसे (जो श्रम से अर्जित होने के कारण उसका प्रतीक है) से चुकाना मानने की प्रथा उस समय थी, यह बात यदि मानी जाय तो श्रम का गौरव बढ़ता है, आज भी अर्थ-शास्त्री सिद्धान्त रूप में श्रम को ऋण मानते हैं।

राजा—अलमस्मानन्यथा सम्भाव्य । राज्ञः परिग्रहोऽयमिति[1] राजपुरुषं मामवगच्छत ।

पहले अँगूठी में नाम के अक्षर खुदे या उभरे रहते थे और उससे पत्रों पर मुहर करने का काम लिया जाता था। लगता है इनकी रचना में कुछ बारीक विशेषता होती थी जिससे दूसरा नकल न बना सके और अक्षर उलटे होते थे जिससे मुहर पर छपाई सीधी होती थी। नाम के अक्षर बड़े लोग ही खुदवाते होंगे, ऐसी प्रतीति होती है, अन्यथा राज-मुद्रा का वैशिष्ट्य उतना सिद्ध नहीं होता। अभी तक दुष्यन्त ने अपना नाम नहीं बताया है, अतः उत्सुकतावश अनसूया और प्रियवदा खुदे अक्षर पढ़ती हैं। आश्रम में पढ़ने की व्यवस्था लड़कियों के लिए भी होती थी, इसका यह प्रमाण है। नाम पढ़ने में इतनी शीघ्रता कौतूहल की सूचक है। लगता है "पौरव" शब्द (१।२४) के प्रयोग से लड़कियों को हलका शक हो गया था कि ये राजा हैं। अब बात खुल गई। यह घोर आश्चर्य की बात बताने के लिये सखियाँ एक दूसरे को निहारती हैं।

शब्दार्थ—अनृण = ऋण-रहित। अंगुलीय = अँगूठी। मुद्रा = मुहर। अनुवाच्य = पढ़कर।

व्युत्पत्ति—अंगुलीय = अंगुलि + छ। दातुम् + दा + तुमुन्। मुद्रा = मुद् + अ। अनुवाच्य = अनु + वच् + णिच् + ल्यप्।

समास—अविद्यमानम् ऋणम् यस्याः ताम् अनृणाम् (बहुव्रीहि)। नाम्नः मुद्रा नाममुद्रा (षष्ठी तत्पुरुष) तस्याः अक्षराणि नाममुद्राक्षराणि (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मुझे विपरीत मत समझें। यह राजा का दान (पुरस्कार) है, यह देखकर मुझे राज-सेवक समझें।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **अलम्** कृतम् (निषेधे)। **अस्मान्** इमम् जनम्। **अन्यथा** विपरीतम्। **सम्भाव्य** मनसिकृत्य। **राज्ञः** नृपस्य (दुष्यन्तपितुः इलिलस्य)। **परिग्रह** दानम्। **अयम्** (परिग्रहरूपः) एषः। **इति** एवम् विभाव्य। **राज्ञः** नृपस्य **पुरुषम्** सेवकम्। **माम्** इमम् जनम्। **अवगच्छत** जानीत।

हिन्दी व्याख्या—छिपाने वाला शंकित होता है, राजा अपने को छिपा रहे थे, अतः उन्हें शंका हुई कि मेरा नाम अँगूठी पर देखकर ये वास्तविकता जान लेंगी, अतः यहाँ छिपाने का यत्न किया गया है। यहाँ "राजन्" शब्द का प्रयोग अपने पिता इलिल (या ईलिन) के लिये दोनों जगह किया गया है। राजा चतुर हैं, अतः अब भी प्रयत्न करते थकते नहीं कि गुप्त ही रहूँ और इन लोगों को वास्तविकता का पता श्लेष के प्रयोग से न लगने दूँ। "राजा" पढ़कर मुझे राजा दुष्यन्त समझा होगा, मैं वह नहीं हूँ, अँगूठी मेरी नहीं है, बल्कि इनाम में मिली है" यह भ्रम पैदा करना चाहते हैं।

राजा जिस मानसिक स्थिति में हैं, उसमें यही स्वाभाविक है कि वे यह बात ही भूल जा रहे हैं कि मैं अपने को छिपाये हूँ जिससे वे धोखे से अँगूठी देकर अपना नाम प्रकट कर देते हैं। यहाँ

पाठा०—१. (यहाँ से नहीं)।

प्रियंवदा—तेण हि णारिहदि एदं अङ्गुलीअअ अङ्गुलीविओअं[1]। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा दाणिं एसा। (किंचिद्विहस्य) हला सउन्दले मोइदासि अणुअम्पिणा अज्जेण अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं [तेन हि नार्हत्येतदङ्गुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचनेनानृणेदानीमेषा। (किंचिद्विहस्य) हला शकुन्तले मोचितास्यनुकम्पिनार्येण अथवा महाराजेन गच्छेदानीम्।]

छिपाने का प्रयत्न यही सूचित करता है। जान-बूझकर अपने को प्रकट करना मानने पर संगति ठीक नहीं होगी।

शब्दार्थ—अन्यथा = विपरीत। परिग्रह = दान।

व्युत्पत्ति—निषेधार्थक "अलम्" के योग में तृतीया, क्त्वा या ल्यप् प्रत्यय का प्रयोग होता है जिससे "सम्भाव्य" प्रयुक्त हुआ है। सम्भाव्य = सम् + भू + णिच् + ल्यप्। परिग्रह = परि + ग्रह + घञ्।

समास—राज्ञः पुरुषम् (षष्ठी तत्पुरुष) राजा च असौ पुरुषः च राजपुरुषः, तम् राजपुरुषम् (कर्मधारय)।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—तो निश्चय ही यह अँगूठी (आपकी) उँगली से बिछोह के लायक नहीं है। श्रीमान् के आज्ञानुसार यह अब ऋण मुक्त हो गई। (कुछ मुस्कराकर) सखी शकुन्तला, दयालु श्रीमान् अथवा (यों कहूँ) महाराज के द्वारा मुक्त करा दी गई हो, अब जाओ।

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** (कथयति यत्)। **तेन** तस्मात्। हि निश्चयेन। **न**। **अर्हति** योग्यम् अस्ति। **एतत्** इदम् (धारितम्)। **अङ्गुलीयकम्** उर्मिका। (भवतः) **अङ्गुल्याः** (स्वस्थानात्) **वियोगम्** विरहम् (यतः राजपरिग्रहत्वात् धारणीयम् एव। **आर्यस्य** (श्रीमतः) (भवतः)। **वचनेन** (एव) **अनृणा** ऋणमुक्ता। **इदानीम्** साम्प्रतम्। **एषा** इयम् (पार्श्ववर्त्तिनी शकुन्तला)। **किञ्चित्** ईषत्। **विहस्य** स्मितेन सह। **हला** सखि। **शकुन्तले**। **मोचिता** मुक्तीकृता। **असि** विद्यसे। **अनुकम्पिना** दयालुना (तव ऋण-धारणजन्य क्लेशम् असहमानेन)। **आर्येण** श्रीमता (अनुरोधेन)। **अथवा** यद्वा (सत्यस्य संभावनस्य वा अनुरोधेन)। **महाराजेन** राज्ञा (आदेशेन) दुष्यन्तेन (अङ्गुलीयकाक्षरज्ञातेन)। **गच्छ** याहि। **इदानीम्** सम्प्रति (ऋणमुक्ता असि अतः न रुणध्मि पूर्ववाञ्छानुसारेण गन्तुम् शक्नोषि)।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ प्रियंवदा का चिढ़ाना बहुत मजेदार है। वह अँगूठी नहीं लेती कि इतने छोटे ऋण के लिये इतना बड़ा शुल्क कैसे ले सकती हूँ और राजा से शुल्क तो लिया भी नहीं जा सकता। उनसे शुल्क लेने की कौन कहे उनके आदेश से सब कुछ करना पड़ता है।

आपके वचन (आज्ञा) से ऋणमुक्त करती हूँ, कहकर प्रियंवदा ने राजा को पहचान लेने का भाव प्रदर्शित किया है। राजा होकर शकुन्तला के प्रति इतना पक्षपात न्याय नहीं, बल्कि अनुराग है, यह स्पष्ट है।

पाठा० १. विओअस्स (वियोगस्य)।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) जइ अत्तणो पहविस्सं। (प्रकाशम्) का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुन्धिदव्वस्स वा [यद्यात्मनः प्रभविष्यामि । (प्रकाशम्) का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा।]

प्रियंवदा ने महाराज कहकर और मुस्कराकर क्रमशः राजा और शकुन्तला को आड़े हाथ लिया है। "अथवा महाराजेन" कहकर तो प्रियंवदा ने अति कर दी है। इसका स्पष्ट आशय है कि आप लाख छिपाइये, मैं जान गई हूँ कि आप महाराज दुष्यन्त हैं, अब छिपने की कोशिश न करें। मुस्कराना शकुन्तला को चिढ़ाना तो है ही कि तुम पर दया करने वाला भी हो गया और वह भी महाराज दुष्यन्त, यह संयम का भी सूचक हो सकता है, राजा के सामने जोर से बोलना या हँसना अशिष्टता है।

व्युत्पत्ति—वियोग=वि+युज्+घञ्। वचन=वच्+ल्युट्। विहस्य=वि+हस्+ल्यप्। मोचित=मुच्+णिच्+क्त। अनुकम्पी=अनु+कम्प्+णिनि। महाराज=महत्+राजन्+टच् ["राजन्" समास में आने पर राज हो जाता है (राजाहः सखिभ्यष्टच्)]

समास—अङ्गुल्याः वियोगम् अङ्गुलीवियोगम् (षष्ठी तत्पुरुष)। अविद्यमानम् ऋणम् यस्याः सा अनृणा (बहुव्रीहि)। महान् च असौ राजा च महाराजः तेन महाराजेन (कर्मधारय)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (मन ही मन)—(जाऊँगी) यदि अपना बस चलेगा (विवश हूँ, छोड़ नहीं सकती)। (प्रकाश) मुक्त करने या रोकने योग्य व्यक्ति से तुमसे क्या ?

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (**आत्मगतम्** स्वगतम्) (कथयति यत्) **यदि** चेत्। **आत्मनः** स्वस्य। **प्रभविष्यामि** शक्ष्यामि (**प्रकाशम्** स्पष्टम्) **का**। **त्वम्** भवती। **विसर्जितव्यस्य** मोक्तव्यस्य जनस्य (विषये) **रोद्धव्यस्य** रोधनयोग्यस्य जनस्य (विषये)। **वा**।

हिन्दी व्याख्या—अभी-अभी शकुन्तला जाने को कह रही थी, पर अब जाने की रुकावट न रह जाने पर मन में कहती है कि न जा सकूँगी, अब दुष्यन्त के अनुराग में इतना डूब गई है कि जा नहीं पाती। मेरे प्रति इतना अनुराग कि राजकीय मुद्रा वाली अँगूठी भी देने में सङ्कोच नहीं है जिसके बल पर कोई शासकीय आदेश निकाल सकता है। मुद्रा का देना राज्य देना है; इस तरह दुष्यन्त ने राज्य की भी परवाह नहीं की है। "मैं छोड़ने योग्य होऊँ या रोकने योग्य, इस संबंध में तुमको क्या लेना-देना है" कहकर शकुन्तला बनावटी गुस्सा और कृत्रिम खिसियाहट दिखा रही है, अन्दर-अन्दर अपने सौभाग्य की सराहना कर रही है। मैं अपने मन से रुकूँगी या जाऊँगी और तुम्हारी ऐंठ के विरोध में तुम्हारे वचन के विपरीत करूँगी, कहकर शकुन्तला रुकने का बहाना खोजती और हस्तक्षेप का कृत्रिम विरोध करती है।

शब्दार्थ—प्रभविष्यामि=समर्थ होऊँगी; अधिकार है। विसर्जयितव्य=मुक्त करने योग्य व्यक्ति। रोद्धव्य=रोकने योग्य व्यक्ति।

व्युत्पत्ति—"आत्मनः" में षष्ठी शेषिकी (अधीगर्थदयेषां कर्मणि २।३।५२) है जो ईशनार्थक प्र-पूर्वक भू धातु के योग में आई है।

राजा—(शकुन्तलां विलोक्य आत्मगतम्) किं नु खलु **यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना।** कुतः--

---

विसर्जितव्य = वि + सृज् + णिच् + तव्यत्। रोद्धव्य = रुध् + तव्यत्। (विलियम्स के अनुसार ये दोनों "तव्यत्" प्रत्यय प्राकृत के एक विशिष्ट प्रयोग को बताते हैं जो भाववाची संज्ञा बनाता है)

हिन्दी-अनुवाद—राजा (शकुन्तला को देखकर मन ही मन) क्या यह बात है कि जैसे मैं इसके प्रति (अनुरागी) हूँ, उसी प्रकार यह भी मेरे प्रति (अनुरागी) है। या मेरी इच्छा ने इसके (हृदय) में स्थान पा लिया है। क्योंकि।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (**शकुन्तलाम्**। **विलोक्य** दृष्ट्वा। **आत्मगतम्** स्वगतम् (कथयति यत्) **किम्**। **नु** (वितर्के) **खलु** (वाक्यालङ्कारे) **यथा** यद्वत्। **वयम्** अहम्। **अस्याम्** एतस्याम् (शकुन्तलायाम्)। **एवम्** तथा। **इयम्** एषा (शकुन्तला)। **अपि**। **अस्मान्** माम्। **प्रति** (मद्विषये)। **स्यात्** भवेत्। **अथ वा** यद्वा (पक्षान्तरे) **लब्धः** प्राप्तः **अवकाशः** (शकुन्तलायाः हृदये) स्थानम् यया तादृशी (जाता) **मे** मम। **प्रार्थना** इच्छा (शकुन्तलाप्राप्तिरूपा)। **कुतः** यतः।

हिन्दी-व्याख्या--राजा शकुन्तला को देखकर और सारी परिस्थिति पर विचार रहे हैं—"रूप, जाति आदि बाह्य स्वरूपों का निर्णय हो गया कि क्षत्रिय के व्याहने योग्य है, कुमारी है, व्याह योग्य उम्र है, गुणी है, सुन्दर है तथा मैं युवक, गुणी और राजा होने से पात्र भी हूँ। अब सवाल यह उठता है कि क्या शकुन्तला भी अनुरागी है, जैसे मैं हूँ। यह संशय है जिसका एक पक्ष है अनुरागी हो सकती है और दूसरा पक्ष है अनुरागी नहीं हो सकती है। इसके बाद और सोचने पर या एकाएक उन्हें अनुरागी लगती है और संशय इस संभावना या ज्ञान में बदल जाता है कि यह मेरे प्रति अनुराग रखती है। संशय ही कालान्तर में संभावना, भ्रम या ज्ञान में बदलता है।

यह संशय नायक की सुख और दुःख की दुविधा (की अवस्था) बताता है। इसे नाट्य-शास्त्र में मुख सन्धि का "विधान" नामक अङ्ग कहा गया है:—

सुखदुःखकृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम्।

इसके पूर्व (१।२५ के बाद) "लब्धावकाशो मे मनोरथः" में "लब्धावकाशः" का प्रयोग करने के बाद पुनः "लब्धावकाशा" का प्रयोग कालिदास की शैली से मेल नहीं खाता।

शब्दार्थ—लब्धावकाशा = जिसे (शकुन्तला के हृदय में) स्थान मिल गया है। प्रार्थना = मनोरथ। कुतः = क्योंकि।

व्युत्पत्ति—विलोक्य = वि + लोक् + ल्यप्। गत = गम् + क्त। "प्रति के योग में" (जिसके प्रति उसमें) द्वितीया आती है। लब्ध = लभ् + क्त। अवकाश = अव + काश् + घञ्। प्रार्थना = प्र + अर्थ + युच्।

समास—आत्मनि गतम् आत्मगतम् (सप्तमी तत्पुरुष)। लब्धः अवकाशः यया सा लब्धावकाशा (बहुव्रीहि)।

दोष--"यथा" के साथ "तथा" का प्रयोग होना चाहिए "एवम्" का नहीं।

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना[1]
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥ ३० ॥

हिन्दी-अनुवाद—यद्यपि मेरी बात में बात नहीं मिलाती, तथापि मेरे बोलने पर सामने कान लगाती है और माना कि मेरे मुख के सामने अपना पूरा मुँह नहीं करती, पर इसकी दृष्टि अन्य विषयों में बहुधा नहीं जाती ।

अन्वय—यद्यपि मद्वचोभिः वाचम् न मिश्रयति मयि भाषमाणे कर्णम् अभिमुखम् ददाति । कामम् मदाननसंमुखीना न तिष्ठति अस्याः दृष्टिः तु भूयिष्ठम् अन्यविषया न ।

संस्कृत-टीका—**यद्यपि** । मम **वचोभिः** वचनैः । **वाचम्** (स्वस्य) वाणीम् । **न** । **मिश्रयति** योजयति (संलपति), (तथापि) **मयि** अस्मिन् जने । **भाषमाणे** संलपति (सति) । **कर्णम्** श्रवणम् । **अभिमुखम्** सम्मुखम् । **ददाति** करोति (सावधाना शृणोति) । **कामम्** मन्ये । **मम आननस्य** मुखस्य **संमुखीना** सर्वम् मुखम् दर्शयित्री । **न** । **तिष्ठति** विद्यते । **अस्या** एतस्या (शकुन्तलायाः) **दृष्टिः** लोचने । **तु** किं तु । **भूयिष्ठम्** बाहुल्येन । **अन्यविषया** इतरवस्तुगता । **न** ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ संकोच की वह अवस्था है जब वह कुछ-कुछ दूर हो रहा है, पर पूरी तरह से मिटा नहीं है । यह स्वाभाविकता देखने योग्य है । उत्तर भले न दे, पर ध्यान से सुनती है और आँख के सामने खड़ी भले न हो, दूसरी ओर ध्यान नहीं देती, संकोच से मुझसे बोलती है और आँख नहीं मिलाती पर दूसरी ओर ध्यान न देकर मेरी ही बात सुनती और मेरे ही विषय में सोचती है । बोलती और आँख भी मिलाती पर लोक-लाज या स्त्री-सुलभ स्वाभाविक लज्जा से वैसा नहीं कर पाती ।

यहाँ ऊपर के वाक्य का समर्थन किया गया है कि मेरी इच्छा पूरी हो गई है; मेरा स्थान इसके हृदय में बन गया है । ये लक्षण उस युवती के हैं जो अनुराग के वशीभूत है । पहले व तीसरे चरण में अनुराग-विमुखता दिखाकर दूसरे और चौथे चरण में उसका खण्डन किया गया है जो निषेध का निषेध कर विधि की स्थापना है । जिसके प्रति आदर या अनुराग नहीं होता, उसकी बातें कान लगाकर नहीं सुनी जाती और उसके सामने रहते ऊबकर दूसरी ओर दृष्टि की जाती है जिधर का दृश्य भाये या जिधर रुचिकर दृश्य मिल सके । बहुधा दृष्टि का दूसरी ओर न जाना बताता है कि संकोच के मारे कभी-कभी दूसरी वस्तु देख लेती है, पर उधर रुचि न होने और मेरी ओर संकोच से न देख सकने के कारण सिर झुका लेती है । यह सिर झुकाकर चुप रहना सूचित करता है कि शकुन्तला अनुरागमय दृष्टि से देखना तो चाहती है, पर संकोच से देख नहीं पाती और अपनी विवशता इस तरह जताती है । अन्य किसी ओर न देखने का आशय यह भी है कि दुष्यन्त के बारे में

पाठा०—१ संमुखी सा ।

(नेपथ्ये) भो भोस्तपस्विनः संनिहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत । प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः ।

ही सोचती है । इस श्लोक से सुशील भारतीय कन्या का प्रेम व्यक्त करने का तरीका है । उत्तर देते जाना और बातचीत होते समय आँखें मिलाना ध्यान देने के लक्षण हैं । इनके अभाव में उपेक्षा का भान हो सकता है । "कर्ण अभिमुख करना" संस्कृत में मुहावरे की तरह आता है; आशय है व्यक्ति का ध्यान से सुनना ।

यहाँ मुख, नेत्र आदि की विशेषता होने के कारण विलास-नामक (नायिका का) स्वभावज अलङ्कार है :—

यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् । विशेषस्तु विलासः स्यात् , (साहित्य-दर्पण) ।

साहित्य दर्पण में सङ्कोच की यह स्थिति अनुरागिणी होने का लक्षण बताई गई है :—

दृष्ट्वा दर्शयति व्रीडां संमुखं नैव पश्यति ।
प्रच्छन्नं वा भ्रमन्तं वातिक्रान्तं पश्यति प्रियम् ॥
अन्यैः प्रवर्त्तितां शश्वत् सावधाना च तत्कथाम् ।
शृणोत्यन्यत्र दत्ताक्षी प्रिये बालानुरागिणी ॥

शब्दार्थ—कामम् = माना । संमुखीना = पूरा मुख दिखाये । भूयिष्ठम् = बहुधा । अन्य विषया = दूसरी ओर लगी हुई ।

व्युत्पत्ति—मिश्रयति = मिश्र् + णिच् । "ददाति" का प्रयोग मुहावरेदार है; अंग्रेजी में भी ऐसा ही मुहावरा है जिसमें इसको जगह उधार देना (Lend) आता है; हिन्दी में "कान लगाना" और "ध्यान देना" मुहावरे मिलते-जुलते हैं । भाषमाण = भाष् + शानच् । आनन = आ + अन् + ल्युट् । संमुखीना = सम् + मुख + ख (= ईन) । भूयिष्ठ = भूयस् + इष्ठन् । दृष्टि = दृश् = क्तिन् ।

समास—मम वचोभिः मद्वचोभिः (षष्ठी तत्पुरुष) (समास में "अस्मद्" शब्द एक वचन में "मद्" के रूप में रहता है) । मम आननम् मदाननम्, (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य संमुखीना मदानन-संमुखीना (षष्ठी तत्पुरुष) । अन्यः विषयः यस्याः सा अन्यविषया (बहुव्रीहि)

छन्द—वसन्ततिलका जिसका लक्षण १।८ में देखा जा सकता है ।

अलङ्कार—समुच्चय ।

हिन्दी अनुवाद—(नेपथ्य में) सुनो सुनो तपस्वियों, आश्रम के प्राणियों की रक्षा के लिये उपस्थित हो जाओ । सुनते हैं शिकार के लिए विचरण कर रहे राजा दुष्यन्त आ पहुँचे हैं ।

संस्कृत-टीका—(**नेपथ्ये** सज्जाकक्षे) **भोः** हे । **भोः** हे । **तपस्विनः** तापसाः (सम्बुद्धौ) । **सन्निहिताः** उपस्थिताः (उद्यताः) **तपसः** तपस्यायाः **वनस्य** विपिनस्य (आश्रमस्य) **सत्त्वानाम्** **रक्षायै** रक्षणाय । **भवत** स्त । **प्रत्यासन्नः** समीपे आगतः । **किल** इति श्रूयते । **मृगयायै** (मृगयया वा) पशुघातार्थम् **विहारी** विचरणशीलः । **पार्थिवः** राजा । **दुष्यन्तः** ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा शिकार खेलते हैं, पर यह जान जाने पर कि आश्रम पास है; अतः आश्रम-पोषित पशु मर सकते हैं, वे धर्मानुरोध से वहाँ शिकार न खेलकर दूसरी जगह चले जाते हैं ।

यदि उन्हें या उनके सैनिकों को यह पता न चले कि यह आश्रम या उसका पड़ोस है तो यह कर्त्तव्य तापसों का होता है कि सामने आकर उन्हें सूचित कर दें। इसी हेतु, यहाँ सर्व प्रथम सेना के आने की खबर या संकेत पाकर कोई व्यक्ति चिल्लाकर सब तपस्वियों को सावधान करता है।

(राजा दूर नहीं हैं यह धूल के आश्रम-वृक्षों पर गिरने से सिद्ध है।)

राजा का निकट आना "ईति" नामक विपत्ति कही गई है:—

अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिका खगाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥

यहाँ इस अर्थ में ईति कह सकते हैं कि पशु धोखे में मर सकते हैं और फल-फूल नष्ट होने से शोभा और समृद्धि नष्ट हो सकती है। राजा सेना के साथ आकर फल-फूल खा जायेंगे तो वहाँ के तपस्वी भूखे रह सकते हैं। श्लोक में विदेशी राजाओं का आक्रमण अभिप्रेत अर्थ प्रतीत होता है जो स्थिति यहाँ नहीं है। यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि इन तापसों को फल-फूल की चिंता न होकर वन जन्तुओं की चिंता है।

आजकल उत्तर प्रदेश शासन वन-जन्तु सप्ताह मनाया करता है जिससे लोग दयालु या समझदार होकर दुर्लभ वन्य-प्राणियों का शिकार न किया करें। प्राचीन-काल में दयालु ऋषियों के कारण इस वन्य-जीवन अभियान पर पानी की तरह पैसा खर्च नहीं करना पड़ता था और फिर भी सफलता संदिग्ध नहीं रहती थी।

"भोः" का साथ-साथ दो वार का प्रयोग दूर से चिल्लाने और घबड़ाहट व्यक्त करने के लिये है।

यहाँ "दुष्यन्त" नाम सुनकर शकुन्तला को खुशी होती है जो प्रोत्साहन होने से भेद नामक नाटय अङ्ग की स्थिति है:—भेदः प्रोत्साहना मता।

परदे के अन्दर से कोई बात बताना चूलिका कहलाता है, जैसा यहाँ (परदे के अन्दर स्थित नेपथ्य से) बताया गया है:—"अन्तर्यवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका।"

शब्दार्थ—नेपथ्य=रङ्ग-मंच के बाहर बना प्रसाधन कक्ष। संनिहित=उपस्थित। सत्त्व=जीव (सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु—अमर-कोष)। प्रत्यासन्न=समीप आये हैं। किल=सुनाई पड़ता है (वार्त्ता-सम्भावयोः किल)। मृगया=शिकार। विहारी=विचरण करने वाला। पार्थिव=राजा।

व्युत्पत्ति—संनिहितः=सम्+नि+धा+क्त। सत्+त्व। प्रत्यासन्न=प्रति+आ+सद्+क्त। मृगयाविहारी=मृग+णिच्+श+वि ह+णिनि। पार्थिव=पृथिवी+अण्।

समास—तपसः (षष्ठी तत्पुरुष) तपः साधनम् वा। (शाकपार्थिवादि) वनम् तपोवनम् तस्य सत्त्वाः (षष्ठी तत्पुरुष) तेषाम् रक्षायै (षष्ठी तत्पुरुष) तपोवनसत्त्वरक्षायै। मृगयया (तृतीया तत्पुरुष) मृगयायै (चतुर्थी तत्पुरुष) विहारी मृगयाविहारी।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥ ३१ ॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रमाण यह है कि घोड़ों की टापों की चोट खाई हुई और ढले सूरज के से प्रकाश वाली धूल आश्रम के उन वृक्षों पर टिड्डो दल की तरह टूट रही हैं जिनकी डालों में गीले वल्कल लगे हैं।

अन्वय—तथा हि परिणतारुणप्रकाशः तुरगखुरहतः रेणुः विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमेषु शलभसमूह इव पतति।

संस्कृत-टीका—**तथा हि** प्रमाणम् पुरस्क्रियते यथा। **परिणतस्य** अस्तङ्गतस्य **अरुणस्य रवेः प्रकाशः** दीप्तिः इव **प्रकाशः** दीप्तिः यस्य तादृशः। **तुरगाणाम्** अश्वानाम् **खुरैः** शफैः **हतः** निहतः (उत्थापितः)। **रेणुः** धूलिः। **विटपेषु** शाखासु **विषक्तानि** आसञ्जितानि **जलेन** वारिणा **आर्द्राणि** क्लिन्नानि **वल्कलानि** वृक्षत्वचः येषाम् तेषु। **आश्रमस्य** तपोवनस्य **द्रुमेषु** वृक्षेषु। **शलभानाम्** तदाख्यानाम् कीटानाम् **समूहः** गणः। **इव**। **पतति** आक्रामति।

हिन्दी-व्याख्या—हिन्दी में "शलभ" शब्द पतिंगे के लिये आता है, पर संस्कृत में यह टिड्डी के लिये प्रचलित है जिनका दल लाखों-करोड़ों की संख्या में कभी-कभी निकलता है और जिस क्षेत्र की ओर जाता है, वहाँ की फसल खाकर अण्डे भूमि के अन्दर दे जाता है जो भावी फसल नष्ट करने के लिये शिशुओं को जन्म देते हैं। जिस तरह राजा महा संकट है, उसी तरह टिड्डी-दल भी, दोनों को "ईति" में गिना गया है, (देखिये पृष्ठ १४३ पर अतिवृष्टि०) अतः उपमा सुन्दर बैठाई गई है:—

धूल की मात्रा अधिक देखकर अश्वारोही सेना का अनुमान किया गया है और उसके साथ केवल राजा शिकार खेलते थे जिससे दुष्यन्त के आने का अनुमान किया गया है। धूल टिड्डी दल की तरह उठ रही है, जिसका अन्त नहीं है। टिड्डी-दल भी घण्टों एक ही स्थान से गुजरता रहता है। कृषि की रक्षा की दृष्टि से आज भी टिड्डी दल को ईति मानकर उस प्रदेश को पूर्व सूचना तार आदि के द्वारा भेज दी जाती है जहाँ टिड्डियों का प्रवेश होने वाला है जिससे उनको नष्ट करने या खदेड़ने के उपाय किये जा सकें। टिड्डी दल की पूर्व सूचना की तरह दूसरी ईति—राजागमन—की पूर्व सूचना दी गई है।

स्नान से गीले वल्कलों पर धूल पड़ रही है, अतः उन्हें उठाकर अन्दर रख लेना अच्छा होगा। यह गौण कार्य सुझाया गया माना जा सकता है। राजा के अतिथि-सत्कार की भी यथा संभव व्यवस्था सोचने का सुझाव भी इसमें निहित है।

टिड्डियों का रंग लाल होता है और वे पेड़ पर इस तरह बैठती हैं जैसे गर्द का बादल हो, यह साम्य देखकर ही यहाँ उपमा दी गई है। ढले सूर्य के प्रकाश की तरह या सूर्य के ढले प्रकाश की तरह टिड्डियाँ और धूल दोनों हैं। धूल का रंग पास की लाल मिट्टी के कारण और टिड्डियों का रंग स्वाभाविक है। "ढल रहे सूर्य के कारण प्रकाश (चमक रहे अर्थात् लाल हो रहे)" अर्थ भी लग सकता है पर यहाँ नहीं बैठेगा क्योंकि समय दोपहर का है जो आगे चलकर स्पष्ट होगा।

[1]अपि च

तीव्राघातप्रतिहततरु[2]स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः ।

शब्दार्थ—तुरग=तुर (=त्वरा)+गम्+ड । खुर=टाप । हृतः=पीटी गई अर्थात् उठाई गई (रेणुर्द्वयोः स्त्रियां धूलिः—अमरकोष) विटपः=डाल (विटपः पल्लवे षिङ्गे विस्तारे स्तम्बशाखयोः —विश्वकोष) विषक्त=लगे । विटपविषक्तजलार्द्रवल्कल=जहाँ पानी से गीले वल्कल डालों में टँगे हैं । परिणतारुणप्रकाश=ढले सूर्य के या सूर्य के ढले प्रकाश की तरह प्रकाश वाला । शलभ=टिड्डी (समौ पतङ्गशलभौ—अमरकोष) ।

व्युत्पत्ति—हृत=हृ+क्त । विषक्त=वि+सन्ज्+क्त । परिणत=परि+नम्+क्त । प्रकाश=प्र+काश्+घञ् ।

समास—तुरगाणाम् (षष्ठी तत्पुरुष) खुरैः (तृतीया तत्पुरुष) हृतः तुरगखुरहृतः । विटपेषु विषक्तानि विटपविषक्तानि (सप्तमी तत्पुरुष) । जलेन आर्द्राणि (तृतीया तत्पुरुष) च तानि वल्कलानि च जलार्द्रवल्कलानि (कर्मधारय) । विटपविषक्तानि जलार्द्रवल्कलानि येषाम् तेषु विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु (बहुव्रीहि) । परिणतः च असौ अरुणः च परिणतारुणः (कर्मधारय) तस्य प्रकाशः (षष्ठी तत्पुरुष) परिणतारुणप्रकाशः सः इव प्रकाशः यस्य सः परिणतारुणप्रकाशः (बहुव्रीहि) । शलभानाम् समूहः शलभसमूहः (षष्ठी तत्पुरुष) । आश्रमस्य द्रुमेषु आश्रम द्रुमेषु (षष्ठी तत्पुरुष) ।

छन्द—पुष्पिताग्रा छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है :—"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।"

विषम (१ व ३) चरणों में दो नगण, रगण और यगण तथा सम चरणों (२ व ४) में नगण, दो जगण, रगण तथा गुरु होने पर पुष्पिताग्रा नामक छन्द होता है ।

अलंकार—उपमा (लुप्ता, श्रौती), संसृष्टि, काव्यलिङ्ग (पदार्थ हेतुक) ।

हिन्दी-अनुवाद—इसके अलावा भी ।

संस्कृत-टीका—अपि एतत् अपि कथनीयम् । च ।

हिन्दी-व्याख्या—अपनी बात आगे विस्तृत करने के लिये "अपि च" का प्रयोग होता है । हिन्दी में इससे मिलता-जुलता "पुनश्च" है; अन्तर सिर्फ इतना है कि "पुनश्च" का प्रयोग खत्म हुई बात फिर से शुरू करने के लिये होता है और "अपि च" का प्रयोग सातत्य में । यह सातत्य (दुष्यन्त की) सेना के अनुमान-प्रमाण में परिवर्धन करने के लिये है । इसके तुरंत बाद भड़के हाथी को आता देखकर अनुमान या प्रत्यक्ष के आधार पर "रथ को देखकर भड़का है" यह कारण बताया गया है ।

हिन्दी-अनुवाद—रथ के आलोकन से डरा हुआ हाथी, जिसका एक दाँत जोर की टक्कर से

पाठा—[1] यहाँ से इस श्लोक नहीं मिलता ।　　[2] तरुः ।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥ ३२ ॥

प्रतिघात प्राप्त वृक्ष के तने में लगा है, पैर से अपनी ओर खींची लताओं के मण्डल के सम्पर्क से जिसको जाल में पड़ना पड़ा है, जो हमारी तपस्या का मूर्तिमान् विघ्न प्रतीत होता है और जिसने चितकबरे हिरनों का झुण्ड छिन्न-भिन्न कर दिया है, धर्म-वन (तपोवन) में घुस रहा है।

अन्वयः—स्यन्दनालोकभीतः गजः तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः नः तपसः मूर्तः विघ्नः इव भिन्नसारङ्गयूथः (सन्) धर्मारण्यम् प्रविशति ।

संस्कृत-टीका—**स्यन्दनस्य** रथस्य **आलोकेन** दर्शनेन **भीतः** भयाक्रान्तः। **गजः** हस्ती। **तीव्रेण** प्रचण्डेन **आघातेन** घट्टनेन **प्रतिहतस्य** प्रतिघातप्राप्तस्य **तरोः** वृक्षस्य **स्कन्धे** मूलशाखयोः मध्यभागे **लग्नः** सक्तः **एकः** अन्यतरः **दन्तः** दशनः यस्य सः। **पादेन** चरणेन **आकृष्टा** आवर्जिता या **व्रततिः** लता तस्याः **वलयस्य** मण्डलस्य **आसङ्गेन** सम्पर्केण **सञ्जातः** भूतः **पाशः** बन्धनम् यस्य सः। भीतस्य गजस्य जातिः (=स्वभावः) इयम्। **नः** अस्माकम्। **तपसः** तपस्यायाः। **मूर्तः** देहधारी। **विघ्नः** बाधा **इव** इति प्रतीयते। **भिन्नम्** विभक्तम् **सारङ्गाणाम्** कृष्णसाराणाम् **यूथम्** समूहः येन तादृशः (सन्)। इयम् अपि भीतस्य गजस्य जातिः। **धर्मस्य** तपोरूपस्य **अरण्यम्** वनम् (आश्रमम्)। आगच्छति।

हिन्दी-व्याख्या—रथ देखकर भड़कना विशेषतः जिसने उसे कभी न देखा हो या कम देखा हो हाथी या किसी पशु के स्वभाव को बताता है। उस भड़कने में वह जो-जो करता है, उसका सुन्दर वर्णन है। तपस्वी डर गये हैं कि उससे तपस्या में विघ्न होगा क्योंकि पेड़, लतायें और मृग-यूथ जो तपोवनजनों की संतान और सम्पत्ति हैं नष्ट हो रहे हैं; और भी हानि हो सकती है। पूर्व-सूचना देने का तात्पर्य है कि अन्दर आने से रोकने की कार्यवाही हो या सभी सावधान हो जायँ और नष्ट होने वाली चीजें यथासंभव संभाल दें। घबड़ाहट में हाथी पीछे मुँह कर यह देखता है कि रथ कितनी दूर है (या निवृत्त हुआ या नहीं यदि चलता रथ देखा होगा) जिससे पेड़ से टकराता है और एक दाँत तने में लगता है। जमीन में फैली लतायें पैर में जाल बन जाती हैं, पर वह जरा ठहर कर उन्हें निकालने में असमर्थ है, भय का इतना प्रभाव है। हाथी का अस्वाभाविक दौड़ना देखकर हिरन जिधर रास्ता पाते हैं, उधर भाग जाते हैं जिससे झुण्ड तितर-बितर हो जाता है।

शब्दार्थ—प्रतिहत=प्रतिघात पाया हुआ। स्कन्ध=तने (में)। लग्नैकदन्त=लग गया है एक दाँत जिसका। व्रतति=लता। वलय=मण्डल (गोलाकृति)। आसङ्ग=सम्पर्क। संजातपाश=जिसके लिये फाँस (तैयार) हो गई है। मूर्त=मूर्त्तिमान्। भिन्न-सारङ्ग-यूथ=जिसने सारङ्गों (कृष्णसार मृगों) का यूथ (झुण्ड) तितर-बितर कर दिया है। आलोक=दर्शन।

व्युत्पत्ति—आघात=आ+हन्+घञ्। प्रतिहत=प्रति+हन्+क्त। लग्न=लग्+क्त। आकृष्ट=आङ्+कृष्+क्त। आसङ्ग=आ+सञ्+घञ्। संजात=सम्+जन्+क्त। मूर्त=मुर्च्छ्+क्त। विघ्न=वि+हन्+क। भिन्न=भिद्+क्त। स्यन्दन=स्यन्द्+ल्युट्। आलोक=आङ्+लोक+घञ्। भीत=भी+क्त।

(सर्वा कर्णं दत्त्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः ।)

राजा—(आत्मगतम्) अहो धिक् । सैनिका[1] अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति । भवतु । प्रतिगमिष्यामस्तावत् ।

समास—तीव्रः च सः आघातः च तीव्राघातः (कर्मधारय) तेन (प्रतिहतः) (तृतीया तत्पुरुष) च सः तरुः च (कर्मधारय) तस्य स्कन्धे (षष्ठी तत्पुरुष) लग्नः (सप्तमी तत्पुरुष) एकदन्तः यस्य सः (बहुव्रीहि) । एकः च सः दन्तः च एकदन्तः (कर्मधारय) । पादेन आकृष्टा (तृतीया तत्पुरुष) च सा व्रततिः च (कर्मधारय) । तस्याः वलयस्य (षष्ठी तत्पुरुष) आसङ्गेन (षष्ठी तत्पुरुष) सञ्जातः (तृतीया तत्पुरुष) पाशः यस्य सः (बहुव्रीहि) । भिन्नम् सारङ्गयूथम् येन सः (बहुव्रीहि) । सारङ्गाणाम् यूथम् सारङ्गयूथम् (षष्ठी तत्पुरुष) । धर्मस्य (षष्ठी तत्पुरुष) धर्मार्थम् (शाकपार्थिवादि) वा अरण्यम् धर्मारण्यम् । स्यन्दनस्य आलोकेन (षष्ठी तत्पुरुष) भीतः (तृतीया तत्पुरुष) ।

छन्द—मन्दाक्रान्ता छन्द है जिसका लक्षण १।१५ में देखा जा सकता है ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा । रस भयानक है जिसका स्थायी भाव भय, व्यभिचारी भाव पलायन और विभाव रथ-दर्शन है ।

हिन्दी-अनुवाद—सभी (तीनों लड़कियाँ) कान लगाकर (फिर) जरा-सा घबड़ाई हुईं ।

संस्कृत-टीका—**सर्वाः** समग्राः (कन्याः) । **कर्णम्** श्रवणम् । **दत्त्वा** प्रयोज्य (ध्यानेन श्रुत्वा) । **किंचित्** ईषत् । **इव** (वाक्यालङ्कारे) । **संभ्रान्ताः** व्यग्राः ।

हिन्दी-व्याख्या—"कर्णं दत्त्वा" मुहावरा है जिसको हिन्दी में "कान देकर" (सुनना) और अंग्रेजी में "लेण्ड् इयर्स" कहते हैं । तीनों में समानता विस्मयकारक है ।

कन्यायें अपने बचाव के लिये भाग सकती थीं, पर अतिथि को छोड़ना उचित न समझकर नहीं हटीं, उनसे रक्षा की भी आशा हो सकती है ।

शब्दार्थ—संभ्रान्ताः = घबड़ा गईं ।

व्युत्पत्ति—दत्त्वा = दा + क्त्वा । किंचित् = किम् + चित् (चित्, चन या अपि जोड़कर प्रश्नार्थक पद को अप्रश्नार्थक बनाया जाता है) । संभ्रान्त = सम् + भ्रम् + क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मन ही मन) अहो धिक्कार है । मुझे खोज रहे सिपाही आश्रम में गड़बड़ी पैदा कर रहे हैं । ठीक है । मैं जरा उधर हो लूँ ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । (**आत्मगतम्** स्वगतम्) (कथयति यत्) । **अहो** (आश्चर्ये) **धिक्** (खेदे) **सैनिकाः** भटाः । **अस्मान्** नः **अन्विष्यन्ति** विचिन्वन्ति ये तथाविधाः सन्तः । **तपोवनम्** आश्रमम् । **उपरुन्धन्ति** पीडयन्ति । **भवतु** अस्तु । **प्रतिगमिष्यामः** ताम् दिशम् गमिष्यामः (निवर्त्तिष्यामहे) । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) ।

पाठा०—१ पौराः ।

सख्यौ—अज्ज इमिणा आरण्णअवुत्तन्तेण पज्जाउलम्ह। अणुजाणाहि णो उड-अगमणस्स [आर्य अनेनारण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय।]

हिन्दी-व्याख्या—राजा सेना के सहित शिकार करने गये थे, पर हिरन का पीछा करने में दूर हट गये; सैनिकों का व्यग्र होकर राजा को खोजना स्वाभाविक है। "सैनिक" की जगह "पौर" (नागरिक) पाठ असंगत है, शहर से दूर उस स्थान में नागरिकों के आने का कोई तुक नहीं है। यहाँ सैनिकों के आने से गड़बड़ी स्वाभाविक रूप से हुई है, सैनिकों ने स्वयं किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाई है। धर्म-राज्य में सैनिक कर्त्तव्य-परायण होते हैं। राजा आपत्ति के निवारण के लिये व्यग्र हो उठते हैं। भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है, शकुन्तला के सम्पर्क से अधिक आश्रम की रक्षा को महत्त्व दिया गया है।

शब्दार्थ—उपरुन्धन्ति=पीड़ित करते हैं। प्रतिगमिष्यामः=लौटता हूँ।

व्युत्पत्ति—गत=गम्+क्त। अन्वेषी=अनु+इष्+णिनि।

समास—आत्मनि गतम् आत्मगतम् (सप्तमी तत्पुरुष)।

हिन्दी अनुवाद—दोनों सखियाँ—श्रीमान्, इस जङ्गली (हाथी) के समाचार से हम व्याकुल हैं। पर्ण-कुटी में जाने की (कृपया) आज्ञा दें।

संस्कृत-टीका—सख्यौ आल्यौ (अनसूया प्रियंवदा च) (कथयतः यत्) **आर्य** महोदय। **अनेन** पूर्ववर्णितेन। **आरण्यकस्य** वन्यस्य (हस्तिनः) **वृत्तान्तेन** चर्चया। **पर्याकुलाः** व्याकुलाः। **स्मः**। **अनुजानीहि** आज्ञापय। **नः** अस्मान् (आवाम्) **उटजे** पर्णशालायाम् **गमनाय** प्रयाणाय।

हिन्दी व्याख्या—स्त्रियों की सहज भीरुता का यह चित्रण तत्कालीन नारी का आज की अवस्था में ही होने की स्थिति बताता है। यह बात आगे भी आयेगी जहाँ शकुन्तला दुष्यन्त के स्वीकार न करने पर वैसी तेजस्विता और निर्भीकता नहीं दिखाती जैसी महाभारत की शकुन्तला ने दिखाई है।

संस्कृत में लोट् लकार का प्रयोग कर देने के बाद "कृपया" लगाने की जरूरत नहीं होती। अंग्रेजी के ढंग पर संस्कृत में हर स्थान पर कृपया जोड़ना संस्कृत की प्रकृति के विरुद्ध है। यों बहुत अधिक विनय-शीलता दिखाने के लिये शङ्कराचार्य के "गुरो कृपालो कृपया वदैतद्" श्लोकांश के अनुसार जोड़ने में हर्ज नहीं है।

शब्दार्थ—आरण्यक=जंगली। वृत्तान्त=समाचार (संस्कृत में समाचार का अर्थ खबर नहीं है, सन्देह, वृत्त, वृत्तान्त, चर्चा, वार्त्ता, कथा, उदन्त, गाथा आदि शब्द तदर्थ प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में तुलसीदास ने "समाचार" शब्द का खबर के अर्थ में प्रयोग किया है, ऐसा माना जाता है)। पर्याकुल=व्याकुल। उटज=पर्ण-शाला

व्युत्पत्ति—आरण्यक=अरण्य+वुञ् (पथ्यध्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वक्तव्यम्—वार्त्तिक)। गमन=गम्+ल्युट्।

समास—आरण्यकस्य वृत्तान्तेन (षष्ठी तत्पुरुष)। उटजे गमनाय [illegible] (सप्तमी तत्पुरुष)।

राजा—(ससंभ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः । वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे । (सर्वं उत्तिष्ठन्ति ।)

सख्यौ—अज्ज असंभाविद[1] अदिहि सक्कारा[2] भूओ वि पेक्खणणिमित्तं लज्जेमा अज्जं विण्णविदुं । [आर्य असंभावितातिथिसत्कारा भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जामह आर्यं विज्ञापयितुम् ।]

हिन्दी-अनुवाद—राजा (घबड़ाहट के साथ)—आप लोग चलें । मैं भी ऐसा प्रयत्न करूँगा कि आश्रम को पीड़ा न हो । (सभी उठ खड़े होते हैं ।)

संस्कृत टीका—राजा नृपः (सम्भ्रमेण व्यग्रतया सह) (कथयति यत्) । गच्छन्तु यान्तु । भवत्यः यूयम् । वयम् अहम् । अपि । आश्रमस्य तपोवनस्य (लक्षणया तपोवनवासिनाम् जनानाम्) पीडा क्लेशः । यथा येन प्रकारेण । न भवति स्यात् । तथा तेन प्रकारेण । प्रयतिष्यामहे प्रयत्नम् करिष्यामः । (सर्वे सकलाः प्रियंवदा अनसूया राजा च । उत्तिष्ठन्ति ।) ।

हिन्दी-व्याख्या—भगदड़ ऐसी मची है कि राजा ऐसे समय स्त्रियों का खुले में रहना उचित नहीं समझते । हाथी क्षति पहुँचा सकता है या उसके भयानक उपद्रवों से हुई व्यग्रता हानि-कारक हो सकती है । स्वयं दुष्यन्त वहीं खड़े रहकर यदि उनकी रक्षा और सान्त्वना में समर्थ हो भी जायँ तो आश्रम का शेष भाग उपेक्षित होने से सङ्कट में पड़ सकता है । यहाँ "आश्रम" के प्रयोग से स्पष्ट है कि राजा की दृष्टि में भावना से ऊपर कर्त्तव्य है; ऐसे संस्कार ही बन गये हैं ।

यथा और तथा का साथ-साथ प्रयोग ध्यान देने योग्य है । संस्कृत में यह बहुत प्रचलित प्रयोग है । "यथा" वाले वाक्य में वर्त्तमान काल का और "तथा" वाले (वाक्य) में भविष्य काल का प्रयोग भी याद रखने योग्य है । यह अंग्रेजी के प्रयोग से हूबहू मिलता है ।

"सर्वे" में पुंलिङ्ग बहु-वचन महत्त्व पूर्ण है । जब स्त्री-लिङ्ग और पुंलिङ्ग के अनुसार विशेषण या सर्वनाम सामान्य (उभयनिष्ठ) रखना होता है तब पुंलिङ्ग की प्रधानता होती है; वचन में परिवर्तन नहीं होता । यदि नपुंसकलिङ्ग शब्द भी आ जाय तो उसी की प्रधानता होती है ।

शब्दार्थ—संभ्रम = उद्वेग; डर, शीघ्रता ।

व्युत्पत्ति—"उत्तिष्ठन्ति" में आत्मनेपद नहीं हुआ; सामान्य रूप से उद् उपसर्ग लगने पर "स्था" धातु आत्मनेपद हो जाती है, पर उठने के अर्थ में नहीं होती (उदोऽनूर्ध्वकर्मणि) ।

समास—सम्भ्रमेण सह ससंभ्रमम् (बहुव्रीहि) । आश्रमस्य पीडा आश्रम-पीडा (षष्ठी तत्पुरुष) ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों सखियाँ—श्रीमन् , अतिथि का सत्कार न करने वाली हमें श्रीमान् से पुनः दर्शन करने की प्रार्थना करने में लज्जा आती है ।

संस्कृत-टीका—सख्यौ आल्यौ (कथयतः यत्) । आर्य श्रीमन् । असंभावितः अतिथेः प्राघुणिकस्य (दुष्यन्तस्य) सत्कारः पूजा याभिः ताः (वयम्) । भूयः पुनः । अपि । प्रेक्षणनिमित्तम् दर्शनार्थम् । लज्ज महे लज्जिताः भवामः । आर्यम् श्रीमन्तम् । विज्ञापयितुम् प्रार्थयितुम् ।

पाठा०—१ सक्कारं (सत्कारं) । २ सक्कारं अदिहिविसेसं भूओ वि दस्सणनिमित्तं उज्झोमा (असंभावितसत्कारमतिथिविशेषं भूयोऽपि दर्शननिमित्तमुज्झामः)

राजा—मा मैवम् । दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि ।

शकुन्तला—[1] अणसूए, अहिणवकुससूईए परिक्खदं में चलणं । कुरवअसाहापरिलग्गं च वक्कलं । दाव परिपालेध मं । जाव णं मोआवेमि । [अनसूये, अभिनवकुशसूच्या परिक्षत मे चरणम् । कुरबकशाखापरिलग्नं च वल्कलम् । तावत् परिपालयतं मां यावदेतन्मोचयामि ।]

(राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता ।)

हिन्दी-व्याख्या—आज कल की शैली ठीक प्राचीन शैली का अनुकरण है । "हम आपका आतिथ्य नहीं कर सकी हैं; अब किस मुँह से अनुरोध करें कि आप पुनः दर्शन दीजियेगा ।" आशय है । इसके साथ ही छिपी अभ्यर्थना भी है कि अतिथि-सत्कार न करने से हम लज्जित हैं; क्षमा करें और आप पुनः दर्शन दें ।

शब्दार्थ—सम्भावित=कृत । असम्भावितातिथिसत्कारा:=(हम) जिन्होंने अतिथि-सत्कार नहीं किया है (निमित्तम्=(के) लिये "अर्थम्" के अर्थ में "निमित्तम्" का प्रयोग ध्यान देने योग्य है) । विज्ञापयितुम्=कहने या प्रार्थना करने के लिये (हिन्दी में विज्ञापन का अर्थ प्रचारार्थ सूचना है, पर संस्कृत में यह निवेदन के अर्थ में आता है) ।

व्युत्पत्ति—सम्भावित=सम्+भू+णिच्+क्त । सत्कारं=सत्+कृ+घञ् । प्रेक्षण=प्र+ईक्ष्+ल्युट् । विज्ञापयितुम्=वि+ज्ञा+णिच्+तुमुन् ।

समास—न संभावितः (नञ् तत्पुरुष) अतिथेः सत्कारः (षष्ठी तत्पुरुष) याभिः ताः (बहुव्रीहि) । प्रेक्षणम् निमित्तं यत्र (बहुव्रीहि) तद् यथा स्यात् तथा ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—नहीं; ऐसा नहीं । आप लोगों के दर्शन से ही मेरे भाग्य धन्य हैं ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (कथयति यत्) । **मा** न । **मा** न । **एवम्** इत्थम् । **दर्शनेन** प्रेक्षणेन । **एव** । **भवतीनाम्** युष्माकम् बालानाम् । **पुरस्कृतः** समाजितः । **अस्मि** ।

हिन्दी व्याख्या—हिन्दी में भी ठीक ऐसे ही उत्तर की परिपाटी है बोल-चाल में गद्य के नियम पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जिससे षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सम्बद्ध शब्द (दर्शनेन) के पूर्व न होकर बाद में हुआ है । संस्कृत में "पुरस्" का अर्थ "आगे" और "कृत" का अर्थ "किया गया" होने से पुरस्कार का अर्थ "सम्मान" या "बढ़ावा" है; हिन्दी में अर्थपरिवर्तन पर ध्यान देना चाहिये ।

शब्दार्थ—पुरस्कृत=सम्मानित ।

व्युत्पत्ति—दर्शन—दृश्+ल्युट् । पुरस्कृत=पुरस्+कृ+क्त ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—अनसूया, कुश की नई नोक से मेरा पैर बिंध गया है और वल्कल कुरबक की डाली में फँस गया है । जरा मेरी प्रतीक्षा करो जिससे इसे मुक्त कर सकूँ ।

(राजा को देखती हुई बहाने से देरकर दोनों सखियों के साथ बाहर चली गई ।)

पाठा०—१ (शकुन्तला के ये वाक्य नहीं मिलते हैं ।)

राजा—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति । यावदनुयात्रिकान् समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि । न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्त्तयितुम् । मम हि—

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) (हे) अनसूये (सम्बुद्धौ)। अभिनवया नूतनया कुशस्य दर्भस्य सूच्या तीक्ष्णेन अग्रभागेन। परिक्षतम् विद्धम्। मे मम। चरणम् पदम्। कुरबकस्य कण्टकबहुलस्य कुसुमद्रुमविशेषस्य शाखासु विटपेषु परिलग्नम् सक्तम्। च। वल्कलम् वृक्षत्वक्पटम्। तावत् तदवधि। परिपालयतम् (युवाम्) प्रतीक्षेथाम्। माम्। यावत् यदवधि। एतत् इदम् (वल्कलम्)। मोचयामि मुक्तम् करोमि।

[राजानम् नृपम्। अवलोकयन्ती पश्यन्ती। व्याजेन मिषेण सह तत् यथा स्यात् तथा। विलम्ब्य विलम्बं कृत्वा। सह सार्धम्। सखीभ्याम् आलीद्वयेन। निष्क्रान्ता रङ्गमञ्चात् बहिः गता (शकुन्तला)।]

हिन्दी व्याख्या—यहाँ रङ्गमञ्चनिदेश से यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो पैर में काँटा गड़ा है और न वल्कल डाली में फँसा है। पतली गली में होने या दूर पड़ जाने से शकुन्तला को बहाना बनाने का अवसर मिल गया है जिससे दुष्यन्त को अधिक से अधिक देख सके।

शब्दार्थ—सूचि=(सूची)=तेज नोक।

व्युत्पत्ति—सूचि=सूच+इन्। सूच्+ङीप्। परिक्षत=परि+क्षण्+क्त। परिलग्न=परि+लग्+क्त। अवलोकयन्ती=अव+लोक+शतृ। व्याज=वि+अज्+घञ्। विलम्ब्य=वि+लम्ब्+ल्यप्। "सह" और पर्याय-वाची साकम्, समम्, सार्धम्, सहितम् आदि के योग में तृतीया आती है। निष्क्रान्त=निस्+क्रम्+क्त।

समास—कुशस्य सूची कुशसूची (षष्ठी तत्पुरुष)। अभिनवा च सा कुशसूची (सूचिः) च अभिनवकुशसूची (सूचिः) तया (कर्मधारय)। कुरबकस्य शाखासु (षष्ठी तत्पुरुष) परिलग्नम् (सप्तमी तत्पुरुष) व्याजेन सह सव्याजम् (बहुव्रीहि)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा शहर जाने की उत्सुकता शिथिल हो गई है। जरा अनुयायियों से मिलकर उन्हें तपोवन से कुछ दूर रख दूँ। शकुन्तला के लगाव से अपने को मुक्त करने में बिलकुल समर्थ नहीं हूँ। निश्चय ही (क्योंकि) मेरा—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (कथयति यत्)। मन्दम् शिथिलीभूतम् औत्सुक्यम् उत्कण्ठा (तज्जन्या त्वरा) यस्य तादृशः। अस्मि। नगरे पुरे गमनम् प्रयाणम्। प्रति विषये। यावत् प्रथमम्। अनुयात्रिकान् अनुसरणलग्नान् (सैनिकान्)। समेत्य सम्भूय। नातिदूरे अनतिदूरे (समीपे एव)। निवेशयामि स्थापयामि। न। खलु निश्चयेन। शक्नोमि-पारयामि। शकुन्तलायाः व्यापारात् तद्विषयकलग्नतायाः आत्मानम् मनः। निवर्त्तयितुम् निवृत्तम् कर्तुम्। मम। हि निश्चयेन यतः वा।

हिन्दी व्याख्या—उधर शकुन्तला प्रेम-पाश में इस तरह फँस गयी है कि बहाना बनाकर

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्थितं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥ ३३ ॥

(निष्कान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः

दुष्यन्त को देखती है और इधर दुष्यन्त का मन नगर जाना नहीं चाहता। शासन प्रबन्ध देखने के महान् उत्तरदायित्व की ओर से यह उदासीनता भी भावना की वशवर्त्तिता से संभव हो गयी है। सैनिकों को देखकर तपोवन में व्याकुलता का वातावरण हो गया है, अतः उन्हें कुछ दूर ही रखने के लिए राजा प्रवृत्त होते हैं। बहुत दूर नहीं रखते जिससे आसानी से और बार-बार भेंट हो सके। इससे यह भी सूचित होता है कि राजा कुछ समय आश्रम में रहना चाहते हैं ज्यादा नहीं; साथ के लिए इसी से सैनिकों को रोकते हैं।

शब्दार्थ—मन्दौत्सुक्य=(दुष्यन्त) जिनकी उत्सुकता मन्द हो गयी है। अनुयात्रिक=पीछे चलने वाले (सैनिक)। नातिदूर=अधिक दूर नहीं (पास ही) (यह प्रयोग प्रचलित है)। व्यापार=फँसना, लगाव।

व्युत्पत्ति—औत्सुक्य=उत्सुक+ष्यञ्। गमन=गम्+ल्युट्। "प्रति" के योग में द्वितीया है। यात्रिक=यात्रा+ठन्। समेत्य=सम्+आ+इ+ल्यप् (जिससे मिला जाय वह द्वितीया विभक्ति में रखा जाता है, पर "मिल्" धातु का प्रयोग होने पर सप्तमी या तृतीया आती है। "दूर" के योग में पंचमी या षष्ठी विभक्ति होती है। व्यापार=वि+आ+पृ+घञ्। निवर्तयितुम्=नि+वृत्+णिच्+तुमुन्।

समास—मन्दम् औत्सुक्यम् यस्य सः मन्दौत्सुक्यः (बहुव्रीहि)। नगरे गमनम् नगरगमनम् (सप्तमी तत्पुरुष)। शकुन्तलायाः व्यापारात् (षष्ठी तत्पुरुष)।

हिन्दी-अनुवाद—वायु की विपरीत दिशा में ले जाये जाते हुए झण्डे के रेशमी वस्त्र की भाँति देह आगे जाती है और स्थिर चित्त पीछे दौड़ता है।

अन्वय—प्रतिवातम् नीयमानस्य केतोः चीनांशुकम् इव शरीरम् पुरः गच्छति असंस्थितम् चेतः (च) पश्चात् धावति।

संस्कृत-टीका—**प्रतिवातम्** वातस्य वायोः प्रतिकूलम् **नीयमानस्य** केनापि चाल्यमानस्य। **केतोः** ध्वज (-दण्ड-) स्य। **चीनांशुकम्** चीनदेशोद्भववस्त्रम्। **इव शरीरम्** देहः **पुरः** सम्मुखम् (सैन्यम् प्रति) **गच्छति** याति। **असंस्थितम्** चञ्चलम्। **चेतः** मनः (च)। **पश्चात्** पृष्ठभागम् (शकुन्तलाम् प्रति) **धावति** द्रुतं गच्छति। **निष्क्रान्ताः** रङ्गमञ्चात् बहिः गताः **सर्वे** सकलाः जनाः। **इति** समाप्तः **प्रथमः** आद्यः। **अङ्कः** नाट्यविभागः।

हिन्दी व्याख्या—यदि कोई हवा से झण्डे को दूर रखने के लिये वह जिस ओर से आती है, उस ओर न ले जाकर विपरीत दिशा की ओर ले जाय, तो कपड़ा उस ओर न जाकर (क्रिया की प्रतिक्रिया के कारण) पीछे (हवा जिधर से आती है उधर) दौड़ता है, उसी प्रकार शासन (सैनिकों

को बहुत पास न आने देने का कर्त्तव्य), शकुन्तला से शरीर को दूर हटाता है तो मन उससे मिलने के लिए भाग आता है। हटाने वाला, हवा, झण्डा, झण्डे की दिशा, कपड़ा और कपड़े की दिशा क्रमशः शासन, शकुन्तला, शरीर, सैनिकों की दिशा, मन और शकुन्तला की दिशा (आश्रम) के उपमान हैं।

ऊपर आ चुका है कि शकुन्तला दोनां सखियों के साथ बाहर चली गई है। यहाँ फिर आया है कि सभी (कम से कम ३) बाहर जाते हैं। "सर्वे" यह बताने के लिये है कि रङ्ग-मञ्च अब बिलकुल खाली हो गया है जो अङ्क-समाप्ति का सूचक है।

शरीर का जाना और मन का दौड़ना क्रिया और प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, पर मन की गति अधिक तेज है। अतः उसको दौड़ता हुआ दिखाया गया है। यह मन की उत्कण्ठा और द्रुत गति को बताता है।

कालिदास के समय में चीनी कपड़े का भारत आना चीन और भारत के तत्कालीन व्यापार-संबंध का पोषक है। हवा के उल्टे रुख जाने का अर्थ हवा का विरोध न होकर उससे मिलना है।

शब्दार्थ—असंस्थित = चंचल। अंशुक = वस्त्र। केतु = झण्डा। प्रतिवात = हवा के उल्टे रुख। अङ्क = नाटक का परिच्छेद (अङ्कः स्थानेऽन्तिके मन्तौ रूपकोत्सङ्गलक्ष्मसु। नाटकादिपरिच्छेदे—विश्वकोष)।

व्युत्पत्ति—असंस्थित = अ + सम् + स्था + क्त। नीयमान = नी + (कर्मवाच्य) शानच्। निष्क्रान्त = निस् + क्रम् + क्त। प्रथम = प्रथ् + अमच्।

समास—चीनस्य अंशुकम् चीनांशुकम् (षष्ठी तत्पुरुष)। वातम् प्रति प्रतिवातम् (अव्ययीभाव)।

छन्द—आर्या है, जिसका लक्षण १।२ में देखा जा सकता है।

अलङ्कार—उपमा (श्रौती)। अतिशयोक्ति। "मुख" सन्धि का "भेद" नामक अङ्ग (भेदः संहतिभेदनात्—साहित्यदर्पण)।

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति विदूषकः]

विदूषकः—(निःश्वस्य) भो हदो ह्मि एदस्स मिअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो । अअं मिओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झन्दिणेवि गिम्हे विरलपादवच्छाआसुं वणराइसुं आहिण्डिअ पत्तसङ्करकसाअविरसाइं उण्णकडुआइं पिज्जन्ति गिरिणईसलिलाइं ।

[भो हतोऽस्मि एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णः । अयं मृगः अयं वराहः अयं शार्दूल इति मध्यन्दिनेऽपि ग्रीष्मे विरलपादपच्छायासु वनराजिषु आहिण्डय पत्रसङ्करकषायविरसानि उष्णकटुकानि पीयन्ते गिरिणदीसलिलानि ।]

हिन्दी अनुवाद—द्वितीय अङ्क [इसके बाद विदूषक रङ्ग-मञ्च पर दिखलाई पड़ता है ।] विदूषक (ठंढी साँस लेकर)—अरे ! इस शिकारी स्वभाव वाले राजा की दोस्ती से निराश में (तो) मारा गया । "यह हिरन !", "यह सुअर", "यह बाघ" यह कहते हुए दोपहरी में भी दूर-दूर लगे पेड़ों की छाँह वाले वनों में मारे-मारे फिरकर पहाड़ी नदियों का पत्तियों के मिलने से कसैला, फीका, गरम और कड़ुआ पानी पी रहे हैं ।

संस्कृत-टीका—**द्वितीयः** । **अङ्कः** नाटयपरिच्छेदः । **ततः** तदनन्तरम् । **प्रविशति** रङ्ग-मञ्चे आविर्भवति । **विदूषकः** । **विदूषक—निःश्वस्य** (विषादव्यञ्जकम् इदम्) । **भोः** हन्त । **हतः** सङ्कटपतितः । **अस्मि** । **एतस्य** अस्य (दुष्यन्तस्य) **मृगयाशीलस्य** मृगयासक्तस्य । **राज्ञः** नृपस्य । **वयस्यभावेन** सख्येन । **निर्विण्णः** विरक्तः नैराश्ययुक्तः । **अयम** एषः । **मृगः** हरिणः । **अयम्** एषः । **वराहः** शूकरः । **अयम्** एषः । शार्दूलः व्याघ्रः । **इति** एवम् कथयित्वा । **मध्यन्दिने** मध्याह्ने । **अपि** । (असह्यक्लेशप्रदे) । **ग्रीष्मे** तपतौ । **विरलानाम्** दूरवर्तिनाम् **पादपानाम्** वृक्षाणाम् **छाया** अनातपः यासाम् । तासु । **वनानाम्** विपिनानाम् **राजिषु** पङ्क्तिषु । **आहिण्ड्य** परिभ्रम्य । **पत्राणाम्** दलानाम् **सङ्करेण** मिश्रणेन **कषायाणि विरसानि** स्वादरहितानि । **उष्णानि** तप्तानि **कटुकानि** किञ्चित् कटूनि **पीयन्ते** । **गिरेः** पर्वतस्य **नदीनाम्** सरिताम् **सलिलानि** जलानि ।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ शिकारी की परेशानियाँ सुन्दर ढंग से चित्रित हैं । विदूषक के अभिनय से वे हास्य-रस का आस्वादन कराने में भी समर्थ हैं ।

विदूषक का कार्य हँसाना है । यह राजा का ब्राह्मण मित्र होता है । संस्कृत नाटकों में इसका विशिष्ट स्थान है । उल्टी बातें कहकर और भोजन की चर्चा छेड़कर विनोद का वातावरण तैयार करना इसका काम है । विश्वनाथ के अनुसार यह राजा का शृङ्गार-सहायक, भक्त, परिहासनिपुण,

अणिअदवेलञ्च उण्णोण्णामंसभूइट्ठं भुज्जीअदि [अनियतवेलं च उष्णोष्णमांसभूयिष्ठं भुज्यते ।]

तुरअगआणाञ्च शद्देण रत्तिं पि मे णत्थि पकामसुइदव्वं । [तुरगगजानां च शब्देन रात्रावपि मे नास्ति प्रकामशयितव्यम् ।]

महन्ते ज्जेव पच्चूसे दासीए पुत्तेहिं साउणिअलुद्धेहिं कण्णोपघादिणा वणगमण-कोलाहलेण पडिबोधिदह्मि । [महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शाकुनिकलुब्धैः कर्णोपघातिना वन-गमनकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि ।]

मानिनी-मान तोड़ने वाला, शुद्ध तथा कुसुम, वसन्त आदि नाम-धारी, कार्य, शरीर, वेश, भाषा आदि से हँसाने वाला, कलह-प्रिय, स्व-कार्य-निपुण और प्राकृत में कहने वाला होता है:—

शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः ।
भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभञ्जनाः शुद्धाः ॥
कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥ (सा० द०)

विदूषक प्राकृत भाषा में बोलता है:—

विदूषकविटादीनां पाठ्यन्तु प्राकृतं भवेत् ।

गिरे पत्तों से नदी का पानी कसैला हो जाता है । धूप से उसमें विरसता आती है ।

शब्दार्थ—निःश्वस्य=ठंडी साँस लेकर ('निःश्वस्य' प्रयोग अधिक मिलता है ।) भोः= विषाद सूचक अव्यय (भोस्तु सम्बोधनविषादयोः—मे०) । मृगयाशीलः जिसके स्वभाव में शिकार खेलना हो । वयस्यभाव=वयस्यता । वयस्य समान उम्र के मित्र—लंगोटिया यार—को कहते हैं और "भाव" शब्द विशेषण को भाव-वाचक संज्ञा बनाने के लिये आता है, हिन्दी में ऐसा प्रयोग मिलता है । निर्विण्ण=निर्वेद (वैराग्य, आत्म-निन्दा, निराशा, पश्चात्ताप) से युक्त । मध्यन्दिन=दोपहर । विरल=जो घना नहीं है, पादप=पेड़ (पाद-पैर या जड़—से पीने वाला होने से पेड़ पादप कहा जाता है) । राजि=पाँत । 'वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिश्रेणीलेखास्तु राजयः'—अ०) । सङ्कर= मिश्रण । कषाय=कसैला । विरस=फीका । कटुक=कुछ कड़ुआ ।

समास—दिनस्य मध्यम् मध्यन्दिनम् (अलुक्) ।

व्युत्पत्ति—आहिण्ड्य=आङ्+हिण्ड्+ल्यप् । "नदी" का "न्" "गिरिनद्यादीनां वा" वार्त्तिक से विकल्प "ण्' हो गया है ।

हिन्दी-अनुवाद—बेवक्त गर्म माँस से भरा भोजन करते हैं । घोड़े और हाथियों की आवाज से रात में भी पर्याप्त नींद नहीं आती ।

बहुत तड़के ही दासीपुत्र (नीच) लालची चिड़ीमारों ने जंगल चलने के लिये किये गये कान (के पर्दे) फोड़ने वाले शोर से जगा दिया है ।

संस्कृत-टीका—नियता निश्चिता वेला कालः यत्र तत् नियतवेलम्, न नियतवेलम् **अनियत-**

एत्तिकेण वि मे पीडा ण संवुत्ता जदो जदो अश्रं गण्डस्स उवरि विप्फोडश्रो संवुत्तो। [एतावतापि मे पीडा न संवृत्ता यतः अयं गण्डस्य उपरि विस्फोटकः संवृत्तः]

तेण हि किल अह्मेसुं अवहीणेसुं तत्थभअदा मिअआणुसारिणा अस्समपदं पविट्ठेण मम अधएणदाए सउन्तला णाम कावि तवस्सिकेण्णा दिट्ठा, तं पेक्खिअ सम्पदं णअर-गमणस्स कथम्पि ण करेदि। [तेन हि किल अस्मासु अवहीनेषु तत्रभवता मृगानुसारिणा आश्रमपदं प्रविष्टेन मम अधन्यतया शकुन्तला नाम कापि तपस्विकन्यका दृष्टा, तां प्रेक्ष्य साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति।]

एव ज्जेव चिन्तअस्स मे पहादा अच्छिसुं रअणी। का गदी। जाव णं किदआआर-परिग्गहं पिअवअस्सं पेक्खामि। [एवमेव चिन्तयतः मे प्रभाता अक्ष्णोः रजनी। का गतिः यावदेनं कृताचारपरिग्रहं प्रियवयस्यं प्रेक्षे।]

वेलम्। च। उष्णम् उष्णम् उष्णप्रकारम् **मांसम्** आमिषम् (एव) **भूयिष्ठम्** सर्वाधिकम् यस्मिन् (वस्तुनि) तत्। **भुज्यते** खाद्यते।

तुरगाणाम् अश्वानाम् **गजानाम्** हस्तिनाम्। **च**। **शब्देन** आरावेण, **रात्रौ** निशायाम्। **अपि** (यदा विश्रामः अपेक्षितः)। **मे** मम। **न**। **अस्ति**। **प्रकामम्** पर्याप्तम् **शयितव्यम्** निद्रा।

महति। एव। प्रत्यूषे उषसि। **दास्याः पुत्रैः** अतिनीचैः। **शाकुनिकैः** आखेटकैः **लुब्धैः** लोभपरायणैः। **कर्णोपघातिना** श्रवणोद्वेगकारिणा। **वने** विपिने यत् **गमनम्** प्रयाणम् तस्मिन् (काले) तस्मै वा यः **कोलाहलः** कलकलः तेन। **प्रतिबोधितः** जागरितः। **अस्मि**।

हिन्दी व्याख्या— समय पर भोजन न मिलना और उसमें रुचि के अनुकूल उष्णता न होना कष्टकर है। शिकार के लोभ से खाने का समय सीमित रखने से गर्म मांस ठंडा करने का समय भी नहीं मिलता। शिकारियों के साथ घोड़े और हाथी जाते हैं जो रात को नये वातावरण और हिंसक पशुओं की आवाज से विशेष शोर करते हैं। स्वाभाविक रूप से भी पशु रात में बोलते हैं; शिकारी को उनके पास सोना पड़ता है जिससे नींद में खलल पड़ता है। तड़के पशुओं को गहरी नींद आ भी गई तो शिकारी हल्ला मचाये बिना नहीं रहते

शब्दार्थ— उष्णोष्ण— गर्म प्रकार का (प्रकारे गुणवचनस्य)। प्रकाम = पर्याप्त (कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्—अ०)। प्रत्यूष = तड़के (सूर्योदय से पहले ४ नाड़ी का समय)। दास्याः पुत्रैः = अतिनीच। शाकुनिक = चिड़ीमार।

व्युत्पत्ति— शाकुनिक = शकुनि + ठञ्।

समास— दास्याः पुत्रैः (अलुक्) (अलुक् समास में परिवर्तन नहीं होता)।

हिन्दी अनुवाद— इतने पर भी मेरा दुःख समाप्त नहीं हुआ है क्योंकि यह (आगे बताया जा रहा है) घेघे के ऊपर फोड़ा हो गया है। सुना है कि हम लोगों के पीछे छूट जाने पर हिरन का पीछा करने वाले उन श्रीमान् जी ने तपोवन में प्रवेश कर मेरे दुर्भाग्य से शकुन्तलानामक कोई तापस-कुमारी देख ली है; उसे देख कर वे अब नगर जाने की चर्चा तक नहीं करते। यही सोचते-

(परिक्रम्यावलोक्य च) एसो बाणासणहत्थो हिअयणिहिदपिअअणो वणपुप्फमालाहारी इदो ज्जेव आअच्छदि पिअवअस्सो । [एष बाणासनहस्तः हृदयनिहितप्रियजनः वनपुष्पमालाधारी इत एव आगच्छति प्रियवयस्यः ।]

सोचते मेरे नेत्रों के खुले रहते ही रात प्रभात में बदल गयी। क्या उपाय है ? अच्छा नित्यकृत्य समाप्त कर चुके प्यारे मित्र को देख लूँ।

संस्कृत टीका—एतावता उक्तेन क्लेशेन। **अपि। मे** मम। **पीडा** क्लेशः। **न। संवृत्ता** समाप्ता। **यतः**। अयम् एषः (विवक्षितः)। **गण्डस्य** गलगण्डस्य। **उपरि। विस्फोटकः** असह्यपीडाकारकः व्रणविशेषः। **संवृत्तः** जातः।

तेन एतेन (दुष्यन्तेन) **हि**। **किल** इति श्रूयते। **अस्मासु** मयि सैन्ये च। **अवहीनेषु** मन्दगतित्वात् पश्चात् पतितेषु। **तत्रभवता** आदरणीयेन। **मृगानुसारिणा** हरिणलग्नेन। **आश्रमस्य** तपोवनस्य **पदम्** देशम्। **प्रविष्टेन** आगतेन। **मम** मे। **अधन्यतया** दौर्भाग्येन। **शकुन्तला**। **नाम**। **कापि** काचन। **तपस्विनः** तापसस्य **कन्यका** कुमारिका। **दृष्टा** अवलोकिता। **ताम्** पूर्वोक्ताम्। **प्रेक्ष्य** दृष्ट्वा। **साम्प्रतम्** अधुना। **नगरे** पुरे **गमनस्य** प्रयाणस्य। **कथाम्** चर्चाम्। **अपि। न। करोति**।

एवम् इत्थम् **एव**। **चिन्तयतः** विचारयतः। **मे** मम। **प्रभाता** प्रातःकाले परिणता। **अक्ष्णोः** नेत्रे आहत्य। **रजनी** रात्रिः। **का। गतिः** उपायः **यावत्**। **एनम्** इमम् (दुष्यन्तम्)। **कृतः** विहितः **आचाराणाम्** नित्यकृत्यानां **परिग्रहः** अङ्गीकरणम् येन तादृशम्। **प्रियम्** इष्टम् **वयस्यम्** मित्रम्। **प्रेक्षे** अवलोकयिष्यामि।

हिन्दी व्याख्या—"गण्डस्य उपरि विस्फोटकः संवृत्तः" कहावत है। मनुष्य के गले में बढ़ा हुआ घेघा (गलगंड) स्वयं एक कष्टकर व्याधि है। उसी पर यदि फोड़ा हो जाय तो और भी भयानक स्थिति हो जाती है, क्योंकि उसे दबाया नहीं जा सकता, इस लोकोक्ति से कष्ट की अति बताई जाती है। राजा का घोड़ा तेज था, वे अश्वचालन में विशेष कुशल थे या उनके आगे रहने और बिना बताये किसी ओर मुड़ जाने से अनुयायी ढूँढ़ नहीं पाते थे जिसके कारण पीछे रह जाते थे। शकुन्तला के कारण दुष्यन्त तपोवन में रुकना चाहते हैं जिससे विदूषक को शिकारियों के साथ रहकर पूर्वोक्त कष्ट उठाने पड़ते हैं। ऊपर से कष्ट की चिन्ता और कष्ट देती है। राजा के दर्शन के लिए प्रयत्न करता है।

शब्दार्थ—संवृत्त=समाप्त। विस्फोटक=फोड़ा। संवृत्त=हो गया। अवहीन=पिछड़ा। अधन्यता=दुर्भाग्य। प्रभाता=प्रभात में बदल गयी है। अक्ष्णोः=खुली आँखें रहते ("धिक्चिन्तया रजनिरक्षिषु नः प्रभाता" इस "अनर्घराघव" की उक्ति से मिलती-जुलती उक्ति है)। गतिः=उपाय (गतिः स्त्री मार्गदशयोर्ज्ञाने यत्नाभ्युपाययोः—मे०)।

व्युत्पत्ति—"अक्ष्णोः" में सप्तमी अनादर के लिए है, सप्तमी से अर्थ निकलेगा "(खुली) आँखों की परवाह न कर"। "प्रभाता" का "प्रभात में बदल गई" अर्थ ध्यान देने योग्य है।

हिन्दी-अनुवाद— घूमकर और देखकर) यह रहे प्यारे मित्र, इधर ही आ रहे हैं। हाथ में

भोदु अंग-भंग विअलो भविअ चिट्ठिस्सं एव्वं वि णाम विस्सामं लहेअं। (इति दण्डकाष्ठकमवलम्ब्य स्थितः।) [भवतु। अङ्ग-भङ्गविकलो भूत्वा स्थास्यामि। एवमपि नाम विश्रामं लभेय।]

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा।]

राजा—[आत्मगतम्]

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥ १ ॥

धनुष है, हृदय में प्रियजन विद्यमान है और जंगली फूलों की माला पहने हुए हैं। ठीक, अङ्ग-भङ्ग के कारण विकल होकर रहूँगा। इस तरह शायद आश्वासन मिल सके।

(इसके बाद बताये गये अनुसार राजा रंग-मंच पर दिखाई पड़ते हैं।)

राजा—(मन ही मन)—

संस्कृत-टीका—**परिक्रम्य** मण्डलाकारम् चलित्वा। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। **च, एषः** निर्दिष्टः। **बाणासनं** धनुः **हस्ते** करे यस्य तादृशः। **हृदये** मनसि **निहितः** स्थापितः प्रियजनः प्रिया शकुन्तला बन्धुवर्गः वा येन। **वनस्य** उपवनस्य विपिनस्य वा **पुष्पाणाम्** कुसुमानाम् **मालाम्** स्रजम् धर्तुम् शीलम् अस्य तादृशः। **इतः** इह। **एव आगच्छति** अभिवर्त्तते। **प्रियः वयस्यः** मित्रम्।

भवतु अस्तु। किम् करणीयम् अधुना इति ज्ञातम् इत्यर्थः। **अङ्गस्य** शरीरस्य अवयवस्य वा भङ्गः घातः पङ्गुता इत्यर्थः तेन **विकलः** पीडितः। **भूत्वा** सन्। **स्थास्यामि। एवम्** अनेन प्रकारेण। **अपि। नाम** सम्भावनायाम्। **विश्रामम्** मृगयायाः मुक्तिम्। **लभेय** प्राप्नुयाम्। **इति** एवम् उक्त्वा। **दण्डकाष्ठम्** काष्ठयष्टिकाम्। **अवलम्ब्य** आश्रित्य। **स्थितः।**

यहाँ से प्रतिमुख सन्धि का आरंभ होता है।

शब्दार्थ—निर्विण्ण=विरक्त। आहिण्ड्य=घूमकर। अवहीन=पिछड़ा। गति=उपाय (गतिः स्त्री मार्गदशयोर्ज्ञाने यत्नाभ्युपाययोः—मेदिनी)। आचार=उचित वेश।

समास—दिनस्य मध्यम् मध्यन्दिनम् (अलुक्)।

हिन्दी अनुवाद—भले ही प्रिया (शकुन्तला) सुलभ न हो, मन (तो) उसके भाव का अनुमान कर आश्वस्त हो गया है। कामदेव के सफल-मनोरथ न होने पर भी दोनों (प्रेमियों) की कामना आनन्द की सृष्टि करती है।

अन्वय—कामम् प्रिया सुलभा न। मनः तद्भावदर्शनाश्वासि। मनसिजे अकृतार्थे अपि उभय-प्रार्थना रतिम् कुरुते।

संस्कृत टीका—**कामम्** अतिशयेन। यद्यपि एवम् स्यात् इति वा। **प्रिया** दयिता (शकुन्तला)। **सुलभा** सुखप्राप्या। **न। मनः** (मम) **हृदयम्। तु। तस्याः** (शकुन्तलायाः) **भावानाम्**

[स्मितं कृत्वा] एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विप्रलभ्यते । कुतः

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत् प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव ।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि तत्सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामः स्वतां पश्यति ॥ २ ॥

दर्शनेन चेष्टाभिः अनुमानेन आश्वासि आश्वासनयुक्तम् । मनसिजे कामे । अकृतः (अद्यावधि) अप्राप्तः अर्थः मनोरथः यस्य तादृशे (सति) अपि । उभयोः प्रिया-प्रिययोः प्रार्थना कामना । प्रेम इत्यर्थः । रतिम् आनन्दम् । कुरुते जनयति ।

हिन्दी व्याख्या—यह निश्चय न होने से कि कण्व आज्ञा देंगे या नहीं तथा अभी तक शकुन्तला के द्वारा शब्दों से स्नेह व्यक्त न किये जाने के कारण उसे असुलभ कहा गया है। प्रिया और प्रिय के मिलने में कामदेव को कृतार्थता कही जाती है क्योंकि उसका काम मिलन कराना है। शकुन्तला को कामना अभी तक अनुमान से ही जानी गई। फिर भी वह आश्वासन और आनन्द देती है। यही अनुमान आशा की स्वर्णपुरी है।

कामदेव के सफल होने पर रति (आनन्द या उसकी पत्नी उसे) मिलती है; यहाँ उभय को कामना से रति का होना बताया गया है।

यहाँ उद्भेद नामक नाट्य-अवस्था है जिसमें फल (मिलन) के लिये किया गया प्रधान उपाय (यहाँ अनुराग) लक्ष्य और अलक्ष्य रहता है। यहाँ अनुराग दुष्यन्त में तो लक्ष्य है, पर शकुन्तला में अलक्ष्य:—

फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः ।
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ॥ (सा. द.)

यहाँ प्रतिमुख सन्धि का अङ्ग विलास नामक अवस्था भी है जिसमें आशा व्यक्त होती है। यहाँ दुष्यन्त ने शकुन्तला की आशा लगाई है :—

समीहा रतिभोगार्थो विलास इति कथ्यते । (सा. द.)

शब्दार्थ—अकृतार्थ=असफल । रति=आनन्द, कामदेव की स्त्री । प्रार्थना=कामना ।

व्युत्पत्ति—"उभय-प्रार्थना" में "उभ" शब्द के साथ समास हुआ है; समास में "उभ" को "उभय" हो जाता है।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास; विरोधाभास; अप्रस्तुतप्रशंसा ।

हिन्दी-अनुवाद—[मुस्कराकर] अपने आशय से अभीष्ट व्यक्ति के मन की बात का अन्दाज लगाने वाले प्रार्थी इस प्रकार धोखा खाते हैं, क्योंकि—

दूसरी ओर भी आँखें लगाती हुई उसने जो स्नेह-पूर्वक निहारा, नितम्बों के भारीपन के कारण वह विलास से जो धीरे-धीरे चली, "मत जाओ" यह कहकर रोकी जाने पर उसने जो झिड़ककर

विदूषकः (तथास्थित एव)—**भो वअस्स ण मे हत्थपाआ पसरंति । वाआमत्तएण जोवापइस्सं।** [भो वयस्य न मे हस्तपादं प्रसरति वाङ्मात्रेण जापयिष्यामि ।]

सहेली से वह बात कहा, वह सब, लगता है, मुझे उद्देश्य करके हुआ था। आश्चर्य की बात है कि काम (अभिलाषा) (परविषयक व्यापार में भी) आत्मीयता देखता है।

अन्वय—यत् नयने अन्यतोऽपि प्रेरयन्त्या तया स्निग्धम् वीक्षितम्, यत् च नितम्बयोः गुरुतया विलासात् इव मन्दम् यातम्, यत् अपि मा गाः इति उपरुद्धया (शकुन्तलया) सखी सासूयम् उक्ता तत् सर्वम् किल मत्परायणम्। अहो कामः स्वताम् पश्यति।

संस्कृत-टीका—**यत्**। **नयने** नेत्रयुगलम्। **अन्यतः** अन्यत्र **अपि**। **प्रेरयन्त्या** नयन्त्या। **तया** (शकुन्तलया)। **स्निग्धम्** सस्नेहम्। **वीक्षितम्** दृष्टम्। **यत्**। **च**। **नितम्बयोः** कटिपश्चाद्भागयोः। **गुरुतया** दुर्वहतया। **विलासात्** अङ्गविकारात् (परिवर्तनात्)। **इव**। **मन्दम्**। **यातम्** गतम्। **यत्**। **अपि** च। **मा**। **गाः** गच्छ। **इति** एवम्। **उपरुद्धया** (प्रियंवदया) अनुरुद्धया (शकुन्तलया) **सखी** (अनुरोधकर्त्री प्रियंवदा)। **सासूयम्** असूयया ईर्ष्यया (भ्रूभङ्गादिजनितया) सह तत् यथा स्यात् यथा। **तत्** "दाणिं किं तुह आअओहि" इति पूर्वोक्तप्रकारेण **उक्ता** कथिता। **तत्** उपर्युक्तम्। **सर्वम्** सकलम्। **किल** कदाचित्। **मत्परायणम्** **अहम्** (एव) **परम्** मुखम् **अयनम्** शरणम् (लक्ष्यम्) यस्य तथाभूतम्। अहो (आश्चर्ये)। **कामः** अभिलाषः। **स्वताम्** (परविषयकाणाम् अपि व्यापाराणाम्) आत्मीयताम्। **पश्यति** जानाति।

हिन्दी व्याख्या—विकास-युक्त, चिकनी, मधुर, निपुण भौंहें धारण करने वाली, कटाक्ष-युक्त और सकाम दृष्टि स्निग्ध कहलाती है :—

विकाशिस्निग्धमधुरा चतुरे बिभ्रती भ्रुवौ।
कटाक्षिणी साभिलाषा दृष्टिः स्निग्धाभिधीयते॥

नितम्बों का भारीपन उनकी पुष्टता बताकर कमर का पतली होना और युवावस्था की सूचना देता है।

प्रिय के निकट चलने, बैठने, ठहरने और देखने आदि में जो परिवर्तन (विकार) आ जाता है उसे विलास कहते हैं—यो वल्लभासन्नगतो विकारो गत्यासनस्थानविलोकनादौ।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित (लक्षण १।१४ में द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास व हेतूत्प्रेक्षा।

हिन्दी अनुवाद--विदूषक (वैसे ही स्थित होकर)—हे मित्र, मेरे हाथ-पाँव नहीं चल रहे हैं, (अतः) केवल वाणी से ही "जय" करता हूँ।

संस्कृत टीका—**विदूषकः** (कथयति यत्) **तथा**। **एव**। **भोः** हे। **वयस्य** मित्र। **न**। **मे** मम। **हस्तपादम्** **हस्तौ** करौ च **पादौ** चरणौ च तेषां समाहारः। प्रसरति प्रचलति। **वाङ्मात्रेण** वाण्या एव (**जापयिष्यामि**) जय इति शब्दम् उच्चारयिष्यामि।

हिन्दी व्याख्या—विदूषक नाटक में राजा को वयस्य कहता है—

विदूषकेण वक्तव्यो वयस्येति च भूपतिः

राजा—(सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः।

विदूषकः—कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छेसि। [कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।]

राजा—न खल्ववगच्छामि।

विदूषकः—भो वअस्स जं वेदसो खुज्जलीलं विडंबेदि तं किं अत्तणो पहावेण णं णईवेअस्स ? [भो वयस्य यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य ?]

राजा—नदीवेगस्तत्र कारणम्।

"जय" करने में हाथ उठाना आवश्यक होता है, पर हाथ पैर न चलने से विदूषक वाणी मात्र से जय करता है। "उसी प्रकार ठहरने से" अभिप्राय है उपर्युक्त रीति से लकड़ी का डण्डा हाथ में लेकर अङ्ग टूटने का अभिनय करना।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मुस्कराहट के साथ)—यह अङ्ग जकड़ना कैसे हो गया ?

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) कथयति (यत्)। **सस्मितेन** स्मितेन विहासेन सह। **कुतः** कस्मात् कारणात्। **अयम्** पुरो दृश्यमानः। **गात्राणाम्** अवयवानाम् **उपघातः** विकलता।

हिन्दी-अनुवाद—खुद आँख दुखाकर आँसू का कारण क्यों झूट-मूठ पूछ रहे हो ?

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (कथयति यत्) **कुतः** कस्मात् कारणात्। **किल** (अलीके)। **स्वयम्**। **अक्षि** नेत्रम्। **आकुलीकृत्य** अनाकुलम् अपीडितम् **आकुलम्** पीडितम् कृत्वा। **अश्रूणाम्** नेत्रजलस्य। **कारणम्** हेतुम्। **पृच्छसि**।

हिन्दी अनुवाद—राजा—निश्चय ही मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) न (कथयति तत्) **खलु** निश्चयेन। **अवगच्छामि** बोद्धुं शक्नोमि।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—हे मित्र, बेत जो कुब्ज (नामक वृक्ष या कुबड़े) की लीला का अनुकरण करता है, वह अपने प्रभाव से होता है या नदी की चाल के कारण ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (कथयति यत्)। **भोः** हे। **वयस्य** मित्र। **यत्**। **वेतसः** वृक्षविशेषः (वानीरः) (नदीतटे नद्याम् वा आरूढः)। **कुब्जस्य** वृक्षविशेषस्य उन्नतपृष्ठस्य जनस्य च। **लीलाम्** चेष्टाम्। **विडम्बयति** अनुकरोति। **तत्**। **किम्**। **आत्मनः** स्वस्य। **प्रभावेण** बलेन। **ननु** (प्रश्नामन्त्रणे) **नदीवेगस्य** **नद्याः** सरितः **वेगस्य** गतेः।

हिन्दी व्याख्या—बेत नदी के किनारे या नदी में होता है और तना रहता है। कुब्ज-नामक **वृक्ष** पानी में होता है और झुका रहता है जिससे कुबड़े को कुब्ज कहते हैं। बेत नदी के पानी के दबाव से झुककर कुब्ज की तरह हो जाता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—उस बात में नदी की चाल कारण है।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) कथयति यत्। **नदीवेगः** **नद्याः** सरितः **वेगः** गतिः। **तत्र** तस्मिन् [पूर्वोक्ते कुब्जलीलाविडम्बने]। **कारणम्** हेतुः।

विदूषकः—मम वि भवं। [ममापि भवान्।]

राजा—कथमिव ?

विदूषकः—एव्वं राअकज्जाणि उज्झिअ तारिसे आउलप्पदेसे वणचरवुत्तिणा तुए होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसमुच्छारणोहिंसखोहिअसंबंधाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसादइस्सं विसज्जिदुं मं एक्काहं एव्व दाव विस्समिदुं। [एवं राजकार्याण्युज्झित्वा तादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसादयिष्यामि विसर्जितुं मामेकाहमेव तावद्विश्रमितुम्।]

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—मेरे (मेरी हालत के) भी आप (कारण हैं)।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (कथयति यत्)। **मम। अपि। भवान्** त्वम्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(यह) कैसे ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **कथम्** केन प्रकारेण। **इव** (वाक्यालङ्कारे)।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—इस प्रकार राज काज छोड़कर वैसे घने स्थान में तुम्हें जंगली लोगों के से काम करने चाहिएँ ? सच बात यह है कि रोज-रोज हिंस्र जानवरों को खदेड़ने से अपने खिसके संधिबन्धों (जोड़ों) वाले अङ्गों पर मेरा बस नहीं रह गया है, इसलिये आपसे प्रार्थना करूँगा कि मुझे सिर्फ एक दिन के लिये ही आराम देने के लिये विदा दें।

संस्कृत टीका—विदूषकः (कथयति यत्)। **एवम्** अनेन प्रकारेण। **राजकार्याणि राज्ञः** नृपस्य **कार्याणि** कर्माणि। **उज्झित्वा** त्यक्त्वा। **तादृशे** तथाभूते। **आकुलप्रदेशे आकुलः** (वृक्षपश्वादिभिः) घनः च असौ **प्रदेशः** स्थानम् च तस्मिन्। **वनचरवृत्तिना वने** अरण्ये **चरति** अटति इति **वनचरः** तस्य **वृत्तिः** व्यापारः इव **वृत्तिः** व्यापारः यस्य सः **वनचरवृत्तिः** तेन (**त्वया**)। **त्वया** भवता। **भवितव्यम्। यत्। सत्यम्** तथ्यम् **प्रत्यहम्** प्रतिदिनम् **श्वापदसमुत्सारणैः श्वापदानाम्** हिंस्रपशूनाम् **समुत्सारणैः** पश्चाद्धावनैः। **संक्षोभितसंधिबन्धानाम् संक्षोभितानि** सम्यक् चलितानि **सन्धीनाम्** अङ्गसंयोगस्थानानाम् **बन्धानाम्** बन्धनानाम् (गात्राणाम्)। **मम** मे। **गात्राणाम्** अङ्गानाम्। **अनीशः** अक्षमः **अस्मि**। **संवृत्तः** जातः। **तत्** अतः। **प्रसादयिष्यामि** प्रार्थये। **विसर्जितुम्** मुक्तये। **माम्**। **एकाहम् एकम्** च तत् **अहः** दिनम् च। **एव** केवलम्। **तावत्। विश्रमितुम्** विश्रान्तिम् प्राप्तुम्।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "अपने" के अर्थ में अहम् के साथ "मम" (मेरा) प्रयोग संस्कृत में होता है जैसा अंग्रेजी में होता है। इसी भाँति तव (तुम्हारा) का प्रयोग भी अपने के लिये होता है यदि वह "त्वम्" के लिये हो। अनीश के साथ षष्ठी (गात्राणाम्) का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। इसी प्रकार कर्तृ-वाच्य क्रिया के साथ युष्मद् और अस्मद् (अहम्) कर्त्ता का न होना और षष्ठी (मम) का सम्बद्ध संज्ञा (गात्राणाम्) के ठीक पहले और संज्ञा (गात्राणाम्) के विशेषण के बाद आना भी ध्यान देने योग्य है। प्रसादयिष्यामि का शाब्दिक अर्थ खुश करूँगा या मनाऊँगा है।

राजा—(स्वगतम्) अयं चैवमाह ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः। कुतः—

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ॥ ३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मन में) एक ओर यह ऐसा कहता है, और दूसरी ओर मेरा भी मन कण्व की कन्या की सुध कर शिकार से परेशान हो गया है। क्योंकि—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः)। स्वगतम् अप्रकाशम् (कथयति स्म)। अयम् एषः। च। एवम् अनेन प्रकारेण। आह कथयति। मम। अपि च। काश्यपसुताम् काश्यपस्य काश्यपगोत्रोद्भवस्य (कण्वस्य) सुताम् कन्याम् अनुस्मृत्य स्मृत्वा। मृगयाविक्लवम् मृगयायाम् आखेटे विक्लवम् विह्वलम् (विरक्तम्)। चेतः मनः। कुतः यतः।

हिन्दी-व्याख्या—"अपि", "च" के लिये है। दो चकारों से एक ही ओर अर्थ निकलता है। पहले च से इधर या एक तरफ और दूसरे च से उधर या दूसरी तरफ अर्थ निकलता है जो नया होने से अच्छा लगता है।

विदूषक ने, ऐसा लगता है, राजा को यह याद दिलाई है कि शकुन्तला को छोड़कर शिकार करने में तकलीफ होगी। पिता के नाम के साथ कन्या कहना—नाम न लेना कुलीनता का द्योतक है। मृगया (स्त्रीलिङ्ग) को तिलांजलि देकर शकुन्तला की याद करना यह ध्वनित करता है कि अधिक प्रिय वस्तु की याद आने पर कम प्रिय वस्तु से विरक्ति हो जाती है या दूसरी स्त्री के प्रति आसक्ति होने पर पहली से विरक्ति हो जाती है।

देश (स्थान-विशेष) या काल (समय-विशेष) से आनेवाली अनुभूत (जिनकी अनुभूति की जा चुकी है) वस्तुओं को लगातार ध्यान में लाना अनुस्मृति कहलाता है :—

देश (स्थान-विशेष) या काल (समय विशेष) से आनेवाली अनुभूत (जिनकी अनुभूति की जा चुकी है) वस्तुओं को लगातार ध्यान में लाना अनुस्मृति कहलाता है :—

अर्थानामनुभूतानां देशकालानुवर्त्तिनाम्।
सातत्येन परामर्शो मानसः स्यादनुस्मृतिः ॥

हिन्दी-अनुवाद—(मैं) इस प्रत्यञ्चा-चढ़े धनुष को, जिस पर बाण रखा है, उन मृगों पर झुकाने (कान तक खींचने) में समर्थ नहीं हूँ। जिन्होंने, ऐसा लगता है, प्रिया के साथ निवास कर भोली (स्वभाव-सुंदर) दृष्टि (सीखकर उस) का उपदेश दिया है।

अन्वय—मृगेषु इदम् अधिज्यम् आहितसायकम् धनुः नमयितुम् शक्तः न अस्मि यैः प्रियायाः सहवसतिम् उपेत्य (प्रियायाः) मुग्धविलोकितोपदेशः कृतः इव।

संस्कृत-टीका—मृगेषु हरिणेषु। इदम् प्रत्यक्षम् परिदृश्यमानम्। अधिज्यम् ज्यासहितम् आहितसायकम् आहितः निहितः सायकः बाणः यस्मिन् तत्। धनुः कार्मुकम्। नमयितुम् कर्णान्तम् आकृष्टुम्। शक्तः समर्थः। न अस्मि। यैः (मृगैः) प्रियायाः दयितायाः (शकुन्तलायाः)

विदूषकः—(राज्ञो मुखं विलोक्य) अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मंतेदि । अरण्णे मए रुदिअं आसि [अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते । अरण्ये मया रुदितमासीत् ।]

राजा—(सस्मितम्) किमन्यत् । अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि ।

सहवसतिम् सङ्गतिम् । उपेत्य प्राप्य । (प्रियायाः) मुग्धविलोकितोपदेशः मुग्धानि स्वभावसुन्दराणि निश्छलानि च तानि विलोकितानि दृष्टयः च मुग्धविलोकितानि तेषाम् उपदेशः शिक्षा । कृतः वितरितः । इव इति प्रतीयते ।

हिन्दी-व्याख्या—"संगति से उपदेश दिया जाता है" का आशय है कि पहले संगति से सीखकर दक्ष हुए हैं और फिर शिक्षा दी है । दृष्टि भोली कैसे होती है यह सिखाने में शकुन्तला ही समर्थ है क्योंकि उसकी दृष्टि बहुत भोली है । हिरन प्रिया के साथी और शिष्य हैं अतः अवध्य हैं और उपदेश पाकर हमें भी उसी तरह भोली न कि शिकारी-सुलभ क्रूर दृष्टि इन पर डालनी चाहिए यह ध्वनित होता है । तपोवन में शैशव पर यौवन हावी नहीं होता अतः यौवनोचित हाव भाव शकुन्तला में नहीं हैं; यह भोलापन बहुत अच्छा लगता है, यह बताने के लिये "मुग्ध" विशेषण दिया गया है ।

छन्द—पुष्पिताग्रा (१ । ३० द्रष्टव्य)

अलङ्कार—(वाक्यार्थहेतुक) काव्यलिङ्ग, उत्प्रेक्षा एवं संसृष्टि । शकुन्तला की आँखें हिरनों की सी हैं यह उपमा-अलङ्कार को ध्वनित करता है ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (राजा का मुँह देखकर)—आप हृदय में कुछ (अवर्णनीय या अज्ञात) धारण कर कह रहे हैं । मैं (तो अभी तक) जंगल में रोता रहा, अरण्यरुदन या निरर्थक कार्य करता रहा ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः । राज्ञः नृपस्य (दुष्यन्तस्य मुखम् वक्त्रम् । विलोक्य दृष्ट्वा ।) अत्रभवान् श्रीमान् महाराजः । किमपि किञ्चित् हृदये मनसि कृत्वा निधाय । मन्त्रयते विचारयति । अरण्ये वने । मया । रुदितम् रोदनम् कृतम् आसीत् ।

हिन्दी-व्याख्या—अरण्य-रोदन हिन्दी में भी संस्कृत की तरह मुहावरा है और इसका अर्थ, व्यर्थ है । जैसे जंगल में रोना व्यर्थ होता है । क्योंकि निर्जनता के कारण वहाँ रोने पर कोई सुनने वाला नहीं होता और रोना न रोने की तरह व्यर्थ हो जाता है ।

राजा मन में कह रहे थे, अतः उनका ध्यान या दृष्टि विदूषक से हटी थी जिससे वह उलाहना दे रहा है कि आप मेरी बात नहीं सुनते ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मुस्कान के साथ)—और क्या होगा मित्र के वचनों का उल्लंघन मुझसे नहीं हो सकता, अतः मैं (मृगया-व्यापार से विरत होकर) ठहरता हूँ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । सस्मितम् स्मितेन विहासेन सह तत् यथा स्यात् तथा । किम् । अन्यत् भिन्नम् (मित्रविदूषकेच्छाविरुद्धम्) (भवेत्) अनतिक्रमणीयम् न अतिक्रमणीयम् उल्लंघनीयम् । मे मम कृते । सुहृद्वाक्यम् सुहृदः वयस्यस्य तव वाक्यम् तव वचनम् । इति अतः । स्थितः मृगयाविरतः । अस्मि ।

विदूषकः—चिरं जीअ। [चिरं जीव।] (इति गन्तुमिच्छति)
राजा—वयस्य तिष्ठ सावशेषं मे वचः।
विदूषकः—आणवेदु भवं [आज्ञापयतु भवान्]।
राजा—विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

हिन्दी-व्याख्या—मुस्कराकर कहने का आशय है कि मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार कार्य करूँगा; भाई अब तो प्रसन्न हो जाओ। "अन्यत्" चौंकाने के लिये मजाक में कहा गया है, अतः मुस्कराकर राजा ने कहा है, यह बात भी सम्भव है। "किमन्यत्" के अर्थ हो सकते हैं:—(१) ऊपर कही बात के अनुसार विदा कर दूँगा, (२) मैं मन में कुछ सोच रहा था, (३) सचमुच तुमने अरण्य रोदन किया है तथा (४) सुहृद्वाक्य मेरे लिये अनतिक्रमणीय है, इससे भिन्न बात नहीं हो सकती।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषकः—चिरकाल तक जिओ (यह कह कर जाना चाहता है)।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (कथयति यत्) चिरम् बहुकालम् यावत्। जीव। इति एवम् कथयित्वा। गन्तुम् प्रयातुम्। इच्छति वाञ्छति।

हिन्दी व्याख्या—संस्कृत में बड़े धन्यवाद न कहकर आशीर्वाद देते हैं। यहाँ साथी होकर आशीर्वाद देना परिहास माना जा सकता है। ब्राह्मण होने के नाते विदूषक आशीर्वाद देने का अधिकारी है, यह भी माना जा सकता है।

राजा के "हाँ" कर देने पर विदूषक उसे विदाई या छुट्टी मानकर उठने की चेष्टा करता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मित्र, ठहरो; मेरा कहना अभी शेष है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (कथयति यत्), वयस्य मित्र। तिष्ठ। सावशेषम् अवशेषेण सह अवशिष्टम्, (असमाप्तम्)। मे मम वचः वचनम्।

हिन्दी-अनुवाद—आप आदेश दें।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (कथयति यत्)। आज्ञापयतु आदिशतु (सावशेषं वचः श्रावयतु)। भवान् त्वम्।

हिन्दी-व्याख्या—बड़ों का कथन आदेश के समान होता है, अतः "कहें" की जगह "आदेश दें" कहा गया है।

हिन्दी-अनुवाद—आपको आराम करके श्रम की अपेक्षा न रखने वाले मेरे कार्य में भी सहायक होना है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (कथयति यत्)। विश्रान्तेन क्लान्तिरहितेन। भवता त्वया। मम मदीये। अपि। अनायासे न आयासः श्रमः यस्मिन् तस्मिन्। कर्मणि कार्ये। सहायेन सहयोगिना। भवितव्यम्।

हिन्दी-व्याख्या—अभी तक श्रम साध्य कार्य में विदूषक सहायक हुआ था अब श्रम की अपेक्षा न रखने वाले कार्य में उससे सहायक होने के लिये राजा ने कहा है। विश्रान्त का अर्थ जो विश्राम कर चुका है अथवा जो विश्राम कर चुकेगा—दोनों ही—हो सकता है। हिन्दी में विश्राम के बाद कहने में दोनों अर्थ आ जाते हैं।

विदूषकः—किं मोदअखंडिआए ? तेण हि अअं सुगहीदो खणो [किं मोदकखण्डिकायाम् । तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः] ।

राजा—यत्र वक्ष्यामि । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य) **दौवारिकः**—(प्रणम्य) आणवेदु भट्टा [आज्ञापयतु भर्ता]

राजा—रैवतक, सेनापतिस्तावदाहूयताम् ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—क्या मोदक-खण्ड के लिये ? तब तो यह क्षण निश्चय ही अंगीकार है ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः—(कथयति यत्) । **किम्** । **मोदकस्य** मिष्टान्नस्य खण्डिकायाम् खण्डे । **तेन** तर्हि । **हि** निश्चयेन । **अयम्** प्रस्तुतः । **सुगृहीतः** सुष्ठु गृहीतः अङ्गीकृतः । **क्षणः** अवसरः महोत्सवः वा ।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक सोचता है कि राजा साफ-साफ न कहकर अनायास कर्म कहकर पहेली बुझा रहे हैं, उन्हें काम कौन है यह स्पष्ट करना चाहिये था । पहेली या हास्य जब स्नेही व्यक्ति के द्वारा प्रकट हो तो वह खुश करने के लिये होता है । विदूषक को लड्डू सबसे प्रिय हैं, अतः वह लड्डू खाने को ही अनायास कार्य मानता है । हिन्दी में अनायास शब्द क्रिया-विशेषण की तरह प्रयुक्त होता है; विशेषण की तरह नहीं । संस्कृत में बहुव्रीहि समास से बनने वाले विशेषण बहुत अच्छे होते हैं जिन्हें हिन्दी में भी प्रयुक्त किया जा सकता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—जिस (उस) अनायास कार्य के विषय में कहूँगा । अरे कौन-कौन हैं यहाँ ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (कथयति यत्) । **यत्र** यस्मिन् विषये **वक्ष्यामि** कथयिष्यामि । **कः** । **कः** । **अत्र** अस्मिन् स्थाने । **भोः** ।

हिन्दी व्याख्या—अकेले "भोः" का प्रयोग अज्ञात के लिये होता है ।

(रंग-मंच पर आकर) द्वारपाल (प्रणाम कर)=स्वामी आज्ञा दें ।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य रङ्गमञ्चे आगत्य । **दौवारिकः** द्वारपालः । **प्रणम्य** नत्वा । **आज्ञापयतु** आदिशतु । **भर्त्ता** स्वामी (भवान्) ।

हिन्दी-व्याख्या—द्वारपाल अधम (निम्न स्तर का) पात्र माना जाता है । नाटक में अधम पात्र राजा को "भट्टा" कहता है:—भट्टेति चाधमैः—साहित्यदर्पण । नीच पात्र संस्कृत नाटकों में प्राकृत में बोलते हैं: = "नीचेषु प्राकृतं भवेत्" ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—रैवतक, जरा सेनापति को बुलाना ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (कथयति यत्) । (हे) रैवतक (दौवारिकनाम) । **सेनापतिः** सेनानीः । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) **आहूयताम्** आकार्यताम् ।

हिन्दी-व्याख्या—रैवतक द्वारपाल का नाम है । जिसे पुकारा जाय, उसके बाद विराम लगता है; न कि विस्मयादिबोधक चिह्न (!) सेनापति सुशील सबल,-आलस्य-रहित-प्रिय-भाषी, शत्रु के

दौवारिकः—तह [तथा]। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य) **एसो अण्णाव अणुक्कंठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी एव्व चिट्ठदि उवसप्पदु अज्जो** [एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः]।

सेनापतिः—(राजानमवलोक्य) **दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता। तथा हि देवः—**

दोषों से परिचित, कूच के श्रेष्ठ समय से अभिज्ञ, अस्त्र-शस्त्र आदि का रहस्य जानने वाला, समाज में सरल, उचित स्थान से परिचित, उचित काल का अभिज्ञ और गुणवान् होता है :—शीलवान् सत्त्वसम्पन्नस्त्यक्तालस्यः प्रियंवदः। पररन्ध्रान्तराभिज्ञो यात्रा-कालविशेषवित्॥ अस्त्र-शस्त्रादितत्त्वज्ञो लोके चावक्रतां गतः। देशवित्कालविच्चैव भवेत्सेनापतिर्गुणैः॥—मातृगुप्ताचार्य।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपाल—जो, अच्छा। (यह कहकर और रंग-मंच से बाहर होकर सेनापति के साथ फिर प्रवेश कर) ये रहे आदेश के लिए उत्सुक स्वामी: इधर को ओर दृष्टि डाले ही हैं। श्रीमान् निकट जाएँ।

संस्कृत-टीका—**दौवारिकः** द्वारपालः (कथयति यत्)। **तथा** यथा आज्ञापयति देवः। **इति** एवं कथयित्वा **निष्क्रम्य** रङ्गमञ्चात् बहिः भूत्वा। **सेनापतिना**। **सह** साकम्। **पुनः** भूयः। **प्रविश्य** रङ्गमञ्चे प्रकटितः। **एषः** अयम् (पुरोवर्त्ती)। **आज्ञावचनोत्कण्ठः** **आज्ञायाः** आदेशस्य **वचने** कथने **उत्कण्ठः** (उन्नमितः कण्ठः ग्रीवा यस्य सः) उत्सुकः भर्त्ता स्वामी (दुष्यन्तः) **इतः** आवाम् प्रति। **दत्तदृष्टिः** **दत्ता** प्रदत्ता **दृष्टिः** नेत्रव्यापारः येन सः। **एव तिष्ठति। उपसर्पतु** समीपम् गच्छतु। **आर्यः** श्रीमान्।

हिन्दी-अनुवाद—सेनापति (राजा को देखकर) यद्यपि शिकार में बुराइयाँ देखी गई हैं तो भी महाराज के विषय में वह केवल गुण ही हो गया है। उदाहरणार्थ—महाराज—

संस्कृत टीका—**सेनापतिः** सेनानीः **राजानम्** नृपम् दुष्यन्तम्। **अवलोक्य** दृष्ट्वा (कथयति यत्)। **दृष्टदोषा** **दृष्टाः** अनुभूताः **दोषाः** अवगुणाः यत्र सा। **अपि** यद्यपि तथापि। **स्वामिनि** देवे। **मृगया** आखेटः **केवलम्**। **गुणः** अलङ्कृतिः। **एव**। **संवृत्ता** भूता। तथा हि उदाह्रियते। **देवः** स्वामी।

हिन्दी-व्याख्या—"विषय में" अर्थ के लिये संस्कृत में सप्तमी होती है जिससे "स्वामिनि" में सप्तमी हुई है। "गुणः" मृगया का विधेय और उसके लिये आई (विशेषणात्मक) संज्ञा है। अलग होने से यहाँ रूपक समस्त (एक में) न होकर व्यस्त (दूर दूर) है। इस प्रकार विधेय में संज्ञा का प्रयोग अंग्रेजी में केस इन अपोजीशन कहलाता है, संज्ञा होने के कारण लिङ्ग-परिवर्तन नहीं होता; वचन परिवर्तन भी चाहें तो न करें। सेवक राजा को देव या स्वामी कहते हैं :—"देवः स्वामीति नृपतिः"।

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्त्ति ॥ ४ ॥

हिन्दी-अनुवाद—लगातार धनुष की डोर की रगड़ से जिसका पूर्व-भाग कठोर हो गया है, जिसे सूर्य की किरणें सह लेने की आदत है, जो पसीने की बूँदों से संबद्ध नहीं है, जो दुबला होने पर भी प्रकाण्ड होने के कारण परिलक्षित नहीं होता तथा जिसमें बल का तत्त्व विद्यमान है, ऐसा शरीर (महाराज) पहाड़ी हाथी की तरह धारण करते हैं।

अन्वय—देवः गिरिचरः नागः इव अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम् रविकिरणसहिष्णुः स्वेदलेशैः अभिन्नम् अपचितम् अपि व्यायतत्वात् अलक्ष्यम् प्राणसारम् गात्रम् विभर्त्ति ।

संस्कृत-टीका—**अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वम् अनवरतम्** सततम् **धनुषः** कार्मुकस्य **ज्यायाः** गुणस्य **आस्फालनेन** घर्षणेन **क्रूरः** कठोरः **पूर्वः** पूर्वभागः यस्य तत् । **रविकिरणसहिष्णुः रवेः** सूर्यस्य **किरणान्** रश्मीन् **सहिष्णु** सोढुम् शीलम् (स्वभावः) यस्य तत् । **स्वेदलेशैरभिन्नम् स्वेदस्य** घर्मजलस्य **लेशैः** कणैः **अभिन्नम्** असम्बद्धम् । **अपचितम्** कृशम् । **अपि** । **व्यायतत्वात्** प्रकाण्डत्वात् । **अलक्ष्यम्** न लक्ष्यम् (कृशत्वेन) प्रकटितम् । **प्राणसारम् प्राणः** बलम् **सारः** तत्त्वम् यत्र तत् । **गात्रम्** शरीरम् । **गिरिचरः** पर्वतीयः । **नागः** गजः । **इव** । **बिभर्त्ति** धारयति ।

हिन्दी-व्याख्या—शरीर अपने सारे विशेषणों के साथ हाथी के लिये भी आयेगा, केवल पहला विशेषण नहीं बैठता । यह पुरानी रचना और अधिक स्वाभाविकता की द्योतक है। बाद के लेखकों ने श्लेष के दुरूह प्रयोगों से, उपमा होने पर, विशेषण के दो-दो अर्थ कर दोनों पक्षों में बैठाने की जीतोड़ कोशिश की है। वह भी अपने में रम्य है। सूर्य की किरणें सह लेने वाला होने से शरीर धूप में भी नहीं थकता। "अभिन्न" का अर्थ 'अलग' नहीं अर्थात् 'युक्त' न कर "न भिदा हुआ" किया जाता है। अभिन्न का अर्थ (पसीने की बूँदों से रेखाओं द्वारा) "विभक्त नहीं" भी हो सकता है। "युक्त" अर्थ भी किया जा सकता है। पसीने की बूँदें रवि-किरण असहिष्णुता की द्योतक हैं, ऐसा समझना ठीक नहीं है। छोटा और पतला शरीर और पतला होने पर परिलक्षित हो जाता है पर लम्बा-तगड़ा शरीर चर्बी कम होने पर भी वैसा ही दिखता है। हाथी पहाड़ पर नहीं मिलते, तराई पर मिलते हैं, उन्हें पहाड़ी कहा जा सकता है। जंगलो और पहाड़-जैसे दुर्गम क्षेत्र के पास होने से वे विशेष बली होते हैं। "गिरिचर" पद से राजा और गज की स्वतंत्रता द्योतित होती है।

---

*विश्व-कोष और धरणि-कोष ने यहाँ दोनों ओर लगने वाले विशेषणों की योजना के लिये "धनुष" का अर्थ प्रियाल नामक वृक्ष (धनुःसंज्ञा प्रियालद्रौ राशिभेदे शरासने—विश्व) और "ज्या" का (अर्थ) भूमि (ज्या मौर्वी च वसुन्धरा—धरणि) किया है जिससे हाथी के शरीर का विशेषण होकर यह पद निम्नलिखित अर्थ देगा:—लगातार प्रियाल वृक्षों से भरी हुई जगह में (खुजली मिटाने के लिये उन वृक्षों से) रगड़ने से जिसका अगला भाग कठोर है।

(उपेत्य) जयतु स्वामी, गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमन्यत्रावस्थीयते ?

राजा—मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन ।

सेनापतिः—(जनान्तिकम्) सखे स्थिरप्रतिबन्धो भव । अहं तावत्स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्त्तिष्ये । (प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधवेयः । ननु प्रभुरेव निदर्शनम् ।

अनवरत में अनव (अ+नव) और रत दो शब्द मानकर दोनों पक्षों में अर्थ किया जा सकता है। "भिन्न" का अर्थ "घबड़ाहट नहीं होती; फिर शिकारी के लिये "घबड़ाहट न होना" कहना व्यर्थ है। "देव" कर्ता गद्य में है और उसका सम्बन्ध पद्य से है। यह प्रयोग अजीब होने पर भी संस्कृत में प्रचलित है।

कोष—क्रूरं भयङ्करं ज्ञेयं क्रूरौ कठिननिर्दयौ-धरणि । प्राणोऽनिले बले-हैमः । सारो बले स्थिरांशे च—अमर । गात्रं वपुः संहननम्—अमर ।

छन्द—मालिनी (लक्षण १।१० में देखें) ।

अलङ्कार—छेक, वृत्ति और श्रुति अनुप्रास, परिकर, श्लेष व उपमा ।

दोष—"ज्या" कह देने पर धनुष का बोध हो जाता है, पर यहाँ "धनुष पर चढ़ी ज्या" अर्थ लेने के लिये "धनुष" का प्रयोग किया गया है, अर्थपुनरुक्ति नहीं है :—धनुर्ज्याध्वनौ धनुःप्रतीतिरारूढेः प्रतिपत्त्यै—(वामन) काव्यालङ्कार-सूत्र ५।२।१३ "आस्फालन" से आरूढ होने का बोध हो जाता है, अतः "धनुष" व्यर्थ है, कहना भी ठीक है क्योंकि श्लेष के द्वारा दो विशेषण बनाने के लिये "धनुष" और "आस्फालन" दोनों का प्रयोग अपेक्षित है। "इव" का प्रयोग उपमान "नाग" के बाद होना चाहिये, अन्यथा विशेषण "गिरिचर" उपमान प्रतीत होगा। इसके परिहास के लिये राघवभट्ट ने "शिखरिचरकरीव" पाठ सुझाया है। विशेषण विशेष्य में ही पर्यवसित होता (विशेष्य का ही अर्थ देता) है, अतः उसके बाद लगा "इव" "नाग" के बाद लगे जैसा ही है।

हिन्दी-अनुवाद—(निकट जाकर) महाराज की जय हो। जंगल के हिंस्र जीव पकड़ लिये गये गये हैं। क्या दूसरी जगह डेरा डाला जाय।

संस्कृत टीका—उपेत्य उपसृत्य । जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । स्वामी देवः । गृहीतश्वापदम् गृहीताः धृताः श्वापदा हिंस्राः जन्तवः यस्य तथाभूतम् । अरण्यम् वनम् (जातम्) । किम् अन्यत्र अन्यस्मिन् स्थाने । अवस्थीयते अवस्थानम् क्रियते (क्रियेत) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—शिकार के निन्दक माढव्य ने मेरा जोश ठंढा कर दिया है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (कथयति यत्) । मन्दोत्साहः मन्दः क्षीणः उत्साहः यस्य तादृशः (अहम्) कृतः विहितः । अस्मि । मृगयापवादिना मृगयायाः आखेटस्य अपवादिना निन्दकेन । माढव्येन माढव्यनाम्ना विदूषकेण ।

हिन्दी-अनुवाद—सेनापति-विदूषक से (धीरे-धीरे)—मित्र, (शिकार का अपना) विरोध दृढ़ रखो। मैं जरा महाराज की इच्छा का अनुसरण करता हूँ। (स्पष्ट) इस विधवा पुत्र को बकने दें। अरे ! स्वामी ही दृष्टान्त हैं।

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥

संस्कृत-टीका—**सेनापतिः** सेनानीः । **जनान्तिकम्** (माढव्यम् प्रति) मन्दस्वरेण । **सखे** मित्र **स्थिरप्रतिबन्धः** **स्थिरः** अविचलितः **प्रतिबन्धः** (मृगया) विरोधः यस्य तादृशः । भव । **अहम्** अयम् जनः । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **स्वामिनः** महाराजस्य । **चित्तवृत्तिम्** **चित्तस्य** मनसः **वृत्तिम्** व्यापारम् । **अनुवर्तिष्ये** अनुगमिष्यामि, **प्रकाशम्** स्पष्टम् । **प्रलपतु** (मृगयापवादम्) वदतु । **एषः** अयम् (पुरः स्थितः) **वैधवेयः** विधवासुतः वैधेयः=मूर्खः इति पाठान्तरम् । **ननु** (दृढामन्त्रणे) । **प्रभुः** देवः **एव** । **निदर्शनम्** दृष्टान्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक, चापलूसी में राजा से कही गई बात में अपनी निन्दा से बुरा न मान जाय, इसलिये सेनापति ने धीरे से उसे बता दिया है कि मैं राजा को सिर्फ खुश करने के लिये मृगया की प्रशंसा और तुम्हारी निन्दा कर रहा हूँ; तुम अपनी बात पर डटे रहो जिससे शिकार खेलना बन्द हो और हम लोगों को भी आराम मिले । कभी कभी निषेध होने पर ऊबकर आदमी अपने हठ पर रह जाता है । यहाँ राजा मृगया का हठ कर सकते हैं ऐसी हालत में एक जोरदार तर्क दे और दूसरा उसका थोड़ा-बहुत खण्डन करे तो जोरदार तर्क को न मानने वाला भी मान लेता है । यहाँ दुष्यन्त को मृगया से विरत करने के लिये विदूषक और सेनापति चतुराई से काम ले रहे हैं । "वैधवेय" गाली है । "ननु" अपनी बात पर जोर देने के लिये है ।

हिन्दी-अनुवाद—शरीर, चर्बी के नष्ट होने से दुबले पेट वाला और हलका होकर (उद्योग में) समर्थ हो जाता है । जानवरों का भी मन डर और गुस्से में बदला (बिगड़ा) हुआ दिख जाता है । जो चलते हुये लक्ष्य (टार्गेट) पर बाण लगते हैं, वह धनुर्धारियों की उत्कृष्टता है । झूठ-मूठ शिकार को व्यसन कहा जाता है, ऐसा मनोरंजन (अन्यत्र) कहाँ ?

अन्वय—वपुः मेदश्छेदकृशोदरम् (सत्) लघु (सत्) उत्थानयोग्यम् भवति । सत्त्वानाम् अपि चित्तम् भयक्रोधयोः विकृतिमत् लक्ष्यते । सः च धन्विनाम् उत्कर्षः यत् इषवः लक्ष्ये चले सिध्यन्ति । मृगयाम् व्यसनम् मिथ्या एव (लोकाः शास्त्रकाराः वा) वदन्ति । ईदृक् विनोदः कुतः (भवति) ।

संस्कृत-टीका—**वपुः** शरीरम् । **मेदश्छेदकृशोदरम्** **मेदसः** वसायाः **छेदेन** नाशेन **कृशम्** क्षीणम् **उदरम्** यत्र तथाभूतम् (सत्) **लघु** भाररहितम् (सत् ।) **उत्थानयोग्यम्** **उत्थाने** उद्योगे **योग्यम्** क्षमम् । **भवति** जायते । **सत्त्वानाम्** जन्तूनाम् । **अपि** । **चित्तम्** मनः । **भयक्रोधयोः** **भयम्** भीतिः च **क्रोधः** कोपः च **भयक्रोधौ** तयोः । **विकृतिमत्** विकृतम् । (परिवर्तितम्) । **लक्ष्यते** ज्ञायते । **सः** । **च** । **धन्विनाम्** धनुष्मताम् । **उत्कर्षः** कुशलता । **यत्** । **इषवः** बाणाः । **चले** अस्थिरे (गमनशीले) । **लक्ष्ये** शरव्ये । **सिध्यन्ति** सफलीभवन्ति । **मृगयाम्** आखेटम् । **व्यसनम्** दोषयुक्ताम् । प्रवृत्तिम् । **मिथ्या** असत्यम् (**एव**) । (लोकाः) **वदन्ति** कथयन्ति । **ईदृक्** ईदृशः । **विनोदः** **कुतः** कः [(अन्यत्र) कुत्र (न कुत्रापि)] (भवति) ।

विदूषकः—अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडवीं आहिंडंतो णरणासिआलोलुवस्स जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि। [अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि।]

हिन्दी-व्याख्या—चर्बी से मुटापा आता है और वह दौड़ने आदि व्यायाम से कम होती है। यह सारे शरीर में पाई जाती है। भावमिश्र ने इसे पेट और हड्डियों में बताते हुये व्यायाम न करने आदि से इसकी वृद्धि बताई है :—मेदो हि सर्वजन्तूनामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्। अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्। अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः। मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धयेत्।—भावप्रकाश।

मनुष्यों का मन भय और क्रोध में बिगड़ा हुआ अनुभव सभी करते हैं; शिकारी को ही यह लाभ है कि वह जानवरों का बिगड़ा मन भी देखता है, टार्गेट पर निशाना अचूक लगने पर धनुर्धारी की तारीफ होती है। बाण चलना यांत्रिकता की अपेक्षा अभ्यास पर निर्भर होने से ऐसा स्वाभाविक है। मनु ने शिकार को व्यसन कहा है (उसे ही लक्ष्य कर ऊपर कहा गया प्रतीत होता है) :—

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियोन्मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाटया च कामजो दशमो गुणः॥

कोष—उद्योगं च तथोत्थानम्—धरणि। सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु—अमर।

धन्वी धनुष्मान् धानुष्कः-अमर।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित (लक्षण १।१४ में देखें)।

अलङ्कार—वृत्त्यनुप्रास, समुच्चय, वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग, अर्थापत्ति व संसृष्टि।

हिन्दी-अनुवाद—श्रीमान् (राजा) स्वाभाविक स्थिति में आ गये हैं। तुम तो, (एक) जंगल से दूसरे जंगल में आवारगी करते हुए तथा आदमी की नाक के लोलुप (लालची) किसी पुराने (बुड्ढे) रीछ के मुँह में पड़ोगे।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्। अत्रभवान् उपस्थितः पूज्यः (राजा)। प्रकृतिम् स्वाभाविकीम् (सामान्याम्) स्थितिम्। आपन्नः प्राप्तः। त्वम् भवान्। तावत् तु। अटवीतः वनात्। अटवीम् वनम्। आहिण्डमानः भ्रमन्। नरनासिकालोलुपस्य नरस्य मनुष्यस्य नासिकायाः नासायाः लोलुपस्य लिप्सोः। जीर्णऋक्षस्य जीर्णः वृद्धः च असौ ऋक्षः च जीर्णऋक्षः तस्य। कस्यापि कस्यचित् (एकस्य)। मुखे वदने। पतिष्यसि यास्यसि।

हिन्दी-व्याख्या—"अत्रभवान्" का अर्थ पूज्य है; हिन्दी में कहीं-कहीं पुराने लेखक अथवा दाता राजा की प्रशंसा करने के लिये इसका प्रयोग करते हैं। यह सामने उपस्थित के लिये आया करता है। इसका विलोम "तत्रभवान्" है जिसका अर्थ "अनुपस्थित श्रीमान् (पूज्य)" है। अटवी का अर्थ छोटा जंगल है। यहाँ विशेष अर्थ "छोटा" की अपेक्षा न होने से जंगल अर्थ होगा। "नर-नासिका-लोलुपस्य" में स्वभावोक्ति है। यह आज तक प्रसिद्ध है कि रीछ आदमी की नाक नोचने के बाद दूसरा आक्रमण करता है। बुड्ढा (जीर्ण) लोलुपता का आधिक्य दिखाने के लिये है; जितना बड़ा होता जायेगा, उतना अभ्यास होता जायेगा।

राजा—भद्र सेनापते, आश्रमसन्निकृष्टे स्थिताः स्मः । अतस्ते वचो नाभिनन्दामि । अद्य तावत्—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥ ६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—सेनापति महाशय, हम तपोवन के समीप वर्तमान हैं, इसलिये मैं आपकी बात की सराहना नहीं करता । आज तो—

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः), (कथयति यत्) । **भद्र** महाशय । **सेनापते** । **आश्रमसन्निकृष्टे आश्रमस्य** तपोवनस्य **सन्निकृष्टे** समीपे । **स्थिताः** प्राप्ताः । **स्मः** । **अतः** अनेन हेतुना । **ते** तव । **वचः** वचनम् । **न** । **अभिनन्दामि** प्रशंसामि । **अद्य** अस्मिन् दिने । **तावत्** तु ।

हिन्दी-व्याख्या—इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि आश्रम इतने शान्तिप्रधान होते हैं कि वहाँ हिंसा तो क्या, हिंसा की बात भी करना उचित नहीं है । सेनापति ने राजा का शिकार-प्रेम देखकर सोचा था कि शिकार की तारीफ सुनकर वे मुझ पर खुश होंगे पर असर उलटा हुआ । राजा देश-काल के अनुसार कार्य करते हैं और सेनापति इसमें चूक जाता है । दूसरे का इच्छानुवर्तन करने में ऐसी चूकें होती रहती हैं । पराधीनता में हर समय सही बातों का कहना उचित भी नहीं होता, वहाँ वही कहना या करना उचित होता है जो मालिक को अच्छा लगे । अद्य तावत्—श्लोक-शेष है, इसका सम्बन्ध श्लोक से है पर गद्य-भाग में है ।

हिन्दी-अनुवाद—भैंसें, सींगों से बार-बार मथे हुये जलाशय के जल में नहायें । छाँह में गोल बनाये हिरनों का समूह बार बार जुगाली करे । छोटे तालाबों में यूथपति वराह (सुअर) विश्वास-पूर्वक (निडर होकर) नागर-मोथा समाप्त करें और हमारा यह धनुष जिसकी डोर के बन्धन ढीले हैं विश्राम पाये ।

अन्वय—महिषाः शृङ्गैः मुहुः ताडितम् निपानसलिलम् गाहन्ताम् । छायाबद्ध-कदम्बकम् मृगकुलम् रोमन्थम् अभ्यस्यतु । वराहपतिभिः पल्वले मुस्ताक्षतिः विश्रब्धम् क्रियताम् । इदम् शिथिलज्याबन्धम् अस्मद्धनुः च विश्रामम् लभताम् ।

संस्कृत-टीका—**महिषाः** (लुलायाः) । **शृङ्गैः** विषाणैः । **मुहुः** वारम्-वारम् **ताडितम्** **निपानसलिलम् निपानस्य** जलाशयस्य **सलिलम्** जलम् **गाहन्ताम्** आलोडयन्तु । **छायाबद्ध-कदम्बकम् छायायाम्** आतपरहिते स्थाने **बद्धम्** रचितम् **कदम्बकम्** समूहः येन तत् **मृगकुलम्** **मृगाणाम्** हरिणानाम् **कुलम्** समूहः **रोमन्थं** चर्वितस्य (तृणस्य) चर्वणम् । **अभ्यस्यतु** पुनः पुनः करोतु । **वराहपतिभिः वराहाणाम्** शूकराणाम् पतिभिः यूथनाथैः **पल्वले** क्षुद्रतडागे । **मुस्ताक्षतिः** **मुस्तानाम्** तृणविशेषाणाम् **क्षतिः** नाशः । **विश्रब्धम्** विश्वासपूर्वकम् (मृगयाभयरहितम्) । **क्रियताम्** विधीयताम् । **इदम्** । **शिथिलज्याबन्धम् ज्यायाः** गुणस्य **बन्धः** बन्धनम् **ज्याबन्धः**

सेनापतिः—यत्प्रभविष्णवे रोचते ।

राजा—तेन हि निवर्तय पूर्वगतान् वनग्राहिणः । यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति तथा निषेद्धव्याः । पश्य—

शिथिलः श्लथः ज्याबन्धः यस्य तथाभूतम् । अस्मद्धनुः अस्माकम् मम धनुः । च । विश्रामम् विश्रान्तिम् । लभताम् प्राप्नोतु ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा के शिकार से विरत हो जाने पर कोलाहल, भागदौड़ और प्रहार का डर न देखकर पशु स्वेच्छापूर्वक आहार विहार करेंगे, यह बात यहाँ कही गई है । भैंसे, हिरन और सुअरों पर शिकारियों का डर ज्यादा व्यापता है जिससे वे अपनी अपनी आदत—पानी का आलोडन-विलोडन, छाँह में गोल बनाकर जुगाली करना व गन्दे व छोटे तालावों में नागरमोथा खाना—छोड़ देते हैं । "धनुष विश्राम पावे" कह कर धनुष को कर्तृत्व दिया गया है जिससे उसकी श्रेष्ठता द्योतित होती है । वीर राजा के लिए ऐसा भरोसा उचित ही है ।

छन्द—शार्दूल विक्रीडित (लक्षण १।१४ में द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, स्वभावोक्ति व अतिशयोक्ति ।

दोष—यहाँ तीसरे चरण में कर्मवाच्य, दूसरे चरण में (आत्मनेपद क्रिया की जगह) परस्मैपद क्रिया और पहले चरण में बहुवचन का प्रयोग एकरूपता में बाधक हैं। शेष चरणों में कर्तृवाच्य, आत्मनेपद और एकवचन होने पर सब ठीक हो जाता है । "विश्राम" का प्रयोग भी ठीक नहीं है । पाणिनि के अनुसार विश्रम बनना चाहिये; "विश्राम" की सिद्धि बाद में चान्द्र व्याकरण में इसलिये करने की कोशिश की गई है जिससे कालिदास गलत न माने जायँ । भट्टनारायण, मुरारि, भवभूति आदि की रचनाओं में भी यह शब्द देखकर इसे सही माना है:—

विश्रामस्यापशब्दत्वं वृत्तयुक्तं नाद्रियामहे ।
मुरारिभवभूत्यादीनप्रमाणीकरोति कः ॥

ऊपर एकरूपता का अभाव बताया गया है । इसे "भग्नप्रक्रम" नामक दोषयुक्त पद बताया गया है ।

हिन्दी-अनुवाद—सेनापति—प्रभु (आप) की जैसी इच्छा ।

संस्कृत-टीका—सेनापतिः सेनानीः । यत् यथा । प्रभविष्णवे प्रभुत्वशीलाय (भवते) । रोचते रुचिकरम् (तथा भवेत्) ।

हिन्दी-व्याख्या—संस्कृत में यहाँ अधूरा वाक्य ही शोभा देता है, क्योंकि ऐसा प्रचलित और मुहावरेदार है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—तो यह जरूरी है कि पहले गये हुये वनग्राहियों (जंगल के बारे में सुपरिचितों) को वापस कराओ । (इस प्रकार) मनाही कर दो कि मेरे सैनिक आश्रम को न घेरें । देखो—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः अभ्यधात् यत) तेन तस्मात् कारणात् हि निश्चयेन ।

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥ ७ ॥

निवर्त्य आगमय । **पूर्वंगतान् पूर्वम्** प्राक् **गतान्** यातान् **वनग्राहिणः** विपिनाभिज्ञान् । **यथा** येन प्रकारेण । **न** । **मे** मम । **सैनिकाः** भटाः । **तपोवनम् तपसः** तपस्यायाः **वनम्** विपिनम् (आश्रमम्) । **उपरुन्धन्ति** परिपीडयन्ति । **तथा** तेन प्रकारेण । **निषेद्धव्याः** प्रतिषेधनीयाः । **पश्य** अवलोकय ।

हिन्दी अनुवाद—शान्ति की प्रधानता वाले तपस्वियों में निश्चय ही दाहस्वभाववाला तेज छिपा रहता है । वे छूने लायक सूर्यकान्त (मणि) की तरह दूसरे तेज के पराभव से उसे (तेज को) उगल देते हैं ।

अन्वयः—शमप्रधानेषु तपोधनेषु दाहात्मकम् तेजः गूढम् हि अस्ति । (ते) स्पर्शानुकूलाः सूर्यकान्ताः इव अन्यतेजोऽभिभवात् तद् वमन्ति ।

संस्कृत-टीका—**शमप्रधानेषु शमः** शान्तिः (एव) **प्रधानम्** मुख्यम् (वस्तु) येषाम् ते शान्तिप्रधानाः **तेषु** । **तपोधनेषु तपः** तपस्या **धनम्** वित्तम् (सर्वस्वम्) येषाम् ते **तपोधनाः** तेषु । **दाहात्मकम्** दाहस्वभावम् । **तेजः** । **गूढम्** गुप्तम् । **हि** निश्चयेन । **अस्ति** भवति । **स्पर्शानुकूलाः स्पर्शः अनुकूलः** सुखकरः येषाम् ते । **सूर्यकान्ताः** (मणिविशेषाः) (सूर्यवत् कान्ताः तपोधनाः **इव** । **अन्यतेजोऽभिभवात् अन्यत्** परम् च तत् **तेजः** च तस्मात् **अभिभवः** पराभवः तस्मात् । **तत्** (तेजः) । **वमन्ति** प्रकटयन्ति ।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ "प्रधान" शब्द का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में है, विशेषण की तरह नहीं । इस तरह इसका अर्थ "प्रधान वस्तु" है और यह विशेषण की तरह प्रयुक्त संज्ञा है जिस तरह "तपोधन" में "धन" है । "अनुकूल" विशेषण है । बहुव्रीहि समास में विशेषण पहले रखा जाता है, पर कभी-कभी बाद में भी देखा जाता है । स्पर्शानुकूल और सूर्यकान्त तपोधनों के विशेषण भी हो सकते हैं । "अभिभव" पद जब मणि के लिए आयेगा, तब इसका अर्थ (चारों ओर से भवन अर्थात् प्राप्ति-सम्बन्ध) होगा (अभितः भवतु भवनम्) । सूर्यकान्त एक मणि है जो धूप ग्रहण कर सूर्य से भी अधिक ताप देती है, यों उसका अपना ताप कुछ भी नहीं है । "वमन्ति" का अर्थ "वमन करते हैं" इस अर्थ में यह जुगुप्सा-अश्लील प्रतीत होता है पर है नहीं । जहाँ "वमन" अर्थ होता है, वहाँ जुगुप्सा अश्लील होने का प्रश्न होता है (यहाँ अर्थ लक्षण से प्रकट करना है)—'निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादिगौणवृत्तिव्यपाश्रयम् । अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते'—काव्यादर्श १।९४ । यहाँ भाव यह है कि जैसे सूर्यकान्त मणि शीतल होकर भी सूर्य के सम्पर्क से तेज प्रकट करता है, उसी प्रकार तपस्वी शान्त होकर भी दूसरे की ढिठाई की अति होने पर कुपित हो जाते हैं, अतः शिकार के होहल्ले और हिंसा से इन्हें कुपित करना ठीक नहीं है । सेनापति के मन की बात शिकार-की आज्ञा न मिलने पर कहीं उत्साह-भंग न हो, इसलिये राजा समझाते हैं । कोई चोरी छिपे आज्ञोल्लंघन न करे, इसलिये चेतावनी भी देते हैं कि ऋषि का तेज कोप या शाप रूप में प्रकट होकर असह्य हो जायेगा ।

सेनापतिः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

विदूषकः-धसदु दे उच्छाहवुत्तंतो । [ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः] । (निष्क्रान्तः सेनापतिः) ।

राजा—(परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेशम् । रैवतक, त्वमपि स्वं नियोगमशून्य कुरु ।

परिजनः—जं देवो आणवेदि [यद्देव आज्ञापयति ।] (इति निष्क्रान्तः)

विदूषकः—किदं भवदा णिम्मच्छिअं । संपदं एदस्सिं पादअच्छाआए विरइदलदाविदाणदंसणीआए आसणे णिसीददु भवं, जाव अहं वि सुहासीणो होमि [कृतं भवता

छन्द—उपजाति जिसका लक्षण निम्नलिखित है—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥

तगण, तगण, जगण व दो गुरु से इन्द्रवज्रा, जगण, तगण, जगण व दो गुरु से उपेन्द्रवज्रा और इन दोनों के मिश्रण से उपजाति छन्द बनता है ।

अलङ्कार—छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, श्लेषोपमा, अनुमान व काव्यलिङ्ग ।

हिन्दी-अनुवाद—जैसी स्वामी की आज्ञा ।

संस्कृत-टीका—सेनापतिः सेनानीः । यत् यथा । आज्ञापयति आदिशति । स्वामी महाराजः ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—तुम्हारे उत्साह की चर्चा समाप्त हो । (सेनापति बाहर जाता है ।)

संस्कृत-टीका—विदूषकः । ध्वंसताम् नश्यतु । ते तव । उत्साहवृत्तान्तः उत्साहस्य (मृगयारूपस्य) वृत्तान्तः चर्चा । निष्क्रान्तः निर्गतः । सेनापतिः सेनानीः ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (दास-दासी-वर्ग को देखकर) आप लोग शिकार की वेश-भूषा उतारें । रैवतक तुम भी अपने काम पर जाओ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । परिजनम् भृत्यवर्गम् । विलोक्य दृष्ट्वा (कथयति यत्) । अपनयन्तु दूरीकुर्वन्तु । भवत्यः यूयम् मृगयावेशम् मृगयोचितम् आखेटोपयोगि वेशम् परिधानम् । रैवतक । त्वम् । अपि । स्वम् स्वोपयोगि नियोगम् कर्त्तव्यम् । अशून्यम् पूर्णम् । कुरु ।

हिन्दी-व्याख्या—परिजन परिवार पद प्रायः दास-दासी वर्ग के लिये आता है । यहाँ दासियों से कहा गया है । वे भी शिकारियों के वेश में राजा के साथ रहती थीं, ऐसा प्रतीत होता है । रैवतक, द्वारपाल का नाम है । नियोग या अधिकार ड्यूटी के अर्थ में संस्कृत में आते हैं । नियोग द्वार पर उपस्थित रहता है उसकी शून्यता (अभाव) का निवारण करना है ।

हिन्दी अनुवाद—भृत्यवर्ग—जैसी महाराज की आज्ञा (यह कहकर बाहर जाता है) ।

संस्कृत-टीका—परिजनः भृत्यवर्गः (कथयति यत्) । यत् यथा । देवः राजा । आज्ञापयति आदिशति । इति एवम् कथयित्वा । निष्क्रान्तः निर्गतः ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—आपने एकान्त बना दिया है अब वृक्षों की इस छाया में जो

निर्मक्षिकम्। सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयायामासने निषीदतु भवान् यावदहमपि सुखासीनो भवामि]।

राजा—गच्छाग्रतः।

विदूषकः—एदु भवं [एतु भवान्] (इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ)।

राजा—माढव्य अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।

लताओं के लगे चँदोवे से देखने-लायक है, आप बैठें। मैं भी जरा सुस्ता (सुख-पूर्वक बैठ) लूँ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (कथयति यत्)। **कृतम्** रचितम्। **भवता** त्वया **निर्मक्षिकम्** मक्षिकाणाम् अभावः जन-राहित्यम्। **साम्प्रतम्** अधुना। **एतस्याम्** अस्याम्। **पादपच्छायायाम्** पादपानाम् वृक्षाणाम् छायायाम् अनातपे। **विरचितलतावितानदर्शनीयायाम्** विरचिताः कृताः च ते लतावितानाः तैः दर्शनीया अवलोकनीया तस्याम्। **लतानाम्** वल्लरीणाम् **वितानैः** चन्द्रातपैः। **आसने**। **निषीदतु** उपविशतु। **भवान्** त्वम्। **यावत्**। **अहम्** अयम् जनः। **अपि**। **सुखासीनः** सुखेन आनन्देन **आसीनः** निषण्णः। **भवामि**।

हिन्दी व्याख्या—"निर्मक्षिकम्" एकान्त के लिये आता है। अपना मूल अर्थ "मक्खियों का अभाव" छोड़ देने से यह लक्षणार्थवाचक या मुहावरा है। बहुत गुप्त बात की चर्चा होने पर अन्य व्यक्ति हटा दिये जाते हैं और ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि मक्खी तक न आ सके, मनुष्य की तो बात ही क्या ?

हिन्दी-अनुवाद—राजा-आगे-आगे चलो।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः कथयति यत्)। **गच्छ** याहि। **अग्रतः** अग्रे अग्रे।

हिन्दी व्याख्या—प्रस्थान पर कहीं जाना हो तो अनुचर आगे चलकर रास्ता दिखाते हैं—जैसे सब रास्तों से वे ही परिचित हैं, राजा ने इतना भी कष्ट नहीं किया कि अपना ही महल ठीक-ठीक से जानें। रास्ता दिखाने वाला आगे चले, यही सदाचार है, छोटा होने पर भी उसे उस समय पीछे नहीं रहना चाहिये।

हिन्दी-अनुवाद—आप आयें। (इतना होने पर दोनों घूमकर बैठ गये)।

संस्कृत टीका—विदूषकः (कथयति यत्), **एतु** आगच्छतु। **भवान्** त्वम्। **इति** एवम् **ब्रूते**। **उभौ** उभयम् (राजा च विदूषकः च)। **परिक्रम्य** परितः गत्वा। **उपविष्टौ** निषण्णौ।

हिन्दी व्याख्या—रंग-मंच छोटा होने से कुछ दूर जाने की क्रिया दिखाने के लिये केवल उस (रंग-मंच) पर एक चक्कर अपनी ही जगह लगा लिया जाता है।

हिन्दी अनुवाद—राजा—माढव्य, तुमने आँखों का फल (सफलता) प्राप्त नहीं किया, देखने लायक वस्तु नहीं देखी।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः कथयति यत्) **माढव्य**। (स त्वम्) **अनवाप्तचक्षुः-फलः** **अवाप्तम्** प्राप्तम् **चक्षुषोः** नेत्रयोः **फलम्** साफल्यम् येन सः **अवाप्तचक्षुः फलः** न **अवाप्त-चक्षुःफलः** **अनवाप्तचक्षुःफलः**। **असि**। **येन**। **त्वया** भवता। **दर्शनीयम्** दर्शनयोग्यम् (कान्तम्) वस्तु। **न**। **दृष्टम्** विलोकितम्।

विदूषकः—णं भवं अग्गदो मे वट्टदि [ननु भवानग्रतो मे वर्तते]।

राजा—सर्वः खलु कान्तमात्मीयं पश्यति। तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि।

हिन्दी-व्याख्या—माढव्य, विदूषक का नाम है। अन्य समास करने के बाद नञ् तत्पुरुष समास किया जाता है। संस्कृत की रचना में इस तरह के वाक्य आते हैं जहाँ उद्देश्य और विधेय में क्रमशः "यत्" और "तत्" का प्रयोग किया जाता है हिन्दी में ऐसा नहीं होता, अतः "येन" का अनुवाद व्यर्थ है। शाब्दिक अनुवाद होगा—जिस तुमने दर्शनीय वस्तु नहीं देखी वह तुम नेत्र-फल-रहित हो। येन की जगह यत् होता तो प्रचलन के अधिक निकट होता। "येन" और "यत्" समानार्थक हैं, अतः अर्थ "क्योंकि" भी हो सकता है। राघवभट्ट के अनुसार इस वाक्य के आरम्भ से अङ्क २ के अन्त तक प्रतिमुख सन्धि है। सुधाकर में उसकी परिभाषा निम्नलिखित है—

'बीजप्रकाशनं यत्र दृश्यादृश्यतया भवेत्। तत्स्यात्प्रतिमुखम्'......॥ जहाँ कोई बात किसी को दृश्य (दिखे) और किसी को अदृश्य (न दिखे) हो और इस प्रकार बीज (कारण मूल) प्रकाशित हो जाय, उस सन्धि का नाम प्रतिमुख है। यहाँ राजा ने वह दर्शनीय वस्तु देखी है, पर विदूषक ने नहीं।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—क्यों (नहीं नेत्र-फल-रहित हूँ) ? आप (तो) मेरे आगे (ही) हैं।

संस्कृत टीका—**विदूषकः** (कथयति यत्) । **ननु** (प्रश्ने संबोधने वा) । **भवान्** त्वम्। **अग्रतः** समक्षम्। **मे** मम। **वर्तते** विद्यते।

हिन्दी-व्याख्या—"ननु" का अर्थ प्रश्न में (क्यों) या संबोधन (श्रीमन्) में किया जाता है। विदूषक ने यहाँ राजा का मजाक उड़ाया है कि दर्शनीय वस्तु देखकर मैं नेत्र-फल-युक्त हूँ क्योंकि तुम दर्शनीय हो और मेरे सामने ही बैठे हो। दूसरा अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि मैं स्वयं दर्शनीय हूँ और शीशे में अपने को देखा था जिससे मैं तो नेत्र-फल-युक्त हूँ; नेत्र-फल-विरहित व्यक्ति मेरे सामने वर्तमान आप हैं। इस अर्थ की संगति तभी मानी जा सकती है जब अगले वाक्य के "आत्मीयम्" का अर्थ "निज" को लगाया जाय या पाठान्तर "आत्मानम्" को पाठ माना जाय। यहाँ "आगमन" नामक अवस्था है जो प्रतिमुख-संधि का अंग है। यह वहाँ होती है जहाँ एक के बाद दूसरा वाक्य (एक दूसरे को काटने वाले सवाल-जवाब) हों...आगमनं वाक्यं स्यादुत्तरोत्तरम्॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा सभी अपने (या अपने आत्मीय व्यक्ति को) सुन्दर (रूप में) देखते हैं। (मैं तो) आश्रम-अलङ्करणस्वरूप उस शकुन्तला के विषय में कह रहा हूँ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः कथयति यत्)। **सर्वः** समस्तः जनः। **खलु** निश्चयेन। **कान्तम्** मनोरमम् (दर्शनीयम्)। **आत्मीयम्** स्वम् (स्वम् जनम् वा)। **पश्यति** विलोकयति। **ताम्** अनुभूताम् (प्रसिद्धाम् वा)। **आश्रमललामभूताम्** आश्रमस्य तपोवनस्य **ललामभूताम्** **भूषणस्वरूपाम्** (शोभाम्)। **शकुन्तलाम्** कण्वकन्याम् **अधिकृत्य** विषयीकृत्य। **ब्रवीमि** वदामि।

हिन्दी-व्याख्या—यदि "अपने को सुन्दर" अर्थ लिया जायेगा तो राजा विदूषक के परिहास का उत्तर परिहास में दे रहे हैं, होगा, यदि "अपने आत्मीय व्यक्ति को सुन्दर" अर्थ लिया जायेगा

विदूषकः—(स्वागतम्) **होदु से अवसरं ण दाइस्सं।** (प्रकाशम्) **भो वअस्स ते तावसकण्णआ अब्भत्थणीआ दीसदि।** [भवतु अस्यावसरं न दास्ये। भो वयस्य, ते तापसकन्यकाभ्यर्थनीया दृश्यते।]

राजा—सखे, न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते।

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्॥ ८॥

तो "राजा, गंभीर और स्नेह-वचन अंगीकार कर उसका सौजन्य-पूर्ण उत्तर दे रहे हैं", यह मानना होगा। आशय यह होगा कि तुम किसी को सुंदर मानोगे तो मुझको ही, क्योंकि मैं तुम्हारा आत्मीय हूँ। हिन्दी में "सबसे सुंदर अपना लड़का है" जैसी कहावतें प्रथम वाक्य की समानार्थक हैं।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (अपने मन में) भले ऐसा हो; मैं इनको अवसर न दूँगा। (स्पष्ट रूप से) हे मित्र, तुम्हें तपस्वी की लड़की (अपने से) ब्याह-लायक दिखती है ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (स्वगतम् मनसि) (कथयति यत्)। **भवतु** तथा एव स्यात्। **अस्य** (दुष्यन्तस्य)। **अवसरम्** अवकाशम् (चर्चाम्)। **न**। **दास्ये** उपस्थापयिष्यामि। **भोः** हे। **वयस्य** मित्र। **ते** तव। **तापसकन्यका तापसस्य** मुनेः (कण्वस्य) **कन्यका** कुमारी। **अभ्यर्थनीया** विवाहार्थम् प्रार्थनीया। **दृश्यते** प्रतीयते।

हिन्दी-व्याख्या—"स्वगत" वह स्थल है जो श्रोताओं को सुनाया जाता है, पर जिससे बात कर रहे हैं उसे नहीं। यह संस्कृत-नाटकों का एक अस्वाभाविक प्रयोग है। अस्य में षष्ठी शैषिकी है, दान का प्रसंग न होने से चतुर्थी नहीं है; जहाँ अन्य कोई विभक्ति नहीं हो सकती, वहाँ षष्ठी होती है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-मित्र, निषेध-योग्य वस्तु की ओर पुरु-वंशियों के मन की रुझान नहीं होती।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः कथयति यत्)। **सखे** मित्र। **न**। **परिहार्ये** परित्याज्ये। **वस्तुनि** पदार्थे। **पौरवाणाम्** पुरुवंशजानाम्। **मनः** चित्तम्। **प्रवर्त्तते** गच्छति।

हिन्दी-व्याख्या—यह आत्म-विश्वास पहले भी आ चुका है कि पुरुवंशी इतने सात्त्विक-भाव संपन्न हैं कि उनका मन कभी धोखा नहीं खा सकता। पुरु-वंश की उज्ज्वलता एक ऐसा प्रेरणा-दायक तत्त्व है जो राजा को अधर्म करने से रोकता है।

हिन्दी-अनुवाद—यह प्रसिद्ध है कि अप्सरा की पुत्री उसके द्वारा छोड़ी जाने और (कहीं) मिलने पर ऋषि की सन्तान हुई है जिस प्रकार नवमालिका का झड़ा हुआ फूल मन्दार के ऊपर पड़ा हो।

अन्वय—सुरयुवतिसंभवं तदुज्झिताधिगतम् मुनेः अपत्यम् किल। शिथिलम् अर्कस्य उपरि च्युतम् नवमालिकाकुसुमम् इव।

संस्कृत टीका—सुरयुवतिसंभवम् **सुरयुवतिः** देववामा (अप्सराः मेनका)। तस्याः **संभवम्** जातम्। तदुज्झिताधिगतम्। **तया** (मेनकया) **उज्झितम्** त्यक्तम् सत् (कण्वेन) **अधिगतम्** प्राप्तम्। **मुनेः** ऋषेः (कण्वस्य)। **अपत्यम्** सन्ततिः **किल** (प्रसिद्धौ)। **शिथिलम्** (वृन्तात्)

विदूषकः—(विहस्य) जह कस्स वि पिंडखज्जूरेहिं उव्वेजिदस्स तिंतिणीए अहिलासो भवे, तह इत्थिआरअणपरिभाविणो भवदो इअं अब्भत्थणा। (यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना।)

विश्लथीभूतम्। **अर्कस्य** मन्दारस्य। **उपरि**। **च्युतम्** पतितम्। **नवमालिकाकुसुमम् नवमालिकायाः** सप्तलतायाः **कुसुमम्** पुष्पम्। **इव**।

हिन्दी व्याख्या—मन्दार का फूल प्रार्थनीय नहीं होता पर यदि मन्दार के पौधे पर नवमालिका लता का फूल टूटकर गिर पड़े तो वह भी मन्दार के फूल की तरह त्याज्य नहीं होता। यहाँ मेनका को नवमालिका, शकुन्तला को नवमालिका पुष्प और कण्व को मन्दार कहा गया है। मन्दार जंगली और अनाकर्षक पौधा है। शकुन्तला के रूप और ऋषि के वंश को देखते हुये उपमा बहुत अच्छी है। शकुन्तला, मेनका से भी सुन्दर है जिस प्रकार फूल से लता की शोभा होती है। उपमा प्रायः समान लिङ्ग वालों के होने पर दी जाती है: फूल से उपमा देने के लिये अपत्य (दोनों नपुंसकलिङ्ग) पद का प्रयोग किया गया है। यहाँ मुनि का अर्थ विश्वामित्र करना ठीक नहीं है उससे परिहार्यता का प्रसंग उपस्थित होगा और मन्दार से उपमा में असङ्गति आयेगी।

छन्द—आर्या (परिभाषा १।२ में द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, उपमालङ्कार व नाट्यालङ्कार।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (मुस्कराकर) जिस प्रकार खजूर से ऊबे हुये किसी व्यक्ति को इमली की इच्छा हो, उसी प्रकार रत्न-तुल्य स्त्रियों का तिरस्कार करने वाले आपकी यह इच्छा है।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः**। **विहस्य** स्मितपूर्वम् (मध्यमहासम् कृत्वा)। **यथा** येन प्रकारेण। **कस्यापि** कस्यचित् पुरुषस्य। **पिण्डखर्जूरैः** खर्जूराख्य-फलविशेषैः **उद्वेजितस्य** विरक्तस्य। **तिन्तिण्याम्** चिञ्चायाम्। **अभिलाषः** लालसा। **भवेत्** स्यात् **तथा** तेन प्रकारेण **स्त्रीरत्नपरिभाविनः स्त्रीरत्नानाम्** नारीवर्याणाम् **परिभाविनः** तिरस्कर्तुः **भवतः** तव। **इयम्** एषा (शकुन्तलाविषया) **अभ्यर्थना** इच्छा।

हिन्दी-अनुवाद—खजूर मीठा और स्वादिष्ट होता है और इमली खट्टी और अस्वादिष्ट, विदूषक ये दोनों उपमान क्रमशः रानियों और शकुन्तला के लिये प्रयुक्त करता है जो ग्राम्य होने के कारण परिहास के लिये हैं। आशय यह है कि मूर्खता छोड़ दो; रानियों के सामने इस लड़की का कोई महत्त्व नहीं है। जगन्नाथ पण्डितराज ने सौन्दर्य-लहरी में मीठी वस्तु (मुस्कान) के बाद खट्टी (काँजी) चीज पीने की बात स्वाभाविक बताई है जिससे मुख की जड़ता समाप्त हो जाय।

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा।
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमम्लरुचयः
पिबन्ति स्वच्छन्दं निशि निशि भृशं काञ्जिकधिया॥

"रत्न" पद उसके अन्त में लगाते हैं जो अपनी जातियों में श्रेष्ठ होता है :—

जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिति कथ्यते।

राजा—न तावदेनां पश्यसि येनैवमवादीः ।

विदूषकः—तं खु रमणिज्जं जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि [तत्खलु रमणीयं यद्भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति ।]

राजा—वयस्य किं बहुना

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥९॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा तुम तो इसे देखे नहीं हो जिससे तुमने इस प्रकार कहा है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः कथयति यत्) **न**। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) **एनाम्** (शकुन्तलाम्) । **पश्यसि** अवलोकयसि । **येन** (कारणेन) यतः । **एवम्** तथा । **अवादीः** अकथयः ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—वह निश्चय ही सुन्दर चीज है जो आपको भी चकित कर देती है।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (कथयति यत्)। **तत्** (वस्तु) । **खलु** निश्चयेन । **रमणीयम्** सुन्दरम्। **यत्** (वस्तु)। **भवतः** तव। **अपि**। **विस्मयम्** आश्चर्यम्। **उत्पादयति** जनयति।

हिन्दी-व्याख्या—आपने दुनिया की सुन्दर से सुन्दर वस्तु देखी हैं, अतः वह अचरज में नहीं डाल सकता है। शकुन्तला का आकर्षण उन सभी वस्तुओं के होने से बढ़ गया है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मित्र, अधिक क्या कहें (अधिक से क्या लाभ) ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः कथयति यत्)। **किम्** अलम् **बहुना** आधिक्येन।

हिन्दी-अनुवाद—विधाता के द्वारा चित्र में स्थापित कर उसमें प्राण डाले गये हैं अथवा सौन्दर्य समूह से उसकी रचना की गई है ? विधाता की सामर्थ्य और उसके शरीर के बारे में सोचकर मुझे लगता है कि वह एक दूसरे ही प्रकार की स्त्रीरत्न की सृष्टि है।

अन्वय—विधिना (सा) चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा मनसा रूपोच्चयेन कृता नु । धातुः विभुत्वम् तस्याः वपुः च अनुचिन्त्य सा अपरा स्त्रीरत्नसृष्टिः मे प्रतिभाति ।

संस्कृत-टीका—**विधिना** विधात्रा (सा शकुन्तला) **चित्रे** आलेख्ये **निवेश्य** स्थापयित्वा **परिकल्पितसत्त्वयोगा** **परिकल्पितः** रचितः **सत्त्वस्य** प्राणानाम् **योगः** सम्बन्धः यत्र तथाभूता (अस्ति) (**नु**) । **मनसा** चित्तेन (करणेन) **रूपोच्चयेन** **रूपस्य** सौन्दर्यस्य **उच्चयेन** समूहेन (उपादानेन) **कृता** रचिता। **नु** वितर्के । **धातुः** विधातुः। **विभुत्वम्** सामर्थ्यम् । **तस्याः** (शकुन्तलायाः) । **वपुः** शरीरम् । **च** **अनुचिन्त्य** चिन्तयित्वा । **सा** (शकुन्तला)। **मे** मम । **अपरा** अन्या (नूतना) (एव) **स्त्रीरत्नसृष्टिः** **स्त्रीरत्नस्य** उत्कृष्टायाः नार्याः। **सृष्टिः** रचना । **प्रतिभाति** प्रतीयते ।

हिन्दी-व्याख्या—[illegible] सकती है

विदुषकः—जइ एव्वं पच्चादेसो दाणिं रूववदीणं [यद्येवं प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्]।

क्योंकि चित्र बनाना मूर्ति बनाने की अपेक्षा सरल है और उसमें अपनी रुचि के अनुसार रंग भरना और संशोधन करना आसान है। प्राण पहले डालकर निखारना ज्यादा कठिन है। चित्र, जीवित की अपेक्षा अधिक सुन्दर होता है यदि कलाकार अच्छा हो। यहाँ तो ब्रह्मा जैसा सर्व-श्रेष्ठ कलाकार है। मन से सृष्टि करने में हाथ का स्पर्श नहीं होता जिससे रचना अधिक अच्छी होती है। हाथ के हिल जाने, पसीना आदि गन्दगी लगा देने या मन की अपेक्षा कम शक्ति वाला होने से ऐसी उत्तम सृष्टि में उसका योगदान संभव नहीं है। अपनी पहली बात से संतुष्ट न होकर उसे विकसित (Improve) करने के लिये यह उक्ति उससे उत्कृष्ट कही गई है। यहाँ तीन स्थानों पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग है। विधिना की तृतीया कर्म-वाच्य के कर्त्ता के लिये है। मनसा की तृतीया करण-कारक के लिये है और रूपोच्चयेन की तृतीया उपादान (जिसके न रहने पर वस्तु ही न रहे जैसे घट में मिट्टी और पट में सूत) कारण के लिये है। मन की सृष्टि से अधिक कोमलता व्यक्त होती है। कोमलता की एक परिभाषा यह है कि यह कोमल वस्तु का स्पर्श भी नहीं सह सकती—यत्स्पर्शासहताङ्गेषु कोमलस्यापि वस्तुनः। तत्सौकुमार्यम् ······॥ मन भाव है वस्तु नहीं, अतः उसका स्पर्श यह शरीर सह सकता है; हाथ वस्तु है, उसका नहीं। प्रतिभाति के साथ षष्ठी (मे) का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। "अनुचिन्त्य" में "ल्यप्" का प्रयोग चिन्त्य है। क्त्वा, ल्यप् और तुमुन् प्रत्ययों से बने पदों का कर्त्ता वही हो सकता है जो मुख्य क्रिया (यहाँ प्रतिभाति) का कर्त्ता होता है। ऐसे स्थलों पर क्त्वा या ल्यप् प्रत्यय की जगह शतृ या शानच् का प्रयोग विशेषण के रूप में (यहाँ अनुचिन्तयतः) हो सकता है। अपरा का अर्थ है दूसरी अर्थात् नई जो विधाता की सामान्य सृष्टि से विलक्षण हो, सामान्य सृष्टि सीधे की जाती है, चित्रों में नहीं, सौन्दर्य समूह से न कर हाड़-मांस से की जाती है और हाथ से होती है न कि मन से। ऐसा सृष्टि सम्भव नहीं है, कहना गलत है क्योंकि शरीर सामने है। यह कहना भी गलत है कि ऐसी सृष्टि कोई नहीं कर सकता, क्योंकि विधाता सर्वशक्तिमान् है। नु का अर्थ सन्देह [मुझे शक है कि] और वितर्क [अथवा] में से कोई भी हो सकता है।

छन्द—वसन्ततिलका [१।८ द्रष्टव्य]।

अलङ्कार—अतिशयोक्ति, सन्देह, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग, श्रुत्यनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—यदि ऐसा है तो अब (अन्य सभी) सुन्दरियों की काट (पैदा) हो गई है।

संस्कृत टीका—विदूषकः—(माढव्यः) (कथयति यत्)। यदि चेत्। **एवम्** इत्थम्। (तदा)। **प्रत्यादेशः** निराकरणम्। **इदानीम्** अधुना। **रूपवतीनाम्** सुन्दरीणाम्।

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला के कारण सुन्दरियों की काट (निराकरण) उपस्थित हो गई है, अतः शकुन्तला को ही काट बताया गया है।

अलङ्कार—हेतु।

राजा—इदं च मे मनसि वर्त्तते ।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥१०॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—और (इसके अतिरिक्त) यह बात (भी) मेरे मन में है।

संस्कृत-टीका—राजा—(नृपः) (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **इदम्** वक्ष्यमाणम्। च एतदतिरिक्तम् (अपि)। **मे** मम। **मनसि** हृदये। **वर्त्तते** अस्ति।

हिन्दी-अनुवाद—उसका निष्पाप सौन्दर्य न सूँघे हुये फूल, नाखूनों से न नोचे गये पत्र, बिना तराशे रत्न, जिसका रस नहीं चखा गया है उस नये मधु और पुण्यों के अटूट परम्परा वाले फल की तरह है। न जाने, विधाता, इसके लिये किस उपयोग-कर्ता (को लाने के लिये उस) के पास जायेंगे।

अन्वय—अनघम् तद्रूपम अनाघ्रातम् पुष्पम् इव। कररुहैः अलूनम् किसलयम् इव। अनाविद्धम् रत्नम् इव। अनास्वादितरसम् नवम् मधु इव। अखण्डम् पुण्यानाम् (अखण्डम्) फलम् इव च। न जाने विधिः इह कम् भोक्तारम् समुपस्थास्यति।

संस्कृत-टीका—अनघम् न **अघम्** पापम् यत्र तादृशम् (पापरहितम्)। **तद्रूपम्** तस्याः (शकुन्तलायाः) **रूपम्** सौन्दर्यम्। **अनाघ्रातम् न आघ्रातम्** नासिकाविषयीकृतम् **पुष्पम्** कुसुमम् (इव)। **कररुहैः** नखैः। **अलूनम्** अछिन्नम्। **किसलयम्** पल्लव (इव)। **अनाविद्धम्** स्थूल-वेधरहितम्। **रत्नम्** उपलः। **अनास्वादितरसम् आस्वादितः** रसनाविषयीकृतः **रसः** आनन्दानुभवः यस्य तादृशम् **आस्वादितरसम्** न **आस्वादितरसम् अनास्वादितरसम्**। **नवम्** प्रत्यग्रम्। **मधु** क्षौद्रम् (इव)। **अखण्डम्** न **खण्डम्** विभागः यस्य तादृशम् (परिपूर्णम्)। **पुण्यानाम्** सुकृता-नाम्। **फलम्** परिणामः। **इव। न। जाने** जानामि। **विधिः** ब्रह्मा इह अत्र। (शकुन्तलारूपस्य विषये) **कम्। भोक्तारम्** उपभोगकर्त्तारम्। **समुपस्थास्यति**। उपगमिष्यति (इति)।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ अछूती सुन्दरता का वर्णन है जो कौमार्य और कृत्रिमता-रहित अवस्था का द्योतक है। रत्न का स्थूल वेध कर दिया जाय तो वह खराब हो जाता है। अनाविद्ध का अर्थ अकुटिल अर्थात् सीधा भी होता है। जो रत्न टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता, वह सार-समुच्चय में अच्छा बताया गया है :—

वृत्तं स्निग्धसमुज्ज्वलं शुचिगुरु श्वेतं वृहत्कोमलं
स्वच्छान्तं समसूक्ष्मवेधसुरभि त्रासादिभिर्वर्जितम्।
दग्धं रत्नमवर्तुलं लघु ……।

रूप को यहाँ पाप-रहित कहा गया है। कालिदास ने ऐसा वर्णन कुमार संभव के सर्ग ५ में भी किया है जहाँ रूप पाप-वृत्ति के लिये नहीं (निष्पाप) होता है, इस उक्ति को सत्य बताया गया है :

विदूषक—तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्स वि तवस्सिणो इंगुदीतेल्ल-मिस्सचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि [तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इंगुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति]।

"यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।" मैं ही विधाता के द्वारा रचा गया उपभोक्ता हूँ, इसमें अब तक राजा को भरोसा नहीं है। फूल, पत्ते, रत्न और मधु से उपमा देने में वन और पर्वत के उपादान ही लिये गये हैं जो शकुन्तला के जंगल में परिचर्चित होने से अधिक उपयुक्त हैं। इसी प्रकार कुमारसम्भव में पहाड़ की रहने वाली पार्वती के सौन्दर्य का नैसर्गिक वर्णन है। कालिदास ऐसे वन्य और पर्वतीय सौन्दर्य के कायल हैं। न सूँघे हुये से तात्पर्य है कि किसी ने इसके कौमार्य का उपभोग अब तक नहीं किया है। यही अर्थ अलून, अनाविद्ध, अनास्वादित और अखण्ड से भी निकलता है। फूल से उपमा देने से सुगन्धि होने से पवित्रो होना, कोमलता और सुन्दरता का बोध होता है। पत्ते से उपमा देने से उसकी तरह नयापन और ताजगी ध्वनित होती है। रत्न तेज का परिचायक है। मधु से उपमा देने से अत्यन्त लुभावनापन व्यक्त होता है। यहाँ मधु का अर्थ मद्य लेना ठीक नहीं है क्योंकि मद्य नया अच्छा नहीं होता, पुराना अच्छा होता है। सूँघने से फूल की सुगन्ध कम हो सकती है, नाखून से तोड़ने से पत्ते में खरोंच आ सकती है, तराशने से रत्न खराब हो सकता है, पुराना होने या आस्वादित होने से मधु विकृत स्वाद वाला, कम और जूठा हो सकता है तथा पुण्य विभक्त होने पर कम हो सकता है जिससे उन-उन वस्तुओं में हीनता आ सकती है। "न जाने" हिन्दी में भी आता है जो संस्कृत से अविकल रूप में उद्धरण की तरह आ गया है; यह प्रयोग यह सूचित करता है कि राजा को दुनिया में कोई शकुन्तला के रूप को देखते हुये उसके योग्य उपभोक्ता नहीं दिखता, तब फिर वे स्वयं बच जाते हैं।

छन्द—शिखरिणी (१.९ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—परिकर, शोभा (नाट्य-लक्षण), वस्तु और अलंकार से वस्तु ध्वनि, गुण-संकीर्तन (नाट्य-लक्षण), मालोपमा।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—तो निश्चय ही आप इसे शीघ्र बचावें। ऐसा न हो कि इंगुदी के तेल के लगने से चिकनी खोपड़ी वाले किसी तपस्वी के हाथ पड़ जाय।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्)। **तेन** तस्मात् (कारणात्)। **हि** निश्चयेन। **लघु** शीघ्रम्। **परित्रायताम्** रक्ष। **एनाम्** (शकुन्तलाम्)। **भवान्** त्वम्। **मा** (इदम्) न स्यात् (यत्)। **कस्यापि** कस्यचित्। **तपस्विनः** तापसस्य। इंगुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य **इंगुद्याः** तापसतरोः **तैलस्य** स्नेहस्य **मिश्रेण** सम्बन्धेन **चिक्कणम्** समम् **शीर्षम्** शिरः यस्य तादृशस्य (तापसस्य)। **हस्ते** करे। **पतिष्यति** यास्यति।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक का कथन परिहास-मय है। उसका आशय यह है कि यदि उपभोक्ता कौन होगा, यह अनिश्चित है तो आप स्वयं उससे ब्याह कर (अथवा कोई अन्य प्रबन्ध कर) उसकी रक्षा करें, अन्यथा उसके अयोग्य कोई छुरे से घुटी खोपड़ी पर इंगुदी का तेल लगाये रखने वाला तपस्वी उसे पा लेगा। तपोवन-कन्याओं और तापसों का भी ब्याह होता था। इंगुदी एक वृक्ष है जिसका तेल तपस्वी प्रयोग में लाते हैं।

राजा—परवती खलु तत्रभवती । न च संनिहितोऽत्र गुरुजनः ॥

विदूषक—अत्रभवंतं अंतरेण कीदसो से दिट्ठिराओ [अत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः ।]

राजा—निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः । तथापि तु—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं
हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-वह (शकुन्तला) निश्चय ही पराधीन है और पूज्य जन (पिता) भी यहाँ उपस्थित नहीं हैं ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । परवती परवशा । खलु निश्चयेन । तत्रभवती माननीया शकुन्तला । न । च । संनिहितः उपस्थितः । अत्र अस्मिन् स्थाने (आश्रमे) । गुरुजनः अस्याः पूज्यजनः (पिता) ।

हिन्दी व्याख्या—अविवाहित कन्या वयःप्राप्त होने पर भी अभिभावक के अधीन मानी जाती है; स्वतंत्र नहीं । यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि पराधीन है तो अभिभावक के पास विवाह का प्रस्ताव क्यों नहीं ले जाते; इसकी सम्भावना सोचकर पहले ही दुष्यन्त कह देते हैं कि अभिभावक उपस्थित नहीं हैं । स्त्री-रत्न होने से शकुन्तला के लिये आदर-सूचक "तत्रभवती" का प्रयोग है । अभिभावक, संरक्षक या पिता के लिये गुरु का प्रयोग अनुकरणीय है । मैं प्रस्ताव करना चाहता हूँ, अभिभावक के आने की देरी है, यह बात दुष्यन्त के कथन से प्रकट होती है ।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषकः—श्रीमान् (आपके) विषय में उसका दृष्टि-अनुराग कैसा है ?

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्) । अत्रभवन्तम् श्रीमन्तम् (भवन्तम्) । अन्तरेण प्रति (विषये) । कीदृशः किम्भूतः । तस्याः (शकुन्तलायाः) । दृष्टिरागः दृष्टेः चक्षुषो रागः अनुरागः ।

हिन्दी व्याख्या—उसके पराधीन होने पर उसके अभिभावक से कहने की बात तब उठती है जब वह तुम्हें चाहती है, इसका आभास उसकी नजर से पता चले । विदूषक यह कहता हुआ इस खतरे से सावधान करता है कि यदि शकुन्तला ने तुम्हें पसन्द न किया तो कैसी बुरी हालत होगी ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-स्वभाव से ही तपस्वियों की कन्यायें संकोच-शील होती हैं । फिर भी तो ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । निसर्गात् स्वभावात् । एव । अप्रगल्भः न प्रगल्भः प्रौढः । तपस्विकन्याजनः तपस्विनाम् तापसानाम् कन्याजनः कुमार्यः । तथापि तदपि । तु ।

हिन्दी-अनुवाद—मेरे सामने होने पर उसने आँखें हटा लीं और इस प्रकार हँसी जिसका उद्भव अन्य कारण से किया गया (बहाने से हँसी) । कामदेव का व्यापार (उस शकुन्तला में)

विनयवारितवृत्तिरतस्तथा
न विवृतो मदनो न च संवृतः ॥ ११ ॥

शील-संकोच के द्वारा निवारित कर दिया गया है अतः उसने न तो प्रकट किया और न छिपाया ही।

अन्वय—मयि अभिमुखे ईक्षणम् संवृतम्। अन्यनिमित्तकृतोदयम् हसितम्। मदनः विनयवारितवृत्तिः अतः तथा न विवृतः न च संवृतः।

संस्कृत-टीका—**मयि** अस्मिन् जने (दुष्यन्ते)। **अभिमुखे** समक्षम् (सति) **ईक्षणम्** दृष्टिः। **संवृतम्** अपरिसारितम्। **अन्यनिमित्तकृतोदयम्** **अन्यत्** इतरत् **निमित्तम्** हेतुः यस्य तत् यथा स्यात् तथा **कृतः**। विहितः **उदयः** आविर्भावः यस्य तत् यथा स्यात् तथा। **हसितम्** हासः कृतः। **मदनः** कामः। **विनयवारितवृत्तिः** **विनयेन** शीलेन **वारिता** नियमिता **वृत्तिः** व्यापारः यस्य तादृशः। **अतः** अनेन हेतुना (सः मदनः)। **न**। **विवृतः** प्रकटीकृतः। **न**। **च**। **संवृतः** गोपायितः।

हिन्दी-व्याख्या—आँखें मिलते ही हटा लेना शृंगार-लज्जा ध्वनित करता है जो उत्तम नायिका होने का सूचक है। हसित भी इसी का सूचक है जिसकी परिभाषाएँ मातृगुप्त ने निम्न दी हैं—

विकासितकपोलान्तमुत्फुल्लामललोचनम्।
किञ्चिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं तद्विदो विदुः॥
उत्तमस्य समुद्दिष्टं स्मितं हसितमेव च।

हसित में जो बातें ऊपर बताई गई हैं वे अनुराग-सूचक हैं—

उत्फुल्लगण्डमण्डलमुल्लसितदृगन्तसूचिताकूतिम्।
नमयन्त्यापि मुखाम्बुजमुन्नमितं रागसाम्राज्यम्॥

दृष्टि मिलते ही हटा लेना और बहाने से हँसना कामदेव को छिपाने के लक्षण हैं। इससे नायिका शकुन्तला का मुग्धा होना सूचित होता है। सुधाकर में मुग्धा की निम्न परिभाषाएँ दी गई हैं—

तत्र कन्या त्वरूढा स्यात् सलज्जा पितृपालिता।
सखीकेलिषु विश्रब्धा प्रायो मुग्धा गुणान्विता॥
मुग्धा नववयःकामा……।

मुग्धा होना यौवनारंभ का परिचायक है। यौवन चार प्रकार का कहा गया है, जिसमें पहला प्रकार प्रथम यौवन या यौवनारंभ है—

सर्वासामपि नारीणां यौवनं च चतुर्विधम्।
ईषच्चपलनेत्रान्तं स्मरस्मेरमुखाम्बुजम्॥

मदन को छिपाने का अर्थ है शृङ्गार-सूचक अनेक परिवर्तन लक्षित हो जाना अपना प्रेम प्रकट करना। पहली अवस्था हेला और दूसरी मोट्टायित कहलाती है—

नानाविकारैः सुव्यक्तः शृङ्गाराकूतिसूचकैः।
हाव एव भवेद्धेला……
स्वाभिलाषप्रकटनं मोट्टायितमितीरितम्।

विदूषकः—ण खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अंकं समारोहदि। [न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति।]

राजा—मिथःप्रस्थाने पुनः शालीनतयापि काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या। तथा हि—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।

पहली चित्त से उत्पन्न होने के कारण अङ्ग-परिवर्तनों से लक्षित होती है और दूसरी शरीर से उत्पन्न होने के कारण स्थूल कार्यों से।

मदन को न तो छिपाया और न प्रकट किया, ऐसी विरोध की स्थिति केवल मुग्धा नायिका में पाई जाती है।

छन्द—द्रुतविलम्बित। नगण (।।।), २ भगणों (ऽ ।।, ऽ ।।) और रगण (ऽ । ऽ) से जिसका १ चरण (चौथाई भाग) बनता है वह द्रुतविलम्बित छन्द कहलाता है—

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

अलङ्कार—विरोधाभास, यथासंख्य व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक–क्या (तुम्हें) देखते ही तुम्हारी गोद में नहीं चढ़ जाती ?

संस्कृत टीका—विदूषक (माढव्यः) (कथयति यत्)। **न**। **खलु** किम्। दृष्टमात्रस्य (तया) **दृष्टस्य** अवलोकितस्य एव। **तव** भवतः। **अङ्कम्** क्रोडम्। **समारोहति** आरूढा भवति।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ विदूषक मजाक कर रहा है। उसका आशय है कि उसे तुम्हारी धारणा के अनुसार देखते ही गोद में चढ जाना चाहिये; क्या वैसा नहीं हुआ ? राजा विदूषक के मित्र होने और उसकी हँसी सहने के अभ्यस्त होने से व्यंग की उपेक्षा कर अपनी बात सुनाने में तल्लीन रहते हैं। गम्भीरता के आधिक्य से दर्शकों को ऊबने से बचाने के लिए बीच-बीच में विदूषक का परिहास दिया गया है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा–एकान्त में बिदा होते समय तो धृष्टता-रहित होने पर उस (शकुन्तला) ने चित्त का अभिप्राय प्रकट करने में अति कर दी। जैसे कि—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **मिथः** एकान्ते। **प्रस्थाने** गमनारम्भे। **पुनः** तु। **शालीनतया** अधृष्टतया। **अपि**। **कामम्** अत्यधिकम्। **आविष्कृतः** प्रकटीकृतः। **भावः** चित्ताभिप्रायः। **तत्रभवत्या** मान्यया (शकुन्तलया) **तथा हि** यथा।

हिन्दी व्याख्या—अनसूया व प्रियंवदा के साथ पर्णशाला में जाते समय टहनी में वस्त्र उलझ जाने का बहाना बना कर शकुन्तला पीछे रह गई थी, यह वर्णन पहले अङ्क में आ चुका है। ऐसी चेष्टा सामान्यतः धृष्ट की होती है, पर ऐसी विशेष अवस्था में जब मुग्धा में प्रेम का उदय हो रहा है यह धृष्टता अधृष्ट नायिका में भी आ जाती है। काम व आविष्कृत पद क्रमशः अत्यन्त व प्रकट किया के अर्थ में ध्यान देने योग्य हैं।

हिन्दी-अनुवाद—तन्वी (पतले अङ्ग वाली) कुछ कदम ही जाकर यह कह कर बेमौके खड़ी

आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ॥

विदूषकः—तेण हि गहीदपाहेओ होहि । किदं तुए उववणं तवोवणं त्ति पेक्खामि [तेन हि गृहीतपाथेयो भव । कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि] ।

हो गई कि कुश के अँखुये से पैर घायल हो गया है और वृक्षों की डालों पर न उलझा हुआ वल्कल (पेड़ की छाल) भी छुड़ाती हुई मुँह मोड़े (मुझे देखती) रही ।

अन्वय—तन्वी कतिचित् एव पदानि गत्वा दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षतः इति अकाण्डे स्थिता द्रुमाणाम् शाखासु असक्तम् अपि वल्कलम् विमोचयन्ती विवृत्तवदना च आसीत् ।

संस्कृत-टीका—**तन्वी** कृशाङ्गी (शकुन्तला) **कतिचित्** कानिचित् (अनधिकानि) **एव** । **पदानि** । **गत्वा** चलित्वा । **दर्भाङ्कुरेण दर्भस्य** कुशस्य **अङ्कुरेण** अग्रभागसूच्या । **चरणः** पदम् **क्षतः** सव्रणः । **इति** एवम् उक्त्वा । **अकाण्डे** न **काण्डम्** अवसरः **अकाण्डम्** तस्मिन् । **स्थिता** विरता । **द्रुमाणाम्** वृक्षाणाम् । **शाखासु** विटपेषु । **असक्तम्** अलग्नम् । **अपि** । **वल्कलम्** (धारिताम्) वृक्षत्वचम् **विमोचयन्ती** विमोचनम् नाटयन्ती । **विवृत्तवदना** विवृतम् प्रत्यावृत्तम् **वदनम्** मुखम् यया तादृशी । **च** । **आसीत्** ।

कुश से घायल होना कहने पर बहाना न बन पाता क्योंकि वह (टूटा पड़ा हुआ) घायल करने वाले के पैर में गड़ा रह जाता है; उसका अँखुवा जमीन से जरा सा ही निकला रहता है जिससे पैर के साथ नहीं आ सकता और बहाना हो सकता है कि यहीं कहीं अँखुवा है । उसे ढूँढ़ने कौन जाता है ? इस बहाने से रुक कर दुष्यन्त को देर तक देखा जा सकता था । अनवसर में ऐसा किया; अगर अवसर होने पर किया होता तो बहाना ही न रह जाता । यदि एक पेड़ की डाली से कपड़ा उलझने का बहाना होता तो वह राजा को लक्षित न होता; शकुन्तला ने कई वृक्षों की डालों से वस्त्र उलझने का अभिनय किया जिससे बहाना प्रकट हो गया । यहाँ शकुन्तला की लज्जा और उत्सुकता तथा दुष्यन्त का विस्मय प्रकट होता है; लाज के कारण वह बिना बहाने के न रुक पाई और उत्सुकता के कारण बहाना बिना बनाये भी न रह पाई और देखती रही; राजा का विस्मित होना वर्णन करने से प्रकट है; यदि विस्मित न होवे तो कहने की जरूरत ही न पड़ती; उसे स्वाभाविक क्रिया मान लेते । यह विस्मय नायिका के प्रेम से उसको प्राप्ति की आशा का भी सूचक है । रतिविलास में अनुराग के एक संकेत का पारिभाषिक नाम विलम्ब रखा गया है जिसकी परिभाषा ही दी गई है कि बहाने से रास्ते में मुँह मोड़कर भी देखने से न चूकना—

विलम्बस्तु पथि व्याजात् परावृत्यापि दर्शनम् ।

छन्द—वसंततिलका (१।८ द्रष्टव्य) ।

अलंकार—विरोधाभास, हेतु, व्याजोक्ति, स्वभावोक्ति, श्रुत्यनुप्रास, वृत्यनुप्रास व छेकानुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—**विदूषक**-तो बस पाथेय ले लो । देखता हूँ, तुमने आश्रम को उद्यान (विलास-स्थान) बना दिया है ।

राजा—सखे तपस्विभिः कैश्चित् परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत् केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वसामः।

विदूषकः —को अवरो अवदेसो तुम राआणं। णीवारछट्ठभाअं अम्हाण उपहरंतु त्ति
[कोऽपरोऽपदेशस्तव राज्ञः। नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति]

संस्कृत-टीका—तेन तस्मात् कारणात्। **हि** निश्चयेन। **गृहीतपाथेयः गृहीतम्** प्राप्तम् **पाथेयम्** मार्गोपयोगी धनादि येन तादृशः। **भव**। **कृतम्** रचितम्, **त्वया** भवता। **उपवनम्** उद्यानम्। **तपोवनम् तपसः** तपस्यायाः **वनम्** अरण्यम् **इति** एवम्। **पश्यामि** विलोकयामि।

हिन्दी व्याख्या—यात्रा के लिये जो जाता है उसे आगे के लिये पाथेय दिया जाता है। "पाथेय ले चुका" का अर्थ होता है रास्ते के लिये तैयार हो गया। यहाँ प्रेमपन्थ पर चलने के लिये तैयार होने को कहा गया है। आशा होने पर उद्योग किया जाता है : शकुन्तला के आचरण से उद्योग को प्रोत्साहन मिलता है अतः उसे अपनाना जरूरी है यह बात विदूषक अपने ढंग से कहता है। प्रेमलीला तपोवन में नहीं हो सकती, उपवन में हो सकती है, अतः कहा गया है कि तपोवन जैसे अनुपयुक्त स्थान में भी तुमने प्रेम के उपयुक्त स्थान-उपवन जैसी स्थिति पैदा कर दी है। यहाँ विधेय (उपवन) को उद्देश्य (तपोवन) के पहले रखा गया है, बातचीत में कभी-कभी ऐसा हो जाता है। "शकुन्तला के उक्त प्रेम सूचक आचरणों को पाथेय बना लो" अर्थ भी लग सकता है।

हिन्दी-अनुवाद— राजा— मित्र, कुछ तपस्वियों ने मुझे पहचान लिया है। जरा सोचो कि किस बहाने आश्रम में एक बार भी रह लूँ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **सखे** मित्र। **तपस्विभिः** तापसैः, **कैश्चित्** कैरपि। **परिज्ञातः** (नृपरूपेण) ज्ञातः। **अस्मि**। **चिन्तय** (उपायम्) विभावय। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **केन**। **अपदेशेन** व्याजेन **सकृत्** एकवारम्। **अपि** न्यूनतः। **आश्रमे** तपोवने। **वसामः** तिष्ठामः।

हिन्दी व्याख्या—राजा "एक बार भी ठहरने को मिल जाय" कहकर उत्कण्ठा की अति बताते हैं। हिरन का अनुसरण करते हुए पहली बार जब राजा तपोवन में घुसे थे उस समय कुछ तापसों ने उन्हें पहचान लिया था। अब यदि पुनः जाते हैं तो लोग शंका कर सकते हैं। यदि अपरचित रहते तो मार्ग भूलने आदि का बहाना कर सकते थे। इस प्रकार आश्रम के अन्दर घुसने का उपाय नहीं मिल रहा है। लक्ष्य तक बढ़ने का उपाय न मिलना मुख-संधि का "तापन" नामक अंग कहा गया है :—

उपायादर्शनं यत्तु तापनं नाम तद्भवेत्—साहित्यदर्पण।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—आप राजा हैं, आपके लिये इसके अतिरिक्त बहाने की क्या जरूरत है कि हमारे लिये नीवार (मुनि-अन्न) का छठा हिस्सा लाओ।

संस्कृत-टीका—कः। अपरः अन्यः। **अपदेशः** व्याजः **तव** भवतः। **राज्ञः** नृपस्य। **नीवारषष्ठभागम्** नीवारस्य मुन्यन्नस्य षष्ठभागः नीवारषष्ठभागः तम्। षष्ठः च सः भागः अंशः (कररूपः) च। **अस्माकम्** नः। **उपहरन्तु** आनयन्तु। **इति**।

हिन्दी-व्याख्या--यहाँ भी परिहास है; विदूषक ऐसा बहाना बताता है जिससे राजा को हँसी

राजा—मूर्ख अन्यद्भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति यद्रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम् । पश्य—

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम् ।
तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ॥

हो और उन्हें क्या सभी को हँसी आये । ऋषि बिना जोते-बोये होने वाला नीवार-नामक धान्य किसी सरोवर के तट पर राजकर के रूप में रख देते थे, वह राजा की ओर से पशु आदि के लिये दान हो जाता था । धान्य का छठा, आठवाँ या बारहवाँ भाग राजा कर के रूप में ले सकता है, ऐसा मनु ने कहा है :—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥

हिन्दी-अनुवाद—**राजा**–मूर्ख, इनकी रक्षा में दूसरा (ही) हिस्सा (कर) निहित (रक्षण से प्राप्त होता) है जिसका स्वागत रत्न के ढेर को भी छोड़कर (उससे अधिक) करना उचित है । देखो–

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) कथयति (यत्) । **मूर्ख** अज्ञ (जाड्य) । **अन्यत्** अपरम् । **भागधेयम्** भागः (करः) । **एतेषाम्** (मुनीनाम्) । **रक्षणे** पालने । **निपतति** निहितः भवति (तस्मात् रक्षणात् प्राप्यते) । **यत्** । **रत्नराशीन्** **रत्नानाम्** उपलानाम् **राशीन्** समूहान् **अपि** । **विहाय** त्यक्त्वा (रत्नराशिभ्यः अपि) । **अभिनन्द्यम्** स्वागतार्हम् । **पश्य** विलोकय (विचारय) ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा ने विदूषक को मूर्ख इसलिये कहा है क्योंकि ऋषियों से कर जैसी छोटी चीज राजा कभी नहीं लेता, भले ही वे राजा के नाम का कर कहीं रख दें उनसे जब कर से भी उत्तम वस्तु, पुण्य, अपने आप मिलती है तो कर के लिये कहना नीचता है । "धेय" प्रत्यय लगने पर अर्थ में परिवर्तन नहीं होता; अर्थ वही भाग, कर या भाग्य होता है । "विहाय" का अर्थ "की अपेक्षा अधिक" और राशि का हिन्दी की तरह स्त्रीलिङ्ग न होकर पुंलिङ्ग में होना ध्यान देने योग्य है । प्रत्यक्ष-रूप से निष्ठुर वचन कहने के लिये यहाँ "मूर्ख" संबोधन का प्रयोग किया गया है; ऐसे स्थल को साहित्यदर्पण में प्रतिमुख-संधि के अंतर्गत वज्र नाम दिया गया है :—

प्रत्यक्षनिष्ठुरं वज्रम् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा को जो फल वर्णों से मिलता है, वह नश्वर होता है । वन-वासी निश्चय ही तपस्या के छठे हिस्से के रूप में कभी नष्ट न होने योग्य फल हमें प्रदान करते हैं ।

अन्वय—यत् नृपाणाम् (फलम्) वर्णेभ्यः उत्तिष्ठति तत् फलम् क्षयि । आरण्यकाः हि नः अक्षय्यम् तपःषड्भागम् (फलम्) ददति ।

संस्कृत-टीका—**यत्** । **नृपाणाम्** राज्ञाम् (फलम्) । **वर्णेभ्यः** चातुर्वर्ण्यात् (ब्राह्मणादिभ्यः) । **उत्तिष्ठति** उत्पद्यते । **तत्** । **फलम्** (कररूपम्) । **क्षयि** नश्वरम् । **आरण्यकाः** वनवासिनः । हि

(नेपथ्ये)

हन्त सिद्धार्थौ स्वः ।

निश्चयेन । न **क्षय्यम् अक्षय्यम्** अविनाशि **तपःषड्भागम् तपसः** तपस्यायाः **षड्भागम्** षष्ठम् **भागम्** अंशम् । **ददति** अर्पयन्ति ।

हिन्दी-व्याख्या—चारों वर्णों से राजा कर (टैक्स) लेता है, वह राज्य व्यवस्था और उपयोग में व्यय होकर नष्ट हो जाता है पर उस व्यवस्था से सुरक्षित रहकर तपस्वी जो पुण्य करते हैं, उसका छठा भाग राजा को मिलता है जो नष्ट नहीं होता। मनु ने कहा है :—

संरक्ष्यमाणो राजा यं कुरुते धर्ममन्वहम् ।
तेनायुर्वर्द्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥
यदधीते यद् यजते यद्ददाति यदर्चति ।
तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥
सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः ।
अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥
प्रजानां धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षितुः ।
अधर्मादपि षड्भागो जायते यो न रक्षति ॥

प्रजा की रक्षा के लिये उससे राजा छठा भाग करके रूप में ले, ऐसा महाभारत कहता है (शान्ति-पर्व-६८।२७) :—

आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन ।
षड्भागममितप्राशस्तासामेवाभिगुप्तये ॥

यहाँ सामान्य धन की अपेक्षा पुण्य की उच्चता बताई गई है । अन्त में "इन्" लगने पर क्षयिन् होता है, नपुंसक लिङ्ग (धन) का विशेषण होने से इसे नपुंसक लिङ्ग बनाने के लिये अन्त का "न्" हटा दिया गया है पुंलिङ्ग विशेष्य होने पर यह क्षयी (धनी आदि की तरह) होता। षष्ठ भाग के लिये षड्भाग पद ध्यान देने योग्य है ।

छन्द—अनुष्टुप् (११५ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—व्यतिरेक ।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) अहा ! हम दोनों का प्रयोजन सिद्ध हो गया ।

संस्कृत-टीका—**नेपथ्ये** प्रसाधनकक्षे । **हन्त** (हर्षे) **सिद्धार्थौ** सिद्धः सफलः अर्थः प्रयोजनम् ययोः तौ । **स्वः** भवावः ।

हिन्दी-व्याख्या—नेपथ्य सज्जा कक्ष है और "स्व" का अर्थ "हैं" (लट् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन में अस् धातु) है। हन्त का अर्थ हाय और अहा दोनों हैं। "राजा के दर्शन से" अंश छूटा है। यहाँ दो व्यक्ति राजा के दर्शन से अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। दुष्यन्त के लिये आश्रम-प्रवेश का अवसर कवि ने उपस्थित करने का उपक्रम किया है।

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अये धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम् ।

(प्रविश्य)

दौवारिकः—जेदु भट्टा। एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा [जयतु भर्ता । एतौ द्वौ ऋषिकुमारकौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ] ।

राजा—तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ ।

दौवारिकः—एसो पवेसेमि । (इति निष्क्रम्य, ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य) इदो इदो भवंतो । [एष प्रवेशयामि ! इत इतो भवन्तौ ।]

(उभौ राजानं विलोकयतः)

हिन्दी-अनुवाद—राजा— (कान लगाकर) अरे ! गंभीर और अत्यन्त शांत स्वर वाले तपस्वी होंगे ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) **कर्णम् दत्त्वा** श्रुत्वा (श्रवणस्य अभिनयम् कृत्वा) । **अये** अहो । **धीरप्रशान्तस्वरैः धीरः** गम्भीरश्च **प्रशान्तः** च अतिशान्तः **स्वरः** शब्दः येषाम् तैः । **तपस्विभिः** तापसैः । **भवितव्यम्** ।

हिन्दी-व्याख्या—कान लगाने के लिये राजा को चौंककर इस तरफ कान करते हुये गंभीरता का अभिनय करना है । चौंककर कहने या आवाज लगाने के लिये "अये" का प्रयोग होता है । मेदिनी के अनुसार इसका प्रयोग क्रोध, घबड़ाहट और याद करने के लिये होता है (यहाँ "घबड़ाहट" अर्थ है) :—"अये क्रोधे विषादे च सम्भ्रमे स्मरणेऽपि च ।" "भवितव्यम्" भाववाच्य की क्रिया होने से नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एक वचन में है । "धीर प्रशान्त स्वरों के कारण" भी अर्थ लग सकता है । यहाँ "तपस्वी" पद में बहुवचन से यह सूचित होता है कि या तो राजा ने नेपथ्य से कही गई बात को ठीक से नहीं सुना (अन्यथा कर्त्ता या क्रिया से पता चल जाता कि दो व्यक्ति बोल रहे हैं, बहुत नहीं) या आदर के लिये बहुवचन का प्रयोग है ।

हिन्दी-अनुवाद—(रङ्ग-मंच पर आकर) द्वारपाल-स्वामी की जय हो । ये दो ऋषि बालक द्वार पर उपस्थित हैं ।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य रङ्गस्थले प्राप्य । **दौवारिकः** द्वारपालः । **जयतु** सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । **भर्त्ता** स्वामी । **एतौ** पुरः दृश्यौ । **द्वौ ऋषिकुमारकौ** मुनिबालकौ । **प्रतीहारभूमिम्** प्रतीहारस्य द्वारस्य **भूमिम्** स्थानम् । **उपस्थितौ** प्राप्तौ ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—तो बस उन्हें बिना देर के अन्दर लाओ ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **तेन** उक्तेन कारणेन । **हि** निश्चयेन । अविलम्बितम् न विलम्बितम् (शीघ्रम्) । **प्रवेशय** अन्तः आगमय । **तौ** ऋषिकुमारकौ ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपाल—बस (यह मैं) अन्दर लाया । (यह कहकर बाहर निकलकर मुनि-बालकों के साथ अन्दर आकर) आप लोग ऐसे ऐसे (चलें) ।

(दोनों राजा को देखते हैं ।)

प्रथमः—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः—

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ॥१४॥

संस्कृत-टीका—दौवारिकः द्वारपालः (कथयति यत्)। एषः (अहम्) अधुना एव। प्रवेशयामि अन्तः आनयामि। इतः अनेन मार्गेण। इतः अनेन मार्गेण (आगच्छताम्) भवन्तौ युवाम्। उभौ द्वौ अपि। राजानम् भूपतिम् (दुष्यन्तम्)। विलोकयतः पश्यतः।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर ऋषिकुमारक और यहाँ ऋषि-कुमार कहा गया है, अन्तिम "क" लगाने से अर्थ मे परिवर्तन बहुधा नहीं होता। "एषः" और "इतः इतः" का ऐसे स्थान पर प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

हिन्दी अनुवाद—पहला-अरे! तेजस्वी होकर भी इनका व्यक्तित्व विश्वसनीय है। या यों कहें कि यह मुनियों से अनतिभिन्न (बहुत भिन्न नहीं) राजा में यह (विश्वसनीयता) उचित ही है, क्योंकि—

संस्कृत टीका-प्रथमः—(तापसः)। अहो (आश्चर्ये)। दीप्तिमतः तेजस्विनः। अपि। विश्वसनीयता विश्वासपात्रता। अस्य (राज्ञः)। वपुषः शरीरस्य। अथवा उत। उपपन्नम् युक्तम्। एतत् इदम् वस्तु (विश्वसनीयता)। ऋषिभ्यः मुनिभ्यः। नातिभिन्ने प्रायः समाने। राजनि नृपे (दुष्यन्ते)। कुतः यतः।

हिन्दी व्याख्या—तेजस्वी क्रूरकर्मा होते हैं, उन पर जल्दी अपनत्व का विश्वास नहीं होता, घबड़ाहट होती है। वपुष का अर्थ देह है ज्यादा निकट वह "व्यक्तित्व" पद के है। मनु ने "वपुष्मान्" का प्रयोग अच्छे शरीर या व्यक्तित्व वाले के लिये किया है। उपपन्न के साथ सप्तमी का प्रयोग और "नाति" का प्रयोग शब्द के पहले व्यर्थ सा होता है, ये दोनों बातें ध्यान देने की हैं।

हिन्दी अनुवाद—इन्होंने भी सर्व भोग्य (जो ब्रह्मचारी, संन्यासी, गृहस्थ आदि सबके द्वारा भोग्य है) आश्रम (गृहस्थाश्रम) में निवास अङ्गीकार किया है, रक्षायोग (प्रजा की रक्षा के सम्बन्ध) से ये भी प्रतिदिन तप (पुण्य) का संचय करते हैं, इन जितेन्द्रिय के लिये भी प्रयुक्त "मुनि" शब्द जो चारणों के जोड़े के द्वारा बार-बार गाया गया और पवित्र है स्वर्ग का स्पर्श करता है, (अन्तर इतना है कि उसके पहले "राज"—राजमुनि या राजर्षि पद लगा है) जिस प्रकार मुनि सर्व-भोग्य (आगे-पीछे जिसका सभी आश्रम वाले उपयोग करें) आश्रम (मठ) में निवास अङ्गीकार करते हैं, रक्षा-योग (रक्षा के लिये अष्टांग योग) से तपस्या का प्रतिदिन संचय करते हैं तथा जिनका पुण्य "मुनि" विरुद चारणों या गन्धर्वों के जोड़ों के द्वारा गाया जाकर स्वर्ग का स्पर्श करता है।

अन्वय—अमुना अपि सर्वभोग्ये आश्रमे वसतिः अध्याक्रान्ता। अयम् अपि रक्षायोगात् प्रत्यहम् तपः संचिनोति। अस्य वशिनः अपि मुहुः चारणद्वन्द्वगीतः पुण्यः मुनिः इति शब्दः द्याम् स्पृशति, केवलम् राजपूर्वः (सन्)।

द्वितीयाः—गौतम ! अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः ।

संस्कृत टीका—**अमुना** अनेन (राज्ञा दुष्यन्तेन) । **अपि** (यथा मुनिना) । **सर्वभोग्ये सर्वैः** सर्वाश्रमवर्तिभिः ब्रह्मचारिप्रमुखैः **भोग्ये** उपभोग-(आश्रय)योग्ये । **आश्रमे** (गृहस्थाश्रमे) । **वसतिः** निवासः । **अध्याक्रान्ता** अङ्गीकृता । **अयम्** असौ (राजा दुष्यन्तः) । **अपि** । **रक्षायोगात्** रक्षायाः (प्रजारक्षायाः) **योगात्** सम्बन्धात् । **प्रत्यहम्** प्रतिदिनम् । **तपः** तपस्याम् (पुण्यम्) **संचिनोति** अर्जयति । **अस्य** एतस्य (राज्ञः दुष्यन्तस्य) **वशिनः** जितेन्द्रियस्य । **अपि** । मुहुः वारम् वारम् **चारणयोः** वैतालिकयोः **द्वन्द्वम्** मिथुनम् तेन **गीतः** वर्णितः । **पुण्यः** पवित्रः । **मुनिः** ऋषिः । इति एवंभूतः । **शब्दः** उपाधिः । **द्याम्** स्वर्गम् । **स्पृशति** याति । **केवलम्** परम् (विशेषः तु अयम्) । राजपूर्वः **राजा** (इति पदम्) **पूर्वं** प्रथमपदम् यस्य तादृशः । मुनिना सर्वभोग्ये सर्वेण (आश्रमचतुष्टयेन) भोग्ये (मठे) वसतिः अङ्गीक्रियते सः रक्षायोगात् (शरीररक्षार्थम् अष्टाङ्गयोगात्) तपः अर्जयति । तस्य "मुनिः" इति उपाधिः चारणद्वन्द्वेन (वैतालिकयुग्मेन गन्धर्वयुगलेन वा) गीतः स्वर्गम् याति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ श्लेष की महिमा से राजा का चरित ऋषि के चरित के समान दिखाया गया है। ऐसे स्थल दुरूह पर रम्य होते हैं। "अपि" यह बताता है कि मुनि तो ऐसे होते ही हैं, राजा भी ऐसे हैं। गृहस्थाश्रम को सर्व (ब्रह्मचारी-संन्यासी) का उपभोग्य इसलिये बताया गया है कि गृहस्थ अपनी ऊर्जित सम्पत्ति आदि से सभी आश्रमों के लोगों का पालन करता है। मनु के अनुसार—गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्त्ति हि ॥

पद्मपुराण के अनुसार—यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
वर्तन्ते गृहिणस्तद्वदाश्रित्येतर आश्रमाः ॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते चतुराश्रमाः ॥

चारण की परिभाषा रत्नाकर में निम्नलिखित आई है—
किङ्किणीवाद्यवेदी च वृतो विकटनर्त्तकैः ।
मर्मज्ञः सर्वरागेषु चतुरश्चारणो मतः ॥

तपस् के दो अर्थ हैं—राजा के पक्ष में लोकोत्तर-धर्म और मुनि के पक्ष में चान्द्रायणादि (तपस्या)। "वशिनः" आदि कई शब्दों में श्लेष नहीं है और वे दोनों ओर बैठ जाते हैं। विशेष प्रशंसा होने पर साहित्यदर्पण के अनुसार "पुष्प" नामक प्रतिमुख-संधिका-अंग होता है (यहाँ से अगले श्लोक तक यह संधि-अंग है)—

पुष्पं विशेषवचनं मतम् ।

साहित्यदर्पण के ही अनुसार यहाँ विशेषोक्ति होने के कारण (मुनि से भी विशिष्ट क्योंकि "राजा" पद अधिक है) विशेषण नामक नाट्य लक्षण है—अर्थात् सिद्धान् बहूनुक्त्वा विशेषोक्तिर्विशेषणम् ।

छन्द—मन्दाक्रान्ता (१।१५ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—श्लेष व व्यतिरेक ।

हिन्दी अनुवाद—दूसरा—गौतम, इन्द्र के मित्र यही वे (प्रसिद्ध) दुष्यन्त हैं ।

प्रथमः—अथकिम् ?

द्वितीयः—तेन हि

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥१५॥

संस्कृतटीका—द्वितीयः अपरः (ऋषिकुमारः) (कथयति यत्)। **गौतम** (सम्बुद्धौ)। **अयम्** पुरोवर्ती। **सः** प्रसिद्धः। **बलभित्सखः बलभिदः** इन्द्रस्य **सखा** मित्रम्। **दुष्यन्तः**।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र का मित्र बताने का आशय यह है कि इनसे आश्रम में विघ्न करने वाले राक्षसों का संहार कराया जा सकता है। "बल" नामक राक्षस के वध से इन्द्र "बलभित्" कहे जाते हैं। इन्द्र ने अपना मित्र बनाकर इनसे स्वर्गलोक के उन राक्षसों का वध कराया है जो उनके द्वारा भी न मरे, तो धरती के सामान्य राक्षसों को मारना तो इनके लिये खेल है। इनकी सहायता ली जा सकती है यह व्यङ्ग्यार्थ है। सखि, राजन् व अहन् शब्द समास के अन्त में आते हैं तो टच् प्रत्यय लगने से वे सख, राज व अह रह जाते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—पहला—हाँ।

संस्कृतटीका—प्रथमः—(ऋषिकुमारः गौतमः)। **अथकिम्**, किम् अन्यत्।

हिन्दी-व्याख्या—"अथकिम्" में "अथ" और "किम्" दो पद दिखते हैं पर यह एक पद और अव्यय है।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरा—उस (उक्त बात) से निश्चय ही।

संस्कृत-टीका—द्वितीयः (ऋषिकुमारः)। **तेन** तस्मात् कारणात् **हि** निश्चयेन।

हिन्दी-व्याख्या—"तेन" का पूरा अर्थ "इन्द्र के मित्र होने से" है।

हिन्दी-अनुवाद—यह अचरज की बात नहीं है कि नगर की अर्गला के समान दीर्घ भुजाओं वाले ये अकेले समुद्र से श्याम सीमा वाली समस्त पृथ्वी का पालन करते हैं ? अप्सरायें अपने प्रति दैत्यों के वैर बाँधने पर निश्चय ही इनके प्रत्यञ्चा-युक्त धनुष और इन्द्र के वज्र पर विजय की आस लगाती हैं।

अन्वयः—एतत् चित्रम् न यत् नगरपरिघप्रांशुबाहुः अयम् एकः उदधिश्यामसीमाम् कृत्स्नां धरित्रीम् भुनक्ति। सुरयुवतयः हि दैत्यैः बद्धवैराः (सत्यः) अस्य अधिज्ये धनुषि पौरुहूते वज्रे च विजयम् आशंसन्ते।

संस्कृत-टीका—एतत् इदम्। **चित्रम्** विस्मयोत्पादकम्। **न : यत्**। **नगरपरिघप्रांशुबाहुः नगरस्य** पुरस्य **परिघः** अर्गलः तद्वत् **प्रांशू** दीर्घौ **बाहू** भुजौ यस्य तादृशः। **अयम्** पुरोवर्त्ती (**दुष्यन्तः**) **एकः** एकाकी (एव) **उदधिश्यामसीमाम् उदधिना** समुद्रेण **श्यामा** कृष्णा **सीमा**

उभौ—(उपगम्य) विजयस्व राजन् !

पर्यन्तभागः यस्याः तादृशीम् । **कृत्स्नाम्** अशेषाम्, **धरित्रीम्** भुवम् । **भुनक्ति** पालयति । **सुरयुवतयः** अप्सरसः । **हि** निश्चयेन । **दैत्यैः** दितिपुत्रैः । **बद्धवैराः** **बद्धम्** दृढीकृतम् **वैरम्** शत्रुता यासाम् ताः (सत्यः) । **अस्य** एतस्य (दुष्यन्तस्य) । **अधिज्ये** ज्यासहिते । **धनुषि** बाणासने । **पौरुहूते** इन्द्रसम्बद्धे (इन्द्रस्य) **वज्रे** कुलिशे । **च** । **विजयम्** जयम् । आशंसन्ते आकाङ्क्षन्ति ।

हिन्दी व्याख्या—"कृत्स्नाम्" पद इसलिये दिया गया है कि सीमा से सीमा का एक भाग मात्र न समझ लिया जाय । समुद्र नीला है जिससे पृथ्वी के किनारे-किनारे का भाग नीला दिखता है । नगर और परिघ से क्रमशः राजा के शरीर और भुजा की तुलना की गई है । दोनों अत्यन्त विशालता के द्योतक हैं । भुज् धातु केवल पालन के अर्थ में परस्मैपद धातु है; अन्य अर्थ में आत्मनेपद । "युवति" और 'युवती' दोनों शब्द ठीक हैं । "युवति" पद लेने से उनकी भीरुता, लड़ने का हौसला न होना और भावी बन्दी जीवन का आतङ्क व्यक्त होता है । धनुष को वज्र से और राजा को इन्द्र से पहले रखने से इन दोनों (धनुष व राजा) की उत्कृष्टता सिद्ध होती है । भुजायें विशाल हैं जिससे समस्त पृथ्वी जीत चुके हैं और राक्षसों को भी जीत लेंगे, यह भाव व्यक्त होता है । अगर किसी सहायक के साथ पृथ्वी जीतते या अकेले पृथ्वी का एक टुकड़ा ही जीतते तो कोई अचरज की बात न होती ।

इस श्लोक से यह ध्वनित होता है कि राजा युद्ध-वीर हैं । युद्ध-वीर के लक्षण, विभावादि निम्न होते हैं ।

अविस्मयादसंमोहादविषादाच्च यः सताम् । धर्मार्थयर्थविशेषेषु कार्यतत्त्वविनिश्चयः ॥ तपश्च विनयः कीर्त्तिः पराक्रमपराशक्तिता । इत्यादयो विभावाः स्युः । युद्धवीरे हर्षगर्वामर्षाद्या व्यभिचारिणः । असहायेऽपि युद्धेच्छा समरादनिवर्त्तनम् ॥ भीताभयप्रदानाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः । उत्साहः स्थायिभावश्च धीरा वीरं बभाषिरे ॥

परिघ या अर्गल वह लकड़ी है जिसे दरवाजे के पीछे दो दिवालों में अटकाकर कुन्डी का सा काम लेते हैं । हिन्दी में कभी-कभी इसे ब्योंड़ा कहते हैं ।

छन्द—मन्दाक्रान्ता (१।१५ द्रष्टव्य)

अलङ्कार—काव्यलिंग, उपमा (लुप्ता), दीपक, संसृष्टि, (द्रव्य) समुच्चय ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों (पास पहुँचकर)—महाराज, आप विजयी हों ।

संस्कृत-टीका—उभौ द्वौ अपि (ऋषिकुमारौ) । **उपगम्य** समीपे गत्वा । **विजयस्व** जयतु । राजन् देव !

हिन्दी-व्याख्या—'जि' धातु परस्मैपद है, 'वि' व परा उपसर्ग लगने पर यह आत्मनेपद हो जाती है । उपनिषद् में बिना उक्त उपसर्गों के भी उक्त प्रयोग मिलता है पर वह आर्ष (अप्रचलित) होने से अब गलत है, केवल उद्धरणरूप में सही है । बिना प्रणाम के आशीर्वाद देने की प्रथा प्राचीन है ।

राजा—(आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ !

उभौ—स्वस्ति भवते (इति फलान्युपहरतः) ।

राजा—(सप्रणामं परिगृह्य) आज्ञापयितुमिच्छामि ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(आसन से उठकर)—आप दोनों को प्रणाम करता हूँ ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **आसनाद्** सिंहासनात् । **उत्थाय** । **अभिवादये** वन्दे । **भवन्तौ** युवाम् ।

हिन्दी-व्याख्या—सामान्य ऋषि-कुमारों के आने पर भी राजा का उठकर प्रणाम करना उस समय आश्रम की प्रधानता का ज्वलन्त प्रमाण है ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—आपका कल्याण हो (यह कहकर फल उपहार देते हैं) ।

संस्कृतटीका—**उभौ** द्वौ अपि (ऋषिकुमारौ) । **स्वस्ति** कल्याणम् अस्तु । **भवते** तुभ्यम् । **इति** एवम् उक्त्वा ।**फलानि** । **उपहरतः** दत्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा, अलम् और वषट् के योग में जिसके प्रति स्वस्ति आदि का प्रयोग हो, उसमें चतुर्थी होती है । किसी आदरणीय व्यक्ति से मिलते समय उसे उपहार में फल दिया जाता है; इसी का विकास आज रिश्वत के रूप में हुआ है । पहले देने वाला बिना दबाव के स्नेह और आदर से भेंट देता था; अब लेने वाले को खुश करने के लिये दबाव से देने वाला देता है; न देने पर हानि की आशंका रहती है, राजा, गुरु आदि का दर्शन करते समय खाली हाथ नहीं होना चाहिये :—

अग्निहोत्रं गृहं क्षेत्रं मित्रं भार्यां सुतं शिशुम् । रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम् ॥ (सुभाषितरत्नभाण्डागार-सामान्यनीति ।)

स्मृतियों के अनुसार खाली हाथ जाने से काम सिद्ध नहीं होता :—

देवो राजा गुरुर्भार्या वैद्यो नक्षत्रपाठकः ।
रिक्तपाणिर्न गन्तव्यस्तत्र कार्यं न सिध्यति ॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत्तु राजानं देवतां गुरुम् ।
नैमित्तिकं च वैद्यं च फलेन फलमादिशेत् ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा (प्रणाम-पूर्वक स्वीकार कर)—आदिष्ट होना (आज्ञा या योग्य सेवा सुनना) चाहता हूँ ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **सप्रणामम् प्रणामेन** नत्या सह तद् यथा स्यात् तथा । **परिगृह्य** स्वीकृत्य । **आज्ञापयितुम्** आज्ञप्तीभवितुम् । **इच्छामि** काङ्क्षामि ।

हिन्दी-व्याख्या—परिग्रह दान लेने को कहते हैं । 'आज्ञा दें' कहने से आदेश देना होता है, अतः विशेष आदर के लिए ऐसा प्रयोग किया गया है । यहाँ (आज्ञापित) होना और चाहना दोनों का कर्ता एक (मैं) है ।

उभौ—तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षांसि नः इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि।

विदूषकः—(अपवार्य) **एसा दाणिं अणुऊला दे अब्भत्थणा** [एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना]।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—(उन) श्रीमान् महामुनि कण्व की अनुपस्थिति के अभाव में राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करते हैं, इसलिये (प्रार्थना है कि कृपया) कुछ दिन सारथि के साथ आप आश्रम को सनाथ करें।

संस्कृत-टीका—उभौ द्वौ अपि (कथयतः यत्)। **तत्रभवतः** तस्य श्रीमतः। **कण्वस्य। महर्षेः** महामुनेः। **असांनिध्यात् सांनिध्याभावात्। रक्षांसि** राक्षसाः। **नः** अस्माकम्। **इष्टिविघ्नम्** इष्टौ यज्ञे **विघ्नम्** बाधाम्। उत्पादयन्ति जनयन्ति। **तत्** अतः। **कतिपयरात्रम्** कतिपयाः काश्चन **रात्रयः** निशाः यस्मिन् तम् (कालम्)। **सारथिद्वितीयेन** सारथिः द्वितीयः सहायः यस्य तेन (सारथिना सह)। **भवता** त्वया। **सनाथीक्रियताम्** सस्वामिकः **क्रियताम्** विधीयताम्। **आश्रमः** तपोवनम्। **इति।**

हिन्दी-व्याख्या—दो व्यक्तियों का एक ही बात साथ-साथ कहना नाटक में अस्वाभाविकता लाता है। दोनों घर से एक ही बात रट कर चले थे, ऐसा प्रतीत होता है। "रक्षांसि" में राक्षस-वाचक रक्षस् शब्द नपुंसक लिंग है। लिंग जनता के बोलने के आधार पर बनते हैं, उनके लिए नियम बनाना कठिन है। शब्द हर लिङ्ग में हो सकता है। "न" का सम्बन्ध "इष्टि" से है पर वह समास में है। ऐसा सम्बन्ध खटकता है पर संस्कृत-साहित्य में चलता है। "कतिपयरात्रि" के अन्त में "रात्रि" पद "रात्र" में बदल गया है। इससे यह आभास माना जा सकता है कि राक्षस रात को ज्यादा परेशान करते हैं, अतः कुछ रात रुक जायें। केवल सारथि के साथ रुकने को कहा गया है; सेना के साथ नहीं। सेना का आतिथ्य कठिन होगा, सेना का ऐसे गैरजरूरी काम के लिए रुकना ठीक न होगा तथा उससे तपोवन के कार्य में विघ्न होगा, आदि कारणों से उसको रोकने की प्रार्थना नहीं की गई है। संस्कृत में "प्रार्थना है कि, कृपया" जैसे अंशों के लिए कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं होती, लोट् लकार पर्याप्त होता है। "सारथि" ठीक है; हिन्दी में प्रमादवश "सारथी" यह भी प्रचलित है। "सनाथीक्रियताम्" का अर्थ है "जो सनाथ नहीं है, उसे सनाथ बनायें"। "कतिपयरात्रम्" काल के लिए है। इसमें द्वितीया विभक्ति है जो समय की अवधि (तक) बताती है। यहाँ प्रतिमुख-संधि का अंग "उपन्यास" है : "उपन्यासः प्रसादनम्"—साहित्य-दर्पण।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मैं कृतज्ञ हूँ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **अनुगृहीतः** कृतकार्यः। **अस्मि।**

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (आपके से) तुम्हारे प्रति यह प्रार्थना इस समय मन की है।

राजा—(स्मितं कृत्वा) रैवतक, मद्वचनादुच्यतां सारथिः सबाणासनं रथमुपस्थापयेति ।

दौवारिकः—जं देवो आणवेदि [यद्देव आज्ञापयति] । (इति निष्क्रान्तः) ।

उभौ—(सहर्षम्) ।

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि ।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥१६॥

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) अपवार्य परावर्तनं कृत्वा (नृपम् प्रति) (कथयति यत्) । एषा इयम् (पूर्वोक्ता) । इदानीम् साम्प्रतम् । अनुकूला मनीषिता । ते तव (त्वाम् प्रति) अभ्यर्थना प्रार्थना ।

हिन्दी-व्याख्या—"अपवार्य" "अपवारित" क्रिया करने के अर्थ में है; "अपवारित" रहस्य का प्रकाशन मुँह फेरकर करना होता है । "तद्भवेदपवारितम् । रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ।" इसका अर्थ है कि श्रोता और रंग-मंच का वह व्यक्ति सुने जिसकी ओर घूमा गया है । संस्कृत-नाटक की यह अवस्था "जनान्तिक" की तरह भोंडी है । राजा शकुन्तला को देखने के लिए उपाय ढूँढ़ रहे थे; वह स्वतः मिल गया अतः रुकने की प्रार्थना अनुकूल हो गई ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(मुस्कराकर) रैवतक, सारथि को मेरा आदेश बताओ कि धनुष के साथ रथ उपस्थित करो ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) स्मितम् विहासम् (ईषत् हासम्) कृत्वा विधाय । रैवतक । मद्वचनात् मम वचनात् आदेशेन । उच्यताम् कथ्यताम् । सारथिः सूतः । सबाणासनम् बाणासनेन धनुषा सह । रथम् स्यन्दनम् । उपस्थापय आनय । इति ।

हिन्दी-व्याख्या—मुस्कराने का कारण विदूषक के द्वारा मन की बात ताड़ जाना है । रैवतक, द्वारपाल का नाम है । "वचनात्" में पञ्चमी ध्यान देने योग्य है ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपाल—जैसी महाराज की आज्ञा । (यह कहकर बाहर जाता है ।)

संस्कृत-टीका—दौवारिकः द्वारपालः । यत् यथा । देवः महाराजः । आज्ञापयति आदिशति (तथा क्रियते) । इति एवम् उक्त्वा । निष्क्रान्तः (रङ्गात्) बहिः गतः ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों (हर्ष के साथ) ।

संस्कृत-टीका—उभौ द्वौ अपि (मुनिकुमारौ) । सहर्षम् हर्षेण प्रमोदेन सह तत् यथा स्यात् तथा (कथयतः यत्) ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रार्थना मान ली गई, अतः ऋषि-कुमार हर्ष व्यक्त कर रहे हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—(अपने) पूर्व पुरुषों का अनुकरण करने वाले आपको यह खूब फबता है । निश्चय ही, आपत्तिग्रस्त लोगों को अभय-दान देने के यज्ञ में पुरु-वंशी दीक्षित हैं (यज्ञ की दीक्षा ले ली है) ।

अन्वय—पूर्वेषाम् अनुकारिणि त्वयि इदम् युक्तरूपम् । पौरवाः खलु आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः ।

राजा—(सप्रणामम्) गच्छतं पुरो भवन्तौ अहमप्यनुपदमागत एव।

उभौ—विजयस्व (इति निष्क्रान्तौ)।

राजा—माढव्य ! अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम् ?

संस्कृत-टीका—**पूर्वेषाम्** पूर्वजानाम् **अनुकारिणि** सदृशे । त्वयि भवति। **इदम्** एतत् (कार्यम्) (स्वीकृतिः)। **युक्तरूपम्** अतिशयेन **युक्तम्** उचितम्। **पौरवाः** पुरुवंशजाः। **खलु आपन्नाभयसत्रेषु आपन्नानाम्** आपद्युक्तानाम् **अभयम्** अभयदानम् (एव) **सत्राणि** यज्ञविशेषाः तत्र। दीक्षिताः कृतदीक्षाः।

हिन्दी-व्याख्या—पूर्व का अर्थ पूर्व पुरुष या पूर्वज है; यहाँ पुरु आदि महान् पूर्वजों की याद दिलाई गई है जिन्होंने ऐसे ही महान् पुण्य के कार्य किये हैं। विशेषण के अंत में "रूप" जोड़ देने पर प्रशंसा पर जोर हो जाता है (यहाँ युक्तरूपम् में)। 'इदम्" प्रार्थना की स्वीकृति रूपी पुण्य कार्य के लिये है। "आपन्न" आपत्ति-युक्त व्यक्ति के लिये है। धातु से क्त प्रत्यय लगने पर "युक्त" अर्थ जुट जाता है। चरित्र, रूप, शौर्य, दान पवित्रता आदि से दुष्यन्त पूर्वजों के अनुकारी कहे गये हैं। जैसे पूर्वजों ने ऋषियों की सहायता कर पुण्य अर्जित किया, वैसे ही हमारी प्रार्थना स्वीकार कर आपने किया, यह भाव है। यज्ञ से पहले यज्ञ का अधिकारी (योग्य) होने के लिये व्रत लिया जाता है; उसे दीक्षा कहते हैं। दीक्षा लेने वाले को वह (यज्ञ) कार्य पूरा किये बिना दूसरा काम नहीं करना होता।

छन्द—अनुष्टुप् (१.५ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—रूपक, काव्यलिङ्ग व अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (प्रणाम करके)—आप दोनों आगे चलें; मैं भी बस (पीछे-पीछे) आया ही।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः)। **सप्रणामम् प्रणामेन** नमनेन सह तत् यथा स्यात् तथा (कथयति यत्)। **गच्छतम्** व्रजतम्। **पुरः** अग्रे अग्रे। **भवन्तौ** युवाम्। **अहम्** अयम् जनः। **अपि** । **अनुपदम्** (भवतोः) पदा[ ] चरणन्यासम् (अनु) लक्ष्यीकृत्य (अनन्तरम् एव)। **आगतः** (आश्रमे) प्राप्तः **एव**।

हिन्दी अनुवाद—दोनों—जय हो (यह कहकर बाहर जाते हैं)।

संस्कृत-टीका—**उभौ** द्वौ अपि (मुनिकुमारौ) (कथयतः यत्))। विजयस्व (त्वम् जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व)। इति एवम् उक्त्वा। **निष्क्रान्तौ** रङ्गमञ्चात् बहिः गतौ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—माढव्य, शकुन्तला को देखने की उत्सुकता है ?

संस्कृत-टीका—**राजा**—नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) **माढव्य**। **अपि** किम् **अस्ति** वर्तते। **शकुन्तलादर्शने शकुन्तलाया दर्शने** साक्षात्कारविषये। **कुतूहलम्** उत्सुकता।

हिन्दी व्याख्या—"अपि" प्रश्नार्थक है। शृङ्गार की चर्चा बीच में मुनिबालकों के आने से अवरुद्ध हो गई थी, पुनः प्रबुद्ध हो गई है। ये क्रियायें प्रशमन (शांत या अवरुद्ध होना) और उद्दीपन

विदूषकः—पढमं सपरीवाहं आसि । दाणिं रक्खसवुत्तंतेण बिंदू वि णावसेसिदो [प्रथमं सपरीवाहमासीत् । इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः] ।

राजा—मा भैषीः, ननु मत्समीपे वर्त्तिष्यसे ।

विदूषकः—एसो रक्खसादो रक्खिदो म्हि [एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि]

(प्रविश्य) **दौवारिकः**-सज्जो रधो भट्टिणो विजअप्पत्थाणं अवेक्खदि । एस उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरओ करभओ आअदो [सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते । एष पुनर्नगराद्देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः]

कहलाती हैं । आनन्दवर्धन ने इन दोनों के द्वारा रस का परिपोषण होना कहा है । "उद्दीपनप्रशमने यथावसरम्... ।"

हिन्दी-अनुवाद—विदूषकः—पहले (-कुतूहल) लबालब था; अब राक्षसों के समाचार से बूँद भर भी नहीं बचा ।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (कथयति यत्) । **प्रथमम्** पूर्वम् (शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्) । **सपरीवाहम् परीवाहेण** जलोद्रेकेण सह (वर्त्तमानम्) । **आसीत्** अभवत् । **इदानीम्** सम्प्रति । **राक्षसवृत्तान्तेन राक्षसानाम्** असुराणाम् **वृत्तान्तेन** उदन्तेन । **बिन्दुः** कणमात्रम् । **अपि** । **न अवशेषितः** रक्षितः ।

हिन्दी-व्याख्या—"परीवाह" शब्द नाली या लबालब भरने का अर्थ देता है, राक्षस वृत्तान्त ने उसे उलीचकर निकाल दिया, यह आशय है । नाली में थोड़ा पानी होता है और बूँद पानी की इकाई है, अतः दोनों "अल्प" अर्थ देते हैं । नाली में जैसे ही पानी अधिक होता है, वैसे ही निकल जाता है । इस तरह निकलने के कारण अधिकता सूचित होती है । आशय हुआ कि कौतूहल पहले थोड़ा था, फिर ज्यादा हुआ और अन्त में राक्षसवृत्तान्त ने उसे जल्दी से बाहर निकाल दिया ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मत डरो, अरे भाई, मेरे पास ही रहोगे ।

संस्कृत-टीका—**राजा**—नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **मा** न । **भैषीः** भयम् प्राप्नुहि । **ननु** (सम्बोधने) । **मत्समीपे** मम **समीपे** निकटे । **वर्तिष्यसे** स्थास्यसि ।

हिन्दी-व्याख्या—राक्षसों से डर लगता है तो तुम मेरे पास ही रहोगे जिससे डर न लगे ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—(चलो) हम राक्षस से बच गये ।

संस्कृतटीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (कथयति यत्) । **एषः** अयम् (अहम्) । **राक्षसात्** असुरात् । **रक्षितः** (दुष्यन्तेन) । **अस्मि** भवामि ।

हिन्दी व्याख्या—"एष" का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ध्यान देने योग्य है; हिन्दी में इसका अनुवाद कुछ बदलकर करना पड़ता है ।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) द्वारपाल–रथ तैयार है और स्वामी के विजय प्रयाण की प्रतीक्षा करता है । इधर यह करभक, जो रानियों का संदेशवाहक है, शहर से आया है ।

संस्कृत-टीका—**प्रविश्य** रङ्गान्तः आगत्य । **दौवारिकः** द्वारपालः (रैवतकः) (कथयति यत्) **सज्जः** प्रस्तुतः । **रथः** स्यन्दनः । **भर्तुः** स्वामिनः (तव) । **विजयप्रस्थानम् विजयाय** जयाय

राजा—(सादरम्) किमस्माभिः प्रेषितः ?

दौवारिकः—अह इं [अथ किम्] ?

राजा—ननु प्रवेश्यताम् ।

दौवारिकः—तह । (इति निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य) एसो भट्टा, उवसप्प [तथा । एष भर्त्ता, उपसर्प]

करभकः—जेदु भट्टा । देवी आणवेदि आआमिणि चउत्थदिअहे पउत्थपारणो मे उववासो भविस्सदि । तहिं दीहाउणा अवस्सं संभाविदव्वा त्ति [जयतु भर्ता ।

प्रस्थानम् प्रयाणम् अपेक्षये प्रतीक्षते । एषः अयम् (पुरः स्थितः) । पुनः तु । नगरात् पुरात् (दुष्यन्तराजधानीतः) । देवीनाम् राजमातॄणाम् । आज्ञप्तिहरः सन्देशवाहकः । करभकः । आगतः प्राप्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—देवी का अर्थ रानी है, आगे के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि यह शब्द दुष्यन्त की माताओं के लिये है । दूत या संदेश-वाहक को दुर्गम स्थानों की यात्रा शीघ्र करनी पड़ती थी जिससे वे मजबूत होते थे, यहाँ करभक नाम इसका द्योतक प्रतीत होता है, इसका अर्थ हाथी का (छोटा) बच्चा (कलभ = करभ = करभक) है ।

हिन्दी-अनुवाद—(सम्मान के साथ) क्या माताओं ने भेजा है ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) । सादरम् आदरेण सम्मानेन सह तत् यथा स्यात् तथा (कथयति यत्) । किम् । अस्माभिः मातृभिः । प्रेषितः प्रहितः ।

हिन्दी-व्याख्या—सन्देश के प्रति भी आदर यह बताता है कि दुष्यन्त मातृभक्त हैं । आदरणीय व्यक्ति से संबद्ध वचन, आसन आदि सभी आदरणीय माने जाते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—द्वारपाल—जी हाँ ।

संस्कृत-टीका—दौवारिकः द्वारपालः (रैवतकः) (कथयति यत्) । अथकिम् बाढम् ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—हाँ, (तो उसे) अन्दर लाओ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । ननु (सम्बोधने) । प्रवेश्यताम् रङ्गान्तः आनीयताम् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस वाक्य से भी माताओं के प्रति आदर व्यक्त होता है, उनके संदेश-वाहक को तुरन्त अन्दर दाखिल होने दिया जाता है ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपाल—जी अच्छा (यह कहकर निकलकर और करभक के साथ प्रविष्ट होकर) । ये स्वामी हैं । निकट जाओ ।

संस्कृत-टीका—दौवारिकः द्वारपालः (रैवतकः) (कथयति यत्) । तथा आम् । इति एवम् उक्त्वा । निष्क्रम्य बहिः गत्वा । करभकेण तन्नाम्ना सन्देशवाहकेन । सह सार्धम् । प्रविश्य रङ्गम् आगत्य । एषः अयम् । भर्त्ता स्वामी । उपसर्प समीपे गच्छ ।

हिन्दी-अनुवाद—करभक—स्वामी की जय हो । राज-माता की आज्ञा है कि आगामी चौथे

देव्याज्ञापयति आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीयेति।]

राजा—इतस्तपस्विकार्यम्, इतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधेयम्।

विदूषकः—तिसंकू विअ अंतराले चिट्ठ [त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ]

दिन मेरे उपवास का पारण होगा। उस अवसर पर चिरंजीव मुझे अवश्य गौरवान्वित करें।

संस्कृत-टीका—**करभकः** (सन्देशवाहकः) (कथयति यत्) **जयतु** सर्वोत्कर्षेण वर्तताम्। **भर्त्ता**। स्वामी (भवान्)। **देवी** राजमाता **आज्ञापयति** आदिशति। **आगामिनि** भविष्यद्वर्तिनि चतुर्थदिवसे **चतुर्थः** च सः **दिवसः** दिनम् च तत्र। **प्रवृत्तपारणः प्रवृत्ता** आरब्धा **पारणा** अन्नग्रहणेन भङ्गः यस्य तादृशः (उपवासः) **मे** मम। **उपवासः**। **भविष्यति**। **तत्र** तस्मिन् अवसरे। **दीर्घायुषा दीर्घम्** अधिकम् **आयुः** जीवनम् यस्य तादृशेन (भवता) **अवश्यम्** नूनम् (अहम्)। **संभावनीया** (उपस्थित्या) सभाजनीया। **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—चतुर्थ दिवस भूतकाल का भी हो सकता है, अतः "आगामिनि" पद का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग पुरानी या आगामी घटना का समय-निर्धारण करने के लिये विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। "उपवास" शब्द पहले लगने से प्यारा बेटा दुःखी न हो जाय इसलिये "पारण" पद का प्रयोग पहले किया गया है।

हिन्दी-अनुवाद—**राजा**—इधर तपस्वियों का काम है और इधर पूजनीय की आज्ञा। दोनों ही उल्लंघन-योग्य नहीं हैं। इस विषय में क्या उपाय किया जाय?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) **इतः** एकतः। **तपस्विकार्यम् तपस्विनाम्** तापसानाम् **कार्यम्** (राक्षसात् यज्ञरक्षा) **इतः** द्वितीयतः **गुरुजनाज्ञा गुरुजनस्य** (मातुः) आज्ञा **आदेशः** (प्रत्यावर्त्तनरूपः) **द्वयम्** उभयम्। **अपि**। **अनतिक्रमणीयम्** न **अतिक्रमणीयम्** उल्लङ्घनीयम्। **किम्** (कार्यम्) (कतरत्) **अत्र** अस्मिन् विषये। **प्रतिविधेयम्** उपायरूपेण सेवनीयम्।

हिन्दी-व्याख्या—"इतः" का दो बार प्रयोग "इधर तो" और "और उधर" के अर्थ में ध्यान-देने योग्य है। "अनतिक्रमणीय" की जगह "कर्त्तव्य" होने पर उतना जोरदार प्रयोग न होता; निषेधात्मक प्रयोग हमेशा अधिक शक्तिशाली होता है। "किम्" का अर्थ "दोनों में कौन सा" भी हो सकता है। दोनों के न करने पर समान रूप से दोष है और एक समय एक ही कार्य हो सकता है क्योंकि दोनों कार्यों के स्थान दूर-दूर हैं।

हिन्दी-अनुवाद—**विदूषक**—त्रिशङ्कु की तरह बीच में रहो।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** माढव्यः) (कथयति)। **त्रिशङ्कुः** एतन्नामा राजा **इव**। **अन्तराले** (द्वयोः) मध्ये। **तिष्ठ** भव।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक ने यहाँ अच्छा मजाक किया है। तपस्वियों और माँ के बीच रहकर

राजा—सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि ।

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद्द्वैधीभवति मे मनः ।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा ॥ १७ ॥

दोनों के बीच रहकर दोनों के बराबर निकट रहा जा सकता है पर काम दोनों ही नहीं होंगे। त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र के पिता सूर्यवंशी राजा थे। रामायण बालकाण्ड ५७ से ६० इनकी प्रसिद्ध कथा आई है। हिन्दी में भी इसी प्रकार त्रिशंकु का प्रयोग होता है। ये पराक्रमी और पुण्यात्मा राजा थे। एक बार इनको सदेह स्वर्ग जाने के लिये यज्ञ करने की इच्छा हुई। इसके लिये इन्होंने कुल-गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की किन्तु उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया कि यह कार्य संभव नहीं है। उसके बाद इन्होंने उनके पुत्रों से कहा पर उन्होंने इन्हें मूर्ख कहते हुये क्रोध पूर्वक कहा कि जो बात पिता जी ने असम्भव बताई है, वह हम नहीं कर सकते। इस पर राजा ने कहा कि मैं दूसरे पुरोहित की खोज में हूँ। वसिष्ठपुत्रों ने क्रुद्ध होकर इन्हें चाण्डाल होने का शाप दिया। इसके बाद ये विश्वामित्र के पास प्रार्थना लेकर गये; उन्होंने स्वीकार कर लिया। यज्ञ में बुलाये जाने पर देवता नहीं आये। इस पर ऋषि ने अपनी तपः शक्ति से इन्हें सदेह स्वर्ग भेजा। इन्द्र आदि देवताओं ने इन्हें ऊपर से ढकेला और ये सिर के बल गिरे। इन्होंने विश्वामित्र की गुहार लगाई। ऋषि ने देवताओं को नीचा दिखाने के लिये नई सृष्टि रची और त्रिशंकु को बीच में ही रोक दिया जहाँ वे नक्षत्र के रूप में अब तक हैं। हरिवंश १।१२-१३ में त्रिशंकु को पिता को असंतुष्ट करने, गुरु वसिष्ठ की दुधारू गाय के वध और गो-मांस-भक्षण का दोषी बताया गया है। ये तीन शंकु (पाप) होने से इनका नाम त्रिशंकु हुआ। विश्वामित्र के कुल की रक्षा इन्होंने अकाल में की थी जिससे उन्होंने उक्त यज्ञ कराया। वायु-पुराण ८८ में भी ऐसी ही कथा है। बाण ने हर्षचरित व कादम्बरी में त्रिशंकु को इसी तरह उपमान बनाया है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—सचमुच मैं व्याकुल हो गया हूँ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। सत्यम् (इदम्) तथ्यम् (यत्)। आकुलीभूतः अनाकुलः अव्यग्रः आकुलः व्यग्रः भूतः। अस्मि भवामि।

हिन्दी-अनुवाद—कार्यों के भिन्न-भिन्न स्थान वाले होने के कारण मेरा मन दो ओर बँट रहा है जैसे सामने पहाड़ के होने पर नदी की धारा रुक कर दो ओर बँट जाती है।

अन्वयः—कृत्ययोः भिन्नदेशत्वात् मे मनः द्वैधीभवति। यथा पुरः शैले (सति) प्रतिहतम् स्रोतोवहः स्रोतः (द्वैधीभवति)।

संस्कृत-टीका—**कृत्ययोः** कर्तव्ययोः। भिन्नदेशत्वात् **भिन्नः** पृथक् **देशः** स्थानम् ययोः तत्त्वात्। **मे** मम। **मनः** चित्तम्। **द्वैधीभवति** मार्गद्वयगमनशीलम् (अस्ति)। **यथा**। **पुरः** समक्षम्। **शैले** पर्वते (सति) **प्रतिहतम्** अवरुद्धम्। **स्रोतोवहः** नद्याः। **स्रोतः** प्रवाहः (द्वैधीभवति)।

हिन्दी-व्याख्या—दो कर्तव्य, तपस्वियों के यज्ञ की राक्षसों से रक्षा और माँ का व्रत-पारण के दिन बुलावा, हैं। नदी के प्रवाह का पहाड़ से टकराकर रुकना कालिदास ने कुमारसंभव के सर्ग ५ के अन्त में भी दिया है—

(विचिन्त्य) **सखे ! त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः । अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति ।**

विदूषकः—ण खु मं रक्खोभीरुअं गणेसि [न खलु मां रक्षोभीरुकं गणय] ।

राजा—(सस्मितम्) **कथमेतद् भवति सम्भाव्यते ?**

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः ।

छन्द—अनुष्टुप् (१।१५ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—उपमा (श्रौती) अतिशयोक्ति, वृत्त्यनुप्रास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास व संसृष्टि ।

हिन्दी-अनुवाद—(सोचकर) मित्र, माँ ने तुम्हें पुत्र के रूप में माना है, इसलिये तुम यहाँ से लौटकर मेरे मन का तपस्वियों के कार्य में व्यग्र होना सूचित कर उनके लिए पुत्रोचित विधान (कृपया) कर देना ।

संस्कृत-टीका--**विचिन्त्य** चिन्तयित्वा । **सखे** मित्र ! **त्वम्** भवान् । **अम्बया** मात्रा । **पुत्रः** सुतः । **इति** । **प्रतिगृहीतः** अङ्गीकृतः । **अतः अनेन** कारणेन । **भवान्** त्वम् **इतः** अस्मात् स्थानात् । **प्रतिनिवृत्य** प्रत्यावृत्य । तपस्विकार्यव्यग्रमानसम् **तपस्विनाम्** तापसानाम् **कार्यम्** कृत्यम् तत्र **व्यग्रम्** आकुलम् **मानसम्** चित्तम् यस्य तादृशम् । माम् इमम् जनम् (दुष्यन्तम्) । **आवेद्य** सूचयित्वा । **तत्रभवतीनाम्** आदरणीयायाः (अम्बायाः) । पुत्रकृत्यम् पुत्रस्य सुतस्य (सुतोचितम्) **कृत्यम्** विधानम् । **अनुष्ठातुम्** सम्पादयितुम् । **अर्हति** ।

हिन्दी-व्याख्या—पास पास "त्वम्" और "भवान्" का प्रयोग बताता है कि दोनों के अर्थ में फर्क नहीं है । बाण ने हर्षचरित में राज्यवर्धन के मुख से हर्षवर्धन के प्रति पिता की मृत्यु पर इसी प्रकार दोनों शब्दों का प्रयोग कराया है । बाद में "भवत्" शब्द आदरार्थ माना जाने लगा जिससे "भोज-प्रबन्ध" पुस्तक में कवि जुलाहे के मुँह से "त्वम्" का प्रयोग सुनकर राजा भोज कुपित हो जाते हैं । हिन्दी में तुम और आप में फर्क है, बाद वाला आदरातिशय का द्योतक है । संस्कृत में जिसके (यहाँ माम्) विषय में सूचना देनी होती है, उसे द्वितीया में लिख करके सूचित करना होता है, उसे द्वितीया में ही व्यक्ति के विशेषण के रूप में रख दिया जाता है । "तत्रभवतीनाम्" में बहु वचन पर "अम्बया" एक-वचन है, यहाँ आदर की बात विशेष रूप से याद आ जाने पर बहु-वचन का प्रयोग है । "अर्हति" का अर्थ "चाहिये" है और इसके पहले तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—**विदूषकः**—प्रार्थना है कि मुझे राक्षस से डरने वाला न मानना ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्) । **न** । खलु (प्रार्थनायाम्) । **माम्** । इमम् जनम् । **रक्षोभीरुकम्** रक्षसः असुरात् **भीरुकम्** भीतम् । **गणय** जानीहि ।

हिन्दी व्याख्या—यह भी हँसाने के लिये है, आशय है कि मुझे डरपोक समझकर यदि आप इस बहाने से भेज रहे हों तो उचित नहीं है ।

राजा—(मुस्कराकर) यह तुम में कैसे सम्भव है ?

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) कथं केन प्रकारेण (न केनापि प्रकारेण) । **एतत्** इदम् (रक्षोभीरुकत्वम्) **भवति** त्वयि । **सम्भाव्यते** सम्भवति ।

विदूषक—जह राआणुएण गंतव्वं तह गच्छमि—[यथा राजानुगेन गन्तव्यं तथा गच्छामि]।

राजा—तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वानानुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि।

विदूषकः—तेन हि जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो [तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः]।

राजा—(स्वगतम्) **चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु एनमेवं वक्ष्ये।** (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा, प्रकाशम्) **वयस्य ! ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य—**

हिन्दी-अनुवाद-विदूषकः—जैसे राज सेवक को जाना चाहिये वैसे जाऊँगा।

संस्कृत-टीका-विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्)। **यथा** येन प्रकारेण। **राजानुगेन** राज्ञः नृपस्य **अनुगेन** सेवकेन। **गन्तव्यम्** गम्येत। **तथा** तेन (एव) प्रकारेण। **गच्छामि** व्रजामि।

हिन्दी अनुवाद—राजा-भाई, आश्रम की बाधा दूर करनी चाहिये, इसलिये साथ आये सब लोगों को तुम्हारे ही साथ विदा करूँगा।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) **ननु** (संबोधने) भोः। तपोवनोपरोधः **तपसः** तपस्यायाः **वनम्** अरण्यम् तत्र **उपरोधः** बाधा। **परिहरणीयः** दूरीकरणीयः। **इति** अनेन हेतुना। **सर्वान्** अशेषान्। **आनुयात्रिकान्** सहागतान्। **त्वया** भवता (माढव्येन)। **एव**। **सह**। **प्रस्थापयामि** विसर्जयामि।

हिन्दी अनुवाद-विदूषक तब तो अब युवराज हो गया।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्)। **तेन** उक्तेन कारणेन। **हि** निश्चयेन। **युवराजः**। **अस्मि**। **इदानीम्** अधुना। **संवृत्तः** जातः।

हिन्दी-व्याख्या—"तेन" से मतलब है साथ में लाव-लश्कर जाने से। "अस्मि" का अर्थ "मैं" भी लिया जाता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-(अपने मन में) यह छोकरा चञ्चल है। कभी हमारी इच्छा स्त्रियों से कह दे सकता है। ठीक है। इससे ऐसे कहूँगा। (विदूषक का हाथ पकड़कर स्पष्ट रूप से) मित्र, मुनियों के प्रति सम्मान से तपोवन जा रहा हूँ। सचमुच तापसकुमारी (शकुन्तला) के प्रति मुझे अनुराग (कतई) नहीं है। देखो-

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **चपलः** अव्यवस्थितचित्तः। **अयम्** एषः। **वटुः** बालकः। **कदाचित्** कदापि। **अस्मत्प्रार्थनाम्** **अस्माकम्** मम **प्रार्थनाम्** इच्छाम्। **अन्तःपुरेभ्यः** स्त्रीभ्यः। **कथयेत्** वदेत्। **भवतु** अस्तु (उपायः ज्ञातः)। **एनम्** (विदूषकम्)। **एवम्** इत्थम्। **वक्ष्ये** वदिष्यामि। **विदूषकम्** (माढव्यम्)। **हस्ते** करे। **गृहीत्वा** स्वकरेण संयोज्य। **प्रकाशम्** स्पष्टम्। **वयस्य** मित्र। **ऋषिगौरवात्** ऋषेः मुनेः (कण्वस्य) **गौरवात्** आदरात्। **आश्रमम्** तपोवनम्। **गच्छामि** यामि। **न**। **खलु** निश्चयेन। **सत्यम्** तथ्यम्। **एव**।

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे
परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ १८ ॥

तापसकन्यकायाम् तापसस्य तपस्विनः (कण्वस्य) **कन्यकायाम्** कुमार्याम् । **मम** अस्य जनस्य । **अभिलाषः** प्रेम । **पश्य** (त्वम् एव) विचारय ।

हिन्दी-व्याख्या--"स्वगत" में बिना किसी की ओर मुँह किये कहते हुए यह दर्शाया जाता है कि मन में यह बात सोची जा रही है, संस्कृत नाटकों में वह भी एक भद्दी चीज है । "अन्तः पुर" का अर्थ रनिवास है । (तात्स्थ्य सम्बन्ध से) स्थान का अर्थ वहाँ रहने वाला होता है । यह जानते हुए भी कि शकुन्तला तपस्वी की कन्या न होकर क्षत्रिय विश्वामित्र और मेनका की कन्या होने से विवाहयोग्य है, दुष्यन्त यहाँ उसके लिये "तापस-कन्यका" का प्रयोग करते हैं । उनका आशय है विदूषक के दिमाग में विदाई के समय यह बात बैठ जाय कि मुनि-कन्या होने से विवाह नहीं होगा ।

हिन्दी-अनुवाद—मित्र, कहाँ हम और कहाँ हरिण-शावकों के साथ बढ़ा हुआ व्यक्ति जिससे कामदेव दूर है । मजाक में की गई बड़बड़ को सत्य-रूप में ग्रहण मत कर लेना ।

अन्वय—सखे वयम् क्व मृगशावैः समम् एधितः परोक्षमन्मथः जनः क्व परिहासविजल्पितम् वचः परमार्थेन न गृह्यताम् ।

संस्कृत-टीका—**सखे** मित्र (माढव्य) । **वयम्** अहम् (दुष्यन्तः) । **क्व** कुत्र । **मृगशावैः मृगाणाम्** हरिणानाम् **शावैः** बालकैः । **समम्** सह । **एधितः** वृद्धिम् प्राप्तः । **परोक्षमन्मथः परोक्षः** दूरमुक्तः **मनोभवः** कामः यस्य तादृशः । **जनः** व्यक्तिः (शकुन्तला) । **क्व** कुत्र । **परिहास-विजल्पितम् परिहासेन** हासेन विविधम् **जल्पितम्** कथितम् । यत्र तादृशम् (वचः) । **परमार्थेन परमः** महान् च सः **अर्थः** पदार्थः तेन (सत्यतः) । **न** । **गृह्यताम्** अङ्गीक्रियताम् ।

हिन्दी-व्याख्या—"क्व" के दो बार प्रयोग से दोनों पक्षों (मैं और व्यक्ति) के बीच में बहुत दूरी है, ब्याह नहीं हो सकता, सूचित किया गया है । "वयम्" "अर्थान्तर-संक्रमित-वाच्य" का उदाहरण है । इसका अर्थ है शहर के विलासों के बीच पले कामपरवश । "एधित" के समर्थन के लिए "शाव" पद दिया गया है । इससे ब्याह की जो बात कही गई थी, वह परिहास थी, उसे सच न मानने के लिये राजा अनुरोध करते हैं । इस प्रकार पहले स्वयं कहीं बात का खण्डन हो जाता है । यह अवस्था "संवृति" नामक संधि अंग है । "संवृतिः स्वयमुक्तस्य स्वयं प्रच्छादनं भवेत् ।"

मजाक में कही गई बात प्रायः झूठी होती है, पर नर्म (शृंगार) में असत्य, दोष नहीं माना जाता :—"न नर्मयुक्तं ह्यनृतं हिनस्ति ।"

विदूषक पहले कही हुई बात झूठ माने, पर वास्तव में बाद में कही गई बात झूठी है । तथ्य यह है कि आश्रम में जाने का मुख्य उद्देश्य शकुन्तला को देखना है, न कि अन्य ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)
इति द्वितीयोऽङ्कः ।

छन्द—सुन्दरी । पहले और तीसरे चरण में यदि दो सगण, एक जगण व एक गुरु हो और दूसरे व चौथे चरण में सगण, मगण, रगण, लघु व गुरु हो तो सुन्दरी छन्द होता है :—

अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः समरा लगौ यदि सुन्दरी तदा ।

इसे वैतालीय या प्रबोधित भी कहा जाता है ।

अलङ्कार—विषम, काव्यलिङ्ग, संकर, परिकर, पुनरुक्तवदाभास, सहोक्ति व वृत्त्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—समाप्त (सब बाहर जाते हैं) दूसरा अङ्क समाप्त हुआ ।

संस्कृत-टीका—इति समाप्तिः । निष्क्रान्ताः बहिः गताः । सर्वे सकलाः इति समाप्तः । द्वितीय : अङ्कः ।

हिन्दी-व्याख्या—आरम्भ के लिये अथ और अन्त के लिए इति के अलावा कुछ न लिखना श्रेयस्कर है । नाटक के विभाजन को अंक कहते हैं जिस तरह काव्य, उपन्यास व शेष ग्रन्थों में सर्ग, उच्छ्वास, अध्याय, परिच्छेद, उल्लास, मयूख आदि का प्रयोग होता है ।

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

तृतीयोऽङ्कः

अथ विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः)

शिष्यः—अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः । प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति राजनि निरुपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति ।

का कथा बाणसंधाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ १ ॥

हिन्दी-अनुवाद—तीसरा अंक । विष्कम्भक का आरम्भ । इसके बाद कुश लेकर यज्ञ-कर्त्ता (मुनि) का शिष्य प्रवेश करता है ।

शिष्य—धन्य है, राजा दुष्यन्त महान् प्रभाव वाले हैं । उन राजा के प्रवेश करते ही हमारे कृत्य निर्विघ्न होने लगे ।

संस्कृत-टीका—तृतीयः । **अङ्कः** । **अथ** आरम्यते । **विष्कम्भकः** । ततः तत्पश्चात् । **प्रविशति** रङ्गमञ्चे दृश्यते । **कुशान्** दर्भान् **आदाय** गृहीत्वा । **यजमानशिष्यः** यजमानस्य यज्ञकर्तुः (कण्वस्य) **शिष्यः** छात्रः । शिष्यः छात्रः (कथयति यत्) **अहो** (आश्चर्ये) । **महानुभावः महान्** विशालः **अनुभावः** प्रभावः यस्य तादृशः । **पार्थिवः** राजा । **दुष्यन्तः** । **प्रविष्टमात्रे** प्रविश्य अन्तः आगते । **एव** । **तत्रभवति** श्रीमति । **राजनि** नृपे । निरुपद्रवाणि निर्गताः दूरीभूताः उपद्रवाः विघ्नाः **यस्य** येषाम् तानि । **नः** अस्माकम् । **कर्माणि** कृत्यानि । **प्रवृत्तानि** आरब्धानि । **भवन्ति** ।

हिन्दी-व्याख्या—"अहो" का प्रयोग ध्यान देने योग्य है, इसके बाद वाक्य न देकर केवल कर्त्ता दे दिया जाता है । इसका अर्थ है "क्या गजब का है" उपद्रव राक्षसों का उपद्रव है । नाटक में दो तरह से कथा कही जाती है:—

(१) नीरस को कथन द्वारा व (२) सरस को अभिमान द्वारा । पहिले भाग को पाँच तरीकों से सम्पन्न किया जाता है जिसमें विष्कम्भ (या विष्कम्भक) पहला है; शेष चूलिका, अंकास्य, अंकावतार व प्रवेशक हैं । अङ्क के आरम्भ में, बाद में आने वाली घटना का संक्षेप में कथन विष्कम्भक होता है । एक या दो मध्यम पात्रों के द्वारा विष्कम्भक होने पर वह शुद्ध कहा जाता है । जब मध्यम के साथ नीच पात्र भी होता है तो विष्कम्भक संकीर्ण कहलाता है । इस प्रकार इसमें संस्कृत का प्रयोग शुद्ध होने पर और संस्कृत व प्राकृत का प्रयोग संकीर्ण होने पर होता है ।

अलङ्कार—पर्यायोक्त या पर्यायोक्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—बाण-संधान (डोर पर लगाना) की तो बात ही क्या, दूर से धनुष की डोर से ही धनुष की हुंकार की भाँति वे (दुष्यन्त) निश्चय ही विघ्नों को दूर कर देते हैं ।

यावदिमान्वेदिसंस्तरणार्थंदर्भानृत्विग्भ्य उपनयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) प्रियंवदे कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते। (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला तस्याः शरीरनिर्वापणायेति। तर्हि त्वरितं गम्यताम्। सखि सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि तावद्वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। (इति निष्क्रान्तः)

[इति विष्कम्भकः।]

अन्वयः—बाणसंधाने का कथा हुङ्कारेण इव दूरतः धनुषः ज्याशब्देन एव स हि विघ्नान् अपोहति।

संस्कृत टीका—बाणसंधाने बाणस्य शरस्य सन्धाने ज्यासंयोजने। का (न कापि) कथा हुङ्कारेण हुमिति शब्देन। इव। दूरतः दूरात्। धनुषः शरासनस्य। ज्याशब्देन ज्यायाः गुणस्य शब्देन ध्वानेन। सः अनुभूतः (दुष्यन्तः) हि निश्चयेन। विघ्नान् बाधाः। अपोहति दूरीकरोति।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ सार्वभौम सत्ता की प्रशंसा की गई है। दुष्यन्त के रोब से ही काम हो जाता है, धनुष पर बाण चढ़ाने की जरूरत नहीं पड़ती। गणेश गम्यमान उपमान है। धनुष के हुँकार के साथ लगाने पर उसपर चेतनता का आरोप किया जा सकता है। इस अर्थ-योजना से धनुष की अनायास शत्रु-नाश शक्ति द्योतित होगी। यह अर्थ करने से धनुष की ज्या (धनुष की डोर) में "धनुष" शब्द की व्यर्थता का प्रसंग भी उपस्थित न होगा।

छन्द—अनुष्टुप् (१।५ द्रष्टव्य)।

अलंकार—उपमा।

हिन्दी-अनुवाद—जरा वेदी पर बिछाने के लिये कुश ऋत्विजों के पास ले जाऊँ। (घूमकर और देखकर आकाश में) हे प्रियंवदा, किसके लिये खस का लेप और कमल-नाल-सहित कमलिनी-पत्र ले जाये जा रहे हैं। (सुनकर) क्या कहती हो ? धूप में चलने से शकुन्तला अत्यधिक रुग्ण हो गई है, उसके शरीर की शीतलता के लिये। शीघ्र ले जाओ। हे सखी, वह निश्चय ही कुलपति श्रीमान् कण्व की सांस है। मैं भी पहले इसके लिये यज्ञ का शान्ति उदक गौतमी के हाथ भिजवाता हूँ। (यह कहकर बाहर जाता है)। [विष्कम्भक समाप्त हुआ।]

संस्कृत-टीका—यावत् (वाक्यालंकारे)। इमान् एतान् (दर्भान्) वेदिसंस्तरणार्थम् वेद्याम् वेदिकायाम् संस्तरणम् प्रसारः अर्थः प्रयोजनम् यस्य तत् यथा स्यात् तथा। दर्भान् कुशान्। ऋत्विग्भ्यः याजकेभ्यः। उपनयामि उपहरामि। परिक्रम्य प्रदक्षिणाम् कृत्वा अवलोक्य दृष्ट्वा। च। आकाशे निराश्रये (रङ्गभूमौ प्रियंवदाम् अदृष्ट्वा अपि)। प्रियंवदे (सम्बुद्धौ) कस्य (कस्य जनस्य उपभोगाय) इदम् एतत्। उशीरानुलेपनम् उशीरस्य वीरणमूलस्य अनुलेपनम् लेपः मृणालवन्ति मृणालसनाथानि। च नलिनीपत्राणि नलिन्याः कमलिन्याः पत्राणि दलानि। नीयन्ते उपह्रियन्ते। आकर्ण्य श्रवणम् नाटयन्। किम्। ब्रवीषि कथयसि। आतपलङ्घनात् आतपस्य सूर्यप्रकाशस्य (ग्रीष्मस्य वा) लङ्घनात् भाग: बलवत् नितराम् अस्वस्था न स्वस्था

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा)

राजा—(निःश्वस्य)

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ॥ २ ॥

प्रकृतिस्था । **शकुन्तला** । **तस्याः** (शकुन्तलायाः) । **शरीरनिर्वापणाय शरीरस्य** देहस्य **निर्वापणाय** सन्तापशान्त्यै । **इति** । **तर्हि** तदा । **त्वरितम्** शीघ्रम् । **गम्यताम्** । **सखि** आलि । **सा** (शकुन्तला) । खलु निश्चयेन । **भगवतः** श्रीमतः । **कण्वस्य** (ऋषेः) । **कुलपतेः** । उच्छ्वसितम् जीवनम् । **अहम्** अयम् जनः । **अपि** । **तावत्** प्रथमम् । **वैतानिकम्** यज्ञसम्बद्धम् । **शान्त्युदकम्** शान्त्यर्थम् **उदकम्** जलम् । **अस्यै** (शकुन्तलायै) । **गौतमीहस्ते गौतम्याः हस्ते** करे । **विसर्जयिष्यामि** प्रेषयिष्यामि । **इति** एवम् कथयित्वा । **निष्क्रान्तः** निर्गतः । **इति** समाप्तः । **विष्कम्भकः** ।

हिन्दी-व्याख्या—वेदी, यज्ञ के लिये साफ की गई भूमि को कहते हैं। "आकाश" पारिभाषिक शब्द है; ऐसे शब्द नाट्य धर्म कहे जाते हैं। बिना किसी पात्र के होने पर भी "क्या कहते हो' कहकर बिना सुने हुये भी सुनने का अभिनय कर उसे उद्धृत करना आकाश-भाषित कहलाता है—"किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् । श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥"–(दशरूपक ३।६७) । सुनने का अभिनय सिर बाजू की ओर झुकाकर नेत्र स्तब्ध करके किया जाता है :-"पार्श्वस्याभिमुखं यत्तु तत्पार्श्वानतमुच्यते । प्रयोज्यमाकर्णनादौ पार्श्वस्थस्यावलोकने । यत्तु स्यान्निश्चलपुटं स्तब्धनेत्रं प्रचक्षते ॥" खस का लेप प्रायः स्तनों पर किया जाता है और कमल के भीगे पत्तों से हवा की जाती है और उन्हें चादर की तरह बिछाया जाता है। इस विष्कम्भक में श्लोक १ तक दुष्यन्त के द्वारा राक्षसों से रक्षा और उसके बाद शकुन्तला की विरहावस्था, (जो आगे अङ्क ३ में आएंगे), संक्षेप में दी गई हैं। विष्कम्भक शुद्ध है क्योंकि केवल मध्यम पात्र के द्वारा प्रयुक्त है और संस्कृत में है।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

(इसके बाद विरही-जैसी अवस्था में राजा प्रविष्ट होते हैं।)

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(आह भरकर)

संस्कृत-टीका—ततः तत्पश्चात् । **प्रविशति** रङ्गे आविर्भवति । **कामयमानावस्थः कामयमानस्य** विरहिणः **अवस्था** दशा इव अवस्था यस्य सः । **राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **निःश्वस्य** दीर्घनिःश्वासम् उत्सृज्य (कथयति यत्) ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्या की शक्ति जानता हूँ। वह युवती पराधीन है, यह मुझे ज्ञात है। फिर भी उससे यह हृदय लौटाने (हटाने) में समर्थ नहीं हूँ।

संस्कृत-टीका—तपसः (कण्वस्य) तपस्यायाः **वीर्यम्** पराक्रमम् । **जाने** अवगच्छामि । **सा** प्रसङ्गोपात्ता (शकुन्तला) । **बाला** युवती । **परवती** पराधीना । **इति** इदम् । **मे** मया । **विदितम्** ज्ञातम् । **तथापि** तदपि । **ततः** तस्याः (शकुन्तलायाः) इदम् (स्वकीयम् **हृदयम्** मनः । **निवर्तयितुम्** अपसारयितुम् । **अलम्** समर्थः । **न** । **अस्मि** ।

(मदनबाधां निरूप्य) भगवन् कुसुमायुध त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थः । कुतः —

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥ ३ ॥

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला जबर्दस्ती नहीं छीनी जा सकती क्योंकि कण्व की तपस्या की शक्ति दुष्यन्त की सैन्यशक्ति से अधिक है। तपो हि दुरतिक्रमम्। वह स्वयम् आ सकती है, पर उसके पराधीन होने से वह भी संभव नहीं है। मेरा होते हुये भी मुझे छोड़कर जो हृदय शकुन्तला के पास चला गया है, वह बेहया है। वह खुद आयेगा, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। आने ही वाला होता तो जाता क्यों, अतः राजा उसे जबर्दस्ती लौटाने का यत्न करते हैं, पर वह हठी नहीं लौटता। अभी तक राजा की आशा सफल होती नहीं दिखती; ते और मे, क्रमशः त्वया और मया के अर्थ में निपात (अव्यय) हैं :—

ते मे शब्दौ निपातौ त्वया मयेत्यर्थे—काव्यालंकार सूत्र ५ २।१०

"विदित" को "नपुंसके भावे क्तः" सूत्र के अनुसार संज्ञा मानकर "मे" (मम) को सम्बन्ध के लिये षष्ठी माना जा सकता है। क्त प्रत्यय लगने पर नपुंसक लिंग की भाव-वाचक संज्ञा बनती है, जैसे गत (=गति), गीत (=गीति) आदि।

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य)

अलंकार—अप्रस्तुत-प्रशंसा, श्रुत्यनुप्रास व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—(काम-पीड़ा का अभिनय करके) भगवन् काम-देव, विश्वसनीय (होकर भी) तुम और चन्द्रमा कामियों के समूह को धोखा देते हो, क्योंकि—

संस्कृत-टीका—**मदनबाधाम्** मदनस्य कामस्य बाधाम् पीडाम्। **निरूप्य** नाटयन्। **भगवन्** श्रीमन्। **कुसुमायुध** कामदेव। **त्वया** (कामेन)। **चन्द्रमसा** चन्द्रेण। **च**। **विश्वसनीयाभ्याम्** विश्वस्ताभ्याम्। **अतिसंधीयते** प्रतार्यते। **कामिजनसार्थः** कामिजनानाम् कामुकव्यक्तीनाम् सार्थः समूहः। **कुतः** यतः।

हिन्दी-व्याख्या—मदनबाधा का अभिनय करने में सिर चंचल और नेत्र शिथिल करने होते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—तुम्हारा फूल के बाण वाला होना और चंद्रमा का शीतल किरणों वाला होना—ये दोनों मेरे जैसों के विषय में असत्य दिखते हैं। चन्द्रमा शीतल अन्तर्भाग वाली किरणों से आग डालता है और तुम फूल के बाण वज्र की भाँति दृढ़ बनाते हो।

(परिक्रम्य) **क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानम् विनोदयामि।** (निःश्वस्य) **किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि।** (सूर्यमवलोक्य) **इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति । तत्रैव तावद् गच्छामि।** (परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा) **अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।**

संस्कृत-टीका—तव (मदनस्य)। **कुसुमशरत्वम् कुसुमम्** पुष्पम् **शरः** बाणः यस्य तत्त्वम् तस्य भावः। **इन्दोः** चन्द्रस्य। **शीतरश्मित्वम् शीताः** हिमाः **रश्मयः** किरणाः यस्य तत्त्वम् तस्य भावः। **इदम्** एतत् (पूर्वोक्तम्) **द्वयम्** उभयम् (अपि)। मद्विधेषु मम विधा प्रकारः येषाम् तेषु (तेषाम् विषये) **अयथार्थम् न यथार्थम्** सत्यम्। **दृश्यते** अनुभूयते। **इन्दुः** चन्द्रः हिमगर्भैः **हिमम्** तुषारः **गर्भे** अन्तः येषाम् तैः। **मयूखैः** किरणैः। **अग्निम्** हुताशनम्। **विसृजति** त्यजति। **त्वम्** भवान्। **अपि** च। कुसुमबाणान् **कुसुमानि** पुष्पाणि एव **बाणाः** शराः तान्। वज्रसारीकरोषि **अवज्रसारान् वज्रसारान्** करोषि यद्वा **वज्रवत्** कुलिशवत् **सारीकरोषि** दृढीकरोषि।

हिन्दी-व्याख्या—काम और चन्द्र क्रमशः कुसुमशर और शीतरश्मि कहे जाते हैं, पर विरही के लिए विपरीत प्रभाव दिखाते हैं। श्लोक के पहले "चन्द्रमसा" आ जाने से यहाँ "इन्दु" न लिख कर सर्वनाम "तत्" का प्रयोग होना चाहिये था तथा पहले काम का वर्णन होने से तीसरे चरण में काम का और चौथे चरण में चन्द्रमा का वर्णन होना चाहिये था। विरह-दशा की उक्ति होने से उचित है।

छन्द—मालिनी (१।१० द्रष्टव्य)

अलंकार—अप्रस्तुत-प्रशंसा, काव्यलिङ्ग, रूपक, उपमा, विरोध, परिणाम, छेकानुप्रास व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—(घूमकर) कार्य समाप्त हो जाने पर सदस्यों (यज्ञ-सभा के सदस्यों ऋषियों) की अनुमति पाकर परिश्रम से थके हुये शरीर का क्लेश कहाँ दूर करूँ ? (निःश्वास छोड़कर) प्रिया के दर्शन के बिना मेरे लिये दूसरी शरण क्या है ? जरा इसे ढूंढूं । (सूर्य को देखकर) प्रायः प्रचण्ड धूप की यह वेला लता-मण्डप वाले मालिनी नदी के तटों पर सखियों के साथ शकुन्तला बिताती है। जरा वहीं जाता हूँ। (घूमकर स्पर्श का अभिनय कर) अरे यह स्थान (तो) उत्कृष्ट वायु के कारण रुचिर है।

संस्कृत टीका—परिक्रम्य प्रदक्षिणाम् कृत्वा। **क्व** कुत्र। **नु खलु** (वितर्के) **संस्थिते** समाप्ते। **कर्मणि** कार्ये। **सदस्यैः** (यज्ञसभायाः ऋषिभिः)। **अनुज्ञातः** अनुमतः **श्रमक्लान्तम् श्रमेण** आयासेन **क्लान्तम्** श्रान्तम् **आत्मानम्** देहम् **विनोदयामि** क्लेशरहितम् करोमि। **निःश्वस्य** दीर्घनिःश्वासम् उत्सृज्य। **किम्**। नु खलु (वितर्के) **मे** मम। प्रियादर्शनात् प्रियायाः प्रेयस्याः (शकुन्तलायाः) **दर्शनात्** अवलोकनात्। **ऋते** विना। **शरणम्** आश्रयः (रक्षकम्)। अन्यत् अपरम् **यावत्** प्रथमम्। **एनाम्** (शकुन्तलाम्) **अन्विष्यामि** मृगये। **सूर्यम्** रविम्। अवलोक्य दृष्ट्वा। **इमाम्** एताम्। **उग्रातपवेलाम् उग्रः** प्रचण्डः च सः **आतपः** च सूर्यतेजः तस्य

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम् ।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥४॥

वेलाम् समयम् । **प्रायेण** बहुधा । **लतावलयवत्सु** लतानाम् वल्लरीणाम् **वलयाः** मण्डलाः तद्वत्सु तद्युक्तेषु । **मालिनीतीरेषु** मालिन्याः (नद्याः) **तीरेषु** तटभागेषु । **ससखीजना** सखीजनाभ्याम् आलीभ्याम् सह । **शकुन्तला** । **गमयति** यापयति । **तत्र** तस्मिन् स्थाने **एव** । **यावत्** (वाक्यालंकारे) । **गच्छामि** व्रजामि । **परिक्रम्य** प्रदक्षिणाम् कृत्वा । **संस्पर्शम्** स्पर्शम् । **रूपयित्वा** नाटयित्वा । **अहो** (आश्चर्ये) । **प्रवातसुभगः प्रकृष्टः** श्रेष्ठः च असौ **वातः** वायुः च तेन **सुभगः** रम्यः । **अयम्** एषः । **उद्देशः** स्थानम् ।

हिन्दी-व्याख्या—सदस् (सभा) में उचित व्यक्ति को सदस्य कहते हैं । निःश्वास विरह के कारण लम्बी और गर्म है । राजा के प्रवेश के बाद से अब तक की अवस्था उद्वेग सूचित करती है; यह विरह की पाँचवीं अवस्था है । इसमें चित्तसंताप, निःश्वास आदि कहे गये हैं ।

"मनसः कम्प उद्वेगः कथितस्तत्र विक्रियाः । चित्तसंतापनिःश्वासौ द्वेषः शय्यासनादिषु । स्तम्भचिन्ताश्रुवैवर्ण्यदीनत्वादय ईरिताः" । ढूँढ़ना या पास जाना "परिसर्प" नामक नाट्याङ्ग कहलाता है; (यहाँ राजा शकुन्तला को खोजकर पास पहुँचते हैं—"दृष्टनष्टानुसरणं परिसर्प इतीरितः ।" साहित्य-दर्पण ६।९० । यहाँ "सुभग" का "मनोहर" अर्थ लक्षणा से मुख (अभिधा) अर्थ को बाधकर होता है । सौभाग्य वाला सुभग होता है और सौभाग्य चेतन का धर्म है, अचेतन स्थान का नहीं । जो मनोहर होता है वह सुभग होता है, इस प्रकार कार्य-कारण-सम्बन्ध से इसका अर्थ मनोहर होता है । इससे दुष्यन्त का मनोविनोद ध्वनित होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—कमल की सुगन्ध वाली और मालिनी की तरङ्गों के कण वहन करने वाली हवा का, काम-तप्त अङ्ग लगातार आलिङ्गन कर सकते हैं ।

संस्कृत-टीका—**अनङ्गतप्तैः अनङ्गेन** कामेन **तप्तैः** पीडितैः । **अङ्गैः** अवयवैः **अरविन्दसुरभिः अरविन्दस्य** कमलस्य **सुरभिः** गन्धः इव **सुरभिः** गन्धः यस्य तादृशः । **मालिनीतरङ्गाणाम्** मालिन्या (नद्याः) **तरङ्गाणाम्** लहरीणाम् **कणवाही कणान्** शीकरान् वहति इति । **पवनः** वातः । **अविरलम्** सततम् । **आलिङ्गितुम्** उपगूहितुम् । **शक्यम्** शक्यः ।

हिन्दी व्याख्या—हवा तरङ्गों के सम्पर्क से शीतल, कण-वहन करने से मन्द और कमल छूने से सुगन्धित है । "अविरल" का अर्थ लगातार और सटकर दोनों ही होता है । अनङ्ग-तप्त को कर्त्ता और अङ्ग को करण भी माना जा सकता है । ऐसी वायु काम ताप से तप्तों के लिये उद्दीपक है पर दुष्यन्त को सुखकर लगाती है । लगता है, मन ही मन यह सोचकर कि शकुन्तला का शरीर छूकर यह वायु आई है, वे सुख का अनुभव करते हैं । "शक्यम्" कर्मवाच्य में "पवन" का विशेषण होने से पुंलिङ्ग में होना चाहिये, पर नपुंसक में है । संस्कृत में ऐसा प्रयोग भी इस शब्द के प्रसंग में होता है । महाभाष्य में क्षुध् (स्त्रीलिङ्ग) का विशेषण होने पर भी "शक्य" नपुंसक लिङ्ग में आया है—"शक्यं च श्वमांसादिभिरपि क्षुत्प्रतिहन्तुम् ।" काव्यलंकार सूत्र ५।२।२३ में इसके लिये नियम बना दिया गया है—

(परिक्रम्यावलोक्य च) **अस्मिन्वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया तया भवितव्यम्। तथा हि** (अधो विलोक्य)

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात् ।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ॥ ५ ॥

शक्यमिति रूपं विलिङ्गवचनस्यापि कर्माभिधायां सामान्योपक्रमात ।

छन्द—आर्या (१।२) द्रष्टव्य ।

अलंकार—समाहित, समासोक्ति, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, छेकानुप्रास, व संकर ।

हिन्दी-अनुवाद—(घूमकर और देखकर) इस बेत से घिरे हुये लता-मण्डप में वह उपस्थित होगी। क्योंकि (नीचे देखकर)

संस्कृत-टीका—परिक्रम्य ईषत् गत्वा । **अवलोक्य** दृष्ट्वा **च** । **अस्मिन्** अत्र । **वेतसपरिक्षिप्ते** वेतसैः वानीरैः **परिक्षिप्ते** आवृते **लतामण्डपे लतानाम्** वल्लरीणाम् **मण्डपे** विताने । **संनिहितया** उपस्थितया । तया (शकुन्तलया) **भवितव्यम्** भूयेत । **तथा हि** यतः । **अधः** नीचैः । **विलोक्य** दृष्ट्वा ।

हिन्दी-अनुवाद—इस (लता-मण्डप) के सफेद रेत वाले द्वार पर पगों की नई नई (छाप) परम्परा दिख रही है जो आगे उठी हुई और पीछे नितम्ब के भारी-पन से गहरी है ।

अन्वय—अस्य पाण्डुसिकते द्वारे पुरस्तात् अभ्युन्नता पश्चात् (च) जघनगौरवात् अवगाढा अभिनवा पदपङ्क्तिः दृश्यते ।

संस्कृत टीका—अस्य एतस्य (लतामण्डपस्य) । **पाण्डुसिकते** पाण्डवः श्वेताः **सिकताः** बालुकाकणाः यत्र तादृशे । **द्वारे** प्रतिहारे । **पुरस्तात्** अग्रभागे । **अभ्युन्नता** उन्नता । **पश्चात्** पार्ष्णिदेशे । (च) । जघनगौरवात् **जघनस्य** श्रोण्याः **गौरवात्** गुरुतायाः । **अवगाढा** निम्ना । **अभिनवा** प्रत्यग्रा । **पदपङ्क्तिः पदानाम्** चरणानाम् **पङ्क्तिः** परम्परा । **दृश्यते** विलोक्यते ।

हिन्दी-व्याख्या—शरीर का भार एड़ियों पर प्रमुख रूप से होने और एड़ियों के मोटी होने से उनकी छाप पंजों की छाप से अधिक गहरी होती है । दो धँसे भागों में एक कम धँसा होने से उन्नत कहा गया है । स्त्रियों का नितम्ब देश पुरुषों के नितम्ब की अपेक्षा ज्यादा भारी होता है जिससे छाप और गहरी है । शकुन्तला के शरीर और छाप की गहराई देखकर राजा ने अनुमान लगाया है कि शकुन्तला ही अन्दर गई है । इस विरहावस्था में सभी चीजें शकुन्तला से सम्बद्ध दिख रही हैं । राजा को पहले एड़ी का भाग दिखना चाहिये था पर प्रवेश पर जोर होने या अगला भाग उठा होने से उसका वर्णन पहले किया गया है या वही पहले दिखा है । "पाण्डु" उज्ज्वल का वाचक है । और उज्ज्वल उद्दीपक होता है—"यावद्रम्यमुज्ज्वलं च" । पद का अर्थ पैर, कदम और पैरों की छाप होता है । बालू सफेद है जिससे उस पर पैरों की छाप अच्छी पड़ी है । राजा गुप्तचर की तरह तर्क देते हुये अनुमान लगा रहे हैं ।

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य) ।

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि । (परिक्रम्य तथा कृत्वा सहर्षम्) अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् । एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते । भवतु श्रोष्याम्यासां विश्रम्भकथितानि । (इति विलोकयन्स्थितः) ।

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला)

सख्यौ—(उपवीज्य सस्नेहम्) हला सउंदले अवि सुहेदि दे णलिणीपत्तवादो। [हला शकुन्तले अपि सुखयति ते नलिनोपत्रवातः] ।

अलंकार—पर्यायोक्त, हेतु, प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान व श्रुत्यनुप्रास ।

हिन्दी-व्याख्या—जरा डाल की आड़ से देखूँ। (घूमकर वैसा कर आनन्द के साथ) अरे ! आँखों का मोक्ष (स्वर्ग) पा लिया । यह मेरे मनोरथों की प्रियतमा है। पुष्पयुक्त विस्तरवाली पत्थर की पटिया पर लेटी हुई इसकी, दो सखियाँ सेवा कर रही हैं। ठीक है। इन लोगों की विश्वासपूर्वक कही गई बातें सुनूँगा । (यह कहकर देखते हुये ठहर जाते हैं ।

संस्कृत-टीका—यावत् (वाक्यालङ्कारे) । विटपान्तरेण विटपानाम् शाखानाम् अन्तरेण अवकाशेन । अवलोकयामि पश्यामि परिक्रम्य ईषत् गत्वा । तथा पूर्वनिर्दिष्टम् । कृत्वा विधाय, सहर्षम् हर्षेण आनन्देन सह तत् यथा स्यात् तथा । अये अहो । लब्धम् प्राप्तम् । नेत्रनिर्वाणम् नेत्रयोः नयनयोः निर्वाणम् । क्लेशक्षयात् शान्तिः । एषा पुरःस्था । मे मम । मनोरथप्रियतमा मनोरथेन चित्तसंकल्पेन प्रियतमा अतिशयेन प्रिया । सकुसुमास्तरणम् कुसुमैः पुष्पैः सह सकुसुमम् आस्तरणम् शयनम् यत्र । शिलापट्टम् शिलायाः प्रस्तरस्य पट्टम् फलकम् । अधिशयाना निपतिता । सखीभ्याम् द्वाभ्याम् आलीभ्याम् । अन्वास्यते उपचर्यते । भवतु अस्तु । श्रोष्यामि आकर्णयिष्यामि । आसाम् (तिसृणाम्) एतासाम् (शकुन्तलानसूयाप्रियंवदानाम्) । विश्रम्भकथितानि विश्रम्भे विश्वासे कथितानि भणितानि । इति एवम् उक्त्वा । विलोकयन् पश्यन् । स्थितः ।

हिन्दी-व्याख्या—"निर्वाण" शब्द बौद्ध साहित्य में मोक्ष के लिये आता है। इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लेने पर क्लेश-क्षय होता है जिससे शान्ति मिलती है और फिर जन्म नहीं होता। दुष्यन्त को शकुन्तला के दर्शन से कितना आनन्द मिला यह इस उपमान से स्पष्ट है। अभी शकुन्तला से ब्याह नहीं हुआ, अतः वास्तविक रूप से प्रियतमा नहीं है; केवल कामनाओं की, स्वप्नों की प्रियतमा है। पत्थर पर फूल बिछाये गये हैं जिससे रोगी को आराम मिले और शीतलता से ताप नष्ट हो। विश्वास में कही हुई बातें गुप्त होती हैं, अतः हो सकता है कि शकुन्तला के दिल की बात—दुष्यन्त के प्रति अनुराग —पता लग जाय, यह सोचकर दुष्यन्त उनकी एकान्त की बात में रुचि लेते हैं। एकान्त में कही गई कुमारियों की बात पुरुष को नहीं सुननी चाहिये पर दुष्यन्त इस अवस्था से बहुत आगे निकल गये हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद, जैसा बताया गया है, वैसे कार्य वाली शकुन्तला दो सहेलियों के साथ)

दोनों सहेलियाँ—सखी शकुन्तला, तुम्हें कमलिनी के पत्तों की हवा आराम तो दे रही है न ?

संस्कृत-टीका— ततः तदनन्तरम् । प्रविशति रङ्गभूमौ दृश्यते । यथोक्तव्यापारा यथोक्तः

शकुन्तला—किं वीअअंति मं सहीओ [किं वीजयतो मां सख्यौ]।

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः)

राजा—बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते। (सवितर्कम्) **तत्किमयमातपदोषः स्यात् उत यथा मे मनसि वर्तते।** (साभिलाषं निर्वर्ण्य) **अथवा कृतं संदेहेन—**

पूर्वोक्तः **व्यापारः** कार्यम्-यस्याः सा। **सह** साकम्। **सखीभ्याम्** आलीभ्याम्। **शकुन्तला** सख्यौ आल्यौ (अनसूया प्रियंवदा च)। **उपवीज्य** व्यजनम् कृत्वा। **सस्नेहम्** **स्नेहेन** प्रेम्णा सह तत् यथा स्यात् तथा। **हला** हे सखि। **शकुन्तले** (सम्बुद्धौ)। **अपि** किम्। **सुखयति** सुखम् उत्पादयति। **ते** तव। **नलिनीपत्रवातः नलिन्याः** कमलिन्याः **पत्रस्य** दलस्य **वातः** पवनः।

हिन्दी व्याख्या—"यथोक्त" का संदर्भ ऊपर दुष्यन्त के कथन में है। शकुन्तला फूल बिछे हुये शिलापट्ट पर लेटी है और सखियाँ उपचार कर रही हैं। रोगी के आराम के लिये की गई क्रिया फल दे रही है या नहीं, यह पूछना स्नेह सूचित करता है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—सखियो, मुझे पंखा क्यों कर रही हो ?

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **किम्** केन कारणेन। **वीजयतः** पवनं कुरुतः। **माम्**। सख्यौ हे आल्यौ (सम्बुद्धौ)।

हिन्दी व्याख्या—"किम्" शकुन्तला चौंककर कहती है और यह बेहोशी से होश में आने का लक्षण है, ऐसा कुछ मानते हैं। अपने ताप से ऊबकर "यह व्यर्थ उपाय है" यह कहने के लिये "किम्" का प्रयोग है। यह प्रतिमुख-संधि का "विधूत" नामक अंग है। "विधूतं स्यादरतिः।"—दशरूपक १।३३

हिन्दी-अनुवाद—(दोनों सखियाँ विषाद का अभिनय कर एक दूसरी को देखती हैं।)

संस्कृत-टीका—सख्यौ (अनसूया प्रियंवदा च)। **विषादम्** क्लेशानुभूतिम्। **नाटयित्वा** अभिनयेन प्रदर्श्य। **परस्परम्** (अनसूया प्रियंवदाम् प्रियंवदा च अनसूयाम्) **अवलोकयतः** पश्यतः।

हिन्दी-व्याख्या—विषाद का अभिनय करने के लिये सिर हिलाया जाता है और आँखों की पुतलियाँ फटी फटी दिखलाई जाती हैं। एक दूसरी को देखना यह सूचित करता है कि सखियों को यह शक हो गया कि यह ताप धूप से उत्पन्न न होकर विरह से उत्पन्न है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—शकुन्तला का शरीर अत्यधिक रुग्ण दिखता है (ऊहापोह में पड़कर) तो क्या यह धूप का विकार है या जैसा मेरे मन में (ताप या धारणा) है (वैसा है।) (प्रेम-पूर्वक और गौर से देखकर) या शंका व्यर्थ है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **बलवत्** अतितराम्। **अस्वस्थशरीरा स्वस्थम्** प्रकृतिस्थम् **शरीरम्** देहः यस्याः सा, न **स्वस्थशरीरा**। **शकुन्तला दृश्यते** अवलोक्यते (प्रतीयते)। **सवितर्कम् वितर्केण** विकल्पेन सह तत् यथा स्यात् तथा। **तत्** तर्हि। **किम्**। **अयम्** पूर्वोक्तः। **आतपदोषः आतपस्य** सूर्यतेजसः **दोषः** विकारः। **स्यात्** भवेत्। **उत** अथवा। **यथा**। **मे** मम। **मनसि** चेतसि (विचारे)। **वर्त्तते** विद्यते (तथा अस्ति)। **साभिलाषम् अभिलाषेण** प्रेम्णा। सह तत् यथा स्यात् तथा। **निर्वर्ण्य** निरीक्ष्य। **अथवा** यद्वा। **कृतम्** अलम्। **संदेहेन** शङ्कया।

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥ ९ ॥

प्रियंवदा—(जनान्तिकम्) अणसूये तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ

हिन्दी व्याख्या—अभी तक राजा को पक्का निश्चय नहीं हो सका है कि शकुन्तला को धूप लगी है या विरह का ताप सता रहा है। निर्णय के लिये वे गौर से देखते हैं, उसके बाद उनका संदेह निवृत्त होता है। बलवत्, सवितर्कम् और - साभिलाषम् क्रिया विशेषण हैं। किसी विशेषण को नपुंसकलिङ्ग द्वितीया एकवचन में रख देने से वह क्रिया-विशेषण हो जाता है। "इदम्" पूर्वोक्त वाक्य के लिये आया सर्वनाम होने से नपुंसकलिङ्ग एकवचन में "इदम्" होना चाहिये पर संस्कृत में विधेय के अनुसार उद्देश्य के सर्वनाम को रखने का चलन पर्याप्त होने से यहाँ "अयम्" दोषः के अनुसार पुंल्लिङ्ग में है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रिया का यह अत्यन्त क्लेश-युक्त शरीर जहाँ स्तनों पर खस (का लेप) लगाया गया है और जिसपर कमल-दण्ड का एक मण्डल शिथिल पड़ा हुआ है अलौकिक रूप से रमणीय है। काम और गर्मी के फैलाव की तपन भले ही समान हो, (पर) युवतियों पर ग्रीष्म का अपराध ऐसा रुचिकर नहीं होता (काम का ही होता है)।

अन्वय—स्तनन्यस्तोशीरम् शिथिलितमृणालैकवलयम् साबाधम् इदम् प्रियायाः वपुः किमपि कमनीयम्। कामम् मनसिजनिदाघप्रसरयोः तापः समः, न तु युवतिषु ग्रीष्मस्य अपराद्धम् एवम् सुभगम् (भवति)।

संस्कृत-टीका—**स्तनन्यस्तोशीरम् स्तनयोः** कुचयोः **न्यस्तम्** स्थापितम् उशीरम् नलदलेपः यत्र तत् (वपुः)। **शिथिलितमृणालैकवलयम्** शिथिलितम् शिथिलम् संजातम् मृणालस्य कमल-दण्डस्य एकवलयम् मुख्यमण्डलम् यत्र **एकम्** च तत् **वलयम्** च (वपुः)। **साबाधम् आबाधया** सर्वव्यापकपीडया सह वर्तमानम् आ समन्तात् बाधा **आबाधा**। इदम् एतत् (पुरः दृश्यमानम्) **प्रियायाः** (शकुन्तलायाः)। **वपुः** शरीरम्। **किमपि** लोकोत्तरचमत्कारकारि (यथा स्यात् तथा) **कमनीयम्** मनोहरम्। **कामम्** (अनुमतौ)। **मनसिजनिदाघप्रसरयोः मनसिजः** कामः च **निदाघः** ग्रीष्मः च तयोः **प्रसरयोः** व्यापकतयोः **तापः** दाहः **समः** तुल्यः। **न**। **तु** किन्तु। **युवतिषु** तरुणीषु नारिषु। **ग्रीष्मस्य** निदाघस्य **अपराद्धम्** अपराधः। **एवम्** इत्थम्। **सुभगम्** रुचिरम् (भवति)।

हिन्दी-व्याख्या-ताप के कारण शुष्कता से शिथिलता आती है। "साबाध" में "आबाधा" पद बताता है कि पीड़ा सारे अंग में है। "अपराद्धम्" की जगह या तो "ताप" रखना चाहिये था या उसके लिये सर्वनाम, यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि यह ताप के अतिरिक्त भाव के लिए आया है। तीसरे चरण में "ताप" की जगह "अपराद्ध" कर देने पर भी रचना ठीक हो सकती है, यों "ताप"

पज्जुस्सुआ विअ सउंदला। किं णु खु से तण्णिमित्तो अअं आतंको भवे [अनसूये तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्]।

अनसूया—सहि ममवि ईदिसी आसंका हिअअस्स। होदु पुच्छिस्सं दाव णं (प्रकाशम्) सहि पुच्छिदव्वासि किंवि। बलवं खु दे संदावो [सखि ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। सखि प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते संतापः]।

की जगह यह शब्द अधिक सुन्दर है। मृणालवलय एक था जिससे प्रतीत होता है कि रुग्णता के कारण एक से अधिक वलय शकुन्तला धारण नहीं कर पा रही थी।

छन्द—शिखरिणी (१।९ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—समुच्चय, विभावना, विशेषोक्ति, (संदेह) संकर, संसृष्टि, व्यतिरेक, अनुमान, अप्रस्तुत-प्रशंसा, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास व श्रुत्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (जनान्तिक) हे अनसूया, उस राजर्षि से पहली मुलाकात से (ही) शकुन्तला उत्कण्ठित-सी है। क्या ऐसी बात है कि उसके इस रोग का कारण वह (ही) हो।

संस्कृत-टीका प्रियंवदा। जनान्तिकम् (कथयति यत्), (हे) **अनसूये** (सम्बुद्धौ)। **तस्य** । राजर्षेः (दुष्यन्तस्य) **प्रथमदर्शनात् प्रथमम्** आद्यम् च तत् **दर्शनम्** मिलनम् च तस्मात्। (एव) **आरभ्य** प्रभृति। **पर्युत्सुका** उत्कण्ठिता। **इव**। **शकुन्तला**। **किम् नु खलु** (वितर्के)। **तस्याः** (शकुन्तलायाः)। **तन्निमित्तः तत्** (दर्शनम् सः दुष्यन्तः वा एव **निमित्तम्** हेतुः यत्र तादृशः। **अयम्** एषः (दृश्यमानः)। **आतङ्कः** रोगः। **भवेत्** स्यात्।

हिन्दी-व्याख्या—शिशिरोपचार से रोग शांत हो जाना चाहिये था, न होने पर यह शंका या निश्चय होना स्वाभाविक है कि उसका कारण दूसरा है। विचार करने पर कारण का भी पता चल जाता है। ताप के दो ही कारण होते हैं—एक रोग और दूसरा अनुराग। "इव" का प्रयोग कुलपति के भय से या "कहीं आरोप मिथ्या न हो जाय" इस डर से किया गया है। "जनान्तिक" की व्याख्या पहले (२।४ के बाद) दी जा चुकी है।

हिन्दी अनुवाद—अनसूया मेरे भी हृदय की आशंका ऐसी है। ठीक है; जरा इससे पूछूँगी। (प्रकाश रूप में) (हे) सखी; तुमसे कुछ पूछना है क्योंकि तुम्हारा ताप बलवान् (हो) है (कम ही नहीं होता)।

संस्कृत-टीका——अनसूया (जनान्तिकम्) (कथयति यत्)। **सखि** (हे) आलि (सम्बुद्धौ)। **मम** अस्य जनस्य। **अपि**। **ईदृशी** एवंविधा (एव)। **आशङ्का** वितर्कः। **हृदयस्य** चेतसः। **भवतु** अस्तु। **प्रक्ष्यामि**। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **एनाम्** (शकुन्तलाम्)। **प्रकाशम्** स्पष्टम्। **सखि** हे आलि (सम्बुद्धौ) **प्रष्टव्या** जिज्ञासायोग्या। **असि**। **किमपि** ईषत्। **बलवान्** दृढः। **खलु** यतः। **ते** तव। **संतापः** तापः।

हिन्दी-व्याख्या—"मम" व हृदय और हृदय व आशंका में सम्बन्ध है। पूछना इसलिए पड़ रहा है क्योंकि कारण साधारण नहीं प्रतीत होता। धूप से रोग आता तो शीतल उपचार से ठीक हो

शकुन्तला—(पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला किं वत्तुकामासि [हला किं वक्तुकामासि]।

अनसूया—हला सउंदले अणब्भंतरा खु अम्हे मदणगदस्स वुत्तंतस्स । किंदु जादिसी इदिहासणिबंधेसु कामअमाणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसीं दे पेक्खामि । कहेहि किंणिमित्तं दे संदावो । विआरं खु परमत्थदो अजाणिअ अणारंभो पडिआरस्स [हला शकुन्तले अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य । किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं तव पश्यामि । कथय किंनिमित्तं ते संतापः । विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य)।

जाता । मनुराग को बात पूछने का कारण है, उसका उपाय करना । विरह की अन्तिम अवस्था मरण से सखी को बचाना है ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला [शरीर के ऊपरी भाग से बिस्तर से उठकर] हे सखी क्या कहना चाह रही हो ?

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । **पूर्वार्धेन पूर्वम्** उपरिस्थितम् च तत् **अर्धम्** भागः च तेन । **शयनात्** आस्तरणात् । **उत्थाय** देहम् उत्थाप्य । **हला** हे सखि । **किम्** । **वक्तुकामा वक्तुम्** कथयितुम् **कामः** इच्छा यस्याः सा । **असि** भवसि ।

हिन्दी व्याख्या—उत्तर देने के लिये उठने की कोशिश करना सभ्यता है, लेटे लेटे उत्तर देने का अर्थ है, रुचि न दिखाना । "मैं स्वस्थ हूँ" यह प्रदर्शन करना भी उद्देश्य हो सकता है । न सुनना सुध-बुध भूलना या रहस्य की बात कहने की हिम्मत न होने के कारण (न सुनने का) अभिनय हो सकता है ।

हिन्दी-अनुवाद—**अनसूया** हे सखी शकुन्तला, हम दोनों निश्चय ही काम (प्रेम) सम्बन्धी हाल से तत्त्वतः अपरिचित हैं, लेकिन इतिहास के वर्णनों में विरहित की जैसी हालत सुनी जाती है वैसी (ही) तुम्हारी (हालत) है, यह देख रही हूँ । बताओ, तुम्हारे ताप का कारण क्या है ? क्योंकि विकार को वास्तविक रूप से जाने बिना उपाय का आरम्भ नहीं होता (हो सकता)।

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्) **हला हे** सखि (हे) शकुन्तले (सम्बुद्धौ)। **अनभ्यन्तरे** अविद्यमानम् **अभ्यन्तरम्** तत्त्वम् ययोः तादृश्यौ (तत्त्वेन अज्ञे)। **खलु** निश्चयेन । **आवाम्** (अनसूया प्रियंवदा च)। **मदनगतस्य मदनम्** कामदेवम् गतस्य कामसम्बद्धस्य (प्रेम विषयस्य)। **वृत्तान्तस्य** वार्तायाः, **किंतु** । **यादृशी** । **इतिहासनिबन्धेषु** इतिहासानाम् पुरावृत्तानाम् निबन्धेषु प्रबन्धेषु (वर्णनेषु) । **कामयमानानाम्** विरहिणाम् । **अवस्था** दशा । **श्रूयते** ज्ञायते । **तादृशीम् तव** भवत्याः । **पश्यामि** विलोकयामि । **कथय** वद । **किंनिमित्तम् किम् निमित्तम्** निदानम् यस्य तादृशः । **ते** तव । **संतापः** तापः **विकारम्** रोगम् (रोगकारणम्) **खलु** यतः । **परमार्थतः** वस्तुतः । **अज्ञात्वा** अविदित्वा । **अनारम्भः न आरम्भः** उपक्रमः (संभवति)। **प्रतीकारस्य** उपायस्य ।

हिन्दी व्याख्या—दोनों को सखा का निश्चय हो गया है कि शकुन्तला प्रेम में आकुल है । कही

राजा—अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः। न हि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम्।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) बलव खु मे अहिणिवेसो। दाणिं वि सहसा एदाणं ण सक्कणोमि णिवेदिदुं [बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्।]

प्रियंवदा—सहि सउंदले सुट्ठु एसा भणादि। किं अत्तणो आतंकं उवेक्खसि। अणुदिअहं खु परिहीअसि अंगेहिं। केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुंचेदि [सखि

आरोप झूठा न हो जाय, इस दृष्टि से वे दोनों कारण से अपरिचित बनी हुई हैं। आगे बताया है कि विरहियों की ऐसी अवस्था सुनी है, अनुभव नहीं की है, मिथ्या भी हो सकती है। शकुन्तला को लज्जातिशय से कष्ट न हो. इसलिये यह संकोच दिखाया गया है। वैद्यक में कहा गया है कि रोग के तत्त्व का परिज्ञान चिकित्सक को कर लेना चाहिये (तभी चिकित्सा करनी चाहिये) : "व्याधेस्तत्त्व-परिज्ञानम्।" "अनारम्भः" में "न" विधेय को "आरम्भ" उद्देश्य में मिला दिया है जिससे रचना खटकती है; बोलचाल और प्राकृत में होने से उतना दोष नहीं है।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मेरे तर्क ने अनसूया का भी पीछा किया है। निश्चय ही मेरा ज्ञान (अनुमान) मेरी इच्छा से (प्रेरित) नहीं है।

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **अनसूयाम्**। **अपि**। **अनुगतः** अनुसरति। **मदीयः** मम। **तर्कः** युक्तिः। **न**। **हि** निश्चयेन। **स्वाभिप्रायेण** स्वस्य मम अभि-प्रायेण इच्छया (प्रेरितम्)। **मे** मम। **दर्शनम्** ज्ञानम्।

हिन्दी-व्याख्या—राजा कहते हैं कि जो मैं सोच रहा हूँ कि शकुन्तला मेरे विरह से दुःखी है, वह अनसूया भी सोच रही है। जिससे यह पुष्टि होती है कि मेरी बात सही है; अभी तक मेरी बात इच्छा से प्रेरित होने के कारण गलत हो सकती थी। आदमी अपनी भावना के अनुसार हर वस्तु अनुकूल-प्रतिकूल समझता है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला-(मन ही मन) मेरा हठ निश्चय ही जबर्दस्त है, इस समय (ऐसी विकट अवस्था में) भी एकाएक इन दोनों से बताने में समर्थ नहीं हूँ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला। **आत्मगतम्** स्वगतम् (कथयति यत्) **बलवान्** दृढः। **खलु** निश्चयेन। **मे** मम। **अभिनिवेशः** आग्रहः (यत्)। **इदानीम्** अस्मिन् काले (एतस्याम् अवस्थायाम्)। **अपि**। **सहसा** अकस्मात्। **एतयोः** एताभ्याम्। **न**। **शक्नोमि** पारयामि। **निवेदयितुम्** सूचयितुम्।

हिन्दी-व्याख्या—लाज के कारण शकुन्तला ने कारण ही बताने से इनकार किया। फिर उसने हठ का रूप धारण कर लिया। "इदानीम् अपि" से आशय है ऐसे भयंकर ताप में पड़ने पर भी, बार-बार सखियों के पूछने पर भी अथवा अच्छा मौका होने पर भी।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—(हे) सखी शकुन्तला, यह तुम से ठीक कह रही है। क्यों अपने रोग की उपेक्षा कर रही हो। रोज रोज अंगों से दुबली होती जा रही हो। केवल (एक) लावण्यमयी कांति तुम्हें नहीं छोड़ती।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (अपरा सखी) (कथयति यत्)। सखि (हे) आलि (सखुद्धी)।

शकुन्तले सुष्ठ्वेषा भणति । किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे । अनुदिवसं खलु परिहीयसे अङ्गैः । केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति]।

राजा—अवितथमाह प्रियंवदा । तथा हि—

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा ।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी ॥ ७ ॥

सुष्ठु शोभनम् । **एषा** । इयम् (अनसूया) । **भणति** वदति, **किम्** केन कारणेन । **आत्मनः** स्वस्य । **आतङ्कम्** रोगम् । **उपेक्षसे** । **अनुदिवसम्** प्रतिदिनम् । **खलु** निश्चयेन **परिहीयसे** क्षीणा भवसि । **अङ्गैः** अवयवैः । **केवलम्** । **लावण्यमयी** लावण्ययुक्ता । **छाया** कान्तिः । **त्वाम्** । **न मुञ्चति** न त्यजति ।

हिन्दी-व्याख्या—"सुष्ठु" से समर्थन है अर्थात् इसके प्रश्न में मेरा अभिप्राय भी निहित है। दुबली होने पर भी शकुन्तला वैसी ही सुन्दर है, यह अंतिम वाक्य से स्पष्ट है जिसमें लावण्य पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है वह विशिष्ट शोभा जो मोती में चमक की तरलता के रूप में होती है। "छाया", कान्ति के लिये है।

हिन्दी-अनुवाद—**राजा**—ठीक कहती है प्रियंवदा। देखो न—

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **अवितथम्** न **वितथम्** असत्यम् । **आह** वदति । **प्रियंवदा** (शकुन्तलासखी) । **तथा हि** यतः ।

हिन्दी-अनुवाद—दुबले दुबले गाल लिये है। छाती कठोरतारहित (ढीले) स्तन धारण करती है। कमर अधिक पतली हो गई है। कंधे विशेष झुके हुये हैं। आकृति सफेद हो गई है। कामपीड़ित यह (शकुन्तला) पत्तों को सुखाने वाले वायु के द्वारा छुई गई माधवी लता की भांति शोचनीय और सुन्दर रूप वाली दिखती है।

अन्वय—आननम् क्षामक्षामकपोलम् । उरः काठिन्यमुक्तस्तनम् । मध्यः क्लान्ततरः । अंसौ प्रकामविनतौ । छविः पाण्डुरा । मदनक्लिष्टा इयम् (शकुन्तला) पत्राणाम् शोषणेन मरुता स्पृष्टा माधवीलता इव शोच्या च प्रियदर्शना च आलक्ष्यते ।

संस्कृत-टीका—**आननम्** (शकुन्तलायाः) मुखम् । **क्षामक्षामकपोलम्** क्षामक्षामौ अतिकृशौ **कपोलौ** गण्डौ यत्र तादृशम् । **उरः** वक्षः । **काठिन्यमुक्तस्तनम्** **काठिन्येन** कठोरतया **मुक्तौ** रहितौ **स्तनौ** कुचौ यत्र तादृशम् । **मध्यः** कटिः । **क्लान्ततरः** विशेषेण क्लान्तः कृशः । **अंसौ** स्कन्धौ । **प्रकामविनतौ** **प्रकामम्** अत्यर्थम् यथा स्यात् तथा **विनतौ** निम्नौ । **छविः** आकृतिः । **पाण्डुरा** श्वेता । **मदनक्लिष्टा** **मदनेन** कामेन **क्लिष्टा** पीडिता । **इयम्** । एषा (शकुन्तला) **पत्राणाम्** दलानाम् । **शोषणेन** शोषकेण । **मरुता** (पवनेन) वातेन । **स्पृष्टा** छुप्ता । **माधवी** लताविशेषा

शकुन्तला—सहि कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं [सखि कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि। आयासयित्रीदानीं वां भविष्यामि]।

उभे—अदो एव्व खु णिब्बंधो। सिणिद्धिजणसविभत्तं हि दुक्खं सज्झवेदणं होदि

लता वल्लरी। **इव**। **शोच्या** शोचनीया (अनुकम्पार्हा)। **च**। **प्रियदर्शना प्रियम्** हृद्यम् **दर्शनम्** रूपम् यस्याः तादृशी। **च**। **आलक्ष्यते** प्रतीयते।

हिन्दी व्याख्या—कपोल पहले दुबले थे; अब और अधिक दुबले हो गये हैं, कमर पहले पतली थी; अब और पतली हो गई है तथा कन्धे पहले झुके थे अब और झुक गये हैं; यह बताने के लिये दूसरा "क्षाम" "क्लान्ततर" में तरप् प्रत्यय और प्रकाम पद का प्रयोग किया गया है। विरह-कृशता से स्तन ढीले हो जाते हैं और चेहरे पर सफेदी आ जाती। है जो शोच्य है, वह प्रिय-दर्शन नहीं हो सकता अतः "शोच्य" से "कृपा पात्र" अर्थ निकलता है। इसका हेतु मदन से क्लिष्ट होना आगे दिया भी है। "शोषण" यहाँ शोषक अर्थ में हैं; "न" वा "ण" से अंत होने वाले शब्द भाव-वाचक होने के साथ साथ कर्त्ता (Agent) अर्थ में भी आते हैं; जैसे मोहन का अर्थ मुग्ध करना और मोहक दोनों ही है। शोच्या व प्रियदर्शना के साथ मदनक्लिष्टा को भी विधेयगत विशेषण बनाया जाता है और ये तीनों विशेषण माधवी के साथ भी लग सकते हैं। वह भी शोचनीय, सुन्दर रूप वाली और मदन (वसंत) से क्लिष्ट (पीड़ित) हो जाती है। माधवी चमेली की एक जाति है; वसंत चमेली के अलावा सभी वृक्ष पुष्पित कर देता है; यह माधवी को क्लेश देना हुआ। लतायें सभी दुबली होती हैं; माधवी लता कहने से सुन्दरता भी आ गई और क्लिष्टता भी। उद्देश्य आनन और उर विधेय की जगह है, नत में "वि" उपसर्ग होने से "प्रकाम" फालतू है, "इव" का प्रयोग माधवी के बाद होना चाहिये तथा लता की जगह प्रिया आदि आलोचनायें की जाती हैं। ऐसी बारीकी की परवाह कवि नहीं करता; करे तो कवि न होकर वैयाकरण सा नीरस हो जाय।

छन्द—शार्दूल-विक्रीडित (१।१४ द्रष्टव्य)

अलङ्कार—उपमा, अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(हे) सखी, और भला किससे कहूँगी। अब तुम दोनों को कष्ट देने वाली बनूँगी।

संस्कृत टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **सखि** (हे) आलि (सम्बुद्धौ)। कस्य। **वा** अन्यथा। **अन्यस्य** परस्य। **कथयिष्यामि** आख्यास्यामि। **आयासयित्री** क्लेशदायिनी। **वाम्** युवयोः। भविष्यामि।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर अनसूया ने कहा है कि बताओ (बताती क्यों नहीं हो), उसका उत्तर देती हुई शकुन्तला कहती है कि तुम दोनों को नहीं बताऊँगी तो किसे बताऊँगी। अपने कष्ट से तुम्हें कष्ट दूँगी, अतः नहीं कहूँगी।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—इसीलिये हठ है। दुःख प्रियजनों में जब बँट जाता है तब निश्चय ही उसकी अनुभूति सहन योग्य हो जाती है।

संस्कृत-टीका—उभे द्वे अपि (सख्यौ) (कथयतः यत्) **अतः** उक्तकारणेन। **एव**। **खलु**

[अत एव खलु निर्बन्धः स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति] ।

राजा—पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् ।
दृष्टो निवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ॥ ८ ॥

शकुन्तला—सहि जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो सो तवोवणरक्खिदा रायसी

निश्चयेन । **निर्बन्धः** हठः । **स्निग्धजनसंविभक्तम्** स्निग्धाः प्रियाः च ते जनाः लोकाः च तेषु **संविभक्तम्** विभक्तम् । **हि** निश्चयेन । **दुःखम्** क्लेशः । **सह्यवेदनम्** सह्या सहनीया **वेदना** अनुभूतिः यस्य तादृशम् । **भवति** ।

हिन्दी-व्याख्या—"एव" के अर्थ में "खलु" का अर्थ आ गया है । अंतिम वाक्य लोकोक्ति की तरह प्रयुक्त हो सकता है । दोनों को दुःख होगा, यह सोचकर शकुन्तला न कहने पर तुल (निर्बन्ध) गई है ।

हिन्दी-अनुवाद—यह तरुणी जिससे समान दुःख और सुख वाले व्यक्तियों (सखियों) ने पूछा है, मनोव्यथा का मन में स्थित कारण न कहे ऐसा (संभव) नहीं है । यद्यपि इसने तृष्णा-पूर्वक बार-बार घूम-घूम कर मुझे देखा है, फिर भी इस समय मुझे सुनने में भय हो रहा है ।

अन्वय—समदुःखसुखेन जनेन पृष्टा इयम् बाला मनोगतम् आधिहेतुम् न वक्ष्यति (इति) न । अनया बहुशः सतृष्णम् निवृत्य दृष्टः अपि अत्र अन्तरे श्रवणकातरताम् गतः अस्मि ।

संस्कृत-टीका—**समदुःखसुखेन समे** समाने दुःखसुखे यस्य तेन **दुःखम्** क्लेशः च **सुखम्** हर्षः च । **जनेन** व्यक्त्या । **पृष्टा** । **इयम्** एषा (शकुन्तला) **बाला** तरुणी । **मनोगतम् मनसि** चेतसि **गतम्** स्थितम् । **आधिहेतुम् आधेः** मनोव्यथायाः **हेतुम्** । कारणम् । **न** । **वक्ष्यति** । कथयिष्यति इति । **न** । **अनया** एतया (शकुन्तलया) **बहुशः** बहुवारम् । **सतृष्णम् तृष्णया** लालसया सह तत् यथा स्यात् तथा । **निवृत्य** परावृत्य । **दृष्टः** विलोकितः **अपि** । **अत्र** अस्मिन् । **अन्तरे** अवकाशे (मध्ये) **श्रवणकातरताम् श्रवणे** आकर्णने । **कातरताम्** भयम् । **गतः** प्राप्तः । **अस्मि** ।

हिन्दी-व्याख्या—जिसके दुःख और सुख समान होते हैं, वह घनिष्ठ मित्र होता है । उसके पूछने पर दिल की व्यथा छिपाये नहीं छिपती । जिससे राजा को विश्वास हो गया है कि अब शकुन्तला असली बात कह देगी । शकुन्तला मुड़-मुड़ कर पहले देख चुकी है जिससे उसके अनुराग में कोई शक नहीं है, पर जब तक वह मुँह से न कह दे तब तक निश्चय नहीं हो सकता । कहीं शकुन्तला मेरे प्रति अनुराग न कहकर किसी दूसरे के प्रति अनुराग न कह दे, इस आशंका से राजा त्रस्त हैं । "बाला" कहने से छल-प्रपञ्च रहित भोली अर्थ ध्वनित होता है ।

छन्द—वसन्ततिलका (१।८ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(हे) सहेली, जब से आश्रम के रक्षक वे राजर्षि मेरे दृष्टिपथ

तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतद्दवत्थम्हि संवुत्ता [सखि यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता]।

राजा—(सहर्षम्) **श्रुतं श्रोतव्यम्।**

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।
दिवस इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ॥ ९ ॥

में आये हैं, तब से उनके प्रति प्रेम से मेरी ऐसी हालत हो गई है।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **सखि** हे आलि (सम्बुद्धौ)। **यतः** यस्मात् क्षणात्। **प्रभृति** आरभ्य। **मम** अस्य जनस्य। **दर्शनपथम् दर्शनस्य** दृष्टेः **पन्थानम्** मार्गम्। **आगतः** प्राप्तः **सः तपोवनस्य** आश्रमस्य **रक्षिता** रक्षकः। **राजर्षिः** (दुष्यन्तः)। **ततः** तस्मात् क्षणात्। **आरभ्य** प्रभृति। **तद्गतेन** तं राजर्षिं गतेन प्राप्तेन (तत्सम्बद्धेन)। **अभिलाषेण** अनुरागेण। **एतदवस्था एषा** इयम् (पुरोदृश्या) **अवस्था** दशा यस्याः तादृशी। **अस्मि**। **संवृत्ता**। जाता।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (आनन्दपूर्वक) सुनने योग्य बात सुन ली।

संस्कृतटीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **श्रुतम्** आकर्णितम्। **श्रोतव्यम्** श्रवणयोग्यम्।

हिन्दी-अनुवाद—कामदेव ही ताप का कारण है; (पर) वही मेरे लिये ताप-शान्ति कारक हो गया है जिस तरह वर्षा में अर्धश्याम दिन प्राणि जगत् के लिये ताप-शान्ति कारक होता है।

अन्वय—स्मरः एव ताप-हेतुः, सः एव मे निर्वापयिता जातः। तपात्यये जीवलोकस्य (निर्वापयिता) अर्धश्यामः दिवसः इव।

संस्कृत-टीका—स्मरः कामः। **एव**। **तापहेतुः तापस्य** सन्तापस्य **हेतुः** निदानम्। **सः** (स्मरः)। **एव**। **मे** मम। **निर्वापयिता** शान्तिदायकः। **जातः** संवृत्तः। **तपात्यये तपस्य** ग्रीष्मस्य **अत्यये** समाप्तौ (वर्षर्तौ) जीवलोकस्य **जीवानाम्** प्राणिनाम् **लोकस्य** जगतः (निर्वापयिता)। **अर्धश्यामः अर्धम्** अर्द्धभागे **श्यामः** कृष्णः (मेघाक्रान्तत्वात् सच्छायः)। **दिवसः** दिनम्। **इव**।

हिन्दी-व्याख्या—अर्द्ध-श्याम का अर्थ है कुछ धूप या प्रकाश और कुछ छाँह लिये (बदली वाला) "दिन के पूर्व भाग में धूप वाला और अपर भाग में छाँह वाला" अर्थ भी हो सकता है। दिन भी ग्रीष्म में या घाम होने पर ताप देता है और फिर बदली होने पर शांति देता है। जो ताप-हेतु है, वह निर्वापयिता नहीं हो सकता, यह विरोधाभास है। वास्तव में ताप-हेतु दोनों शकुन्तला और दुष्यन्त का ही है पर "दूसरे में भी ताप-हेतु है" यह प्रेम की प्रतीति कराकर शांति देता है।

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य)।

अलंकार—विरोधाभास, व्याघात व वृत्त्यनुप्रास।

शकुन्तला—तं जइ वो अणुमदं ता तह वट्टह जह तस्स राएसिणो अनुकंपणिज्जा होमि। अण्णहा अवस्सं सिंचध मे तिलोदअं। [तद्यदि वामनुमतं तदा तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि अन्यथाऽवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम्]।

राजा—संशयच्छेदि वचनम्।

प्रियंवदा—(जनान्तिकम्) अणसूये दूरगअमन्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धभावा एसा सो ललामभूदो पोरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणंदिदुं [अनसूये दूरगतमन्मथाक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम्। तद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्।]

शकुन्तला—तो अगर तुम दोनों को अभीष्ट हो तो ऐसा करो कि उन राजर्षि के द्वारा अनुकम्पा योग्य बनूँ, नहीं तो अवश्य मेरा श्राद्ध करना होगा [तिल-मिला जल देना (होगा)]।

संस्कृत टीका—तत् तर्हि। **यदि** चेत्। **वाम्** युवयोः। **अनुमतम्** अभीष्टम्। **तदा** तर्हि। **तथा** तेन प्रकारेण। **वर्तेथाम्** कुरुतम्। **यथा** येन प्रकारेण। **तस्य**। राजर्षेः (दुष्यन्तस्य)। **अनुकम्पनीया** कृपा-पात्रम्। **भवामि** स्याम्। **अन्यथा** नो चेत्। **अवश्यम्** नूनम्। **सिञ्चतम्** अर्पयतम्। **मे** मम। **तिलोदकम्** तिलमिश्रम् उदकम् जलम्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—यह वचन शंका छिन्न कर देने वाला है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **शंसयच्छेदि** शङ्कानिवारकम्। **वचनम्** कथनम्।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (जनान्तिक)—(हे) अनसूया, इसका प्रेम बहुत दूरतक पहुँच गया है; यह काल-क्षेप (देर) सहन नहीं कर सकती। जिनसे इनको प्यार है, वे पुरु-वंश के अलङ्कार-स्वरूप हैं, इसलिये इसकी लालसा अभिनन्दनीय है।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (जनान्तिकम्) (कथयति यद्)। (हे) अनसूये (सम्बुद्धौ)। दूरगतमन्मथा **दूरम्** असाध्यावस्थाम् **गतः** प्राप्तः **मन्मथः** कामः यस्याः सा। **अक्षमा** असमर्था। **इयम्** एषा (शकुन्तला)। **कालहरणस्य** कालस्य समयस्य **हरणस्य** क्षेपस्य। **यस्मिन्** (दुष्यन्ते) बद्धभावा **बद्धः** दृढीभूतः **भावः** प्रेम यस्याः सा **एषा** इयम् (शकुन्तला)। **सः**। **ललामभूतः** अलङ्काररूपः। **पौरवाणाम्** पुरुवंशस्य। **तत्** तर्हि। **युक्तम्** उचितम्। **अस्याः** एतस्याः (शकुन्तलायाः) **अभिलाषः** लालसा। **अभिनन्दितुम्** समर्थयितुम्।

हिन्दी-व्याख्या—दस काम दशाओं में लज्जा नष्ट होना चौथी अवस्था है—

निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः।
उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः॥

ताप का कारण कुमारी होते हुये पुरुष-कामना बताना लज्जानाश है। "यह देर नहीं सह सकती" से आशय है कि देर होने पर इसकी हालत असाध्य अवस्था–मौत को पहुँच सकती है, अतः हमें शीघ्र उपाय करना चाहिये जिससे इसे दुष्यन्त मिल जाय। इसका समाधान भी दिया गया है कि

अनसूया—तह जह भणसि [तथा यथा भणसि]।

प्रियंवदा—(प्रकाशम्) **सहि दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। को दाणिं सहआरं अंतरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि** [सखि दिष्टयानुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति। क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां सहते]।

राजा-किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।

आराध्य वरणीय है। "युक्त" अभिलाष का विशेषण होने से पुंलिङ्ग में "युक्तः" होना चाहिये, मूल प्राकृत में होने से संस्कृत व्याकरण का नियम लागू नहीं होता। "अभिलाषा" के लिये संस्कृत में "अभिलाष" का चलन है। जनान्तिक, २।४ के बाद देखा जा सकता है।

हिन्दी अनुवाद—अनसूया—जैसा कह रही हो, वैसी ही बात है।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) **तथा। यथा भणसि** वदसि।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (प्रकाश में) (हे) सखी, सौभाग्य से तुम्हारा निश्चय अनुरूप (अपने लायक) है। समुद्र को छोड़कर बड़ी नदी भला कहां उतर सकती है। कौन आम्र वृक्ष के बिना अतिमुक्तलता को पल्लवित देख सकता है।

संस्कृत टीका—प्रियंवदा। प्रकाशं स्पष्टम् (कथयति यत्)। (**हे**) **सखि** (सम्बुद्धौ)। **दिष्ट्या** दैवेन। **अनुरूपः** नव योग्यः। **ते** तव। **अभिनिवेशः** निश्चयः। **सागरम्** समुद्रम्। **उज्झित्वा** त्यक्त्वा। **कुत्र** कस्मिन् स्थाने। **वा** (वाक्यालङ्कारे)। **महानदी महती** विशाला च सा **नदी** सरिता च। **अवतरति** याति। **कः**। **इदानीम्** (वाक्यालङ्कारे)। **सहकारम्** आम्रवृक्षम्। **अन्तरेण** विना। **अतिमुक्तलताम्** अतिमुक्तनाम्नीम् वल्लरीम् **पल्लविताम्** पत्रयुक्ताम्। **सहते** पश्येत्।

हिन्दी-व्याख्या—कुमारसंभव सर्ग ५ में ऐसे ही वरण के स्थल पर "अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा" आया है। "इदानीम्" मेदिनी-कोष के अनुसार वाक्यालङ्कार में आता है; इसका अपना कुछ अर्थ यहाँ नहीं बैठता; बोल-चाल की भाषा में इसे जोड़ दिया जाता है।

अलङ्कार—माला दृष्टान्त।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—इस विषय में क्या अचरज अगर विशाखायें (दो तारे) चन्द्रमा की रेखा का अनुसरण करें ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **किम्। अत्र** अस्मिन् विषये। **चित्रम्** आश्चर्यम्। **यदि** चेत्। **विशाखे** द्वे तारे। **शशाङ्कलेखाम् शशाङ्कस्य** चन्द्रस्य **लेखाम्** रेखाम् (कलाम्) **अनुवर्त्तेते** अनुसरतः।

हिन्दी व्याख्या—विशाखा सोलहवां नक्षत्र है जिसमें दो तारे हैं। तारे चन्द्रमा का अनुसरण करते हैं और दोनों सखियां शकुन्तला का। शकुन्तला स्त्री है और चन्द्र पुंल्लिङ्ग। अतः उपमा भोंडी होने का प्रसंग उपस्थित होता है; उसे दूर करने के लिए चन्द्र की जगह चन्द्र-लेखा कर दिया गया।

अनसूया—को उण उवाओ भवे जेण अविलंबिअं णिहुअं अ सहीये मणोरहं संपादेह्म [कः पुनरुपायो भवेद्येनाविलम्बितं निभृतं च सख्या मनोरथं संपादयावः]।

प्रियंवदा—णिहुअंत्ति चिंतणिज्जं भवे । सिग्घंत्ति सुअरं [निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्]।

अनसूया—कहं विअ [कथमिव]।

प्रियंवदा—णं सो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो इमाइं दिअहाइं पज्जाअरकिसो लक्खीअदि [ननु स राजर्षिरेतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान्दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते]।

है। विलियम्स ने शकुन्तला और प्रियंवदा को विशाखा को तथा दुष्यन्त को चन्द्रलेखा का उपमेय बनाया है; यह अटपटा है। विक्रमोर्वशीय ५।२ के बाद विशाखाओं के पास चन्द्र की भांति राजर्षि का उपस्थित होना दिखाया गया है।

अलङ्कार—अप्रस्तुत-प्रशंसा व सम।

हिन्दी-अनुवाद— अनसूया—तो क्या उपाय हो सकता है जिससे हम दोनों बिना देर किये और चुपचाप सहेली की इच्छा पूरी करें ?

संस्कृत टीका—कः। पुनः तर्हि। उपायः। भवेत् स्यात्। येन (उपायेन) अविलम्बितम् विलम्बं विना। निभृतम् प्रच्छन्नरूपेण। च। सख्याः आल्याः (शकुन्तलायाः), मनोरथम् इच्छाम्। संपादयावः सफलाम् कुर्वः।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—जहां तक चुपचाप कार्य करने का संबंध है, सोचने की आवश्यकता है। जहां तक जल्दी का सवाल है, आसानी है।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा—(कथयति यत्)। निभृतम् गुप्तम्। इति (निभृतम् कार्यानुष्ठानम्) चिन्तनीयम् विमर्शयोग्यम्। भवेत् स्यात् शीघ्रम् अविलम्बितम्। इति (अविलम्बितम् कार्यानुष्ठानम्)। सुकरम् अनायासेन करणीयम्।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—(भला) किस प्रकार ?

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। कथम् केन प्रकारेण। इव (वाक्यालङ्कारे)।

हिन्दी अनुवाद—अरे ! वे राजर्षि जो इस (शकुन्तला) के प्रति स्नेहमय दृष्टि से प्रेम प्रकट कर चुके हैं इन दिनों अत्यन्त रात्रि-जागरण से दुबले दिखते हैं।

संस्कृत-टीका—ननु भोः। (संबोधने)। सः दुष्यन्तः। राजर्षिः। एतस्याम् (शकुन्तलाम् प्रति)। स्निग्धदृष्ट्या स्निग्धा प्रेममयी च सा दृष्टिः अवलोकनम् च तया। सूचिताभिलाषः सूचितः प्रकटितः अभिलाषः प्रेम येन तथाभूतः (सन्)। एतान् इमान्। दिवसान् दिनानि। प्रजागरकृशः प्रजागरेण रात्रिजागरणेन कृशः क्षीणः लक्ष्यते प्रतीयते।

हिन्दी-व्याख्या—नायक पुरुष, राजा और दुष्यन्त जैसा राजा है अतः अपानाश आदि सभी दशायें उनके प्रसंग में नहीं बताई हैं। उनके होने पर अधीरता प्रतीत होगी जो नायक के लिये अनुचित है।

राजा—सत्यमित्थंभूत एवास्मि । तथा हि—

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धनात्
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥१०॥

हिन्दी अनुवाद—राजा—सचमुच ऐसा ही हो गया हूँ। देखो न।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (कथयति यत्)। **सत्यम्** यथार्थम्। इत्थंभूतः तथास्वरूप **एव अस्मि। तथा हि।**

हिन्दी-अनुवाद—हर रात हृदय के ताप से उष्ण और बाँहों पर रखी नेत्र-कोरों तक फैलने वाले आँसुओं से मलिन मणियों वाला, धनुष की डोर के चिह्नों के स्पर्श से अपरिचित कलाई से बार बार खिसक गया यह सोने का कंगन मैं पुनः पुनः ऊपर सरकाता हूँ।

अन्वय—निशि निशि अन्तस्तापात् अशिशिरैः भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिः अश्रुभिः विवर्णमणीकृतम् अनभिलुलितज्याघाताङ्कम् मणिबन्धनात् स्रस्तम् स्रस्तम् कनकवलयम् मया मुहुः प्रतिसार्यते।

संस्कृत-टीका—निशि निशि रात्रौ रात्रौ प्रतिरात्रमित्यर्थः। **अन्तस्तापात्** हृदयतापात्। **अशिशिरैः** न **शिशिरैः** शीतलैः (उष्णैः) **भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिः भुजयोः** बाह्वोः **न्यस्तः** स्थापितः **अपाङ्गः** नेत्रान्तः तत्र प्रसर्तुम् शीलम् येषाम् तैः। **अश्रुभिः** नेत्रजलैः। **विवर्णमणीकृतम् विवर्णाः** मलिनीकृताः **मणयः** रत्नानि यत्र तत् **विवर्णमणि** अविवर्णमणि **विवर्णमणि कृतम्** विहितम् अनभिलुलितज्याघाताङ्कम् अभिलुलितः स्पष्टः **ज्यायाः** धनुर्गुणस्य **अङ्कः** चिह्नम् येन तत् **अभिलुलितज्याघाताङ्कः**। **न अभिलुलितज्याघाताङ्कः**। **मणिबन्धनात्** भुजस्य पाणेः च संधेः (करमूलात्)। **स्रस्तम्** गलितम्। **स्रस्तम्** गलितम्। **कनकवलयम् कनकस्य** स्वर्णस्य **वलयम्** कङ्कणम्। **मया** अनेन जनेन। **मुहुः** वारम्-वारम्। **प्रतिसार्यते** ऊर्ध्वम् नीयते।

हिन्दी-व्याख्या—"निशि" पद, शकुन्तला-दर्शन से ले कर अब तक का समय बताता है। तकिया लगी है पर जागरण और विरह से उत्पन्न विकलता से लोटने-पोटने से वह हट जाती है और फिर बाँह ही तकिया बनती है। वलय स्वाभाविक रूप से शिथिल नहीं है, यह बताने के लिये कहा गया है कि वह बाँह के ऊपर धनुष की डोर के निशान से हटकर कसा गया है। "कनक" शीतलता द्योतित करता है। "वलय" में एक वचन बताता है कि विरह के कारण अलङ्कारों का त्याग कर दिया गया है। दुबलेपन से कंगन इतना ढीला हो गया है कि बार-बार खिसक जा रहा है। यहाँ रात उद्दीपन विभाव व अश्रुपात और कृशता अनुभाव पहले कहे गये चिन्तादि व्यभिचारी भावों के साथ विप्रलम्भ शृंगार की प्रतीति कराते हैं।

छन्द—हरिणी है जिसकी परिभाषा निम्न-लिखित है :—

नसमरसलागैः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु से जिसका प्रत्येक चरण (चतुर्थ भाग) बनता

प्रियंवदा—(विचिन्त्य) हला मअणलेहो से करीअदु । इमं देवप्पसादस्सावदेसेण सुमणोगोविदं करिअ से हत्थअं पावइस्सं [हला मदनलेखोऽस्य क्रियताम् । इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि] ।

अनसूया—रोअइ मे सुउमारो पओओ । किं वा सउंदला भणादि [रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः । किं वा शकुन्तला भणति] ।

शकुन्तला—को णिओओ विकप्पीअदि [[को नियोगो विकल्प्यते] ।

प्रियंवदा—तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिंतेहि दाव ललिअपदबंधणं [तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावल्ललितपदबन्धनम्] ।

है तथा जिसमें ६,४ व ७ अक्षरों पर यति होती है, वह छन्द हरिणी कहलाता है।

अलङ्कार—स्वभावोक्ति, काव्यलिङ्ग, अप्रस्तुत-प्रशंसा व पर्यायोक्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (सोचकर)—हे सखी, इस (राजर्षि) के लिये प्रेम पत्र की व्यवस्था की जाय । इस (पत्र) को भगवान् के प्रसाद के बहाने फूलों से छिपाकर उनके हाथ तक पहुँचा दूँगी ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा विचिन्त्य विचार्य (कथयति यत्) । हला हे सखि (अनसूये) । मदनलेखः मदनस्य कामस्य (प्रेम्णः) लेखः पत्रम् । अस्य (दुष्यन्तस्य कृते) । क्रियताम् विधीयताम् । इमम् एतम् (लेखम्) । देवप्रसादस्य देवस्य भगवतः प्रसादस्य निर्माल्यस्य । अपदेशेन मिषेण । सुमनोगोपितम् सुमनोभिः पुष्पैः गोपितम् आच्छन्नम् । कृत्वा विधाय । तस्य (दुष्यन्तस्य) हस्तम् करम् । प्रापयिष्यामि नेष्यामि ।

हिन्दी व्याख्या—कामपीडा का सूचक पत्र मदन-लेख कहलाता है । चिट्ठी के लिये लेख शब्द संस्कृत में प्रचलित है ।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया (यह) अत्यन्त कोमल प्रयोग मुझे पसन्द है । शकुन्तला क्या कहती है ?

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) । रोचते अभिमतम् । मे मम । सुकुमारः अत्यन्तकोमलः । प्रयोगः उपक्रमः । किम् । वा (वाक्यालङ्कारे) शकुन्तला भणति वदति ।

हिन्दी-व्याख्या—"कहती है" का अर्थ है "उसका विचार है ! राजी है या नहीं ?"

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—क्या (लिखने का) आदेश सोचा जा रहा है ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) कः नियोगः आज्ञा (लेखनस्य) विकल्प्यते विचार्यते ।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—जरा पहले अपने को सम्मुख प्रस्तुत करते (परिचय देते) हुये सुन्दर पद-रचना सोचो ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) तेन तस्मात् कारणात् । हि (वाक्यालङ्कारे) । आत्मनः स्वस्य । उपन्यासपूर्वम् उपन्यासः वाङ्मुखम् (परिचयः) पूर्वः प्रथमः यत्र तत् यथा

शकुन्तला—हला चिंतेमि अहं । अवहीरणभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं [हला चिन्तयाम्यहम् ।अवधीरणाभीरु पुनर्वेपते मे हृदयम्]।

राजा—(सहर्षम्) अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम् ।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥ ११ ॥

स्यात् तथा । **चिन्तय** विचारय । **तावत्** सर्वप्रथमम् । **ललितपदबन्धनम् पदस्य** शब्दस्य **बन्धनम्** रचना **ललितम्** सुन्दरम् च तत् **पदबन्धनम्** च ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(हे) सखी, मैं सोच रही हूँ पर (दुष्यन्त द्वारा) तिरस्कार से डरा हुआ मेरा दिल काँपता है ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला—(कथयति यत्)। **हला** (हे) सखि । **चिन्तयामि** विचारयामि **अहम्** अयम् जनः **अवधीरणाभीरु अवधीरणया** तिरस्कारेण **भीरु** कातरम् । **पुनः** तु । **वेपते** कम्पते । **मे** मम । **हृदयम्** अन्तरम् ।

हिन्दी-व्याख्या—मैं चिट्ठी भेजूँ और दुष्यन्त उसकी उपेक्षा करदें तो यह तिरस्कार की स्थिति वर्तमान (मृत्यु की ओर ले जाने वाली) दशा से बुरी होगी ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(आनन्द के साथ) (अरी) डरपोक जिससे तिरस्कार की शंका करती हो तुम्हारे मिलन के लिये उत्सुक वह जन यह (सामने) स्थित है । प्रार्थी सम्पत्ति को पाये या न पाये; सम्पत्ति द्वारा चाहा गया व्यक्ति भला कैसे दुर्लभ हो सकता है ?

अन्वयः—भीरु यतः अवधीरणाम् विशङ्कसे सः ते संगमोत्सुकः अयम् तिष्ठति । प्रार्थयिता श्रियम् लभेत वा न वा । श्रिया ईप्सितः कथम् दुरापः भवेत् ।

संस्कृत-टीका—भीरु भीते ! **यतः** यस्मात् जनात् । **अवधीरणाम्** तिरस्कारम् । **विशङ्कसे** आशङ्कसे । **सः** (दुष्यन्तः)। **ते** तव । **संगमोत्सुकः सङ्गमे** मिलने **उत्सुकः** उत्कण्ठितः **अयम्** पुरस्तात् । **तिष्ठति** विद्यते । **प्रार्थयिता** प्रार्थी । **श्रियम्** लक्ष्मीम् । **लभेत** प्राप्नुयात् । **वा । न । वा । श्रिया** लक्ष्म्या । **ईप्सितः** काङ्क्षितः (जनः)। **कथम्** केन प्रकारेण **दुरापः** दुर्लभः **भवेत्** स्यात् ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला भीरु है, अतः उसे तिरस्कार की संभावना हो रही है भीरु को भीरु कहने से उसे सान्त्वना मिलती है और डर जाता रहता है । उत्सुक (प्रार्थी) मैं हूँ और तुम काम्य, अतः तिरस्कार मेरा संभव है न कि तुम्हारा, जैसे प्रार्थी का तिरस्कार काम्य-श्री (संपत्ति) कर सकती है—नहीं मिल सकती, पर यदि श्री ही किसी को अनुगृहीत करना चाहे तो ऐसा कौन होगा जो उसके अनुग्रह का अनादर करे । आशय यह है कि शकुन्तला को दुष्यन्त श्री मानते हैं और स्वयं को प्रार्थी । ऐसा ही भाव कुमार संभव के सर्ग ५।४५ में आया है जहाँ कहा गया है कि

सख्यौ—अत्तगुणावमाणिणि ! को दाणिं सरीरणिव्वावत्तिअं सारदिअ ओसिणि पडंतेण वारेदि [आत्मगुणावमानिनि ! क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति] ।

शकुन्तला—(सस्मितम्) **णिओइआ दाणिं म्हि** [नियोजितेदानीमस्मि], (इत्युपविष्टा चिन्तयति)

रत्न खोजता नहीं, उसे खोजा जाता है; न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ॥ हिन्दी में इससे मिलती-जुलती लोकोक्ति है: प्यासा कुंयें के पास जाता है; कुआँ प्यासे के पास नहीं। दुष्यन्त ने पास पहुँच कर अपना प्रार्थी होना सिद्ध कर दिया है और प्रगट होने की बाट देख रहे हैं। यत् से शुरू होने वाला वाक्य उद्देश्य होता है और तत् से शुरू होने वाला विधेय, अतः पहले और दूसरे चरण को बदल कर लिखना चाहिये था। "श्री" पद को दो बार लिखा गया है; दूसरी बार सर्वनाम का प्रयोग होना उचित था। इसी प्रकार तीसरे चरण में "लभ्" का ही प्रयोग कर चौथे में आप् धातु ("ईप्सितः" में) प्रयोग न कर "लभ्" का ही प्रयोग करना चाहिये था। श्लोक के उत्तरार्द्ध में सामान्य बात कही गई है और "श्री" पद सम्पत्ति का वाचक होने से सामान्य है, विशेष (लक्ष्मी) का वाचक नहीं। पूर्वार्द्ध में कहीं विशेष बात का उत्तरार्ध को सामान्य बात से समर्थन होता है।

छन्द—वंशस्थ। १।१८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास, श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास व छेकानुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों सखियाँ—अपने गुणों का तिरस्कार करने वाली ! कौन, व्यक्ति शरीर को सुख देने वाली शरद् चाँदनी को आंचल से रोकता है ?

संस्कृत टीका—सख्यौ (अनसूया प्रियंवदा च) (कथयतः यत्) (हे) **आत्मगुणावमानिनि**। **आत्मनः** स्वस्य गुणान् अवमानयति इति (सम्बुद्धौ)। **कः** (जनः)। **इदानीम्** (वाक्यालङ्कारे) **शरीरनिर्वापयित्रीम् शरीरस्य** देहस्य **निर्वापयित्रीम्** सुखदात्रीम्। **शारदीम्** शरत्कालसम्बन्धिनीम् **ज्योत्स्नाम्** चन्द्रिकाम्। **पटान्तेन पटस्य** वस्त्रस्य। **अन्तेन** प्रान्तेन। **वारयति**। निवारयति (न कोऽपि)।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला को अपने गुणों की महत्ता न जानकर उनका तिरस्कार करने वाली कहा गया है। आशय यह है कि तुम्हारे पास ऐसा गुण है कि ईप्सित व्यक्ति अपने आप खिंचा चला आयेगा अतः अवधारणा की शंका नहीं करनी चाहिये। शकुन्तला को सान्त्वना देने के लिए यहाँ दृष्टान्त दिया गया है। "शारदी" से अत्यन्त आह्लादकारी होना ध्वनित होता है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (मुस्कराकर)—(अब) आज्ञापालक हूँ (यह कह कर बैठी-बैठी सोचती है)।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (सस्मितम् स्मितेन विहासेन **सह** वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा।) **नियोजिता** आज्ञानुवर्तिनी। **इदानीम्** अधुना। **अस्मि**। **इति** एवम् उक्त्वा **उपविष्टा** (सती) । **चिन्तयति** विचारयति।

राजा—स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि । यतः—

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्या ।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ॥ १२ ॥

हिन्दी-व्याख्या—आज्ञा-पालक पत्र लिखने के लिये है। मैं खुशी खुशी आज्ञा पालन करने को तैयार हूँ; दबाव से नहीं, यह दिखाने के लिये शकुन्तला मुस्कराती है। तारीफ जरूरत से ज्यादा होने पर उसे हँसी में उड़ाने के लिए भी मुस्कराया जाता है। पत्र की विषय-वस्तु सोची जा रही है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—जो प्रिया को निर्निमेष दृष्टि से देख रहा हूँ वह निश्चय ही उचित है, क्योंकि

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **स्थाने** उचितम्। **खलु** निश्चयेन। **विस्मृतनिमेषेण** विगता **स्मृतिः** स्मरणम् यस्य तादृशः। **विस्मृतिः** (विस्मृतः) **निमेषः** यस्य तेन **चक्षुषा** दृष्ट्या। **प्रियाम्** दयिनाम् (शकुन्तलाम्) **अवलोकयामि** पश्यामि। **यतः**।

हिन्दी-व्याख्या—प्रिया से आशय है स्त्रीमात्र को नहीं, बल्कि अपने से संबद्ध स्त्री को। जिसे पहले कई बार देखा जा चुका है, उसे फिर देखना व्यर्थ है, इसका समाधान करने के लिये कहा गया है कि इस समय निम्नलिखित विशेष दर्शनीयता होने से देखना सर्वथा उचित है। "स्थाने" अव्यय का "उचित" अर्थ में प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

हिन्दी-अनुवाद—शब्दों की रचना करती हुई इस (शकुन्तला) का मुख जहाँ लता तुल्य एक भौंह उठाई गई है रोमाञ्चित गाल के द्वारा मेरे प्रति प्रेम प्रकट करता है।

अन्वय—पदानि रचयन्त्याः उन्नमितैकभ्रूलतम् अस्याः आननम् कण्टकितेन कपोलेन मयि अनुरागम् प्रथयति।

संस्कृत-टीका—पदानि शब्दान्। **रचयन्त्याः** (प्रतिभया) चिन्तयन्त्याः। **उन्नमितैकभ्रूलतम् उन्नमिता** उत्थापिता **एकभ्रूलता** यत्र तादृशम् एका च असौ **भ्रूलता** च **भ्रूः लता** वल्लरी इव। **अस्याः** एतस्या (पुरः स्थितायाः शकुन्तलायाः)। **आननम्** मुखम्। **कण्टकितेन** पुलकितेन। **कपोलेन** गण्डपाल्या। **मयि** माम् प्रति। **अनुरागम्** प्रम। **प्रथयति** प्रकटयति।

हिंदी-व्याख्या—ऊपर जो देखना उचित बताया है, उसका कारण है कि ऐसी स्थिति में शकुन्तला को पहले कभी नहीं देखा है। अभी पत्र लिख नहीं रही है, सोच रही है कि यह पद लिखूँ या वह। "कपोल" में एकवचन यह सूचित करता है कि वह कपोल जिस ओर की भौंह उठ गई है। "मयि" अपनी सौभाग्यशीलता व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त है। अनुराग रति की छह अवस्थाओं में से अंतिम माना गया है।

अंकुरपल्लवकलिकाप्रसूनफलभोगभागियं क्रमशः।
प्रेमा मानः प्रणयः स्नेहो रागोऽनुराग इत्युक्तः।—सुधाकर

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—स्वाभावोक्ति, अर्थापत्ति, अनुमान, (सन्देह) संकर व उपमा।

शकुन्तला—हला चिंतिदं मए गीदवत्थु। ण खु सण्णिहिदाणि उण लेहण साहणाणि [हला चिन्तितं मया गीतवस्तु। न खलु संनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि]।

प्रियंवदा—इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि [एतस्मिञ्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु]।

शकुन्तला—(यथोक्तं रूपयित्वा) हला सुणुह दाणिं संगदत्थं ण वे त्ति, [हला शृणुतमिदानीं संगतार्थं न वेति]।

उभे—अवहिद म्ह [अवहिते स्वः]।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(हे) सखो, मैंने गीत को विषय वस्तु सोच ली लेकिन लिखने के साधन तो उपस्थित हो नहीं हैं।

संस्कृत टीका—शकुन्तला—(कथयति यत्)। हला (हे) सखि। चिन्तितम् विचारितम्। मया अनेन जनेन। गीतवस्तु गीतस्य गीतेः वस्तु सामग्री। न। खलु। संनिहितानि उपस्थितानि। पुनः किन्तु। लेखनसाधनानि लेखनस्य अङ्कनस्य साधनानि अपेक्षितवस्तूनि।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—तोते के पेट के सदृश अत्यन्त कोमल कमलिनी के इस पत्ते पर नाखून से (गीतवस्तु के) अक्षर लिख दो।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयथि यत्)। एतस्मिन् अस्मिन् (पुरः स्थिते)। शुकोदर-सुकुमारे शुकस्य कीरस्य उदरम् तद्वत् सुकुमारे अतिकोमले। नलिनीपत्रे नलिन्याः कमलिन्याः पत्रे दले। नखैः नखरैः। निक्षिप्तवर्णम् निक्षिप्ताः उत्कीर्णाः वर्णाः अक्षराणि यत्र तत् (गीत-वस्तु) कुरु विधेहि।

हिन्दी-व्याख्या—तोते के पेट की उपमा आश्रम-वासी के लिये नितान्त स्वाभाविक है; साहित्य में ऐसी उपमा का चलन नहीं है। यहाँ मूल रचना प्राकृत में होने से ठीक है "निक्षिप्तवर्णम्" का क्रिया विशेषण की तरह प्रयोग विधेय को दबा देता है जिससे अच्छा नहीं है; यह भी प्राकृत-रचना के कारण है; इसे "लेख" का विशेषण मानने पर रचना ठीक हो जायेगी।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (जैसा कहा गया है, वैसा अभिनय कर) (हे) सखियो, अब सुनो; (गीत-वस्तु का) अर्थ ठीक है या नहीं।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला। यथोक्तम् पूर्वोक्तम्। रूपयित्वा नाटयित्वा। हला (हे) सख्यौ। शृणुतम् आकर्णयतम्। इदानीम् अधुना (गीत-वस्तु) संगतार्थम् संगतः अविरुद्धः अर्थः यस्य तादृशम् न। वा। इति।

हिन्दी-व्याख्या—"न वा" "वा न वा" का संक्षिप्त रूप है; संस्कृत में ये दोनों प्रयोग "या नहीं" के अर्थ में आते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—(हम दोनों) सावधान हैं (सुनाओ)।

संस्कृत-टीका—उभे द्वे अपि (सख्यौ) (कथयतः यत्)। (आवाम्) अवहिते सावधाने। स्वः।

शकुन्तला—(वाचयति)।

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवापि रत्तिम्मि ।
णिग्घिण तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं ॥ १३ ॥
[तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि ।
निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि ॥]

राजा—(सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ॥

हिन्दी-अनुवाद—(हे) निर्दय, तुम्हारा दिल (का हाल) नहीं जानती; मेरा (दिल) तो दिन-रात कामदेव बुरी तरह तपा रहा है। अङ्गों के मनोरथ का विषय तुम हो गये हो।

अन्वय—निर्घृण तव हृदयम् न जाने। मम (हृदयम्) पुनः कामः दिवा अपि रात्रौ अपि बलीयः तपति। अङ्गानि त्वयि वृत्तमनोरथानि।

संस्कृत टीका—(हे) **निर्घृण निर्गता** निष्क्रान्ताः **घृणा** दया यस्मात् तत्सम्बुद्धौ, **तव** भवतः (दुष्यन्तस्य) **हृदयम्** अन्तरम् (अन्तर्वर्त्तिभावम्)। **न**। **जाने** जानामि। **मम** अस्य जनस्य (हृदयम्) **पुनः** तु। **कामः** मदनः। **दिवा** अहनि। **अपि** च। **रात्रौ** निशायाम्। **अपि** च **बलीयः** अत्यर्थम्। **तपति** तापयति। **अङ्गानि** अवयवाः। **त्वयि तव** विषये। **वृत्तमनोरथानि वृत्तः** जातः **मनोरथः** लालसा येषाम् तादृशानि।

हिन्दी-व्याख्या—पहले यह कहकर कि तुम्हारा हृदय नहीं जानती, फिर यह सोचकर कि वह हृदय कठोर है, दुःख से शकुन्तला परुष भाषण करती हुई निर्दय कहती है। "निर्घृण" संबोधन यह भी द्योतित करता है कि शकुन्तला मानती है कि मेरा हृदय काम द्वारा तपाया गया है, दुष्यन्त का नहीं, अन्यथा वे विवश होकर आते या बुलाते। तुम्हारे ही लिये मदन ताप भोग रही हूँ पर तो भी नहीं बचाते, यह "निर्घृण" कहने का कारण है। "अङ्गों के मनोरथ का विषय तुम हो" का आशय है कि मेरा प्रत्येक अंग तुमसे मिलना चाहता है और तुममें ही लगा है। भुजायें आलिङ्गन, नेत्र दर्शन कान वचनश्रवण, नाक मुख की सुगन्ध पाना और इसी तरह अन्य अङ्ग तुमसे संबद्ध वस्तु पाना चाहते हैं। "तपति" का कर्म हृदय को न बनाकर अंगों को बनाकर सामान्यतः अर्थ किया जाता है।

छन्द—आर्या (१.२ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—अर्थापत्ति, अनुमान, रूपक, (प्रश्न) काकु, समासोक्ति, प्रत्यनीक, श्लेष व अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(एकाएक पास पहुँचकर) (हे) दुर्बल अंगों वाली, कामदेव तुम्हें हमेशा तपाता है पर मुझे तो (वह) जला ही डालता है। दिन जिस प्रकार चन्द्रमा को मलिन कर देता है उस प्रकार कुमुदिनी को निश्चय ही मलिन नहीं करता।

सख्यौ—(सहर्षम्) साअदं अविलंबिणो मणोरहस्स [स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य]। (शकुन्तलाभ्युत्थातुमिच्छति)।

राजा—अलमलमायासेन।

अन्वय—तनुगात्रि मदनः त्वाम् तपति माम् पुनः अनिशम् दहति एव। दिवसः यथा शशाङ्कम् ग्लपयति तथा कुमुद्वतीम् न हि।

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः)। **सहसा** अकस्मात्। **उपसृत्य** उपगम्य (कथयति यत्)। (हे) **तनुगात्रि** तनूनि कृशानि **गात्राणि** अङ्गानि यस्याः तत्सम्बुद्धौ। **मदनः** कामः। **त्वाम्** भवतीम्। **तपति** तापयति। **माम्** इमम् जनम् (दुष्यन्तम्) **पुनः** तु **अनिशम्** दिवारात्रम्। **दहति** ज्वलयति। **एव**। **दिवसः** अहः। **यथा** येन प्रकारेण। **शशाङ्कम्** चन्द्रम्। **ग्लपयति** मलिनम् करोति। **तथा** तेन प्रकारेण। **कुमुद्वतीम्** कुमुदिनीम्। **न**। **हि** निश्चयेन।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला के पद्य में जो भोलापन और स्वाभाविकता है, उसको शतांश भी दुष्यन्त के इस पद्य में नहीं आ सका है। अपनी पीड़ा अधिक दिखाने के लिये नगर की कृत्रिमता से भरा हुआ यह कथन औपचारिकता पूर्ण करने जैसा है। अपने को चन्द्रमा और शकुन्तला को कुमुदिनी कहकर राजा शकुन्तला को अपनी प्रिया के रूप में वर्णित करते हैं। नायिका को तप्त बताते और नायक को उपेक्षा करने पर ऐसा ही एक पद्य विक्रमोर्वशीय २।१६ में आया है—

> पर्युत्सुकां कथयति प्रियदर्शनां तामार्त्तं न पश्यसि पुरूरवसं तदर्थे।
> साधारणोऽयमुभयोः प्रणयः स्मरस्य तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम्॥

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, पुनरुक्तवदाभास, दृष्टान्त, अनुप्रास, विरोधाभास व अतिशयोक्ति।

हिन्दी-अनुवाद—**दोनों सखियाँ**—(आनन्द के साथ) देर न करने वाले मनोरथ (पूर्ति) का स्वागत है। (शकुन्तला आदर से खड़ी होना चाहती है)

संस्कृत-टीका—**सख्यौ** आल्यौ (**सहर्षम्** हर्षेण आनन्देन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा) (कथयतः यत्)। **स्वागतम्** अभिनन्दनम्। **अविलम्बिनः** न विलम्बिनः व्यतीतकालस्य। **मनोरथस्य** अभिलाषपूर्त्तेः (मनोरथरूपस्य तव)। **शकुन्तला**। **अभ्युत्थातुम्** उत्थातुम्। **इच्छति** वाञ्छति।

अलङ्कार—अतिशयोक्ति।

हिन्दी-अनुवाद—**राजा**—न (न !) कष्ट न करें।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **अलम्** कृतम्। **अलम्** कृतम्। **आयासेन** क्लेशेन।

हिन्दी-व्याख्या—"अलम्" का दो बार प्रयोग, अत्यधिक आदर ध्वनित करता है। क्लेश. शकुन्तला को उठने में कष्ट होगा, इसलिये अलम् के योग में तृतीया होती है।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तविसभङ्गसुरभीणि ।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥ १५ ॥

अनसूया—इदो सिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो [इतः शिलातलकदेशमलंकरोतु वयस्यः) । (राजोपविशति शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति)

प्रियवदा—दुवेणं णु वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो । सहीसिणेहो माँ पुणरुत्तवादिणिं करेदि [द्वयोर्नंनु युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः । सखीस्नेहो माँ पुनरुक्तवादिनीं करोति] ।

हिन्दी-अनुवाद—फूल की शय्या जिनसे चिपटी हुई है, शीघ्र मुरझा गये कमल-खण्डों के कारण जो सुरभित हैं तथा जिनका संताप अत्यधिक है वे तुम्हारे अङ्ग लोकाचार के योग्य नहीं हैं ।

संस्कृत-टीका—**संदष्टकुसुमशयनानि कुसुमानाम्** पुष्पाणाम् **शयनम्** शय्या **संदष्टम्** लग्नम् **कसुमशयनम्** येषु तादृशानि । **आशुक्लान्तविसभङ्गसुरभीणि आशु** शीघ्रम् **क्लान्तः** मलिनः **विसस्य** कमलस्य **भङ्गः** खण्डः तेन **सुरभीणि** सुगन्धीनि । **गुरुपरितापानि गुरुः** महान् **परितापः** सन्तापः येषाम् तानि । **ते** तव **गात्राणि** अङ्गानि । **उपचारं** लोकव्यवहारम् (शिष्टाचार-मर्यादाम्) । **न अर्हन्ति** अपेक्षन्ते ।

हिन्दी-व्याख्या—अङ्गों में फूल ही नहीं चिपके हैं, फूलों की शय्या ही चिपकी है, अतः उठने से उसका बोझ कष्ट देगा । ताप इतना है कि कमलखण्ड शीघ्र मुरझा गया, अतः अङ्ग उठने-योग्य नहीं हैं । कष्ट बहुत है । उठकर स्वागत करने का लोकाचार निभाना सामान्य अवस्था में ठीक है, ऐसी संकट की घड़ी में नहीं । कमल संज्ञा है, वह मुरझा सकता है, उसका खण्ड तो भंग होने की क्रिया है, वह कैसे मुरझा सकता है । इस शंका का परिहार यह है कि क्रिया से तद्वान् (उससे युक्त) पदार्थ (कमल) लक्षित होता है ।

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य)

अलङ्कार— ान्यलिङ्ग, परिकर, अनुप्रास व उपमा ।

हिन्दी-अनुवाद—**अनसूया**—इधर पत्थर की पटिया का एक भाग मित्रवर अलंकृत करें । (राजा बैठते हैं; शकुन्तला लज्जा से भर जाती है ।)

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्) । **इतः** अस्याम् दिशि । **शिलातलैकदेशम्** **शिलातलस्य** प्रतरखण्डस्य **एकदेशम् एकः** च असौ **देशः** भागः तम् । **अलंकरोतु** भूषयतु । **वयस्यः** सखा । **राजा** नृपः (दुष्यन्तः) **उपविशति** । **शकुन्तला** । **सलज्जा** लज्जया त्रपया सह वर्त्तमाना । **तिष्ठति** विद्यते ।

हिन्दी-अनुवाद—**प्रियंवदा**—आप दोनों का पारस्परिक प्रेम प्रत्यक्ष है । सहेली के प्रति स्नेह मुझसे पुनरुक्ति कराता है ।

संस्कृत टीका-प्रियंवदा—(कथयति यत्) **द्वयोः** उभयोः । **ननु** भोः । **युवयोः** भवतोः । **अन्योन्यानुरागः अन्योन्यस्य** परस्परस्य **अनुरागः** प्रेम । **प्रत्यक्षः** अपरोक्षः । **सखीस्नेहः सख्याः** (शकुन्तलायाः) **स्नेहः** प्रेम **माम्** इमाम् (प्रियंवदाम्) **पुनरुक्तवादिनीम्** आवृत्तिव्यापृताम् । **करोति** विदधाति ।

राजा—भद्रे नैतत्परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

प्रियंवदा—आवण्णस्स विसअणिवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति एसो वो धम्मो [आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येव युष्माकं धर्मः]।

राजा—नास्मात्परम्।

प्रियंवदा—तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इमं अवत्थतरं भअणेण आरोविदा। ता अरुहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलंबिदुं [तेन हीयमावयोः प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता तदर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितं तस्या अवलम्बितुम्]।

हिन्दी अनुवाद—(हे) कल्याणी, यह (कथन बीच में) छोड़ना उचित नहीं है। जो कहना चाहा गया है। वह अनकहा रह जाने पर निश्चय ही पछतावा देता है।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। न। एतत् इदम् (कथनम्)। परिहार्यम् (मध्ये एव) त्यागयोग्यम्। विवक्षितम् यस्य कथनम् इष्टम्। हि निश्चयेन। अनुक्तम् न उक्तम् कथितम् सत्। अनुतापम् पश्चात्तापम्। जनयति सूते।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर प्रियवदा ने भूमिका बनाई थी पर कुछ कह न सकी थी कि राजा ने प्रोत्साहित करने के लिये "जो कहना है, वह कह डालना ही अच्छा है, नहीं तो कष्ट होता है" कहा है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—जो देश-वासी विपत्तिग्रस्त है उसकी पीड़ा हरना राजा का कर्त्तव्य है। यह आपका धर्म है।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा—(कथयति यत्)। आपन्नस्य विपत्तिग्रस्तस्य विषयनिवासिनः देशवासिनः। जनस्य व्यक्तेः। आर्तिहरेण पीडाहारकेण राज्ञा नृपेण। भवितव्यम् भाव्यम्। इति पूर्वोक्तः। एषः अयम् युष्माकम् भवताम् धर्मः कर्त्तव्यम्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—इससे अधिक नहीं ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। न। अस्मात् पूर्वोक्तात्। परम् पश्चात्।

हिन्दी-व्याख्या—कथन का प्रवाह चालू रखने के लिये बीच-बीच में हामी भरी जाती है या छोटे-छोटे प्रश्न कर दिये जाते हैं। यहाँ राजा ऐसा ही एक प्रश्न कर रहे हैं। यह क्रिया वक्ता की बात के प्रति रुचि लेना प्रदर्शित करती है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (तो यह कहना है कि) हम दोनों की इस प्यारी सहेली को तुम्हें लक्ष्य कर श्रीमान् कामदेव ने इस बदली हालत में पहुँचा दिया है, इसलिये कृपा कर उसे जीवन धारण कराना आपका कर्त्तव्य है।

संस्कृत टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। तेन हि (वाक्यालङ्कारे)। इयम् एषा। आवयोः नौ। प्रियसखी प्रिया इष्टा च सा सखी आली (शकुन्तला) च। त्वाम् भवन्तम्। उद्दिश्य विषयीकृत्य। इदम् एतत् (दृश्यमानम्)। अवस्थान्तरम् अन्याम् (सर्वथा भिन्नाम्)

राजा—भद्रे ! साधारणोऽयं प्रणयः । सर्वथानुगृहीतोऽस्मि ।

शकुन्तला—(प्रियंवदामवलोक्य) हला किं अन्तेउरविरहपज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण [हला किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन] ।

राजा—इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम ।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥ १६ ॥

अवस्थाम् दशाम् । भगवता श्रीमता । मदनेन कामदेवेन । आरोपिता प्रापिता । तत् तर्हि अर्हसि । अभ्युपपत्त्या अनुग्रहेण । जीवितम् जीवनम् । तस्याः (शकुन्तलायाः) । अवलम्बितुम् धारयितुम् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (हे । कल्याणी, यह प्रार्थना (तो) उभयनिष्ठा (दोनों पक्षों में पाई जाने वाली) है । मैं हर तरह से कृत-कृत्य हूँ ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) (हे) भद्रे कल्याणि ! **साधारणः** सामान्यः (उभयोः पक्षयोः शकुन्तलादुष्यन्तयोः) **अयम्** पूर्वोक्तः (प्रियंवदाकथितः) **प्रणयः** प्रार्थना । **सर्वथा** सर्वेण प्रकारेण (पूर्णतः) **अनुगृहीतः** कृतकृत्यः **अस्मि** ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार शकुन्तला के लिये आप प्रार्थना करती हैं, उसी प्रकार मैं भी प्रार्थना करता हूँ । मुझे भी शकुन्तला की कृपा की आवश्यकता है जिस प्रकार वह मेरी कृपा चाहती है । दो की तुलना में जो-जो बातें मिलती-जुलती होती हैं, वे साधारण और जो नहीं मिलती-जुलती वे विशेष कहलाती हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (प्रियंवदा को देखकर)–(हे) सखी, रनिवास के वियोग से उत्कंठित राजर्षि पर दबाव डालने से क्या लाभ ?

संस्कृत टीका—**शकुन्तला** । **प्रियंवदाम्** । **अवलोक्य** दृष्ट्वा (कथयति यत्), **हला** हे) सखि । **किम्** कः लाभः । **अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य** **अन्तःपुरस्य** राज्ञीनाम् **विरहेण** वियोगेन **पर्युत्सुकस्य** उत्कण्ठितस्य । **राजर्षेः** (दुष्यन्तस्य) । **उपरोधेन** विवशीकरणेन ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ शकुन्तला राजा को मुखर बनाने के लिये यह कहकर उत्तेजित करती है कि राजा के अनेक रानियाँ हैं; मेरी-जैसी सामान्य नारी के लिये उन पर दबाव डालना ठीक नहीं है । यह भी ध्वनित होता है कि यह हमारा सौभाग्य है कि इतने महान् पुरुष ने दर्शन दिया है; अब उन्हें अधिक कष्ट न दिया जाय ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(हे) हृदय में उपस्थित रहने वाली, मदभरी दृष्टि वाली (शकुन्तला), मेरे इस हृदय को जो अन्य निष्ठ नहीं है यदि विपरीत समझोगी तो कामदेव के बाणों से मारा गया मैं पुनः मारा गया ।

अन्वय—हृदयसन्निहिते मदिरेक्षणे यदि अनन्यपरायणम् इदम् मम हृदयम् अन्यथा समर्थयसे (तदा) मदनबाणहतः पुनः हतः अस्मि ।

संस्कृत-टीका—**हृदयसन्निहिते** **हृदये** अन्तरे **सन्निहिते** विद्यमाने (सम्बुद्धौ) । **मदिरेक्षणे** **मदिरे** मत्तकारिणी **ईक्षणे** नयने यस्याः तत्सम्बुद्धौ । **यदि** चेत् । **अनन्यपरायणम्** **अन्या** अपरा

अनसूया—वअस्स बहुवल्लहा राआणो सुणीअंति। जह णो पिअसही बंधुअण-सो अणिज्जा ण होइ तह णिव्वत्तेहि [वयस्य बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय]।

राजा—भद्रे किं बहुना—

(स्त्री) **परायणम्** आश्रयः यस्य सः **अन्यपरायणः न अन्यपरायणः अनन्यपरायणः** तम्। **इदम्** एतत् (पुरोवर्त्ति)। **मम** मे। **हृदयम्** अन्तरम्। **अन्यथा** विपरीतत्वेन (अन्यपरायणम्)। **समर्थयसे** गमयसि (तदा)। **मदनबाणहतः मदनस्य** कामस्य **बाणेन** शरेण **हतः** मारितः (अहम्) **पुनः** भूयः **हतः** मारितः। **अस्मि**।

हिन्दी व्याख्या--जन्म से जिसका हाथ रहा है, उससे भी अलग होकर पहली मुलाकात से ही तुम्हारा हो गया हूँ। हृदय ने मुझे भी छोड़ कर तुम्हारी शरण ली है। "अन" के द्वारा जो निषेध है, वह एक स्थान पर दूसरों का निषेध करता है तो दूसरे स्थान पर शब्द की शक्ति से व्यञ्जना के द्वारा "शकुन्तलानिष्ठा" अनिषेध (विधि) अर्थ तक जाकर रुकता है। जो उपस्थित है, वह सारा हाल जानता है; तुमसे तो कुछ छिपा नहीं होना चाहिये। क्योंकि मैंने तुम्हें हृदय में जगह देकर प्रेम का साक्षी बनाया है; फिर उलाहना क्यों देती हो और शंका क्यों करती हो। भरत ने "मदिरा" दृष्टि की सुंदर व्याख्या की है।

आघूर्णमानमध्या या क्षामा चाञ्चिततारका।
दृष्टिर्विकसितापाङ्गा मदिरा तरुणे मदे॥

काम के बाण से पहले ही मृत हूँ; यदि तुमने विपरीत समझकर चोट पहुँचाई तो यह मरे को मारने जैसा होगा।

छन्द—द्रुतविलम्बित, जिसकी परिभाषा निम्नलिखित है—

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ। नगण दो भगणों और रगण से जिसका एक चरण बने वह द्रुतविलम्बित है।

अलङ्कार—उपमा व लाटानुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—मित्रवर, सुनते हैं राजाओं की प्रियायें बहुत होती हैं। (अतः) ऐसा निबाहें कि हम दोनों की प्यारी सहेली बन्धु बान्धवों की शोचनीय (चिंता का विषय) न हो।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) **वयस्य** मित्र। **बहुवल्लभाः बहवः** प्रचुरा वल्लभाः प्रियाः (पत्न्यः) येषाम् तादृशाः। **राजानः** नृपाः। **श्रूयन्ते** आकर्ण्यन्ते। **यथा** येन प्रकारेण। **नौ** आवयोः। प्रियसखी **प्रिया** वल्लभा च सा **सखी** आली (शकुन्तला) च। **बन्धुजन-शोचनीया बन्धुजनैः** आप्तसमाजेन **शोचनीया** चिन्ताविषयः। **न**। **भवति** स्यात् **तथा** तेन प्रकारेण। **निर्वर्तय** निर्वाहय।

हिन्दी अनुवाद—राजा (हे) कल्याणि, अधिक क्या कहूँ ?

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥ १७ ।

उभे—णिव्वुदम्ह [निर्वृते स्वः]।

प्रियंवदा—(सदृष्टिक्षेपम्) अणसूए जह एसो इदो दिण्णदिट्ठी उस्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि ! एहि सजोएम णं [अनसूये यथैष इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति । एहि संयोजयाव एनम्]। (इत्युभे प्रस्थिते)

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। (हे) भद्रे कल्याणि। किम् कः लाभः। बहुना अधिकेन (उक्तेन)।

हिन्दी-अनुवाद—पत्नियों की बहुलता होने पर भी मेरे वंश की प्रतिष्ठायें (केवल) दो हैं (एक) पृथ्वी जिसका वस्त्र (अवधि) समुद्र है और (दूसरी) आप दोनों की यह सहेली।

अन्वय—परिग्रहबहुत्वेऽपि मे कुलस्य प्रतिष्ठे द्वे, समुद्रवसना उर्वी च इयम् युवयोः सखी च।

संस्कृत-टीका—परिग्रहाणाम् पत्नीनाम् बहुत्वे अधिकतायाम् (सत्याम्) अपि। मे मम। कुलस्य वंशस्य। प्रतिष्ठे गौरवे। द्वे उभौ। तत्र (प्रथमा) समुद्रवसना समुद्रः अम्बुधिः वसनम् पटः यस्याः सा (समुद्रावधिः) उर्वी भूमिः। च इयम् एषा (पुरःस्था)। युवयोः वाम्। सखी आली (शकुन्तला) च।

हिन्दी-व्याख्या—प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठाहेतु या प्रतिष्ठाकारक अर्थ निकलेगा। "समुद्रवसना" पद सूचित करता है कि इस कुल में परम्परा से चारों समुद्र सीमा रहे हैं सारे देश अधीन रहे हैं। अपने सतीत्व आदि गुणों तथा वंश चलाने के लिये चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करने की संभावना से शकुन्तला को प्रतिष्ठा (स्थिति) का हेतु कहा गया है। पृथ्वी और शकुन्तला ही प्रतिष्ठा-सूत पत्नियां होंगी; केवल यही दो सौतें होंगी। इससे यह स्पष्ट है कि दुष्यन्त शकुन्तला को पटरानी बनायेंगे और उसे सौत का दुःख बिलकुल न होगा। केवल पृथ्वी सौत होगी का अर्थ है सौत कोई न होगी।

छन्द—अनुष्टुप् (१।५ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—रूपक व अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—(हम दोनों) सुखी हुई।

संस्कृत-टीका—उभे द्वे अपि (सख्यौ अनसूयां प्रियंवदा च युगपत् कथयतः यत्)। निर्वृते सुखिते (आवाम्)। स्वः भवावः।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा (दृष्टि डालकर)—(हे) अनसूया, (चूंकि) यह छौना इधर दृष्टि लगाये उत्कण्ठ होकर मां को ढूंढ़ रहा है, अतः आओ इसे मिला दें। (यह कथन समाप्त होने पर दोनों चल देती हैं)

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा। सदृष्टिक्षेपम् दृष्टयाः ईक्षणस्य क्षेपेण नियोजनेन सह वर्त्तमानम् यथा स्यात् तथा। (हे) अनसूया (सम्बुद्धौ)। यथा यतः एषः अयम् (निकटवर्ती)। इतः इमाम्

शकुन्तला—हला असरण म्हि । अण्णदरा वो आअच्छदु [हला अशरणास्मि । अन्यतरा युवयोरागच्छतु ।]

उभे—पुहुवीए जो सरणं सो तुह समीवे वट्टइ [पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते] ' इति निष्क्रान्ते)

शकुन्तला—कहं गदाओ एव्व [कथं गते एव]

राजा—अलमावेगेन । नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते ।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवाता-
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।

दिशम् । दत्तदृष्टिः दत्ता योजिता दृष्टिः ईक्षणम् येन तादृशः । उत्सुकः उत्कण्ठः । मृगपोतकः मृगस्य हरिणस्य पोतकः शावकः मातरम् स्वजनीम् । अन्विष्यति मृगयते । एहि आगच्छ संयोजयावः मेलयावः एनम् इमम् (मृगशावकम् मात्रा) इति एवम् कथने समाप्ते सति । उभे द्वे अपि प्रस्थिते प्रचलिते ।

हिन्दी-व्याख्या—बहाने से दोनों सखियाँ चल देती हैं जिससे युगल प्रेमी निःसंकोच हो सकें ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला—(हे) सखी, (मैं) असहाय (अकेले) हूँ । तुम दोनों में से एक आ जाओ ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) । हला (हे) सख्यौ । अशरणा न शरणम् सहायः यस्याः सा । अस्मि । अन्यतरा एकतरा । युवयोः भवत्योः । आगच्छतु आव्रजतु ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—पृथ्वी का जो आश्रय है, वह तुम्हारे पास है (यह कहकर निकल जाती हैं)

संस्कृत टीका—उभे द्वे अपि (सख्यौ प्रियंवदा अनसूया च) (कथयतः यत्) । पृथिव्याः भूमेः । यः (दुष्यन्तः) । शरणम् आश्रयः । सः ! तव भवत्याः समीपे निकटे वर्तते तिष्ठति । इति एवम् उक्त्वा । निष्क्रान्ते निर्गते ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला क्या ! चली ही गई ?

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्) । कथम् किम् । गते याते । एव (उभे सख्यौ) ।

हिन्दी-व्याख्या —"कथम्" का प्रयोग कोई अप्रत्याशित बात होने पर चौंकने पर होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—घबड़ाओ मत । देखो ! यह आराधक तुम्हारे पास (ही) है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । अलम् कृतम् । आवेगेन संभ्रमेण (आकुलत्वेन) ननु भोः । अयम् एषः (दुष्यन्तः) । आराधयिता भक्तः । जनः व्यक्तिः । तव भवत्याः । समीपे निकटे । वर्तते तिष्ठति ।

हिन्दी-अनुवाद—(हे) करभ के समान जाँघों वाली, क्या कमलिनी-पत्रों के शीतल व थकान

अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते

संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥ १८ ॥

शकुन्तला—ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं [न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये)। (इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति)

दूर करने वाले पंखों से ठण्डी हवाओं का संचार करूँ या आनन्द पूर्वक गोद में रखकर तुम्हारे कमल के समान लाल पैर दबाऊँ।

अन्वय—करभोरु किम् शीतलैः क्लमविनोदिभिः नलिनीदलतालवृन्तैः आर्द्रवातान् संचारयामि। उत यथासुखम् अङ्के निधाय पद्मताम्रौ ते चरणौ संवाहयामि।

संस्कृत टीका—करभोरु करभः (मणिबन्धात् आकनिष्ठम् करस्य बहिः) **इव ऊरू** यस्याः तत्सम्बुद्धौ। **किम्**। **शीतलैः** शिशिरैः। **क्लमविनोदिभिः** श्रान्तिनिवारकैः। **नलिनीदलताल-वृन्तैः नलिन्याः** कमलिन्याः **दलानि** पत्राणि एव **तालवृन्तानि** व्यजनानि तैः। **आर्द्रवातान् आर्द्राः** क्लिन्नाः च ते **वाताः** वायवः च तान्। **संचारयामि** करोमि। **उत** यद्वा। **यथासुखम्** सानन्दम्। **अङ्के** उत्सङ्गे। **निधाय** स्थापयित्वा। **पद्मताम्रौ पद्मवत्** कमलवत् **ताम्रौ** अरुणौ। ते तव। **चरणौ** पदे। **संवाहयामि** संवाहनेन खेदम् अपनयामि।

हिन्दी-व्याख्या—करभ का अर्थ कलाई से लेकर हाथ की छोटी उँगली (कनिष्ठिका) तक का भाग है। आक्रांत की विशेषता (गोलाई) व कोमलता जाँघ से मिलती-जुलती होने से यह उपमा दी गई है। इसका अर्थ हाथी का बच्चा या हाथी की सूँड भी है। तालवृन्त में बहुवचन यह द्योतित करता है कि हाँकते-हाँकते एक पत्ता खराब हो जाता है तो दूसरा ग्रहण किया जाता है। आर्द्र से शैत्य लक्षित होता है और शैत्य अतिशय उसका प्रयोजन है। शीतल का अर्थ है जिसका स्पर्श शीतल है। आर्द्र और शीतल स्पर्श वाली चीज शीतलता देगी। वात की आर्द्रता का हेतु पंखे का शीतल (स्पर्श वाला) होना है। "अपनी गोद में तुम्हारा पैर रखकर दबाऊँ" कहकर दुष्यन्त ने शकुन्तला के सौभाग्य को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है।

छन्द—वसन्ततिलका (१।८ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—परिणाम, विकल्प, काव्यलिङ्ग, परिकर, उपमा व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—मान्यों की दृष्टि में मैं अपने को अपराधी नहीं बनाऊँगी। (यह कहकर उठकर जाना चाहती है।)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत) **न**। माननीयेषु गुरुजनेषु (कण्वम् प्रति) **आत्मा-नम्** स्वम्। **अपराधयिष्ये** अपराद्धम् करिष्ये। **इति एवम्** उक्त्वा। **उत्थाय**। **गन्तुम्** यातुम्। **इच्छति** वाञ्छति।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला इस अवस्था तक पहुँचकर भी भोली होने के कारण डर रही है। वह इतनी भोली है कि इसे नखरा नहीं कहा जा सकता।

राजा—सुन्दरि अनिर्वाणो दिवसः । इयं च ते शरीरावस्था ।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् ।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः ॥ १९ ॥

(इति बलादेनां निवर्तयति)

शकुन्तला—पोरव रक्ख अविणअं । मअनसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि [पौरव रक्षाविनयम् । मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि] ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(हे) सुन्दरी, दिन अभी ढला नहीं है और तुम्हारी देह की दशा ऐसी है ।

संस्कृत टीका—**सुन्दरि** (हे) मञ्जुले । **अनिर्वाणः** न निर्वाणम् समाप्तिः यस्य तादृशः **दिवसः** अहः । **इयम्** एषा (पुरोदृश्या) । **च** । **ते** तव । **शरीरावस्था** शरीरस्य देहस्य **अवस्था** दशा ।

हिन्दी व्याख्या—"दिवस शेष है" से आशय है कि अभी धूप है । "यह दशा" से आशय है कि "शरीर रुग्ण है" (धूप में जाने योग्य नहीं है) अथवा "जैसा आगे बताया जायेगा ।"

हिन्दी-अनुवाद—फूल का विस्तर और कमलिनी के पत्तों से बनाया गया (अस्थायी) स्तन-आवरण त्यागकर कोमल अङ्गों से सारे शरीर में पीड़ा वाली तुम धूप में कैसे चलोगी ।

अन्वयः—पेलवैः अङ्गैः परिबाधा कुसुमशयनम् नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् (च) उत्सृज्य आतपे कथम् गमिष्यसि ।

संस्कृत-टीका—**पेलवैः** कोमलैः । **अङ्गैः** गात्रैः (उपलक्षिता) । **परिबाधा** परितः **बाधा** पीडा यस्याः सा (त्वम्) । **कुसुमशयनम्** **कुसुमानाम्** पुष्पाणाम् **शयनम्** शय्या । **नलिनीदल-कल्पितस्तनावरणम्** **नलिन्याः** कमलिन्याः **दलैः** पत्रैः **कल्पितम्** रचितम् **स्तनयोः** कुचयोः **आवरणम्** आच्छादनम् (च) । **उत्सृज्य** त्यक्त्वा । **आतपे** घर्मे । **कथम्** केन प्रकारेण । **गमिष्यसि** यास्यसि ।

हिन्दी-व्याख्या—फूल की शय्या और नलिनी पत्रों का स्तन-आवरण यह बताता है कि ताप बहुत अधिक है । स्वस्थ व्यक्ति भी घाम में जाने में कष्ट पाता है; तुम तो अस्वस्थ हो ।

छन्द—आर्या (१।२ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, हेतु, श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, संकर व संसृष्टि ।

हिन्दी-अनुवाद—इस प्रकार जबर्दस्ती इसे (शकुन्तला को) लौटाते हैं ।

संस्कृत-टीका—**इति** एवम् (पूर्वोक्तम्) उक्त्वा । **बलात्** शक्त्या । **एनाम्** इमाम् (शकुन्तलाम्) । **निवर्तयति** प्रत्यावर्त्तयति (गन्तुम् न ददाति) ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—पौरव (पुरु-वंशी), उद्दण्डता रोको । कामदेव से संतप्त होकर भी निश्चय ही मैं अपने अधीन नहीं हूँ (पराधीन हूँ) ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति स्म) । **पौरव** पुरुवंशज । **रक्ष** दूरीकुरु । **अविनयम्**

राजा—भीरु अलं गुरुजनभयेन। दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्न तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च।

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः॥ २०॥

उद्दण्डताम्। **मदनसंतप्ता** मदनेन कामेन **संतप्ता** पीडिता। **अपि। न खलु** निश्चयेन। **आत्मनः** स्वस्य। **प्रभवामि** प्रभुः अस्मि।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला के सामने भावना को दबाकर कर्त्तव्य इस तरह विकराल रूप में खड़ा हो गया है कि वह दुष्यन्त को प्रिय के स्थान पर पौरव (वंश-नाम) कहकर पुकारती है और उद्दण्डता से बचने को कहती है। प्रश्न उठ सकता है कि तुम काम परवश हो, फिर भी प्रिय से दूर क्यों हटती हो, इसका उत्तर है कि मेरे शरीर पर मेरा नहीं, बल्कि पिता का अधिकार है; मैं पराधीन हूँ। यहाँ "प्रभवति" के साथ शेषिकी षष्ठी ध्यान देने योग्य है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(अरी) डरपोक, बड़ों का डर मत करो। देखकर (जानकर) तुम्हारे इस कार्य (मेरे साथ ब्याह) में धर्म जानने वाले पूज्य कुलपति बुराई नहीं समझेंगे। देखो न।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **भीरु** (हे) कातरे। **अलम्** कृतम्। **गुरुजनभयेन गुरुजनस्य** पितुः (कण्वस्य) **भयेन** भीत्या। **दृष्ट्वा** (आवयोः परिणयम्) ज्ञात्वा। **ते** तव। तत्र विवाहे। **विदितधर्मा विदितः** ज्ञातः **धर्मः** येन सः। **तत्रभवान्** पूज्यः **न तत्र** तस्मिन् विषये (विवाहे)। **दोषम्** त्रुटिम्। **ग्रहीष्यति** ग्रहीष्यति। **कुलपतिः** (कण्वः)। **अपि च** यथा उक्तम्।

हिन्दी-व्याख्या—"ते" का सम्बन्ध "तत्र" से बताया गया है, "धर्म" से भी लगाया जा सकता है। वे धर्म के तत्वज्ञ हैं और यह विवाह धर्मसम्मत है, अतः वे इसे दोष-पूर्ण नहीं मानेंगे।

हिन्दी-अनुवाद—बहुत सी राजर्षियों की कुमारियाँ गान्धर्व विवाह की विधि से विवाहित सुनी जाती हैं। उन (कुमारियों) का पिता के द्वारा समर्थन भी हुआ।

अन्वयः—बह्व्यः राजर्षिकन्यकाः गान्धर्वेण विवाहेन परिणीताः श्रूयन्ते। पितृभिः च ताः अभिनन्दिताः।

संस्कृत-टीका—बह्व्यः प्रचुराः। **राजर्षिकन्यकाः राजर्षीणाम् कन्यकाः** कुमार्यः। **गान्धर्वेण**। **विवाहेन** परिणयविधिना। **परिणीताः** विवाहिताः। **श्रूयन्ते** आकर्ण्यन्ते। **पितृभिः** पित्रा। **च**। **ताः** (कुमार्यः) **अभिनन्दिताः** अनुमोदिताः।

हिन्दी व्याख्या—"राजर्षि" का अर्थ राजा, ऋषि तथा ऋषितुल्य राजा हो सकता है। शकुन्तला राजर्षि विश्वामित्र की पुत्री है, अतः उसके लिये गान्धर्व विवाह विशेष रूप से विहित है और यदि वह ऋषि कण्व को पिता मानती है तो भी "ऋषि" शब्द आ जाने से घबड़ाहट दूर करने के लिए यह श्लोक-प्रमाण पर्याप्त है। मनुस्मृति ३।३२ में मनु ने गांधर्व विवाह को प्रेम और साथ-साथ रहने से माना जाने वाला कन्या और वर का स्वेच्छा से पारस्परिक मिलन कहा है। हर समाज में ऐसे

शकुन्तला—मुञ्च दाव मं। भूओ वि सहीजणं अणुमाणइस्सं [मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये]।

राजा—भवतु मोक्ष्यामि।

शकुन्तला—कदा [कदा]

राजा—अपरिक्षतकोमलस्य यावत् कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ॥२१॥

युवक और ऐसी युवतियों की न्यूनाधिक संख्या होती है जो बड़ों की आज्ञा के वश में न रहकर विवाह के मामले में मदन (प्रेम) का कहना मानते हैं और व्याह की रीति-रस्म का निर्वाह आवश्यक नहीं समझते। प्राचीन भारतीय समाज ने यथार्थ का सामना करने के लिये ऐसे व्याह को भी व्याह मान लिया था, भले ही इसे प्रशंसा की दृष्टि से न देखा हो। विना दाम्पत्य सम्बन्ध रखे सीधे वर और कन्या का आपस में व्याह का प्रस्ताव रखकर रीति-रस्म मानते हुये व्याह आजकल विदेशों में होता है; भारत में नई चीज होने से इसका विशेष नाम "लव मैरेज" दिया जाता है। (इसमें) व्याह की रस्म पूरी होने से इसे गान्धर्व नहीं कह सकते। "गान्धर्व" नाम का सम्बन्ध गन्धर्वों से नहीं है; केवल पारिभाषिक शब्द के द्वारा व्याह का एक भेद बताने के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। गान्धर्व विवाह अच्छा नहीं माना जाता पर यह भी मत मिलता है कि क्षत्रिय के लिये यह व्याह श्रेष्ठ है :—'क्षत्रियस्य तु गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते'। महाभारत में व्याह की कोई चर्चा नहीं है।

कालिदास ने दुष्यन्त और शकुन्तला के चरित्र की रक्षा के लिये व्याह की यह कल्पना जोड़ी है। महाभारत की कथा पुरानी और अधिक विश्वसनीय है। आलोचकों का कहना ठीक प्रतीत होता है कि पहले दुष्यन्त ने काम परवश होकर शकुन्तला को ग्रहण किया पर बाद में समाज के डर से झूठ बोल गये कि हम दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

छन्द—अनुष्टुप् (१५ द्रष्टव्य)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—जरा मुझे छोड़ो। फिर से सखियों से अनुमति लूँगी।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला—(कथयति यत्)। मुञ्च त्यज। तावत् (वाक्यालङ्कारे) माम् इमम् जनम्। भूयः पुनः। अपि। सखीजनम् आलीम् (सखीद्वयम्) अनुमानयिष्ये अनुमतिम् ग्रहीष्यामि।

हिन्दी-अनुवाद-राजा—ठीक है; छोड़ दूँगा।

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) भवतु अस्तु। मोक्ष्यामि त्यक्ष्यामि।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—कब।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। कदा कस्मिन् समये (मोक्ष्यसि)।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—जिस प्रकार भौंरा फूल का रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार हे सुन्दरी प्यासा मैं चारों ओर क्षत-रहित, कोमल और नवीन इस निचले ओंठ का रस जब सदय-भाव से (सँभालकर) ग्रहण कर लूँगा।

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति । शकुन्तला परिहरति नाट्येन)

(नेपथ्ये) **चक्कवाकवहुए आमंतेहि सहअरं । उवट्ठिआ रअणी** [चक्रवाकवधूः आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी) ।

अन्वय— सुन्दरि यावत् षट्पदेन कुसुमस्य इव पिपासता मया अपरिक्षतकोमलस्य नवस्य अस्य ते अधरस्य रसः सदयम् गृह्यते ।

संस्कृत-टीका—सुन्दरी (हे) मञ्जुले । **यावत्** यदा । **षट्पदेन** भ्रमरेण । **कुसुमस्य** पुष्पस्य । **इव** (यथा भ्रमरेण कुसुमस्य रसः गृह्यते तथा) । **पिपासता** पातुम् इच्छता । **मया** अनेन जनेन । **अपरिक्षतकोमलस्य** परितः क्षतः दष्टः (दन्तेन) परिक्षतः न परिक्षतः अपरिक्षतः सः च **कोमलः** मृदुः च तस्य । **नवस्य** नूतनस्य । **अस्य** एतस्य (पुरतः दृश्यमानस्य), **ते** तव । **अधरस्य** अधरोष्ठस्य । **रसः सदयम् दयया** करुणया सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा । **गृह्यते** प्राप्यते (प्राप्स्यते) !

हिन्दी व्याख्या—"पिपासता" विशेषण भौरे के साथ भी लग सकता है; शेष विशेषण फूल के साथ भी लग सकते हैं । संस्कृत कवियों में यह माना जाता है कि स्त्री के निचले ओंठ में रस होता है और वह पिया जाता है । प्रथम बार आस्वादन से अधर नवीन है । पीते समय दाँत से अधर पर क्षत बनते हैं जिससे वह कठोर हो जाता है । "सदय" का अर्थ "धीरे-धीरे" है; जल्द-बाजी से फूल-जैसे अधर के प्रति निर्दयता हो सकती है अतः यहाँ सदयता पूर्वक अधर-रस-पान की बात कही गई है ।

छन्द— छन्द मालभारिणी है जिसका लक्षण निम्नलिखित है:—

सलजा प्रथमे पदे गुरू चेद् सभरा येन च मालभारिणीयम् ।

जिस छन्द के अर्द्ध भाग के एक चरण में दो सगण, एक जगण और दो गुरु तथा दूसरे में सगण, भगण, रगण और यगण होते हैं, वह मालभारिणी कहलाता है ।

अलंकार—उपमा, छेकानुप्रास व वृत्त्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—यह कहकर इस—शकुन्तला—का मुख उठाना चाहते हैं । शकुन्तला अभिनय द्वारा निवारण करती है ।

संस्कृत-टीका—इति एवम् उक्त्वा । **मुखम्** आननम् । **अस्याः** एतस्याः (शकुन्तलायाः) । **समुन्नमयितुम्** उत्थापयितुम् । **इच्छति** काङ्क्षति (प्रयतते) । **शकुन्तला** । **परिहरति** निवारयति । **नाट्येन** अभिनयेन ।

हिन्दी-व्याख्या—मुँह उठाने के लिये हाथ की तीन उँगलियाँ आगे कर उत्तान भाग से मध्यमा (बीच वाली) और तर्जनी (अँगूठे के बगल वाली) से ठोड़ी छुई जाती है । अधर-पान को रोकने के लिये निचला ओंठ छिपाते हुये सिर फेरा जाता है । यह मुग्धा नायिका का व्यवहार है जिसकी उम्र और जिसका प्रेम (काम) नया-नया होता है—मुग्धा नववयःकामा ।

हिन्दी अनुवाद—(नेपथ्य में) (हे) चकवी, साथी को विदा करो । रात आ गई ।

संस्कृत टीका--नेपथ्ये । (हे) **चक्रवाकवधूः चक्रवाकस्य** चक्राङ्गस्य **वधूः** पत्नि (सम्बुद्धौ) । **आमन्त्रयस्व** आपृच्छस्व । **सहचरम्** पतिम् । **उपस्थिता** सन्निहिता । **रजनी** रात्रिः ।

शकुन्तला–(ससंभ्रमम्) **पोरव असंसअं मम शरीरवुत्तंतोवलंभस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि । जाव विडवंतरिदो होहि ।** [पौरव ! असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति । यावद्विटपान्तरितो भव] ।

राजा—**तथा** (इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति)

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च)

सख्यौ—**इदो इदो अज्जा गोदमी** [इत इत आर्या गौतमी] ।

हिन्दी व्याख्या—प्रसंग से यह स्पष्ट है कि यह बात किसी सखी के द्वारा शकुन्तला को सावधान करने के लिए कही गई है। यहाँ चक्रवाक, चक्रवाक-वधू और रजनी क्रमशः दुष्यन्त, शकुन्तला और गौतमी के लिए आये हैं। इससे यह भी पता चलता है कि दोनों सखियाँ शकुन्तला-दुष्यन्त के आस-पास पहरेदारी कर रही थीं। संस्कृत कविता में यह प्रसिद्ध है कि चकवा और चकवी रात के समय अलग हो जाते हैं।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा।

हिन्दी अनुवाद--शकुन्तला--(घबड़ाकर) (हे) पौरव (पुरुवंशी), इसमें संशय नहीं है कि मेरे शरीर का समाचार (कुशल) लेने के लिये आर्या (आदरणीया) गौतमी इधर ही आ रही हैं। जरा डाल की ओट में हो जाओ।

संस्कृत टीका--**शकुन्तला** । **ससंभ्रमम् संभ्रमेण** आवेगेन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा । **पौरव** पुरुवंशज । **असंशयम्** अविद्यमानः **संशयः** सन्देहः यत्र तत् यथा स्यात् तथा । **मम** अस्य जनस्य (शकुन्तलायाः) **शरीरवृत्तान्तोपलम्भाय शरीरस्य** देहस्य **वृत्तान्तस्य** उदन्तस्य **उपलम्भाय** प्राप्तये । **आर्या** महादया । **गौतमी** । **इतः** इह । **एव** । **आगच्छति** आयाति । **यावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **विटपान्तरितः विटपेन** शाखाया **अन्तरितः** प्रच्छन्नः । **भव** ।

हिन्दी-व्याख्या—दुष्यन्त को शायद यह शंका हो कि पिण्ड छुड़ाने के लिए शकुन्तला बहाना बना रही है, इसलिए शकुन्तला ने "असंशय" पर जोर दिया है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा ठीक है (यह कहकर अपने को ढक लेते हैं)।

(इसके बाद हाथ में बरतन लिये हुये गौतमी और दोनों सखियाँ प्रवेश करती हैं)।

संस्कृत-टीका--**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) **तथा** एवम् (करोमि)। **इति** उक्त्वा । **आत्मानम्** स्वम् । **आवृत्य** आच्छाद्य । **तिष्ठति** ।

हिन्दी-व्याख्या—कालिदास ने ऐसे महान् राजा को किस बुरी हालत में डाल दिया है। इस समय यदि गौतमी चोर की तरह छिपे राजा को देख लेती तो क्या स्थिति होती। दुष्यन्त और शकुन्तला के चरित्र पर यह पंक्ति धब्बा है। यदि दोनों यह कृत्य इतना अनुचित मानते हैं तो इससे दूर रहना चाहिये और यदि प्रणय निर्दोष समझते हैं तो साहस पूर्वक अपनी बात सामने रखनी चाहिये कि हम ब्याह करेंगे।

हिन्दी अनुवाद—(**दोनों**) **सखियाँ**—इधर से, इधर से आर्या गौतमी।

गौतमी—(शकुन्तलामुपेत्य) **जादे अवि लहुसंदावाइं दे अंगाइं** [जाते अपि लघुसंतापानि तेऽङ्गानि ?]।

शकुन्तला—अत्थि मे विसेसो [अस्ति मे विशेषः]।

गौतमी—इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे शरीरं भविस्सदि (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) **वच्छे परिणदो दिअहो। एहि उडजं एव्व गच्छम्ह।** [अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। वत्से परिणतो दिवसः। एहि उटजमेव गच्छामः] (इति प्रस्थिताः।)

शकुन्तला—(आत्मगतम्) **हिअअ पढमं एव्व सुहोवणदे मणोरहे कादरभावं ण मुंचसि। साणुसअविहडिअस्स कहं दे संपदं संदावो।** (पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्) **लदावलअ संदावहारअ अमंतेमि तुमं भूओ वि परिभोअस्स** [हृदय ! प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे

संस्कृत-टीका—ततः तदनन्तरम्। **प्रविशति** दृश्यते रङ्गभूमौ। **पात्रहस्ता पात्रम्** भाजनम् **हस्ते** करे यस्याः तादृशी। **गौतमी**। **सख्यौ** आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च) (कथयतः यत्) **इतः** अनेन मार्गेण। **इतः** अनेन मार्गेण। **आर्या** मान्या। **गौतमी**।

हिन्दी-व्याख्या—"इतः" का दो बार प्रयोग आदर के लिये है। "गौतमी" नाम का उच्चारण अजीब लगता है क्योंकि बड़ों का नाम उनको पुकारने में नहीं लिया जाता।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी (शकुन्तला के पास जाकर)—बेटी, तुम्हारे अङ्गों की पीड़ा कम तो हुई न ?

संस्कृत-टीका—गौतमी। शकुन्तलाम्। उपेत्य समीपे प्राप्य (कथयति यत्)। **जाते** पुत्रि। **अपि**। **लघुसंतापानि लघुः** अल्पतरः **संतापः** पीडा येषाम् तादृशानि (अङ्गानि)। **ते** तव। **अङ्गानि** अवयवाः।

हिन्दी-व्याख्या—"अंगों में संताप कम है न ?" यह अर्थ भ्रम उत्पन्न कर सकता है; रचना संस्कृत में अप्रचलित है। मूल प्राकृत में होने से संस्कृतछाया कहीं-कहीं संस्कृत के अनुसार अटपटी लगती है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—मुझे फर्क लगता है।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **अस्ति** विद्यते। **मे** मम (इदम् मे प्रतीयते)। **विशेषः** परिवर्तनम्।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—इस कुश (से छिड़के) जल से तुम्हारी देह महान् पीड़ा से रहित हो जायेगी (शकुन्तला के सिर पर जल छिड़ककर) बेटी, दिन ढल गया है। आओ पर्णशाला ही चलें। (यह कहकर सब रवाना हो जाते हैं।)

संस्कृत-टीका—गौतमी (कथयति यत्)। **अनेन** एतेन सम्मुखस्थेन। **दर्भोदकेन दर्भमिश्रेण** कुशमिश्रेण **उदकेन** पानीयेन। **निराबाधम् निर्गता आबाधा** महती पीडा यस्मात् तादृशम्। **ते** तव। **शरीरम्** देहः। **भविष्यति**। **वत्से** पुत्रि। **परिणतः** अस्तम् गतः। **दिवसः** अहः **एहि** आगच्छ (मया सह)। **उटजम्** पर्णशालाम्। **एव**। **गच्छामः** यामः इति एतत्कथनानन्तरम्। **प्रस्थिताः** प्रचलिताः (ताः)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (स्वगत)—हृदय, मनोरथ, (दुष्यन्त) के आसानी से मिल

कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयविघटितस्य कथं ते सांप्रतं संतापः? लतावलय! संतापहारक! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय]। (इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः)।

राजा—(पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि—

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥ २२ ॥

जाने पर पहली बार भी डर नहीं छोड़ा। अब पश्चात्ताप सहित अलग हुये तुम्हारा संताप कैसा? (अगले कदम पर ठहरकर) स्पष्ट संताप दूर करने वाले लता-मण्डप, पुनः सुख के लिये तुमसे विदा लेती हूँ (यह कहकर दुःखपूर्वक शकुन्तला अन्य स्त्रियों के साथ बाहर जाती है)।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला**। **आत्मगतम्** स्वगतम्। **हृदय** अन्तर। **प्रथमम्** प्रथमवारम्। **एव अपि**। **सुखोपनते सुखम्** (सुखेन) अनायासम् **उपनते** प्राप्ते। **मनोरथे** अभिलाषे (तत्स्वरूपे दुष्यन्ते) **कातरभावम् कातरस्य** भीतस्य **भावम्** (भयम्)। **न**। **मुञ्चसि** त्यजसि। **सानुशयविघटितस्य** अनुशयेन पश्चात्तापेन सह वर्तमानम् सानुशयम्, तच्च **विघटितम्** वियुक्तम् च। तस्य। **कथम्** केन कारणेन (व्यर्थम्)। **ते** तव। **साम्प्रतम्** अधुना। **संतापः** पीडा। **लतावलय लतानाम्** वल्लरीणाम् **वलयः** मण्डलः तत्सम्बुद्धौ **संतापहारक** पीडानिवारक। **आमन्त्रये** आपृच्छे। **त्वाम्** भवन्तम्। **भूयः** पुनः (भविष्ये)। **अपि**। **परिभोगाय** सुखाय। **इति** एवम् उक्त्वा। **दुःखेन** क्लेशेन। **निष्क्रान्ता** निर्गता। **शकुन्तला**। **सह** साकम्। **इतराभिः** अन्याभिः (गौतम्या प्रियंवदया अनसूयया च)।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "मुञ्चसि" भूतकाल की ओर भी इशारा कर रहा है। आशय है कि मिलन के समय डरकर जो तुमने काफी समय बिता दिया और अब पछता रहे हो, उसका यह वियोग रूपी फल भोगो; अब संतप्त क्यों हो रहे हो; अपनी करनी का फल भोगने में कष्ट का उलाहना देना व्यर्थ है। "सन्ताप-हारक" दुष्यन्त को सुनाकर कहा गया भी हो सकता है। "वलय" शब्द "गुप्त स्थान" अर्थ ध्वनित करता है।

अलंकार—अतिशयोक्ति।

हिन्दी अनुवाद—राजा (पहले वाली जगह पर पहुँचकर लम्बी साँस भरकर) हाय, मनोरथ की सिद्धियाँ विघ्न से भरी हैं।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **पूर्वस्थानम् पूर्वम्** मिलनकालिकम् च तत् **स्थानम्** भूमिं च। **उपेत्य** उपगम्य। **सनिःश्वासम् निःश्वासेन** दीर्घश्वासेन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **अहो** हन्त। **विघ्नवत्यः** सबाधाः। **प्रार्थितार्थसिद्धयः प्रार्थितः** इच्छितः च सः **अर्थः** वस्तु च तस्य **सिद्धयः** सफलताः। **मया** अनेन जनेन। **हि** यतः।

हिन्दी-व्याख्या—"विघ्न" से लेकर "सिद्धयः" तक वाक्य अपने लिये "मेरी सिद्धियाँ" अर्थ लगाकर प्रयुक्त किया जा सकता है और लोकोक्ति की तरह भी आ सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—पक्ष्मलाक्षी (घनी बरौनी सहित नेत्रों वाली) का मुँह, जहाँ निचला ओंठ उँगली से ढका था, जो मनाही के शब्दों की (के कहने में होने वाली) विकलता से सुन्दर

क्व नु खलु संप्रति गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्तं स्थास्यामि। (सर्वतोऽवलोक्य)

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्रान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ॥ २३ ॥

था और जो कंधे पर मुड़ा हुआ था, किसी प्रकार उठाया (तो) पर चूमा नहीं (चूम न पाया)।

अन्वयः—मुहुः अङ्गुलिसंवृताधरोष्ठम् प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम् अंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः मुखम् कथमपि उन्नमितम् न तु चुम्बितम्।

संस्कृत-टीका—**मुहुः** पुनः पुनः। **अङ्गुलिसंवृताधरोष्ठम्** **अङ्गुल्या संवृतः** आच्छादितः **अधरोष्ठः** अधरः यत्र तादृशम् (मुखम्)। **प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्** **प्रतिषेधस्य** निषेधस्य (निषेधसूचकानि) **अक्षराणि** वर्णा तत्र **विक्लवम्** आकुलम् (अतः) **अभिरामम्** सुन्दरम् च। **अंसविवर्ति** **अंसे** स्कन्धे **विवर्तितुम्** निवर्त्तितुम् शीलम् यस्य तादृशम्। **पक्ष्मलाक्ष्याः** **पक्ष्मले** **अक्षिणी** नेत्रे यस्याः तस्याः। **मुखम्** वदनम्। **कथमपि** यथा तथा (बहुप्रयत्नैः) **उन्नमितम्** उत्थापितम्। **न**। **तु** किन्तु **चुम्बितम्**।

हिन्दी व्याख्या—उँगली तर्जनी (अँगूठे के बगलवाली) या मध्यमा (बीच वाली) है। अधरोष्ठ में ओकार ध्यान देने योग्य है। उसके साथ बरौनियों की अधिकता वाले नेत्र सुन्दर माने जाते हैं। प्रतिषेधाक्षर न, अलम्, कृतम्, मा आदि हैं। "तु" पश्चात्ताप के साथ इस बात को भी सूचना देता है कि एक बार के चुम्बन से भी कृतार्थता प्राप्त हो जाती। रंगमंच पर चुम्बन दिखाने का निषेध है जिससे कालिदास को गौतमी को लाकर बाधा डालनी पड़ी।

छन्द—मालभारिणी (३।२१ द्रष्टव्य)।

अलंकार—स्वभावोक्ति, काव्यलिङ्ग, श्रुत्यनुप्रास व वृत्यनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—अब कहाँ जाऊँ ? (या) यहीं प्रिया के द्वारा सेवित तथा त्यागे गये लता-मण्डप में घड़ी भर ठहरूँगा। (सब ओर देखकर)

संस्कृत-टीका—**क्व** कुत्र। **नु** (वितर्के)। **खलु संप्रति** अधुना। **गच्छामि** यामि। **अथवा** यद्वा। **इह** अत्र। **एव**। **प्रियापरिभुक्तमुक्ते** प्रियया (शकुन्तलया) **परिभुक्तः** सेवितः च **मुक्तः** त्यक्तः च तस्मिन्। **लतावलये** **लतानाम्** वल्लरीणाम् **वलये** मण्डले। **मुहूर्त्तम्** क्षणम्। **स्थास्यामि**। (**सर्वतः** सर्वत्र **अवलोक्य** दृष्ट्वा)।

हिन्दी-व्याख्या—"नु" व "खलु" का साथ-साथ प्रयोग वितर्क को अति सूचित करता है। "अथवा" यह बताता है कि पहला (जाने का) विचार त्याग कर दूसरी बात का विचार या निश्चय करते हैं। लता-मण्डप में बैठने और इधर-उधर देखने का कारण है शकुन्तला के वहीं मिलने की सम्भावना। इधर-उधर देखने से उत्कण्ठा भी प्रतीत होती है।

हिन्दी-अनुवाद—"पत्थर पर यह फूलों से बनी और शरीर से बिखरी उसकी सेज है।

(आकाशे) राजन् !

सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः ।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
संध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ॥ २४ ॥

यह कमलिनी के पत्ते पर नाखूनों से लिखा हुआ और मुरझाया (उसका) प्रेम-पत्र है । यह हाथ से छूटा कमल नाल का बना उसका आभूषण है," यह सोचकर मैं जिसकी दृष्टि चिपटी जा रही है वेत के घर से भले ही वह सूना हो एकाएक निकल नहीं पाता ।

अन्वयः—शिलायाम् पुष्पमयी शरीरलुलिता इयम् तस्याः शय्या। नलिनीपत्रे नखैः अर्पितः क्लान्तः एषः (तस्याः) मन्मथलेखः । हस्तात् भ्रष्टम् इदम् (तस्याः) बिसाभरणम् इति आसज्यमानेक्षणः (अहम्) शून्यात् अपि वेतसगृहात् सहसा निर्गन्तुं न शक्नोमि ।

संस्कृत-टीका—**शिलायाम्** प्रस्तरे (आस्तृता) । **पुष्पमयी** कुसुमनिर्मिता । **शरीरलुलिता** शरीरेण देहेन **लुलिता** इतस्ततः क्षिप्ता । **इयम्** एषा **तस्याः** (शकुन्तलायाः) **शय्या** शयनम् । **नलिनीपत्रे नलिन्याः** कमलिन्याः पत्रे दले । **नखैः** नखरैः । **अर्पितः** दत्तः, अङ्कितः । **क्लान्तः** मलिनः । **एषः** अयम् (पुरोवर्ती) (तस्याः) । **मन्मथलेखः** मन्मथस्य प्रेम्णः (मन्मथपीडासूचकः) **लेखः** पत्रम् । **हस्तात्** करात् । **भ्रष्टम्** च्युतम् । **इदम्** एतत् (पुरतः दृश्यमानम्) । (तस्याः) **बिसाभरणम् बिसम्** कमलनालः (एव) **आभरणम्** भूषणम् यस्याः सा । **इति** एवम् कृत्वा । **आसज्यमानेक्षणः आसज्यमानम्** संबध्यमानम् (लग्नम्) **ईक्षणम्** दृष्टिः यस्य सः (अहम्) । **शून्यात्** निर्जनात् (प्रियारहितात्) । **अपि** । **वेतसगृहात् वेतसानाम्** वानीराणाम् **गृहात्** मण्डपात् । **सहसा** अकस्मात् । **निर्गन्तुम्** बहिः यातुम् । **न** । **शक्नोमि** पारयामि ।

हिन्दी-व्याख्या—"एषः" अत्यन्त निकटता का बोधक है । पत्र पढ़ने के लिये राजा उसके निकट जाकर उसे पढ़ने के बाद कहते हैं । प्रिया के द्वारा लिखा हुआ और वह भी अपने को सम्बोधित पत्र है, यह बात मनोहरता ध्वनित करती है । नख में बहुवचन यह सूचित करता है कि हाथ के पाँचों नखों का प्रयोग किया गया है ।

छन्द—शार्दूल-विक्रीडित (१।१४ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—मध्य-दीपक, हेतु, विशेषोक्ति, विभावना (संदेह) संकर, (पदार्थहेतुक) काव्य-लिङ्ग व अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—(आकाश में) महाराज, सायंकालीन यज्ञ कार्य भली भाँति चलते होने पर राक्षसों की अग्नि वाली वेदी के चारों ओर फैली हुई डरावनी तथा संध्या के बादलों के समान आरक्त छायायें बार बार घूम रही हैं ।

राजा—अयमयमागच्छामि । (इति निष्क्रान्तः)

इति तृतीयोऽङ्कः ।

अन्वयः—सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते हुताशनवतीम् वेदीम् परितः प्रयस्ताः भयम् आदधानाः संध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् छायाः बहुधा चरन्ति ।

संस्कृत-टीका—**सायंतने** सन्ध्याकालीने । **सवनकर्मणि** यज्ञकार्ये । **संप्रवृत्ते** सम्यक्प्रवृत्ते **हुताशनवतीम् । वेदीम्** वेदिकाम् (यज्ञस्य) । **परितः** सर्वतः । प्रयस्ताः इतस्ततः विक्षिप्ताः । **भयम्** भीतिम् । आदधाना धारयन्त्यः ; **सन्ध्यापयोदकपिशाः सन्ध्यायाः** सायंकालस्य **पयोदाः** वारिदाः तद्वत् **कपिशाः** आरक्ताः । **पिशिताशनानाम् पिशितम्** मांसम् **अशनम्** भोजनम् येषाम् ते (राक्षसानाम्) । **छायाः** प्रतिबिम्बाः । **बहुधा** वारं वारम् । **चरन्ति** भ्रमन्ति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ भयानक रस है। स्थायिभाव-भय, विभाव-छाया, दर्शन व्यभिचारिभाव है । यहाँ प्रतिमुख संधि में नर्म नर्मद्युति व उपासन अङ्ग नहीं कहे गये हैं । अङ्ग पूर्ण रूप से न आने या आगे-पीछे आने पर भी कोई कमी नहीं आती । भरत ने कभी-कभी २-३ अङ्गों का न होना भी संशय बताया है । 'कविभिः काव्यकुशलै रसभावमुपेक्ष्य तु । सर्वाङ्गानि कदाचित्तु द्वित्रिहीनानि वा पुनः ॥ व्युत्क्रमेणापि कार्याणि……॥'

छन्द—वसन्ततिलका (१।८ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—उपमा, छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—लो आ पहुँचा । (यह कहकर बाहर जाते हैं) ।

तीसरा अङ्क समाप्त हुआ ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **अयम्** पश्य । **अयम्** पश्य । **आगच्छामि** प्राप्नोमि । **इति** एवम् उक्त्वा । **निष्क्रान्तः** निर्गतः **इति** समाप्तः **तृतीयः** अङ्कः ।

चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ]

अनसूया—पिअंवदे जहवि गंधव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउँदला अणुरूव-भत्तगामिणी संवुत्तत्ति णिव्वुदं मे हिअअं तह वि एत्तिअं चिंतणिज्जं [प्रियंवदे यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम् तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्]

प्रियंवदा—कहं विअ [कथमिव]।

हिन्दी-अनुवाद—[इसके बाद फूल तोड़ने का अभिनय करती हुई दोनों सखियाँ प्रवेश करती हैं]

अनसूया—(हे) प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्व (विवाह) विधि से शकुन्तला का विवाह-मंगल हो गया है और वह अपने लायक पति को प्राप्त कर चुकी है यह सोचकर मेरा दिल शांत है तथापि इतनी बात चिन्ता की है।

संस्कृत-टीका—**चतुर्थः**। **अङ्कः**। **ततः** तदनन्तरम्। **प्रविशतः** रङ्गभूमौ दृश्येते। **कुसुमावचयम्** **कुसुमानाम्** पुष्पाणाम् **अवचयम्** चयनम्। **नाटयन्त्यौ** अभिनयेन प्रदर्शयन्त्यौ। **सख्यौ** आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च)। **अनसूया** (कथयति यत्) (हे) प्रियंवदे। **यद्यपि** यद्यपि। **गान्धर्वेण**। **विधिना** विवाहरीत्या। **निर्वृत्तकल्याणा** **निर्वृत्तम्** संपादितम् **कल्याणम्** भद्रम् यया सा (शकुन्तला)। **शकुन्तला**। अनुरूपमर्तृगामिनी **अनुरूपः** योग्यः च असौ **भर्त्ता** पतिः च तम् गन्तुम् शीलम् यस्याः सा। **संवृत्ता** जाता। **इति** एवम् विचार्य। **निर्वृतम्** शान्तम् (तुष्टम्)। **मे** मम। **हृदयम्** अन्तरम्। **तथापि** तदपि। **एतावत्** एतत् (विवक्षितम्)। **चिन्तनीयम्** चिन्ताविषयः।

हिन्दी-व्याख्या—अंक ४ से ५ में "यथोक्तं करोति" तक गर्भ संधि है। भरत के अनुसार बीज का फूटना, उसकी प्राप्ति, अप्राप्ति और पुनः अन्वेषण गर्भ संधि होती है। 'उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव च। पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भः परिकीर्तितः॥' आरम्भ में ही प्राप्ति हो गई है। आगे अंक ४ में दुर्वासा के शाप से अप्राप्ति होगी और फिर उन्हीं के प्रसन्न हो जाने पर अन्वेषण की स्थिति आयेगी। नाटक होने से हर पात्र अभिनय ही करेगा; कहीं-कहीं "अभिनय करते हुये" लिखने का आशय विशेष कुछ नहीं है। यहाँ सूचना दी गई है कि दुष्यन्त शकुन्तला के पति हो चुके हैं और जा चुके हैं। इस बीच दुष्यन्त पर्याप्त समय तक आश्रम में रहे और शकुन्तला के साथ उन्होंने दाम्पत्य जीवन बिताया।

प्रियंवदा—कैसे ?

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** (कथयति यत्) **कथम्** केन प्रकारेण (चिन्तनीयम् स्यात् इति)। इव (वाक्यालङ्कारे)।

अनसूया—अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिय अंतेउरसमागदो इदोगदं वुत्तंत सुमरदि वा ण वेत्ति [अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति]।

प्रियवदा—वीसद्धा होहि ! ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होंति। तादो दाणिं इमं वुत्तंतं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि ति [विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तातं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति]।

अनसूया–जह अहं दक्खामि तह तस्स अणुमदं भवे [यथाहं पश्यामि तथा तस्यानुमतं भवेत्]

हिन्दी अनुवाद—अनसूया—'वे राजषि यज्ञ पूरी तरह समाप्त कर ऋषियों से विदा होकर और अपने नगर में प्रविष्ट होकर रनिवास में मिलकर इधर से सम्बद्ध बात अब याद करेंगे या नहीं ?"

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) **अद्य** अधुना। **सः** पूर्वोक्तः। राजर्षिः राजा नृपः च असौ ऋषिः मुनिः च (दुष्यन्तः)। **इष्टिम्** यज्ञम्। **परिसमाप्य** परितः **समाप्य** शेषम् नीत्वा। **ऋषिभिः** मुनिभिः। **विसर्जितः** प्रहितः। **आत्मनः** स्वस्य। **नगरम्** पुरम् (राजधानीम्)। **प्रविश्य** अन्तः गत्वा। **अन्तःपुरसमागतः अन्तःपुरे** राज्ञीप्रासादे **समागतः** मिलितः (सन्) **इतोगतम् इतः** इह (आश्रमे) **गतम्** सम्बद्धम्। **वृत्तान्तम्** घटितम् (विवाहादिकम्) **स्मरति वा न वा**। **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—अपने या अपने आत्मीय के अभीष्ट को लेकर हृदय में प्रायः शंका उत्पन्न होती है। यह स्थल भविष्य के दुर्वासा-शाप से नायिका की याद दुष्यन्त के मन में न रह जाने की पूर्व-सूचना है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—निश्चिन्त रहो। वैसी विशिष्ट आकृतियाँ गुण-रहित नहीं होतीं। पिताजी (कण्व) यह समाचार सुनकर न जाने क्या ख्याल करेंगे।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) **विस्रब्धा** विश्वासयुक्ता (निश्चिन्ता)। **भव**। **न**। **तादृशाः** तथाविधाः। **आकृतिविशेषाः** विशिष्टस्वरूपाः (जनाः) **गुणविरोधिनः** गुणरहिताः। **भवन्ति**। **तातः** पिता (कण्वः)। **इदानीम्** अधुना (विवाहानन्तरम्)। **इदम्** एतत् (विवाहस्य)। **वृत्तान्तम्** उदन्तम्। **श्रुत्वा** आकर्ण्य। **न**। **जाने** जानामि। **किम्**। **प्रतिपत्स्यते** कल्पयिष्यते **इति**।

हिन्दी व्याख्या—अनसूया को दुष्यन्त की ओर से चिंता न होकर कण्व की ओर से चिंता है। "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति" उक्ति की तरह यहाँ भी एक उक्ति आई है जिसका आशय है विशिष्ट रूप वाला व्यक्ति चरित्र से भी (साधारणतः) अच्छा होता है। ऐसी स्थिति में वंचना और विस्मरण की शंका नहीं की जा सकती।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—जैसा मुझे लगता है, उन (कण्व) की अनुमति मिल जायेगी।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। **यथा**। **अहम्** अयम् जनः। **पश्यामि** विचारयामि **तथा तस्य** (कण्वस्य)। **अनुमतम्** आशया समर्थितम्। **भवेत्** स्यात्।

प्रियंवदा—कहं विअ [कथमिव]।

अनसूया—गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जेत्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो [गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः]।

प्रियंवदा—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं, [सखि अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि]।

अनसूया—णं सहीए सउंदलाए सोहागदेवआ अच्चणीया [ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया]।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—कैसे ?

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। कथम् केन प्रकारेण। इव (वाक्यालङ्कारे)।

हिन्दी अनुवाद—अनसूया—"गुणवान् व्यक्ति को कन्या देनी है" यह (उनका) मुख्य विचार है। उसे अगर भाग्य ही पूरा कर देता है तो बिना प्रयत्न के ही पिता कृत-कृत्य हो गये।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। गुणवते गुणिने (जनाय)। कन्यका कुमारी (शकुन्तला)। प्रतिपादनीया देया। इति एवम्। अयम् एषः (पूर्वोक्तः)। तावत् (वाक्यालङ्कारे)। प्रथमः मुख्यः। संकल्पः मानसम् कर्म। तम् (पूर्वोक्तम् सङ्कल्पम्)। यदि चेत्। दैवम् भाग्यम्। एव। संपादयति सफलयति (तदा)। ननु (अवधारणे) अप्रयासेन न प्रयासः प्रयत्नः तेन। कृतार्थः कृतकृत्यः। गुरुजनः पिता (कण्वः)।

हिन्दी-व्याख्या—डर की बात तब होती जब कण्व शकुन्तला को जीवन भर अविवाहित रखते। जब उन्हें ब्याह करना ही था और वर अच्छे से अच्छा मिल गया तब उनके नाराज होने का सवाल ही पैदा नहीं होता। प्रियंवदा और अनसूया बड़ी प्रतीत होती हैं, पर उनके ब्याह की चिन्ता कण्व को नहीं प्रतीत होती, यह अचरज है। तपः शक्ति से हर एक का भाग्य लेख पढ़कर कण्व ने ऐसा किया यही कहा जा सकता है; कोई साधारण व्यक्ति होता तो अपनी पालित कन्या के प्रति पक्षपात की भी आशंका की जाती थी।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—(फूल का बरतन देखकर)—(हे) सखी, पूजा-कर्म के लिए काफी फूल चुन लिये हैं।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। सखि हे आलि। अवचितानि गृहीतानि। बलिकर्मपर्याप्तानि बलेः पूजायाः कर्म कार्यम् तत्र पर्याप्तानि। कुसुमानि पुष्पाणि।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—क्या कहती हो ? सखी शकुन्तला के सौभाग्य देवता की पूजा (भी तो) करनी है।

संस्कृत-टीका—अनसूया—(कथयति यत्) ननु (परमताक्षेपे)। सख्याः आल्याः। शकुन्तलायाः। सौभाग्यदेवता सौभाग्यस्य देवता देवः। अर्चनीया पूजयितव्या।

हिन्दी-व्याख्या—"ननु" दूसरे के मत को काटने में आता है। "देवता" हिन्दी में पुंलिङ्ग, पर संस्कृत में स्त्रीलिंग है।

प्रियंवदा—जुज्जदि [युज्यते]।

(इति तदेव कर्मारभेते)

(नेपथ्ये) **अयमहं भोः।**

अनसूया—(कर्णं दत्त्वा) **सहि सहि अदिधीणं विअ णिवेदिदं** [सखि अतिथीनामिव निवेदितम्]।

प्रियंवदा—णं उडजसंणिहिदा सउंदला। (आत्मगतम्) **अज्ज उण हिअएण असंणिहिदा** [ननूटजसंनिहिता शकुन्तला। अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता]।

अनसूया—होदु अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं [भवतु अलमेतावद्भिः कुसुमैः] (इति प्रस्थिते)।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—ठीक है। (यह कहकर वहाँ काम शुरू करती है)

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। **युज्यते** उचितम् इदम्। **इति** एवम् उक्ते जाते। **तत्** (पूर्वोक्तम्) **एव कर्म** कार्यम्। **आरभेते** कुरुतः।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) मैं आ गया। कोई है ?

संस्कृत-टीका—नेपथ्ये ! अयम् सम्प्राप्तः। **अहम्** अयम् जनः (दुर्वासाः)। **भोः** कोऽपि अस्ति।

हिन्दी व्याख्या—वाक्य अपने विशेष ढंग का है। रोबीले आदमी की बात लगती है।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया (कान लगाकर)—(हे) सखी, मेहमानों की आवाज प्रतीत होती है।

संस्कृत-टीका—अनसूया—कर्णम् श्रोत्रम्। **दत्त्वा** सावधानम् कृत्वा। **सखि** हे आलि। **अतिथीनाम्** प्राघुणिकानाम्। **इव** इदम् प्रतीयते। **निवेदितम्** सूचना।

हिन्दी-व्याख्या—आदरार्थ में बहुवचन है। "निवेदित" में "क्त" प्रत्यय होने से प्रचलित अर्थ "निवेदित किया हुआ" पर ध्यान जाता है पर यहाँ संज्ञा है और अर्थ निवेदन है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—हे सखी शकुन्तला पर्णकुटी में उपस्थित (तो) है, पर आज मन में अनुपस्थित है।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा—(कथयति यत्) ननु (संबोधने)। उटजसंनिहिता **उटजे** पर्णशालायाम् **संनिहिता** उपस्थिता। **शकुन्तला अद्य। पुनः** तु। **हृदयेन** मनसा। **असंनिहिता** न **संनिहिता** उपस्थिता।

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला सौभाग्य देवता की अर्चना का दिन होने से, दुष्यन्त की याद में खोई है, इसकी सूचना दी जा रही है !

हिन्दी-अनुवाद- अनसूया—जाने दो इतने फूलों से बस करो (यह कहकर समाप्त होने पर प्रस्थान कर देती हैं।)

संस्कृत-टीका—अनसूया—(कथयति यत्)। **भवतु** अस्तु। **अलम्** पर्याप्तता **एतावद्भिः** एतावन्मात्रैः। **कुसुमैः** पुष्पैः इति एवम् कथने समाप्ते सति। **प्रस्थिते** प्रचलिते (अनसूया प्रियंवदा च)।

(नेपथ्ये) आः अतिथिपरिभाविनि !

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥ १ ॥

प्रियंवदा—हद्धी अप्पिअं एव्व संवुत्तं । कस्सिं पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउंदला (पुरोऽवलोक्य) ण हु जस्सिं कस्सिं पि । एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी । तह सविअ वेअवलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो । को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवादि [हा धिक् । अप्रियमेव संवृत्तम् । कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला । न खलु

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला की चिन्ता से व फूलों के काफी हो जाने से तोड़ना बन्द किया जा रहा है ।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) अरे अतिथि का अपमान करने वाली !

संस्कृत टीका—नेपथ्ये । आः (क्रोधे) **अतिथिपरिभाविनि** अभ्यागतापमाननशीले ।

हिन्दी-व्याख्या—यह तथा आगे आ रहा श्लोक दुर्वासा का है । वे शकुन्तला से नाराज हो गये हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—जिसके मन में दूसरा नहीं है वह तुम जिसके विषय में सोचती हुई (यहाँ) उपस्थित मुझ तपस्वी पर ध्यान नहीं देती वह जानकारी कराई जाने पर भी तुम्हें इस तरह याद नहीं रखेगा जिस तरह प्रमादी व्यक्ति पहले की गई बात याद नहीं रखता ।

अन्वयः—अनन्यमानसा (त्वम्) यम् विचिन्तयन्ती उपस्थितम् तपोधनम् माम् न वेत्सि सः बोधितः सन् अपि त्वाम् प्रमत्तः प्रथमम् कृताम् कथाम् इव न स्मरिष्यति ।

संस्कृत-टीका—अनन्यमानसा अन्यः अपरः **मानसे** हृदये यस्याः तादृशी अन्यमानसा न अन्यमानसा (सती) (त्वम्) **यम्** (दुष्यन्तम्) **विचिन्तयन्ती** विशेषेण मनसि कुर्वन्ती । **उपस्थितम्** आगतम् (अतिथिम्) । **माम्** इमम् जनम् (दुर्वाससम्) । **न** । **वेत्सि** जानासि (अतिथित्वेन) । **सः** (दुष्यन्तः) । **बोधितः** स्मारितः । **सन्** । **अपि** । **त्वाम्** भवतीम् । **प्रमत्तः** प्रमादी जनः । **प्रथमम्** पूर्वम् । **कृताम्** विहिताम् । **कथाम्** चर्चाम् **इव** । **न** । **स्मरिष्यति** ।

हिन्दी-व्याख्या—"प्रथमम् कृताम् (अङ्गीकृताम्)" को शकुन्तला का विशेषण भी बनाया जा सकता है । "अपि" का अर्थ है खुद तो नहीं याद करेगा, याद दिलाने पर भी याद नहीं करेगा। प्रमत्त का अर्थ असावधान होता है; इसे राजा का विशेषण भी बताया जा सकता है । हिन्दी में कथा कहते हैं पर संस्कृत में कथा का अर्थ "बात" होने से करते हैं ।

छन्द—वंशस्थ [१।१८ द्रष्टव्य] ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, उपमा, श्लेष, छेकानुप्रास व वृत्त्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—हाय ! गजब हो गया ! अप्रिय बात हो ही गई । किसी पूजनीय

यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति]।

अनसूया—गच्छ पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकंपेमि [गच्छ पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि]।

प्रियंवदा—तह [तथा]। (इति निष्क्रान्ता)।

अनसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) **अब्बो आवेगक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुष्फभाअणं** [अहो आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्]। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति)

व्यक्ति के प्रति सूने दिल वाली (होकर) शकुन्तला ने अपराध कर दिया है। निश्चय ही किसी ऐसे वैसे के प्रति नहीं महर्षि दुर्वासा हैं जिन्हें क्रोध सुलभ है। उस प्रकार शाप देकर वेग शक्ति से खिली हुई और दुर्निवार चाल से लौट गये। आग के अलावा जलाने में कौन समर्थ है ?

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** (कथयति यत्)। **हा** हन्त! **धिक्** धिक्कृतयः (दैवम् प्रति)। **अप्रियम्** न प्रियम् अभीष्टम्। **एव**। **संवृत्तम्** जातम्। **कस्मिन्नपि** अज्ञाते (अवर्णनीये वा पूजार्हे पूज्ये जने)। **अपराद्धा** अपराधम् कृतवती। **शून्यहृदया शून्यम्** अकर्मण्यम् **हृदयम्** अन्तरम् यस्याः सा। **शकुन्तला**। **न**। **खलु** निश्चयेन। **यस्मिन् कस्मिन्नपि** साधारणम् (जनम्) प्रति। **एषः** अयम् (अभ्यागतः)। **दुर्वासाः**। **सुलभकोपः सुलभः** शीघ्रः **कोपः** क्रोधः यस्य तादृशः **महर्षिः महान्** श्रेष्ठः च असौ **ऋषिः** मुनिः च। **तथा** यथोक्तम्। **शप्त्वा** शापम् दत्वा। **वेगबलोत्फुल्लया वेगस्य** शीघ्रतायाः **बलेन** शक्त्या **उत्फुल्लया** विकसितया। **दुर्वारया** दुर्निवारया। **गत्या** पदक्षेपेण। **प्रतिनिवृत्तः** गतः। **कः**। **अन्यः** अपरः। **हुतवहात्** अग्नेः। **दग्धुम्** ज्वलयितुम्। **प्रभवति** शक्नोति।

अलंकार—दृष्टान्त।

हिन्दी-अनुवाद—**अनसूया**—जाओ; पैरों पर गिरकर इन्हें वापस लाओ; इस बीच में अर्घ-जल का प्रबन्ध करती हूँ।

संस्कृत टीका—**अनसूया** (कथयति यत्) **गच्छ** याहि। **पादयोः** चरणयोः। **प्रणम्य** नत्वा (पतित्वा)। **निवर्तय** आवर्तय। **एनम्** इमम् (ऋषिम् दुर्वाससम्)। **यावत्** अत्रान्तरे। **अहम्** अयम् जनः (अनसूया)। **अर्घोदकम्**। **अर्घार्थम्** पूजार्थम् **उदकम्** जलम्। **उपकल्पयामि** विदधामि।

हिन्दी-व्याख्या—"पादयोः" में द्वितीया के अर्थ में सप्तमी है। "यावत्" का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ध्यान देने योग्य है।

हिन्दी-अनुवाद—**प्रियंवदा**—ठीक है। (यह कहकर निकल जाती है)

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा**—(कथयति यत्)। **तथा** आम्। **इति** एवम् उक्त्वा। **निष्क्रान्ता** बहिः गता।

हिन्दी अनुवाद—**अनसूया** (अगले कदम पर ठोकर का अभिनय कर)—अरे! जल्दबाजी के

(प्रविश्य) प्रियंवदा—सहि पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि ? किं वि उण साणुक्कोसो किदो [सखि प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति ? किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः]।

अनसूया—(सस्मितम्) तस्सिं बहु एदं पि, कहेहि [तस्मिन् बह्वेतदपि, कथय]।

प्रियंवदा—जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए भअवं पढम त्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वोत्ति [यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया भगवन् प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षितव्य इति]।

कारण लड़खड़ाई चाल से मेरे हाथ के अगले भाग से फूल का बरतन गिर गया। (यह कहकर फूल बिनने का अभिनय करती है)

संस्कृत-टीका-अनसूया (कथयति यत्)। **पदान्तरे** अन्यत् **पदम्** चरणक्षेपः **पदान्तरम्** तस्मिन् ! **स्खलितम्** स्खलनम्। **निरूप्य** नाटयित्वा। **अहो** (दुःखप्रकटने)। **आवेगस्खलितया आवेगेन** शीघ्रतया **स्खलितया** कम्पितया **गत्या** पदक्षेपेण। **प्रभ्रष्टम्** निपतितम्। **मम** मे। **अग्रहस्तात्** हस्तस्य करस्य **अग्रात्** अग्रभागात्। **पुष्पभाजनम्** **पुष्पाणाम्** कुसुमानाम् **भाजनम्** पात्रम्। **इति** एवम् उक्त्वा। पुष्पोच्चयम् **पुष्पाणाम्** कुसुमानाम् **उच्चयम्** उत्थापनम् (संग्रहणम्)। **रूपयति** नाटयति।

हिन्दी-व्याख्या—हाथ से पात्र गिरना अपशकुन है। शाप देकर एक बार चल देने पर दुर्वासा का मनाने पर भी न लौटना भावी अनिष्ट है जिसकी सूचना यह अपशकुन देता है।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) (हे) सखी, स्वभाव से ही टेढ़े वे (महर्षि) किसकी विनती स्वीकार करते हैं फिर भी कुछ दया-युक्त तो (उन्हें) किया।

संस्कृत-टीका—**प्रविश्य** अन्तः आगम्य। **सखि** (हे) आलि। **प्रकृतिवक्रः** प्रकृत्या स्वभावेन **वक्रः** कुटिलः। **सः** पूर्वोक्तः (दुर्वासाः)। **कस्य** (न कस्यापि)। **अनुनयम्** प्रार्थनाम् **प्रतिगृह्णाति** अङ्गीकरोति। **किमपि** ईषत्। **पुनः** तु। **सानुक्रोशः** **अनुक्रोशेन** दयया सह वर्तमानः, **कृतः** विहितः।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ यह बात पक्की हो गई है कि दुर्वासा ही क्रुद्ध हुए हैं। महाभारत में ऐसी घटना नहीं है जिससे दुष्यन्त का शकुन्तला को भूलना केवल मिथ्या आचरण है। कालिदास ने नायक को निर्दोष दिखाने के लिये यह नई उद्भावना की है। "कुछ सदय" करने से आशय है कि उन्होंने शाप से मुक्ति होने की संभावना जता दी है। यह संभावना पहचान देखकर राजा को याद आ जायेगा।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—(मुस्कराकर)—कहो कि उनके विषय में यह भी बहुत है।

संस्कृत-टीका—अनसूया। **स्मितेन** ईषद् हास्येन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **तस्मिन्** तस्य (दुर्वाससः) विषये। **बहु** अधिकम् (फलम्)। **एतत्** इदम् (ईषत् सानुक्रोशत्वम्) अपि **कथय** वद (वदेत्)।

हिन्दी-अनुवाद—**प्रियंवदा**—जब लौटना (उन्होंने) नहीं चाहा तब मैंने निवेदन किया

अनसूया—तदो तदो [ततस्ततः]।

प्रियंवदा—तदो मे वअणं अण्णहाभविदुं णारिहदि । किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मंतअतो अंतरिहिदो [ततो मे वचनमन्यथाभवितुं नार्हति किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयन् स्वयमन्तर्हितः]।

अनसूया—सक्कं दाणिं अस्ससिदुं । अत्थि तेन राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअं सुमरणीअंति सअं पिणद्धं । तस्सिं साहीणोबाआ सउंदला भविस्सदि [शक्यमिदानीमाश्वासयितुम् । अस्ति तेन राजर्षिणा प्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम् । तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति] ।

कि श्रीमन् ! पुत्री का, जिसे तपस्या की शक्ति का ज्ञान नहीं है, एक अपराध "यह पहला है" देखकर (सोचकर) श्रीमान् को माफ कर देना चाहिये ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) । **यदा** । **निवर्त्तितुम्** प्रत्यावर्त्तितुम् । **न इच्छति** न वाञ्छति । **तदा** । **विज्ञापितः** निवेदितः (दुर्वासाः) । **मया** (यत्) **भगवन्** श्रीमन् । **प्रथमः** आद्यः (**अपराधः** आगः) । **इति** एवम् **प्रेक्ष्य** दृष्ट्वा (विचार्य) **अविज्ञाततपःप्रभावस्य तपसः** तपस्यायाः **प्रभावः** शक्तिः **तपःप्रभावः** **विज्ञातः** **तपःप्रभावः** येन **विज्ञाततपःप्रभावः** न **विज्ञाततपःप्रभावः** **अविज्ञाततपःप्रभावः** तस्य । **दुहितृजनस्य** पुत्र्याः (**एकः अपराधः**) **भगवता** श्रीमता (दुर्वाससा) **एकः** केवलः । **अपराधः** आगः । **मर्षितव्यः** क्षन्तव्यः । **इति** ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रथम अपराध है, यह देखकर का अर्थ है कि यह विचारकर कि क्रोध करना उचित होगा या नहीं । जैसे कण्व की पुत्री है, वैसे ही आपकी है और फिर बालिका है जिससे तप की शक्ति नहीं जानती । ऐसी दशा में (कम से कम) पहले अपराध को तो क्षमा कर ही दीजिये ।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—तब, तब ।

संस्कृत-टीका—**अनसूया**—(कथयति यत्) । **ततः** तत्पश्चात् (किम् जातम्) । **ततः** तत्पश्चात् (किम् जातम्) ।

हिन्दी-व्याख्या—"ततः" कथा के प्रति उत्सुकता दिखाता है तथा हुँकारी भरने के लिये आता है; इसका दो बार प्रयोग सुनने की उत्सुकता की तीव्रता बताता है ।

हिन्दी अनुवाद—**प्रियंवदा** उसके बाद "मेरा वचन विपरीत नहीं हो सकता लेकिन पहचान स्वरूप अलङ्कार दिखाने से शाप निवृत्त हो जायेगा" यह कहते हुये खुद अन्तर्धान हो गये ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) **ततः** तदनन्तरम् । **मे** मम । **वचनम्** कथितम् । **अन्यथा** विपरीतम् । **भवितुम्** । **न** । **अर्हति** संभवति । **किंतु** तथापि । **अभिज्ञानाभरणदर्शनेन** **अभिज्ञानार्थम्** परिचयार्थेन **आभरणम्** अलङ्कारः तस्य **दर्शनेन** अवलोकनेन । **शापः** । **निवर्त्स्यते** **समाप्तः** भविष्यति । **इति** एवम् । **मन्त्रयन्** कथयन् । **स्वयम्** आत्मना । **अन्तर्हितः** अन्तर्धानम् अवाप ।

हिन्दी-अनुवाद—**अनसूया**—सान्त्वना देना अब संभव है । विदा हुये उन राजर्षि ने "याद रखना" यह कहकर अँगूठी जिस पर उनका नाम अंकित था स्वयं पहनाई है । उस विषय में उपाय शकुन्तला के हाथ में रहेगा ।

प्रियंवदा—सहि एहि देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह [सखि एहि देवकार्यं तावन्निर्वर्त्तयावः] (इति परिक्रामतः) ।

प्रियंवदा—(विलोक्य) अणसूए पेक्ख दाव । वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही । भत्तुगदाए चिंताए अत्ताणं विण एसा विभावेदि । किं उण आअंतुअं [अनसूये पश्य तावत् । वामहस्तोपहितवदनालिखितेव प्रियसखी । भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति । किं पुनरागन्तुकम् ।]

अनसूया—पिअंवदे दुवेणं एव्व णं णो मुहे एसो वुत्तंतो चिट्ठदु । रक्खिदव्वा खु पकिदिपेलवा पिअसही । [प्रियंवदे द्वयोरेव ननु नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी ।]

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्) । **शक्यम्** संभवति । **इदानीम्** अधुना । **आश्वासयितुम्** उपसान्त्वयितुम् । **अस्ति** वर्त्तते । **तेन** । **राजर्षिणा** (दुष्यन्तेन) । **संप्रस्थितेन** इतः गतेन (प्रस्थानकाले) **स्वनामधेयाङ्कितम् स्वस्य** आत्मनः **नामधेयेन** नाम्ना **अङ्कितम्** । **अङ्गुलीयकम्** मुद्रिका (त्वया अनेन अभिज्ञानेन गान्धर्वविवाहादिकम्) सर्वम् घटितम् **स्मरणीयम्** । **इति** एवम् **उक्त्वा** । **स्वयम्** आत्महस्तेन । **पिनद्धम्** परिधापितम् । **तस्मिन्** तस्य (शापस्य) विषये । **स्वाधीनोपाया स्वस्य** आत्मनः **अधीनः** आयत्तः **उपायः** प्रतीकारः यस्याः तादृशी । शकुन्तला । **भविष्यति** स्यात् ।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—(हे) सखी, आओ जरा पूजा निवटा ली जाय ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) । **सखि** (हे) आलि । **एहि** आगच्छ । **देवकार्यम् देवस्य** परमेश्वरस्य **कार्यम्** कर्त्तव्यम् (पूजा) । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **निर्वर्तयावः** सम्पादयावः । **इति** एवम् उक्ते । **परिक्रामतः** ।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (देखकर)—(हे) अनसूया, जरा देखो प्यारी सहेली शकुन्तला, मुँह बाँये हाथ पर रखी हुई चित्र लिखित-सी प्रतीत होती है । पतिसम्बन्धी चिन्ता से इसने अपनी सुध-बुध (तक) खो दी है; अतिथि की सुध-बुध की तो बात ही क्या ?

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा । विलोक्य (शकुन्तलाम्) दृष्ट्वा (कथयति यत्) । (हे) अनसूये । **पश्य** विलोकय । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । वामहस्तोपहितवदना **वामे** सव्ये **हस्ते** करे **उपहितम्** स्थापितम् **वदनम्** मुखम् यया सा (शकुन्तला) । **आलिखिता** चित्रे अर्पिता । **इव** । **प्रियसखी प्रिया** वल्लभा च सा **सखी** आली च (शकुन्तला) । **भर्तृगतया** भर्तारम् पतिम् गता आसक्ता (तद्विषयिका) तया । **चिन्तया** विचारेण । **आत्मानं** स्वम् । **अपि न** । **एषा** इयम् (शकुन्तला) । **विभावयति** जानाति । **किम् पुनः** का कथा । **आगन्तुकम्** अतिथिम् (विभावयेत्) ।

हिन्दी-व्याख्या—मुँह बायें हाथ पर रखना स्त्रीस्वभाव है । "चित्र सदृश होने से अत्यन्त निश्चलता" अर्थ निकलता है । अपने को न जानना से आशय है यह न जानना कि क्या खाऊँ, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ आदि ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा ।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—(हे) प्रियंवदा, हम दोनों के ही मुख तक यह

प्रियंवदा—को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि [को नाम उष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति]। (इत्युभे निष्क्रान्ते)

विष्कम्भः ।

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः)

शिष्यः—वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त प्रभातम्। तथा हि—

(शाप का) समाचार रह जाय। हर तरह से स्वभाव से सुकुमार प्यारी सखी की रक्षा करनी चाहिये।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। (हे) **प्रियंवदे**। **द्वयोः** उभयोः। **एव**। **ननु** (अनुमतो)। **नौ** आवयोः। **मुखे** वदने। **एषः** अयम्। (शापस्य)। **वृत्तान्तः** उदन्तः। **तिष्ठतु** नियमितः भवतु। **रक्षितव्या**। **खलु** निश्चयेन। **प्रकृतिपेलवा** प्रकृत्या स्वभावेन **पेलवा** सुकुमारा। **प्रियसखी** **प्रिया** वल्लभा च सा **सखी** आली (शकुन्तला) च।

हिन्दी-व्याख्या—स्वभाव से कोमल होने के कारण शकुन्तला को बहुत तकलीफ होगी यह सोचकर शाप का वृत्तान्त दोनों सखियाँ अपने तक ही सीमित रख रही हैं।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—भला कौन गर्म पानी से नवमालिका (नामक लता) को सींचता है। इसके बाद दोनों बाहर जाती हैं।

संस्कृत टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। **कः** (जनः)। **नाम** (संभावनायाम्) (न कोऽपि) **उष्णोदकेन उष्णम्** तप्तम् च तत् **उदकम्** जलम् च तेन। **नवमालिकाम्** (तन्नाम्नीम् लताम्)। **सिञ्चति** उक्षति। **इति** ततः। **उभे** द्वे अपि **निष्क्रान्ते** बहिः गते।

(विष्कम्भ) (इसके बाद सोकर उठा हुआ शिष्य रंग-मंच पर दिखता है।)

हिन्दी-अनुवाद—शिष्य—समय जानने के लिए परदेश से लौटे पूज्य काश्यप (कण्व) ने मुझे आदेश दिया है। खुले में निकलकर जरा देखूं कि रात का कितना (भाग) शेष है। (घूम और देखकर) अहा ! प्रभात हो गया। देखो न।

संस्कृत-टीका—विष्कम्भः। **ततः** तदनन्तरम्। **प्रविशति** रङ्ग-भुवि दृश्यते, **सुप्तोत्थितः** सुप्तः च **उत्थितः** जागृतः च। **शिष्यः** अन्तेवासी। (कथयति यत्)। **वेलोपलक्षणार्थम्** वेलायाः समयस्य **उपलक्षणार्थम्** ज्ञानार्थम्। **आदिष्टः** आज्ञापितः। **अस्मि**। **तत्रभवता** पूज्येन। **प्रवासात्** परदेशवासात्। **उपावृत्तेन** आगतेन। **काश्यपेन** कश्यपगोत्रोत्पन्नेन (कण्वेन)। **प्रकाशम्** आवरण-रहिते स्थाने। **निर्गतः** निष्क्रान्तः। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) **अवलोकयामि** पश्यामि। **कियत्** कियान् भागः। **अवशिष्टम्** अधुना अपि न व्यतीतम्। **रजन्याः** रात्र्याः **इति**। **परिक्रम्य**। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। **च हन्त** अहो। **प्रभातम्** प्रातः (आगतम्)। **तथा हि** प्रमाणम् उपन्यस्यते।

हिन्दी-व्याख्या—"विष्कम्भ" का अर्थ इस अंक के आरम्भ में देखा जा सकता है।

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
मा विष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ १ ॥

अपि च—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।

हिन्दी अनुवाद—एक ओर ओषधियों का स्वामी (चन्द्रमा) अस्त (पर्वत) की चोटी पर पहुँच रहा है और एक (दूसरी) ओर सूर्य अरुण को आगे कर प्रकट हुए हैं। एक साथ दो तेजों का संकट और उत्कर्ष समाज को दशा-विशेषों की शिक्षा-सी दे रहे हैं।

अन्वय—एकतः ओषधीनाम् पतिः अस्तशिखरम् याति एकतः (च) अर्कः अरुणपुरःसरः (सन्) आविष्कृतः। युगपत् तेजोद्वयस्य व्यसनोदयाभ्याम् लोकः आत्मदशान्तरेषु नियम्यते इव।

संस्कृत-टीका—**एकतः** एकस्याम् दिशि। **ओषधीनाम्** वनस्पतीनाम्। **पतिः** स्वामी (चन्द्रः)। **अस्तशिखरम् अस्तस्य** अस्ताख्यस्य पर्वतस्य **शिखरम्** अग्रभागम्। **याति** गच्छति। **एकतः** एकस्याम् (परस्याम्) दिशि (च)। **अर्कः** सूर्यः। **अरुणपुरःसरः अरुणः** अनूरुः **पुरःसरः** अग्रवर्ती यस्य सः (सन्)। **आविष्कृतः** प्रकटितः। **युगपत्** एकदा। **तेजोद्वयस्य तेजसोः द्वयस्य** युग्मस्य **व्यसनोदयाभ्याम् व्यसनम्** सङ्कटः च **उदयः** उन्नतिः च ताभ्याम् (कर्तृभ्याम्)। **लोकः** जनाः। **आत्मदशान्तरेषु आत्मनः** स्वस्य **दशानाम्** अवस्थानाम् **अन्तरेषु** विशेषेषु (अन्तराणाम् विषये)। **नियम्यते** शिक्ष्यते। **इव** इति प्रतीयते।

हिन्दी-व्याख्या—ओषधियों का पति कहने का आशय है, जो दुःसह मरणादि विपत्तियों का विनाशक है, वह तक विपत्ति के गड्ढे में गिरता है। दो तेजों से आशय है सूर्य और चंद्र। एक समय ही एक का उदय और एक का अस्त होने से नियम संभव हुआ। ये उदय-अस्त यह शिक्षा देते हैं कि एक ही समय किसी का पतन होता है और किसी का उत्कर्ष। व्यसन और उदय को हेतु भी माना जा सकता है। (ओषधि-जैसे) महान् भृत्य वाला महान् व्यक्ति भी विपत्ति पाता है और (अरुण-जैसे) भृत्य को समृद्धिशाली स्वामी (राजा यहाँ सूर्य) ऊँचा स्थान देता है, ये लोक-व्यवहार यहाँ दिये हैं। जब जगत् के कारण ये दो तेज तक व्यसन और उदय के वश में हैं तो अन्यों की बात ही क्या यह अर्थ चमत्कार लाता है।

छन्द—वसन्ततिलका (१।८ द्रष्टव्य)

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, निदर्शना, तुल्ययोगिता, यथासंख्य, हेतु, छेकानुप्रास व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—और भी।

संस्कृत-टीका—अपि च अन्यत् वर्णनीयम् एतत् अस्ति।

हिन्दी-अनुवाद—चन्द्रमा के अन्तर्धान हो जाने पर वही कुमुदिनी जिसकी शोभा अदृश्य है

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ २ ॥

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

अनसूया—जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं [यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्]।

(जो अब तक आँखें हरी कर देती थी) मेरी आँखें हरी नहीं करती। निश्चय ही अबला के प्रिय के परदेश जाने से उत्पन्न होने वाले दुःख बहुत-बहुत दुःसह होते हैं (कदापि नहीं सहे जा सकते)।

अन्वयः—शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीयशोभा (सती) मे दृष्टिम् न नन्दयति। नूनम् इष्टप्रवासजनितानि अबलाजनस्य दुःखानि अतिमात्रसुदुःसहानि।

संस्कृत टीका—**शशिनि** चन्द्रे। **अन्तर्हिते** व्यवहिते (अस्तम् गते सति)। **सा**। **एव**। **कुमुद्वती** कुमुदिनी। **संस्मरणीयशोभा संस्मरणीया** अदृश्या **शोभा** सुन्दरता यस्याः तादृशी (सती)। **मे** मम। **दृष्टिम्** नेत्रे। **न**। **नन्दयति** हर्षयति। **नूनम्** **अबलाजनस्य** स्त्रीणाम्। **इष्टप्रवासजनितानि इष्टस्य** प्रियस्य **प्रवासेन** दूरदेशवासेन **जनितानि** उत्पादितानि। **दुःखानि** क्लेशाः। **अतिमात्रसुदुःसहानि अतिमात्रम्** यथा स्यात् तथा **सुदुःसहानि**।

हिन्दी-व्याख्या—"जन" शब्द "जाति" वाचक है; "समूह" अर्थ भी लिया जा सकता है। "अतिमात्र" और "सु" क्रियाविशेषण सुदुःसहत्व का अनुष्ठान भी अशक्य है, यह सूचित करते हैं। इस श्लोक में चन्द्र, चन्द्रवंशी दुष्यन्त के लिये और कुमुद्वती (कु=पृथ्वी (में) मुद्वती आनन्दयुक्त) शकुन्तला के लिये है। यह परोक्ष सूचना है कि दुष्यन्त दूर चले गये हैं और शकुन्तला उदास है। इस समाचार की प्रतिक्रिया तापस को भी अभिभूत किये हैं जिससे वह ऐसा वर्णन शकुन्तला की सहानुभूति में कर रहा है।

छन्द—वसन्ततिलका (१.८ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिङ्ग, छेकानुप्रास। वृत्त्यनुप्रास व श्रुत्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—(पर्दा गिरने के बाद प्रविष्ट होकर)

अनसूया—यद्यपि यह सम्भावना है कि विषयों से विमुख व्यक्ति को यह सब (प्रेम का हाल) विदित नहीं है तथापि (यह निर्विवाद है कि) राजा ने शकुन्तला के प्रति अनुचित किया है।

संस्कृत टीका—**प्रविश्य** रङ्गभूमौ आगत्य। **अपटूयाः** जवनिकायाः **क्षेपेण** पतनपूर्वकम्। **अनसूया** (कथयति यत्)। **यद्यपि** यदपि। **नाम** (सम्भावनायाम्)। **विषयपराङ्मुखस्य विषयेभ्यः** (शब्दस्पर्शादिभ्यः) **पराङ्मुखस्य** विमुखस्य। **अपि** (निर्धारणे)। **जनस्य** व्यक्तेः **एतत्** इदम् (प्रेम-वृत्तम्)। **न**। **विदितम्** ज्ञातम्। **तथापि** तदपि, **तेन**। **राज्ञा** नृपेण (दुष्यन्तेन, **शकुन्तलायाम्** **शकुन्तलायाः** विषये **अनार्यम्** न **आर्यम्** उचितम् तत् यथा स्यात् तथा। **आचरितम्**। कृतम्।

हिन्दी-व्याख्या—यह प्रवेश एकाएक होता है। इसके पहले परदा गिरता है और दर्शकों को उत्कण्ठा असह्य न हो, इसके पहले ही प्रवेश हो जाता है। परदा गिराना इसलिये आवश्यक हुआ

शिष्यः—यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि । (इति निष्क्रान्तः)

अनसूया—पडिबुद्धा वि किं करिस्सं । ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरंति । कामो दाणिं सकामो होदु । जेण असच्चसंधे जणे सुण्णहिअआ सही पदं कारिदा । अहवा दुव्वाससो कोवो एसो विआरेदि । अण्णहा कहं सो राएसी तारिसाणि मंतिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं वि ण विसज्जेदि । ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं से विसज्जेम । दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु । णं सहीगामी दोसो त्ति ववसिदा वि ण पारेमि पवासपरिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्संतपरिणीदं आवण्णसत्तं सउंदलं निवेदिदुं । इत्थंगए अम्हेहिं किं करणिज्जं । [प्रतिबुद्धापि किं करिष्ये न मे उचितेष्वपि निजकार्येषु हस्त पादं प्रसरति । काम इदानीं सकामो भवतु । येनासत्यसंधे जने शून्यहृदया सखी पदं कारिता । अथवा दुर्वाससः कोप एष विकारयति । अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति । तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः । दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम् । ननु सखीगामी दोष इति व्यवसितापि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम् । इत्थं गतेऽस्माभिः किं करणीयम्] ।

क्योंकि संस्कृत नाटकों में बिना पूर्व सूचना के रङ्ग-मंच पर किसी का प्रवेश या निर्गम नहीं होता । 'नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वा' ऐसी स्थिति में परदा गिराकर प्रवेश कराया जाता है । परदा गिर जाने से दर्शक को भान होता है कि नई चीज शुरू हो रही है, इसे अपने से समझने की कोशिश करनी चाहिये । एकाएक रंग-मंच पर परदे के अन्दर से जब कोई व्यक्ति आ जाता है, तो दर्शक का मन उसे यह कहकर स्वीकार नहीं करता कि यह बाच में कहां से टपक पड़ा । दूसरा उपाय विष्कंभ के द्वारा सूचना देना है । अभी-अभी एक विष्कंभ समाप्त हुआ है, अतः दूसरा विष्कंभ देना अच्छा न होता । यहाँ कहे वाक्य हिन्दी-रचना से उतना मेल नहीं खाते । आशय यह है कि भले प्रेम-व्यापार से हम अपरिचित हों पर इतना तो निर्विवाद रूप से जानती हैं कि पहले आत्मीय बनकर फिर भूल जाना घोर अनुचित है ।

हिन्दी-अनुवाद—शिष्य—जरा गुरु जी को बता दूँ कि होम का समय हो गया । (यह कहकर बाहर जाता है ।)

संस्कृत-टीका—शिष्यः अन्तेवासी (कथयति यत्) । यावत् (वाक्यालङ्कारे) । **उपस्थिताम्** प्राप्ताम् । **होमवेलाम्** होमस्य हवनस्य **वेलाम्** कालम् । **गुरवे** आचार्याय । **निवेदयामि** सूचयामि । **इति** एवम् उक्त्वा । **निष्क्रान्तः** निर्गतः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर प्रभात हो गया है, यह सूचना मिल चुकी है । प्रभात में होम होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—जागकर भी क्या करूँगी ? अपने कर्त्तव्यों के लिये, भले ही उन्हें करना (सर्वथा) उचित हो—मेरे हाथ पैर नहीं चल रहे हैं । अब उन काम-देव के मनोरथ पूर्ण हों जिन्होंने झूठी प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति (के हृदय) में सूने दिल वाली सहेली के द्वारा स्थान बनवाया

है (जिनके कारण सहेली ने व्यक्ति के हृदय में स्थान बनाया है)। या यों कहें कि यह दुर्वासा का गुस्सा बिगाड़ कर रहा है; नहीं तो कैसे वे राजर्षि वैसा कहकर इतने समय से पत्र तक नहीं भेजते ? तो (यह किया जाय कि) यहाँ से पहचान की अँगूठी उनके पास भेज दी जाय, (पर) जिनके स्वभाव में (ही) दुःख है, उन तपस्वियों से कौन प्रार्थना करे (को कौन राजी करे)। दोष सखी (शकुन्तला) का ही माना जायेगा, अतः निश्चय करके भी परदेश-वास से लौटे पिता काश्यप (कण्व) से नहीं बता सकती कि शकुन्तला दुष्यन्त से विवाहित और गर्भवती है। ऐसी दशा में क्या किया जाय ?

संस्कृत टीका—**प्रतिबुद्धा** त्यक्तनिद्रा। **अपि**। **किम्**। **करिष्ये** विधास्ये। **न**। **मे** मम। **उचितेषु** समीचीनेषु। **अपि**। **निजकार्येषु निजस्य** स्वस्य **कार्येषु** कर्त्तव्येषु (कर्त्तव्यानाम् विषये) **हस्तपादम् हस्तौ** करौ च **पादौ** चरणौ च। **प्रसरति** चलति। **कामः** स्मरः। **इदानीम्** अधुना। **सकामः** पूर्णमनोरथः। **भवतु** अस्तु। **येन** यद्द्वारा **असत्यसंधे सत्या सन्धा** प्रतिज्ञा यस्य सः सत्यसंधः न सत्यसंधः **असत्यसंधः** तस्मिन्। **जने** (जनस्य हृदये) **शून्यहृदया शून्यम्** रिक्तम् **हृदयम्** अन्तरम् यस्याः सा। **सखी** आली (शकुन्तला)। **पदम्** स्थानम्। **कारिता कर्तुम्** प्रेरिता। **अथवा** यद्वा **दुर्वाससः** (ऋषेः)। **कोपः** क्रोधः। **एषः** अयम्। **विकारयति** अन्यथा-कारयति **अन्यथा** नो चेत्। **कथम्** केन प्रकारेण। **सः**। **राजर्षिः** (दुष्यन्तः)। **तादृशानि** तत्प्रकारकाणि वचनानि। **मन्त्रयित्वा** उक्त्वा। **एतावत्कालस्य** एतावान् इयान् च असौ **कालः** समयः च तस्य। **लेखमात्रम्** केवलम् लेखम् पत्रम्। **अपि**। **न**। **विसृजति** प्रेषयति। **तत्** तर्हि। **इतः** अस्मात् स्थानात्, **अभिज्ञानम्** परिचयचिह्नम्। **तस्य** तम् (दुष्यन्तम्) प्रति। **विसृजावः** प्रेषयावः। **दुःखशीले दुःखम्** क्लेशः **शीले** स्वभावे यस्य तस्मिन्। **तपस्विजने** तापसमात्रे (तापसान् प्रति)। **कः**। **अभ्यर्थ्यताम्** प्रार्थ्यताम्। **ननु** (संभावनायाम्)। **सखीगामी** आली (**शकुन्तला**) सम्बद्धः (सख्याः एव) **दोषः** त्रुटिः। **इति** एवम् विचार्य। **व्यवसिता** कृतनिश्चया। **अपि**। **न**। **पारयामि** शक्नोमि। **प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य प्रवासात्** देशान्तरे वासात् **प्रतिनिवृत्तस्य** पुनः आगतस्य **तातकाश्यपस्य तातः** पिता च सः काश्यपः (कण्वः) च तस्य। **दुष्यन्तपरिणीताम् दुष्यन्तेन परिणीताम्** ऊढाम्। **आपन्नसत्त्वाम् आपन्नम्** प्राप्तम् **सत्त्वम्** जीवः यया (गर्भिणीम्)। **शकुन्तलाम्**। **निवेदयितुम्** सूचयितुम्। **इत्थंगते** अस्याम् अवस्थायाम् प्राप्तायाम्। **अस्माभिः** मया (आवाभ्याम् वा)। **किम् करणीयम्** विधेयम्।

हिन्दी व्याख्या—अनसूया गम्भीर है। शकुन्तला की चिन्ता ही उसे हमेशा रहती है। सबेरे उठते ही चिन्ता से भर गई है। सखी के प्रति ऐसी ममता सराहनीय है। दुर्वासा के शाप की बात चलाकर इशारा कर दिया गया है कि दुष्यन्त राजर्षि हैं; तुच्छ नहीं, (शाप से विस्मृत हो गई है, जान बूझकर निर्मोही नहीं हैं) "तपस्वियों से कौन अभ्यर्थना करे" से आशय है कि उनसे प्रार्थना करना व्यर्थ है। वे दुःख झेलते झेलते उदासीन हो गये हैं और ऐसे व्यक्ति को प्रेम के मामले में दूत बनाना ठीक नहीं है, वे तपस्या से कृश होकर इतने चिड़चिड़े हो गये हैं कि कोई काम कहना उनकी रुखाई का सामना करना होगा, वे नियम का पालन करने वाले हैं और शकुन्तला का नियम भंग

(प्रविश्य) प्रियंवदा (सहर्षम्) सहि तुवर सउंदलाए पत्थाणकोदुअं णिव्वत्तिदुं [सखि त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्]।

अनसूया—सहि कहं एदं [सखि कथमेतत्]।

प्रियंवदा—सुणाहि दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउंदलासआसं गदम्हि. तदो जाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणंदिदं दिट्ठिआ धूमाउलिद-दिट्ठिणो वि जअमाणस्स पाअए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जा संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमित्ति (शृणु इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गतास्मि। ततो यावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम् दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि इति)।

देखकर ऐसा प्रस्ताव कभी स्वीकार नहीं कर सकते अथवा तप-जैसी उच्च वस्तु का त्यागकर दूतत्व जैसा कार्य करने को राजी नहीं हो सकते।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) प्रियंवदा (हर्ष के साथ) (हे) सखी, शकुन्तला की विदाई के मांगलिक कार्य निबटाने के लिये जल्दी करो।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य रङ्गभुवि आगत्य। प्रियंवदा (कथयति यत्) सखि (हे) आलि। त्वरस्व शीघ्रतान् कुरु। शकुन्तलायाः। प्रस्थानकौतुकम् प्रस्थानस्य (पतिगृहम् प्रति गमनस्य) कौतुकम् मङ्गलकृत्यम्। निर्वर्तयितुम् सम्पादयितुम्।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ बिना पूर्व सूचना के प्रवेश कराया गया है। परदा गिरने के बाद रह-रहकर प्रविष्ट कराया जा रहा है, दूसरी बार परदा गिरने की तुरन्त जरूरत नहीं समझी गई।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—सखी, यह कैसे ?

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत्)। सखि (हे) आलि। कथम् किम् (कुतः समायातम्)। एतत् इदम् (प्रस्थानकौतुकम्)।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—सुनो। अभी-अभी "सुख-पूर्वक सोई तो ?" यह पूछने के लिये शकुन्तला के पास गई थी। तभी लज्जा से झुके हुए मुँह वाली इस (शकुन्तला) को छाती से लगाकर पिता काश्यप (कण्व) ने यों प्रशंसा की, "यद्यपि यज्ञकर्त्ता की दृष्टि धुएँ से व्याकुल थी फिर भी उसकी आहुति आग में ही पड़ी (अन्यत्र नहीं), बेटी, तुम उस विद्या की तरह अशोच्य हो गई हो जो अच्छे शिष्य को दी जाती है। आज ही ऋषियों की संरक्षकता में तुम्हें पति के पास भेजता हूँ।"

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। शृणु आकर्णय। इदानीम् अधुना एव सुखशयनपृच्छिका सुखपूर्वकम् शयनम् जातम् वा न वा इति जिज्ञासावती (सती अहम्)। शकुन्तलासकाशम् शकुन्तलायाः सकाशम् समीपम्। गता यातवती अस्मि आसम्। ततः तदनन्तरम्।

अनसूया—अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तंत्तो [अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः] ।

यावत् एव, **एनाम्** इमाम् (शकुन्तलाम्) । **लज्जावनतमुखीम्** **लज्जया** त्रपया **अवनतम्** नम्रम् **मुखम्** वक्त्रम् यस्याः तादृशीम् । **परिष्वज्य** आलिङ्ग्य च । **तातकाश्यपेन** **तातः** पिता च सः **काश्यपः** कश्यपगोत्रोत्पन्नः च तेन । **एवम्** इत्थम् । **अभिनन्दितम्** अनुमोदितम् । **दिष्ट्या** सौभाग्येन । **धूमाकुलितदृष्टेः** **धूमेन** धूम्रेण **आकुलिता** व्याकुलीकृता **दृष्टिः** ईक्षणम् यस्याः तस्याः । **यजमानस्य** यज्ञकर्तुः **पावके** अग्नौ । **एव** (न अन्यत्र) । **आहुतिः** **पतिता** उपहृता । **वत्से** (हे) पुत्रि । **सुशिष्यपरिदत्ता** शोभनः च सः **शिष्यः** अन्तेवासी च तस्मै **परिदत्ता** वितरिता **विद्या** शिक्षा **इव** । **अशोचनीया** अशोच्या । **संवृत्ता** जाता (असि) । **अद्य** अस्मिन् (प्रस्तुते दिने) । **एव** । **ऋषिरक्षिताम्** **ऋषिभिः** मुनिभिः **रक्षिताम्** रक्ष्यमाणाम् । **त्वाम्** भवतीम् । **भर्तुः** पत्युः । **सकाशम्** समीपम् । **विसर्जयामि** प्रेषयामि । **इति** ।

हिन्दी-व्याख्या—यजमान का सौभाग्य है कि उसकी आहुति न दिखने पर भी अग्नि में पड़कर सफल हुई। यह दृष्टान्त कण्व की कृत-कृत्यता बताता है। यजमान कण्व का न दिखना उनका बाहर रहना और आहुति ठीक-ठीक पड़ना सुपात्र दुष्यन्त को कन्या का प्रदान है। "अच्छे शिष्य को दी गई विद्या की भांति शकुन्तला अशोचनीय हो गई है" वाक्य भी कृतकृत्यता सूचित करता है। दोनों दृष्टान्त आश्रम-सुलभ हैं। विद्या अपात्र को मिल जाय तो भयानक फल दिखाती है और गुरु को भी बदनाम कराती है। दूसरे दृष्टान्त में शकुन्तला व दुष्यन्त को क्रमशः विद्या तथा शिष्य का उपमेय बनाया गया है। "विसर्जयामि" में वर्तमानकाल निकट भविष्य के लिये है; हिंदी व अंग्रेजी में भी ऐसे प्रयोग होते हैं। लाज से मुँह झुकाना सूचित करता है कि शकुन्तला कण्व से इसलिये डर रही है कि बिना उनकी आज्ञा के उसने व्याह कर लिया है। शकुन्तला को दण्ड देने की जगह कण्व अभिनंदित करते हैं, यह उस समय की उदारता का नमूना है। भारत के उस और इस समाज में तिलमात्र अन्तर नहीं दिखता। छाती से युवती कन्या को लगाने का प्रचलन नहीं रह गया है, यह अभिनन्दन का एक प्रकार है। जो इसके दुरुपयोग से अश्लीलता की कोटि तक पहुँच गया है। कण्व पुत्री की भावना समझते हैं। नव-विवाहित कन्या पति का विरह अधिक दिन नहीं सह सकेगी और पिता के घर में विवाहित पुत्री का अधिक दिन रहना ठीक नहीं हैं आदि मनोवैज्ञानिक और लोक-व्यवहार-संबन्धी रहस्यों से कण्व सुपरिचित हैं।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया—अच्छा किसने यह समाचार पिता काश्यप (कण्व) को सूचित किया।

संस्कृत-टीका—**अनसूया**—(कथयति यत्) । **अथ** । **केन** (जनेन) । **सूचितः** विज्ञापितः । **तातकाश्यपस्य** **तातः** पिता च **काश्यपः** कण्वः च तस्य (पितरम् कण्वम् प्रति) । **वृत्तान्तः** उदन्तः ।

प्रियंवदा—अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छंदोमईए वाकिंआए
[अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या] । (संस्कृतमाश्रित्य)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥३॥

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—यज्ञ-शाला में प्रविष्ट हुये उन (कण्व) को अशरीरिणी छन्द-मय वाणी ने (सूचित किया) ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा—(कथयति यत्) **अग्निशरणम् अग्नेः** हुताशनस्य **शरणम्** गृहम् (यज्ञशालाम्) । **प्रविष्टस्य** अन्तःगतस्य (प्रविष्टम् कण्वम् प्रति) । **शरीरम्** देहम् । **विना** (शरीर-रहितया) । **छन्दोमय्या** छन्दोबद्धया । **वाण्या** भारत्या (सूचितः वृत्तान्तः) । **संस्कृतम्** देव-भाषाम् । **आश्रित्य** प्रयुज्य ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ आकाश-वाणी से आशय है । संस्कृत का प्रयोग स्त्रीपात्र के मुख से मातृ-गुप्त के अनुसार कभी-कभी हो सकता है :—

"योऽयं विदूषकोन्मत्तबालतापसयोषिताम् । नीचानां पण्डकानां च नीचग्रहविकारिणाम् । विद्धिः प्राकृतं कार्यं कारणात्संस्कृतं क्वचित् ।" यहाँ उद्धरण दिया गया है जिससे मूल का ही प्रयोग किया गया है । अचरज की बात होने और अधिक प्रभाव डालने के लिये मूल ही याद कर लिया गया है ।

हिन्दी-अनुवाद—(हे) विप्र, पृथ्वी के ऐश्वर्य के लिये दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज धारण कर रही पुत्री को गर्भ में अग्निधारण करने वाली शमी की भाँति समझो ।

अन्वयः—ब्रह्मन् भुवः भूतये दुष्यन्तेन आहितम् तेजः दधानाम् तनयाम् अग्निगर्भाम् शमीम् इव अवेहि ।

संस्कृत-टीका—**ब्रह्मन्** (हे) विप्र (कण्व) **भुवः** पृथ्व्याः । **भूतये** ऐश्वर्याय । **दुष्यन्तेन आहितम्** निषिक्तम्, **तेजः** गर्भम् । **दधानाम्** धारयन्तीम् । **तनयाम्** पुत्रीम् । **अग्नि-गर्भाम् अग्निः** हुताशनः **गर्भे** अन्तः यस्याः तादृशीम् । **शमीम्** शमीवृक्षम् । **इव अवेहि** जानीहि ।

हिन्दी-व्याख्या—"अग्नि" पवित्रता और "भूति" गर्भ में चक्रवर्ती राजा होना बताता है शमी की लकड़ी को मथकर यज्ञ में आग निकालते हैं । लगता है अग्नि का आविष्कार शमी के मथने से ही हुआ । इसके लिये पुराणों में दो कथायें आती हैं । पहली के अनुसार आग अपने में शिव का तेज मिलने पर न सह कर भागी और जल में छिपी । वहाँ सुरक्षित न पाकर शमी में गई जहाँ से देवता उसे खोज लाये । दूसरी कथा में भी आग के इसी तरह भृगु के शाप से भागने और फिर देवताओं के द्वारा शमी वृक्ष में खोजे जाने का वृत्तान्त है । पहली कथा महाभारत के अनुशासन-पर्व (१३१।३६ से ४४) में और दूसरी उसी के शल्य पर्व (४८।१७, १८ व १२०) में पाई जाती हैं । उसी के आदि-पर्व ६।११ में भी यह कथा मिलती है । विलियम्स ने दूसरी कथा दी है जिसमें शमी में आई आग का संबंध पार्वती से बताया गया है । रघुवंश ३।९ में भी कवि ने शमी के अन्दर अग्नि को बताया है : शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम् ।

अनसूया—(प्रियंवदामाश्लिष्य) **सही पिअं मे किंदु अज्ज एव्व सउंदला णीअदित्ति उक्कंठासाधारणं परितोसं अणुहआमि** [सखि प्रियं मे किंत्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठा-साधारण परितोषमनुभवामि]।

प्रियंवदा—सहि आवां दाव उक्कंठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु। [सखि आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृत्ता भवतु]।

अनसूया—तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलंबिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालंतरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसंणिहिदं करेहि। जाव अहं वि से मिअलोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलअणित्ति मङ्गलसमालंभणाणि विरएमि [तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि]।

छन्द—अनुष्टुप् (१।५ द्रष्टव्य)।

अलंकार—अतिशयोक्ति, उपमा व अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—अनसूया (प्रियंवदा को गले लगाकर)—हे सखी, मेरे मन की बात हुई लेकिन आज ही शकुन्तला ले जाई (भेजी) जा रही है, यह सोचकर उत्कण्ठा और संतोष (साथ-साथ) अनुभव कर रही हूँ।

संस्कृत-टीका—अनसूया। प्रियंवदाम्। आश्लिष्य आलिङ्ग्य (कथयति), **सखि** (हे) आलि। **प्रियम्** मनीषितम्। **मे** मम (जातम्) किंतु **अद्य। एव शकुन्तला नीयते** (पतिगृहम्) प्रेष्यते। इति। **उत्कण्ठासाधारणम् उत्कण्ठया** विषादेन **साधारणम्** समानम् (सहितम्)। **परितोषम्** संतुष्टिम् **अनुभवामि** प्राप्नोमि।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—(हे) सखी, हम दोनों तो विषाद दूर कर लेंगी (पर) वह बेचारी सुखी हो।

संस्कृत टीका—प्रियंवदा—(कथयति यत) **सखि** (हे) आलि। **आवाम् तावत्** तु। **उत्कण्ठाम्** विषादम्। **विनोदयिष्यावः** परिहरिष्यावः। **सा तपस्विनी** अनुकम्पार्हा (शकुन्तला)। **निर्वृत्ता** सुखिता। **भवतु**।

हिन्दी अनुवाद—अनसूया—तो आम की इस डाल से लटके हुए नारियल-संपुट में इस निमित्त से ही देर तक टिकने वाली मौलसिरी की माला मैंने रख छोड़ी थी। इसे हाथ के समीप लाओ। इस बीच में भी उस (शकुन्तला) के लिये गोरोचना, तीर्थ की मट्टी, दूब अंकुर आदि माङ्गलिक अलंकरणों का प्रबन्ध करूँ।

संस्कृत-टीका—अनसूया (कथयति यत) **तेन** तर्हि। **हि** निश्चयेन। **एतस्मिन्** समीप-वर्त्तिनि। **चूतशाखावलम्बिते चूतस्य** आम्रवृक्षस्य **शाखायाम्** विटपे **अवलम्बिते** आश्रिते **नालिकेरसमुद्गके नालिकेरस्य समुद्गके** संपुटके। एतन्निमित्तम्। **एतत्** इदम्

प्रियंवदा—तह करीअदु [तथा क्रियताम्] ।

(अनसूया निष्क्रान्ता । प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति) (नेपथ्ये)

गौतमि आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय ।

प्रियंवदा—(कर्णं दत्त्वा) **अनसूए तुवरसु एदे खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअंति** [अनसूये त्वरस्व, एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषय आकार्यन्ते] ।

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

अनसूया—सहि एहि गच्छम्ह [सखि एहि गच्छावः] । (इति परिक्रामतः) ।

(प्रस्थानमङ्गलम्) एव **निमित्तम्** उद्देश्यम् यस्य तत् यथा स्यात् तथा । एव **कालान्तरक्षमा** अन्यः कालः (भावी) समयः तत्र **क्षमा** स्थायिनी **निक्षिप्ता** स्थापिता । **मया** अनेन जनेन (अनसूयया) । **केसरमालिका** केसरस्य बकुलस्य **मालिका** स्रक् । **तत्** तर्हि । **इमाम्** एताम् (केसरमालिकाम्) । **हस्तसंनिहितां हस्ते** करे **संनिहिताम्** उपस्थिताम् (करलभ्याम्) **कुरु** विधेहि । **यावत्** अत्रान्तरे । **अहम्** अपि । **तस्यै** तदर्थम् (शकुन्तलार्थम्) । **मृगरोचनाम्** गोरोचनाम् । **तीर्थमृत्तिकाम् तीर्थस्य मृत्तिकाम्** मृदम् । **दूर्वाकिसलयानि दूर्वायाः किसलयानि** अंकुरान् । **इति** एतद्रूपाणि । **मङ्गल-समालम्भनानि मङ्गलस्य** भद्रस्य **समालम्भनानि** अलङ्करणानि । **विरचयामि** विदधामि ।

हिन्दी-व्याख्या—समुद्गक नारियल की सपड़ी के दो टुकड़ों को जोड़कर बनाया जाता है । यह आश्रम की विधियाँ हैं ।

हिन्दी अनुवाद—वैसा ही किया जाय ।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्) **तथा** उक्तप्रकारेण । **क्रियताम्** विधीयताम् ।

हिन्दी अनुवाद—(अनसूया बाहर जाती है । प्रियंवदा अभिनय-पूर्वक फूल लेती है) (नेपथ्य में) ।

गौतमि, शकुन्तला को ले जाने के लिये श्री शार्ङ्गरव से कहो ।

संस्कृत टीका—**अनसूया** । **निष्क्रान्ता** निर्गता । **प्रियंवदा** । **नाट्येन** अभिनयेन । **सुमनसः** पुष्पाणि । **गृह्णाति** आदत्ते । **नेपथ्ये** (हे) गौतमि (संबुद्धौ), **आदिश्यन्ताम्** आज्ञाप्यन्ताम् । **शार्ङ्गरवमिश्राः** आदरणीयः शार्ङ्गरवः । **शकुन्तलानयनाय शकुन्तलायाः नयनाय** प्रापणार्थम् ।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा (कान लगाकर)—अनसूया, शीघ्रता करो । ये हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि बुलाये जा रहे हैं ।

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा** । **कर्णम् दत्त्वा** । श्रुतिम् नाटयित्वा (कथयति यत्) (हे) **अनसूये** (सम्बुद्धौ) । **त्वरस्व** शीघ्रताम् कुरु एते इमे समीपवर्तिनः । **खलु** निश्चयेन । **हस्तिनापुरगामिनः** हस्तिनापुरम् गन्तुम् प्रस्तुताः **ऋषयः** मुनयः । **आकार्यन्ते** आहूयन्ते ।

हिन्दी-अनुवाद—(अलङ्करण हाथ में लेकर प्रविष्ट होकर) अनसूया—(हे) सखी आओ; चलें । (इसके बाद घूमती हैं)

संस्कृत-टीका—**प्रविश्य** अभ्यन्तरे (रङ्गभूमेः) आगत्य । **समालम्भनहस्ता समालम्भनम्**

प्रियंवदा—(विलोक्य) **एसा सुज्जोदये एव्व सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवाअणिकाहिं तावसीहिं अहिणंदीअमाणा सउंदला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं** [एषा सूर्योदये एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । उपसर्पाव एनाम्]। (इत्युपसर्पतः)।

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारासनस्था शकुन्तला)

तापसीनामन्यतमा—(शकुन्तलां प्रति) **जादे भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसद्दं लहेहि** [जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवी-शब्दं लभस्व]।

अलङ्करणम् हस्ते करे यस्याः सा। **अनसूया** (कथयति यत्)। **सखि** हे आलि। **एहि** आगच्छ (सह एव)। **गच्छावः** व्रजावः। इति ततः। **परिक्रामतः**।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (देखकर)—यह शकुन्तला स्थित है जिसे सूरज निकलते ही चोटी तक स्नान कराया गया है। तथा जिसका अभिनन्दन वे तपस्विनियाँ कर रही हैं जिन्होंने हाथों में नीवार ग्रहण किया है तथा जो परम्परा से स्वस्तिवाचन की अधिकारिणी हैं। इसके पास चलें (इसके बाद दोनों पास जाती हैं।)

संस्कृत-टीका—**प्रियंवदा**। **विलोक्य** दृष्ट्वा (कथयति यत्)। **एषा इयम्** (समक्षम्)। **सूर्योदये सूर्यस्य** रवेः **उदये** आविर्भावे। **एव** (एतावत् शीघ्रम्)। **शिखामज्जिता शिखया** चूडया **मज्जिता** स्नानम् कारिता। **प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः प्रतिष्ठिताः** गृहीताः **नीवाराः** मुन्यन्नम् यैः एवंभूतौ **हस्तौ** करौ यासाम् ताभिः। **स्वस्तिवाचनिकाभिः** पारम्पर्येण स्वतिवाचनाधिकारिणीभिः। **तापसीभिः** तपस्विसुवासिनीभिः। **अभिनन्द्यमाना** अनुमोद्यमाना। **शकुन्तला**। **तिष्ठति** विद्यते। **उपसर्पावः** उपगच्छावः। **एनाम्** इमाम् (शकुन्तलाम्)। इति ततः। **उपसर्पतः** उपगच्छतः।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद शकुन्तला, जिसका कार्य ऊपर बताये जैसा है तथा जो आसन पर बैठी है, रंगमंच पर दिखती है।)

तपस्विनियों में से एक—बेटी, पति के (दिये हुये) आदर का सूचक "महारानी" पद प्राप्त करो।

संस्कृत-टीका—**ततः** तदनन्तरम्। **प्रविशति** रङ्गभूमौ दृश्यते। **यथोद्दिष्टव्यापारा यथोद्दिष्टः** उपर्युक्तः **व्यापारः** कार्यम् यस्याः तादृशी। **आसनस्था** आसने उपविष्टा। **शकुन्तला**। **तापसीनाम्** तपस्विषु वासिनीनाम् स्त्रीणाम्। **अन्यतमा** कापि स्त्री। **शकुन्तलाम्** । **प्रति** उद्दिश्य (कथयति यत्)। **जाते** (हे) पुत्रि। **भर्तुः** पत्युः। **बहुमानसूचकम् बहुः** अधिकः च सः **मानः** आदरः च तस्य **सूचकम्** प्रकाशकम्। **महादेवीशब्दम्** प्रधानमहिषी इति विरुदम्। **लभस्व** प्राप्नुहि।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ एक तापसी का आशीर्वाद है। पटरानी भी हो सकती थी यदि उसे राजा अधिक माने। दुष्यन्त की रानियाँ पहले से ही थीं जिससे शकुन्तला छोटी रानी होगी पर भाग्य से पटरानी हो सकती है।

द्वितीया—**वच्छे वीरप्पसविणी होहि** [वत्से वीरप्रसविनी भव]।

तृतीया—**वच्छे भत्तुणो बहुमदा होहि** [वत्से भर्तुर्बहुमता भव]

(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः)

सख्यौ—(उपसृत्य) **सहि सुहमज्जनं दे होदु** [सखि सुखमज्जनं ते भवतु]।

शकुन्तला—**साअअं मे सहीणं। इदो णिसीदह।** [स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्]।

उभे—(मङ्गलपात्राण्यादाय उपविश्य) **हला सज्जा होहि। जाव मङ्गलसमालंभणं विरएम** [हला सज्जा भव। यावन्मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः]

शकुन्तला—**इदं पि बहु मंतव्वं। दुल्लहं दाणिं मे सहीमंडणं भविस्सदि त्ति** [इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यतीति।] (इति बाष्पं विसृजति)

हिन्दी-अनुवाद—बेटी, वीर (पुत्र को) उत्पन्न करने वाली हो।

संस्कृत-टीका—**द्वितीया** अपरा (तापसी) (कथयति)। **वत्से** (हे) पुत्रि। **वीरप्रसविनी** वीरस्य शूरस्य (पुत्रस्य) **प्रसविनी** जननी। **भव**।

हिन्दी अनुवाद—तीसरी (तापसी)—बेटी, पति तुझे बहुत माने। (इसके बाद आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर सब बाहर जाती हैं)

संस्कृत-टीका—**तृतीया** (तापसी) (कथयति यत्)। **वत्से** (हे) पुत्रि। **भर्तुः** पत्युः। **बहुमता** अतिसम्मानिता (अभीष्टा)। **भव**। **इति** ततः। **आशिषः** आशीर्वादान्। **दत्त्वा** वितीर्य। **गौतमीवर्जम्** **गौतमीम्** त्यक्त्वा (अन्याः तापस्यः)। **निष्क्रान्ताः** निर्गताः।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों सखियाँ (पास पहुँचकर)—(हे) सखी, तुम्हारा शुभ स्नान संपन्न हो (तुम्हें नहाना मुबारक हो)।

संस्कृत-टीका—**सख्यौ** आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च)। **उपसृत्य** उपगम्य। **सखि** (हे) आलि। **सुखमज्जनम्** सुस्नानम्। **ते** तव। **भवतु** स्यात्।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—मेरी (दोनों) सखियों का अभिनन्दन है। इधर बैठो।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** (कथयति यत्)। **स्वागतम्** अभिनन्दनम् (क्रियते इदम्)। **मे** मम। **सख्योः**। **इतः** इह। **निषीदतम्** उपविशतम्।

हिन्दी अनुवाद—दोनों (मङ्गल-पात्र लेकर व बैठकर)—(हे) सखी तैयार हो जाओ। इस बीच हम दोनों मङ्गल-अलङ्करण तैयार करती हैं।

संस्कृत-टीका—**उभे** द्वे अपि (सख्यौ)। **मङ्गलपात्राणि** मङ्गलार्थम् प्रस्तुतानि भाजनानि। **आदाय** गृहीत्वा। **उपविश्य** निषद्य। **हला** हे सखि। **सज्जा** प्रस्तुता। **भव**। **यावत्** अत्रान्तरे। **मङ्गलसमालम्भनम्** मङ्गलार्थम् **समालम्भनम्** अलङ्करणम्। **विरचयावः** विदध्वः।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—इसे भी बहुत मानना है। सखियों के द्वारा किया हुआ सिंगार अब मुझे दुर्लभ हो जायगा। (यह कहकर आँसू गिराती है।)

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** (कथयति यत्)। **इदम्** एतत् (अलङ्करणम्)। **अपि**। **बहु** अधिकम्। **मन्तव्यम्** ज्ञातव्यम्। **दुर्लभम्** दुष्प्रापम्। **इदानीम्** अधुना। **मे** मम कृते। **सखी-**

उभे—सहि उइअं ण दे मंगलकाले रोइदुं [सखि उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्] (इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः)।

प्रियंवदा—आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि [आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते।]

(प्रविश्योपायनहस्तौ)

ऋषिकुमारकौ—इदमलंकरणम्। अलङ्क्रियतामत्रभवती।

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः)

मण्डनम् आलीविरचितम्। मण्डनम् अलङ्करणम्। भविष्यति। इति। इति एवम् उक्त्वा। वाष्पम् अश्रूणि। विसृजति त्यजति।

हिन्दी-व्याख्या—अलङ्करण रोज आसानी से प्राप्त हो जाने वाली वस्तु है, अतः उसका उतना महत्त्व नहीं है, किन्तु पति के घर जाने पर सखियों के हाँथ से वह प्राप्त न हो सकेगा, अतः उसे बहुत मानने की बात कही गई है। "इदानीम्" निकट भविष्य को सूचित करता है। आँसू आगामी विरह की बात सोचकर दुख से निकलते हैं।

हिन्दी अनुवाद—दोनों (सखियाँ) (हे) सखी, शुभ समय रोना तुम्हारे लिये ठीक नहीं है। (यह कहकर और आँसू पोंछकर अभिनय- पूर्वक सजाती हैं।)

संस्कृत-टीका—उभे द्वे अपि (सख्यौ) (अनसूया प्रियंवदा च)। सखि (हे) आलि। उचितम्। युक्तम्। न। ते तव कृते। मङ्गलकाले मङ्गलस्य शुभकार्यस्य काले क्षणे। रोदितुम् रुदनम्। इति एवम् उक्त्वा। अश्रूणि वाष्पम्। प्रमृज्य अपसार्य। नाट्येन अभिनयेन। प्रसाधयतः अलङ्कुरुतः।

हिन्दी-व्याख्या—मङ्गल काल में रोना अनुचित (अपशकुन) है; यह कथन आगे वियोग हो रहा है, इसकी पूर्व सूचना है।

हिन्दी अनुवाद—प्रियंवदा—गहनों के लायक रूप आश्रम में सुलभ प्रसाधनों से बिगड़ जा रहा है।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। आभरणोचितम् आभरणानाम्, अलङ्करणानाम् उचितम् योग्यम् रूपम् आकृतिः। आश्रमसुलभैः आश्रमे तपोवने सुलभैः प्राप्यैः। प्रसाधनैः भूषाभिः। विप्रकार्यते विकृतम् क्रियते।

हिन्दी व्याख्या—आगे गहनों का प्रसंग आ रहा है; यहाँ उसकी सूचना आभरण पद से दी गई है।

हिन्दी-अनुवाद—दो मुनि बालक—यह अलङ्कार है। इससे मान्या (शकुन्तला को) सजायें। (सभी स्त्रियाँ देखकर दाँतों तले उँगली दबाती हैं)

संस्कृत-टीका—प्रविश्य रङ्गभुवि आगत्य। उपायनहस्तौ उपायनम् उपहारः हस्ते करे ययोः तौ। ऋषिकुमारकौ (द्वौ) मुनिबालकौ (कथयतः यत्) इदम् एतत् (पुरोवर्त्ति

गौतमी—वच्छ णारअ । कुदो एदं [वत्स नारद कुत एतत्] ।

प्रथमः—तातकाश्यपप्रभावात् ।

गौतमी—किं माणसी सिद्धिः [किं मानसी सिद्धिः] ।

द्वितीयः—न खलु, श्रूयताम्, तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरत इति । तत इदानीं—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥ ४ ॥

अलंकरणम् भूषणम् । अलंक्रियताम् प्रसाध्यताम् । अत्रभवती पूज्या । सर्वाः सकलाः (स्त्रियः) विलोक्य दृष्ट्वा । विस्मिताः आश्चर्ययुक्ताः ।

हिन्दी-व्याख्या—एकाएक वन जैसे स्थान में जहाँ अलंकार दुर्लभ हैं और वे भी उच्च कोटि के देखकर स्त्रियों का चकित होना स्वाभाविक है ।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—बेटा नारद, यह कहाँ से आया ?

संस्कृत-टीका—गौतमी (कथयति यत्) । (हे) वत्स पुत्र । नारद (सम्बुद्धौ) । कुतः कस्मात् स्थानात् (प्राप्तम्) । एतत् इदम् (सर्वम् अलङ्करणम्) ।

हिन्दी-अनुवाद—पहला (मुनि बालक)—पिता काश्यप (कण्व) के (तप) बल से ।

संस्कृत टीका—प्रथमः एक (ऋषिकुमारकः) (कथयति यत्) । तातः पिता च सः काश्यपः कण्वः च तस्य प्रभावात् तपोबलात् (एतत् अलङ्करणम् प्राप्तम्) ।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—क्या मन की सिद्धि है (जो यह सब मिला) ?

संस्कृत-टीका—गौतमी (कथयति यत्) । किम् । मानसी मनसः । सिद्धिः ।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरा—बिल्कुल नहीं । सुनिये; मान्यवर (कण्व) ने हमें आज्ञा दी कि शकुन्तला के लिये वृक्षों से फूल ले आओ ।

उसके बाद अब ।

संस्कृत-टीका—द्वितीयः अपरः (ऋषिकुमारकः) (कथयति यत्) । न । खलु निश्चयेन । श्रूयताम् आकर्ण्यताम् (भवत्यः) । तत्रभवता पूज्येन (कण्वेन) । वयम् (ऋषिकुमारकाः) आज्ञप्ताः आदिष्टाः । शकुन्तलाहेतोः शकुन्तलायाः हेतोः कृते । वनस्पतिभ्यः वृक्षेभ्यः । कुसुमानि पुष्पाणि । आहरत (यूयम्) आनयत । इति । ततः तत्पश्चात् । इदानीम् अधुना ।

हिन्दी-अनुवाद—किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और मांगलिक रेशमी वस्त्र प्रकट किया और किसी ने पैरों में लगाने योग्य महावर दिया । अन्य वृक्षों से वन-देवी की कलाई तक उठी हथेलियों ने उन (वृक्षों) के फूट रहे पत्तों के सदृश अलंकार दिये ।

प्रियंवदा—(शकुन्तलां विलोक्य) **हला इमाए अब्भुववत्तीए सूइया दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छित्ति** (हला अनयाभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति)। (शकुन्तला व्रीडां रूपयति)।

अन्वयः—केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यम् क्षौमम् आविष्कृतम् केनचित् (च) चरणोपभोगसुलभः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः आपर्वभागोत्थितैः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

संस्कृत-टीका—**केनचित्** केनापि। **तरुणा** वृक्षेण। **इन्दुपाण्डु** इन्दुवत् चन्द्रवत् **पाण्डु** श्वेतम् **माङ्गल्यम्** (च) **मङ्गले** (मङ्गलकर्मणि) साधु। **क्षौमम्** अंशुकम्। **आविष्कृतम्** दत्तम्। **केनचित्** केनापि (तरुणा) **चरणोपभोगसुलभः** **चरणयोः** पदयोः **उपभोगे** रञ्जनादौ **सुलभः** योग्यः। **लाक्षारसः** अलक्तकद्रवः। **निष्ठ्यूतः** दत्तः। **अन्येभ्यः** (अपरेभ्यः)। **आपर्वभागोत्थितः पर्वणः** करमूलस्य **भागः** अंशः **पर्वभागः** तम् मर्यादीकृत्य **उत्थितैः** उच्छ्रितैः। **तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः** तेषाम् **किसलयोद्भेदानाम्** किसलयानाम् पल्लवानाम् **उद्भेदाः** सद्योजाताः (उद्भिद्यमानपल्लवाः) तेषाम् **प्रतिद्वन्द्विभिः** प्रतिस्पर्धिभिः। **वनदेवताकरतलैः** **वनस्य** विपिनस्य **देवताः** देव्यः तासाम् **करतलैः** हस्तफलकैः। **आभरणानि** अलङ्काराणि। **दत्तानि**। वितरितानि।

हिन्दी-व्याख्या—माङ्गल्य रेशमी वस्त्र ब्याह के समय पहना जाता है। उसका किनारा फटा नहीं होना चाहिये किनारे-किनारे गोरोचना से वह चित्रित होना चाहिये। उस पर कलहंसों (बत्तख) के चित्र होने चाहियें (वधूदुकूलं कलहंसलक्षण—कुमारसंभव ५)। "आविष्कृत" का अर्थ संस्कृत में "प्रकट किया" होता है; हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग "खोजा गई" अर्थ में आता है। "निष्ठ्यूत" का अर्थ है "थूका गया" जिससे "जुगुप्सा-अश्लीलता" दोष प्रतीत होता है; यहाँ मुहावरे के रूप में प्रयोग होने से दोष नहीं है; वास्तव में "थूका गया" अर्थ होता तो दोष का प्रसंग आता। "उद्भेद" का अर्थ लक्षणा से नये-नये निकल रहे (पल्लव) और व्यञ्जना से लाल व कोमल (पल्लव) है। प्रतिद्वन्द्वी, प्रतिभट, प्रतिमल्ल, प्रतिस्पर्धी आदि "होड़ करने वाला" तथा बन्धु-बान्धव आदि भाई का अर्थ देने वाले शब्द "सदृश" अर्थ भी देते हैं। वनदेवियों के दिये होने से आभरण अमूल्य व इतने मंगलकारी होंगे कि वैधव्य दुःख नहीं भोगना पड़ेगा, यह अर्थ व्यक्त होता है। वनदेवियाँ तो नहीं दिखी पर उनका हाथ कलाई से हथेली तक दिखा। वृक्षों से गहने माँगने गये थे पर वन-देवियों में इतना उत्साह व स्नेह था कि वे स्वयं ही गहने देने लगीं। इस प्रकार वृक्षों ने तो गहने दिये ही, वन-देवियों ने भी दिये। इस प्रकार अर्थ मनोरम होता है और तीसरे चरण में पंचमी ("अन्येभ्यः" में) देकर कर्त्ता का क के प्रक्रम-भंग दोष का खण्डन हो जाता है।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित (१।१४)।

अलङ्कार—स्वभावोक्ति, उपमा, संसृष्टि, अर्थापत्ति, हेतु, श्रुत्यनुप्रास व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा (शकुन्तला को देखकर)—(हे) सखी, इस कृपा से तुम्हारे द्वारा ससुराल में राज-लक्ष्मी का उपभोग करने (पटरानी होने) की सूचना मिलती है। (शकुन्तला लाज का अभिनय करती है)।

प्रथमः—गौतम एह्येहि अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

द्वितीयः—तथा (इति निष्क्रान्तौ)।

सख्यौ—अए अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु दे आहरणविणिओअं करेम्ह (अये अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु त आभरणविनियोगं कुर्वः]।

संस्कृत टीका—प्रियंवदा शकुन्तलाम्। विलोक्य दृष्ट्वा (कथयति यत्)। हला (हे) सखि। अनया उपर्युक्तया। अभ्युपपत्त्या अनुग्रहेण। सूचिता (भवति) कथ्यते। ते तव। भर्तुः पत्युः गेहे गृहे। अनुभवितव्या भोक्तव्या। राजलक्ष्मीः महारानीपदप्रतिष्ठा। इति। शकुन्तला। व्रीडाम् लज्जाम्। रूपयति नाटयति।

हिन्दी-व्याख्या—लज्जाशील को किसी बड़े पद पर होनेपर भी यदि उस पद से सम्बन्ध बताया जाय तो लाज लगती है; जो (पटरानी) पद अभी नहीं मिला है, उससे सम्बन्ध बताने पर शकुन्तला को लज्जा होना स्वाभाविक है।

हिन्दी अनुवाद—पहला—(हे) गौतम, आओ, आओ। स्नान कर (घाट या जलाशय से) ऊपर आये कण्व से वृक्षों की सेवा बतायें।

संस्कृत-टीका—**प्रथमः** एकः (ऋषिकुमारकः) (कथयति यत्)। (हे) **गौतम** (सम्बुद्धौ)। **एहि** आगच्छ। एहि आगच्छ। **अभिषेकोत्तीर्णाय** **अभिषेकम्** स्नानम् (कृत्वा) **उत्तीर्णाय** उत्थिताय। **काश्यपाय** कण्वाय। **वनस्पतिसेवाम्** **वनस्पतीनाम्** वृक्षाणां **सेवाम्** दासताम् **निवेदयावः** सूचयावः।

हिन्दी-व्याख्या—"एहि" की पुनरुक्ति शीघ्रता के लिए है। "उत्तीर्ण" "तैर कर पार गया" या "ऊपर आया" अर्थ देता है। जिससे निवेदन करें, इसमें चतुर्थी आती है। यहाँ केवल वृक्षों की सेवा का उल्लेख है, वन-देवियों का नहीं। जल्दी-जल्दी में वृक्षों में ही वन देवियों को गतार्थ मानकर ऐसा कहा गया प्रतीत होता है।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरा—ठीक है (यह कहकर दोनों बाहर जाते हैं)।

संस्कृत-टीका—**द्वितीयः** अपरः (ऋषिकुमारकः) (कथयति यत्)। **तथा** आम्। **इति** ततः। **निष्क्रान्तौ** (द्वौ अपि) निर्गतौ।

हिन्दी-अनुवाद—(दोनों) सहेलियाँ—अरे, हमने (तो) गहने पहने नहीं। चित्रों के परिचय से तुम्हारे अङ्गों में गहने धारण करायेंगी।

संस्कृत-टीका—सख्यौ (द्वे अपि) आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च) (कथयतः यत्)। **अये** अहो। **अनुपयुक्तभूषणः** न **उपयुक्तानि** धृतानि आभूषणानि अलङ्करणानि येन तादृशः। **अयम्** **जनः** आवाम्। **चित्रकर्मपरिचयेन** **चित्रस्य** आलेख्यस्य **कर्म** रचना तत्र **परिचयेन** ज्ञानेन। **अङ्गेषु** अवयवेषु। **ते** तव (शकुन्तलायाः)। **आभरणविनियोगम्** **आभरणानाम्** अलङ्काराणाम् **विनियोगम्** परिधापनम्। **कुर्वः** विदध्वः।

शकुन्तला—जाणे वो णेउणं [जाने वां नैपुणम्]। (उभे नाट्येनालंकुरुतः)

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः)

काश्यपः—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥५॥

हिन्दी-व्याख्या—अगर तपस्वी में गहने गलत जगह पहनाये गये तो गलती होगी, स्वयं नहीं पहने (चित्र याद कर-कर पहनाने में देर लग रही है) आदि अर्थ बताने के लिये अलङ्कारों की अनभिज्ञता बताई गई है। लड़कियों ने किसी को गहने पहने हुये भी नहीं देखा जिससे लगता है कि आश्रम में गहने पहन कर कोई नहीं जाता था या औरतों का प्रवेश वर्जित था।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला–तुम दोनों की निपुणता का (मुझे) पता है। (दोनों अभिनय-पूर्वक अलंकृत करती हैं)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। **जाने** अवगच्छामि। **वाम्** युवयोः। **नैपुणम्** (अलङ्कारधारणे) कुशलताम्। **उभे** द्वे अपि (प्रियंवदा अनसूया च)। **नाट्येन** अभिनयेन। **अलंकुरुतः** भूषयतः।

हिन्दी-व्याख्या—नाटक में अलङ्कार पहनाते समय क्या अभिनय होता है, इसका भी उल्लेख लक्षण-ग्रन्थों में मिलता है जो सूक्ष्मेक्षण का परिचायक है। कर्तरी-मुख अवस्था से महावर लगाया जाता है। इस अवस्था में बीच की तीन अँगुलियाँ बाहर निकाल कर तर्जनी (अँगूठे के बगल वाली) उँगली को मध्यमा (बीच वाली) उँगली के ऊपर चढ़ा लिया जाता है। इसी तरह अन्य क्रियाओं का अभिनय किया जाता है जिन्हें अनुभव से जानना चाहिये।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद स्नान कर ऊपर आये कण्व रंग-मंच पर दिखते हैं, कण्व—

संस्कृत टीका—ततः तदनन्तरम्। **काश्यपः** रङ्गभूमौ दृश्यते। **स्नानोत्तीर्णः स्नानम्** अवगाहनम् **उत्तीर्णः** कृतसमाप्तिः **प्रविशति** कण्वः। (कथयति यत्)।

हिन्दी-अनुवाद—"आज शकुन्तला जायेगी" यह सोचकर (मेरा) हृदय उत्कण्ठा से छू गया है, गला रोके गये अश्रुआरंभ के कारण स्वर-भङ्गवान् है और इन्द्रियों का ज्ञान चिन्ता से जड़ हो गया है। स्नेह के कारण बेटी के बिछोह के ताजे दुख से जब मुझ वन-वासी को आरंभ में ही ऐसी यह विकलता हो रहा है तब गृहस्थ भला कैसे न पीड़ित होंगे ?

अन्वयः—अद्य शकुन्तला यास्यति इति (मम) हृदयम् उत्कण्ठया संस्पृष्टम् (अस्ति) कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषः (अस्ति) दर्शनम् (च) चिन्ताजडम्। स्नेहात् नवैः तनयाविश्लेषदुःखैः अरण्यौकसः (मम) तावत् ईदृशम् इदम् वैक्लव्यम् गृहिणः कथम् न पीड्यन्ते।

संस्कृत टीका—अद्य। शकुन्तला। यास्यति (पतिगेहम्) गमिष्यति। **इति** एवम् चिन्तयित्वा। (मम) **हृदयम्** अन्तरम्। **उत्कण्ठया** आकुलतया। **संस्पृष्टम्** संबद्धम् (अस्ति)।

(इति परिक्रामति)

सख्यौ—हला सउंदले अवसितमंडणासि । परिधेहि संपदं खोमजुअलं [हला शकुन्तले अवसितमण्डनासि । परिधत्स्व सांप्रतं क्षौमयुगलम्) । (शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते) ।

गौतमी—जादे एसो दे आणंदपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरु उवट्ठिदो । आआरं दाव पडिवज्जस्स । [जाते एष त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः । आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व] ।

कण्ठः गलः **स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः बाष्पस्य** अश्रूणाम् **वृत्तिः** आरम्भः, **स्तम्भिता** अवरोधिता **बाष्पवृत्तिः** यस्य सः अतः एव **कलुषः** स्वरभङ्गवान् । **दर्शनम्** (तत्तदिंद्रिय) ज्ञानम् **चिन्ताजडम् चिन्तया जडम्** स्वस्वविषयाग्राहकम् । **स्नेहात्** वात्सल्येन । **नवैः** प्रथमैः **तनयाविश्लेषदुःखैः तनयायाः** पुत्र्याः **विश्लेषस्य** वियोगस्य **दुःखैः** पीडाभिः (यदा) । **मम** अस्य जनस्य (कण्वस्य) **तावत्** आदौ **एव** । **ईदृशम्** अनिर्वचनीयम् । **इदम्** अनुभूयमानम् । **वैक्लव्यम्** विह्वलता (तदा) **गृहिणः** गृहनिवासिनः । **कथम्** । **न** । **पीड्यन्ते** दुःखम् अनुभवेयुः ।

हिन्दी-व्याख्या—यह श्लोक बहुत उत्तम माना जाता है । कन्या की पहली विदाई के समय पिता को जो दुःख होता है, उसका मार्मिक चित्र खींचा गया है । उत्कण्ठा का संस्पर्श प्रेम का अतिशय घोषित करता है । "स्तम्भित" होने में पुरुष का धैर्य कारण है । मन चिंता से ग्रस्त है, अतः इन्द्रियों ने अपना काम करना छोड़ दिया है । "नव" का अर्थ प्रथम उत्पन्न या अभी-अभी उत्पन्न दोनों ही हो सकता है । पहली बार का वियोग बाद के वियोगों की अपेक्षा अधिक कष्टप्रद होता है । गृहस्थ कितने पीड़ित होते होंगे, इसकी कल्पना तक कण्व नहीं कर सकते क्योंकि वनवासी और संन्यासी ऋषि हैं, गृहस्थ प्रेम के कारण बिछोह में बहुत दुख पाते हैं, अनासक्त ऋषियों को बिछोह उतना दुःखदायी नहीं होता । कन्या का पहला वियोग जब वह पतिगृह जाती है, ऐसा होता है जो ऋषि की अनासक्तता समाप्त कर उनकी दशा करुण बना देता है ।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित (१।१४ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—व्यतिरेक, काकु, हेतु, वृत्त्यनुप्रास व छेकानुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—यह कहकर घूमते हैं ।

संस्कृत-टीका—**इति** एवम् उक्त्वा (कण्वः) । **परिक्रामति** ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों सखियाँ—(हे) सखी शकुन्तला, (तुम्हारा) सिंगार पूरा हो गया है । अब रेशमी कपड़ों का जोड़ा पहन लो । (शकुन्तला उठकर पहनती है)

संस्कृत-टीका—सख्यौ (द्वे अपि) आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च) (कथयतः यत्) । **हला** (हे) सखि । **शकुन्तले** (संबुद्धौ) । **अवसितमण्डना अवसितम्** समाप्तम् **मण्डनम्** अलंकरणं यस्याः सा । **असि** । **परिधत्स्व** धारय । **साम्प्रतम्** अधुना । **क्षौमयुगलम् क्षौमस्य** दुकूलस्य **युगलम्** युग्मम् । **शकुन्तला** । **उत्थाय परिधत्ते** धारयति ।

हिन्दी-व्याख्या—सजाना समाप्त होने पर कपड़े पहने जाते हैं जिससे मैले न हो जाँय ।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—बेटी, ये तुम्हारे पिता (कण्व) उपस्थित हैं जो आनंद प्रवाहित

शकुन्तला—(सव्रीडम्) **ताद वंदामि** [तात वन्दे]।

काश्यपः—वत्से

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥६॥

गौतमी—भअवं वरो खु एसो ण आसिसा [भगवन् वरः खल्वेषः नाशिषः] ।

कर रही दृष्टि से मानो आलिंगन कर रहे हैं शिष्टाचार का पालन करो ।

संस्कृत-टीका—गौतमी (कथयति यत्) । **जाते** (हे पुत्रि । एषः अयम् (समीपवर्ती) । **ते** तव । **आनन्दपरिवाहिणा** हर्षनिर्भरेण । **चक्षुषा** दृष्ट्या । **परिष्वजमानः** आलिङ्गन् । **इव** । **गुरुः** पिता (कण्वः) । **उपस्थितः** सन्निहितः । **आचारम्** अभ्युत्थानेत्यादिकम् **प्रतिपद्यस्व** कुरु ।

हिन्दी व्याख्या—दृष्टि से आलिङ्गन करना, प्रेम से निहारना है । आचार, शिष्टाचार है ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (लाज के साथ)—पिता जी, प्रणाम करती हूँ ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । **सव्रीडम् व्रीडया** लज्जया सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा (कथयति यत्) । **तात** पितः (कण्व) **वन्दे** नमामि ।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—बेटी ।

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (कथयति यत्) । **वत्से** (हे) पुत्रि ।

हिन्दी-अनुवाद—जिस प्रकार शर्मिष्ठा, ययाति को प्रिय थी, उसी प्रकार तुम पति को प्रिय होओ । जैसे उसने सम्राट् पुत्र पूरु को पाया था, वैसे ही तुम भी सम्राट् पुत्र पाओ ।

अन्वयः—ययातेः शर्मिष्ठा इव भर्तुः बहुमता भव । सा पूरुम् इव त्वम् अपि सम्राजम् सुतम् अवाप्नुहि ।

संस्कृत टीका—ययातेः । शर्मिष्ठा । **इव** । **भर्तुः** पत्युः । **बहुमता** सम्मानिता । **भव** । **सा** (शर्मिष्ठा) । **पूरुम्** । **इव** । **त्वम्** भवती । **अपि** । **सम्राजम्** चक्रवर्त्तिनम् **सुतम्** पुत्रम् । **अवाप्नुहि** लभस्व ।

हिन्दी-व्याख्या—चन्द्रवंशी राजा ययाति की पत्नी देवयानी शुक्राचार्य की लड़की थी । दैत्यराज वृष-पर्वा की कन्या शर्मिष्ठा उसकी दासी थी । ययाति ने शर्मिष्ठा से गान्धर्व विवाह किया था और उसे देवयानी की अपेक्षा ज्यादा मानते थे । यहाँ उपमा सटीक है । ययाति दुष्यन्त के आदि पुरुष हैं और शर्मिष्ठा की स्थिति शकुन्तला से कई बातों में मिलती है :—(१) दोनों को माता-पिता ने त्यागा । (२) दोनों ने माता-पिता की आज्ञा के बिना और गैर जानकारी में गान्धर्व विवाह किया । (३) दोनों का ब्याह सौत के रहते हुआ । (४) छोटी बहू होने पर भी दोनों के पुत्र चक्रवर्ती हुये । (५) दोनों के नाम से क्षत्रिय वंश चले । उक्त कथा महाभारत में आती है ।

छन्द—अनुष्टुप् (१।५ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—उपमा ।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—(हे) श्रीमन्, निश्चय ही यह वर-दान है; आशोर्वाद नहीं ।

काश्यपः—वत्से इतः सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व । (सर्वे परिक्रामन्ति) ।

काश्यपः—(ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते)

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥ ७ ॥

संस्कृत टीका—**गौतमी** (कथयति यत्) । **भगवन्** (हे) श्रीमन् । **वरः** वरदानम् । **खलु** निश्चयेन । **एषः** अयम् (उपर्युक्तः) **न** (तु) **आशिषः** आशीर्वादाः ।

हिन्दी-व्याख्या—"एषः" ऊपर के वाक्य के लिये होने से अंग्रेजी हिन्दी के अनुसार विधेय का विशेषण नहीं होना चाहिये । संस्कृत में भी वाक्य के लिये आने वाला सर्वनाम नपुंसक-लिङ्ग में होता है, पर साथ ही साथ विधेय यहाँ "वरः" का विशेषण भी हो सकता है । बाद की स्थिति अधिक प्रचलित है ।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—बेटी, इस ओर अग्नि की, जिसमें अभी-अभी हवन हुआ है, परिक्रमा करो । (सब परिक्रमा करते हैं) ।

संस्कृत-टीका—**काश्यपः** कण्वः (कथयति यत्) । **वत्से** (हेः) पुत्रि । **इतः** इह । **सद्योहुताग्नीन्** **सद्यः** अधुना एव **हुताः** आहुतिपूरिताः च ते **अग्नयः** हुताशनाः च तान् । **प्रदक्षिणीकुरुष्व** परिक्राम । **सर्वे** सकलाः जनाः । **परिक्रामन्ति** ।

हिन्दी-अनुवाद—वैदिक छन्द की तर्ज के पद्य से आशीर्वाद देता है ।

संस्कृत-टीका—**काश्यपः** कण्वः **ऋक्छन्दसा** ऋक्छन्दोग्रथितेन वाक्येन । **आशास्ते** आशीर्वादम् ददाति ।

हिन्दी-अनुवाद—ये यज्ञ की अग्नियाँ, जिनके स्थान वेदी के चारों ओर बनाये गये हैं, जिनमें समिधायें (लकड़ियाँ) पड़ी हैं जिनके किनारे-किनारे कुश बिछे हैं तथा जो होम की गई वस्तुओं की गंधों से पाप को नष्ट कर रही हैं, तुम्हें पवित्र करें ।

अन्वयः—अमी वेदिम् परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः वैतानाः वह्नयः त्वाम् पावयन्तु ।

संस्कृत-टीका—**अमी** इमे (पुरतः परिदृश्यमानाः) । **वेदिम्** वेदिकाम् । **परितः** सर्वतः । **क्लृप्तधिष्ण्याः** **क्लृप्तम्** रचितम् **धिष्ण्यम्** स्थानम् येषाम् तादृशाः । **समिद्वन्तः** ससमिधः । **प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः** **प्रान्ते** उपान्ते **संस्तीर्णाः** आस्तृताः **दर्भाः** कुशाः येषाम् तादृशाः । **हव्यगन्धैः** **हव्यस्य** हुतद्रव्यस्य **गन्धैः** परिमलैः । **दुरितम्** पापम् **अपघ्नन्तः** नाशयन्तः **वैतानाः** यज्ञसम्बन्धिनः । **वह्नयः** अग्नयः । **त्वाम्** । **पावयन्तु** पवित्रीकुर्वन्तु ।

हिन्दी-व्याख्या—अग्नि तीन हैं, अतः बहुवचन है । अभी तक कुश बिछे हैं तथा हव्य की सुगंधें आ रही हैं जिससे अग्नि अभी भी प्रज्वलित और प्रकाशमान है । इससे शुभरूपता ध्वनित होती है ।

छन्द—यह छन्द वैदिक छन्द की तर्ज का है । कण्व सदा वेद-पाठ करते थे जिससे वैदिक छन्द सहज ही मुख से प्रस्फुटित हो गया है । कुछ इसे वातोर्मि और शालिनी का मिश्रण उपजाति बताते

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) **क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः ?**

(प्रविश्य) **शिष्यः—भगवन् इमे स्मः।**

काश्यपः—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

शार्ङ्गरव—इत इतो भवती। (सर्वे परिक्रामन्ति)

काश्यपः—भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

हैं, पर यह ठीक नहीं है। कवि ने स्वयम् ऊपर इसे वैदिक तर्ज का छन्द बताया है।

अलङ्कार—परिकर।

हिन्दी-अनुवाद—अब प्रस्थान करो। (दृष्टि डालते हुये) वे श्री शार्ङ्गरव कहाँ हैं ?

संस्कृत-टीका—प्रतिष्ठस्व प्रचल। **इदानीम्** अधुना। **सदृष्टिक्षेपम्** दृष्टयाः ईक्षणस्य क्षेपः नियोगः तेन सह वर्त्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **क्व** कुत्र। ते पूर्वोक्ताः **शार्ङ्गरवमिश्राः** श्री शार्ङ्गरवः।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) शिष्य—श्रीमन्, यह (यहाँ) हूँ।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य अन्तः प्राप्य। **शिष्यः** अन्तेवासी (शार्ङ्गरवः) (कथयति यत्) **भगवन्** (हे) श्रीमन्। **इमे** (अत्र) **स्मः** उपस्थिताः।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—अपनी बहन को रास्ता दिखाओ।

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (कथयति यत्)। **भगिन्याः** स्वसुः (शकुन्तलायाः)। **ते** तव (स्वस्य)। **मार्गम्** पन्थानम्। **आदेशय** कथय।

हिन्दी व्याख्या—"भगिनी" में षष्ठी, शैषिकी है। "ते" त्वम् के आने के कारण "अपना" अर्थ देता है, तुम्हारा नहीं। अंग्रेजी और बंगला में यह प्रयोग अब भी होता है।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—आप इधर से (चलें); इधर से (चलें)। (सब घूमते हैं।)

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (कथयति यत्)। **इतः** अनया दिशा (चलतु)। इतः अनया दिशा (चलतु)। **भवती** त्वम्। **सर्वे** सकलाः जनाः। **परिक्रामन्ति**।

हिन्दी-व्याख्या—"इतः" का दो बार प्रयोग आदर के लिये है।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—सुनो; सुनो; आश्रम के उपस्थित वृक्षो,

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (कथयति यत्)। **भोः** हे। **भोः** हे। **संनिहिताः** (सम्बुद्धौ) उपस्थिताः। तपोवनतरवः तपसः तपस्यायाः वनम् अटवी (आश्रमः) तस्य तरवः (सम्बुद्धौ) वृक्षाः।

हिन्दी-व्याख्या—"भोः" का तद्भव "हो" रूप में बोलियों में सुरक्षित है। इसका अर्थ "सुनो" माना जा सकता है। बाद में स्वर या मृदु व्यंजन होने पर "भो" का विसर्ग लुप्त हो जाता है।

हिन्दी-अनुवाद—तुम लोगों के बिना पिये (सिंचे) रहने पर जो पहले (ही) पानी नहीं

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ८ ॥

पीती, तुम लोगों के प्रति स्नेह से जो शृंगार प्रिय होने पर भी पत्ता नहीं तोड़ती और पहली बार तुम लोगों के फूल आने पर जिसका उत्सव होता है, वह यह शकुन्तला ससुराल जा रही है; सब आज्ञा दो।

अन्वयः—युष्मासु अपीतेषु या प्रथमम् जलम् पातुम् न व्यवस्यति, या प्रियमण्डना अपि भवताम् स्नेहेन पल्लवम् न आदत्ते, आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः उत्सवः भवति, सा इयम् शकुन्तला पतिगृहम् याति। सर्वैः अनुज्ञायताम्।

संस्कृत-टीका—**युष्मासु** भवत्सु (वृक्षेषु)। **अपीतेषु** अपीतजलेषु (असिक्तेषु)। **या**। **प्रथमम्** पूर्वम् (एव)। **जलम्** वारि। **पातुम्**। **न**। **व्यवस्यति** यतते। **प्रियमण्डना प्रियम्** इष्टम् **मण्डनम्** अलङ्करणम् यस्याः तादृशी। **अपि भवताम्** युष्माकम्। **स्नेहेन** प्रेम्णा। **या**। **पल्लवम्** पत्रम्। **न आदत्ते** गृह्णाति **आद्ये** प्रथमे (काले)। **वः** युष्माकम्। **कुसुमप्रसूतिसमये कुसुमानाम्** पुष्पाणाम् **प्रसूत्याः** जन्मनः **समये** काले। **यस्याः**। **उत्सवः** फलसमयजः हर्षातिशयः। **भवति**। **सा** उपर्युक्ता। **इयम्** पुरतः स्थिता। **शकुन्तला**। **पतिगृहम् पत्युः** भर्तुः (दुष्यन्तस्य) **गृहम्** गेहम्। **याति** प्रतिष्ठते। **सर्वैः** सकलैः (युष्माभिः) (एषा) **अनुज्ञायताम्**। आदिश्यताम्।

हिन्दी-व्याख्या—महाभाष्य के अनुसार उत्तर पद "जल" का लोप होने से "पीत" का अर्थ "पीतजल" है या "पात" के अन्त में जो "अ" है, वह "मतुप्" प्रत्यय का (वाला) अर्थ देता है। "क" प्रत्यय लगने पर "नपुंसके भावे क्तः" सूत्र से भाव-वाचक संज्ञा बनती है जिससे पीत का अर्थ "पान" होता है; फिर "अ" लगने पर "पीत" का अन्तिम "अ" हटकर प्रत्यय ("अ") लग जाता है जिससे अर्थ पान (करने) वाला हो जाता है। पिया जल हो जाता है, पर वह "पिया जाना" (पीत) पीने वाले पर आरोपित हो जाता है. यह दूसरी व्याख्या कैयट की है। "प्रथमं" "पातुम्" का क्रिया-विशेषण है, उसे व्यर्थ मानने पर अर्थ निकलेगा। जब-जब तुम सिंचे नहीं होते, तब-तब यह पानी नहीं पीती; यह अर्थ अभीष्ट नहीं है। वर्तमान काल यह सूचित करता है कि शकुन्तला, विदा होने के क्षण तक अपने आश्रम-कर्तव्य करती रही थी। "प्रियमण्डना" पद बताता है कि उसे पत्ता लेना चाहिये था, "सर्वैः" से आशय है कि सब मिलकर अनुमति दो; अलग अलग अनुमति दोगे तो देर हो जायेगी। ससुराल जाना है, अतः अनुमति का औचित्य है। "आङ्" (आ) उपसर्ग लगने पर "दा" धातु आत्मने-पद हो जाती है। "सर्वैः" में कर्म-वाच्य और उसके पहले कर्तृवाच्य होने से एकरूपता का अभाव है; आज्ञा देने में कर्म-वाच्य का प्रयोग बहुत प्रचलित होने से ऐसा है। "कुसुम" का अर्थ रज होने से प्रथम रजोदर्शन से सन्तान की आशा कर उत्सव मनाना ध्वनित होता है।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित (१।१४) द्रष्टव्य।

अलङ्कार—समासोक्ति, हेतु, वृत्त्यनुप्रास व छेकानुप्रास।

(कोकिलारवं सूचयित्वा)

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कल यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ ९ ॥

(आकाशे)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः ।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥१०॥

हिन्दी अनुवाद—(कोयल की बोली बताकर) जंगल में निवास के समय बन्धु वृक्षों ने इस शकुन्तला के प्रस्थान की अनुमति दे दी है जो इन्होंने इस प्रकार कोकिल के कलरव के द्वारा उत्तर दिया है ।

अन्वयः—वनवासबन्धुभिः तरुभिः इयम् शकुन्तला अनुमतगमना यथा एभिः ईदृशम् कलम् परभृतविरुतम् प्रतिवचनीकृतम् ।

संस्कृत टीका—**कोकिलारवम् कोकिलायाः** पिकस्य **आरवम्** शब्दम् । **सूचयित्वा** श्रावयित्वा । **वनवासबन्धुभिः वने** अरण्ये **वासः** निवासः तत्र **बन्धुभिः** भ्रातृभिः । **तरुभिः** वृक्षैः । **इयम्** पुरतः स्थिता । **शकुन्तला । अनुमतगमना अनुमतम्** आदिष्टम् **गमनम् प्रस्थानम्** यस्याः तादृशोः । **यथा** यत् । **एभिः** एतैः । **ईदृशम्** अनिर्वचनीयप्रकारेण । **कलम्** अव्यक्तम् मधुरम् च । **परभृतविरुतम्** परभृतस्य कोकिलस्य **विरुतम्** कूजितम् । **प्रतिवचनीकृतम् अप्रतिवचनम्** अनुत्तरम् **प्रतिवचनम्** उत्तरम् कृतम् ।

हिन्दी व्याख्या—वृक्ष, कोकिल-मुख से प्रस्थान की अनुज्ञा देते हैं । कोयल की बोली पर्दे के पीछे कोई नर बोलता है ।

छन्द—अपरवक्त्र छन्द है जिसके चरण १ व ३ में २ नगण, १ रगण और १ लघु और चरण २ व ४ में १ नगण, २ जगण और १ रगण होता है ।

अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ ।

अलङ्कार—रूपक, परिणाम व अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—(आकाश में) इसके मार्ग के मध्य भाग कमलिनियों से हरे तालाबों से रमणीय हो, सूर्य-किरणों की उसकी तपन, छाँह वाले वृक्षों से निवारित हो, उसकी धूल कमलरज सी मुलायम हो, उसकी हवा शान्त और अनुकूल हो तथा वह (मार्ग) कल्याणकारी हो ।

अन्वयः—अस्याः पन्थाः कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूखतापः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवः च भूयात् ।

संस्कृत-टीका—**अस्याः** पुरतः परिदृश्यमानायाः (शकुन्तलायाः) **पन्था** मार्गः । **कमलिनी-हरितैः कमलिनीभिः** पद्मिनीभिः हरितैः श्यामलैः **सरोभिः** जलाशयैः । **रम्यान्तरः रम्याणि** मनोहराणि **अन्तराणि** मध्यानि यस्य तादृशः । **छायाद्रुमैः छाया** प्रधानैः अनातपप्रधानैः **द्रुमैः** वृक्षैः । **नियमितार्कमयूखतापः नियमितः** निषिद्धः **अर्कस्य** सूर्यस्य **मयूखानाम्** दीप्तानाम् **तापः**

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति)

गौतमी—जादे णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं । पणम भअवदीणं [जाते ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः । प्रणम भगवतीः]।

शकुन्तला—(सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला पिअंवदे णं अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअंतीए दुक्खेण मे चलणा पुरदो पवट्टंति [हला प्रियंवदे नन्वार्यपुत्र

ऊष्मा यत्र सः। **कुशेशयरजोमृदुरेणुः कुशेशयस्य** कमलस्य **रजः** रेणुः तद्वत् **मृदुः** कोमलः **रेणुः** धूलिः यत्र सः। **च**। **शान्तानुकूलपवनः शान्तः** च मन्दः **अनुकूलः** मनोहारी च **पवनः** वायुः यत्र सः। **च**। **शिवः** कल्याणकारी। **भूयात्** स्यात्।

हिन्दी-व्याख्या—"हरित" "व्याप्त" अर्थ ध्वनित करता है। "तालाब" से यह ध्वनित होता है कि शायद अदृष्ट वश कोमल अंगों वाली शकुन्तला को प्यास लगे। "सरस" और "द्रुम" में बहुवचन बताता है कि तालाब और वृक्षों की बहुतायत होगी; एक तालाब या वृक्ष से न तो हर बार प्यास जायेगी और न तपन, केवल वृक्ष सूर्यकिरणों का ताप नहीं मिटा सकते, इसलिये "छाया" पद जोड़ा गया है। इससे यह व्यक्त होता है कि थकने पर विश्राम स्थल मिल सकेंगे तथा विशेषण का प्रक्रम-भंग नहीं होगा। सूर्य में किरण और किरण में ताप होना अनिवार्य है; इनका प्रयोग यह लक्षित करता है कि मध्याह्न काल से आशय है। प्रयोजन ताप की अधिकता है, मृदु से यह व्यक्त होता है कि पाँवों को कष्ट न होगा। अन्तिम चरण में दिये गये विशेषण विधेय के और शेष उद्देश्य के माने जाने पर "च" के दो बार आने की सार्थकता हो सकती है। "मार्ग अच्छा है" बताकर ढाढ़स दिया गया है और दो विशेषण देकर ईश्वर से मनाया (आशीर्वाद दिया) गया है। यह भी माना जा सकता है कि एक से अधिक "च" समुच्चय के लिये हो सकते हैं। "अनुकूल" शुभ शकुन बताता है।

छन्द—वसंततिलका (१।८ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—तद्गुण, सम, अन्योन्य, उपमा, हेतु, परिकर, वृत्त्यनुप्रास व श्रुत्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—(सभी अचरज से सुनते हैं)

गौतमी—बेटी, आत्मीय व्यक्तियों के सदृश स्नेही तपोवन-देवियों ने तुम्हारे प्रस्थान की अनुमति दे दी है। इन महोदयाओं को प्रणाम करो।

संस्कृत-टीका—**सर्वे** सकलाः जनाः। **सविस्मयम् विस्मयेन** आश्चर्येण सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। आकर्णयन्ति शृण्वन्ति। **गौतमी** (कथयति यत्)। **जाते** (हे) पुत्रि। **ज्ञातिजनस्निग्धाभिः ज्ञातिजना** आत्मीयाः तद्वत् स्निग्धाभिः स्नेहशीलाभिः। **अनुज्ञातगमना अनुज्ञातम्** अनुमतम् **गमनम्** प्रस्थानम् यस्याः सा। **असि**। **तपोवनदेवताभिः तपोवनस्य** आश्रमस्य **देवताभिः** देवीभिः। **प्रणाम** वन्दस्व। **भगवतीः** महोदयाः (तपोवनदेवीः)।

हिन्दी-व्याख्या—आकाश वाणी पर सबको अचरज होता है। "आकाश" की परिभाषा ३।१ के बाद दी गई है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (प्रणाम कर घूमकर जनान्तिक)—(हे) सखी प्रियंवदा, सुनो,

दर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते]।

प्रियंवदा—ण केवलं तपोवणविरहकादरा सही एव्व। तुए उवट्ठिदविओअस्स तपोवणस्स वि दाव समवत्था दीसइ [न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते]।

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओसरिअ पंडुपत्ता मुअंति अस्सू विअ लदाओ ॥११॥

[उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥]

यद्यपि स्वामी के दर्शन के लिये उत्कण्ठित हूँ; फिर भी आश्रम छोड़ती हुई मेरे चरण कठिनाई से (ही) आगे बढ़ते हैं।

संस्कृत टीका--शकुन्तला। सप्रणामम् प्रणामेन नत्या **सह** वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **परिक्रम्य। जनान्तिकम्। हला** (हे) सखि। **प्रियंवदे** (संबुद्धौ)। **ननु** निश्चयेन (संबुद्धौ च)। **आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकायाः आर्यपुत्रस्य** स्वामिनः **दर्शनार्थम्** मिलनार्थम् **उत्सुकायाः** उत्कण्ठितायाः। **अपि। आश्रमपदम्** तपोवनम्। **परित्यजन्त्याः** मुञ्चन्त्याः। **दुःखेन** क्लेशेन। **मे** मम। **चरणौ** पदे। **पुरतः** अग्रे। **प्रवर्त्तेते** चलतः।

हिन्दी-व्याख्या—पिता का घर छोड़ने में लड़कियों को असीम दुःख होता है। यह इस वाक्य से व्यक्त होता है। जनान्तिक की व्याख्या २.४ के बाद दी गई है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रियंवदा—न केवल सखी ही आश्रम के वियोग से विह्वल है, तुम्हारे द्वारा जिसने वियोग प्राप्त किया है, उस आश्रम की भी समान अवस्था दिख रही है।

संस्कृत-टीका—प्रियंवदा (कथयति यत्)। **न। केवलम्। तपोवनविरहकातरा तपोवनस्य** आश्रमस्य। **विरहेण** वियोगेन **कातरा** विह्वला। **सखी** आली (शकुन्तला)। **एव। त्वया** भवत्या (शकुन्तलया)। **उपस्थितः** संप्राप्तः **वियोगः** विरहः यस्य तस्य। **तपोवनस्य** आश्रमस्य। **अपि। तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **समवस्था** समाना **अवस्था** दशा। **दृश्यते** विलोक्यते।

हिन्दी-अनुवाद—हिरनियों ने कुश के ग्रास उगल दिये हैं, मोरों ने नाच बन्द कर दिया है और गिरे पीले पत्तों वाली लतायें मानो आँसू गिरा रही हैं।

अन्वयः—मृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः, मयूराः परित्यक्तनर्त्तनाः लताः अपसृतपाण्डुपत्राः (सत्यः) अश्रूणि मुञ्चन्ति इव।

संस्कृत टीका—मृग्यः हरिण्यः। **उद्गलितदर्भकवलाः उद्गलितः** निर्गलितः **दर्भस्य** कुशस्य **कवलः** ग्रासः यासाम् ताः (सन्ति)। **मयूराः** शिखिनः **परित्यक्तनर्त्तनाः परित्यक्तम् नर्त्तनम्** नृत्यम् यैः ते (सन्ति)। **लताः** वल्लर्यः। **अपसृतपाण्डुपत्राः अपसृतानि** पतितानि **पाण्डुपत्राणि** यासाम् ताः **पाण्डूनि** पीतानि च तानि **पत्राणि** दलानि च (सत्यः)। **अश्रूणि** नेत्रजलम्। **मुञ्चति** त्यजन्ति। **इव**।

शकुन्तला—(स्मृत्वा) ताद लताबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमंतइस्सं, (तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये)।

काश्यपः—अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम्। इय तावद्दक्षिणेन।

शकुन्तला—(लतामुपेत्यालिंग्य) वणजोसिणि चूदसंगता वि मं पच्चालिंग इदोगदाहिं साहाबाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी भविस्सं। [वनज्योत्स्ने चूतसंगतापि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिः शाखाबाहाभिः। अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि।]

हिन्दी-व्याख्या—इस पद्य में लड़की को पहली विदाई पर उसके पीहर त्याग के दुःख का चित्रण है। संस्कृत छाया में मात्रायें कम-ज्यादा हैं, अतः छन्द बिगड़ जाता है, मूल प्राकृत छन्दोबद्ध है।

छन्द—आर्या (१.२ द्रष्टव्य)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (याद कर) (हे) पिता जी, लता बहन वन-ज्योत्स्ना से जरा विदा लूँगी।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला**। **स्मृत्वा** (कथयति यत्)। **तात** (हे) पितः (कण्व)। **लताभगिनीम्** **लता** बल्लरी एव **भगिनी** स्वसा ताम्। **वनज्योत्स्नाम्** **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) **आमन्त्रयिष्ये** संभावयिष्ये।

अलकारः—परिणाम।

हिन्दी अनुवाद—कण्व—उसके प्रति तुम्हारा बहनापा जानता हूँ। यह रही दाहिनी ओर।

संस्कृत टीका—**काश्यपः** कण्वः (कथयति यत्)। **अवैमि** जानामि। **ते** तव। **तस्याम्** ताम् (वनज्योत्स्नाम्) प्रति। **सोदर्यस्नेहम्** **सोदर्यवत्** सहोदरवत् **स्नेहं** प्रेम। **इयम्** पुरतः परिदृश्यमाना **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **दक्षिणेन** दक्षिणस्याम् दिशि।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (लता के पास पहुँचकर और गले लगाकर)—(हे) वनज्योत्स्ना, आम के पेड़ से लिपटी हुई भी मेरे आलिङ्गन के उत्तर में इधर से जाने वाली अपनी शाखा-रूपी बाँहों से आलिङ्गन कर। आज से दूर हो जाऊँगी।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला**। **लताम्** वल्लरीम् (वनज्योत्स्नाम्)। **उपेत्य** उपगम्य। **आलिङ्ग्य** उपगुह्य (च)। (हे) वनज्योत्स्ने (संबुद्धौ)। **चूतसंगता** **चूतेन** आम्रवृक्षेण **संगता** मिलिता। **अपि**। **माम्** (शकुन्तलाम्)। **प्रत्यालिङ्ग** परिष्वजस्व। **इतः** अस्मात् स्थानात्। **गताभिः** याताभिः। **शाखाबाहाभिः** **शाखामयाः** विटपरूपाः **बाहाः** भुजाः ताभिः। **अद्य** अस्मात् दिनात्। **प्रभृति** आरभ्य। **दूरपरिवर्तिनी** **दूरम्** अत्यर्थम् **परिवर्तनम्** व्याघुट्य गमनम् यस्याः सा। **भविष्यामि**।

हिन्दी अनुवाद—पति-स्नेह से भी अधिक बहन का स्नेह होता है, यह "अपि" ध्वनित करता है।

अलङ्कार—(एकदेशविवर्ति) रूपक।

काश्यपः—

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम् ।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयमस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ॥१२॥

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व ।

शकुन्तला--(सख्यौ प्रति) हला एसा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो [हला एषा द्वयोर्युवयोर्ननु हस्ते निक्षेपः]।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—तुम्हारे लिये मैंने पहले ही जिसे मन से चाहा था, वह अपने लायक पति तुमने पुण्य-वश प्राप्त कर लिया। इस नवमालिका ने आम्र-वृक्ष को अपनाया है। अब इस (लता) के और तुम्हारे विषय में मैं निश्चिन्त हो गया।

अन्वयः—मया तव अर्थे प्रथमम् एव संकल्पितम् आत्मसदृशम् भर्तारम् त्वम् सुकृतैः गता (असि)। इयम् नवमालिका (च) चूतेन संश्रितवती। अस्याम् त्वयि च संप्रति अहम् वीतचिन्तः (अस्मि)।

संस्कृत टीका—**काश्यपः** कण्वः (कथयति यत्)। **मया** (कण्वेन) **तव** भवत्याः। **अर्थे** कृते। **प्रथमम्** आदौ। **एव**। **संकल्पितम्** मनसा ईप्सितम्। **आत्मसदृशम्** स्वयोग्यम्। **भर्तारम्** पतिम्। **त्वम्** (शकुन्तला)। **सुकृतैः** (मम तव वा) पुण्यैः। **गता** प्राप्तवती (असि)। **इयम्** पुरतः दृश्यमाना। **नवमालिका** (च)। **चूतेन** आम्रवृक्षेण। **संश्रितवती** मिलिता। **अस्याम्** एतस्याम् (नवमालिकायाम्)। **त्वयि** भवत्याम् (अस्याः तव च विषये)। **अहम्** (कण्वः)। **संप्रति** अधुना। **वीतचिन्तः** वीता गता **चिन्ता** यस्य तादृशः (अस्मि)।

हिन्दी व्याख्या—आत्म-सदृश पति शकुन्तला पाये, यह कण्व को पहले से ही अभीष्ट था। "सदृश" से तात्पर्य है "कुलीनता, गुण, सौन्दर्य और वय में समान"। भर्ता न केवल शकुन्तला के बल्कि त्रिभुवन के भरण से है। "सुकृत", लता के अर्थ में लगाने पर शोभन रूप से कृत (पास रोपने थाला बनाकर सींचने आदि के द्वारा पाली-पोसी) अर्थ देगा। सोचने से काम नहीं होता, सुकृत से होता है, यह दूसरा चरण बताता है। शकुन्तला को नवमालिका बहुत प्रिय है, अतः प्रक्रम भंग नहीं रह जाता। इस तरह व्याख्या करने पर प्रक्रम-भंग दोष कर "अस्याम्" को "त्वयि" से पहले लगाया गया है।

छन्द—वसंततिलका (१।८ द्रष्टव्य)।

अलकार—समासोक्ति, तुल्ययोगिता, सम, अन्योन्य, हेतु व अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—इधर से रास्ता पकड़ लो।

संस्कृत-टीका—**इतः** अनया (अङ्गुलिनिर्दिष्टया) दिशा। **पन्थानम्** मार्गम्। **प्रतिपद्यस्व** अनुसर।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(हे) सखियो, निश्चित रूप से यह तुम दोनों के हाथ में (मेरी) धरोहर है।

सख्यौ—अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो [अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः]।

(इति वाष्पं विहरतः)

काश्यपः—अनसूये अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

शकुन्तला—ताद एसा उडजपज्जंतचारिणी गब्भमंथरा मिअवहू जदा अणघप्पसवा होइ तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह। [तात एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ]।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला। सख्यौ आल्यौ (प्रियंवदाम् अनसूयाम् च)। प्रति सम्बोध्य (कथयति यत्)। हला (हे) सख्यौ ! एषा इयम् (नवमालिका)। द्वयोः उभयोः युवयोः भवत्योः। ननु निश्चितम्। हस्ते करे। निक्षेपः न्यासः।

अलङ्कार—परिणाम।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों सखियाँ—मुझे किसके हाथ सौंप रही हो? (यह कहकर आँसू गिराती हैं)।

संस्कृत-टीका—सख्यौ आल्यौ (अनसूया प्रियंवदा च) (कथयतः) यत्। अयम् जनः अहम्। कस्य। हस्ते करे। समर्पितः निक्षिप्तः। इति एवम् उक्त्वा। वाष्पम् अश्रूणि। विहरतः मुञ्चतः।

हिन्दी-व्याख्या—यह वाक्य मर्म-स्पर्शी है; श्रोताओं को रुला देने वाला है।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—(हे) अनसूया, रोना बन्द करो। देखो तुम दोनों को ही शकुन्तला को धीरज बँधाना है।

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (कथयति यत्)। अलम् (निषेधे)। रुदित्वा रोदनेन। ननु भोः। भवतीभ्याम् युवाभ्याम्। एव। स्थिरीकर्तव्या अस्थिरा धैर्यरहिता स्थिरा धैर्ययुता कर्तव्या करणीया। शकुन्तला।

हिन्दी-व्याख्या—तुमको ही धैर्य देना है और तुम्हीं अधीर हो रही हो तो फिर हो चुका, यह भाव है। निषेधार्थक "अलम्" के योग में तृतीया विभक्ति और क्त्वा प्रत्यय व ल्यप् प्रत्यय से बने पद आते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—(सब घूमते हैं)।

शकुन्तला—पिता जी, यह पर्णशाला की सीमा तक घूमने वाली, गर्भ से धीरे चलने वाली हिरनी का प्रसव जब सकुशल हो जाय तब मेरे पास प्रिय-समाचार की सूचना देने वाले किसी व्यक्ति को भेज देना।

संस्कृत-टीका—सर्वे सकलाः जनाः। परिक्रामन्ति। शकुन्तला (कथयति यत्)। तात (हे) पितः (कण्व)। एषा निकटस्थिता। उटजपर्यन्तचारिणी उटजस्य पर्णशालायाः पर्यन्तम् सीमानम् चरति इति। गर्भमन्थरा गर्भेण मन्थरा मन्दा। मृगवधूः मृगस्य हरिणस्य वधूः स्त्री (हरिणी)। यदा यस्मिन् काले। अनघप्रसवा अनघः सकुशलः प्रसवः सन्तानोत्पत्तिः यस्याः सा।

काश्यपः—नेदं विस्मरिष्यामः।

शकुन्तला—(गतिभङ्गं रूपयित्वा) **को णु खु एसो णिवसणे मे सज्जइ** [को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते] (इति परावर्तते)

काश्यपः—वत्से

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ १३ ॥

भवति। **तदा** तस्मिन् काले **मह्यम्** माम् प्रति। **कमपि** कञ्चन। **प्रियनिवेदयितृकम्** प्रियस्य अभीष्टस्य (सन्तानजन्मवृत्तान्तस्य) **निवेदयितृकम्** सूचकम्। **विसर्जयिष्यथ** (यूयम्) प्रेषयिष्यथ।

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला का हिरनों के प्रति स्नेह स्पृहणीय है।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—यह नहीं भूलेंगे।

संस्कृत-टीका—काश्यपः—न। **इदम्** एतत् (उक्तम्) **विस्मरिष्यामः**।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (चलने में रुकावट का अभिनय कर)—यह कौन मेरे कपड़े में लगा है?

संस्कृत टीका—शकुन्तला। **गतिभङ्गम्** **गत्याः** चलनस्य **भङ्गम्** बाधाम्। **रूपयित्वा** नाटयित्वा। **कः**। **नु** (वितर्के) **खलु** (वितर्के)। **एषः** अयम् (निकटवर्त्ती) **निवसने** वस्त्रे। **मे** मम (शकुन्तलायाः) **सज्जते** लग्नः भवति। **इति** एवम् उक्त्वा। **परावर्त्तते**। निवर्त्तते।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—बेटी,

जिसके कुश की नोक से बिंधे हुये मुँह में तुमने घाव भरने वाला इङ्गुदी का तेल लगाया था, वही यह साँवे की मुट्ठी से बढ़ाया गया गोद लिया बेटा—हिरन—तुम्हारा रास्ता नहीं छोड़ता (तुम्हारा पीछा करता है)।

अन्वयः—त्वया कुशसूचिविद्धे यस्य मुखे व्रणविरोपणम् इङ्गुदीनाम् तैलम् न्यषिच्यत सः अयम् श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीम् न जहाति।

संस्कृत-टीका—त्वया भवत्या (शकुन्तलया)। **कुशसूचिविद्धे कुशानाम्** दर्भाणाम् **सूचिभिः** सूचिकावत् तीक्ष्णैः अग्रैः **विद्धे** क्षते। **यस्य**। **मुखे** वदने। **व्रणविरोपणम्** **व्रणस्य** क्षतस्य **विरोपणम्** पूरकम्। **इङ्गुदीनाम्** तापसतरुफलानाम् **तैलम्**। **न्यषिच्यत** सिक्तम्। **सः** पूर्वोक्तः। **अयम्** अग्रे परिदृश्यमानम्। **श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितकः श्यामाकस्य** धान्यविशेषस्य **मुष्टिभिः परिवर्धितः** पोषितः। **पुत्रकृतकः** कृत्रिमपुत्रः। **मृगः** हरिणः। **ते** तव। **पदवीम्** मार्गम्। **न जहाति** न त्यजति।

हिन्दी-व्याख्या—"सूची" शब्द तीक्ष्ण अग्र भाग वाला होने के कारण अग्रलक्षित करता है और वेध्यक्षमता की चरम सीमा ध्वनित करता है। उपमा-समास (सूची के समान कुश) करने पर पूर्व-पद (कुश) प्रधान हो जायेगा जिससे सूची की तीक्ष्णता का बोध नहीं होगा। रूपक (कुश

शकुन्तला—वच्छ किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं वि मए विरहिदं तुमं तादो चिंतइस्सदि। णिवत्तेहि दाव [वत्स किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्]।

(इति रुदती प्रस्थिता)

काश्यपः—

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं वाष्पं कुरु स्थिरतया विहतानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ॥१४॥

ही सूची) या षष्ठी तत्पुरुष (कुश की सूची) मानने पर उत्तर पद प्रधान होने से अर्थ सुन्दर होगा। "परिवर्धित" में "क" समासान्त प्रत्यय है। हिरन मुँह में घाव के कारण खुद नहीं खा सकता। अतः मुट्ठी से कुश घाव के पीछे रखकर उसे खिलाया गया, यह अर्थ बताने के लिये "मुष्टि" पद आया है। "कृतक" विशेषण है, इसे पुत्र के पहले आना चाहिये, पर आहिताग्नि वर्ग में "पुत्र" शब्द के होने से वह विशेषण के बाद आया है। मेघदूत के उत्तरार्ध में "कृतकतनय" पद आया है और पौधे को गोद लिया गया है। ये प्रसंग कितने निर्दोष और लुभावने हैं।

छन्द—वसन्ततिलका (१।८ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—स्वभावोक्ति, छेकानुप्रास व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—वत्स, साथ छोड़ने वाली मेरा अनुसरण क्यों कर रहे हो? थोड़ी देर पहले ही जन्म देने वाली माँ के बिना ही पाले पोसे गये हो। अब मेरे भी न रहने पर पिता जी तुम्हारी चिन्ता करेंगे। लौट जाओ।

(यह कहकर रोती हुई विदा होती है।)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (कथयति यत्)। वत्स पुत्र। किम् केन कारणेन। सहवासपरित्यागिनीम् सहवासम् सङ्गम् परित्यजति इति। माम् अणुसरसि अनुगच्छसि। अचिरप्रसूतया सद्यःप्रसूतया। जनन्या मात्रा। विना। वर्धितः पोषितः। इव। इदानीम् अधुना (अद्य प्रभृति)। अपि। मया। विरहितम् वियुक्तम्। त्वाम्। तातः पिता (कण्वः)। चिन्तयिष्यति पालयिष्यति। निवर्त्तस्व गच्छ। तावत् (वाक्यालङ्कारे)। इति एवम् उक्त्वा रुदती विलपन्ती प्रस्थिता प्रचलिता।

हिन्दी व्याख्या—इस कथन में हिरन के प्रति शकुन्तला का मातृ-तुल्य स्नेह ध्वनित होता है। "एव" "विना" के और "अपि" "मया" के बाद आना चाहिये; प्राकृत की छाया होने या बातचीत में उतना ध्यान न होने से शब्दों का क्रम ठीक नहीं है।

हिन्दी अनुवाद—जिसने खुली बरौनी वाली आँखों का काम बन्द कर दिया है, ऐसे आँसू को पुनः पुनः उत्पत्ति धैर्य-पूर्वक दूर करो क्योंकि इस (आँसू के कारण) न दिख रही ऊँची-नीची भूमि वाले मार्ग पर तुम्हारे कदम लड़खड़ा रहे हैं।

शार्ङ्गरवः—भगवन् ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम् अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि।

काश्यपः—तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः। (सर्वे परिक्रम्य स्थिताः)।

अन्वयः—स्थिरतया उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरुद्धवृत्तिम् वाष्पम् विहतानुबन्धम् कुरु। पदानि खलु ते अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन् मार्गे विषमीभवन्ति।

संस्कृत-टीका—**स्थिरतया** धैर्येण। **वाष्पम्** अश्रु। **उत्पक्ष्मणोः** उद् ऊर्ध्वम् **पक्ष्माणि** लोमानि ययोः तयोः। **नयनयोः** लोचनयोः। **उपरुद्धा** बाधिता **वृत्तिः** प्रवर्तनम् येन तादृशम्। **वाष्पम्** अश्रु **स्थिरतया** धैर्येण। **विहतः** निरुद्धः **अनुबन्धः** पुनः पुनः उत्पत्तिः यस्य तादृशम्। **कुरु** विधेहि **पदानि** चरणन्यासाः। **खलु** यस्मात्। **ते** तव। **अलक्षितः** (अश्रुप्रवाहेण) अदृष्टः **नतः** सगर्त्तः **उन्नतः** उच्चैः (च) **भूमेः** पृथ्व्याः **भागाः** अंशाः यस्य तादृशे। **अस्मिन्** पुरः वर्तमाने **मार्गे** पथि। **विषमीभवन्ति** स्खलन्ति।

हिन्दी-व्याख्या—मार्ग देखने के लिये आँखें तो खोली गई हैं पर ममता के कारण आँसू आ जाने से उनका खुलना बेकार हो गया है जिससे मार्ग नहीं दिख रहा है और ऊँची-नीची भूमि पर पैर लड़खड़ा रहे हैं। वन में ऊँची-नीची भूमि का होना स्वाभाविक है।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग। संसृष्टि। छेकानुप्रास। वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—श्रीमन्, प्रिय व्यक्ति के पीछे वहीं तक जाना चाहिये जहाँ तक जल (जलाशय) हो, यह सुना है। (तो) यह तालाब का किनारा है। यहाँ सन्देश देकर वापस जायँ।

संस्कृत-टीका—**शार्ङ्गरवः** (कथयति यत्)। **भगवन्** श्रीमन्। **आ** यावत्। **उदकस्य** जलस्य। **अन्तम्** तटम्। **स्निग्धः** प्रियः। **जनः** व्यक्तिः। **अनुगन्तव्यः** अनुसरणीयः। **इति** एवम्। **श्रूयते** श्रुतेः ज्ञायते। **तत्** तर्हि। **इदम्** पुरः वर्त्तमानम्। **सरसः** जलाशयस्य। **तीरम्** तटम्। **अत्र** अस्मिन् स्थाने। **संदिश्य** सन्देशम् कथयित्वा। **प्रतिगन्तुम्** निवर्त्तितुम्। **अर्हसि** उचितम्।

हिन्दी-व्याख्या—स्थान-स्थान पर जीवों के लिये जल की व्यवस्था होने से उक्त स्थान पास ही प्रतीत होता है। किसी को पहुँचाने के लिये दूर तक जाने की रीति नहीं है। श्मशान दूर होता है और वहाँ तक मरे हुये को पहुँचाते हैं; उसे अशुभ मानकर यह प्रथा चलाई गई है।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—तो क्षीर (बरगद-जैसे दूध वाले) वृक्ष की छाँह में शरण लेते हैं। (सभी घूमकर रुक जाते हैं)।

संस्कृत टीका—**काश्यपः** कण्वः (वदति यत्)। **तेन** हि तस्मात् कारणात्। **इमाम्** पुरः स्थिताम्। **क्षीरवृक्षस्य** 'लक्षणोपलक्षणवतः **वृक्षस्य** तरोः छायाम् अनातपदेशम्। **आश्रयामः** शरणम् कुर्मः। **सर्वे** सकलाः। **परिक्रम्य** मण्डलाकारम् गत्वा। **स्थिताः**।

हिन्दी-व्याख्या—वृक्ष के पहले "क्षीर" यह ध्वनित करता है कि छाया घनी है क्योंकि दूध वाले (बरगद-जैसे) वृक्ष घने होते हैं। मंच पर घूम जाने का अर्थ चलना है; स्थान कम होने से

काश्यपः—(आत्मगतम्) **किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम्।** (इति चिन्तयति)।

शकुन्तला—(जनान्तिकम्) **हला पेक्ख णलिणीपत्तंतरिदं वि सहअरं अदेक्खंती आदुरा चक्कवाई आरडदि दुक्करं अहं करेमि त्ति तक्केमि** [हला पश्य। नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारौति दुष्करमहं करोमीति तर्कयामि।]

अनसूया—**सहि मा एव्वं मंतेहि।** [सखि मैवं मन्त्रय।]

एषा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीहअरं।
गरुअं वि विरहदुक्खं आसाबंधो सहावेदि ॥ १५ ॥
[एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ॥]

चलने का अभिनय घूमकर किया जाता है।

हिन्दी अनुवाद—कण्व (मन ही मन)—श्रीमान् दुष्यन्त को क्या सन्देश भेजें जो कि परमोचित हो। (यह कहकर सोचने लगते हैं)।

संस्कृत टीका—**काश्यपः** कण्वः। **आत्मगतम्** (कथयति यत्)। **किम् न खलु। तत्रभवतः** आदरणीयस्य। **दुष्यन्तस्य। युक्तरूपम्** प्रशस्तम् युक्तम्। **अस्माभिः** मया। **संदेष्टव्यम्** सन्देशरूपेण प्रेषणीयम्। **इति** एवम् उक्त्वा। **चिन्तयति।**

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (जनान्तिक)—सखी, देखो; केवल कमलिनी पत्ते से आड़ होने पर (भी) सहचर को न देखती हुई विह्वल होकर चकवी रोती है यह देखकर लगता है कि मैं बहुत कठोर कार्य कर रही हूँ (जो इतनी दूर होने पर भी मुझे कुछ नहीं हो रहा है)।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** (जनान्तिकम्) (कथयति यत्)। हला सखि। **पश्य** वीक्षस्व। **नलिन्याः** कमलिन्याः **पत्रेण** दलेन **अन्तरितम्** अदृष्टम्। **अपि** एव। **सहचरम्** प्रियम्। **अपश्यन्ती** न विलोकयन्ती। **आतुरा** विह्वला। **चक्रवाकी** चक्रवाकवधूः। **आरौति** क्रन्दति। **इति** एवम् चिन्तयित्वा। **दुष्करम्** कठोरम्। **अहम्। करोमि** आचरामि। **इति** एवम्। **तर्कयामि** जाने।

हिन्दी-व्याख्या—थोड़ी दूर और जरा सी देर का विछोह पत्ते से दूर होने के द्वारा व्यक्त किया गया है। चकवी पक्षी-जाति की होकर भी प्रिय-विरह में व्याकुल हो जाती है, पर मैं मानवी होकर भी वैसी ही हूँ, यह भोला विचार शकुन्तला की निष्कपटता दिखाता है।

हिन्दी-अनुवाद—**अनसूया**—हे सखी, यह मत कहो।

संस्कृत-टीका—**अनसूया** (कथयति यत्) **सखि** (हे) आले। **मा** न। **एवम्** इत्थम्। **मन्त्रय** कथय।

हिन्दी-व्याख्या—ऐसा कहकर अपने और हमारे दिल दुःखी मत करो। तुम्हारे हृदय में प्रिय-विरह से कितनी व्यथा है; तुम कितनी मृदु-हृदया हो, यह हमें ज्ञात है,, यह कहकर अनसूया धैर्य बँधाती है।

हिन्दी-अनुवाद—यह (सखी शकुन्तला) भी प्रिय के बिना (चकवी की तरह) दुःख से

काश्यपः—शार्ङ्गरव इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः ।

शार्ङ्गरवः—आज्ञापयतु भवान् ।

काश्यपः—

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन–
स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।

बहुत बड़ी रात बिताती है । आशा का बन्धन वियोग का भारी कष्ट भी सहने को प्रेरित करता है ।

अन्वयः—एषा अपि प्रियेण बिना विषाददीर्घतराम् रजनीम् गमयति । आशाबन्धः गुरु अपि विरहदुःखम् साहयति ।

संस्कृत टीका—एषा समीपवर्त्तिनी (शकुन्तला) । **अपि** (चक्रवाकी इव) । **प्रियेण** सहचरेण (दुष्यन्तेन) बिना वियुज्य । **विषादेन** दुःखेन **दीर्घतराम्** विशेषलम्बाम् । **रजनीम्** रात्रिम् । **गमयति** नयति । **आशायाः बन्धः** बन्धनम् । **गुरु** असह्यम् । **अपि** । **विरहस्य** वियोगस्य । **दुःखम्** कष्टम् । **साहयति** । सोढुम् प्रेरयति ।

हिन्दी-व्याख्या—इस श्लोक से ऊपर की बात का समर्थन होता है । चकवी रात भर चकवे के बिना दुखी रहती है, यह कवि-प्रसिद्धि है । उस विरहिणी खगी की भाँति ही शकुन्तला भी विरह से दुःखी रहती है । संस्कृत में "आशा" इच्छा के अर्थ में प्रचलित है; हिन्दी में जिस अर्थ में यह शब्द प्रचलित है, उस अर्थ में कालिदास के समय की प्राकृत में भी प्रचलित था । "साहयति" का प्रयोग प्राकृत के अनुरोध से ही है; संस्कृत में ऐसा प्रयोग नहीं आता ।

छन्द—गाथा ।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास ।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—शार्ङ्गरव, शकुन्तला को सामने कर राजा से मेरा यह संदेश कहना ।

संस्कृत टीका—काश्यपः कण्वः (वदति यत्), (हे) शार्ङ्गरव । इति एवं रूपात् । **मम वचनात्** संदेशेन । **त्वया** भवता **सः** । **राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **शकुन्तलाम् पुरस्कृत्य** समक्षम् स्थापयित्वा । **वक्तव्यः** कथनीयः ।

हिन्दी-व्याख्या—"वचन" में द्वितीया न रख पंचमी रखी गयी है; संदेश सुनाने में ऐसा प्रयोग मुहावरेदार माना जाता है ।

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरवः-आप कहें ।

संस्कृत टीका—शार्ङ्गरवः (वदति कथयति) । **आज्ञापयतु** वदतु । **भवान्** ।

हिन्दी-व्याख्या—"आज्ञापयतु" का प्रयोग "कहे" के अर्थ में आदरार्थक है ।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—

संस्कृत टीका—काश्यपः कण्वः (कथयति यत्) ।

हिन्दी अनुवाद—हमारी संपत्ति संयम है इसे, अपने उच्चकुल और अपने प्रति इस (शकुन्तला) के द्वारा की गई वह अनिर्वचनीय कारण से हुई प्रेम-प्रवृत्ति, जो बन्धुबान्धवों द्वारा पैदा नहीं की गई

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ १६ ॥

शार्ङ्गरवः—गृहीतः सन्देशः ।

काश्यपः—वत्से त्वमिदानीमनुशासनीयासि । वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम् ।

है, भली-भाँति ध्यान में रखकर अपनी पत्नियों के समान देखियेगा, इसके आगे भाग्य के अधीन है, अतः (हम) वधू-बन्धुओं (पक्ष वालों) को उसके विषय में नहीं कहना चाहिये ।

अन्वयः—अस्मान् संयमधनान् आत्मनः च उच्चैः कुलम् त्वयि च अस्याः कथमपि अबान्धवकृताम् ताम् स्नेहप्रवृत्तिम् साधु विचिन्त्य इयम् दारेषु सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकम् त्वया दृश्या । अतः परम् भाग्यायत्तम् । तत् खलु वधू-बन्धुभिः (अस्माभिः) न वाच्यम् ।

संस्कृत टीका—**अस्मान्** नः । **संयमः** इन्द्रियदमः **धनम्** सर्वस्वम् येषाम् तादृशान् । **आत्मनः** स्वस्य । **च उच्चैः** श्रेष्ठम् । **कुलम्** वंशम् । **त्वयि** भवति । **च । अस्याः** (शकुन्तलायाः) । **कथमपि** केनापि अनिर्देश्येन कारणेन । **बान्धवैः** पित्रादिभिः **न कृताम्** विहिताम् । **ताम्** प्रसिद्धाम् पूर्वाचरिताम् । **स्नेहस्य** प्रेम्णः **प्रवृत्तिम्** प्रवाहम् । **साधु** सम्यक् , **विचिन्त्य** अनुस्मृत्य । **इयम्** (शकुन्तला) । **दारेषु** भार्यासु । **सामान्या** साधारणी च सा **प्रतिपत्तिः** गौरवम् **तत्पूर्वकम्** (तया सह) । **त्वया** भवता । **दृश्या** माननीया । **अतः** इतः । **परम्** अधिकम् । **भाग्यस्य** दैवस्य **आयत्तम्** वशीभूतम् । **तद्** । पूर्वोक्तम् । **खलु** निश्चयेन । **वध्वाः** कन्यायाः **बन्धुभिः** । पित्रादिभिः आप्तजनैः **। न । वाच्यम्** । कथनीयम् ।

हिन्दी-व्याख्या—संयमी ऋषियों का ख्याल रखना चाहिये, उनके आत्मीयों के प्रति दुर्व्यवहार कर उन्हें, दुखी नहीं करना चाहिये, अपने उच्च कुल को देखते हुये इसके प्रति कठोरता या स्नेहाभाव आपको नहीं रखना चाहिये तथा इसका स्नेह स्वाभाविक है; बन्धु बान्धव अपनी इच्छा से जो व्याह करते हैं उसमें वधू का अनुराग नहीं होता, कई पत्नियाँ होने पर सब के प्रति समान व्यवहार रखना चाहिये आदि कर्त्तव्य बोध कराया गया है हर संदेश में अपनी कन्या के कल्याण की सरल भावना छिपी है । इससे अधिक स्थान—पति का विशेष अनुराग या महारानी का पद—यदि मिले तो भाग्य है । कन्यापक्ष वालों को अपनी कन्या के लिये पक्षपात, निवेदन करना अनुचित है । अधिक कहना पक्षपात होगा जिससे उसका वजन कम हो जायेगा और सुनने वाले को उदासीन बना देगा ।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग (क्रिया, कारक), अप्रस्तुतप्रशंसा, काव्यलिङ्ग, श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—मैंने संदेश समझ लिया है ।

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्) **गृहीतः** स्मृतः । **संदेशः** ।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—बेटी, अब तुम्हें शिक्षा देनी है । वन-वासी होकर भी हम लौकिक व्यवहार जानते हैं ।

शार्ङ्गरवः—न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।
काश्यपः—सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ १७॥

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (वदति यत्) त्वम् । इदानीम् अधुना । अनुशासनीया शिक्षणीया । असि । वनम् अरण्यम् ओकः गृहम् येषाम् तादृशाः अपि । सन्तः भवन्तः लौकिकज्ञाः लोकव्यवहाराभिज्ञाः । वयम् ।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव बुद्धिमानों की दृष्टि से कुछ भी ओझल नहीं ।

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्) । न खलु निश्चयेन । धीमताम् बुद्धिशालिनाम् । कश्चित् किमपि वस्तु । अविषयः अगोचरः । नाम निश्चयेन ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "खलु" "न" पर जोर देने के लिये है । "नाम" भी उसी तरह निश्चयार्थक है । दोनों से विशेष निश्चय दिखाया गया है । "विषय" शब्द पुंल्लिङ्ग है जिससे "कश्चित्" का प्रयोग हुआ है । सामान्य प्रयोग में "किम्" शब्द नपुंसकलिङ्ग में भी हो सकता था पर संस्कृत में विधेय पद के विशेष्य (Case in apposition) के अनुसार उद्देश्य में उसके लिये आया शब्द रखने का चलन है ।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास ।

हिन्दी-अनुवाद—कण्व—वह (आश्रम-आचार-मात्र को जानने वाली) तुम यहाँ से ससुराल पहुँचकर—

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (वदति यत्) । सा (आश्रमाचारमात्रज्ञा) । त्वम् । इतः अस्मात् (पितुः कुलात्) । पत्युः स्वामिनः । कुलम् वंशम् । प्राप्य आसाद्य ।

हिन्दी-व्याख्या—"सा" जैसा प्रयोग इस तरह के अर्थ के लिये हिन्दी में प्रचलित नहीं है । ससुराल के लिये "पतिकुल" शब्द संस्कृत में अधिक प्रचलित है ।

उक्त वाक्यांश का सम्बन्ध आगे के श्लोक से है ।

हिन्दी-अनुवाद—बड़ों की सेवा करना । सौत के प्रति प्यारी सखी का सा व्यवहार करना । पति-द्वारा तिरस्कृत होकर भी क्रोध के कारण विरुद्ध मत जाना । सेवक के प्रति अत्यन्त उदार और सौभाग्य पर अभिमान रहित होना । इस प्रकार (करने से) युवतियाँ "गृहिणी" का पद पाती हैं, विपरीत आचरण वाली स्त्रियाँ वंश के लिये मनोव्यथा होती हैं ।

अन्वयः—गुरून् शुश्रूषस्व । सपत्नीजने प्रियसखीवृत्तिम् कुरु । भर्तुः विप्रकृता अपि रोषणतया प्रतीपम् मा स्म गमः । परिजने भूयिष्ठम् दक्षिणा भाग्येषु (च) अनुत्सेकिनी भव । एवम् युवतयः गृहिणीपदम् यान्ति । वामाः (तु) कुलस्य आधयः ।

संस्कृत-टीका—गुरून् पूज्यान् । शुश्रूषस्व सेवस्व । सपत्नीजने (दुष्यन्तस्य) अन्याः पत्नीः ।

कथं वा गौतमी मन्यते ।

गौतमी—एत्तिओ बहूजणस्स उवदेसो । जादे एदं खु सव्वं ओधारेहि ।

[एतावान्वधूजनस्योपदेशः । जाते एतत्खलु सर्वमवधारय ।]

काश्यपः—वत्से परिष्वजस्व मां सखीजनं च ।

शकुन्तला—ताद इदो एव्व किं पिअंवदामिस्साओ सहीओ णिवत्तिस्संति ।

[तात इत एव किं प्रियंवदामिश्राः सख्यो निवर्तिष्यन्ते ।]

प्रति । **प्रियाणाम् सखीनाम्** आलीनाम् (इव) **वृत्तिम्** व्यवहारम् । **कुरु** आचर । **भर्तुः** पत्युः । **विप्रकृता** न्यक्कृता । **अपि** । **रोषणतया** क्रोधावेशेन । **प्रतीपम्** वैपरीत्यम् । **मा स्म न** । **गमः** गच्छ । **परिजने** सेवकवर्गम् प्रति । **भूयिष्ठम्** अतिशयेन । **दक्षिणा** उदारा । **भाग्येषु** दैवेषु (सुखेषु) (च) **अनुत्सेकिनी** निरभिमाना । **भव** । **एवम्** इत्थम् (आचरणेन) । **युवतयः** बालाः । **गृहिण्याः** गेहिन्याः । **पदम्** अधिकारम् । **यान्ति** प्राप्नुवन्ति । **वामाः** प्रतीपगामिन्यः (तु) । **कुलस्य** वंशस्य । **आधयः** मनोव्यथाः ।

हिन्दी-व्याख्या—"शुश्रूषा" का अर्थ सुनने की इच्छा है, जब तक सुनने की इच्छा नहीं होगी तब तक सेवा नहीं हो सकती अतः यह शब्द "सेवा" अर्थ में आता है । "गुरु" शिक्षक के अर्थ में संस्कृत में (हिन्दी की तरह) नहीं आता; इसका "पिता आदि पूज्य जन" अर्थ ही प्रचलित है । "जन" समूहवाची है । पहुँचना या जाना "पाने" के अर्थ में संस्कृत में आता है । "वामा" शब्द उलटे आचरण वाली स्त्री के लिये आया है । "आधि" "सिर-दर्द" के अर्थ में है । इसका विलोम "व्याधि" है जो शारीरिक कष्ट के अर्थ में आता है ।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—रूपक, अर्थान्तरन्यास ।

हिन्दी अनुवाद—गौतमी का परामर्श क्या है ?

संस्कृत-टीका—**कथम्** किम् । वा (वाक्यालङ्कारे) । **गौतमी** । **मन्यते** परामृशति ।

हिन्दी अनुवाद—गौतमी—वधुओं के लिये इतना (ही) उपदेश है । बेटी, यह सब गाँठ बाँध लो ।

संस्कृत टीका—**गौतमी** (वदति यत्) । **एतावान्** एतन्मात्रम् । **वधूजनस्य** वधूनाम् (कृते) । **उपदेशः** शिक्षा । **जाते** पुत्रि । **एतत्** इदम् । **खलु** निश्चयेन । **सर्वम्** सकलम् (षण्णोक्तम्) । **अवधारय** गृहाण ।

हिन्दी अनुवाद—कण्व—बेटी, मुझ से और सहेलियों से गले मिल लो ।

संस्कृत-टीका—**काश्यपः** कण्वः (वदति यत्) **वत्से** पुत्रि । **परिष्वजस्व** आलिङ्ग **माम्** । **सखीजनम्** आलीवर्गम् च ।

हिन्दी व्याख्या—पिता से गले मिलने की प्रथा अब नहीं दिखती । विदाई के समय गले मिलने की प्रथा स्त्रियों में अब भी स्नेहाधिक्य सूचक मानी जाती है ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—पिता जी, यहीं से क्या प्रियंवदा आदि सखियाँ लौट जायेंगी ?

काश्यपः—वत्से इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।

शकुन्तला—(पितरमाश्लिष्य) **कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भट्ठा मलअतडुम्मूलिआ चंदणलदा विअ देसंतरे जीविअं धारइस्सं।** [कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलयतरून्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्ये।]

संस्कृत-टीका—तात (हे) पितः। **इतः** अस्मात् स्थानात्। **एव। किम्। प्रियंवदामिश्राः** प्रियंवदादयः। **सख्यः** आल्यः। **निवर्तिष्यन्ते** (माम् विहाय पुनः तपोवनम्) गमिष्यन्ति।

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला सखियों का साथ छूटने की आशंका से इतनी अधीर हो रही है कि ऊपर आये सामान्य वाक्य "जलाशय तक ही प्रिय जन के साथ जाया जाता है" के होते हुये भी व्यर्थ प्रश्न कर रही है।

हिन्दी अनुवाद—कण्व—बेटी, इनका भी व्याह करना है। इनका वहाँ जाना उचित नहीं है। तुम्हारे साथ गौतमी जायेगी।

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (वदति यत्)। **इमे** (प्रियंवदा अनसूया च)। **अपि। प्रदेये** परिणययोग्ये। **न। युक्तम्** उचितम्। **अनयोः। तत्र** तस्मिन् स्थाने (दुष्यन्तप्रासादम्)। **गन्तुम्** गमनम्। **त्वया। सह** साकम्। **गौतमी। यास्यति** गमिष्यति।

हिन्दी-व्याख्या—कुमारियों का पिता के घर में रहना ही ठीक है; सखी या बहन के पति के घर नहीं। हो सकता है, कोई पात्र तुरंत मिल जाय और तत्काल ब्याह करना पड़ जाय। ये वे कारण प्रतीत होते हैं जिनसे सखियों को साथ नहीं जाने दिया जाता। गौतमी वृद्धा तपस्विनी है। ऐसे व्यक्ति कहीं जा सकते हैं। आजकल किसी कुटुम्बी को न भेजकर नाइन या नौकरानी भेजने का रिवाज सम्पन्न घरों में कहीं-कहीं देखा जाता है।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (पिता के गले लगकर)—पिता की गोद से अलग होकर मलय (पर्वत) के (किसी) वृक्ष से खींची गई चन्दन-लता की तरह दूसरे स्थान में कैसे जीवन धारण करूँगी ?

संस्कृत टीका—शकुन्तला। पितरम् जनकम् (कण्वम्)। **आश्लिष्य** आलिङ्ग्य (कथयति यत्)। **कथम्** केन प्रकारेण। **तातस्य** पितुः (कण्वस्य)। **अङ्कात्** क्रोडात्। **परिभ्रष्टा** च्युता। **मलयस्य** मलयाचलस्य **तरोः** (कस्मादपि) वृक्षात् **उन्मूलिता** उत्पाटिता। **चन्दनलता। इव।** अन्यः **देशः** स्थानम् तस्मिन्। **जीवितम्** प्राणान्। **धारयिष्ये** दधे।

हिन्दी व्याख्या—मर्मस्पर्शी स्वाभाविक बिदाई है। यह करुणा नगर की हँसती हुई विदा होने वाली आधुनिकाओं में भले न मिले, ग्राम की भोली बालाओं में अब भी प्राप्य है। "तात" की जगह "तुम्हारे" प्रयोग ज्यादा स्वाभाविक होता। उस समय के चलन के अनुसार या वैसी वेदना के समय ऐसा प्रयोग हो सकता है,। तात से तरु और स्वयम् (शकुन्तला) से चन्दन-लता की उपमा मनोरम है। प्रसिद्ध है कि चन्दन-लता मलयाचल के पेड़ से खींचकर किसी दूसरी जगह चढ़ाई जाय

काश्यपः—वत्से किमेवं कातरासि ।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ १८ ॥

तो नहीं रहती । वर्तमान की निश्चिन्तता और अनागत की अनिश्चितता से उत्पन्न आशंका यहाँ स्पष्ट है ।

अलंकार—उपमा ।

हिन्दी-अनुवाद—बेटी, क्यों यों विह्वल हो रही हो (धैर्य धारण करो) ।

संस्कृत-टीका **काश्यपः** कण्वः (कथयति यत्) । **वत्से** पुत्रि । **किम्** कथम् । **एवम्** प्रकारेण **कातरा** विह्वला । **असि** भवसि । (धैर्यम् धारय) ।

हिन्दी अनुवाद—बेटी, कुलीन स्वामी की गृहिणी के सराहनीय पद पर रहकर उनकी सम्पत्ति के कारण बड़े कर्त्तव्यों से हर समय व्यग्र रहती हुई शीघ्र ही जिस प्रकार पूर्व दिशा (पवित्र करने वाले) सूर्य को जन्म देती है, उस प्रकार पवित्र करने वाले पुत्र को जन्म देकर तुम्हें मेरे वियोग की पीड़ा का अनुभव न होगा (भूल जाओगी) ।

अन्वयः—वत्से अभिजनवतः भर्तुः श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता (सती) विभव-गुरुभिः तस्य कृत्यैः प्रतिक्षणम् आकुला (सती) प्राची (पावनम्) अर्कम् इव पावनम् तनयम् अचिरात् प्रसूय मम विरहजाम् शुचम् त्वम् न गणयिष्यसि ।

संस्कृत-टीका—**वत्से** (हे) पुत्रि । **अभिजनवतः** कुलवतः (कुलीनस्य) । **भर्तुः** स्वामिनः (दुष्यन्तस्य) । **श्लाघ्ये** प्रशंसनीये । **गृहिणीपदे** गृहस्वामिनीस्थाने । **स्थिता** वर्तमाना (सती) । **विभवैः** सम्पत्तिभिः **गुरुभिः** दुर्वहैः । **तस्य** (स्वामिनः) । **कृत्यैः** कार्यैः । **प्रतिक्षणम्** सदा । **आकुला** व्यग्रा (सती) । **प्राची** पूर्वदिक् (पावनम्) । **अर्कम्** सूर्यम् । **इव** **पावनम्** पवित्रीकर्त्तारम् । **तनयम्** पुत्रम् । **अचिरात्** शीघ्रम् । **प्रसूय** जनयित्वा । **मम** । **विरहजाम्** वियोगजन्याम् । **शुचम्** पीडाम् । **त्वम्** । **न गणयिष्यसि** प्राप्स्यसि ।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ पति कुलीन हैं, गृहिणी का पद मिलेगा, बहुत सम्पत्ति होगी, सूर्य-सदृश पावन पुत्र शीघ्र मिलेगा और व्यस्त होने से पितृ-वियोग की पीड़ा यों नहीं सताएगी आदि भविष्य के सुनहले और धैर्य-कारक चित्र खींचे गये हैं जिससे शकुन्तला घबड़ा न जाय । कुलीन, अच्छा व्यवहार करता है क्योंकि उसे अच्छे कुल का ध्यान रहता है । "गृहिणी" शब्द "घर वाली" के रूप में अब भी आता है । जो "गृह-स्वामिनी" का पद देता है । प्राचीन काल में गृहिणी के बिना घर घर नहीं है, यहाँ तक कहा गया है । "न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।" "बिन घरनी घर भूत का डेरा" हिन्दी में लोकोक्ति हो गया है । धनी के यहाँ कार्य की अधिकता होती है, यह स्वाभाविक है । राजसूय यज्ञ के समय द्रौपदी की व्यस्तता का वर्णन महाभारत में दर्शनीय है । सन्तान, उदर में

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति ।)

काश्यपः—यदिच्छामि ते तदस्तु ।

शकुन्तला—(सख्यावुपेत्य) **हला दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह ।** [हला द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम् ।]

सख्यौ—(तथा कृत्वा) **सहि जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमंथरो भवे तदो से इमं अत्तणामहेअअंकिअं अंगुलीअअं दंसेहि ।** [सखि यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्ततस्तस्येदमात्मनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं दर्शय ।]

है, जिससे शीघ्र पुत्रोत्पत्ति की बात कही गई है। वह पुत्र ही होगा और सूर्य की तरह पावन होगा, यह आशीर्वाद है।

छन्द—हरिणी जिसकी परिभाषा निम्नलिखित है :—

रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा। (वृत्तरत्नाकर २।९६)। प्रत्येक चरण में नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु तथा छह, चार और सात पर यति होने पर हरिणी छन्द होता है।

अलङ्कार—उपमा, समुच्चय, काव्यलिङ्ग, श्रुत्यनुप्रास और वृत्त्यनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—(शकुन्तला) पिता के चरणों में गिरती है।

संस्कृत टीका—**शकुन्तला । पितुः** जनकस्य (कण्वस्य)। **पादयोः** चरणयोः । **पतति** नमति ।

कण्व—तुम्हारे लिये जो चाहता हूँ, वह हो ।

काश्यपः—कण्वः (वदति यत्) **यद् इच्छामि** कामये । ते तव (कृते) । **तद्** । **अस्तु** भवतु ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (दोनों सखियों के पास पहुँचकर)—सखियो, दोनों साथ ही मेरे गले लगो ।

संस्कृत टीका—**शकुन्तला । सख्यौ** (प्रियंवदाम् अनसूयाम् च) । **उपेत्य** समीपम् गत्वा । **हला** (हे) सख्यौ । **द्वे** उभे **अपि । माम् । समम्** युगपत् । **एव । परिष्वजेथाम्** आलिङ्गतम् ।

हिन्दी व्याख्या—दोनों सखियों से समान स्नेह है जिसे पहले गले लगाया, उसे अन्त में पुनः गले लगाने की आतुरता हो सकती है जिसे रोकने के लिये दोनों को साथ गले लगाया गया है।

हिन्दी अनुवाद—दोनों सखियाँ (वैसा कर)—(हे) सखी, अगर कहीं वे राजा पहचानने में देर करें तो उन्हें यह अँगूठी दिखा देना जिस पर उनका नाम लिखा है।

संस्कृत टीका—**सख्यौ** आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च) । **तथा** (शकुन्तलावचनानुसारेण) । **कृत्वा** विधाय (युगपत् आलिङ्ग्य) (कथयतः यत्) **सखि** (हे) आलि । **यदि** चेत् । **नाम** (संभावनायाम्) । **सः । राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **प्रत्यभिज्ञाने** सा इयम् शकुन्तला इति ज्ञाने । **मन्थरः** शिथिलः । **भवेत्** स्यात् **ततः** तदा । **तस्य** तम् (प्रति) । **इदम्** (दर्शितम्) **आत्मनः** तस्य (दुष्यन्तस्य) **नामधेयाङ्कितम्** उत्कीर्णाभिधम् । **अङ्गुलीयकम्** ऊर्मिकाम् । **दर्शय** ।

शकुन्तला—इमिणा संदेहेण वो आकंपिदम्हि [अनेन संदेहेन वामाकम्पितास्मि ।]

सख्यौ—मा भाआहि सिणेहो पावसंकी । [मा भैषीः स्नेहः पापशङ्की ।]

शाङ्गरवः—युगान्तरमारूढः सविता । त्वरतामत्रभवती ।

शकुन्तला—(आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) ताद कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं । [तात कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये ।]

काश्यपः—श्रूयताम् ।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ वितर्क (संभावना) की चर्चा है। ऐसी चर्चा रूपकों में अक्सर आती है जिससे कहानी बढ़ती और मनोरंजक होती है। यह रूपक का एक अंग है जिसे "रूप" कहते हैं। 'रूपं वितर्कवद्वाक्यम्' (दशरूपक १।३९)।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—तुम दोनों की इस शंका से काँप उठी हूँ।

संस्कृत टीका—**अनेन** पूर्वोक्तेन। **संदेहेन** शङ्कया। **वाम्** युवयोः। **आकम्पिता** भीता। **अस्मि**।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ "संभ्रम" नामक रूपक का अङ्ग है जिसमें शङ्का और भय की चर्चा होती हैं। 'शङ्कात्रासौ तु संभ्रमः' (दशरूपकः १।४२)।

हिन्दी अनुवाद—दोनों सखियाँ—मत डरो। स्नेह अनिष्ट की आशङ्का करता है।

संस्कृत टीका—**सख्यौ** आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च) (कथयतः यत्)। **मा** न। **भैषीः** भीता भव। **स्नेहः** अनुरागः। **पापशङ्की** अनिष्टसन्देहवान्।

हिन्दी व्याख्या—अपनों के लिये अमंगल की कल्पना भी करना अमङ्गल है पर जिसके प्रति अधिक स्नेह होता है, उसके बारे में डर लगा रहता है कि कहीं उसके ऊपर कोई आफत न आ जाय। यह स्वाभाविक और सच्चे स्नेह का विषय है।

हिन्दी अनुवाद—शाङ्गरव—सूर्य चार हाथ चढ़ आया है। आप जल्दी करें।

संस्कृत टीका—**शाङ्गरवः** (वदति यत्)। **युगान्तरम्** हस्तचतुष्कावधि। **आरूढः** प्राच्या-दिशः अग्रम् आगतः। **सविता** सूर्यः। **त्वरताम्** शीघ्रतां करोतु। **अत्रभवती**।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (आश्रम की ओर होकर)—पिता जी, अब कब तपोवन के दर्शन करूँगी।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला**। **आश्रमाभिमुखी** तपोवनदिशन् प्रति। **स्थित्वा** (कथयति यत्)। **तात** (हे) पितः। **कदा** कस्मिन् काले। **नु** वाक्यालङ्कारे। **भूयः** पुनः। **तपोवनम्** आश्रमम्। **प्रेक्षिष्ये** द्रक्ष्यामि।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ ममता की अधीरता है। आशय है कि शायद भविष्य में न देख पाऊँ या बहुत दिनों के बाद देख पाऊँ।

हिन्दी अनुवाद—कण्व—सुनो।

संस्कृत-टीका—**काश्यपः** कण्वः। **श्रूयताम्** (त्वया) आकर्ण्यताम् (इदम्)।

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥१९॥

गौतमी—जादे परिहीअदि गमणवेला । णिवत्तेहि पिदरं । अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं मंतइस्सदि । णिवत्तदु भवं । [जाते परिहीयते गमनवेला । निवर्तय पितरम् । अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते । निवर्ततां भवान् ।]

काश्यपः—वत्से उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम् ।

शकुन्तला—(भूयः पितरमाश्लिष्य) तवच्चरणपीडिदं तादसरीरं । ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कंठिदुं [तपश्चरणपीडितं तातशरीरम् । तन्मातिमात्रं मम कृत उत्कण्ठितुम् ।]

हिन्दी अनुवाद—चिरकाल तक सागरों की सीमा वाली पृथ्वी की सौत होकर दुष्यन्त और अपने अजेय पुत्र को राज्य पर स्थापित कर जिन्होंने परिवार का भार उस (पुत्र) पर डाल दिया है उन दुष्यन्त के साथ इस शान्त तपोवन में फिर कदम रखोगी ।

अन्वयः—चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा अप्रतिरथम् दौष्यन्तिम् तनयम् निवेश्य तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धम् अस्मिन् शान्ते आश्रमे पुनः पदम् करिष्यसि ।

संस्कृत टीका—**चिराय** चिरकालम् । **चत्वारः** समुद्राः **अन्तः** सीमा यस्याः सा च असौ **मही** भूमिः च तस्या **सपत्नी** । **भूत्वा** । **अप्रतिरथम्** न विद्यते **प्रति** संमुखः **रथः** स्यन्दनं (विपक्षस्य) यस्य तम् । **दौष्यन्तिम्** दुष्यन्तस्य तनयम् (निजस्य च) पुत्रम् । **निवेश्य** स्थापयित्वा । तस्मै (पुत्राय) **अर्पितः** दत्तः **कुटुम्बस्य** परिवारस्य **भरः** भारः येन तेन । **भर्त्रा** पत्या (दुष्यन्तेन) । **सार्धम्** सह । **अस्मिन्** अत्र । **शान्ते** उपद्रवरहिते । **आश्रमे** तपोवने । **पुनः** भूयः । **पदम्** स्थानम् **करिष्यसि** विधास्यसि ।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—मालादीपक ।

हिन्दी अनुवाद—गौतमी—बेटी, जाने का समय बीता जा रहा है । पिता जी को लौटाओ । या आप (ही) लौट जायें, यह देर तक बार-बार इस तरह कहती जायेगी ।

संस्कृत टीका—**गौतमी** (कथयति यत्) । **जाते** पुत्रि । **परिहीयते** गच्छति । **गमनस्य** प्रयाणस्य । **वेला** समयः । **निवर्तय** । **पितरम्** तातम् (कण्वम्) । **अथवा** यद्वा (विकल्पः अयम् वरीयान्) । **चिरेण** चिरकालम् । **अपि** । **पुनः पुनः** भूयः भूयः । **एषा** इयम् (शकुन्तला) । **एवम्** इत्थम् (पूर्वोक्तवत्) । **मन्त्रयिष्यते** कथयिष्यति । **निवर्त्तताम्** । **भवान्** ।

हिन्दी अनुवाद—कण्व—बेटी, तप-कार्य में बाधा पड़ रही है ।

संस्कृत टीका—**काश्यपः** कण्वः (कथयति यत्) । **वत्से** पुत्रि । **उपरुध्यते** बाधितं भवति । **तपसः** तपस्यायाः **अनुष्ठानम्** आचरणम् ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (फिर पिता के गले लग कर) आपका शरीर तप-अनुष्ठान से पीड़ित है, अतः मेरे लिये अधिक उत्कण्ठा मत कीजियेगा ।

काश्यपः—(सनिःश्वासम्)।

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।
उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ॥ २० ॥

गच्छ. शिवास्ते पन्थानः सन्तु । (निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च)।

हिन्दी व्याख्या—प्राकृत में "तात" का प्रयोग सम्बोधन के लिये ठीक बैठेगा। पिता से कहते समय "पिता का शरीर" कहना न तो संस्कृत में प्रचलित है और न हिन्दी में। प्राकृत में चलता है। नेपाली ऐसा प्रयोग करते हैं। शकुन्तला पिता के सुख-दुःख की चिन्ता करती है।

हिन्दी अनुवाद—कण्व (निःश्वास के साथ)।

संस्कृत टीका—**काश्यपः** कण्वः। **सनिःश्वासम् निःश्वासेन सह** तत् यथा स्यात् तथा (कथयति यत्)।

हिन्दी अनुवाद—बेटी, तुमने जिसे पहले रखा था तथा जो पर्ण शाला के द्वार पर उग आई है, नीवार (तृणधान्य) की वह बलि (पूजा) देख रहे मेरा शोक कैसे शान्त होगा ?

अन्वयः—वत्से त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढम् नीवारबलिम् विलोकयतः मम शोकः कथम् नु शमम् एष्यति।

संस्कृत टीका—**वत्से** (हे) पुत्रि। **त्वया** (शकुन्तलया)। **रचितपूर्वम् पूर्वम्** प्राक् **रचितः** निहितः तम्। **उटजस्य** पर्णशालायाः **द्वारे** प्रतीहारे **विरूढम्** संजातम् (अङ्कुरितम्)। **नीवारैः** तृणधान्यैः **बलिम्** पूजाम्। **विलोकयतः** पश्यतः। **मम**। **शोकः** (पुत्री-विरह) वेदना। **कथम्** केन प्रकारेण। **नु** (वाक्यालङ्कारे) **शमम्** शान्तिम्। **एष्यति** प्राप्स्यति।

हिन्दी व्याख्या— "वत्से" सम्बोधन, कण्व को शकुन्तला के बचपन की याद आना बताता है। यह अंश बहुत करुण और काव्यमय है। "बलि" संस्कृत में पुंलिङ्ग है; हिन्दी की तरह स्त्रीलिङ्ग नहीं।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य।

अलंकार—काव्यलिङ्ग और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—जाओ; तुम्हारे पथ मङ्गलमय हों (शकुन्तला और साथ जानेवाले लोग मंच के बाहर जाते हैं)।

संस्कृत टीका—**गच्छ** व्रज (पतिकुलम्)। **शिवाः** मङ्गलमयाः। **ते** तव। **पन्थानः** मार्गाः। **सन्तु** भवन्तु। **निष्क्रान्ता** (रङ्गात्) निर्गता। **शकुन्तला**। **सहयायिनः** अनुगन्तारः **च**।

हिन्दी व्याख्या—संस्कृत में लोट् लकार होने पर "भगवान् करें", "कृपया" आदि अर्थ अपने आप आ जाते हैं, अतः उन्हें अलग से नहीं दिया जाता। "निष्क्रान्ता" शकुन्तला के लिये विशेषणात्मक क्रिया है। इसे पुंलिङ्ग बहुवचन करके सहयायिनः के साथ "निष्क्रान्ताः" रूप में रखने से अर्थ निकलेगा। इसे "अध्याहार" कहते हैं।

सख्यौ—(शकुन्तलां विलोक्य) हद्धी हद्धी। **अन्तलिहिदा सउंदला वणराइए** [हा धिक्। हा धिक्। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या। -]

काश्यपः—(सनिःश्वासम्) **अनसूये गतवती वां सहधर्मचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।**

उभे—ताद सउंदलाविरहिद सुण्णं विअ तवोवणं कहं पविसावो।

[तात शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।]

काश्यपः—स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः ! **शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः—**

हिन्दी अनुवाद—(दोनों) सखियाँ (शकुन्तला को देखकर)—हाय ! हाय ! अरण्य पंक्ति से शकुन्तला ओट में हो गई।

संस्कृत टीका—सख्यौ आल्यौ (प्रियंवदा अनसूया च) हा हन्त। **धिक्** (दैवम्)। हा हन्त। धिक् (दैवम्)। **अन्तर्हिता** गोपायिता। **शकुन्तला। वनानाम्** अरण्यानाम् **राज्या** पंक्त्या।

हिन्दी व्याख्या—"हा धिक्" का दो बार प्रयोग शोक की पराकाष्ठा सूचित करता है। भाग्य धिक्कारा गया है। "अन्तर्हित" अन्तर्धान के अर्थ में है; दोनों एक ही धातु से बने हैं। "राजि" या "राजी" पंक्ति के अर्थ में हैं।

हिन्दी अनुवाद—कण्व (निःश्वास के साथ)—(हे) अनसूया, तुम दोनों की सहेली (साथ धर्म का आचरण करने वाली) चली गई। मैं चला; शोक रोककर मेरे पीछे चलो।

संस्कृत टीका—काश्यपः कण्वः। **सनिःश्वासम् निःश्वासैः सह** तत् यथा स्यात् तथा (कथयति यत्)। (हे) अनसूये (सम्बुद्धौ)। **गतवती** याता। **वाम्** युवयोः (तत्र च प्रियंवदायाः च)। **सहधर्मचारिणी** सखी। **निगृह्य** वशीकृत्य। **शोकम्** वेदनाम्। **अनुगच्छतम्** अनुयातम्, **माम्। प्रस्थितम्** प्रयातम्।

हिन्दी व्याख्या—"प्रस्थितं", "माम्" का विशेषण है। हिन्दी में एक साथ न कहकर दो वाक्यों में कहने का चलन है अन्यथा वाक्य बोझिल हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—दोनों—पिता जी, शकुन्तला से रहित सूने से आश्रम में कैसे प्रवेश करेंगे ?

संस्कृत-टीका—उभे द्वे (सख्यौ) (वदतः यत्)। तात (हे) पितः। **शकुन्तलया विरहितम्** हीनम् **शून्यम्** निःसारम्। **तपोवनम्** आश्रमम्। **कथम्** केन प्रकारेण। **प्रविशावः** अन्तःगच्छावः।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ भावुकता का प्रसंग है। आशय है कि शकुन्तला के बिना आश्रम के अन्दर जाया नहीं जायेगा; बहुत बुरा लगेगा। कण्व-प्रवेश से यहाँ तक करुण रस है।

हिन्दी अनवाद—कण्व—स्नेह की प्रवृत्ति (विचार), ऐसी अनुभूति कराती है। (विचार कर घूमकर) अहो ! शकुन्तला को ससुराल बिदा कर अब जाकर राहत मिली, क्योंकि।

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ २१ ॥

संस्कृत-टीका—काश्यपः कण्वः (कथयति यत्) । **स्नेहस्य** प्रेम्णः **प्रवृत्तिः** प्रवाहः । **एवं-दर्शिनी** इत्थम् अनुभावयति । **विमर्शेन** चिन्तया **सह** तत् यथा स्यात् तथा । **परिक्रम्य** मण्डलाकारम् **हन्त भो** अहो **शकुन्तलाम्** **पत्युः** भर्तुः (दुष्यन्तस्य) **कुलम्** गृहम् । **विसृज्य** प्रेष्य । **लब्धम्** प्राप्तम् । **इदानीम्** अधुना । **स्वास्थ्यम्** प्रकृतावस्थानम् (शान्तिः) ।

हिन्दी व्याख्या—कठिन काम जब तक समाप्त नहीं हो जाता, तब तक चित्त अशान्त रहता है; समाप्ति के बाद बहुत शान्ति मिलती है; मन आजाद हो जाता है । परीक्षार्थी को पर्चे समाप्त होने पर और कार्यार्थी को साक्षात्कार (इण्टरव्यू) हो चुकने पर जो निश्चिन्तता होती है, उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुत्री-विवाह करके पिता को कितनी शान्ति मिलती होगी ।

हिन्दी-अनुवाद—निश्चय ही लड़की पराया धन ही है । उसे आज दूल्हे के पास भेजकर मेरी यह आत्मा उस तरह अत्यन्त निर्मल (शान्त) हो गई है जैसा इसने अमानत वापस कर दी हो ।

अन्वयः—कन्या हि परकीयः एव अर्थः अद्य ताम् परिग्रहीतुः संप्रेष्य अयम् मम आत्मा प्रत्यर्पित-न्यासः इव प्रकामम् विशदः जातः ।

संस्कृत-टीका—कन्या पुत्री । **हि** निश्चयेन । **परकीयः** परस्य । **एव** । **अर्थः** धनम् । **अद्य** । **ताम्** (कन्याम्) । **परिग्रहीतुः** परिणेतुः । **संप्रेष्य** विसृज्य । **अयम्** । **मम** । **आत्मा** । **प्रत्यर्पितः न्यासः** येन तादृशः । **प्रकामम्** अत्यधिकम् । **विशदः** निर्मलः । **जातः** भूतः ।

हिन्दी-व्याख्या—"लड़की पराया धन है" हिन्दी में यह कहावत ही बन गई है । सामान्यतः यह माना जाता है कि लड़की पर पिता का अधिकार तब तक होता है जब तक उसका ब्याह न हो जाय । वह उसे सत्पात्र को दान देता है । स्त्री-स्वतन्त्रता के पक्षपाती लोग इसे सहन नहीं करते; वे कन्या का भी व्यक्तित्व और स्वातन्त्र्य मानते हैं । कालिदास ने कण्व के मुख से उसे अपने धन की जगह पराये की अमानत कहकर विचार का कोई अवसर ही नहीं रहने दिया । अमानत रखने में जोखिम है । अपनी चीज टूट फूट जाय तो क्षति सह ली जाती है क्योंकि घर में चीजें टूटती फूटती रहती ही हैं, पर अमानत को क्षति पहुँचने पर क्षति-पूर्ति अखरती है और अमानत में खयानत या लापरवाही का इलजाम लगता है । भास ने "स्वप्नवासदत्तम्" में "दुःखं न्यासस्य रक्षणम्" इसके पूर्व कहा है । "परिग्रहीतुः" में शैषिकी षष्ठी है; जहाँ अन्य कोई विभक्ति नहीं बैठती, वहाँ षष्ठी होती है । "विशद" का अर्थ निर्मल है; "विस्तृत" नहीं । हिन्दी में अगल-बगल के शब्दों में अर्थ लगाने और न सीखने की काहिली से "विस्तृत" अर्थ में जबर्दस्ती चलाया जाता है । "आत्मा" पुल्लिङ्ग है; हिन्दी की तरह स्त्रीलिङ्ग नहीं ।

छन्द—इन्द्रवज्रा (२।७ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद सब (मंच से) बाहर गये ।)

संस्कृत-टीका—इति ततः । **निष्क्रान्ताः** निर्गताः । **सर्वे** सकलाः (अभिनेतारः) । **चतुर्थः** तुर्यः अङ्कः (समाप्तः) ।

हिन्दी-व्याख्या—"इति" का प्रयोग यहाँ "इसके बाद" के अर्थ में प्रतीत होता है । "चतुर्थोऽङ्कः" लिखने से "चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ" अर्थ निकलता है; यही अच्छा प्रयोग है; "समाप्त" जोड़ने पर भाषा बोझिल हो जायेगी ।

[चौथा अंक समाप्त हुआ]



पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च)

विदूषकः—(कर्णं दत्वा) **भो वअस्स संगीदसालंतरे अवधाणं देहि। कलविसुद्धाए गीदीये सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसवदिआ वण्णपरिअअं करेदि त्ति।**
[भो वयस्य संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धायागीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति।]

हिन्दी-अनुवाद—पाँचवाँ अङ्क।

(इसके बाद गद्दी पर बैठे राजा और विदूषक (मंच पर) प्रकट होते हैं।)

संस्कृत-टीका—पञ्चमः। अङ्कः। ततः एतदुपरि। **प्रविशति** प्रकटीभवति। **आसनस्थः** सिंहासनस्थितः। **राजा** नृपः (दुष्यन्तः)। **विदूषकः** (माढव्यः) **च**।

हिन्दी व्याख्या—"अङ्क" के बाद "आरम्भ होता है" नहीं लिखा गया, कभी-कभी आरम्भ में "अथ" लिखा जाता है। इस शब्द के अतिरिक्त आरम्भ-वाची शब्द न लिखना ही शोभा है। "प्रविशति" का अर्थ "प्रवेश करना" न होकर "पर्दा उठने पर दिखना" है। "प्रवेश" में गति होती है, गद्दी पर बैठा व्यक्ति गतिमान् नहीं हो सकता।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (माढव्य) (कान लगाकर) हे मित्र, संगीत-शाला की ओर ध्यान करो। मधुर-अस्फुट ध्वनि वाले शुद्ध गीत का स्वरालाप सुनाई पड़ता है। लगता है, आदरणीय हंसपदिका गाना सीख रही हैं।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः)। **कर्णम्** श्रवणम्। **दत्त्वा** सज्जीकृत्य। **भोः** हे**वयस्य** मित्र। **संगीतस्य** गानवाद्यानाम् **शालायाः** गृहस्य **अन्तरे** अभ्यन्तरम् प्रति। **अवधानम्** ध्यानम्। **देहि** नियोजय। **कला** मधुरास्फुटध्वनियुक्ता तस्याः **विशुद्धायाः** निर्दोषायाः। **गीतेः** गीतस्य। **स्वराणाम् संयोगः** आलापः। **श्रूयते** आकर्ण्यते। **जाने** प्रतीयते। **तत्रभवती** आदरणीया। **हंसपदिका। वर्णानाम् परिचयम्** ज्ञानम् (अभ्यासम्)। **करोति** प्राप्नोति **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—कल, वह ध्वनि है जो मधुर और अस्पष्ट हो। आगे पता चलेगा कि हंसपदिका एक रानी का नाम है। संगीत में वर्ण ४ प्रकार के होते हैं—(१) स्थायी (२) आरोही, (३) अवरोही (४) संचारी।

गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारी............॥

यह "वर्ण-परिचय" पद ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने लेकर अपनी लिखी बँगला-प्रथम पुस्तक का शीर्षक बनाया है, वहाँ "वर्ण" का अर्थ गान क्रिया न होकर अ, आदि ध्वनियाँ है।

राजा—तूष्णीं भव । यावदाकर्णयामि । (आकाशे गीयते)

अहिणवमहुलोलुवो भवं तह परिचुंबिअ चूअमंजरिं ।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विम्हरिओ सि णं कह ॥
[अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥

राजा—अहो रागपरिवाहिनी गीतिः ।

विदूषकः—किं दाव गीदीए अवगओ अक्खरत्थो । [किं तावद्गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः] ।

राजा—(स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः । तस्या देवीवसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि । सखे माढव्य ! मद्वचनादुच्यतां हंसपदिकानिपुणमुपालब्धोऽस्मीति ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—चुप रहो; जरा सुनूँ । (आकाश में गाया जा रहा है)

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । तूष्णीम् मौनी । भव । यावत् (वाक्यालङ्कारे) । आकर्णयामि शृणोमि । आकाशे । गीयते ।

हिन्दी-अनुवाद—(हे) भौंरे, तुम नये (पुष्प) रस के प्रति लालसा-युक्त होकर उस प्रकार आम्र-मञ्जरी को चूमकर (अब) केवल कमल के आवास से तृप्त होकर इसे कैसे भूल गये ?

अन्वय—(हे) मधुकर भवान् अभिनवमधुलोलुपः तथा चूतमञ्जरीम् परिचुम्ब्य कमलवसतिमात्रनिर्वृतः एनाम् कथम् विस्मृतः असि ।

संस्कृत-टीका—(हे) मधुकर भ्रमर (कामुक) । अभिनवेन नूतनेन मधुना पुष्परसेन लोलुपः लुब्धः (सन्) तथा तेन प्रकारेण (यथानुभूतम्) । चूतस्य आम्रस्य मञ्जरीम् । परिचुम्ब्य चुम्बित्वा । कमलम् पद्मम् एव वसतिः वासः सा एव कमलवसतिमात्रम् तेन निर्वृतः सुखितः । एनाम् (मञ्जरीम्) कथम् केन प्रकारेण । विस्मृतः । असि ।

छन्द—अपरवक्त्र । जिसके विषम चरणों में दो नगण, रगण, लघु व गुरु तथा समचरणों में नगण दो जगण और रगण होता है "अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।" (वृत्तरत्नाकर ४।९)

अलङ्कार—अप्रस्तुत-प्रशंसा ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—अहा ! गीत अनुराग प्रवाहित कर रहा है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । अहो हन्त । रागपरिवाहिनी अनुरागप्रवाहिका । गीतिः गानम् ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (माढव्यः)–तो क्या गान का शाब्दिक अर्थ समझ लिया ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) । किम् । तावत् (वाक्यालङ्कारे) । गीत्याः गानस्य । अवगतः ज्ञातः । अक्षराणाम् शब्दानाम् (वाक्यस्य) अर्थः आशयः ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मुस्कराकर) मैंने इसे एक बार (कभी) प्यार किया था । महारानी

विदूषकः—जं भवं आणावेदि । (उत्थाय) भो वअस्स गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहंडए ताडीअमाणस्स अच्छराए वीदराअस्स विअ णत्थि दाणिं मे मोक्खो । [यद्भवानाज्ञापयति । भो वयस्य गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः]

राजा—गच्छ नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम् ।

वसुमती को लेकर अपने प्रति उसका उलाहना समझ गया हूँ । मित्र माढव्य, "खूब आड़े हाथ लिया गया हूँ" यह मेरा संदेश हंसपदिका से कह देना ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) **स्मितम्** विहासम् । **कृत्वा** विधाय । **सकृत्** एकवारम् । **कृतः** विहितः **प्रणयः** प्रेम येन तादृशः । **अयम् जनः** अहम् । **तस्याः** (हंसपदिकायाः) । **देवीवसुमतीम्** महादेवीम् वसुमतीम् । **अन्तरेण** प्रति । **मम उपालम्भम्** । **अवगतः** ज्ञातवान् । **अस्मि** । **सखे** मित्र । **माढव्य** । **मम वचनात्** संदेशात् । **उच्यताम्** कथ्यताम् । **हंसपदिका** । **निपुणम्** सुष्ठु । **उपालब्धः** उपालम्भगोचरीकृतः । **अस्मि** ।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ ऊपर से पद्य का अर्थ स्पष्ट होता है । हंसपदिका (जिसके चरण या शब्द हंस के चरण या शब्द की तरह हों), एक रानी है जिसे कभी एक बार दुष्यन्त ने प्यार किया था । यहाँ राजा के मुस्कराने से लगता है कि किसी के प्रति ऐसा जघन्य अपराध करना उस युग के राजाओं के लिये सामान्य बात थी । हंसपदिका इससे खिन्न होकर अप्रस्तुतप्रशंसा द्वारा कह रही है, कि जब मेरा यौवन नया था तब तुम इस (मुझ-आम्र-मंजरी) के प्रति लोलुप हुये थे और अब फिर भूलकर कमल (पुरानी रानी वसुमती) भर से तृप्त हो गये हो जब कि उसमें रस नहीं है; वहाँ रहा भर जा सकता है । "प्रणय" का अर्थ याचना करते हुए राघवभट्ट ने "अन्तरेण" का अर्थ "विना" किया है । यह अच्छा नहीं बैठता । 'अयम् जनः" का अर्थ "मैं" प्रचलित है और यही विलयम्स ने लिखा है । इसका अर्थ 'यह व्यक्ति (हंसपदिका)" भी लगाया जाता है ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा (उठकर) जैसे अप्सरा के द्वारा पकड़े गये वैरागी की मुक्ति नहीं, उसी प्रकार दूसरे के हाथों पकड़े गये केश-पाश वाले तथा उसके द्वारा पिटते हुए मेरी मुक्ति नहीं ।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (कथयति यत्) । **यत्** यथा । **भवान्** । **आज्ञापयति** कथयति । **भोः** हे । **वयस्य** मित्र । **गृहीतस्य** धारितस्य (मम) । **तया** (हंसपदिकया) । **परकीयैः** परस्य (दासीनाम्) । **हस्तैः** करैः । **शिखण्डके** काकपक्षे । **ताड्यमानस्य** (मम) । **अप्सरसा** कयापि देववामया (गृहीतस्य) । **वीतः** गतः **रागः** आसक्तिः यस्य तादृशस्य । **इव** । **न** । **अस्ति** । **इदानीम्** अधुना । **मे** मम । **मोक्षः** मुक्तिः ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ परिहास है । विदूषक का कहना है कि जैसे अप्सरा तपस्वी को नहीं छोड़ती, उसी तरह वह मुझे नहीं छोड़ेगी और अपनी दासियों से मेरे बाल पकड़वाकर अपने हाथों मेरी दुर्गत बनायेगी (यह सोचकर कि इसी माढव्य ने राजा को मुझसे विरक्त कर दिया है) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—जाओ; शिष्टता से सन्देश उसे सुना दो ।

विदूषकः—का गई। [का गतिः।] (इति निष्क्रान्तः)।

राजा—(आत्मगतम्) किं नु खलु गीतार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ २ ॥

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्)। **गच्छ** याहि। **नागरिकस्य** अग्राम्यस्य (जनस्य) **वृत्या** रीत्या। **संज्ञापय** कथय। **एनाम्** (हंसपादिकाम्)।

हिन्दी-व्याख्या—शहर में दरबारी सभ्यता होती है, पढ़े-लिखे लोग होते हैं अतः नगर, व नागरिक प्रयोग शिष्ट के अर्थ में आते हैं। ग्राम्य, ग्रामीण, गँवार व देहाती शब्द गाँव से सम्बद्ध होने से असभ्य अर्थ में आते हैं क्योंकि गाँव में सभ्य समाज के तरीके अधिकतः प्रचलित नहीं हैं।

हिन्दी-अनुवाद— **विदूषक**—(माढव्य)–क्या उपाय है? (यह कहकर बाहर जाता है)

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (कथयति यत्)। **का गतिः** उपायः। **इति** एवम् (कथयित्वा) **निष्क्रान्तः** निर्गतः।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (अपने मन में)—क्या बात है कि गीत और उसका अर्थ जानकर आत्मीय जन के वियोग के बिना भी अत्यधिक उत्कण्ठ हूँ। या—

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः)। **आत्मगतम्** (वदति यत्)। **किम् नु खलु** (वितर्के)। **गीतम्** गानम् **अर्थम्** आशयम्। **आकर्ण्य** ज्ञात्वा। **इष्टः** प्रियः च असौ **जनः** व्यक्तिः च तस्य **विरहात्** वियोगात्। **ऋते** विना। **अपि**। **बलवत्** अत्यधिकम्। **उत्कण्ठितः** व्यग्रः। **अस्मि**। **अथवा** यद्वा।

हिन्दी-अनुवाद—मनोहर दृश्य देखकर और मीठे शब्द सुनकर सुखी रहता हुआ भी प्राणी जो उत्कण्ठित हो जाता है उससे लगता है कि निश्चय ही वह पहले से अज्ञात रूप में भावों से स्थायी बन गये अन्य जन्मों के सौहार्दों का मन ही मन स्मरण करता है।

अन्वय—यत् जन्तुः सुखितः अपि रम्याणि वीक्ष्य मधुरान् च शब्दान् निशम्य पर्युत्सुकीभवति तत् नूनम् अबोधपूर्वम् भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि चेतसा स्मरति।

संस्कृत-टीका—**यत्** **जन्तुः** जीवः। **सुखितः** सानन्दः। **अपि**। **रम्याणि** मनोरमाणि (दृश्यानि)। **वीक्ष्य** दृष्ट्वा। **मधुरान्** हृदयाह्लादकान्। **च शब्दान्** पदानि (ध्वनिम्)। **निशम्य** श्रुत्वा। **पर्युत्सुकीभवति** उत्कण्ठीभवति। **तत्** (एवम् सूचयति यत्)। **नूनम्** निश्चयेन। **अबोधपूर्वम्** विशेषज्ञानाभावपूर्वम् **भावैः** वासनाभिः **स्थिराणि** स्थायीनि। अन्यानि तेषाम् **सौहृदानि** जननानि (अनुरागान्)। **चेतसा** मनसा। **स्मरति**।

हिन्दी-व्याख्या—कभी-कभी एकाएक आदमी दुःखी हो जाता है पर कोई कारण नहीं दिखता।

(इति पर्याकुलस्तिष्ठति) (ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि ।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था ॥३॥

यहाँ दुष्यन्त को भी ऐसा अनुभव हो रहा है। यह शकुन्तला के निकट आने से उसकी भावना की तीव्रता का मनोवैज्ञानिक प्रभाव हो सकता है। उत्कण्ठा का कारण इस जन्म में न खोज पाने पर दुष्यन्त उसे रहस्यमय मानकर पिछले जन्म की घटना से सम्बद्ध मानकर अपना समाधान करते हैं। "भाव" का अर्थ संस्कार, भावना, वासना, हृदय, प्रेम, भक्ति, विचार आदि है। जो कुछ देखते या चिन्तन करते हैं वह अचेतन मस्तिष्क में जन्म-जन्मान्तर से पड़ा रहता है। किसी समय उसका आभास सा होता है पर बहुत पुरानी बात होने से कारण ठीक से स्मरण में नहीं आता। "रम्य" विशेषण है। इससे विशेष्य (वस्तु) का बोध अपने आप हो जाता है। "शब्दान्" की एकरूपता में यहाँ "दृश्यानि" विशेष्य दे देने से प्रक्रमभङ्ग न होता।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा, विभावना, काव्यलिङ्ग, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास व श्रुत्यनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—(यह कहकर आकुल रहते हैं।) (इसके बाद कञ्चुकी मंच पर दिखता है।)

कञ्चुकी—हाय ! ऐसी हालत में पहुँच गया हूँ।

संस्कृत-टीका—**इति** एवम् उक्त्वा। **पर्याकुलः** व्यग्रः (सन्)। **तिष्ठति** स्थितः। **ततः** तदनन्तरम्। **प्रविशति** रङ्गमञ्चे प्रकटितः। **कञ्चुकी**। (कथयति यत्) **अहो नु खलु** हा। **ईदृशीम्** एतादृशीम् (दुःखमयीम्)। **अवस्थाम्** दशाम्। **प्रतिपन्नः** प्राप्तः **अस्मि**।

हिन्दी-व्याख्या—कंचुकी या कंचुकीय कंचुक (लम्बा कुर्ता) पहनने वाला एक अतिवृद्ध सेवक है जो संस्कृत बोलता है और दरबार तथा रनिवास में समान-रूप से जा सकता है। मातृगुप्त के अनुसार वे हमेशा सत्यवादी, काम-वासना रहित ज्ञान-विज्ञानवान् होते हैं। "ये नित्यं सत्य-सपन्नाः कामदोषविवर्जिताः। ज्ञानविज्ञानकुशलाः कंचुकीयास्तु ते स्मृताः।" "ऐसी हालत" से वृद्धावस्था से अभिप्राय है।

हिन्दी-अनुवाद—मैंने सावधान होकर राजा के रनिवास में जिस बेत की छड़ी को कायदा (लेना कायदा है) समझकर लिया था, बहुत समय बीतने पर वही, चलते समय लड़खड़ाती चाल वाले मेरे सहारे के लिये हो गई है।

संस्कृत-टीका—**मया** (कञ्चुकिना)। **अवहितेन** सावधानेन (सता)। **राज्ञः** नृपस्य। **अवरोधगृहेषु** अन्तःपुरेषु। **आचारः इति** (रक्षाधिकारिणा वेत्रयष्टिः गृहीतव्या इति आचारात्)। **या**। **वेत्रस्य**। **यष्टिः** यष्टिका। **गृहीता** अङ्गीकृता। **सा एव**। **बहुतिथे** बहूनाम् **पूरणे**। **काले** समये। **गते** व्यतीते। **प्रस्थाने** गमनारम्भे **विक्लवा** भग्ना **गतिः** गमनक्रिया यस्य तस्य। **मम** (कृते) **अवलम्बनम्** आश्रयः **अर्थः** प्रयोजनम् यस्याः तादृशी। **जाता**।

भोः कामं धर्मकार्यमनतिपार्यं देवस्य । तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम् । अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः ! कुतः—

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति ।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥ ४ ॥

हिन्दी-व्याख्या—पहले जब कुछ शक्ति थी और छड़ी की जरूरत नहीं थी, तब कंचुकी ने उसे कायदे का पालन करने के लिये लिया था, अब शक्ति न होने से वह सहारा देती है। रनिवास और रुकावट दोनों के लिये "अवरोध" आता है। रनिवास में जाने की रोक होने से यह शब्द रनिवास के अर्थ में आने लगा है। "पूरण" का अर्थ "क्रम" है; जैसे चार का पूरण चतुर्थ है, उसी तरह बहु का पूरण बहुतिथ है।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—विभावना (उक्तनिमित्ता), छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास व वृत्त्यनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—हाँ माना कि महाराज के लिये धर्म-कार्य अनुल्लंघनीय है, फिर भी इसी समय न्यायासन से उठे हुये उनसे कण्व के शिष्यों का फिर रोक लेने वाला यह आगमन कहने का जी नहीं करता। या फिर (कहना ही ठीक है क्योंकि) भुवन के इस प्रधान अधिकार में आराम नहीं है। क्योंकि—

संस्कृत-टीका—भोः अहो। कामम् मन्ये। धर्मस्य कर्त्तव्यस्य कार्यम् कर्म। अनतिपार्यम् अनतिक्रमणीयम्। देवस्य महाराजस्य (दुष्यन्तस्य) तथापि तदपि। इदानीम् अधुना। एव। धर्मस्य न्यायस्य आसनात् पीठात्। उत्थिताय विश्रान्ताय। पुनः भूयः। उपरोधकारि कार्यव्यग्रताकारकम्। कण्वस्य शिष्याणाम् अन्तेवासिनाम् आगमनम् उपस्थितिः। अस्मै (नृपाय)। न। उत्सहे कामये। निवेदितुम् कथयितुम्। अथवा अयम् विकल्पः। अविद्यमानः विश्रमः विश्रान्तिः यत्र तादृशः। अयम् (दुष्यन्तगतः) लोके भुवने तन्त्रः प्रधानः च असौ अधिकारः शासनम्। कुतः यतः।

हिन्दी-व्याख्या—कण्व-शिष्यों से न मिलना धर्म की हानि है और राजा को विश्राम का भी अधिकार है. पर कर्त्तव्य, भावना से ऊँचा है, अतः कंचुकी निर्णय करता है कि राजा को टोककर विश्राम में बाधा डालना ही उचित है। धर्म शब्द न्याय के लिये भी आता है। धर्मासन, वह आसन है जिस पर बैठकर राजा न्याय करता है। पहले राजा ही न्यायाधीश (धर्माधिकारी) होता था। आजकल न्यायाधीश को जो "लार्ड" कहकर सम्बोधित करते हैं, वह उसी का शेष चिह्न है। "विश्राम" की जगह "विश्रम" लिखना पाणिनीय होने से ज्यादा ठीक है। "लोक" और "अधिकार" के अर्थ क्रमशः जनता, शासन और शक्ति भी हो सकते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—सूर्य एक बार ही घोड़े जोतता है (फिर खोलता-जोड़ता नहीं), हवा रात दिन चलती है और शेष (नाग) हमेशा ही पृथ्वी का बोझ धारण करता है। यह, राजा (छठे भाग अर्थात् कर से जिसकी जीविका है) का भी धर्म है।

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) एष देवः

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवतेऽशान्तमना विविक्तम् ।

यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥ ५ ॥

अन्वय—भानुः सकृत् एव युक्तुरङ्गः । गन्धवहः रात्रिन्दिवम् प्रयाति । शेषः सदा एव आहित-भूमिभारः । एषः षष्ठांशवृत्तेः अपि धर्मः ।

संस्कृत टीका—भानुः सूर्यः । **सकृत्** एकवारम् । एव । **युक्ताः** योजिताः **तुरङ्गाः** अश्वाः येन तादृशः **गन्धवहः** वायुः **रात्रिन्दिवम्** रात्रौ च दिवा च (सदा) । **प्रयाति** वाति । **शेषः** अनन्तः । **सदा** नित्यम् **एव** । **आहितः** धृतः **भूमेः** धरायाः **भारः** भरः येन तादृशः । **एषः** उक्तः । **षष्ठः** च असौ **अंशः** भागः (कररूपः) **वृत्तिः** जीविका यस्य तस्य । **अपि** । **धर्मः** कर्त्तव्यम् ।

हिन्दी-व्याख्या—एक बार ही जोतने से यह ध्वनित होता है कि खोलने या फिर जोड़ने तक की फुरसत नहीं है, आराम करने की फुरसत क्या होगी "षष्ठांशवृत्ति" पद से यह सूचित होता है कि सूर्यादि तो बिना कुछ लिये अविराम कार्य करते हैं, राजा तो छठा हिस्सा लेता भी है, अतः महान् की तरह तो उसे अविश्रान्त रहना ही चाहिये, साथ ही साथ कर लेने के कारण यह उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह वैसा करे ।

छन्द—इन्द्रवज्रा (२।७ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—मालाप्रतिवस्तूपमा, अप्रस्तुतप्रशंसा व श्रुत्यनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—पहले कृत्य सम्पादित करूँ । (घूमकर व देखकर) ये महाराज ।

संस्कृत-टीका—यावत् प्रथमम् । **नियोगम्** कर्त्तव्यम् । **अनुतिष्ठामि** करोमि । **परिक्रम्य** मण्डलाकारम् गत्वा **अवलोक्य** दृष्ट्वा **च** । **एषः** समक्षम् । **देवः** महाराजः (दुष्यन्तः) ।

हिन्दी व्याख्या—संस्कृत में "नियोग" "अधिकार" और कृत्य समानार्थी शब्द हैं । यहाँ कण्व-शिष्यों के आगमन की सूचना, नियोग है ।

हिन्दी अनुवाद—जनता की देख-रेख अपनी सन्तान की तरह कर अशान्त मन लेकर एकान्त का सेवन कर रहे हैं, जिस प्रकार दिन में यूथ पति हाथी यूथों (झुण्डों) को (साथ) ले जाकर सूर्य (धूप) से खूब तप्त होकर ठण्डी जगह का सेवन करता है ।

अन्वय—प्रजाः स्वाः प्रजाः इव तन्त्रयित्वा अशान्तमनाः (सन्) विविक्तम् दिवा यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः (सन्) शीतम् स्थानम् द्विपेन्द्रः इव निषेवते ।

संस्कृत-टीका—प्रजाः जनान् । **स्वाः** स्वस्य । **प्रजाः** सन्तानम् । **इव** । **तन्त्रयित्वा** संव्यवहार्य । **शान्तम्** अनुद्विग्नम् **मनः** चित्तम् यस्य सः **शान्तमनाः** न शान्तमनाः **अशान्तमनाः** । **विविक्तम्** एकान्तम् । **दिवा** दिवसे । **यूथानि** गजवृन्दानि । **संचार्य** चारयित्वा **रविणा** सूर्येण **प्रतप्तः** पीडितः (सन्) । **शीतम्** शिशिरम् (छायामयम्) **स्थानम्** पदम् । **द्विपानाम्** करीणाम् **इन्द्रः** यूथपतिः । **इव** **निषेवते** अनुभवति ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा, प्रजा का पालन अपनी सन्तान की तरह करे, यह प्राचीन राजनीति की अपेक्षा है । राजा का व्यवहार कर्मचारियों के प्रति आत्मीयता-पूर्ण है, जिससे वे उसके सुख-दुःख का

(उपगम्य) जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसंदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः श्रुत्वा देवः प्रमाणम्।

राजा—(सादरम्) किं काश्यपसंदेशहारिणः।

कञ्चुकी—अथ किम्।

राजा—तेन हि मद्वचनाद्विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हति इति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

ख्याल रखते हैं। हाथी पहले सूँड़ से पीता (जल उठाता) है; फिर मुँह से, अतः उसे द्विप (द्वाभ्याम्—शुण्डामुखाभ्याम् पिबति इति) कहते हैं।

छन्द—उपेन्द्रवज्रा (२।७ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—उपमा (श्रौती व आर्थी), अनुप्रास (छेक, श्रुति, व वृत्ति) और संसृष्टि।

हिन्दी-अनुवाद—(पास पहुँचकर) महाराज की जय हो; जय हो। ये हिमालय की तराई के जंगल के रहने वाले तपस्वी महिला के साथ कण्व का सन्देश लेकर आये हैं। सुनकर महाराज निर्णय करें।

संस्कृत-टीका—**उपगम्य** समीपे गत्वा। **जयतु** सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व। **जयतु**-सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व। **देवः** महाराजः **एते** पुरः स्थिताः। खलु (वाक्यालङ्कारे) **हिमगिरेः** हिमालयस्य। **उपत्यकायाम्** पर्वतासन्नभूमौ यानि **अरण्यानि** वनानि तत्र वसन्ति इति **उपत्यकारण्यवासिनः**। **काश्यपस्य** कण्वस्य **संदेशम्** वचनम् **आदाय** आहृत्य **स्त्रिया** नार्या सह वर्त्तमानाः **तपस्विनः** तापसाः। **संप्राप्ताः** आगताः **श्रुत्वा** आकर्ण्य (संदेशम्)। **देवः** महाराजः (भवान्) **प्रमाणम्** यथोचितम् विधातुम् शक्तः।

हिन्दी-व्याख्या—हिमालय, अरण्य, काश्यप, स्त्री और तापस पदों से गौरवातिशय व्यक्त होता है। मैंने यों ही आराम में बाधा नहीं डाली है, बल्कि विवश होकर आपके धर्म की रक्षा के लिये सूचना दी है, यह संकेत है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (सम्मान से)—क्या कण्व का सन्देश लाने वाले हैं।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः)। **आदरेण** सम्मानेन **सह** तत् यथा स्यात् तथा। (कथयति यत्) ; **किम् काश्यपस्य** कण्वस्य **संदेशहारिणः** वार्त्तावाहकाः।

हिन्दी-व्याख्या—आदरणीय का नाम सुनते ही आदर का भाव ग्रहण करना चाहिये; दुष्यन्त इसे जानते हैं।

हिन्दी अनुवाद—कञ्चुकी—जी हाँ।

संस्कृत-टीका—**कञ्चुकी** कञ्चुकीयः (कथयति यत्)। **अथ किम्** आम।

हिन्दी-व्याख्या—"अथ किम्" का अर्थ "हाँ" है; "और क्या" अनुवाद करना ठीक नहीं हैं क्योंकि वैसी भाषा असभ्यता पूर्ण हो जायेगी।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—तो उपाध्याय सोमरात से मेरा सन्देश कहना कि इन तपोवन-वासियों

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः) ।

राजा—(उत्थाय) **वेत्रवति ! अग्निशरणमार्गमादेशय ।**

प्रतीहारी—इदो इदो देवो । [इत इतो देवः ।]

का सत्कार वैदिक रीति से कर स्वयम् ही अन्दर लायें । मैं भी तपस्वियों से मुलाकात करने योग्य इस स्थान में रहकर प्रतीक्षा करूँगा ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) **तेन** तस्मात् । कारणात् । **हि** (वाक्यालङ्कारे) **! मम वचनात्** संदेशात् । **विज्ञाप्यताम्** सूच्यताम् । **उपाध्यायः । सोमरातः । अमून्** तान् । **आश्रमवासिनः** तपोवननिवासिनः । **श्रौतेन** वैदिकेन । **विधिना** रीत्या । **सत्कृत्य** पूजयित्वा । **स्वयम्** । **एव** । **प्रवेशयितुम्** अन्तः आनेतुम् । **अर्हति । इति । अहम् । अपि । अत्र** अस्मिन् । **तपस्विनाम्** तापसानाम् **दर्शनाय** मिलनाय **उचिते** समीचीने । **प्रदेशे** स्थाने । **स्थितः** वर्त्तमानः (सन्) । **प्रतिपालयामि** प्रतीक्षे ।

हिन्दी-व्याख्या—जो जिस स्थिति का हो, उसका स्वागत उस स्थिति वाले के द्वारा ही होना चाहिये, छोटे के द्वारा नहीं इसीलिये यहाँ उपाध्याय सोमरात को भेजा गया है, सोमरात नाम है । मनुस्मृति (२।१४१) के अनुसार जो वेद का एक भाग या वेद के अङ्ग जीविका के लिये पढ़ाता है, है, वह उपाध्याय है (आचार्य के बाद इसका स्थान है) :—

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥

इसी आधार पर संस्कृत उपाधियों में आचार्य के बाद उपाध्याय को स्थान दिया जाता रहा है । शिक्षक के अर्थ में भी यह शब्द प्रचलित और आचार्य का समकक्ष है । ओझा और झा इसी के अपभ्रंश हैं । जो व्यक्ति जिस स्थिति का हो, उसके अनुरूप स्थान में उससे मिलते हैं ।

हिन्दी अनुवाद—कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा (यह कहकर चला जाता है) ।

संस्कृत-टीका—कञ्चुकी काञ्चुकीयः (कथयति यत्) । **यत्** यथा । **आज्ञापयति** कथयति । **देवः** महाराजः (दुष्यन्तः) । **इति** । एवम् (उक्त्वा) । **निष्क्रान्तः** निर्गतः ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (उठकर)—प्रतिहारी, यज्ञ-शाला का रास्ता दिखाना ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) : **उत्थाय** (कथयति यत्) । **वेत्रवति** यष्टिधारिणि (प्रतीहारि) **अग्निशरणस्य** यज्ञशालायाः **मार्गम्** पन्थानम् । **आदेशय** दर्शय ।

हिन्दी-व्याख्या—दर्शकों को पता चल जाय कि कहाँ जा रहे हैं, इसलिये रास्ता बताने को कहा गया प्रतीत होता है । आगे-आगे रहकर छड़ी लिये द्वारपालिका रास्ता साफ करे, इसलिये भी रास्ता दिखाने को कहा जा सकता है ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका—इधर से, इधर से महाराज (चलें) ।

संस्कृत-टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका । **इतः** अनेन मार्गेण । **देवः** महाराजः (चलतु) ।

हिन्दी-व्याख्या—"देव" के बाद "चलतु" छोड़ दिया गया है, यही स्वाभाविक प्रयोग है ।

राजा—(परिक्रामति । अधिकारखेदं निरूप्य) **सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः । राज्ञां तु चरितार्थता दुःखान्तरैव ।**

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेनम् ।
नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ६ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा (घूमता है । कर्त्तव्य की खिन्नता का अभिनय कर)—सब जीव चाही हुई वस्तु पाकर सुखी (कृतकृत्य) हो जाते हैं पर राजा की कृतकृत्यता की अवधि दुख ही है (कार्य सिद्ध होने पर भी दुःख मिलता है)।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) **परिक्रामति** मण्डलाकारम् गच्छति । **अधिकारस्य** नियोगस्य । **खेदम्** कष्टम् । **निरूप्य** अभिनीय । **सर्वः** सकलाः । **जन्तुः** जीवाः । **प्रार्थितम्** इच्छितम् । **अर्थम्** वस्तु । **अधिगम्य** प्राप्य । **सुखी** सानन्दः **संपद्यते** जायते । **राज्ञाम्** नृपाणाम् । **तु** परम् । **चरितार्थता** कृतार्थता । **दुःखान्तरा** दुखावधिका । **एव** ।

हिन्दी-व्याख्या- पहले राजा कितने कर्त्तव्य-शील होते थे । साधारण जन तक उनसे ज्यादा सुखी रहता था । "सर्व" का एकवचन में प्रयोग संस्कृत में खूब होता है; हिन्दी में नहीं होता।' "चरितार्थ" का अर्थ "कृतार्थ" होता है ।

हिन्दी अनुवाद—सर्वोत्कृष्ट गौरव समस्त उत्कण्ठा समाप्त कर (सुख) देता है; (तो) जो प्राप्त हुआ है उसकी रक्षा की ओर उन्मुख होना, इसे (राजा को) क्लेश देता है । जिसका डण्डा हाथ में धारण किया है, उस छाते की तरह जिसका प्रशासन हाथ में लिया है, वह राज्य, (अत्यन्त) कष्ट के सुनिवारण के लिये नहीं होता यह बात नहीं है और कष्ट (देने) के लिये नहीं होता यह बात भी नहीं है (जितना कष्ट दूर करता है, उतना ही देता है)।

अन्वय—प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् अवसाययति । लब्धपरिपालनवृत्तिः एनम् क्लिश्नाति । स्वहस्तधृतदण्डम् आतपत्रम् इव स्वहस्तधृतदण्डम् राज्यम् अतिश्रमापनयनाय न (इति न) श्रमाय न (इति) च (न)।

संस्कृत-टीका—**प्रतिष्ठा** सर्वोत्कृष्टम् गौरवम् **औत्सुक्यमात्रम्** अशेषाम् उत्कण्ठाम्, **अवसाययति** समाप्तिम् नयति । **लब्धस्य** प्राप्तस्य (गौरवस्य) **परिपालनस्य** रक्षणस्य **वृत्तिः** वर्तना । **एनम्** (नृपम्)। **क्लिश्नाति** पीडयति । **स्वस्य** निजस्य **हस्ते** करे **धृतः** गृहीतः **दण्डः** यष्टिः यस्य तादृशम् । **आतपत्रम्** छत्रम् **इव स्वस्य हस्ते** धृतः **दण्डः** प्रशासनम् यस्य तादृशम् । **राज्यम्** **अतिश्रमस्य** अत्यधिकस्य क्लेशस्य । **अपनयनाय** दूरीकरणाय । **न** (इति) **न** । **श्रमाय** क्लेशाय । **न** । (इति) च (न)।

हिन्दी व्याख्या—अब यह है कि राज्य ग्रहण करने वाले को जहाँ अधिकार मिलता है वहाँ कर्त्तव्य के कारण कष्ट भी उठाना पड़ता है, जैसे छाता जहाँ धूप आदि कष्ट से बचाता है, वहाँ उसका डण्डा पकड़ने में तकलीफ भी होती है। संभव है, पहले बड़े और भारी डण्डे के छाते होवे हों जिससे विशेष कष्ट होता हो । साधारण व्यक्ति इच्छा करता है; वह हमेशा पूरी नहीं होती; राजा इच्छा करता है; वह पूरी हो जाती है; यह उसका सुख है । पाये (जीते राज्य) की रक्षा में कभी

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ—विजयतां देवः ।

प्रथमः—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परिताप छायया संश्रितानाम् ॥ ७ ॥

सारी रात जागना पड़ता है तो कभी वर्षा और धूप में चलना पड़ता है (शिकार, हमले आदि के समय)। इससे दुःख होता है। राज्य में सुख ही सुख है, यह सोचकर उसके प्रति आसक्त नहीं होना चाहिये, यह उपदेश है। यहाँ "अति" को "श्रम" के साथ लगाने से एकरूपता नहीं रहेगी, अतः "अपनयन" के साथ लगाना उचित है।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अनुमान; उपमान, संकर, विरोधाभास, यथासंख्य, अतिशयोक्ति, अनुप्रास (छेक, वृत्ति व श्रुति) और ससृष्टि।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) दो चारण—महाराज की जय हो।

संस्कृत-टीका—**नेपथ्ये** सज्जाकक्षे। **वैतालिकौ** (द्वौ) चारणौ (कथयतः यत्)। **विजयताम्** सर्वोत्कर्षेण वर्तताम्। **देवः** महाराजः।

हिन्दी-अनुवाद—पहला—अपने सुख के प्रति अनिच्छुक रहकर रोज-रोज समाज के लिये कष्ट उठाते हैं। या यों कहें कि आपकी रुचि ही इस प्रकार की है (कि कष्ट उठाकर दूसरे का उपकार करें) क्योंकि (उदाहरणार्थ) पेड़ सिर पर प्रचण्ड धूप सहता है और (पर) शरण आये हुये लोगों का ताप छाँह से शांत करता है।

अन्वय—स्वसुखनिरभिलाषः [सन्] प्रतिदिनम् लोकहेतोः खिद्यसे। अथवा वृत्तिः ते एवंविधा एव। पादपः हि तीव्रम् उष्णम् मूर्ध्ना अनुभवति संश्रितानाम् तापम् छायया शमयति।

संस्कृत टीका—**प्रथमः** एकः (वदति यत्) **स्वस्य** आत्मनः **सुखे** आनन्दे **निरभिलाषः** अनिच्छुकः (सन्) **प्रतिदिनम्** दिने दिने (सर्वदा)। **लोकानाम्** जनानाम् **हेतोः** कारणात्। **खिद्यसे** क्लेशम् प्राप्नोषि। **अथवा** यद्वा (पूर्वाक्षेपे)। **वृत्तिः** वर्तनम्। **ते** तव। **एवम्** ईदृशी **विधा** प्रकारः यस्याः सा। **एव**। **पादपः** वृक्षः। **हि** उदाह्रियते (यस्मात्), **तीव्रम्** प्रचण्डम्। **उष्णम्** आतपम्। **मूर्ध्ना** शिरसा। **अनुभवति** सहते। **संश्रितानाम्** शरणागतानाम्। **तापम्** क्लेशम्। **छायया** अनातपेन। **शमयति** हरति।

हिन्दी-व्याख्या—कुछ कर्म-वाच्य की क्रियायें कर्तृवाच्य में आती हैं और अकर्मक होती हैं। यहाँ "खिद्यसे" ऐसा ही प्रयोग है। "तप्यते (तप करता है)" जैसे अन्य प्रयोग भी होते हैं हिन्दी में जिस अर्थ में समाज (Society) है, उस अर्थ में संस्कृत में "लोक" है, संस्कृत में समाज का

द्वितीयः—

नियमयसि कुमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ झुण्ड है; वह विशेष अर्थ इससे नहीं निकलता जो हिन्दी में है। "अथवा" का प्रयोग ऊपर की बात को काटकर या उसे निखारकर कहने के लिये आता है। चारण समय देखकर राजा की मनःस्थिति भांपकर उससे मेल खाने वाले पद्य कहते हैं। थके हुये राजा को आराम मिला हो कि फिर थकावट वाला काम आ गया ऐसे समय वह क्या सोचता है, यह विचार कर उसे प्रसन्न करने के लिये यह पद्य कहा गया है।

छन्द—१।१० द्रष्टव्य।

अलङ्कार—समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, आक्षेप, दृष्टान्त और अनुप्रास (वृत्ति व श्रुति)।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरा–प्रशासन की बागडोर हाथ में लेकर बुरे रास्ते पर चल पड़े लोगों को रोकते हो, झगड़े शान्त करते हो और रक्षा में समर्थ होते हो। सम्पत्तियों के प्रचुर होने पर तथाकथित सम्बन्धी होवें (उनसे कोई लाभ नहीं), जनता के सम्बन्धी का कर्त्तव्य तो तुमसे ही पूरा होता है।

अन्वयः—आत्तदण्डः (सन्) कुमार्गप्रस्थितान् नियमयसि विवादम् प्रशमयसि रक्षणाय कल्पसे। विभवेषु अतनुषु (सत्सु) ज्ञातयः नाम सन्तु प्रजानाम् बन्धुकृत्यम् तु त्वयि परिसमाप्तम्।

संस्कृत टीका—**द्वितीयः** अपरः (चारणः) (कथयति यत्)। **आत्तः** आदत्तः (गृहीतः) **दण्डः** शासनम् येन तादृशः (सन्) **कुत्सितः** च असौ **मार्गः** पन्थाः च तेन **प्रस्थितान्** प्रचलितान् (जनान्), **नियमयसि** विनीतान् (मार्गस्थान्) करोषि। **विवादम्** कलहम्। **प्रशमयसि** शान्तम् करोषि। **रक्षणाय** रक्षायै। **कल्पसे** प्रभवसि। **विभवेषु** संपत्सु। **न तनवः** क्षीणाः **अतनवः** अधिकाः तासु (सत्सु)। **ज्ञातयः** बन्धवः। **नाम** (कुत्सायाम्)। **सन्तु** भवन्तु। **प्रजानाम्** जनानाम्। **बन्धूनाम्** बान्धवलभ्यम् **कृत्यम्** कर्त्तव्यम् **त्वयि परिसमाप्तम्** त्वया (एव) पूर्णतः सम्पाद्यते।

हिन्दी-व्याख्या—मनुसंहिता में शत्रुओं के प्रति उग्र-दण्ड होना राजा का कर्त्तव्य बताया गया है :—उग्रदण्डश्च शत्रुषु। कुमार्ग-गामी राष्ट्र का शत्रु होता है, अतः उसके प्रति दण्ड-नियमन उचित ही है। "कल्प्" के साथ जिस विषय में समर्थ हों, उसमें चतुर्थी आती है। "नाम" निन्दा के लिये है, अतः "तथाकथित" या "बनने वाले" अर्थ होगा। धन के अधिक होने पर बन्धु नाम के जीव हो तो जाते हैं पर बन्धु के जो शास्त्र-विहित कर्त्तव्य हैं, वे उनके द्वारा नहीं होते; उन्हें पूर्णता राजा के द्वारा ही मिलती है। या धन के एक अनिवार्य अङ्ग के रूप में बन्धु आते हैं अर्थात् जब-जब धन होगा तब-तब बन्धु के कर्त्तव्य उनमें से कोई नहीं करेगा। उन्हें राजा ही पूर्ण करेगा। या धन होने पर अधूरा कर्त्तव्य—धन या उत्सव के समय बन्धु बनकर आ जाना—तो बन्धु करते हैं, पर बाद में साथ छोड़कर वे अधूरा रहने देते हैं जिसे राजा पूरा करता है अर्थात् विपत्ति में जो बन्धु कर्त्तव्य है, उसे पूरा करता

राजा—एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः । (इति परिक्रामति)

प्रतीहारी—एसो अहिणवसम्मज्जणसस्सिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिंदो । आरुहदु देवो । [एषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः । आरोहतु देवः ।]

राजा—(आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) वेत्रवति किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः ।

है । बान्धव के कर्त्तव्य में मुख्य है उत्सव (धन) और व्यसन (संकट) में साथ देना "उत्सवे चैव··· यस्तिष्ठति स बान्धवः । यहाँ उस राजा के कर्त्तव्य बताये गये हैं जो आधुनिक राजनीति के अनुसार प्रजा-कल्याणकारी सार्वभौम शासक होता है । "अतनु" और "कृत्य" का प्रयोग प्रचुर और कर्त्तव्य (ड्यूटी] के अर्थ में किया गया है । "त्वयि परिसमाप्तम्" प्रयोग ध्यान देने योग्य है ।

छन्द—१।१० द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, व्यतिरेक, अनुप्रास और यमक ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(ये) थके मन वाले हम फिर तरोताज हो गये हैं । (यह कहकर गोल घूमते हैं) ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **एते** (वयम्) । **क्लान्तानि** श्रान्तानि **मनांसि** चित्तानि येषाम् तादृशाः । **पुनः** भूयः । **नवीकृताः** अनवाः अनूतनाः **नवाः** नूतनाः **कृताः** विहिताः । **स्मः** । **इति** एवम् (उक्त्वा) । **परिक्रामति** मण्डलाकारम् गच्छति ।

हिन्दी-व्याख्या—सामयिक, संतोष-प्रद और प्रोत्साहन देने वाला साहित्य सुनकर राजा अपनी थकान भूल जाते हैं । वचनों में बहुत शक्ति है ।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—यह रहा यज्ञ-शाला का बरामदा जो अभी-अभी बुहारने से शोभा-युक्त है तथा होम की गाय उपस्थित है । महाराज आरोहण करें ।

संस्कृत-टीका—**एषः** पुरतः । **अभिनवम्** नूतनम् च तत् **संमार्जनम्** स्वच्छता तेन **सश्रीकः** श्रिया शोभया **सहितः** । **संनिहिता** उपस्थिता **होमार्था** हवनार्था धेनुः गौः यत्र तादृशः । **अग्नि-शरणस्य** यज्ञशालायाः **अलिन्दः** द्वारप्रकोष्ठकम् । **आरोहतु** । **देवः** महाराजः ।

हिन्दी-व्याख्या—होम के लिये दूध और घी देने वाली गाय को कामधेनु कहते हैं । उसका दूध सोम में डालकर देवताओं को अर्पित किया जाता है और उसका घी हवन के रूप में आग में डालकर देवताओं को पहुँचाया जाता है । इस उपयोगिता से गाय हिन्दुओं की माता के समान मान्य है । अग्नि की शरण (आधार या आश्रम) होने से यज्ञशाला "अग्निशरण" कहलाती है । अलिन्द, बाहरी दरवाजे का कमरा उसके पास का आँगन या बरामदा कहलाता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (चढ़कर परिचारक के कंधे का सहारा लिये ठहरते हैं) (हे) द्वार-पालिका, किसलिये श्रीमान् कण्व ने ऋषियों को मेरे पास भेजा होगा ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **आरुह्य** (अलिन्दस्य) उपरि आगत्य । **परिजनस्य** भृत्यस्य (द्वारपालिकायाः) **अंसावलम्बी** स्कन्धाश्रितः । **तिष्ठति** । **वेत्रवति** (हे) यष्टिधारिणि

किं तावद्व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ ९ ॥

(द्वारपालिके) **किम्** । **उद्दिश्य** लक्ष्यीकृत्य । **भगवता** श्रीमता । **काश्यपेन** कण्वेन । **मम सकाशम्** समीपे । **ऋषयः** मुनयः **प्रेषिताः** प्रहिताः । **स्युः** सम्भाव्यन्ते ।

हिन्दी-व्याख्या—द्वारपालिका के कंधे पर हाथ रखना उस समय बुरा नहीं माना जाता था। आज-कल समाज में स्त्री के प्रति पुरुष के सम्मान का अभाव इस हद तक पहुँच गया है कि स्त्री को देखना, छूना आदि सभी कुछ शंका की दृष्टि से देखा जाता है और यह संभावना भी नहीं की जाती कि सात्विक मन से भी स्त्री को देखा या छुआ जा सकता है। जैसे तार आने से विपत्ति सोचकर लोग डर जाते हैं, उसी तरह मुनियों के आने से राजा यह सोचकर डर गये हैं कि जरूर कोई असाधारण बात हो गई है।

हिन्दी-अनुवाद—(तो) क्या रुकावटों (राक्षसादि) ने व्रत-धारी महान् तपस्वियों की तपस्या दूषित कर दी है या धर्म-वन में घूमने-फिरने वाले प्राणियों के प्रति किसी ने बुरा बर्ताव किया है। अथवा मेरे कुकृत्यों ने लताओं के पत्ते, फूल व फल निकलने बन्द कर दिये हैं। इस प्रकार मेरा मन जिस पर बहुत से तर्क-वितर्क हावी हो गये हैं निर्णय के अभाव से व्यग्र हो गया है।

अन्वयः—किम् तावत् विघ्नैः व्रतिनाम् उपोढतपसाम् तपः दूषितम् । उत केनचित् धर्मारण्यचरेषु प्राणिषु असत् चेष्टितम् । आहोस्वित् मम अपचरितैः वीरुधाम् प्रसवः विष्टम्भितः । इति आरूढबहुप्रतर्कम् मे मनः अपरिच्छेदाकुलम् ।

संस्कृत-टीका—**किम्** (वितर्के) **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **विघ्नैः** (राक्षसादिभिः) बाधाभिः । **व्रतिनाम्** नियमवताम् । **उपोढानि** अधिकानि **तपांसि** तपस्याः येषाम् तेषाम् । **तपः** तपस्या । **दूषितम्** नाशितम् । **उत** अथवा । **केनचित्** केनापि (दुष्टेन) । **धर्मार्थानि** धर्मकार्यसम्पादनार्थानि **अरण्यानि** वनानि **तच्चरेषु** तद्वर्त्तिषु । **प्राणिषु** जीवेषु । **असत्** अनुचितम् । **चेष्टितम्** आचरितम् । **आहोस्वित्** अथवा । **मम** । **अपचरितैः** कुकृत्यैः । **वीरुधाम्** लतानाम् । **प्रसव**. पत्राणि पुष्पाणि फलानि च **विष्टम्भितः** अवरुद्धः । **इति** एवम् । **आरूढाः** लग्नाः **बहवः** **प्रतर्काः** आशङ्काः यत्र तादृशम् । **मे** मम । **मनः** चित्तम् । अपरिच्छेदेन निर्णयाभावेन, **आकुलम्** व्यग्रम् ।

हिन्दी व्याख्या—"विघ्न" का अर्थ विघ्न-कारक राक्षसादि है जो साध्यवसाना लक्षणा से निकलता है जिसका फल विघ्न का आधिक्य है। राजा के अपकृत्य से प्रजा अल्पायु, दरिद्र और रोगी होती है तथा उपज कम हो जाती है :—

राज्ञोऽपचारात्पृथिवी स्वल्पसस्या भवेत्किल ।
अल्पायुषः प्रजाः सर्वा दरिद्रा व्याधिपीडिताः ॥

प्रतीहारी—सुचरिदणंदिणो इसीओ देवं समाजइदुं आअदेत्ति तक्केमि ।
[सुचरितनन्दिनो ऋषयो देवं समाजयितुमागता इति तर्कयामि ।]
(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः । पुरश्चैषां कन्चुकी पुरोहितश्च)

कन्चुकी—इत इतो भवन्तः ।

शार्ङ्गरवः—शारद्वत !

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते ।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ॥ १० ॥

जहाँ धर्म-कार्य होते थे, वन धर्मवन कहलाते थे; वहाँ की रक्षा करना राजा का उत्तरदायित्व माना जाता था ।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य ।

अलंकार—अनुप्रास (छेक, वृत्ति व श्रुति) ।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—(आपके) अच्छे जीवन (आचरण) से प्रसन्न ऋषि, महाराज को बधाई देने के लिये आये हैं, ऐसा प्रतीत होता है ।

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका (वदति यत्) । **सुचरितेन** (तत्र) सदाचारेण नन्दन्ति प्रसीदन्ति इत्येवंशीलाः **ऋषयः** मुनयः । **देवम्** महाराजम् (त्वाम्) **समाजयितुम्** वर्धापयितुम् । **आगताः** प्राप्ताः **इति** एवम् । **तर्कयामि** जाने ।

हिन्दी अनुवाद—(इसके बाद गौतमी के साथ शकुन्तला को आगे कर ऋषि और उनके आगे (निम्नलिखित) कन्चुकी और पुरोहित दिखाई पड़ते हैं ।

कन्चुकी—इधर से इधर से श्रीमन्तो ।

संस्कृत-टीका—ततः तत्पश्चात् । **प्रविशन्ति** रङ्गे दृश्यन्ते । **गौतम्या सहिताः** युक्ताः **शकुन्तलाम्** । **पुरस्कृत्य** अग्रे उपस्थाप्य । **मुनयः** ऋषयः । **पुरः** समक्षम् । **च** । **एषां कञ्चुकी** कञ्चुकीयः । **पुरोहितः** पुरोधाः । **च** । **कन्चुकी** कन्चुकीयः (कथयति यत्) । **इतः** अनेन मार्गेण । **इतः** अनेन मार्गेण । **भवन्तः** यूयम् ।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—(हे) शारद्वत,

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (अन्यतरः कण्वशिष्यः) (कथयति यत्) । (हे) शारद्वत (सम्बुद्धौ) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं; इन्होंने मर्यादा नहीं छोड़ी है । धन्य है । वर्णों में जो निकृष्ट है वह भी बुरे रास्ते को नहीं अपनाता । फिर भी मैं सदा एकान्त से परिचित मन लेकर इस भीड़-भाड़ वाले स्थान को आग से घिरे हुये घर की तरह मानता हूँ ।

अन्वय—नरपतिः कामम् महाभागः अभिन्नस्थितिः (न) [illegible] अपि कश्चित्

शारद्वतः—जाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि॥ ११ ॥

अपथम् न भजते। तथापि शश्वत् परिचितविविक्तेन मनसा इदम् जनाकीर्णम् (स्थानम्) हुतवह-परीतम् गृहम् इव मन्ये।

संस्कृत टीका—नराणाम् जनानाम् **पतिः** स्वामी (राजा) (दुष्यन्तः)। **कामम्** अतिशयेन। **महाभागः** श्रेष्ठः। **भिन्ना** खण्डिता **स्थितिः** मर्यादा येन भिन्नस्थितिः न **भिन्नस्थितिः अभिन्न-स्थितिः**। **अहो** साधु। **वर्णानाम्** (ब्राह्मणादीनाम्)। **अपकृष्टः** निम्नतमः। **अपि। कश्चित्** कोऽपि (जनः)। **अपथम्** कुमार्गम्। **न। भजते** आश्रयति। **तथापि** तदपि। **शश्वत्** सततम्। **परिचितम्** अनुभूतम् **विविक्तम्** विजनस्थानम् येन तादृशेन। **मनसा** अन्तःकरणेन। **इदम्** पुरः स्थितम्। **जनैः** लोकैः **आकीर्णम्** व्याप्तम् (स्थानम्)। **हुतवहेन** अग्निना। **परीतम्** आवृतम्। **गृहम्** आलयः। **इव। मन्ये** जानामि।

हिन्दी व्याख्या—ऋषि-कुमार एकान्त में इच्छा रहित व्यक्तियों के साथ रहने का अभ्यस्त है। उसे नाना इच्छाओं में मग्न होकर दुख पाते हुये नगर-निवासियों को देखकर घबड़ाहट हो रही है। राजा को मर्यादा-पालन करने वाला और श्रेष्ठ तथा प्रजा को सन्मार्ग में लगा देखकर भी उसकी बेचैनी कम नहीं होती। वह कारण नहीं समझ पाता। एकान्त के अभ्यास के कारण ऐसा हुआ होगा, यह सोचकर वह अपना समाधान करता है। "जनाकीर्ण" विशेषण होते हुये भी विशेष्य (स्थान) का वाचक है; हिन्दी में भी ऐसे प्रयोग बहुतायत से होते हैं। "अग्नि" की जगह "हुतवह" का प्रयोग ऋषि कुमार के मुख से ज्यादा स्वाभाविक है क्योंकि हुत (आहुति) देखने और देने का उसे अभ्यास है। यहाँ हुतवह की जगह दूसरा पद अधिक अच्छा होता क्योंकि हवन को अग्नि से आग लगने का प्रसंग नहीं देखा जाता।

छन्द—१।९ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—विशेषोक्ति, विभावना और संदेहसंकर।

हिन्दी-अनुवाद—शारद्वत—मैंने देखा है कि आप नगर में प्रवेश (के क्षण) से ही ऐसे हो गये हैं। मैं भी—

संस्कृत टीका—शारद्वतः (अपरः कण्वशिष्यः) (वदति यत्)। **जाने** अनुभवामि (यत्)। **भवान्** त्वम्। **पुरे** नगरे **प्रवेशात्** आगमनात् (प्रभृति एव)। **इत्थंभूतः** एवंरूपः। **संवृत्तः** जातः। **अहम्। अपि।**

हिन्दी-अनुवाद—(मैं) यहाँ सुख के प्रति आसक्त व्यक्तियों को इस तरह समझता हूँ जैसे नहाया हुआ (व्यक्ति) तेल-मालिश किये हुये को समझता है, पवित्र, अपवित्र को समझता है, जगा हुआ, सोये को समझता है और स्वतन्त्र गति वाला, बँधे को समझता है।

अन्वयः—स्नातः अभ्यक्तम् इव, शुचिः अशुचिम् इव, प्रबुद्धः सुप्तम् इव, स्वैरगतिः बद्धम् इव, इह सुखसंगिनं जनम् अवैमि।

शकुन्तला—(निमित्तं सूचयित्वा) **अम्महे किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि,** [अहो किं वामेतरन्नयनं विस्फुरति ।]

गौतमी—जादे पडिहदं अमंगलं। सुहाइं दे भत्तुकुलदेअदाओ वितरंदु। [जाते प्रतिहतममङ्गलम् । सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु] (इति परिक्रामति)

संस्कृत-टीका—(**अहं** शारद्वतः **अपि**) **इह** नगरे **सुखसंगिनम्** विषयासक्तं **जनं** लोकं **स्नातः** कृतस्नानः **अभ्यक्तम् इव** तैलमर्दनेन संपादितदेहमलमिव अस्नातमिवेत्यर्थः । **शुचिः** अन्तः शुद्धः **अशुचिं** कलुषात्मानम् इव **प्रबुद्धः** जागरितः **सुप्तं** निद्रितं इव **स्वैरगतिः स्वैरा** स्वाधीना **गतिः** संचारो यस्य स्वछन्दचारी **बद्धं** यन्त्रितम् **इव अवैमि**=प्रतीये ।

हिन्दी-व्याख्या—तेल मालिश करने के बाद जब तक स्नान नहीं किया जाता, तबतक अपवित्रता रहती है; "तैलाभ्यङ्गे······। तावद्भवति चाण्डाली यावत् स्नानं समचरेत्" । दर्शन में मुक्ति के पहले की दशायें क्रमशः देह-शुद्धि, मनः-शुद्धि और तत्त्वज्ञान हैं । वे यहाँ स्नान, शुचि, प्रबुद्ध और स्वैर गति पदों से संकेतित हैं । सांसारिक जीव इसके विपरीत देह और मन से अपवित्र, तत्त्व-ज्ञान रहित और माया-जाल में बँधे होने से मोक्ष से दूर होते हैं । दोनों की बातें समान हैं; दोनों संसारासक्त जीवों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं ।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—मालोपमा और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (अपशकुन सूचित कर) हाय ! मेरी दायीं आँख क्यों फड़क रही है ?

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । **निमित्तम्** अपशकुनम् । **सूचयित्वा** अभिनीय । (कथयति यत्) **अहो** हन्त । **किम्** केन कारणेन । **मे** मम । **वामात्** सव्यात् **इतरत्** अन्यत् (दक्षिणम्) **नयनम्** नेत्रम् । **विस्फुरति** स्पन्दते ।

हिन्दी-व्याख्या—साहित्य में पुरुष की दाहिनी और स्त्री की बायी आँख का फड़कना शुभ और इसका उलटा अशुभ माना जाता है । यहाँ अशुभ की बात है । आगे आ रही अशुभ घटना का यह संकेत है । गर्ग के अनुसार स्त्री को दाहिनी आँख का फड़कना प्रियजन विच्छेद कराता है :—

दक्षिणचक्षुःस्पन्दनं बन्धुदर्शनमर्थलाभं वा ।
वामचक्षुःस्पन्दनं बन्धुविच्छेदं धनहानिं वा ॥
स्त्रीणामेतत्फलमाविकलं दक्षिणे वैपरीत्यम् ॥

यहाँ दुष्यन्त से मिलन होने में बाधा पड़ जाना फल है जो आगे आयेगा । "निमित्त" पद शकुन के लिये आता है; अपशकुन के लिये भी आ सकता है "इतरत्" और "अन्यत्" शब्द का नपुंसकलिङ्ग एकवचन का प्रयोग "इतरम्" और "अन्यम्" न होकर "इतरत्" और "अन्यत्" ही होता है । इनका प्रयोग कम होने से त्रुटि देखी जाती है ।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—पुत्री, अमङ्गल नष्ट हो । पति के कुल देवता तुम्हें सुख दें । (यह कह कर घूमती है ।)

पुरोहितः—(राजानं निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विनः। असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

शार्ङ्गरवः—भो महाब्राह्मण! काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्था, कुतः-

---

संस्कृत-टीका—**गौतमी** (वदति यत्) **प्रतिहतम्** नष्टम् (जातम्) (भवतु) **अमङ्गलम्** अनिष्टम्। **सुखानि** आनन्दान्। **ते** तुभ्यम्। **भर्तुः** पत्युः **कुलस्य** वंशस्य **देवताः** देवाः **वितरन्तु** प्रयच्छन्तु। **इति** एवम् (उक्त्वा) **परिक्रामति** मण्डलाकारम् गत्वा गमनम् अभिनयति।

हिन्दी व्याख्या—"प्रतिहत" का भूत-कालिक प्रयोग हिन्दी में लोट् लकार का अर्थ देगा "नष्ट हो गया (चिन्ता न करो)" अर्थ भी लगाया जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—पुरोहित (राजा की ओर इशारा कर)—हे तपस्वियों, ये हैं वर्णों और आश्रमों के रक्षक श्रीमान् (राजा) जो पहले ही गद्दी छोड़कर आपकी बाट देख रहे हैं। इन्हें देखें।

संस्कृत-टीका—**पुरोहितः** पुरोधाः (सोमरातः)। **राजानम्** नृपम् (दुष्यन्तम्) **निर्दिश्य** दर्शयित्वा (वदति यत्)। **भोः भोः** हे **तपस्विनः** तापसाः। **असौ** अयम्। **अत्रभवान्** श्रीमान्। **वर्णानाम्** विप्रादीनाम् च आश्रमाणाम् (ब्रह्मचर्यादीनाम्) **रक्षिता** रक्षकः। **प्राक्** पूर्वम्। **एव**। **मुक्तम्** त्यक्तम् **आसनम्** राजपीठम् येन तादृशः। वः युष्मान्। **प्रतिपालयति** प्रतीक्षते। **पश्यत** अवलोकयत। **एनम्**।

हिन्दी-व्याख्या—जिस अर्थ में "साहब" का प्रयोग होता है, उसमें "अत्रभवान्" का प्रयोग पुरानी हिन्दी किताबों में कहीं-कहीं आता है प्राचीन काल में वर्णों और आश्रमों की रक्षा को वैदिक धर्मावलम्बी विशेष महत्त्व देते थे। बौद्धों के इनके विरोधी होने से शायद ऐसा है।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—हे विप्रवर, यह अत्यन्त सराहनीय है, तथापि हम इस विषय में निःस्पृह (इसे विशेष महत्त्व नहीं देते) हैं क्योंकि—

संस्कृत-टीका—**शार्ङ्गरवः** (कथयति यत्)। **भोः** हे। **महान्** श्रेष्ठः च सः **ब्राह्मणः** विप्रः च तत्सम्बुद्धौ। **कामम्** अतिशयेन। **एतत्** इदम् (पूर्वोक्तम्)। **अभिनन्दनीयम्** प्रशंसनीयम्। **तथापि** तदपि। **वयम्** अहम्। **अत्र** अस्मिन् विषये। **मध्यस्थाः** निःस्पृहाः। **कुतः** यतः—

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "महाब्राह्मण" हँसी या निन्दा के अर्थ में नहीं है जैसा विदूषक के प्रसंग में आता है। इस प्रयोग से पता चलता है कि यह शब्द कालान्तर में बुरे अर्थ में रूढ़ हो गया जैसे "पण्डित", "महाराज" आदि होते जा रहे हैं। आगे आने वाले श्लोक से "मध्यस्थ" पद विशेष प्रशंसा-व्यंजक हो जाता है। आशय है कि हम इसे इसलिये महत्त्व नहीं देते क्योंकि ऐसे महान् राजा के लिए यह स्वाभाविक ही है; यह तो इनके लिये छोटी-सी बात है। "एतत्" का प्रयोग "उपर्युक्त" (आसन छोड़ देने और बाट देखने) के अर्थ में है। तपस्वियों से मिलते समय राजा, राज-गद्दी पर बैठता तो यह बेअदबी होती। उनकी बाट देखना, विशेष आदर प्रकट करता है।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥१२॥

प्रतिहारी—देव पसन्नमुहवण्णा दीसंति । जाणामि विसद्धकज्जा इसीओ ।
[देव प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते । जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः ।]

राजा—(शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथ अत्रभवती !

हिन्दी-अनुवाद—वृक्ष, आये फलों से झुक जाते हैं, बादल नये जल से खूब नीचे आ जाते हैं और सज्जन सम्पत्तियों से नम्र हो जाते हैं, यह परोपकारियों का स्वभाव ही है। (कोई नई बात नहीं है ।)

अन्वयः—तरवः फलागमैः नम्राः भवन्ति । घनाः नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति)। सत्पुरुषा समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति) । एषः परोपकारिणाम् स्वभाव एव ।

संस्कृत-टीका—तरवः वृक्षाः । फलानाम् आगमैः आगमनेन (आगतैः फलैः) । नम्राः नतशाखाः भवन्ति । घनाः जलधराः । नवानि नूतनानि च तानि अम्बूनि जलानि च तैः । दूरविलम्बिनः नताः (अतिशयवर्षकाः) (भवन्ति) । सत्पुरुषाः सज्जनाः । समृद्धिभिः सम्पद्भिः । अनुद्धताः नम्राः (भवन्ति) । एषः उक्तः । परोपकारिणाम् स्वभावः निसर्गः एव ।

हिन्दी-व्याख्या—वृक्ष और बादल अचेतन होकर भी परोपकार में लगे हैं तो सज्जन तो चेतन हैं। चर-अचर सभी में सुजनों के कार्य दिखाई पड़ते हैं। यह पद्य भर्तृहरिनीतिशतक में भी पाया जाता है । कालिदास-जैसे महान कवि से यह आशा नहीं है कि वे नकल करेंगे, यही बात भर्तृहरि पर भी लागू होती है। सम्भव है, कवि ने जन प्रचलित अज्ञात कवि की रचना उद्धरण के रूप में दी हो ।

छन्द—२।१८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—क्रिया-दीपक, माला, प्रतिवस्तूपमा, अप्रस्तुत-प्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, हेतु और अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—महाराज, इनके मुख की रंगत निर्मल है । लगता है, ऋषियों का कार्य अनुद्वेजक है ।

संस्कृत-टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका । देव (हे) महाराज । प्रसन्नः निर्मलः मुखस्य वदनस्य वर्णः रङ्गः येषाम् तादृशाः (ऋषयः) । दृश्यन्ते प्रतीयन्ते जानामि मन्ये । विश्रब्धम् विश्वासयुक्तम् (अनुद्वेजकम्) कार्यम् कृत्यम् येषाम् तादृशाः । ऋषयः मुनयः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऋषियों को देखते ही और उनकी बातें सुनते ही राजा समझ गये कि कोई उपद्रव या शिकायत का मामला नहीं है जिससे उनके मुख की घबड़ाहट दूर हो गई है। कार्य विश्वास-पूर्ण होने से तात्पर्य है कि उसे करने की क्षमता में पूर्ण विश्वास है; कठिन कार्य घबराहट पैदा कर विश्वास नष्ट कर देता है। "विश्रब्ध" का अर्थ शान्त या अक्रूर भी है—विश्रब्धस्तूद्भटे व्यर्थे शान्तविश्वस्तयोरपि । (विश्व-कोष)

हिन्दी अनुवाद—राजा (शकुन्तला को देख कर) अरे ! आप

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥ १३ ॥

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) । **शकुन्तलाम्** । **दृष्ट्वा** विलोक्य (कथयति यत्) । **अथ** अहो । **अत्रभवती** महोदया ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्वियों के बीच, पीले पत्तों के बीच कोमल पल्लव की भाँति यह कौन है जिसने घूँघट निकाल रखा है तथा जिसके शरीर की लुनाई विशेष व्यक्त नहीं है ।

अन्वयः—तपोधनानाम् मध्ये पाण्डुपत्राणाम् (मध्ये) किसलयम् इव अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुट-शरीरलावण्या का स्वित् ।

संस्कृत-टीका—तपः तपस्या **धनम्** सम्पत्तिः येषाम् । **मध्ये** । **पाण्डूनि** पीतानि च **पत्राणि** दलानि च तेषाम् (मध्ये) **किसलयम्** कोमलपल्लवम् । इव । **अवगुण्ठनवती** आवरणयुक्ता । **नातिपरिस्फुटे** अपूर्णव्यक्ते **शरीरम्** देहः च **लावण्यम्** कान्तिः यस्याः तादृशी । **का स्वित्** (वितर्के) ।

हिन्दी-व्याख्या—"अवगुण्ठन" शब्द बताता है कि परदे की प्रथा पुरानी है। रामायण और महाभारत लेकर व्यास, कालिदास आदि की रचनाओं में इसका उल्लेख स्पष्ट है । कुछ विशेष अवसरों को छोड़कर स्त्रियाँ परदा करती थीं । रानियों को तो असूर्यंपश्या (जिन पर सूर्य तक की नजर न गई हो) तक कहा गया है । सीता जी के बारे में रामायण में ऐसी ही उक्ति है । और पहले वैदिक काल में स्त्रियों न शास्त्रार्थ किये हैं और ऋचायें कही हैं; उस समय स्त्रियाँ अधिक स्वतन्त्र और निर्भीक प्रतीत होती हैं । स्त्रियों के प्रति पुरुष का आकर्षण और स्त्रियों को सुन्दरता की वस्तु बनाने के लक्ष्य से परदा-प्रथा चली प्रतीत होती है । "सूर्य तक न देख पाये" से स्पष्ट है कि पुरुष की दृष्टि से ही स्त्रियाँ नहीं बचाई जाती थीं; बल्कि धूप से भी बचाई जाती थीं । बाहर निकलने, दौड़ने-धूपने और धूप से शरीर का रंग साँवला या काला हो जाता है । स्त्रियों के रंग की गौरता में पर्दा कारण है; इसके अनेक दोष देखते हुये इस युग में इसे कोई महत्त्व नहीं दिया जाता । आज की तरह ही पहले उत्सव, संकट आदि विशेष अवसरों पर परदा अनिवार्य नहीं माना जाता था :—

निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च (भास-प्रतिमानाटक १।२०)

व्यसनेषु च कृच्छ्रेषु न युद्धे न स्वयंवरे । न व्रतौ न विवाहे च दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ॥

रामायण युद्धकांड ११४।२८; महाभारत सभापर्व ६७।४-७; शल्यपर्व १९।६३ व स्त्रीपर्व ९.९।१९ ।

मोती के ऊपर जो पानी-सी चमक दिखाती है, उसे लावण्य कहते हैं:—

मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते ॥ (सुधाकर)

अद्भुत सुन्दरता के लिये यह शब्द आता है । "लुनाई" व "सलोना" से अपभ्रंश के रूप में यह शब्द आया है । "मधुर रस" की अपेक्षा "लवण" को श्रेष्ठ माना गया है । "नातिपरिस्फुट" से पता चलता है कि शकुन्तला का यौवन पूर्णतः विकसित नहीं है जिसका कारण या तो यह है कि वह तपोवन के सात्विक वातावरण में रही है, जहाँ यौवन का कोई महत्त्व नहीं मिला है या उसकी वय शैशव और यौवन के मध्य की देहली पर आरूढ़ है । "किसलय" नपुंसकलिङ्ग में है और

प्रतीहारी—देव कुदूहलगब्भोपहिदो ण मे तक्को पसरदि । णं दंसणीआ उण से आकिदी लक्खीअदि । [देव कुतूहलगर्भोपहितो न मे तर्कः प्रसरति । ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते ।]

राजा—भवतु अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।

शकुन्तला का उपमान है। सामान्यतः समान लिङ्ग वाले शब्द ही उपमान बनते हैं और ऐसे स्थलों पर "श्री" आदि शब्द जोड़कर लिङ्ग की असमानता दूर कर दी जाती है। कोमलता साधारण धर्म है जो किसलय-श्री या किसलय-अतिरिक्त किसी पद से उतनी अच्छी तरह प्रकट नहीं हो सकता, अतः यहाँ दूसरा उपमान नहीं लिया गया है।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य।

अलंकार—हेतु और अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका–महाराज, मेरा अनुमान, उत्सुकता के बीच बीच में लिपटकर विकसित नहीं हो पा रहा है। हां, इसकी आकृति निश्चय ही देखने योग्य है।

संस्कृत-टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका (वदति यत्) **देव** (हे) महाराज। **कुतूहलेन** उत्सुकतया **गर्भे** मध्ये **उपहितः** युक्तः (सन्)। **न मे** मम। **तर्कः** अनुमानम्। **प्रसरति** विकसितः भवति।

हिन्दी-व्याख्या—आशय है कि अनुमान को कौतूहल ने दबा दिया है जिससे कुछ कहा नहीं जाता है। "कुतूहलगर्भोपहित" का अर्थ "कौतूहल से सगर्भ होने के कारण" भी किया जा सकता है। जैसे सगर्भ व्यक्ति (नारी) चल नहीं पाती, वैसे ही संगर्भ तर्क की गति नहीं है कि शकुन्तला तक पहुँचकर पता दे।

हिन्दी अनुवाद—राजा—रहने दो; पराई नारी को देखना नहीं चाहिये।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)—**भवतु** (निषेधे)। **अनिर्वर्णनीयम्** अद्रष्टव्यम् (भवति) **परम्** अन्यत् च तत् **कलत्रम्** नारी च।

हिन्दी व्याख्या—पराई नारी को न देखना भारतीय सदाचार का श्रृंगार प्राचीनकाल से आज तक अक्षुण्ण चला आ रहा है और राष्ट्र की पवित्रता का द्योतक है। यहाँ स्त्रियाँ भी चाहती हैं कि पर-पुरुष उन्हें न देखें जब कि विदेशी नारियों को कोई न देखे तो वे शिकायत करती हैं और अपने वस्त्रों, कुरूपता आदि को दोष देती और अभिभावकों या पति से हठकर अच्छे से अच्छा प्रसाधन प्राप्त करने की चेष्टा करती हैं। वहाँ पुरुष और स्त्री को समाज में समान स्थान है और प्रचलन हो जाने से वह न तो उद्वेजक है और न अस्वाभाविक आकर्षण का विषय। "मृच्छकटिक" में भी पराई स्त्री का अद्रष्टव्य होना कहा गया है : "न युक्तं परकलत्रदर्शनम्" यों अविवाहित लड़कियों को देखने का वैसा निषेध नहीं है, अन्यथा गन्धर्व-विवाह ही न होते। भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण (३) में कुँआरी लड़की को देखना दोष-रहित, बताया है :—कन्यादर्शनं निर्दोषम्। वही भाव "नागानन्द" में इस प्रकार किये हैं :—कन्यका हि निर्दोषदर्शना भवन्ति।

शकुन्तला—(हस्तमुरसि कृत्वा आत्मगतम्) हिअअ किं एव्वं वेवसि । अज्जउत्तस्स भावं ओहारिअ धीरं दाव होहि । [हृदय किमेवं वेपसे । आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद्भव ।]

पुरोहितः—(पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः । कश्चिदेषामुपाध्यायसंदेशः । तं देवः श्रोतुमर्हति ।

राजा—अवहितोऽस्मि ।

ऋषयः—(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन् ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (छाती पर हाथ रखकर मन ही मन) । (हे) हृदय क्यों इस तरह काँपते हो । स्वामी के अनुराग का विचार कर जरा धैर्य रखो ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । हस्तम् करम् । उरसि । वक्षसि । कृत्वा निधाय । आत्मगतम् स्वगतम् (वदति यत्) । (हे) हृदय अन्तःकरण । किम् केन कारणेन । एवम् अनेन प्रकारेण । वेपसे कम्पसे । आर्यपुत्रस्य स्वामिनः । भावम् प्रेम । अवधार्य विचार्य । धीरम् धैर्ययुतम् तावत् (वाक्यालङ्कारे) भव एधि ।

हिन्दी-व्याख्या—हृदय का काँपना, भावी अमंगल की सूचना है । व्याह कर इतने दिन तक खबर भी नहीं ली; कहीं भूल न गये हों, यह आशंका और स्त्री-सुलभ भीरुता भी हो सकती है । ऐसे अधिकार और धन वालों के लिए अनेक व्याह करना और उन्हें भूल जाना, उस युग में या कालिदास के युग में साधारण बात थी, यह भी संभव है ।

हिन्दी-अनुवाद—पुरोहित (सोमरात) (आगे बढ़कर) ये हैं नियम पूर्वक सत्कृत तपस्वी । इनके पास (अपने) गुरु का कोई संदेश है उसे महाराज सुनें ।

संस्कृत-टीका—पुरोहितः पुरोधाः (सोमरातः) । पुरः अग्रे । गत्वा प्राप्य (कथयति यत्) । एते पुरतः विद्यमानाः । विधिवत् विधिना । अर्चिताः सत्कृताः । तपस्विनः तापसाः । कश्चित् कोऽपि । एषाम् उपाध्यायस्य गुरोः संदेशः संदिष्टम् (अस्ति) ।

हिन्दी-व्याख्या—"उपाध्याय" और "आचार्य" में यहाँ कोई अन्तर नहीं किया गया है । अन्तर करने पर कण्व, आचार्य कहलाते । कालिदास के समय तक यह अन्तर रूढ़ नहीं होने पाया होगा । "एषाम्" की षष्ठी ध्यान देने योग्य है; यह "के पास" अर्थ देती है । संस्कृत में "पार्श्वे" लगाने पर "अधिकार में" अर्थ नहीं निकलता; "बगल में" निकलता है । "अर्हति" आदरार्थक है; यह क्रिया को आदरार्थक बना देता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मैं) सावधान हूँ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत् अहम्) अवहितः सावधानः । अस्मि ।

हिन्दी-अनुवाद—ऋषि-गण (हाथ उठाकर)—जय हो राजन् ।

संस्कृत-टीका—ऋषयः मुनयः । हस्तान् करौ । उद्यम्य उत्थाप्य (वदन्ति यत्) । विजयस्व सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व । राजन् महाराज ।

हिन्दी-व्याख्या—"ऋषि" में बहुवचन सूचित करता है कि दो से अधिक ऋषि हैं; आदरार्थक प्रयोग कवि की ओर से ऐसे स्थल में होना जँचता नहीं । "हस्त" में बहुवचन है; प्रायः अङ्गवाची

राजा—सर्वानभिवादये ।

ऋषयः—इष्टेन युज्यस्व ।

राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः ?

ऋषयः—

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ १४ ॥

शब्द उतने ही लिखे जाते हैं जितने एक व्यक्ति के होते हैं। कभी-कभी आदर के लिए व्यक्ति से संबद्ध अङ्गादि भी बहुवचन में लिखे जाते हैं। "जय" का वास्तविक अर्थ "सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्त्तमान होना" है; यह इतना प्रचलित हो गया है कि बिना ठीक अर्थ जाने इसका प्रयोग किया जाता है। "जि" धातु परस्मैपद है पर "वि" उपसर्ग लगने पर आत्मनेपद हो जाती है; राष्ट्र के आदर्श वाक्य "सत्यमेव जयते" में आया "जयते" उपनिषद् का उद्धरण होने से आर्ष (पुराने) प्रयोग की कोटि में आता है; आज उद्धरणीय तो है, स्वयम् अपनाने योग्य नहीं।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—सबको प्रणाम करता हूँ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यतः)। **सर्वान्** सकलान् (भवतः)। **अभिवादये** नमामि।

हिन्दी-अनुवाद—ऋषि-गण—अभीष्ट फल से युक्त हों (उसे प्राप्त करें)।

संस्कृत टीका—**ऋषयः** मुनयः (वदन्ति यत्) **इष्टेन** काङ्क्षितेन फलेन। **युज्यस्व** युक्तः भव।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मुनि लोगों की तपस्या बिना रुकावट के हो तो रही हैं न?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) ' वदति यत्)। **अपि** किम्। **निर्विघ्नानि** बाधारहितानि **तपांसि** तपस्याः येषाम् तादृशाः। **मुनयः** ऋषयः (सन्ति वा न वा)।

हिन्दी-व्याख्या—कुशलता की बात पूछने में यह जरूरी है कि सामान्य कुशलता के अतिरिक्त व्यक्ति को सब से महत्त्वपूर्ण वस्तु के बारे में पूछा जाय। तपस्वियों के लिये तप सबसे बढ़कर है, अतः यहाँ उसके बारे में पहला प्रश्न है।

हिन्दी-अनुवाद—ऋषि-गण—

संस्कृत-टीका—**ऋषयः** मुनयः (कथयन्ति यत्)।

हिन्दी-अनुवाद—आपके रक्षक रहते सज्जनों को धर्म-कार्य में रुकावट कहाँ हो सकती है! सूर्य के चमकते अंधकार कैसे प्रकट हो सकता है?

अन्वय—त्वयि रक्षितरि (सति) सताम् धर्मक्रियाविघ्नः कुतः? धर्मांशौ तपति कथम् तमः आविर्भविष्यति?।

संस्कृत-टीका—**त्वयि** भवति (नृपे) **रक्षितरि** रक्षके (सति) **धर्मार्थासु क्रियासु** कृत्येषु

राजा—अर्थवान् खलु मे राजशब्दः। अथ भगवाँल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः।

विघ्नः बाधा। **कुतः** कथम् (संभवति) **घर्मांः** उष्णाः अंशवः किरणा यस्य तस्मिन् **तथापि** उदयाचलम् आरूढे (सति)। **तमः** अन्धकारः। **कथम्** केन प्रकारेण। **आविर्भविष्यति** प्रकटितः स्यात्।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ राजा के प्रश्न का उत्तर प्रश्न में दिया गया है जो सामान्यतः (विशेषतः आजकल) लोक व्यवहार में नहीं चलता पर कुशल क्षेम के प्रश्न का कृतज्ञता पूर्ण उत्तर देते समय इस तरह का उत्तर आज तक चलता है। राजा की उपमा सूर्य से दी गई है और उनकी उपस्थिति की उपमा सूर्य के चमकने से दी गई है। "आविस्" उपसर्ग है। "भविष्यति" में जो भविष्य-काल है, वह हिन्दी में आज तक अविकल रूप से है। यों यहाँ भविष्य की जगह सामान्य कथन है, अतः विधि-लिङ् का प्रयोग अधिक प्रचलित है। रघुवंश (५।१३) में यही दृष्टान्त आया है :—सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।"

छन्द—१।५ द्रष्टव्य।

अलंकार—दृष्टान्त, हेतु और अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—निश्चय ही मेरा "राजा" पद सार्थक हो गया। श्रीमान् कण्व समाज पर कृपा करने के लिये कुशलतापूर्वक तो हैं ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **अर्थवान्** सार्थकः। **खलु** निश्चयेन। **मे** मम। **राजशब्दः** राजा इति पदम्। **अथ** किम्। **भगवान्** श्रीमान्। **लोकानाम्** जनानाम्। **अनुग्रहाय** कृपार्थं। **कुशली** सकुशलः **काश्यपः** कण्वः।

हिन्दी-व्याख्या—(लोकान्) "रञ्जयति इति राजा" व्युत्पत्ति के अनुसार "राजा" उपाधि प्रजा के प्रसन्न रखने वाले के लिये सार्थक है तपस्वी खुश हैं अतः राजा इस उपाधि को सार्थक मानते हैं। रघुवंश ४।४२ में यह विस्तार में कहा गया है—

"यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा। तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्"। "अथ" यहाँ प्रश्न के लिये है। औरों को कुशल रहना अपने लिये है; कण्व का कुशल रहना समाज के लिये है, यह भाव उभारा गया है। विशेष्य "काश्यप" को विशेषण भगवान् से दूर रखा गया है; विशेषतः बातचीत में ऐसा अच्छा माना जाता है क्योंकि स्वाभाविक है। आचार्य ब्राह्मण माने जाते हैं। कुश उनके लिये धर्म-क्रिया का प्रमुख सहायक है; उसे लाने में हाथ कटने या कहीं दुर्लभता की संभावना है। अतः "कुश लाते हैं; उसमें कोई कष्ट तो नहीं होता" (कुशान् लाति इति कुशल.) पूछा जाता है। मनुस्मृति २।१२७ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से क्रमशः कुशल, अनामय, क्षेम और आरोग्य पूछना चाहिये, (सबसे कुशल नहीं) :—

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च॥ आचार्य ब्राह्मण होते थे। कुशलादि शब्दों की रूढ़ि नहीं हो पाई है; विशेषतः "कुशल" शब्द सब जगह

ऋषयः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः । स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह ।

राजा—किमाज्ञापयति भगवान् ।

शार्ङ्गरवः—यन्मिथःसमयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम् । कुतः—

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि यच्छकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥ १५ ॥

चलता है । "कुशल", कुशलता के लिये भी आता है जिससे "कुशली" और "सकुशल" विशेषण बनते हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—ऋषि-अलौकिक शक्ति वाले व्यक्तियों की कुशलता उनके वश की वस्तु है (अतः कण्व के अकुशल होने का प्रश्न ही नहीं उठता) । उन्होंने अनामयसम्बन्धी प्रश्न करके आप से यह कहा है । ।

संस्कृत टीका—**ऋषयः** मुनयः (वदन्ति यत्) । **स्वाधीनम्** आत्मायत्तम् **कुशलम्** कुशलता येषाम् तादृशाः (भवन्ति ; । **सिद्धिमन्तः** अलौकिकशक्तियुक्ताः (कर्त्तारः) । **सः** (कण्वः) । **भवन्तम्** त्वाम् । **अनामयप्रश्नपूर्वकम्** अपि अनामयः असि इति प्रथमम् पृष्ट्वा । **इदम्** वक्ष्यमाणम् । **आह** वदति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ राजा के क्षत्रिय होने से "अनामय" पूछा गया है, कुशल नहीं । आमय रोग को कहते हैं, कदाचित् शत्रु की चोट के अर्थ में रूढ़ रहा हो ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—श्रीमान् क्या कहते हैं ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **किम्** । **आज्ञापयति** वदति । **भगवान्** श्रीमान् (कण्वः) ।

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरव—तुमने परस्पर स्वेच्छा (रजामंदी) पूर्वक (गान्धर्व विधि-पूर्वक, जो इस मेरी बेटी से ब्याह किया है, उसके लिये तुम दोनों पर प्रसन्न होकर मैंने अनुमति दे दी है, क्योंकि ।

संस्कृत-टीका—**शार्ङ्गरवः** (कथयति) । (यत् ।) **मिथःसमयात्** परस्परं प्रति स्वेच्छया (अनुरागेण) । **इमाम्** पुरः निधीयमानाम् । **मदीयाम्** मम । **दुहितरम्** पुत्रीम् **भवान्** त्वम् । **उपायंस्त** पर्यणयत् (यत्) उक्तम् । **मया** । **प्रीतिमता** प्रसन्नेन । **युवयोः** वाम् (उभयोः) । **अनुज्ञातम्** । **कुतः** यतः ।

हिन्दी-व्याख्या—"उपायंस्त" "उप" उपसर्ग-पूर्वक "यम्" धातु के लुङ् लकार (सामान्य भूतकाल) प्रथम पुरुष एक वचन का रूप है ।

हिन्दी-अनुवाद—क्योंकि तुम योग्यों में अग्रगण्य माने गये हो और शकुन्तला साकार शोभन क्रिया है, अतः समान गुण वाली वधू और वैसे ही वर को मिलाते हुये विधाता चिर-काल के लिये निन्दनीय नहीं रहे ।

तदिदानीमापन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।

गौतमी—अज्ज किंपि वत्तुकामम्हि। ण मे वअणावसरो अत्थि। क ति [आर्य किमपि वक्तुकामास्मि। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति]।

अन्वय—यत् त्वम् अर्हताम् प्राग्रसरः (लोकैः) स्मृतः असि। यत् (च) शकुन्तला च मूर्तिमती सत्क्रिया (अस्ति) तत् तुल्यगुणम् वधूवरम् समानयन् प्रजापतिः चिरस्य वाच्यम् न गतः।

संस्कृत-टीका—यत् यतः। **त्वम्** भवान्। **अर्हताम्** योग्यजनानाम्। **प्राग्रसरः** प्रकर्षेण अग्रे सरति इति (मुख्यः)। (लोकैः) **स्मृतः**। **असि**। (यत् च) **शकुन्तला**। **च**। **मूर्तिमती** साकारा। **सती** शोभना च सा **क्रिया** च (शोभनकृत्यम्) (अस्ति ततः)। **तुल्याः** समानाः **गुणाः** यस्य तत (वधुवरम्)। **वधूः** पत्नी च **वरः** पतिः च **वधूवरम्** तत्। **समानयन्** एकीकुर्वन्। **प्रजापतिः** विधाता। **चिरस्य** चिरेण। **वाच्यम्** निन्दनीयतत्त्वम् (निन्दाम्) **न**। **गतः** प्राप्तः।

हिन्दी-व्याख्या—"सत्क्रिया" पद सत्कार के अर्थ में भी हो सकता है जो "चिरस्य" का अर्थ बहुत समय बाद भी लिया जा सकता है। ऐसी सुन्दर जोड़ी इसके पहले विधाता ने नहीं बनाई जिससे निन्दा पात्र था; अब बना दी है जिससे वैसा नहीं रहा। विधाता पति-पत्नी का मेल समान्यतः गलत करते हैं। इस पर सुभाषित है—"या सुन्दरी सा पतिरूपहीना"।

उक्त पद्य की रचना इस स्थल की पुष्टि के लिये की गई हो, यह भी सम्भव है। "पुरोग्रतोऽग्रेषु सरतेः" पाणिनि-सूत्र (३।२।१८) से अग्रेसर बनता है, अग्रसर नहीं। "अग्रसर" शब्द भी आता है जो शब्द के अनेक-रूप होने से है। सिद्धान्तकौमुदी में हरदत्त को इसका समर्थक बताया गया है। वार्तिक के अनुसार द्वन्द्व समास समाहार में भी हो सकते हैं। (सर्वो द्वन्द्वो विभाषया एकवत् भवतीति वाच्यम्) जिससे "वधूवरौ" की जगह "वधूवरम्" हुआ है। समाहार होने से "वर" के अनुसार पूरा पद पुंल्लिङ्ग न होकर नपुंसकलिङ्ग हुआ है।

छन्द—(११८) द्रष्टव्य।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा, सम, हेतु और अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—(तो) अब साथ-साथ धर्म के आचरण के लिये (इस) गर्भवती को ग्रहण करें।

संस्कृत-टीका—तत् तर्हि। **इदानीम्** अधुना। (एषा) **आपन्नम्** प्राप्तम् **सत्त्वम्** जीवः याम् तादृशी। **प्रतिगृह्यताम्** अङ्गीक्रियताम्। **सहधर्मस्य आचरणाय** करणाय। इति।

हिन्दी व्याख्या—"आपन्नसत्त्वा" का अर्थ "गर्भवती" है। धर्म का आचरण विवाहित व्यक्ति अकेला करता है तो वह निष्फल होता है, अतः साथ रखने की बात कही गई है :—"सपत्नीको धर्ममाचरेत्"। "सहधर्मचरणाय" से यह व्यक्त होता है कि गान्धर्व रीति से किया गया विवाह विधिवत् किया गया विवाह है। पत्नी के साथ ही धर्म-क्रियायें की जा सकती हैं; अकेले नहीं कहकर प्राचीन आचार्यों ने पत्नी को बहुत ऊँचा और महत्त्व-पूर्ण स्थान दिया है। "चरण" पद का अर्थ "आचरण" है।

हिन्दी-अनुवाद—[illegible] का नहीं

णापेक्खिओ गुरुअणो इमाइ ण हु पुच्छिदो अ बंधुअणो ।
एक्कक्कमेव्व चरिए भणामि किं एक्कमेक्कस्स ।। १६ ।।
[नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न खलु पृष्टश्च बन्धुजनः ।
एकैकमेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य ॥]
शकुन्तला—(आत्मगतम्) किं णु खु अज्जउत्तो भणादि । [किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति ।]

(रह गया) है, क्योंकि—

गौतमी (कथयति यत्) । **आर्य** (हे) महोदय । **किमपि** किञ्चित् । **वक्तुम्** कथयितुम् **कामः** इच्छा यस्याः सा तादृशी । **अस्मि** । **न** । **मे** । मम । **वचनानाम्** कथनस्य **अवसरः** । **अस्ति** । **कथम् इति** केन कारणेन ।

हिन्दी-व्याख्या—"काम" पद अन्त में रहने पर 'तुमुन्" प्रत्यय का "म्" लुप्त हो जाता है और बहुव्रीहि समास होता है। "कथम्" के बाद "इति" व्यर्थ है पर प्राकृत में वैसा चलन है, संस्कृत में नहीं। यहाँ संस्कृत-छाया होने से उसे देना पड़ा है।

हिन्दी-अनुवाद—इस (शकुन्तला) ने न पूज्य जनों का ख्याल किया (उसने पूछा नहीं इस प्रकार अनादर किया) और न तो (इसने या आपने) बन्धुजनों से पूछा (बात की)। एक दूसरे के प्रति किये गये आचरण (अनुराग) के बारे में एक की अकेली बात (दोष) क्या कहूँ ?

अन्वय—न अनया गुरुजनः अपेक्षितः न च खलु (अनया त्वया वा) बन्धुजनः पृष्टः। एकैकम् एव चरिते एकस्य एकम् किम् भणामि ।

संस्कृत-टीका—**न** । **अनया** (शकुन्तलया) । **गुरुः** पूज्य च सः **जनः** व्यक्तिः च (कण्वादिः) । **अपेक्षितः** आदृतः । **न** । **च** । **खलु** निश्चयेन (अनया त्वया वा) । **बन्धुः** बान्धवः च सः **जनः** व्यक्तिः च **पृष्टः** । **एकैकम्** अन्योन्यम् प्रति । **एव** । **चरिते** कृत (अनुराग ए,कस्य अन्यतरस्य । तव वा शकुन्तलाया वा) **एकम्** एकमात्रम् (दोषम्) । **किम्** कथम् । **भणामि** वदामि ।

हिन्दी-व्याख्या—आशय यह है कि शकुन्तला को गुरुजनों और बन्धुजनों की अनुमति ले लेनी चाहिये थी। उत्तरार्ध से अच्छी तरह सम्बन्ध करने के लिये श्लोक का दूसरा चरण दुष्यन्त के लिये लगाया जा सकता है। उन्हें अपने बन्धुओं या कन्या (शकुन्तला) के बन्धुओं (कण्वादि) से बात कर लेनी चाहिए थी जिससे इस तरह गुप्त रूप से ब्याह करने की आवश्यकता न पड़ती। गौतमी दोनों को दोषी मानती है। ऐसा ब्याह आजकल के भारतीय समाज में जिस तरह अनुचित माना जाता है, उसी तरह तब भी माना जाता था। जब दोनों का ही दोष है तो उन्हें एक दूसरे को दोष न देकर अपना दोष स्वीकार करना चाहिये; सारा दोष दूसरे पर मढ़कर उसके प्रति कोप नहीं दिखाना चाहिये। यहाँ वात्सल्य-पूर्ण सुझाव है। गौतमी लोक-व्यवहार में कुशल है।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अर्थापत्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—(मन ही मन)—क्या आर्यपुत्र क्या कहेंगे ?

राजा—किमिदमुपन्यस्तम् ।

शकुन्तला—(आत्मगतम्) पावओ खु वअणोवण्णासो । [पावकः खलु वचनोपन्यासः ।]

शाङ्गरवः—कथमिदं नाम । भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः ।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ १७ ॥

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला आत्मगतम्** (वदति यत्) । **किम् नु खलु** (वितर्के) न जाने किम् । **आर्यपुत्रः** स्वामी । **भणति** वदिष्यति ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला डर रही है कि इतने दिन से सुध नहीं ली है; कहीं भूल न गये हों । "भणति", आसन्न भविष्यत् काल बताता है, यद्यपि वर्तमान है । ऐसा प्रयोग हिन्दी में भी होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—यह क्या बात रखी (कही) है ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **किम्** । **इदम्** उपर्युक्तम् । **उपन्यस्तम्** कथितम् ।

हिन्दी-व्याख्या—शाप के कारण ब्याह राजा को याद नहीं आता ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (आत्मगत)—(स्वामी का) वचन-विन्यास तो साक्षात् आग है ।

संस्कृत टीका—**शकुन्तला** आत्मगतम् (कथयति यत्) । **पावकः** अग्निः । **खलु** एव (साक्षात्) (स्वामि–) **वचनानाम्** कथितस्य **उपन्यासः** विन्यासः (प्रकटनम्) ।

अलङ्कार—रूपक (भिन्न) ।

हिन्दी-अनुवाद—यह कैसे हो सकता है (यदि आपको यह अप्रिय और अस्वीकार्य है तो हो । (हम इसे वापस नहीं ले जा सकते) ? आप स्वयं लोक-रीति भली-भाँति जानते हैं ।

संस्कृत टीका—**शाङ्गरवः** (वदति यत्) । **कथम्** केन प्रकारेण । **इदम्** उपर्युक्तम् । **नाम** संभाव्यते । **भवन्तः** यूयम् । **एव** । **सुतराम्** सुष्ठु । **लोकस्य** जगतः **वृत्तान्ते** रीत्याम् **निष्णाताः** दक्षाः ।

हिन्दी-व्याख्या—"भवन्तः" में आदर के लिये बहुवचन है जैसा कि हिन्दी में भी होता है । "निष्णातः" और "स्नातक" शब्द क्रमशः दक्ष और शिक्षा समाप्त करने वाले (आजकल ग्रैजुयेट) के लिये आते हैं । जो स्नान कर लेता है, वह जल के अन्दर घुसकर शीतलता, गहराई आदि से परिचित हो चुका रहता है । अध्ययन समाप्त होने पर बिदाई के पहले स्नान कराकर दीक्षा दी जाती थी, इसलिये भी ये दोनों शब्द शिक्षाप्राप्त के लिये आते हैं ।

हिन्दी अनुवाद—बन्धु-कुल में ही आश्रय लेने वाली विवाहित स्त्री यदि सती हो तो भी (असती की तो बात ही क्या) उसके प्रति लोग अन्यथा सोचते हैं (कि पति को छोड़कर बहुत समय से यहाँ है; जरूर उसके प्रति अरुचि और किसी परपुरुष के प्रति झुकाव होगा,) इसलिये

राजा— किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा ?

शकुन्तला—(सविषादम् । आत्मगतम्) हिअअ संपदं दे आसंका। [हृदय सांप्रतं त आशङ्का ।]

शार्ङ्गरवः—

किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा ।

स्त्री पति को प्रिय हो या अप्रिय उसके अपने बन्धु-जन चाहते हैं कि वह पति के पास रहे ।

अन्वय—जनः सतीम् अपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयाम् । भर्तृमतीम् अन्यथा विशङ्कते अतः स्वबन्धुभिः प्रिया (वा) अप्रिया वा प्रमदा परिणेतुः समीपे इष्यते ।

संस्कृत टीका—जनः लोकः । **सतीम्** सच्चरित्राम् । **अपि** । **ज्ञातीनाम्** बन्धूनाम् **कुलम्** गोत्रम् एकः केवलः **संश्रयः** यस्याः तादृशीम् । **भर्तृमतीम्** सधवाम् (नारीम्) । **अन्यथा** विपरीतम् (असती इति) **विशङ्कते** मन्यते । **अतः** अनेन कारणेन । **प्रिया** यथा स्यात् तथा (पत्युः) हृद्या । **अप्रिया** (पत्युः) अहृद्या । **वा** अथवा, **प्रमदा** स्त्री । **परिणेतुः** पत्युः । **समीपे** निकटे (एव) **स्वबन्धुभिः** स्वस्याः आत्मनः बन्धुभिः बान्धवैः । **इष्यते** काम्यते ।

हिन्दी-व्याख्या—शार्ङ्गरव लोक व्यवहार में दक्ष हैं । आज भी उक्त बात उतनी ही सही है । "प्रमदा" का अर्थ अधिक मद (तारुण्य-मद) वाली किया जाता है, लेकिन यहाँ सामान्य स्त्री मात्र के लिये है ।

छन्द—१।१८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा, हेतु, अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—क्या इन महिला से मैंने पहले व्याह किया है ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **किम्** । **च** । **अत्रभवती** आदृता । **मया** । **पूर्वम्** **प्राक्** **परिणीता** ऊढा ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (दुख के साथ आत्मगत)—हृदय, तुम्हारा डर ठीक निकला ।

हिन्दी व्याख्या—"साम्प्रतम्" "उचित" के अर्थ में अव्यय है ।

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरव । किये कार्य के प्रति द्वेष कैसा ? धर्म से मुँह मोड़ना कैसा ? जान बूझकर (बनावटी) इनकार कैसा ?

अन्वय—कृतकार्यद्वेषः किम् । धर्मं प्रति विमुखता (किम्) कृतावज्ञा (किम्) ।

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्) । **किम्** कीदृशम् । **कृतम्** विहितम् च तत् **कार्यम्** कर्म च तत्र द्वेषः वैरम् । **प्रति** । **विमुखता** पराङ्मुखता । (किम्) **कृते** अनुभूते (ज्ञाते) **अवज्ञा** तिरस्कारः (प्रत्याख्यानम्) ।

हिन्दी व्याख्या—आशय है कि भले को अपना किया गलत काम भी स्वीकार कर लेना चाहिये, धर्म से मुँह न मोड़ना चाहिये और जान-बूझकर अवज्ञा न करनी चाहिये । राजा ने व्याह किया, उसे स्वीकार नहीं करते । यह धर्म से पैर पीछे हटाना है । सारा वृत्तान्त जानते हुये, अनुभूत होते हुये–

राजा—कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः ।

शार्ङ्गरवः—

मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ॥१८॥

राजा—विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि ।

गौतमी—जादे मुहुत्तअं मा लज्ज । अवणइस्सं दाव दे ओंउंठणं । तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि । [जाते मुहूर्तं मा लज्जस्व । अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम् । ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति ।] (इति यथोक्तं करोति ।)

इनकार करना भी उचित नहीं है। शकुन्तला आश्रम में पली है, वह झूठ नहीं बोल सकती, राजा भले बोल जाय, यह बात पक्की मानकर भर्त्सना-पूर्ण स्वर में कहने से "किम्" का प्रयोग किया गया है। यहाँ दोनों पक्ष सही दिखाये गये हैं। दुष्यन्त को याद नहीं है, इसलिये इनकार कर रहे हैं और अपर पक्ष तो सही है ही। महाभारत में दुष्यन्त जानते हुए भी इनकार करते हैं, उनका चरित्र हीन है। कालिदास ने नायक को श्रेष्ठ दिखाने के लिये शाप की कल्पना जोड़कर दुष्यन्त का चरित्र उठाया श्लोक का उत्तरार्ध राजा ने उत्तर के बाद आ रहा है।

हिन्दी अनुवाद—राजा–इस बुरे विचार का सवाल कहाँ उठता है?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **कुतः** कथम् (आपद्यते)। **अयम्** पूर्वोक्तः। **असती** मिथ्या **कल्पना** विचारः तथा प्रयुक्तः **प्रश्नः**।

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरव—ये विकृतियाँ प्रायः संपत्ति से मद-मत्त लोगों में फैलती हैं।

अन्वयः—प्रायेण अमी विकाराः ऐश्वर्यमत्तेषु मूर्च्छन्ति।

संस्कृत टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्)। **प्रायेण** प्रायः। **अमी** एते। (उपर्युक्ताः)। **विकाराः** दोषाः। **ऐश्वर्येण** प्रभुत्वेन **मत्तेषु** साहङ्कारेषु। **मूर्च्छन्ति** वर्धन्ते (प्रसरन्ति)।

हिन्दी व्याख्या—यहां क्रोध की अभिव्यक्ति है। शार्ङ्गरव को पता नहीं कि राजा शाप के प्रभाव से सब कुछ भूल गये हैं। न वे बिना प्रभावित हुये मान सकते हैं और न शार्ङ्गरव शकुन्तला की बात को असत्य मान सकता है। "Power corrupts and extreme power corrupts extremely" उक्ति इस पद्यार्थ से हूबहू मिलती है। "अमी" से श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रकट तीन बातों से तात्पर्य है। यह पद्य का उत्तरार्ध है। पूर्वार्ध राजा की उक्ति के पहले आ चुका है।

छन्द—१.२ द्रष्टव्य।

अलंकार—कारक दीपक, संशय, हेतु, अर्थान्तरन्यास, अनुप्रास। यहाँ "तोटक" नामक नाटक-अङ्ग है जिसमें क्रोध पूर्व वचन होते हैं :—संरम्भवचनप्राप्तं तोटकं त्विह संज्ञितम्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-मेरे ऊपर गुरुतर आरोप लगाया गया है।

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) **विशेषेण** अत्यर्थम्। **अधिक्षिप्तः** लाञ्छितः। **अस्मि**।

हिन्दी अनुवाद—पुत्री, घड़ी भर मत लजाओ। तुम्हारा घूँघट जरा हटाऊँगी। तब **तुम्हें**

राजा—(शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्) ।

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन् ।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥ १९ ॥

(तुम्हारे) पति पहचानेंगे । (यह कहकर कहे-अनुसार करती-घूँघट हटाती-है ।

संस्कृत-टीका—**गौतमी** (वदति यत्) । **जाते** (हे) पुत्रि । **मुहूर्तम्** क्षणम् (यावत्) । **मा न** । **लज्जस्व** त्रपस्व । **अपनेष्यामि** निवारयिष्यामि । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **ते** तव । **अवगुण्ठनम्** मुखावरणम् । **ततः** तत्पश्चात् । **त्वाम्** । **भर्ता** (तव) पतिः (दुष्यन्तः) **अभिज्ञास्यति** परिचेष्यति । **इति** एवम् (उक्तम्) । **उक्तम्** स्वकथितम् अनतिक्रम्य **करोति** विदधाति ।

हिन्दी व्याख्या—गौतमी को एक सम्भावना यह सूझी कि काफी दिन हो जाने से ब्याह की बात याद नहीं आ रही होगी, चेहरा देखने से याद आ जायेगी । कोई भूली-बिसरी चीज किसी वस्तु या दृश्य को देखकर याद आती है, यह हर व्यक्ति का रोज का अनुभव है । गौतमी बहुत बुद्धिमान् और व्यवहार-कुशल है । ऐसे मानसिक धक्के के अवसर पर भी वह अपना सन्तुलन नहीं खोती ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (शन्कुतला को देखकर आत्मगत)—

संस्कृत-टीका—**राजा** (नृपः दुष्यन्तः) । **शकुन्तलाम्** । **निर्वर्ण्य** दृष्ट्वा । **आत्मगतम्** (कथयति यत्) ।

हिन्दी-अनुवाद—यह सौन्दर्य जिसकी कान्ति निर्दोष है इस प्रकार (बिना यत्न के) हाथ लगा है । इसे पहले प्राप्त किया होगा या नहीं यह सोचता हुआ, प्रभात के समय अन्दर भरे बर्फ वाले कुन्द (पुष्प) का आनन्द जिस प्रकार न तो भौंरा ले पाता है और न उसे छोड़ पाता है, उसी तरह न तो मैं इसका आनन्द ले पाता हूँ और न इसे छोड़ पाता हूँ ।

अन्वयः—एवम् इदम् अक्लिष्टकान्ति रूपम् उपनतम् । (इदम्) प्रथमपरिगृहीतम् स्यात् (वा) न वा इति व्यवस्यन् (अहम्) विभाते अन्तस्तुषारम् कुन्दम् भ्रमरः इव न च खलु परिभोक्तुम् (शक्नोमि) न एव हातुम् शक्नोमि ।

संस्कृत-टीका—**एवम्** अनेन (प्रस्तुतेन) प्रकारेण । **इदम्** (शकुन्तलागतम्) । न **क्लिष्टा** दोषयुक्ता **कान्तिः** लावण्यम् यस्य तादृशम् । **रूपम्** सौन्दर्यम् । (इदम्) **प्रथमम्** प्रथमतः **परिगृहीतम्** प्राप्तम् । **स्यात्** भवेत् । **न वा** अथवा । **इति** एवम् । **व्यवस्यन्** विचारयन् । **विभाते** प्रातः । **अन्तः** अभ्यन्तरे **तुषारः** हिमम् यस्य तत् । **कुन्दम्** एतन्नामकम् पुष्पम् । **भ्रमरः** अलिः । **इव** । **न** । **च** । **खलु** निश्चयेन । **परिभोक्तुम्** अनुभवितुम् । **शक्नोमि** पारयामि । **न** । **एव** निश्चयेन । **हातुम्** त्यक्तुम् (शक्नोमि)

हिन्दी-व्याख्या—रूप अद्वितीय है पर राजा धर्म के बन्धन में हैं । कहीं पराई स्त्री हुई तो धर्म नष्ट हो जायेगा, यह सोचकर स्वीकार करनेका मन होनेपर भी वैसा करने में असमर्थ है । "अक्लिष्ट"

(इति विचारयन् स्थितः ।)

प्रतीहारी—अहो धम्मावेक्खिआ भट्टिणो । ईदिसं णाम सुहोवणदं रूपं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि । [अहो धर्मावेक्षिता भर्तुः । ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति ।]

शार्ङ्गरवः—भो राजन् किमिति जोषमास्यते ।

राजा—भोस्तपोधनाः ! चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि । तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये ।

से प्रथम यौवन ध्वनित होता है । बर्फ की ठण्डक से भौंरा कुन्द का रस नहीं ले पाता । यहाँ बर्फ धर्म है और कुन्द रूप । "भइ गति साँप छछूँदर केरी" का भाव अन्तिम चरण में व्यक्त है । बर्फ गलने पर भौंरा कुन्द का रसास्वादन कर सकता है; धर्म की बाधा शाप का प्रभाव नष्ट होनेपर हट जायेगी, यह संकेत मिलता है । जिस वाक्य का अन्त अनिश्चय में होता है, वहां "संशय" नामक अलंकार माना जाता है जो यहाँ है :-अनिश्चयान्तं यद्वाक्यं संशयः स निगद्यते ।

छन्द—१।१० द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—ससंदेह, उपमा और अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—इस प्रकार (राजा) सोचते रहते हैं ।

संस्कृत-टीका—इति एवम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) (राजा) **विचारयन्** । स्थितः ।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका- धन्य है स्वामी की धर्म-दृष्टि । आसानी से हाथ लगा ऐसा सौन्दर्य देखकर दूसरा कौन (व्यक्ति) सोच-विचार करेगा ?

संस्कृत-टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका (वदति यत्) । **अहो** साधु । **धर्मस्य अवेक्षिता** दृष्टिः । **भर्तुः** स्वामिनः (नृपस्य) । **ईदृशम्** एतादृशम् (शकुन्तलागतम्) । **नाम** (सम्भावनायाम्) । **सुखेन** प्रयत्नेन विना (एव) **उपनतम्** हस्तगतम् । **रूपम्** सौन्दर्यम् । **दृष्ट्वा** अवलोक्य । **कः** । **अन्यः** अपरः (दुष्यन्तेतरः) **विचारयति** (धर्मस्य विचारम् कुर्यात्) ।

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरव-हे महाराज, किसलिये चुप बैठे हैं ।

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्) । **भोः** हे **राजन्** महाराज । **किम् इति** केन कारणेन । **जोषम्** तूष्णीम् । **आस्यते** स्थीयते ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—हे तपस्या के धनियों, विचार कर भी निश्चय ही मुझे इन महिला को अङ्गीकार करने की याद नहीं है । फिर प्रगट गर्भ के चिन्हों वाली इनके विषय में "स्वयम् क्षेत्री हो जाऊँगा" सोचकर कैसे इन्हें स्वीकार करूँगा ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **भोः** हे । **तपः** तपस्या **धनम्** सम्पत्तिः येषाम् तादृशाः **तपोधनाः** तत्संबुद्धौ । **चिन्तयन्** विचारयन् । अपि । **न खलु** निश्चयेन । **स्वीकरणम्** अङ्गीकारम् । **अत्रभवत्याः** माननीयायाः (शकुन्तलायाः) । **स्मरामि** स्मर्तुम् प्रभवामि । **तत्** तर्हि । **कथम्** केन प्रकारेण । **इमाम्** । **अभितः** पूर्णतः **व्यक्तानि** प्रकटितानि **सत्त्वस्य** गर्भस्य **लक्षणानि**

शकुन्तला—(अपवार्य) अज्जस्स परिणए एव्व संदेहो। कुदो दाणिं मे दूराहिरोहिणी आसा। [आर्यस्य परिणय एव संदेहः। कुत इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा।]

शार्ङ्गरवः—मा तावत्।

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥२०॥

चिह्नानि यस्याः तादृशीम् (शकुन्तलाम्)। **प्रति** विषये। आत्मानम् **स्वम्**। **क्षेत्रियम्** पतिम् न तु पुत्रजनकम्। **आशङ्कमानः** विचारयन्। **प्रतिपत्स्ये** स्वीकरिष्ये।

हिन्दी-व्याख्या—"क्षेत्र" शरीर, खेत, तीर्थ व स्त्री का पर्यायवाची है। "क्षेत्रं शरीरे केदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः"—मेदिनीकोष। "क्षेत्रं पत्नीशरीरयोः"—अमरकोष। क्षेत्र (स्त्री) वाला (ही) पति क्षेत्री कहलाता है। यह पारिभाषिक शब्द है और इसका अर्थ वह पति है जो नामका पति है; उसकी पत्नी की सन्तान दूसरे की है। यों वह कानूनन पति है। गर्भ के लक्षण कपोलों का पीला होना और स्तनों के अग्रभाग का नीला होना आदि हैं जैसा अभिराम ने लिखा है। "कपोलपाण्डिमस्तनचूचुकनीलिमादि"। यहाँ "गर्भवती" होना सुनकर व गालों का पीलापन देखकर राजा ने गर्भवती होना समझ लिया।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (अपवारण कर)-स्वामी को व्याह में ही शंका है। अब कहाँ मेरी दूर तक चढ़ गई आशा।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला**। **अपवार्य** (वदति यत्)। **आर्यस्य** स्वामिनः। **परिणये** विवाहे (विषये)। **एव**। **संदेहः** शङ्का (अविश्वासः)। **कुतः** क्व। **इदानीम्** अधुना। **दूरम्** विप्रकृष्टम् यथा स्यात् तथा **अधिरोहिणी** व्यापिनी। **आशा** कामना।

हिन्दी-व्याख्या—"दूर" से आशय है वे कल्पनायें, महत्त्वाकांक्षायें जो व्याह के बाद साकार करने की आशा है। पटरानी बनना, चक्रवर्ती पुत्र की माँ बनना आदि का समावेश इसमें हो सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—(देखिये ऐसा) न (करें कि)

संस्कृत-टीका—**शार्ङ्गरवः** (वदति यत्)। **मा** न। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)।

हिन्दी-व्याख्या—यह खण्ड आगे के श्लोक से संबद्ध है।

हिन्दी अनुवाद—जिन्होंने बेटी का, जिसका आपने (चोरी-चोरी) स्पर्श किया है, अनुमोदन (उसे माफ) कर दिया है, तथा जिन्होंने तुम्हारे द्वारा चुराया गया अपना धन (शकुन्तला) उचित दान मानते हुये डाकू के समान (होने पर भी) तुम्हें अपात्र होने पर भी पात्र बना दिया है (देखिये ऐसा न करें कि) वे अपमानित हों।

अन्वयः—(मा तावत्) त्वया नाम कृताभिमर्शाम् सुताम् अनुमन्यमानः मुनिः विमान्यः। दस्युः इव (त्वम्) स्वम् मुष्टम् अर्थम् प्रतिग्राहयता येन पात्रीकृतः असि।

शारद्वतः—शार्ङ्गरव ! विरम त्वमिदानीम् । शकुन्तले वक्तव्यमुक्तमस्माभिः । सोऽयमत्रभवानेवमाह । दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम् ।

संस्कृत-टीका—(मा तावत्) **त्वया** । **नाम** (क्रोधे) । **कृतः** विहितः **अभिमर्शः** बलाद्धर्षणम् यस्याम् तादृशीम् **सुताम्** पुत्रीम् । **अनुमन्यमानः** अनुमोदमानः । **मुनिः** ऋषिः (कण्वः)। **विमान्यः** अपमाननीयः । **दस्युः** चौरः । **इव** (त्वम्) । **स्वम्** स्वस्य । **मुष्टम्** चोरितम् । **अर्थम्** धनम् (शकुन्तलारूपम्) **प्रतिग्राहयता** दानरूपेण मन्यमानेन । **येन** (कण्वेन) । **अपात्रम्** अयोग्यः **पात्रम्** योग्यः कृतः विहितः । **असि** ।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ शार्ङ्गरव का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया है। वह खरी-खरी सुना देता है। धर्म का बल ऐसा है जो राजा से भी नहीं डरता। कन्या पर पिता का अधिकार होता है जब तक वह बालिग नहीं होती, यह आज भी कानूनन माना जाता है। बिना उसके पिता की आज्ञा लिये उसे अपनाना अपराध है। दुष्यन्त ने सामाजिक व्यवस्था के अनुसार चोरी की है। ऋषि ने इसे माफ कर दिया है। यदि वे पुत्री के कार्य का अनुमोदन न करते तो दुष्यन्त को उनकी कोपाग्नि में जलना पड़ता। इतनी कृपा करने वाले को उपेक्षणीय समझकर अब अपने अपराध से इनकार कर उनकी कन्या को कहीं का न रखना, ऐसा अपमान है जिसे वे न सह सकेंगे। यहाँ उसके फल से सावधान करते हुये चेतावनी दी गई है। चोरी भले सह लें, सीनाजोरी नहीं सह सकते। दुष्यन्त को उनकी डाकू की स्थिति साफ-साफ बताते हुये ऋषि की असीम अनुकम्पा भी बताई गई है कि उन्होंने अपना ही चुराया धन (शकुन्तला) दान मान लिया और डाकू होने पर भी तुम्हें पात्र (दामाद) बना लिया। बेटी का स्पर्श कर फिर कण्व का अपमान भी कर रहे हो जो अपराध की अति है, यह भाव है। कण्व ने उस व्यक्ति की तरह महान् अनुग्रह किया है जो चोर को दण्ड देने की जगह उसे जरूरतमंद समझकर चुराया धन सौंप दे।

छन्द—२।७ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—सूक्ष्म, विषम और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति)।

हिन्दी-अनुवाद—शारद्वत--शार्ङ्गरवः, तुम अब रुक (शान्त हो) जाओ। (हे) शकुन्तला, जो कहना था हम कह चुके। (जिसने तुमसे व्याह किया था) ये महोदय इस प्रकार कहते हैं। इन्हें विश्वास कराने वाला उत्तर दो (उत्तर में याद दिलाओ जिससे भूल मालूम हो और विश्वास हो जाय)।

संस्कृत टीका—**शारद्वतः** (अपरः कण्वशिष्यः) (कथयति यत्) (हे) **शार्ङ्गरव** (संबुद्धौ) **विरम** शान्तो भव। **त्वम्**। **इदानीम्** अधुना (हे) **शकुन्तले** (संबुद्धौ) **वक्तव्यम्**। कथनीयम्। **उक्तम्** कथितम्। **अस्माभिः** अस्मत्पक्षेण। **सः अयम्** (सः एव येन त्वम् परिणीता)। **अत्रभवान्** श्रीमान्। **एवम्** इत्थम् (पूर्वोक्तम्) **आह** वदति। **दीयताम्**। **अस्मै**। प्रत्ययजनकम् विश्वासोत्पादकम्। **प्रतिवचनम्** उत्तरम्।

हिन्दी-व्याख्या—शारद्वत गंभीर है; शीघ्र कुपित होने वाला नहीं। कोप से काम न होता

शकुन्तला—(अपवार्य) इमं अवत्थंतरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण । अत्ता दाणिं मे सोअणीओ त्ति ववसिदं एदं । (प्रकाशम्) अज्जउत्त (इत्यर्धोक्ते) संसइदे दाणिं परिणए ण एसो समुदाहारो । पोरव ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्समपदे सहावुत्ताण हिअअं इमं जणं समअपुव्वं प्पतारिअ ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं । [इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन । आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत् । आर्यपुत्र—संशयित इदानीं परिणये नैष समुदाचारः । पौरव न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम् ।]

देखकर वह साथी को शान्त करता है और अन्तिम उपाय करता है कि शकुन्तला दुष्यन्त के साथ बिताये हुये क्षणों की याद दिलाकर अविश्वास का परदा हटा दे ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (अपवारित कर)—वैसे प्रेम के इस दूसरी (बदली) दशा में पहुँच जाने पर याद दिलाने से क्या लाभ ? यह निश्चित है कि मेरी स्थिति अब शोचनीय है । (प्रकाश-रूप से) आर्यपुत्र, (इस प्रकार आधा ही कहकर) अब संशयावस्था होने पर (ब्याह के ही संदेहास्पद माने जाने पर) यह समीचीन शिष्टाचार ("आर्यपुत्र" संबोधन) न होगा । पुरु-वंशी, पहले उस प्रकार तपोवन में स्वाभाविक रूप से खुले (निष्कपट) हृदय वाले इस जन (मुझे) को शर्त (गांधर्व-विवाह) करने के बाद धोखा देकर इन शब्दों में इनकार करना आपके लिये उचित नहीं है ।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** । अपवार्य (वदति यत्) । **इदम्** प्रस्तुतम् । अन्यथा **अवस्था** दशा **अवस्थान्तरम्** तत् । **गते** प्राप्ते । **तादृशे** तत्प्रकारके (महति) । **अनुरागे** प्रेम्णि । **किम्** कः लाभः । **वा** (वाक्यालङ्कारे) । **स्मारितेन** । **आत्मा** स्वरूपम् । **इदानीम्** अधुना । **मे** मम । **शोचनीयः** (सचेतोभिः) चिन्तनीयः । **इति** एतत् पूर्वोक्तम् । **व्यवस्थितम्** निश्चितम् । **आर्यपुत्र** स्वामिन् । **इति** एवम् । **अर्धम्** अपूर्णम् यथा स्यात् तथा **उक्ते** कथिते (सति) (पुनः शकुन्तला वदति) । **संशयिते** संशयावस्थायाम् आपन्नायाम् सत्याम् । **इदानीम्** अधुना । **न** । **एषः** उपर्युक्तः । **समुदाचारः** (आर्यपुत्रसंबोधनादिः) शिष्टाचारः । **पौरव** हे पुरुवंशोत्पन्न (दुष्यन्त) । **न** । **युक्तम्** उचितम् । **नाम** (कुत्सायाम्) । **ते** तव (कृते) । **तथा** तेन (अनुभूतेन) प्रकारेण । **पुरा** पूर्वम् । **आश्रमपदे** तपोवने । **स्वभावेन** निसर्गतः **उत्तानम्** अनावृतम् (अथ कपटरहितम्) **हृदयम्** अन्तरम् यस्य तादृशम् **इमम्** एतम् । जनम् व्यक्तिम् (शकुन्तलालक्षणम्) **समयपूर्वम्** अस्वीकर्तुम् । **प्रतार्य** वञ्चयित्वा । **ईदृशैः** एतत्प्रकारकैः (कटुभिः) । **अक्षरैः** पदैः । **प्रत्याख्यातुम्** शपथपूर्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला की वाणी बहुत करुणा-जनक और संयत है । पुरु-वंश में बहुत धर्मात्मा राजा हो चुके हैं, अतः संबोधन-द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि ऐसे धार्मिक कुल में उत्पन्न होने वाले को छल करना शोभा नहीं देता । हृदय की उत्तानता (निष्कपटता), मुग्धावस्था की सूचना देती है । "समय" प्रतिज्ञा, शपथ, शर्त और काल के अर्थ में आता है । याज्ञवल्क्य-स्मृति (१।६१) के अनुसार गान्धर्व विवाह आपसी समय (इकरार रजामन्दी) से होता है (गान्धर्वः

राजा—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् ।

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ॥ २१ ॥

शकुन्तला—होदु जइ परमत्थदो परपरिग्गहसंकिणा तुए एव्वं वत्तुं पउत्तं ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसंकं अवणइस्सं । [भवतु यदि परमार्थतः परपरिग्रहशङ्किना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तवाशङ्कामपनेष्यामि ।]

समयान्मिथः) इस तरह समय से "गान्धर्व विवाह" अर्थ भी लिया जा सकता है । "३–४ दिन में कोई आदमी भेजकर तुम्हें राजधानी बुलवा लूँगा" यह समय (काल, शपथ) या आश्वासन भी हो सकता है । आगे अङ्क ६।१२ में इसकी चर्चा है । "समयपूर्वम्" का अर्थ जानबूझ (ज्ञान) कर भी हो सकता है ।

"समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः" । (अमरकोष)

हिन्दी अनुवाद—राजा (कान बन्द कर)—पाप अंत हो (शिव शिव) ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **कर्णौ** श्रवणे । **पिधाय** आवृत्य (कराभ्याम्), **शान्तम्** नष्टम् (भवतु) । **पापम्** दुरितम् ।

हिन्दी-व्याख्या—कान बन्द करने के अभिनय और "शान्तम्पापम्" कहने का आशय है कि ऐसा अनुचित आरोप न लगायें ।

हिन्दी-अनुवाद—जिस प्रकार किनारों से टकराने वाली नदी स्वच्छ जल तथा किनारों के वृक्षों को गिरा देती है, उस प्रकार तुम क्यों (अपने या मेरे) वंश को कलुषित करने और इस जन (मुझ) को गिराने की अभिलाषा लिये हो ।

अन्वयः—प्रसन्नम् अम्भः आविलयितुम् तटतरुम् (पातयितुम्) कूलङ्कषा सिन्धुः इव व्यपदेशम् आविलयितुम् इमम् जनम् च पातयितुम् (त्वम्) किम् ईहसे ।

संस्कृत-टीका--**प्रसन्नम्** स्वच्छम् । **अम्भः** जलम् (आविलयितुम्) । **तटे** तीरे (उद्भूतः) **तरुः** वृक्षः तम् (पातयितुम्) **कूलङ्कषा** तटसंघर्षिणी । **सिन्धुः** नदी । **इव** । **व्यपदेशम्** कुलम् । **आविलयितुम्** मलिनयितुम् । **इमम्** एतम् । जनम् व्यक्तिम् (माम् दुष्यन्तलक्षणम्) । **च** । **पातयितुम्** पतितम् कर्तुम् (त्वम्) । **किम्** केन कारणेन । **ईहसे** इच्छसि (चेष्टसे) ।

छन्द—द्रष्टव्य १।२

अलङ्कार—उपमा, अतिशयोक्ति तथा समुच्चय ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला (इसे) जाने दें । अगर वास्तव में पराई-नारी होने की आशंका लिये हुए इस प्रकार कहने को प्रवृत्त हुए हैं तो इस पहचान से आपका सन्देह दूर करूँगी ।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** (वदति यत्) । **भवतु** अस्तु (पूर्वाक्षेपे) । **यदि** चेत् । **परमार्थतः** वस्तुतः । **परस्य** अन्यस्य । **परिग्रहः** पत्नी (इयम्) इति **शङ्किना** इति सन्देहयुक्तेन । **त्वया** । **एवम्** इत्थम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) **वक्तुम्** कथयितुम् । **प्रवृत्तम्** आरब्धम् । **तत्** ताह ।

राजा—उदारः कल्पः ।

शकुन्तला—(मुद्रास्थानं परामृश्य) हद्धी अंगुलीअअसुण्णा मे अंगुली । [हा धिक् अङ्गुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः ।] (इति सविषादं गौतमीमवेक्षते ।)

गौतमी—णूण दे सक्कावदारब्भंतरे सचीतित्थसलिलं वंदमाणाए पब्भट्ठं अंगुलीअअं । [नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम् ।]

राजा—(सस्मितम्) इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते ।

अभिज्ञानेन परिचयचिह्नेन । अनेन पुरस्करिष्यमाणेन । तव । आशंकाम् सन्देहम् । अपनेष्यामि दूरीकरिष्यामि ।

हिन्दी-व्याख्या—"परमार्थतः" से यह स्पष्ट है कि शकुन्तला को विश्वास नहीं है कि दुष्यन्त गान्धर्व विवाह-जैसी बात भी भूल रहे हैं। अपनी बात की पुष्टि के लिये और अपनी सिधाई से विस्मरण की बात भी मानकर वह प्रमाण देने को प्रवृत्त होती है।

हिन्दी-अनुवाद—प्रस्ताव श्रेष्ठ है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) उदारः श्रेष्ठः । कल्पः प्रस्तावः ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (अँगूठी का स्थान छूकर) हाय। मेरी उँगली अँगूठी के बिना है। (यह कहकर दुख के साथ गौतमी को देखती है।)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । मुद्रायाः अङ्गुलीयकस्य स्थानम् पदम् । परामृश्य स्पृष्ट्वा (वदति यत्) हा हन्त दैवम् धिक् । अङ्गुलीयकेन मुद्रिकया शून्या रहिता । मे मम । अङ्गुलिः । इति एवम् उक्त्वा । विषादेन दुखेन सह यथा स्यात् तथा । गौतमीम् अवेक्षते पश्यति ।

हिन्दी-व्याख्या—दुख के साथ गौतमी को देखना अपना आश्चर्य प्रकट करने और इस परामर्श के लिये है कि अब क्या करूँ; अनर्थ हो गया है।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—निश्चय ही शक्रतीर्थ के अन्दर शचीतीर्थ के जल को वंदना करती हुई तुम्हारी अंगूठी गिर गई थी।

संस्कृत-टीका—गौतमी (वदति यत्) । नूनम् निश्चयेन । ते तव । शक्रावतारस्य शक्रतीर्थस्य अभ्यन्तरे अन्तः शचीतीर्थस्य सलिलम् जलम् । वन्दमानायाः नमन्त्याः । प्रभ्रष्टम् च्युतम् । अङ्गुलीयकम् मुद्रिका ।

हिन्दी-व्याख्या—उक्त कारण के अलावा अन्य कारण नहीं हो सकता। अंगूठी कसी पहनी जाती है; कसी न होने पर माटी वाली उँगली में डाली जाती है या नहीं पहनी जाती। पानी से फिसलन पैदा होने से उसके गिरने की संभावना होती है; फिर भी यह बात वैसे संकट के समय सूझ जाना गौतमी की हाजिर जवाबी और बुद्धि प्रखरता को बताता है। जिसके लिये राजा का व्यंग्य भी उसे आगे सुनना पड़ता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (मुस्कान के साथ) स्त्रियाँ हाजिरजवाब होती हैं यह जो कहा जाता है, यह वह है।

शकुन्तला—एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहिस्सं। [अत्रतावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।]

राजा—श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्।

शकुन्तला—णं एक्कस्सिं दिअहे णोमालिआमंडवे णलिणीपत्तभाअणगअं उअअं तुह हत्थे संणिहिदं आसि [नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत्।]

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। स्मितेन विहासेन सह तत् यथा स्यात् तथा। इदम् एतत् (पूर्वोक्तम्)। तत्। प्रत्युत्पन्ना तात्कालिक्या प्रतिभया युक्ता मतिः बुद्धिः यस्य तादृशम्। स्त्रैणम् स्त्रीणाम् समूहः। इति एवम्। यत्। उच्यते (लोके) कथ्यते।

हिन्दी-व्याख्या—स्त्रियों के शरीर की बनावट पुरुषों की अपेक्षा अच्छी होती है जिससे वे अधिक सहनशील, कर्मठ आदि होती हैं, यह आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं का कहना है। यह गुण बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषी अनुभव करते आ रहे हैं। तात्कालिक प्रतिभा (उद्भावना, सूझ) प्रत्युत्पन्नमति कहलाती है :—

'तात्कालिकी तु प्रतिभा प्रत्युत्पन्नमतिः स्मृता।' (सुधाकर)

यहाँ अविश्वास के वातावरण में हर वस्तु उसी के रंग में रंगी दिख रही है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—इस विषय में तो विधाता ने अपनी प्रभुता दिखा दी, अच्छा; दूसरी बात (प्रमाण) आपसे कहूँगी।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (वदति यत्)। अत्र अस्मिन् (अङ्गुलीयविषये) तावत् तु। विधिना विधात्रा। दर्शितम् अनुभावितम्। प्रभुत्वम् शक्तिः।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—अब जो सुनना था वह हो गया।

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। श्रोतव्यम् श्रवणयोग्यम्। वचनम्। इदानीम् अधुना। संवृत्तम् समाप्तम्।

हिन्दी-व्याख्या—याद न होने से पहले ही अविश्वास था, पहचान न प्रस्तुत कर पा सकने से झूठ की पुष्टि हो गई मानकर राजा उपेक्षा दिखाते हैं। शकुन्तला के आगामी उत्तर से प्रतीत होता है कि वह अपनी परेशानी में इस उपेक्षापूर्ण उत्तर की कटुता पर ध्यान न देकर प्रमाण प्रस्तुत करने में ही लगी रहती है। राघव भट्ट ने अपनी टीका में इसे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है कि आप हजार कल्पनायें रचकर झूठे वचन सुनायेंगी। यदि मैं नहीं सुनता तो अश्रवण का अपराध अशिष्टता होती, अतः प्रयोजन न होने पर भी श्रवण तो करना ही है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला-याद है, एक दिन नवमालिका (लता) के मण्डप (चबूतरे) में कमलिनी के पत्ते के बरतन में रखा पानी आपके हाथ में विद्यमान था।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (वदति यत्)। ननु स्मरसि। एकस्मिन् कस्मिंश्चित्। दिवसे दिने। नवमालिकायाः तन्नाम्न्याः लतायाः मण्डपे। नलिन्याः कमलिन्याः पत्रस्य दलस्य भाजने पात्रे गतम् प्राप्तम् उदकम् जलम्। तव। हस्ते करे। संनिहितम् उपस्थितम्। आसीत्।

राजा—शृणुमस्तावत् ।

शकुन्तला—तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापंगो णाम मिअपोदओ उवट्ठिओ। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुअंपिणा उवच्छंदिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिदे सलिले णेण किदो पणओ। तदा तुमं पहसिदो सि एत्थं सव्वो सगंधेसु विस्ससिदि। दुवेवि एत्थ आरण्णआ त्ति। [तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याशमुपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकौ इति।]

हिन्दी-अनुवाद—राजा—अच्छा सुन रहा हूँ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। शृणुमः आकर्णयामः। तावत् (वाक्यालङ्कारे)।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "तावत्" का प्रयोग अथवा कहने के ढंग से व्यंग्य समझा जा सकता है कि सुना लो जो सुनाना हो; विश्वास तो करा नहीं सकती हो।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—उसी क्षण वह दीर्घापाङ्ग-नामक मृग-शावक जो मेरा गोद लिया पुत्र है आ पहुँचा था। "यह पहले पिये" इस प्रकार अनुकम्पा युक्त होकर आपने उससे जल पीने का अनुरोध किया था, लेकिन आपसे परचा न होने से वह हाथ के पास नहीं गया था। बाद में उसी जल के मेरे लेने पर इसने (पीने की) प्रीति दिखाई थी। तब आपने इस प्रकार कहकर अट्टहास किया था :—"सभी लोग आत्मीयों के प्रति विश्वास करते हैं; यहाँ दोनों ही जंगली हैं।"

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (वदति यत्)। तस्मिन् तत्र (एव) क्षणे समये। सः अनुभूतः। मे मम। पुत्रकृतकः कृत्रिमः पुत्रः। दीर्घापाङ्गः। नाम (वाक्यालङ्कारे)। मृगस्य हरिणस्य पोतकः शावकः। उपस्थितः संनिहितः। त्वया भवता। अयम् एषः (मृगः)। तावत् (वाक्यालङ्कारे)। प्रथमम्। पिबतु इति। अनुकम्पितः अनुगृहीतः। उपच्छन्दितः अभ्यर्थितः। उदकेन जलेन। न। पुनः तु। अपरिचयात् हस्तस्य करस्य। अभ्याशम् सामीप्यम्। उपगतः आगतः। पश्चात् तदुपरि। तस्मिन्। एव। मया। गृहीते धृते। सलिले जले। अनेन तेन (मृगेण। कृतः विहितः। प्रणयः (ग्रहणरूपा) प्रीतिः। तदा तस्मिन् अवसरे। त्वम् भवान्। इत्थम् अनेन ('वक्ष्यमाणेन) प्रकारेण। प्रहसितः प्रकृष्टहासयुक्तः। असि आसीः। सर्वः सकलः। सगन्धेषु स्वयूथ्येषु। विश्वसिति। द्वौ उभौ। अपि। अत्र अस्मिन् (स्थाने)। आरण्यकौ वन्यौ। इति।

हिन्दी-व्याख्या—बहुत ही भोलेपन से कही गई बात है। पशु-पक्षी भी अपनों को पहचानते हैं। कुत्ते, तोते आदि पालने वाले जानते हैं कि ठीक ऐसा ही होता है कि पशु-पक्षी पालने वाले का दिया खा-पी लेते हैं; दूसरे का दिया नहीं। छोटे बच्चों, गाय, भैंस में यह बात अधिक पाई जाती है। पैदा होने के समय से ही साथ रहने और स्नेहपूर्ण व्यवहार करने से मृग इतना ढीठ हो गया था।

राजा—एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः ।

गौतमी—महाभाअ ण अरुहसि एव्वं मंतिदुं । तवोवणसंवड्ढिदो अणभिण्णो अअं जणो कइदवस्स । [महाभाग नार्हस्येवं मन्त्रयितुम् । तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य ।]

राजा—तापसवृद्धे ।

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ २२ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—अपना काम साधने वाली स्त्रियों के ऐसे ही झूठ-भरे वचनमधु से लम्पट पुरुष खिंचते हैं ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) **एवम्** एतादृशानि वचनानि **आदौ** आरम्भे येषाम् तादृशैः । **आत्मनः** स्वस्य **कार्यम्** मनोरथः **तन्निर्वर्तिनीनाम्** तत्संपादिकानाम् (स्त्रीणाम्) **अनृतमयानि** मिथ्या च तानि **वाङ्मधूनि** **वाग्भिः** वचनरूपैः **मधुभिः** मधुरसैः । **आकृष्यन्ते** आवर्ज्यन्ते । **विषयिणः** कामुकाः (पुरुषाः) ।

हिन्दी-व्याख्या—आशय यह है कि लम्पट लोग भले ऐसे झूठे वचनों से आकृष्ट हों जायँ; मैं नहीं हो सकता क्योंकि धर्म-भीरु हूँ । वचन को मधु कहा है जिससे स्त्रियाँ लता और कामुक पुरुष भ्रमर हुये ।

अलङ्कार—रूपक (एकदेशविवर्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—गौतमी—श्रीमन्, ऐसा न कहें । यह जन (शकुन्तला) आश्रम में पाली पोसी गई (अतः) कपट से अपरिचित है ।

संस्कृत-टीका—**गौतमी** (वदति यत्) । (हे) **महाभाग** महोदय । **न** । **अर्हसि** । **एवम्** इत्थम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) । **मन्त्रयितुम्** वक्तुम् । **तपोवने** आश्रमे **संवर्धितः** पालितः । **अनभिज्ञः** अपरिचितः । **अयम्** एषः **जनः** व्यक्तिः (शकुन्तलालक्षणः) । **कैतवस्य** छलस्य ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(हे) तपस्विनी वृद्धा ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । (हे) **तापसी** तपस्विनी च सा **वृद्धा** जरती च तत्संबुद्धौ ।

हिन्दी-अनुवाद—स्त्रियों में जो बिना सीखे चतुरता होती है, वह मनुष्य-अतिरिक्त स्त्रियों में (भी) देखी जाती है । जो ज्ञानवान् (मनुष्य योनि की) स्त्रियाँ हैं, उनका तो कहना ही क्या; उदाहरणार्थ:— कोयलें आकाश में जाने (जन्म देने के बाद उड़ने) से पहले अपनी संतानों के समूह का अन्य पक्षियों से पालन-पोषण करवाती हैं ।

शकुन्तला—(सरोषम्) अणज्ज अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि । को दाणिं अण्णो धम्मकंचुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुकिदिं पडिवदिस्सदि । [अनार्य ! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते ।]

अन्वय—स्त्रीणाम् अशिक्षितपटुत्वम् अमानुषीषु (अपि) संदृश्यते । किम् उत या प्रतिबोधवत्यः । परभृताः खलु अन्तरिक्षगमनात् प्राक् स्वम् अपत्यजातम् अन्यैः द्विजैः पोषयन्ति ।

संस्कृत-टीका—**स्त्रीणाम्** नारीणाम् । **अशिक्षितम्** अनुपदिष्टम् (एव) च तत् **पटुत्वम्** चातुरी च । **अमानुषीषु** मनुष्यव्यतिरिक्तासु नारीषु (अपि) **संदृश्यते** सम्यक् दृश्यते । **किम् उत** किमु वक्तव्याः । **याः** । **प्रतिबोधवत्यः** सज्ञानाः मानुष्यः । **परभृताः** कोकिलाः । **खलु** हि **अन्तरिक्षे** नभसि **गमनात्** उड्डयनात् । **प्राक्** पूर्वम् । **स्वम्** निजम् (निजस्य) । **अपत्यानाम्** अर्भकाणाम् **जातम्** समूहम् । **अन्यैः** अपरैः **द्विजैः** पक्षिभिः । **पोषयन्ति** पालयन्ति ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ कवि ने वक्रोक्ति की कुशलता से "अमानुषी", "अन्तरिक्षगमन" और "द्विज" शब्दों से क्रमशः (मेनका) अप्सरा, स्वर्ग-वापसी, ब्राह्मण (कण्व) का संकेत देकर पूरी कथा याद करा दी है । प्रसिद्ध है कि कोयलें अपने शावक कव्वे के घोसले में डालकर चल देती हैं । कव्वी उन्हें अपने बच्चे समझकर पालती-पोसती है बाद में वे उड़कर अलग हो जाते हैं । यह भी प्रसिद्ध है कि कव्वी एक बार ही जन्म देती है । एक बार ही जन्म देने वाली मातायें काकवन्ध्या कहलाती हैं । और संतान की लालसा से कोयल की संतान को अपनी संतान मान लेने का भ्रम होता है । "परभृत" का अर्थ ही दूसरे के द्वारा पुष्ट है "परपुष्ट" आदि शब्द भी इसी अर्थ में आते हैं । "किमुत" के साथ प्रथमा विभक्ति का प्रयोग है; अमानुषीषु के जोड़ के लिये सप्तमी भी हो सकती है । "जात" समूह का अर्थ देता है । आशय है कि स्त्रियां बहुत चालाक होती हैं; उन्हें सिखाना नहीं पड़ता और वे ठगने में चतुर होती हैं । "खलु" "क्योंकि" या "उदाहरणार्थ" अर्थ देता है, रसार्णवसुधाकर के अनुसार कोई हेतु देकर जब विषय-वस्तु का निश्चय कराया जाता है तब "हेत्ववधारण" नामक सन्ध्यन्तर-अङ्ग होता है :—निश्चयो हेतुनार्थस्य मतं हेत्ववधारणम् ।

यहां कोयल का दृष्टान्त हेतु और झूठ बोलकर ठगना विषय वस्तु है जिसका निश्चय कराया गया है ।

छन्द—द्रष्टव्य १।८ ।

अलङ्कार—अप्रस्तुत प्रशंसा, व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—(क्रोध में)—पतित, अपने हृदय के अनुमान से देखते हो । (तुमसे) भिन्न दूसरा इस समय कौन है जो तिनके से ढके कुयें की भाँति धर्म के कुर्ता में घुसे (ओढे) हुये तुम्हारा अनुकरण स्वीकार करेगा ?

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** । **रोषेण** कोपेन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा (वदति यत्) ।

राजा—(आत्मगतम्) संदिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया—

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहःप्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ॥ २३ ॥

अनार्य (रे) पतित ! **आत्मनः** स्वस्य । **हृदयस्य** अन्तःकरणस्य **अनुमानेन** आधारेण (प्रमाणेन)। **पश्यसि** जानासि (सर्वान्) । **कः** (जनः) । **इदानीम्** अस्मिन् काले । **अन्यः** त्वद्भिन्नः । **धर्मम्** (एव) **कञ्चुकम्** **तत्प्रवेशिनः** तद्धारकस्य **तृणैः** घासैः **छन्नः** आवृतः च सः **कूपः** च **तदुपमस्य** तत्तुल्यस्य । **तव** (दुष्यन्तस्य), **अनुकृतिम्** अनुकरणम् । **प्रतिपत्स्यते** अङ्गीकरिष्यते ।

हिन्दी-व्याख्या – शकुन्तला ने आश्रम की निर्भीकता थोड़ी यहां दिखाई है। महाभारत की शकुन्तला की तेजस्विता यहाँ नहीं है जिससे लगता है कि कालिदास के समय में नारी दबा दी गई थी। यह भी संभव है कि नाटक की नायिका और नायक की मर्यादा रक्षा के लिये कवि ने जान-बूझकर अधिक स्वाभिमान प्रदर्शित नहीं कराया। "हृदयानुमान" से तात्पर्य है कि जैसा झूठा और ठग तुम्हारा दिल है, उसी मान-दण्ड से तुम हर दिल को झूठा और ठग समझते हो। मनोविज्ञान में यह प्राजेक्शन (Projection) कहलाता है। प्राचीन राजा धर्म-रक्षक माना जाता था जिससे उसे धर्म आवरण में स्थित बताया गया है; आजकल धार्मिक नेता ही ऐसे माने जाते हैं। शकुन्तला के कहने से स्पष्ट है कि वह ऐसे वातावरण में पली थी जहाँ चोरी और सीनाजोरी की नीचता की कल्पना तक नहीं की जा सकती। "अनार्य" संबोधन उस क्रोध के कारण किया गया है जो दुष्यन्त ने अब मिथ्या, नारी जाति आरोप व अनजान में मेनका को कोयल कहा है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (आत्मगत)—मेरी बुद्धि को संदेह-प्रवण बनाता हुआ इसका क्रोध छल-रहित सा प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ इसने—

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) **आत्मगतम्** (वदति यत्)। **सन्दिग्धा** सन्देहयुक्ता **बुद्धिः** मतिः यस्य तादृशम् । **माम्** । **कुर्वन्** विदधत् । **अविद्यमानम् कैतवम्** यत्र तादृशः (कोपः)। **इव** । **अस्याः** (शकुन्तलायाः) । **कोपः** क्रोधः । **लक्ष्यते** दृश्यते । **तथा हि** यथा । **अनया** (शकुन्तलया)।

हिन्दी व्याख्या—"सच्चाई छिप नहीं सकती" यह लोकोक्ति यहाँ चरितार्थ है। शकुन्तला के कोप की तेजी और स्वाभाविकता ने दुष्यन्त की बुद्धि डाँवाडोल (संदिग्ध) कर दी है और उन्हें क्रोध सत्य पर आधृत प्रतीत होने लगा है। वे सोचने लगे हैं कि मेरी बुद्धि ही तो मुझे धोखा नहीं दे रही है। "तथा ह्यनया" का सम्बन्ध आगे के श्लोक से है।

हिन्दी-अनुवाद—जिसके मन का व्यापार भूल से कठोर हो गया है, उस मेरे एकान्त में घटित हुए प्रेम को अस्वीकार करने पर अत्यंत क्रोध से चटक लाल नेत्रों वाली (शकुन्तला) ने टेढ़ी भौंहों के भङ्ग (भ्रू-भङ्ग या भ्रुकुटि) से मानों कामदेव का धनुष तोड़ डाला।

राजा—(प्रकाशम्) भद्रे ! प्रथितं दुष्यन्तस्य चरितम् । तथापीदं न लक्षये ।

शकुन्तला—सुट्ठु दाव अत्त सच्छंदचारिणी किदम्हि । जा अहं इमस्स पुरुवंसप्पच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिअविसस्स हत्थब्भासं उवगदा । [सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता । (इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति ।)

अन्वय—विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ मयि एव वृत्तम् रहःप्रणयम् अप्रतिपद्यमाने अतिरुषा अतिलोहिताक्ष्या (शकुन्तलया) कुटिलयोः भ्रुवोः भेदात् स्मरस्य शरासनम् भग्नम् इव ।

संस्कृत-टीका—विगतम् स्मरणम् स्मृतिः यस्य तत् अतः दारुणा कठोरा चित्तस्य मनसः वृत्तिः व्यापारः यस्य तादृशे । मयि । एव । वृत्तम् घटितम् । रहसि एकान्ते (कृतम्) प्रणयम् प्रेम । अप्रतिपद्यमाने अस्वीकुर्वति । अतिरुषा महाकोपेन । अतिलोहिते सुरक्ते अक्षिणी नेत्रे यस्याः तादृश्या (शकुन्तलया) । कुटिलयोः वक्रयोः । भ्रुवोः । भेदात् भङ्गात् । स्मरस्य कामस्य । शरासनम् धनुः । भग्नम् खण्डितम् । इव ।

हिन्दी-व्याख्या—"विस्मरण-दारुण" और "वृत्तम् रहःप्रणयम्" अपनी ओर से न कहकर शकुन्तला की ओर से समझी गई बात के रूप में कहा गया है । शकुन्तला की भौंहें काम का धनुष कही गई हैं; उनका फैलकर अलग होना (खण्डित होना) उस धनुष का टूटना है । यहाँ कोप की वास्तविकता प्रतीत होती है, यह बात दुष्यन्त कहना चाहते हैं ।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—(हे) कल्याणी, दुष्यन्त का जीवन प्रसिद्ध (स्वच्छ के रूप में) है । फिर भी (मैं) यह (तुम्हारा आरोप) नहीं देखता हूँ ।

संस्कृत-टीका—प्रकाशम् । भद्रे (हे) कल्याणि । प्रथितम् प्रसिद्धम् । दुष्यन्तस्य (मम) । चरितम् ! तथापि तदपि । इदम् आरोपापराधम् । न । लक्षये पश्यामि ।

हिन्दी-व्याख्या—"चरित" का अर्थ जीवन (Life) और "चरित्र" का अर्थ चाल-चलन (Character) है । "न लक्षये" का अर्थ "माफ करता हूँ" या "सह लेता हूँ" है, "दुष्यन्त" ने अपना नाम स्वयं लेकर चोट लगने पर स्वाभिमान प्रगट किया है ।

हिन्दी-अनुवाद—(वह) मैं यहाँ खूब स्वच्छन्द-चारी (आवारा) बनाई गई हूँ जो पुरु-कुल के विश्वास से इनके, जिनके मुह में शहद और हृदय में विष है, हाथ में पड़ गई हूँ । (यह कहकर अञ्चल से मुँह ढककर रोती है ।)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला (वदति यत्) । सुष्ठु उचितम् । तावत् एव । अत्र अस्मिन् विषये स्थाने वा । स्वच्छन्दम् स्वतन्त्रम् चरति भ्रमति इति (इत्वरी) । कृता विहिता (घोषिता) । अस्मि ! या । अहम् । अस्य (दुष्यन्तस्य) । पुरोः वंशः कुलम् तस्मिन् प्रत्ययेन विश्वासेन । मुखे आनने मधु यस्य तादृशस्य । हृदये अन्तरे स्थितम् विद्यमानम् विषम् गरलम् यस्य तादृशस्य

शाङ्र्गरवः—इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापल दहति ।

अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ २४ ॥

(अस्य दुष्यन्तस्य)। **हस्तस्य** करस्य **अभ्याशम्** सामीप्यम् । **उपगता** प्राप्ता। **इति पटस्य** वस्त्रस्य **अन्तेन** प्रान्तेन (अञ्चलेन)। **मुखम्** वदनम् । **आवृत्य** पिधाय । **रोदिति** विलपति ।

हिन्दी-व्याख्या—इसके पहले तक शकुन्तला ने क्रोध दिखाया । यहाँ भी "उपगता" तक क्रोध ही है । रोष के स्थल "संफेट" नामक नाट्यांग कहलाते हैं। 'रोषप्रथितवाक्यं तु संफेटः परिकीर्तितः।' क्रोध की समाप्ति पर अपने बदला न दे पाने को बिवशता से हताश होकर शकुन्तला रो पड़ती है। अशक्त के कोप की समाप्ति कितनी करुण है ।

हिन्दी-अनुवाद—शाङ्र्गरव-इस प्रकार अपने द्वारा की गई चपलता चोट खाकर जलाती है।

संस्कृत टीका—**शाङ्र्गरवः** (वदति यत्)। **इत्थम्** अनेन प्रकारेण । **आत्मना** स्वेन **कृतम्** विहितम् । **प्रतिहतम्** प्रतिघातयुक्तम् (सत्)। **चापलम्** चञ्चलता । **दहति** ज्वलयति ।

हिन्दी-व्याख्या—"चापल" बिना सोचे समझे किया हुआ काम, चंचलता या लड़कपन है जो हमेशा दग्ध करता है जब उसका फल चोट (क्षति) के रूप में प्राप्त होता है। शकुन्तला ने बिना सोचे समझे दुष्यन्त का विश्वास कर गांधर्व विवाह करने का लड़कपन दिखाया जिसकी चोट मिल रही है।

अन्वयः—अतः विशेषात् रहः संगतम् परीक्ष्य कर्त्तव्यम् । अज्ञातहृदयेषु सौहृदम् एवम् वैरीभवति ।

संस्कृत-टीका—**अतः** अनेन कारणेन। **विशेषात्** विशेषतः। **रहसि** एकान्ते **संगतं** मैत्री। **परीक्ष्य** सर्वतः ज्ञात्वा (मित्रस्य चरित्रादिविषये)। **कर्त्तव्यम्**। न **ज्ञातम्** परिचितम् **हृदयम्** अन्तरम् येषाम् तादृशेषु (दुष्यन्तप्रभृतिषु)। **सौहृदम्** मैत्री। **एवम्** अनेन प्रकारेण। अवैरी (अशत्रुः) वैरी (शत्रुः) भवति इति **वैरीभवति ।**

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ ऐसा लगता है कि कालिदास शाङ्र्गरव की उक्ति के बहाने शिक्षा दे रहे हैं कि प्रेम-विवाह भावुकता-मात्र में करने से धोखा हो जाता है, अतः चरित्रादि की जाँचकर ही करना चाहिये। माता-पिता के द्वारा जो ब्याह होते हैं उनमें जाँच आसानी से हो जाती है जिसे भोली कन्या उतनी अच्छी तरह से और सुविधा-पूर्वक नहीं कर सकती। गलत काम सुख देने के बदले दुश्मन हो जाता है। नीति में आया है कि जिसके कुल, स्वभाव आदि के बारे में ज्ञात नहीं है, उसे रहने की जगह (तक) न देनी चाहिये :—

'अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्' (हितोपदेश-मित्रलाभः)। यहाँ आशय है कि शकुन्तला को दुष्यन्त से अनुराग करने के पहले उनके चरित्र की जाँच कर लेनी चाहिये थी। वह नहीं की गई जिससे वह अनुराग मित्र होने के स्थान पर शत्रु हो गया है।

छन्द—१।५ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा और अर्थान्तरन्यास ।

राजा—अयि भोः किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान्संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ।

शाङ्गरवः—(सासूयम्) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्।

आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ २५ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—प्रिय भाई, इन महिला पर विश्वास से ही दोष में पगे हुये पदों से मुझे क्यों दुःखी कर रहे हैं ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **अयि** (कोमलामन्त्रणे)। **भोः** (महोदय)। **किम्** केन कारणेन। **अत्रभवत्याम्** माननीयायाम् (अस्याम्) **प्रत्ययात्** विश्वासात्। **एव** (न तु प्रमाणान्तरेण)। **अस्मान्** माम्। **संयुतः** संपृक्तः **दोषः** प्रमादः येषु तादृशैः **अक्षरैः** पदैः। **क्षिणुथ** हिंस्थ (यूयम्)।

हिन्दी अनुवाद—शाङ्गरव (व्यंग्य के साथ)—आपने उस श्रेष्ठ (वस्तु) को जाना है जो नीच है (या आपने हीन उत्तर देना सीखा है; उचित उत्तर देना नहीं)।

संस्कृत-टीका—**शाङ्गरवः असूयया** निन्दया सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **श्रुतम्** ज्ञातम्। **भवद्भिः** त्वया। **अधरम्** पतितम् च तत् **उत्तरम्** प्रत्युत्तरम् (श्रेष्ठम् वा) च।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "अधर" का अर्थ नीच और "उत्तर" का अर्थ प्रत्युत्तर या श्रेष्ठ है। अनुवाद में इसे वाक्य में प्रयोग कर समझा दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—जिसे जन्म से लेकर आजतक दुष्टता नहीं सिखाई गई है, उस व्यक्ति का वचन प्रमाण-रहित है और जो विद्या मानकर दूसरे को धोखा देने का अध्ययन करते हैं, वे सत्यवादी हो सकते हैं।

अन्वयः—जन्मनः आ यः शाठ्यम् अशिक्षितः तस्य जनस्य वचनम् अप्रमाणम्। यैः (च) परातिसंधानम् "विद्या" इति (कृत्वा) अधीयते ते आप्तवाचः सन्तु किल।

संस्कृत-टीका—**जन्मनः** जनुषः। **आ** आरभ्य। यः (शकुन्तलालक्षणः) **शाठ्यम्** खलताम्। **न शिक्षितः** पाठितः। **तस्य**। **जनस्य**। **वचनम्** वाणी। न **प्रमाणम्** प्रमाणभूतम्। यैः (जनैः) (त्वादृशैः) (च)। **परस्य** अन्यस्य। **अतिसन्धानम्** वञ्चनम्। "विद्या" ज्ञानम्। **इति** (एवं-रूपेण)। **अधीयते** पठ्यते **ते**। आप्ताः तथ्याः **वाचः** वाण्यः येषाम् तादृशाः। **सन्तु** भवन्तु। **किल** (सम्भावनायाम्)।

हिन्दी-व्याख्या—श्लोक का पूर्वार्द्ध शकुन्तला के लिये और उत्तरार्ध दुष्यन्त के लिये आया है। आश्रम में शठता जन्म से लेकर अन्त तक नहीं सिखाई जाती जब कि राजनीति में दूसरे को धोखा देने की शिक्षा ही भरी पड़ी है। जब शठता की शिक्षा में कोरा व्यक्ति झूठा और पर-वञ्चकता की कला में प्रवीण सत्यवादी माना जाता है तब कुछ कहने का अवकाश नहीं है, यह आशय है। "शाठ्यम्" द्वितीया विभक्ति में है और वाक्य कर्मवाच्य में। यहाँ अप्रधान कर्म (यः) प्रथमा में और प्रधान कर्म (शाठ्यं) द्वितीया में है। यही नियम है।

राजा—भोः सत्यवादिन् अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामतिसंधाय लभ्यते।

शार्ङ्गरवः—विनिपातः।

राजा—विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयम्।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थमुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह्; याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मन्थ् और मुष् (धातुओं) में उक्त नियम लगता है तथा नी, हृ, कृष् और वह में भी इसी प्रकार होता है।

छन्द—१.७ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा, काकु, रूपक और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—हे सत्यवादी जी, अच्छा इस प्रकार (जैसा आपने कहा) हम मान लेते हैं तो बतायें कि इन्हें धोखा देकर हमें क्या (लाभ होगा)?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः वदति यत्)। **भोः** हे **सत्यवादिन्** तथ्यभाषिन्, **अभ्युपगतम्** अङ्गीकृतम् **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **अस्माभिः** मया। **एवम्** इत्थम् (यथा मया उक्तम् मया प्रतारणा कृता इति)। **किम्**। **पुनः** तु। **इमाम्** एताम् (शकुन्तलाम्)। **अतिसंधाय** प्रतार्य **लभ्यते** प्राप्यते (मम क उपकारः स्यात्)।

हिन्दी व्याख्या—"सत्यवादिन्" व्यंग्य में कहा गया है जिसका अर्थ है कि आप दूसरे को झूठा बनाते हैं और खुद बड़े सच्चे बनते हैं राजा अपना पक्ष पुष्ट जानते हैं, क्योंकि उन्हें शाप से तथ्य का स्मरण नहीं है। धोखा देने में कोई लाभ होता है, तभी धोखेबाज धोखा देता है। बेवकूफ भी बिना लाभ के कोई काम नहीं करता :—"प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते।" दूसरे शब्दों में यह जगद्दुर्लभ स्त्री-रत्न खोना पड़ रहा है; यह हानि हो रही है जो प्रकट करती है कि राजा सच्चरित्र और सत्यवादी हैं; वे चरित्र और सत्य की रक्षा के लिये पर-नारी को अस्वीकार कर त्याग कर रहे हैं। यह तर्क बहुत बली है। पर शार्ङ्गरव इतना क्षुब्ध हो गया है कि उसका उत्तर व्यङ्ग्य मात्र है (आगे); वह ध्यान से कुछ भी सुनना नहीं चाहता क्योंकि उसे असत्यवादी का हठ मानता है।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—पतन।

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्)। (प्रतार्य) **विनिपातः** पतनम् (लभ्यते)।

हिन्दी-व्याख्या—क्षोभ की पराकाष्ठा है जो ध्यान से कोई बात सुनना अब व्यर्थ समझता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—पुरुवंशी पतन की अभिलाषा करें, इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) **विनिपातः** पतनम्। **पौरवैः** पुरुकुलोद्भवैः। **प्रार्थ्यते** काम्यते। **इति** इदम्। **न श्रद्धेयम्** विश्वसनीयम्।

शारद्वतः—शार्ङ्गरव किमुत्तरेण। अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। (राजानं प्रति)।

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ २६ ॥

हिन्दी-व्याख्या—पुरुवंशी जो पतन से बचने के लिए सर्वस्व त्याग देते हैं, वे पतन को चाहें, यह सम्भव नहीं है। राजा को अपने पुरु-कुल का अभिमान है।

हिन्दी अनुवाद—शारद्वत—शार्ङ्गरव, जवाब से क्या (लाभ) ? गुरुजी का सन्देश देने का कार्य सम्पन्न कर दिया गया है। हम लौटते हैं। (राजा से)

संस्कृत टीका—शारद्वतः (वदति यत्)। (हे) **शार्ङ्गरव** (सम्बुद्धौ)। **किम्** कः लाभः। **उत्तरेण** प्रतिवचनेन। **अनुष्ठितः** सम्पादितः। **गुरोः** आचार्यस्य। **सन्देशः** संदेशदानकार्यम्। **प्रतिनिवर्तामहे** प्रत्यावर्तामहे। **वयम्**। **राजानम्** नृपम्। **प्रति** उद्देश्य।

हिन्दी-व्याख्या--शारद्वत ने यहाँ फिर विवाद शान्त किया है। वह गम्भीर, अवसर के अनुसार कार्य करने वाला तथा शान्ति-प्रिय है।

हिन्दी अनुवाद—(तो) यह आपकी पत्नी है; इसे चाहे तो स्वीकार करें और चाहे त्यागें, क्योंकि पत्नी के ऊपर (पति का) व्यापक अधिकार सिद्ध है।

अन्वयः—तत् एषा भवतः कान्ता। एनाम् त्यज वा गृहाण वा। दारेषु हि (पत्युः) प्रभुता सर्वतोमुखी उपपन्ना।

संस्कृत टीका—तत् तर्हि। **एषा** (शकुन्तला)। **भवतः** तव। **कान्ता** पत्नी। **एनाम्**। **त्यज** विसृज। **वा** अथवा। **एनाम्**। **गृहाण** अङ्गीकुरु। **वा**। **दारेषु** पत्नीषु। **हि** यतः। (पत्युः) **प्रभुता** अधिकारः। **सर्वतोमुखी** पूर्णा। **उपपन्ना** सिद्धा।

हिन्दी-व्याख्या—"कान्ता" की जगह "पत्नी" प्रयोग ज्यादा अच्छा होता क्योंकि पत्नी गृहिणी के अर्थ में और अधिकार-सम्पन्न होती है। "गान्धर्व विवाह से स्वीकृत होने से जो प्रिय रही है" इस अर्थ में यह व्यंग्य होगा जिसकी सम्भावना गम्भीर प्रकृति के शारद्वत के मुख से नहीं है। "दार" शब्द पुँल्लिंग बहुवचन होता है यद्यपि इसका अर्थ स्त्री है। यहाँ बताया गया है कि स्त्री पर पति का पूर्ण अधिकार है, बन्धुओं का नहीं। इस अर्थ में यह "दार" शब्द बहुत उपयुक्त है। "दारयन्ति भेदयन्ति भ्रातॄन् इति दाराः" (जो भाइयों को पति के द्वारा अपने से अलग करवाती है") व्युत्पत्ति से वह पति को अधिकारी बना कर अपने को बन्धुओं से अलग कर लेती है। आज भी तुलित मस्तिष्क वाले माँ-बाप विवाहित पुत्री का पति से विवाद होने पर उसका पक्ष लेकर उसे और बुरी न बनाकर पति विवश करते हैं कि वह अपने को और सहनशील और अनुकूल बनाकर पति-गृह में रहना सीखे क्योंकि वहीं उसका निर्वाह होगा; पिता के घर में नहीं। आज बदले युग में स्त्री का भी व्यक्तित्व माना जाता है और उसका स्थान पिता या पति की सम्पत्ति से ऊपर है; उसे पति की दासी के स्थान पर सहचरी माना जाता है। अन्तर इतना है कि

गौतमि—गच्छाग्रतः। (इति प्रस्थिताः)

शकुन्तला—कहं इमिणा किदवेण विपलद्ध म्हि। तुम्हे वि मं परिच्चअह। [कथमनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि, यूयमपि मां परित्यजथ।] (इत्यनुप्रतिष्ठते)

गौतमी—(स्थित्वा) **वच्छ संगरव अणुगच्छदि इअं खु णो करुणपरिदेविणी सउंदला पच्चादेसपरुसे भत्तुम्मि किं वा मे पुत्तिआ करेदु।** [वत्स शार्ङ्गरव अनुगच्छतीयं खलु नः करुण-परिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु।]

प्राचीन-काल में वह दासी बनकर नम्रता के गुण से सहचरी ही नहीं "गृहिणा" (घर की स्वामिनी) का पद पाती थी।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य। **अलङ्कार**—अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी अनुवाद—(हे) गौतमी, आगे चलो। यह कह कर रवाना हो जाते हैं।

संस्कृत टीका—(हे) गौतमि। **गच्छ** चल। **अग्रतः** अग्रे। **इति** एवम् (उक्त्वा)। **प्रस्थिताः** प्रचलिताः।

हिन्दी-व्याख्या—शारद्वत, "गौतमी" को बिना आदरार्थक विशेषण के पुकारता है; तपस्विनियों के लिये उसको आवश्यकता नहीं समझी जाती थी, ऐसा प्रतीत होता है। अपने-अपने समय के समाज का चलन है। यहाँ शकुन्तला को दुष्यन्त के विवेक पर छोड़ कर सभी वापस जाते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—**शकुन्तला**—कैसे इस धूर्त से ठगी गई हूँ, तुम लोग भी मुझे छोड़ रहे हो।

संस्कृत टीका—**कथम्** केन प्रकारेण (अशोभनेन)। **अनेन** पुरतः स्थितेन। **कितवेन** छलिना (दुष्यन्तेन)। **विप्रलब्धा** प्रतारिता। **अस्मि**। **यूयम्**। **अपि**। **माम्**। **परित्यजथ** विसर्जयथ। **इति** एवम् उक्त्वा। **अनुप्रतिष्ठते** अनुगन्तुम् आरभते।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ शकुन्तला का भोलापन दिखाया गया है। इस आकस्मिक विपत्ति से वह इतना घबड़ा गई है कि शारद्वत के कहने पर भी कि इस शकुन्तला पर तुम्हारा अधिकार है; चाहे छोड़ो चाहे अपनाओ, वह उनसे घृणा कर अपने बन्धुजनों का आश्रय चाहती है।

हिंदी-अनुवाद—गौतमी (रुककर)—बेटा शार्ङ्गरव, करुण रूप से विलाप कर रही यह शकुन्तला हमारे पीछे चल रही है। मेरी बिटिया भला क्या करे जब पति (इसके) इनकार से कठोर है।

संस्कृत-टीका—**गौतमी**। **स्थित्वा** विरम्य (वदति यत्)। **वत्स** पुत्र। **शार्ङ्गरव**। **अनुगच्छति** अनुसरति। **इयम्** एषा। **खलु** (वाक्यालङ्कारे) **नः** अस्मान्। **करुण** यथा तथा **परिदेविनी** विलापयुक्ता। **शकुन्तला**। **प्रत्यादेशेन** निराकृत्या **परुषे** कठोरे (सति) **भर्तरि** पत्यौ। **किम्** **वा** (वाक्यालङ्कारे) **मे** मम। **पुत्रिका** वात्सल्यभाजनम् पुत्री। **करोतु** विदधातु।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ गौतमी को शकुन्तला पर दया आती है। शार्ङ्गरव को पास देखकर सम्बोधित किया है। अधिक प्रबल होने से वह प्रधान है अथवा वह शकुन्तला को पीछे आने से डांटकर रोकेगा, इस आशय से उसने सम्बोधित किया है।

शार्ङ्गरवः—(सरोषं निवृत्य) किं पुरोभागे स्वातन्त्र्यमवलम्बसे। (शकुन्तला भीता वेपते)

शार्ङ्गरवः—शकुन्तले

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥२७॥

हिन्दी अनुवाद—शार्ङ्गरव (गुस्से के साथ फिरकर)—(दूसरे के) दोष देखने वाली (अनुसरण करने में जो अपना दोष है, उसे न देखने वाली) ! क्या स्वच्छन्दता की राह पकड़ी है ?

संस्कृत-टीका—**शार्ङ्गरव**। **रोषेण** क्रोधेन सह वर्त्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **निवृत्य** परावृत्य। **किम्**। **पुरोभागे** दोषदर्शिनि। **स्वातन्त्र्यम्** स्वच्छन्दताम्। **अवलम्बसे** आश्रयसि। **शकुन्तला**। **भीता**। **वेपते** कम्पते।

हिन्दी-व्याख्या—प्राचीनकाल में स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं दी गई थी; वह रीति आज भी चल रही है। रीति यह रही है कि कुआंरेपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र के संरक्षण में नारी रहे।—

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—(रे) शकुन्तला,

संस्कृत-टीका—**शार्ङ्गरवः** (वदति यत्)। (रे) **शकुन्तले** (सम्बुद्धौ)।

हिन्दी-अनुवाद—यदि तुम वैसी हो जैसा राजा कह रहे हैं तो कुल की मर्यादा नष्ट करने वाली तुमसे पिता को क्या प्रयोजन ? इसके विपरीत यदि तुम अपना पवित्र नियम (क्या है यह) जानती हो तो ससुराल में तुम्हारे लिये दासता भी उचित है।

अन्वयः—यथा क्षितिपः वदति यदि त्वम् तथा असि (तदा) उत्कुलया त्वया पितुः किम्। अपि तु आत्मनः व्रतम् शुचि वेत्सि (तदा) पतिकुले तव दास्यम् अपि क्षमम्।

संस्कृत-टीका—**यथा**। **क्षितिपः** राजा (दुष्यन्तः)। **वदति** कथयति। **त्वम्**। **तथा**। **असि** (तदा)। **उत्कुलया** अतिक्रान्तकुलमर्यादया। **त्वया**। **पितुः** जनकस्य (कण्वस्य)। **किम्** प्रयोजनम्)। **अथ यदि**। **तु** एतद्विपरीतम्। **आत्मनः** स्वस्य। **व्रतम्** नियमम्। **शुचि** पवित्रम् **वेत्सि** जानासि (तदा)। **पत्युः** स्वामिनः **कुले** गृहे। **तव**। **दास्यम्** दासता। **अपि**। **क्षमम्** समीचीनम्।

हिन्दी-व्याख्या—दोनों ही स्थितियों में शकुन्तला के लिये पिता का संरक्षण असंभव है। विवाहित लड़की यदि ससुराल में अपने को नहीं निभा सकती तो उसकी शरण कहीं नहीं है। अत्याचार होने पर भी पति के साथ रहकर दासी होना भी उचित है; पति को छोड़कर सुखी जीवन बिताना उचित नहीं। इसी आदर्श की बदौलत आज तक साधारणतः सभी भारतीय विवाह सफल रहे हैं; लाख में एक ब्याह का असफल होना भी सफलता का ही सूचक है। अपवाद से नियम की सिद्धि होती है (Exceptions prove the rule)। जहाँ ब्याह असफल होते हैं, वहाँ भी लड़की या पतिकुल के किसी जबरदस्त व्यक्ति का असंतुलित, लोभी या क्रोधी होना ही कारण होता

तिष्ठ साधयामो वयम् ।

राजा—भोस्तपस्विन् किमत्रभवतीं विप्रलभसे ।

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव ।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ २८ ॥

है । यदि लड़की अपने त्याग, धैर्य और मधुर व्यवहार पर अड़ी रहे तो असफल हो रहे विवाह भी सफल हो सकते हैं । इसके विपरीत आचरण से विदेशी विवाह अकसर असफल होते हैं और तलाक का सहारा लेने की नौबत आती है ।

छन्द—२।११ द्रष्टव्य । **अलङ्कार**—हेतु और अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—तुम रुको; हम जा रहे हैं ।

संस्कृत-टीका—**तिष्ठ** विरम । **साधयामः** गच्छामः । **वयम्** (त्वाम् विहाय) ।

हिन्दी-व्याख्या—"साधयामः" प्रयोग जाने के अर्थ में ध्यान देने योग्य है, विशेषतः इसलिये कि यह बहुत कम आता है ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) । **भोः** हे । **तपस्विन्** तापस । **किम्** । **अत्रभवतीम्** मान्याम् (शकुन्तलाम्) । **विप्रलभसे** प्रतारयसि ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ छोड़ने से शकुन्तला के प्रति तुम लोग धोखा ही करोगे क्योंकि मुझे अपने ऊपर पूरा विश्वास है कि अधर्मपूर्वक इसे स्वीकार नहीं कर सकता; फिर इसकी क्या गति होगी ? मुझे धोखा देने के बदले अपनी लड़की के प्रति ही धोखा करोगे, यह दुष्यन्त का आशय है जो आगे के श्लोक में अधिक स्पष्ट होगा ।

हिन्दी-अनुवाद—चन्द्रमा कुमुदों को ही खिलाता है और सूर्य कमलों को ही खिलाता है क्योंकि इन्द्रिय-संयमी लोगों की प्रवृत्ति दूसरे के परिग्रह (प्राप्य, स्त्री) के सम्बन्ध से विमुख होती हैं।

अन्वय—शशाङ्कः कुमुदानि एव (बोधयति) । सविता (च) पङ्कजानि एव बोधयति । वशिनाम् हि वृत्तिः परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी ।

संस्कृत-टीका—**शशाङ्कः** चन्द्रः । **कुमुदानि** । **एव** । **बोधयति** विकासयति । **सविता** सूर्यः । **पङ्कजानि** कमलानि । **एव** (बोधयति) । **वशिनाम्** जितेन्द्रियाणाम् । **हि** यतः । **वृत्तिः** प्रवृत्तिः । **परस्य** अन्यस्य **परिग्रहस्य** प्राप्यस्य दानस्य पत्न्याः वा **संश्लेषः** संबन्धः तस्मात् **पराङ्मुखी** निवर्त्तनशीला ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ परिग्रह शब्द चन्द्रमा और सूर्य के साथ "प्राप्य" के अर्थ में लगेगा और राजा के साथ "पत्नी" के अर्थ में । यदि "कुमुदिनी" और "पङ्कजिनी" पद आते तो सभी जगह "पत्नी" अर्थ बैठ जाता । राजा जोर देकर कह रहे हैं कि यह न समझना कि शकुन्तला को छोड़ जाओगे तो मैं दया या कामुकता के कारण इसे स्वीकार कर लूँगा; परस्त्री मेरे लिये उसी प्रकार है जिस प्रकार चन्द्रमा के लिये कमल और सूर्य के लिये कुमुद ।

छन्द—द्रष्टव्य ।

शार्ङ्गरवः—यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसङ्गाद्विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरुः ?

राजा—(पुरोहितं प्रति) भवन्तमेवात्र गुरुलाघवं पृच्छामि ।

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये ।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ॥ २९ ॥

पुरोहितः—(विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा, माला, दृष्टान्त और अनुप्रास (छेक और वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—शार्ङ्गरव—जब आप अन्य (वसुमती, धन आदि) के सम्पर्क से पहले की बातें भूल गये हैं तो क्यों अधर्म (पाप) से भयभीत हैं ?

संस्कृत-टीका—शार्ङ्गरवः (वदति यत्) । यदा । तु । पूर्वम् (प्राक् घटितम्) च सत् वृत्तम् घटना च । अन्यस्य परस्य (वसुमत्याः वा धनस्य वा) सङ्गात् संपर्कात् । विस्मृतः विस्मरणयुक्तः । तदा । कथम् केन प्रकारेण । न धर्मः अधर्मः पापम् तेन भीरुः भीतः (असि) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (पुरोहित से)—इस विषय में आप से ही ऊँचे-नीचे (गौरव और लाघव) की जिज्ञासा करता हूँ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । पुरोहितम् पुरोधसम् । प्रति लक्षीकृत्य । भवन्तम् (पुरोहितम्) । एव । अत्र (अस्मिन् विषये) । गौरवम् उच्चताम् लाघवम् तुच्छताम् च पृच्छामि जिज्ञासे ।

हिन्दी-अनुवाद—मैं प्रमादी हो सकता हूँ या यह झूठ बोल सकती है इस सन्देह में मैं पत्नी का त्याग करने वाला होऊं या पराई नारी के स्पर्श से पतित ।

अन्वयः—अहम् मूढः स्याम् एषा वा मिथ्या वदेत् इति संशये (अहम्) दारत्यागी भवामि आहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः भवामि ।

संस्कृत-टीका—अहम् मूढः प्रमत्तः स्याम् भवेयम् , एषा इयं (शकुन्तला) वा अथवा मिथ्या अनृतम् वदेत् कथयेत् इति एवं संशये सन्देहे (पतितः) दाराणां पत्न्याः त्यागी विसर्जकः भवामि आहो अथवा परस्य अन्यस्य स्त्रियाः पत्न्याः स्पर्शेन सङ्गेन पांसुलः पुंश्चलः भवामि ।

हिन्दी व्याख्या—राजा का अभिप्राय है कि इस धर्मसङ्कट में मुझे रास्ता नहीं सूझ रहा है । आप धर्मशास्त्रों के ज्ञाता हैं अतः निर्णय कीजिये मुझे क्या करना चाहिये । क्योंकि हो सकता है प्रमादवश मैं ही भूल गया हूँ, ऐसी स्थिति में इसे मैंने छोड़ दिया तो मुझे पत्नी-त्याग का पाप लगेगा । यह भी संभव है कि यह अपना दोष मेरे माथे मढ़ना चाहती हो तब तो मुझे परस्त्रीसंग का पाप लगेगा, अतः शास्त्रीय व्यवस्था द्वारा मुझे उबारिये ।

छन्द—अनुष्टुप् ।

हिन्दी-अनुवाद—यदि ऐसी बात है तो ऐसा करें ।

संस्कृत-टीका—यदि तावद् संशयश्चेत् प्रथमम् एवं क्रियताम् इत्थं विधीयताम् ।

राजा—अनुशास्तु मां भवान् ।

पुरोहितः—अत्रभवती तावदा प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यते इति चेत् । त्वं साधुभिरुद्दिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मुझे आप आदेश दें ।

संस्कृत-टीका—राजा वदति यत् **भवान्** पुरोहितः **मां** राजानम् **अनुशास्तु** आदिशतु ।

हिन्दी-अनुवाद—पुरोहित—मान्या (शकुन्तला) संतान-जन्म तक मेरे घर में रहें । ऐसा क्यों कह रहा हूँ यदि यह पूछते हैं तो (सुनिये) । सज्जनों ने आपके विषय में बताया है कि पहली बार ही आप चक्रवर्ती पुत्र को जन्म देंगे । यदि वह (होने वाला) ऋषि का नाती उस (चक्रवर्ती) के चिह्नों से युक्त होगा तो इन्हें स्वागत कर रनिवास में दाखिल कराइयेगा । इसके विपरीत होने पर पिता के पास इसे ले जाना निश्चित (एकमात्र उपाय) है ही ।

संस्कृत-टीका—पुरोहितः पुरोधाः (वदति यत्) ; **अत्रभवती** मान्या (शकुन्तला) । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **आ** यावत् । **प्रसवात्** पुत्रजन्मनः । **अस्माकम्** मम **गृहे** सदने । **तिष्ठतु** वसतु । **कुतः** कस्मात् (कारणात्) । **इदम्** उपर्युक्तम् । **उच्यते** (मया) कथ्यते । **चेत्** यदि (एवम् वितर्कः तर्हि शृणु) । **त्वम्** भवान् । **साधुभिः** सज्जनैः (आप्तैः ज्योतिर्विद्भिः वा) **उद्दिष्ट** उक्तः । **प्रथमम्** प्रथमतः । **एव** । **चक्रवर्तिनम्** । **पुत्रम्** सुतम् । **जनयिष्यसि** उत्पादयिष्यसि । **इति** । **सः** (भावी) । **चेत्** यदि । **मुनेः** ऋषेः (कण्वस्य) **दौहित्रः** दुहितुः (शकुन्तलायाः) पुत्रः । **तस्य** (चक्रवर्तिनः) **लक्षणः** चिह्नैः **उपपन्नः** युक्तः । **भविष्यति** (तर्हि) **अभिनन्द्य** स्वागतम् व्याहृत्य । **शुद्धान्तम्** अन्तःपुरम् । **एनाम्** इमाम् (शकुन्तलाम्) । **प्रवेशयिष्यसि** । **विपर्यये** विपरीते । **तु** (वैपरीत्ये) । **पितुः** जनकस्य (कण्वस्य) । **अस्या** एतस्याः **समीपे** पार्श्वे **नयनम्** प्रापणम् । **अवस्थितम्** निश्चितम् **एव** ।

हिन्दी-व्याख्या—पुरोहित ने बहुत अच्छा मार्ग निकाला है । वह गृहस्थ, सज्जन और वृद्ध प्रतीत होता है जिससे उसके यहाँ शकुन्तला के रहने से समाज में निन्दा का प्रश्न नहीं उठता । वह निर्भीक और समस्या का सामना ईमानदारी से करना चाहता है; सफेदपोशों की तरह आँख चुराना या समस्या से कतराना नहीं चाहता भले ही अपने ऊपर गुरुतर उत्तरदायित्व आ जाय । इसमें अन्ततः लाभ भी है; यदि सिद्ध हो गया कि शकुन्तला दुष्यन्त की पत्नी है तो पुरोहित की अमिट प्रतिष्ठा है । वैसा न होने पर भी राजा का सिर-दर्द तो दूर हो ही जायेगा । सज्जनों की वे चाहे सन्त हों चाहे ज्योतिषी—भविष्यवाणी पर इतना अधिक विश्वास यह बताता है कि प्राचीनकाल में उसके फल प्रत्यक्ष किये गये थे । अविश्वास से आजकल उसे कोई महत्त्व नहीं दिया जाता । यहाँ "मुनि-दौहित्र" कहा गया है क्योंकि उतना तो निश्चित है; राजकुमार होना अभी विवादास्पद है । शकुन्तला की बात सज्जन-वचन के अनुसार झूठ होने पर भी पुरोहित राह सुझाता है कि शकुन्तला

राजा—यथा गुरुभ्यो रोचते ।

पुरोहितः—वत्से, अनुगच्छ माम् ।

शकुन्तला—भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं [भगवति वसुधे देहि मे विवरम्] (इति रुदती प्रस्थिता निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च)

(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति ।) (नेपथ्ये) आश्चर्यम् ।

को पिता के पास भेज दिया जाय । आज भी ऐसा मामला होने पर विवादास्पद बालक या उसकी माँ को या तो किसी वयोवृद्ध सम्भावित गृहस्थ को अमानत की तरह सौंप दिया जाता है या शरण-गृह में जहाँ वैसा प्रबन्धक होता है रख देते हैं । कुतः इदमुच्यते चेत्" विद्वानों के वाद (शास्त्रार्थ) की भाषा है जो उपाध्याय के मुँह से स्वाभाविक है । "पितुरस्याः" में षष्ठी का प्रयोग बाद में होना बोल-चाल की भाषा का सहज प्रवाह है ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—जैसा गुरुजी को ठीक जँचे (वैसा हो) ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । यथा । गुरुभ्यः आदरणीयाय उपाध्यायाय । रोचते (तथा भवतु) ।

हिन्दी-अनुवाद—पुरोहित—बेटी, मेरे पीछे आओ ।

संस्कृत-टीका—पुरोहितः पुरोधाः (वदति यत्) । वत्से पुत्रि । अनुगच्छ अनुसर । माम् ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला–भगवती (माँ) धरती, मुझे जगह दो (फट जाओ, मैं समा जाऊँ) । (इस प्रकार कहकर रोती-रोती रवाना होती हुई पुरोहित और तपस्वियों के साथ मंच से बाहर जाती है ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला इतनी भोली है कि वह सर्वस्व नाश होने पर भी चुपचाप पुरोहित के साथ चली जाती है; न तो सत्याग्रह करती है और न यह कहती है कि ऐसे झूठे पति के साथ रहना मुझे कबूल नहीं है । जङ्गल से एकदम राज-दरबार में आने का अन्तर उसे दबने के लिये विवश कर सकता है ।

हिन्दी अनुवाद—राजा जिनकी स्मृति शाप से ढक गई है शकुन्तला के विषय में ही सोचते हैं । (नेपथ्य में) । अचरज है !

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) । शापेन व्यवहिता निरुद्धा स्मृतिः स्मरणशक्तिः यस्य तादृशः (सन्) । शकुन्तलां गतम् प्राप्तम् (विषयम्) एव । चिन्तयति विचारयति । नेपथ्ये सज्जागृहे । आश्चर्यम् विस्मयः (अरे) ।

हिन्दी-व्याख्या—कोई विशेष घटना हो जाने पर उसका स्मरण या तनाव देर तक मस्तिष्क में रहता है । यहाँ शकुन्तला ही सारे उपद्रवों का केन्द्र है, अतः उस ओर राजा का ध्यान स्वाभाविक है ।

राजा (आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात् ।

(प्रविश्य) पुरोहितः—(सविस्मयम्) देव अद्भुतं खलु संवृत्तम् ।

राजा—किमिव

पुरोहितः—देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।

राजा—किं च

पुरोहितः—

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ ३० ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा (सुनकर) क्या हो सकता है ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **आकर्ण्य** श्रुत्वा (वदति यत्) । **किम्** । **नु खलु** (वितर्के), **स्यात्** भवेत् ।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) पुरोहित (अचरज) अद्भुत घटना घट गई है ।

संस्कृत-टीका—**प्रविश्य** अन्तः आगत्य । **पुरोहितः** पुरोधाः । **विस्मयेन** आश्चर्येण सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा (वदति यत्) । **देव** महाराज । **अद्भुतम्** विस्मयजनकम् । **खलु** निश्चयेन । **संवृत्तम्** घटितम् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—क्या ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **किम् इव** (वाक्यालङ्कारे) ।

हिन्दी अनुवाद—पुरोहित—महाराज, कण्व के शिष्यों के वापस जाने पर—

संस्कृत-टीका—**पुरोहितः** पुरोधाः (सोमरातः) (वदति यत्) । **देव** राजन् ! **परावृत्तेषु** निवृत्तेषु (सत्सु) **कण्वस्य शिष्येषु** अन्तेवासिषु ।

हिन्दी-अनुवाद—वह युवती (शकुन्तला) अपने भाग्य को भला-बुरा कहती हुई हाथ उठाकर रोने लगी ।

अन्वय—सा बाला च स्वानि भाग्यानि निन्दन्ती बाहूत्क्षेपम् क्रन्दितुम् प्रवृत्ता ।

संस्कृत-टीका—**सा** पूर्वोक्ता । **बाला** । युवतिः । **च** । **स्वानि** स्वस्य । **भाग्यानि** नियतिम् । **निन्दन्ती** उपालभमाना । **बाहुम्** भुजम् **उत्क्षिप्य** । **क्रन्दितुम्** रोदितुम् **प्रवृत्ता** लग्ना (अभूत्) ।

हिन्दी व्याख्या—हाथ उठाकर (मध्य भाग से आँखे बन्द कर) रोना स्त्री स्वभावोक्ति है । इस श्लोक का उत्तरार्ध नीचे आ रहा है ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—और क्या हुआ ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **किम्** (घटितम्) च ।

हिन्दी-अनुवाद—पुरोहित—

संस्कृत-टीका—**पुरोहितः** पुरोधाः (सोमरातः) (वदति यत्) ।

हिन्दी-अनुवाद—एक दीप्ति, जिसका आकार स्त्री-आकार के समान था, दूर से इसे उठाकर

(सर्वे विस्मयं रूपयन्ति)

राजा—भगवन् प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव । किं वृथा तर्केणान्विष्यते । विश्राम्यतु भवान् ।

पुरोहितः—(विलोक्य) विजयस्व । (इति निष्क्रान्तः)

अप्सरस्तीर्थ की ओर चली गई ।

अन्वय—एकम् स्त्रीसंस्थानम् ज्योतिः आरात् एनाम् उत्क्षिप्य अप्सरस्तीर्थम् जगाम ।

संस्कृत-टीका—**एकम्** किमपि । **स्त्री** (स्त्रीसंस्थानम्) नारी इव **संस्थानम्** आकारः यस्य तादृशम् । **ज्योतिः** दीप्तिः । **आरात्** दूरात् (समीपात् वा) । **एनाम्** इमाम् । शकुन्तलाम्) । **उत्क्षिप्य** उत्थाप्य । **अप्सरस्तीर्थम्** तन्नामकम् स्थानम् । **जगाम** अगमत् ।

हिन्दी-व्याख्या—"संस्थान" (आकृति) का प्रयोग इसलिये किया गया है क्यों कि स्पष्ट स्वरूप नहीं दिखा । लगता है, वस्त्र व अलंकरण से इतना भर समझ में आया था कि यह कोई स्त्री है । स्त्री की आकृति वाली ज्योति कहने से यह सूचित किया गया है कि परपुरुष उस शकुन्तला का स्पर्श अभी तक नहीं कर पाया है । आगे पता चलेगा कि यह दीप्ति शकुन्तला की मां मेनका अप्सरा थी । अप्सरस्तीर्थ में अप्सराओं के रहने और ऐसी अद्भुत घटनायें घटने की प्रसिद्धि प्रतीत होती है । "अप्सरस्" शब्द नपुंसकलिङ्ग और बहुवचन में होता है । "तीर्थ" और "अवतार" का अर्थ सीढ़ी या उतरना है । ऐसे स्थलों में जनता उतरकर स्नान करती है, अतः सीढ़ियाँ होती हैं । अद्भुत रस ध्वनित होता है ।

छन्द—शालिनी है जिसमें मगण, २ तगण और २ गुरु होते हैं तथा ४ व ७ पर यति होती है :—शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः । (वृत्तरत्नाकर ३।३४)

अलंकार—समुच्चय, हेतु और अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—(सब आश्चर्य का अभिनय करते हैं) राजा—श्रीमन् पहले (भी) मैंने उस विषय का निराकरण (निवृत्ति) कर ही दिया है । तर्क द्वारा (उसका) व्यर्थ अनुसरण क्यों करते हैं ? आप आराम करें ।

संस्कृत-टीका—**सर्वे** सकलाः (जनाः) । **विस्मयम्** आश्चर्यम् । **रूपयन्ति** अभिनयन्ति । **राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत) । **भगवन्** श्रीमन् । **प्राक्** पूर्वम् । **अपि** । **सः** उक्तः । **अस्माभिः** मया । **अर्थः** विषयः । **प्रत्यादिष्टः** निराकृतः । **एव** । **किम्** । **वृथा** व्यर्थम् । **तर्केण** उपपत्त्या । **अन्विष्यते** अनुगम्यते । **विश्राम्यतु** क्लमापनोदनम् करोतु । **भवान्** ।

हिन्दी-व्याख्या—भाषा से स्पष्ट है कि राजा खिन्न हैं । वह कटु प्रसग शुरू कर देने पर वे उपाध्याय को झिड़की-सी सुना रहे हैं जिससे यह संकेत मिल जाता है कि इस समय में कुछ नहीं सुनना चाहता जिसे समझ कर उपाध्याय विदा हो जाते हैं ।

हिन्दी अनुवाद—पुरोहित (देखकर)—जय हो, (यह कहकर बाहर जाते हैं) ।

संस्कृत-टीका—**पुरोहितः** पुरोधाः । **विलोक्य** दृष्ट्वा । **विजयस्व** जय । **इति** एवम् उक्त्वा । **निष्क्रान्तः** निर्गतः ।

राजा—वेत्रवति पर्याकुलोऽस्मि । शयनभूमिमार्गमादेशय ।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो । [इत इतो देवः] (इति प्रस्थिता)

राजा—

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम् ॥ ३१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(पञ्चमोऽङ्कः ।)

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(हे) वत्रवती (द्वारपालिका) व्यग्र हूँ । शयन-स्थान का रास्ता दिखाना ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । (हे) **वेत्रवति** द्वारपालिके । **पर्याकुलः** व्यग्रः । **अस्मि** । **शयनस्य** शय्यायाः **भूमेः** स्थलस्य **मार्गम्** पन्थानम् । **आदेशय** कथय ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला के साथ दैवी घटना घटने पर दुष्यन्त को विश्वास हो रहा है कि मेरी स्मृति ने धोखा दिया है; इस तरह किसी दिव्य आत्मा का मैंने अपमान किया है । आगे के श्लोक में यह बात स्पष्टतर होगी ।

संस्कृत टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका (वदति यत्) । **इतः** अनेन मार्गेण (चलतु) । **इतः** अनेन मार्गेण (चलतु) । **देवः** महाराजः । **इति** इदम् उक्त्वा । **प्रस्थिता** प्रचलिता ।

हिन्दी-अनुवाद—**राजा**-भले ही (अपने द्वारा) मुनि की दुरदुराई गई पुत्री पत्नी के रूप में याद नहीं आती, लेकिन बहुत उद्विग्न हो रहा मेरा दिल मुझे (उसे परिग्रह होने का) विश्वास दिला-सा रहा है ।

अन्वय—कामम् प्रत्यादिष्टाम् मुनेः तनयाम् परिग्रहम् न स्मरामि । बलवत् दूयमानम् मे हृदयम् तु प्रत्याययति इव ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **कामम्** यद्यपि (अतिशयेन वा) । **प्रत्यादिष्टाम्** निराकृताम् । **मुनेः** ऋषेः (कण्वस्य) **तनयाम्** पुत्रीम् । **परिग्रहम्** पत्नीम् (पत्नीत्वेन) । **न** । **स्मरामि** । **बलवत्** अधिकम् । **दूयमानम्** खिद्यमानम् । **मे** मम । **हृदयम्** अन्तःकरणम् । **तु** एतद्विपरीतम् । **प्रत्याययति** विश्वासयति । **इव** इति प्रतीयते ।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य । **अलंकार**—उत्प्रेक्षा, विभावना और अनुमान ।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद सब बाहर जाते हैं) (पाँचवाँ अंक समाप्त हुआ)

संस्कृत-टीका—**इति** तत्पश्चात् । **निष्क्रान्ताः** निर्गताः । **सर्वे** सकलाः अभिनेतारः । (**इति**) **पञ्चमः** अङ्कः ।

———

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्‌बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च ।)

रक्खिणौ—(ताडयित्वा) **अले कुम्भीलआ । कहेहि कहिं तुए एशे मणिबंधणुक्किणणामहेए लाअकीए अंगुलीअए शमाशादिए ।** [अरे कुम्भीलक कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम् ।]

पुरुषः—(भीतिनाटितकेन) **पशीदंतु भावमिश्शे । हगे ण ईदिशकम्मकाली ।** [प्रसीदन्तु भावमिश्राः । अहं नेदृशकर्मकारी ।]

हिन्दी-अनुवाद—[छठा अङ्क] (इसके बाद नगररक्षक श्याल (सुपरिटेंडेंट पुलिस) और पीछे बँधे आदमी को लेकर दो सिपाही मंच पर दिखते हैं । सिपाही (पीटकर) रे चोर, बता, कहाँ तुझे यह सरकारी अँगूठी मिली जिस पर मणि जड़ी है तथा नाम खुदा है ?

संस्कृत-टीका—(अथ) **षष्ठः अङ्कः ।** ततः तत्पश्चात् । **प्रविशति** रङ्गे दृश्यते । **नागरिकः** नगररक्षकः । **श्यालः** तन्नामा अधिकारी । **पश्चात्** (तस्य) पृष्ठतः । **बद्धः** (बन्धननियमितः) च सः **पुरुषः** (जनः) च तम् । **आदाय** गृहीत्वा । **रक्खियो** रक्षापुरुषौ । च । **रक्खिणौ** रक्षापुरुषौ । **ताडयित्वा** आहत्य । **अरे रे** (क्रोधे) । **कुम्भीलक** चोर । **कथय** वद । **कुत्र** क्व । **त्वया । एतत्** इदम् (पुरः निहितम्) । **मणेः** रत्नस्य **बन्धनम्** बद्धता यत्र (मणिखटितम्) तादृक् च **उत्कीर्णम्** व्यक्तीकृतम् **नामधेयम्** नाम तादृशम् यत्र । **राजकीयम्** राज्ञः । **अङ्गुलीयकम्** मुद्रिका । **समासादितम्** प्राप्तम् ।

हिन्दी व्याख्या—नागरिक का अर्थ नगर-निवासी चतुर आदि तो होता ही है, नगररक्षक भी होता है । नगर की रक्षा का भार पहले राजा के साले पर होता था । अतः वह अधिकारी "श्याल" के नाम से प्रसिद्ध था । भले ही राजा का साला न हो । साला राजा का निकट सम्बन्धी अतः परम विश्वसनीय माना जाता था । नगर में राजा की रक्षा निकट से करनी होती थी क्योंकि अकसर वहाँ राजा रहता था; सगे संबंधी से धोखा कम होगा, यह माना जाता था । पुलिस का निरपराध को पीटने का हथकंडा आजकल की तरह कालिदास के समय में भी और शायद अधिक मात्रा में और अधिक निरंकुश रूप में था ।

हिन्दी-अनुवाद—पुरुष (डर का अभिनय कर)—सरकार, प्रसन्न हों; मैं ऐसा काम करने वाला नहीं हूँ ।

संस्कृत-टीका—**पुरुषः** (बद्धः) जनः । **भीत्याः** भयस्य **नाटितकेन** अभिनयेन (वदति यत्) । **प्रसीदन्तु** सकृपाः भवन्तु । **भावमिश्राः** मान्यतराः । **अहम्** । न ईदृशम् (नीचम्) तत् **कर्म** (कृत्यम्) करोति तच्छीलः ।

प्रथमः—किं सोहणे बह्मणोत्ति कलिअ रञ्जा पडिग्गहे दिण्णे। [किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः।]

पुरुषः—सुणाध दाणिं। हगे शक्कावदालब्भंतरालवाशी धीवले। [शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः।]

द्वितीयः—पाडच्चल किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा। [पाटच्चर किमस्माभिर्जातिः पृष्टा।]

श्यालः—सूअअ कहेदु शव्वं अणुक्कमेण। मा णं अंतरा पडिबंधह। [सूचक कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनमन्तरे प्रतिबन्धय।]

उभौ—जं आवुत्ते आणवेदि। कहेहि। [यदावुत्त आज्ञापयति। कथय।]

हिन्दी अनुवाद—पहला (सिपाही)—"अच्छ ब्राह्मण हो" यह मानकर राजा ने क्या दान दिया है?

संस्कृत टीका—**प्रथमः** एकः (रक्षापुरुषः वदति यत्) **किम्**। **शोभनः** श्रेष्ठः **ब्राह्मणः** विप्रः। **इति** एवम्। **कलयित्वा** मत्वा। **राज्ञा** नृपेण। **प्रतिग्रहः** दानम्। **दत्तः** अर्पितः।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ व्यंग्य है। आजकल की तरह ही जिस पर शक हुआ उस अपराधी को पीटा और उसकी हर बात का मजाक उड़ाकर उसका अपमान किया। यह पुलिस का कृत्य कालिदास-काल में भी था।

हिन्दी-अनुवाद—पुरुष (बद्ध)—सुनें अब (जरा)। मैं शक्रावतार के अन्दर का रहने वाला मछुआ हूँ।

संस्कृत-टीका—**पुरुषः** (बद्धः) जनः (वदति यत्)। **शृणुत** आकर्णयत (यूयम्) **इदानीम्** अधुना। **अहम्**। **शक्रावतारस्य** तन्नामकस्थानस्य **अन्तराले** मध्ये **वसति** इति। **धीवरः** कैवर्त्तः।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरा (सिपाही)—चोर, क्या हमने जात पूछी है?

संस्कृत-टीका—**द्वितीयः** अपरः (रक्षापुरुषः) (वदति यत्) (रे) **पाटच्चर** चौर **किम् अस्माभिः**। **जातिः**। **पृष्टा**।

हिन्दी अनुवाद—श्याल—सूचक, क्रम से सब कहने दो; इसे बीच में मत टोको।

संस्कृत टीका—**श्यालः** नगररक्षाधिकारी। (हे) **सूचक** (प्रथमस्य रक्षापुरुषस्य नाम) **कथयतु** वदतु (चौरः)। **सर्वम्** सकलम् (घटितम्)। **अनुक्रमेण** क्रमशः। **मा** न। **एनम्** इमम्। **अन्तरे** मध्ये। **प्रतिबन्धय** बाधाम् देहि।

हिन्दी-व्याख्या—श्याल पुलिस-अधीक्षक, नगर कोतवाल या जिलाधीश है। सिपाही, अपने अफसर के सामने अपनी कारगुजारी बढ़-चढ़कर दिखाने के लिये मारने व्यंग्य करने और अपमानित करने में प्रवृत्त हुये थे। अधिकारी को आशा हुई है कि धीवर की कथा से कुछ तथ्य प्राप्त होगा। सूचक, पहले सिपाही का नाम है। "सूचक" (सूचना देने वाला) पद जैसा है; सूबेदार, जमादार जैसे नामों की तरह है।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—कह जैसा बहनोई (अधिकारी) कह रहे हैं।

पुरुषः—अहके जालुग्गालादिहिं मच्छबंधणोवाएहिं कुडुंबभलणं कलेमि। (अहं जलोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।)

श्यालः—(विहस्य) विशुद्धो दाणिं आजीवो। [विशुद्ध इदानीमाजीवः।]

पुरुषः—

शहजे किल जे विणिंदिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकंपामिदु जेव्व शोत्तिये॥ १॥

[सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः॥]

संस्कृत-टीका—**उभौ** द्वौ (अपि) रक्षापुरुषौ (वदतः यत्) **यद्**। **आवुत्तः** भगिनीपतिः **आज्ञापयति** वदति (तत्) **कथय** वद।

हिन्दी-व्याख्या—लगता है, "आवुत्त" शब्द प्राचीन काल में "महाशय" के लिये आता था; धीरे-धीरे भगिनी-पति के अर्थ में रूढ़ हो गया। कालिदास के समय तक यह रूढ़ि नहीं आने पाई होगी। "श्याल" पद से "साले" का बोध होता है, अतः इससे चिढ़ने वाले अधिकारी को इसका उल्टा "आवुत्त" कहने का रिवाज मातहतों में हो सकता है। यह भी हो सकता है कि राजा जैसे अपने साले को अधिकारी बनाता था, वैसे ही वह अधिकारी प्रमुखतः अपने सालों को सिपाही बनाता हो जो उसे "आवुत्त" कहते हों जिससे अफसर के लिये यह संबोधन "सर" या "श्रीमान्" की तरह चल पड़ा हो।

हिन्दी-अनुवाद—पुरुष (बद्ध)—मैं जाल और कटिया आदि मछली फाँसने के साधनों से अपने परिवार का भरण पोषण करता हूँ।

संस्कृत-टीका—**पुरुषः** (बद्धः) जनः। **अहम्**। **जालोद्गालादिभिः** जालबडिशप्रभृतिभिः **मत्स्यानाम्** मीनानाम् **बन्धनस्य** ग्रहणस्य **उपायैः** साधनैः। **कुटुम्बस्य** परिवारस्य **भरणम्** पालनम्। **करोमि** विदधामि।

हिन्दी अनुवाद—श्याल (मुस्कराकर)—जीविका बहुत पवित्र है।

संस्कृत-टीका—**श्यालः** रक्षाधिकारी। **विहस्य** सस्मितम् (वदति यत्)। **विशुद्धः** सुपवित्रः। **इदानीम्** (वाक्यालङ्कारे)। **आजीवः** जीविकासाधनम्।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ अफसर भी मजाक उड़ा रहा है। उस समय मछुये का पेशा बहुत बुरा माना जाता था।

हिन्दी अनुवाद—पुरुष—कहा गया है कि जन्म के साथ प्राप्त जो कार्य बहुत निन्दित होता है, वह भी (निश्चय ही) नहीं छोड़ना चाहिये। वेद का विद्वान् पशुओं की हत्या के कार्य से भयंकर होता हुआ (भी) दया से कोमल (हृदय वाला) ही माना जाता है।

अन्वय—यत् सहजम् कर्म विनिन्दितम् किल तद् खलु न विवर्जनीयम्, पशुमारणकर्मदारुणः श्रोत्रियः अनुकम्पामृदुः एव।

श्यालः—तदो तदो। [ततस्ततः ।]

पुरुषः—एक्कश्शिं दिअशे खंडशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव तश्श उदलब्भंतले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ पच्छा अहके शे विक्कआअ दंशअंते गहिदे भावमिश्शेहिं । मालेह वा मुंचेह वा । अअं शे आअमवुत्तंते । [एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितः । यावत्तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः । मारयत वा मुञ्चत वा । अयमस्यागमवृत्तान्तः ।]

संस्कृत टीका—**पुरुषः** बद्धः जनः (वदति) **यत्**। **सहजम्** जन्मना प्राप्तम् **कर्म** कार्यम् (जीविकासाधनम्)। **विनिन्दितम्** लोकनिन्दापात्रम्। **किल** जनैः कथ्यते। **तत्** (कर्म) **खलु** निश्चयेन। **न**। **विवर्जनीयम्** त्यक्तव्यम्। **पशूनाम्** जन्तूनाम् **मारणम्** हत्या एव **कर्म** कार्यम् तेन **दारुणः** कठोरः (सन् अपि) **श्रोत्रियः** छान्दसः। **अनुकम्पया** कृपया। **मृदुः** **कोमलः** **एव** कथ्यते।

हिन्दी व्याख्या—जन्मजात कार्य जीव हिंसा को यज्ञ-कर्त्ता नहीं छोड़ता यद्यपि वह लोक-निन्दित है अतः मुझे भी लोक-निन्दित मछलियों को मारने का पेशा नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि यह मुझे पैदा होने के साथ-साथ मिला है। बौद्ध आदि के द्वारा जीवहिंसा निन्दित है। गीता में इस भाव से मिलता जुलता भाव आया है कि अपने धर्म में मरना भी अच्छा है :—"स्वधर्मे निधनं श्रेयः।" "श्रोत्रिय" श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये है जो जन्मना तो ब्राह्मण हो ही, संस्कार और विद्या प्राप्त कर कर्मणा भी हो :—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद् द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय एव च ॥

छन्द—२।१८ द्रष्टव्य। **अलङ्कार**—अप्रस्तुतप्रशंसा।

हिन्दी-अनुवाद—आगे (कहो); आगे (कहो)।

संस्कृत टीका—**श्यालः** नगररक्षकः अधिकारी (वदति यत्) **ततः** तत्पश्चात्।

हिन्दी-अनुवाद—पुरुष (कैदी)—एक दिन मैंने रोहू मछली काटी। तभी उसके पेट के अन्दर रत्न से चमकती हुई यह अँगूठी देखकर बाद में मैं उसको बेचने के लिए दिखाता हुआ सरकारों के द्वारा पकड़ा गया। मारें वा छोड़ें; इसके आने की कहानी यह है।

संस्कृत टीका—**पुरुषः** (बद्धः धीवरः) जनः (वदति यत्)। **एकस्मिन्** कस्मिंश्चित्। **दिवसे** दिने। **खण्डशः**। **रोहितमत्स्यः** रोहितनामकः मीनः। **मया**। **कल्पितः** खण्डितः **यावत्** तदा। **तस्य** (मत्स्यस्य)। **उदरस्य अभ्यन्तरे** अन्तः। **इदम्** पुनः निर्दिष्टम्। **रत्नेन** मणिना **भासुरम्** भास्वरम्। **अंगुलीयकम्** मुद्रिकाम्। **दृष्ट्वा** अवलोक्य। **पश्चात्** तदुपरि। **अहम्**। **तस्य** (अंगुलीयकस्य)। **विक्रयाय**। **दर्शयन्**। **गृहीतः** बद्धः। **भावमिश्रैः** बुधवरैः (भवद्भिः)। **मारयत** घ्नत। **वा** अथवा। **मुञ्चत** त्यजत। **वा** **अयम्** (**उक्तः**)। **अस्य** (अंगुलीयकस्य) **आगमस्य** प्राप्तेः **वृत्तान्तः** कथा।

श्यालः—जाणुअ, विस्सगंधी गोहादी मच्छबंधो एव्व णिस्संसअं अंगुलीअअदंसण शे विमरिसिदव्वं। राअउलं एव्वं गच्छामो। [जानुक विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्। अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः।]

रक्खिणौ—तह। गच्छ अले गंडभेदअ। [तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक।] (सर्वे परिक्रामन्ति)

हिन्दी व्याख्या—"खण्डशः" का भाव "कल्पित" में आ जाता है पर मछुये की बोली (प्राकृत) के कारण दोष नहीं है। "यावत्" जब के अर्थ में है, हिन्दी में "तब" या "तभी" से भी अनूदित हो सकता है। "वा" का दो बार प्रयोग ध्यान देने योग्य है। जितने शब्दों में विकल्प रखना होता है उनके बाद इसका प्रयोग करना चाहिये। इसी तरह समुच्चय के अर्थ में "च" हर जुड़ने वाले शब्द के अन्त में आता है। संक्षेप के लिये अंतिम वाले "वा" या "च" को छोड़कर शेष हटा दिये जाते हैं।

हिन्दी अनुवाद—नगर-रक्षाधिकारी—(हे) जानुक (नाम)। यह निःसंदेह कच्चे मांस की (पसीने की) गंध वाला, गोह खाने वाला और मछली पकड़ने वाला ही है। अंगूठी देखने की इसकी बात की पुष्टि करनी है। राजमहल ही चलते हैं।

संस्कृत टीका—श्यालः नरगक्षाधिकारी (वदति यत)। (हे) जानुक। **विस्रस्य** आममांसस्य गन्धः अस्य। **गोधाम्** अत्तुम् शीलम् अस्य। **मत्स्यान्** मीनान् बध्नाति असौ। **एव**। **निर्गतः संशयः** संदेहः यस्मात् तत् यथा स्यात् तथा (निः संदेहम्)। **अङ्गुलीयकस्य** मुद्रिकायाः **दर्शनम्** वीक्षणम्। **अस्य** (धीवरस्य)। **विमर्शयितव्यम्** प्रमाणान्तरेण परीक्षणीयम् सत्यम् वा न वा। **राज्ञः** नृपस्य **कुलम्** वंशम् (प्रासादम्) **एव गच्छामः** व्रजामः।

हिन्दी व्याख्या—जानुक, नाम है। गोधा (गोह), खूब बड़ी छिपकली की तरह का एक जन्तु है। कहते हैं इसे रस्सी में बाँधकर दीवालपर फेंक देने से यह इस तरह चिपट जाती है कि रस्सी पकड़कर आदमी चढ़ सकता है जिससे प्राचीन काल में किले पर आक्रमण करने वाले या चोर ऊपर चढ़ने के लिये इसे काम में लाते थे। ताकत की जड़ी-बूटी बेचने वाले पटरी के घूमते दूकानदार इसका तेल बेचते और इसे दिखाते फिरते हैं। मछुये होने की बात तो गंध से सिद्ध हो गई; अँगूठी की बात राजा से पूछने पर ही पता चल सकता है, अतः राजा से मिलने का उपक्रम किया जाता है। मछुये नदी-तट और उस तरफ के जंगलों में रहते और मछली, गोह आदि पकड़ते बेचते हैं, सम्पर्क से वे उनका खाद्य बन जाती हैं। शुरुआत होता है उनके न बिकने पर पेट चलाने के लिये खाने से।

हिन्दी-अनुवाद—सिपाही—जी अच्छा; जा (तुझे छोड़ दिया गया) अबे चोट्टे। (सब घूमते हैं)

संस्कृत टीका—**रक्षिणौ** रक्षापुरुषौ (वदतः यत)। **तथा** आम्। **गच्छ** व्रज। **अरे** रे (क्रोधे तिरस्कारे वा) **गण्डभेदक** चौर (संबुद्धौ)। **सर्वे** सकलाः (श्यालः रक्षापुरुषौ बद्धः जनः च)। **परिक्रामन्ति** गमनम् नाटयन्ति।

श्यालः—सुअश्र इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिवालह जाव इमं अङ्गुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि । [सूचक इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि ।]

उभौ—पविसदु आवुत्त शामिपशादश्श ! [प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय ।]

(इति निष्क्रान्तः श्यालः)

प्रथमः—जाणुअ, चिलाअदि खु आवुत्ते । [जानुक चिरायते खल्वावुत्तः ।]

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "जा" से आशय है कि भाग्य से तू इस जाँच में बच गया है; अभी छोड़ा नहीं गया है; यह आगे स्पष्ट है ।

हिन्दी-अनुवाद—नगर-रक्षाधिकारी—(हे) सूचक, नगर-द्वार पर सावधान होकर इस (धीवर) पर तब तक नजर रखना जब तक मैं स्वामी से इस अँगूठी के बारे में मिलने तक (की बात) निवेदन कर और फिर आदेश की प्रतीक्षा करके निकल न आऊँ ।

संस्कृत-टीका—**श्यालः** नगररक्षाधिकारी (वदति यत्) । (हे) **सूचक** । **इमम्** (बद्धम् धीवरम्), **गोपुराख्ये द्वारे** (नगरद्वारे) । **न प्रमत्तौ** असावधानी (सावधानी) **प्रतिपालयतम्** रक्षतम् । **यावत्** यदवधि । **इदम्** प्रस्तुतम् । **अङ्गुलीयकम्** मुद्रिकाम् । **आगमनम्** माप्तिम् अनतिक्रम्य । **भर्तुः** स्वामिने । **निवेद्य** कथयित्वा । **ततः** तदुपरि । **शासनम्** आदेशम् । **प्रतीक्ष्य** गृहीत्वा । **निष्क्रमामि** निर्गच्छामि ।

हिन्दी-व्याख्या—"भर्तुः" में षष्ठी शेषिकी है; चतुर्थी भी हो सकती है । गोपुर और पुर-द्वार का अर्थ वह फाटक है जिसे बन्द कर देने से सारा शहर बन्द हो जाय जिससे रात या संकट-काल में बाहरी व्यक्ति शहर में आसानी से न घुस सके । यहाँ दोनों शब्दों को मिलाकर गोपुर द्वार बना दिया गया है । बोलने में सावधानी न रखने या अल्पशिक्षा के कारण ऐसा हो सकता है । "अप्रमत्त" निषेधात्मक शब्द है; निषेध, विधि (अनिषेध) से ज्यादा शक्तिशाली होता है; "सावधान रहकर" की अपेक्षा "असावधानी के बिना" कहने में ज्यादा जोर है । "यथागमनम्" अव्ययीभाव समास होने से क्रियाविशेषण है । "यथा" आरम्भ में होने से "सीमा" (तक) बताता है "प्राप्ति होने के क्षण तक पहुँच कर" अर्थ है । "प्रतीक्ष्य" में "प्रतीक्षा करके ग्रहण कर" अर्थ है; "गृहीत्वा" की अपेक्षा यह ज्यादा आदरार्थक है ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—जीजा जी महाराज की प्रसन्नता के लिये प्रवेश करें ।

संस्कृत-टीका—**उभौ** द्वौ (अपि रक्षापुरुषौ) (वदतः यत्) । **प्रविशतु** अन्तः गच्छतु । **आवुत्तः** भगिनीपतिः । **स्वामिनः** महाराजस्य **प्रसादाय** प्रसन्नतायै ।

हिन्दी-व्याख्या—"स्वामिन्" जैसे इन् से अन्त होने वाले पदों के बाद कोई पद आता है तो "न्" लुप्त हो जाता है । "प्रसादाय" में शुभ कामना है कि ऐसा हो कि आप राजा को प्रसन्न कर वापस आयें ।

हिन्दी-अनुवाद—यह कहकर नगर-रक्षाधिकारी निकल जाता है । पहला—(हे) जानुक, जीजा जी तो देर कर रहे हैं ।

द्वितीयः—णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो। [नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः।]

प्रथमः—जाणुअ, फुल्लंति मे हत्था इमश्श वज्झस्स शुमणो पिणद्धुं। [जानुक प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य वध्यस्य सुमनसः पिनद्धुम्।] (इति पुरुषं निर्दिशति।)

संस्कृत-टीका—इति एवम् उक्त्वा। निष्क्रान्तः निर्गतः (रङ्गात्)। श्यालः नगररक्षाधिकारी। प्रथमः एकः (रक्षी) (वदति यत्)। (हे) जानुक। चिरायते विलम्बते। खलु निश्चयेन। आवुत्तः भगिनीपतिः।

हिन्दी-अनवाद—जानते नहीं, राजाओं के पास मौका देखकर जाया जाता है। (हर समय नहीं)।

संस्कृत-टीका—द्वितीयः अपरः (रक्षी) (वदति यत्)। ननु न जानासि। अवसरे उचिते काले (एव) उपसर्पणीयाः दर्शनीयाः (प्राप्तव्याः)। राजानः नृपाः।

हिन्दी-व्याख्या—कहीं राजा नाराज न हो जाय, अतः उनका रुख देखकर जब वे खाली, चिन्तामुक्त और प्रसन्न हों, तभी उनके पास जाकर बात करनी चाहिये क्योंकि नाराज होते और अपमान करते उन्हें देर नहीं लगती; दण्ड भी दे सकते हैं। यही बात सभी अधिकारियों पर भी लागू हो सकती है। साधारण व्यक्ति के लिये भी न्यूनाधिक यह बात लागू हो सकती है जब उससे कोई काम लेना हो।

हिन्दी अनुवाद—पहला—(हे) जानुक, फाँसी के लिये इसे फूल (माला) पहनाने के लिये मेरे हाथ फड़क (खुजला) रहे हैं। (यह कहकर पुरुष की ओर संकेत करता है)

संस्कृत-टीका—प्रथमः एकः (रक्षी) (वदति यत्)। (हे) जानुक। प्रस्फुरतः स्पन्देते। मम। हस्तौ करौ। अस्य (बद्धस्य जनस्य)। वधार्थम् वधाय (घाताय)। सुमनसः पुष्पाणि (पुष्पमालाम्)। पिनद्धुम् परिधापयितुम्। इति ततः। पुरुषम् (बद्धम् जनम्)। निर्दिशति संकेतयति।

हिन्दी-व्याख्या—सिपाही के बात करने का ढंग वही जंगली है जो आज भी अकसर दिखाई देता है। बिना अधिक विचार किये उसका अपराध सिद्ध मानकर उसे मार डालने के लिये वह उत्सुक है। अपनी बुद्धि से उसने अपराध सिद्ध मान लिया है क्योंकि राजा की अँगूठी बरामद हो गई है। अशिक्षा, राजा के सम्बन्धी का सम्बन्धी (साले का साला) होने, अधिकार के मद, पेशे के वातावरण और अपनी बुद्धि ये सब बातें इस तरह की बात कहलवा रही हैं। जिसे मृत्यु-दण्ड देना या बलिदान करना होता था, उसे कनैल या गुड़हल के फूलों की माला पहनाते थे। "सुमनसः" का अर्थ फूल है; माला के अर्थ में भी मान सकते हैं। अशिक्षा और प्राकृत प्रयोग के कारण भी ऐसा प्रयोग मान सकते हैं। माला की जगह फूल का भी इस्तेमाल होता रहा हो, यह भी हो सकता है। सिपाही को यह विश्वास है कि नगररक्षाधिकारी के लौटते ही राजादेश से मछुये को मार दिया जायेगा। मनुस्मृति (८।३२३) के अनुसार रत्न (अँगूठी में रत्न है और सोना भी नव-रत्नों में आता है) के चोर का वध कर देना चाहिये :—मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति।

पुरुषः—ण अलुहदि भावे अकालणमालणं भाविदुं। [नार्हति भावोऽकारणमारणं भावयितुम्]

द्वितीयः—(विलोक्य) एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देक्खीअदि। गिद्धबली भविश्शशि शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि। [एष नः स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि।]

(प्रविश्य)

श्यालः—सुअअ मुंचेदु एसो जालोअजीवी। उववण्णो खु अंगुलीअस्स आआमो। [सूचक मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः खल्वङ्गुलीयकस्यागमः।]

ऐसी कठोर दण्डव्यवस्था से लोग डरते थे और अपराध कम होते थे। एक पक्ष और भी है। अपराध छोटा होने पर भी कठोर दंड देने से अपराध दबाये और छिपाये जाते हैं, रिश्वत का बाजार गर्म रहता है और लोग दया के मारे अपराधी को भगा देते हैं जिससे अपराध बढ़ते जाते हैं। यही कारण है कि प्राचीन दण्डव्यवस्था आज आदिम युग की और घृणित मानी जाती है।

हिन्दी-अनुवाद—आदमी (कैदी)—श्रीमान् को बिना कारण के मारने की बात नहीं सोचनी चाहिये।

संस्कृत-टीका—**पुरुषः** (बद्ध) जनः (वदति यत्)। **न**। **अर्हति**। **भावः** बुद्धिमान् न **कारणम्** हेतुः यत्र तत् च **मारणम्** वधः च तत्। **भावयितुम्** प्रापयितुम्।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरा (देखकर)—यह रहे हमारे स्वामी जो हाथ में पत्र (परवाना) लिये राजा का आदेश प्राप्त कर इस ओर मुँह किये दिख रहे हैं। तुम गिद्ध की पूजा में समर्पित होगे या कुत्ते का मुख देखोगे। (अन्दर आकर)

संस्कृत-टीका—**द्वितीयः** अपरः (रक्षी) **विलोक्य** दृष्ट्वा (वदति यत्) **एषः** अयम् (पुरतः)। **नः** अस्माकम्। **स्वामी** अधिकारी। **पत्रम् हस्ते** करे यस्य तादृशः (सन्)। **राज्ञः** नृपस्य **शासनम्** आदेशम्। **प्रतीक्ष्य** गृहीत्वा **इतः** एताम् दिशम् प्रति **मुखम्** वदनम् यस्य तादृशः (सन्) **दृश्यते** विलोक्यते। **गृध्रस्य बलिः** पूजा। **भविष्यसि**। **शुनः** कुक्कुरस्य। **मुखम्** वदनम् (वदनाभ्यन्तरम्)। **वा** अथ वा। **द्रक्ष्यसि** विलोकयिष्यसि।

हिन्दी-व्याख्या—काटकर गिद्ध या कुत्ते के लिये शरीर के टुकड़े फेंक देना प्राण-दण्ड है जो प्राचीन काल में प्राण-दण्ड योग्य समझे जाने वाले अपराधियों को दिया जाता था। रत्न की चोरी करने वाला भी इस कोटि में समझा जाता था।

हिन्दी अनुवाद—नगर-रक्षाधिकारी—(हे) सूचक, इस मछुये को छोड़ दो। अंगूठी के आने का प्रमाण निश्चित रूप से मिल गया।

संस्कृत-टीका—**श्यालः** नगररक्षाधिकारी (वदति यत्)। **सूचक** (संबुद्धौ)। **मुच्यताम्** बन्धनमुक्तः क्रियताम्। **एषः** अयम् (पुरः स्थितः)। **जालोपजीवी** धीवरः **उपपन्नः** प्रमाणितः। **खलु** निश्चयेन। **अङ्गुलीयकस्य** मुद्रिकायाः। **आगमः** आगमनम् (तत्संबद्धा कथा)।

सूचकः—जह आवुत्ते भणादि । [यथावुत्तो भणति ।]

द्वितीयः—एसे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते । [एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः ।] (इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति)

पुरुषः—(श्यालं प्रणम्य) भट्टा अह कीलिशे मे आजीवे। [भर्त्तः अथ कीदृशो मे आजीवः ।]

श्यालः—एसो भट्टिणा अगुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो। [एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः प्रसादोऽपि दापितः ।] (इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति)

हिन्दी-अनुवाद—सूचक—जीजा जी की जैसी आज्ञा ।

संस्कृत-टीका—सूचकः (कथयति यत्) । यथा । आवुत्तः भगिनीपतिः । भणति आज्ञापयति (तथा क्रियते) ।

हिन्दी अनुवाद—दूसरा—यह यम-राज के घर में घुसकर लौट आया । (यह कहकर आदमी को छोड़ देता है ।)

संस्कृत-टीका—द्वितीयः अपरः (रक्षी) (वदति यत्) । एषः अयम् (धीवरः) । यमस्य मृत्योः सदनम् गृहम् । प्रविश्य अन्तः गत्वा । प्रतिनिवृत्तः पुनः आगतः । इति ततः । पुरुषम् (बद्धम्) जनम् । परिमुक्तम् अपनीतम् बन्धनम् नियमनम् करोति विदधाति ।

हिन्दी-अनुवाद—आदमी (कैदी) (नगर-रक्षाधिकारी को प्रणाम कर)—सरकार, अब कहें, कैसी है मेरी जीविका ।

संस्कृत-टीका—पुरुषः (बद्ध) जनः । श्यालम् नगररक्षाधिकारिणम् । प्रणम्य (वदति यत्) । (हे) भर्त्तः स्वामिन् । अथ इदानीम् (वद) कीदृशः किंप्रकारकः । मे मम । आजीवः जीविका ।

हिन्दी-अनुवाद—यहाँ व्यंग्य है जो मछुये के पेशे के प्रति पहले किये गये अधिकारी के व्यंग्य का जवाब है । धीवर का आशय है कि आप मेरे पेशे की हँसी उड़ा रहे थे; अब आपने देखा कि यह पेशा कितना महान् है जो खोई राजमुद्रा लाकर सेवा करता है और जिसका प्रमाण राजा भी मानते हैं । अधिकारी के पास इसका जवाब नहीं है, अतः इससे मुँह छिपाकर वह दूसरी चर्चा छेड़ता है ।

हिन्दी-अनुवाद—नगर-रक्षाधिकारी—यह रहा अंगूठी के दाम के बराबर इनाम भी जो स्वामी ने दिलवाया है । (यह कहकर आदमी को धन देता है)

संस्कृत-टीका—श्यालः नगरक्षाधिकारी । एषः अयम् (वर्तते) । भर्त्रा स्वामिना अङ्गुलीयकस्य मुद्रिकायाः मूल्येन सम्मितः (तुल्यः) प्रसादः पुरस्कारः । अपि । दापितः अर्पितः । इति ततः । पुरुषाय (बद्धाय) जनाय । स्वम् धनम् प्रयच्छति ददाति ।

हिन्दी-व्याख्या—इनाम तुरंत दिया गया; आजकल की तरह औपचारिकताओं में देर नहीं की गई । ऐसी कार्यवाही तभी हो सकती है जब ईमानदारी हो; बीच का व्यक्ति गायब कर दे या कुछ अंश ही दे, यह डर रहता है; इसकी जाँच में व्यर्थ सिर-दर्द मोल लेना पड़ता है । उस समय कठोर दण्ड-भय से लोग गड़बड़ी नहीं करते थे या वे लेना उदारता ही नहीं व्यावहारिकता भी है ।

पुरुषः—(सप्रणामं प्रतिगृह्य) भट्टा अणुग्गहीदम्हि । [भर्तः अनुगृहीतोऽस्मि ।]

सूचकः—एशो णाम अणुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कंधे पडिट्ठाविदे । [एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः ।]

जानुकः—आवुत्त पलिदोशं कहेहि । तेण अंगुलीअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं । [आवुत्त परितोषं कथय । तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः सम्मतेन भवितव्यम् ।]

श्यालः—ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि । तस्स दंसणेण भट्टिणो अभिमदो जणो सुमराविदो । मुहुत्तअं पकिदिगंभीरो वि पज्जुस्सुअणअणो आसि । [न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि । तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः । मुहूर्त्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत् ।]

यदि मुफ्त में ही अंगूठी ले ली जाती तो भविष्य में ऐसी घटना घटने पर पाने वाला उसे तोड़ या गलाकर बेच लेता और अपराध बढ़ते । "अपि" सूचित करता है कि रिहाई तो दी ही गई है ।

हिन्दी-अनुवाद—आदमी (मछुआ) (प्रणाम-पूर्वक लेकर)—सरकार, मेरे धन्य भाग्य ।

संस्कृत-टीका—पुरुषः जनः (धीवरः) । प्रणामेन नत्या सह वर्तमानम् तत् । यथा स्यात् तथा । प्रतिगृह्य गृहीत्वा (कथयति यत्) । भर्तः स्वामिन् । अनुगृहीतः कृपापात्रीकृतः । अस्मि ।

हिन्दी अनुवाद—इसे कहते हैं कृपा कि शूली से उतार कर हाथी के कंधे पर बैठा दिया ।

संस्कृत टीका—सूचकः (वदति यत्) । एषः अयम् । नाम निश्चयेन । अनुग्रहः कृपा । यत् । शूलात् मृत्युदण्डात । अवतार्य अधः अपनीय । हस्तिनः गजस्य स्कन्धे । प्रतिष्ठापितः स्थापितः ।

हिन्दी-व्याख्या—शूल, हिन्दी की शूली है । यह मृत्यु-दण्ड देने का एक प्रकार है जिसमें एक शङ्कु (ऊपर नुकीला और नीचे धीरे-धीरे मोटा) पर अपराधी को बैठा कर उसे इस तरह नीचे लाया जाता था कि नोक मल-द्वार से घुसकर मुँह या उसके आस-पास से निकल जाय । हाथी पर बैठाना, प्रतिष्ठा की बात मानी जाती है क्योंकि वह (हाथी) कीमती होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—जानुक—प्रसाद (इनाम) कहिये । वह अँगूठी प्रिय होगी ।

संस्कृत-टीका—जानुकः (वदति यत्) । आवुत्त भगिनीपते । परितोषम् प्रसादम् । कथय वद । तेन पूर्वोक्तेन । अङ्गुलीयकेन मुद्रिकया । संमतेन अभीष्टेन (प्रियेण) । भवितव्यम् भूयेत ।

हिन्दी अनुवाद—नगर-रक्षाधिकारी—उस (अँगूठी) का बेशकीमती रत्न स्वामी को प्रिय नहीं था । ऐसा अन्दाज है । उसके अवलोकन ने स्वामी को प्रिय जन की याद दिला दी । स्वभाव से गम्भीर होते हुये भी घड़ी भर उनके नेत्र उत्कंठित हो गये थे ।

संस्कृत-टीका—श्यालः नगर-रक्षाधिकारी (वदति यत्) न । तस्मिन् (अंगुलीयके स्थितम्) । महार्हम् बहुमूल्यम् । रत्नम् मणिः । भर्तुः स्वामिनः । बहुमतम् परमादरपात्रम् । इति इदम् । तर्कयामि शङ्के । तस्य (अंगुलीयकस्य) । दर्शनेन अवलोकनेन । भर्तुः स्वामिनः । अभिमतः

सूचकः—शेविदं णाम आवुत्तका। [सेवितं नामावुत्तेन।]

जानुकः—णं भणाहि। इमस्स कारे मच्छिआभत्तणोत्ति। [ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति।] (इति पुरुषमसूयया पश्यति)

पुरुषः—भट्टालक। इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु। [भट्टारक इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु।]

प्रियः। **जनः** व्यक्तिः। **स्मारितः** स्मृतिपथम् नीतः। **मुहूर्तम्** क्षणम् (यावत्)। **प्रकृत्या** स्वभावतः **गम्भीरः** धीरः (सन्)। **अपि**। **पर्युत्सुके** उत्कण्ठिते **नयने** नेत्रे यस्य तादृशः **आसीत्**।

हिन्दी अनुवाद—सूचक—जीजा जी ने पक्की सेवा की।

संस्कृत-टीका—**सूचकः** (वदति यत्)। **सेवितम्** (नृपस्य) सेवा दर्शिता। **नाम** निश्चयेन। **आवुत्तेन** भगिनीपतिना।

हिन्दी-अनुवाद—जानुक—यों कहो कि इस धीवर-सम्राट् के (लाभ के) लिये (सेवा की)। (इसके बाद आदमी को डाह से देखता है)

संस्कृत-टीका—**जानुकः** (वदति यत्)। **ननु** अथवा। **भण** वद। **अस्य** एतस्य। **कृते** लाभाय। **मात्स्यिकानाम्** धीवराणम् **भर्तुः** स्वामिनः (सेवा दर्शिता)। **इति**। **इति** ततः। **पुरुषम्** (धीवरम्) **असूयया** मात्सर्येण। **पश्यति** विलोकयति।

हिन्दी-व्याख्या—भाव यह है कि राजा की सेवा अपने लिये की जाती है पर इस धीवर के लिये की गई क्योंकि अपना तो कुछ लाभ न हुआ जब कि इतना मरे और अपराधी होकर भी धीवर पुरस्कार पा गया। यही डाह है कि बैठे बैठाये इनाम मार ले गया और हम देखते ही रह गये। मात्स्यिक का शाब्दिक अर्थ है वह जो मछली से जीविका संपन्न करता है (मत्स्येन जीवति इति)।

हिन्दी-अनुवाद—आदमी (धीवर)—मालिक, इसमें से आधा आपके लिये (पत्र) पुष्प का मूल्य हो।

संस्कृत-टीका—**पुरुषः** जनः (धीवरः) (वदति यत्) (हे) **भट्टारक** स्वामिन्। **इतः** अस्मात् पारितोषिकात्। **अर्धम्** द्वितीयः भागः। **युष्माकम्** भवतः। **सुमनसाम्** पुष्पाणाम् **मूल्यम्**। **भवतु** अस्तु।

हिन्दी व्याख्या—धीवर, यहाँ इनाम का आधा अफसर को दे रहा है। यह स्पष्ट रूप से रिश्वत है और बताता है कि उस समय आज से भी अधिक रिश्वत का राज्य था। टिप (बख्शीश), इनाम या पहले पकड़े जाने से डरकर अब छूटने को कृपा मानकर या आगे परेशान न करें इस डर के निवारण के लिये दी गई रिश्वत में कोई अन्तर नहीं है। आपने छोड़ने की कृपा की, इसके अभिनन्दन के लिये फूल या माला से स्वागत करता पर तत्काल वे चीजें उपलब्ध न होंगी, अतः उनके बदले पैसे देता हूँ; आप स्वयं ले लेंगे। "फूल" में मिठाई आदि अन्य चीजें भी सम्मिलित हैं, आजकल की "डाली" (फल की टोकरी), पुराने "सुमन" का पर्यायवाची शब्द है। शूली के लिये फूल की चर्चा पहले सिपाही ने इसके पहले की है; उसका यह व्यंग्य पूर्ण उत्तर भी हो सकता

जानुकः—एत्तके जुज्जइ। [एतावद् युज्यते।]

श्यालः—धीवर महत्तरो तुमं पिअवस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादंबरी सक्खिअं अम्हाणं पढमसोहिदमं इच्छीअदि। ता सांडिआपणं एव्व गच्छामो। [धीवर महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः। कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमशोऽभिमतमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः।] (इति निष्क्रान्ताः सर्वे) **प्रवेशकः**।

है। शोभन (सु) मन (मन या व्यवहार) का प्रतिदान ग्रहण करें, यह अर्थ भी हो सकता है जो उतना ही व्यंग्यपूर्ण है। उत्तर कोई हो, हरएक में रिश्वत की अनिवार्यता स्पष्ट है।

हिन्दी-अनुवाद—जानुक—इतना ठीक है।

संस्कृत-टीका—**जानुकः** (वदति यत्)। **एतावत्** एतन्मात्रकम् (धनम्) **युज्यते** उचितम्।

हिन्दी व्याख्या—"युज्यते" बताता है कि सरकारी खजाने से इनाम मिलने पर दी गई रिश्वत की दर ५०% से अधिक नहीं थी; कम हो सकती है। मछुआ ठीक दर न जानता हुआ अधिक दे सकता है।

हिन्दी अनुवाद—नगर-रक्षाधिकारी—मछुये, अब (रिश्वत देने के बाद से) तू मेरा अत्यन्त प्रिय मित्र हो गया है। हमारा प्रथम-प्रथम अभीष्ट (रिश्वत) मदिरा को साक्षी बनाकर निष्पन्न होना चाहिये अतः आप मदिरा-विक्रेता की दूकान में चलें। (इसके बाद सब बाहर जाते हैं।) प्रवेशक।

संस्कृत-टीका—**श्यालः** नगर-रक्षाधिकारी (वदति यत्)। (हे) **धीवर** कैवर्त्त (संबुद्धौ)। **महत्तरः** विशेषतरः। **त्वम्**। **प्रियः** (हृद्यः) च **वयस्यकः** (सखा) च। **इदानीम्** अधुना। **मे** मम। **संवृत्तः** जातः। **कादम्बरी** मदिरा **साक्षिणी** दर्शिका यत्र तत् यथा स्यात् तथा। **अस्माकम्** आवयोः। **प्रथमशः** प्रथमम् वारम्। **अभिमतम्** प्रियम्। **इष्यते** अपेक्ष्यते। **तत्** अतः **शौण्डिकस्य** मदिराविक्रेतुः **आपणम्**। **एव**। **गच्छामः** व्रजामः। **इति** ततः। **निष्क्रान्ताः** निर्गताः। **सर्वे** सकलाः (अभिनेतारः)। **प्रवेशकः**। **ततः** तदुपरि। **प्रविशति** रङ्गे दृश्यते। **आकाशस्य** नभसः **यानेन** मार्गेण **सानुमती** एतत्संज्ञका। **नाम** (वाक्यालङ्कारे) **अप्सराः** स्वर्गस्त्री।

हिन्दी व्याख्या—अफसर इतनी रिश्वत के बाद शराब का दाम और वसूलना चाहता है जिससे अफवाह न उड़ाये कि रिश्वत दी है। अफसर विशेषतः पुलिस के अफसर कैसी निर्लज्जता से मद्य-पान करते हैं, यह कालिदास के समय में देखा जा सकता है। जिस दूकान में मछुये और अन्य हीन स्तर के शराबी शराब पीते हैं, उसी मद्य के लोभ से अधिकारी घुसने से अपने को रोक नहीं पाता। कत् और अम्बर क्रमशः गन्दे (काले, नीले, और वस्त्र के पर्याय होने से "अस्त-व्यस्त" या नीले कपड़े वाला "अर्थ" "कदम्बर" पद से निकलता है (कत् अम्बरम् यस्य सः)। "नीले कपड़े वाले" से "बलराम" अर्थ निकलता है क्योंकि वे नीले कपड़े पहनते थे। कदम्बर वाली (कदम्बरस्य इयम्) "कादम्बरी" कहलाती है। गन्दे वस्त्र वाले (नीच, प्रमत्त आदि) या बलराम को प्रिय होने से, शराब को यह नाम मिला है। पीने वाले नशे में धुत्त होकर नाली, कीचड़ आदि में गिरकर अपने वस्त्रों की दुर्दशा कर लेते हैं, इस तरह भी यह कदम्बर की हो सकती है। मदिरा के अर्थ में रूढ़ हो

(प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती नामाप्सराः)

सानुमती—णिव्वट्टिदं मए पज्जाअणिव्वत्तणिज्जं अच्छरातित्थसणिज्झं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति। संपदं इमस्स राएसिणो उदंतं पच्चक्खीकरिस्सं। मेणआसंबंधेण सरीरभूदा मे सउंदला। ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठपुव्वम्हि। (समन्तादवलोक्य) किं णु खु उदुच्छवे वि णिरुच्छवारंभं विअ राअउलं दीसइ। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं। किं दु सहीए आदरो मए माणइदव्वो। होदु इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सवत्तिणी भविअ उवलहिस्सं। [निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थसांनिध्यं यावत्साधुजनस्याभिषेककाल इति। सांप्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। मेनकासंबन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वास्मि। किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम्। किं तु सख्या आदरो मया मानयितव्यः। भवतु अनयोरेवोद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये।] (इति नाट्येनावतीर्य स्थिता) (ततः प्रविशति चूताङ्कुरमवलोकयन्ती चेटी अपरा च पृष्ठतस्तस्याः)

जाने से यह मादक वस्तु और मादक नाम के रूप में प्रयुक्त होती है। बाण-भट्ट के प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम व उसकी नायिका का नाम "कादम्बरी" है। "शुण्डा पण्यम् अस्य इति शौण्डिकः" व्युत्पत्ति से शुण्डा (शराब) जिसके बेचने का सौदा है, वह शौण्डिक कहलाता है। नीच (यहाँ दासियाँ) पात्रों के द्वारा दो अङ्कों के बीच भूत या भविष्य का समाचार देना "प्रवेशक" है :—

यन्नीचैः केवलं पात्रैर्भाविभूतार्थसूचनम्।
अङ्कयोरुभयोर्मध्ये स विज्ञेयः प्रवेशकः॥ (सुधाकर)

"देव यान" व "पितृ-याण" शब्द उपनिषद में मिलते हैं जहाँ "यान" का अर्थ मार्ग है; यहाँ भी वही अर्थ प्रतीत होता है। इसका एक अर्थ वायु-यान भी हो सकता है। "अप्सरस्" शब्द नपुंसकलिङ्ग बहुवचन में प्रायः होता है; यहाँ एकवचन में आया है।

इसके बाद आकाश के रास्ते आई सानुमती-नामक अप्सरा दिखती है।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—जब तक सज्जनों के नहाने का समय है तब तक के लिये बारी-बारी की जाने वाली अप्सरस्तीर्थ की देख भाल मैंने कर ली अब इन राजर्षि (दुष्यन्त) का समाचार आँखों से देखूँगी। मेनका से सम्बन्ध होने से शकुन्तला मेरे लिये साक्षात् (मेरी) देह है और उस (मेनका) ने बेटी के लिये पहले सहेजा भी है। क्या बात है कि ऋतु-उत्सव होने पर भी राजमहल उत्सव आरम्भ से रहित-सा दिखता है। मुझमें ध्यान द्वारा सब जानने की सामर्थ्य है तो पर सहेली (मेनका) के (दिये) सम्मान का मुझे सम्मान करना है। छोड़ो यह सब। इन्हीं दो मालिनों में (के बीच) अन्तर्धान-क्रिया से पास ही छिपी रहकर हाल लूँगी। (इसके बाद अभिनय से उतरकर स्थित हो जाती है।) (इसके बाद आम का बौर देखती हुई दासी और उसके पीछे दूसरी दासी दिखती हैं)

हिन्दी व्याख्या—सज्जनों को हमारे तीर्थ में नहाने में कोई कष्ट न उठाना पड़े या कोई दुष्ट

प्रथमा

आतम्महरिअपंडुर जीविदसत्तं वसंतमासस्स ।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि ॥२॥
[आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसत्यं वसन्तमासस्य ।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि ॥]

घुसकर उपद्रव न करे इसके लिये हर अप्सरा की डयूटी लगती थी कि वह बारी-बारी अप्सरस्तीर्थ की देखभाल करे। आजकल ऐसे अधिकारी को डयूटी अफसर या आर्डर्ली अफसर कहते हैं। मेनका और सानुमती एक जाति की (अप्सरा) हैं, अतः सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। अत्यन्त प्रिय को अपना शरीर कहा जाता है। आशय है, जिस तरह शरीर दुनिया में सबसे प्यारा है, उसी तरह शकुन्तला मुझे प्यारी है। ऋतु से यहाँ वसंत-ऋतु से तात्पर्य है जिसका पता आगे चलेगा "होली," "मे फेयर" आदि वसंत के त्यौहार (उत्सव) आज भी होते हैं। उत्सव न होना शकुन्तला की याद आ जाने से राजा के शोक का कारण है। ध्यान से सब समाचार जानने की अपेक्षा आँखों से देख कर जानना अच्छा बताया गया है क्योंकि उसके लिये दौड़ना पड़ता है। ध्यान से देखे समाचार में अनुष्ठान की त्रुटि से हुई गल्ती का पता न लगे, ऐसा भी हो सकता है। फिर ध्यान से तो मेनका भी जान सकती है। "सख्या आदरः" से तात्पर्य है सखी ने जो आदर दिया है या सखी के प्रति जो आदर मुझे दिखाना चाहिये। शकुन्तला के सम्बन्ध में राजधानी के समाचार के लिये सहेजने का उत्तरदायित्व सौंपने के योग्य समझना मेनका के द्वारा दिया गया आदर है। वह काम पूरा करना मेनका के प्रति आदर दिखाना है। बड़े या बराबर के लोग कोई काम सौंपें तो यह आदर की बात मानी जाती है। तिरस्करिणी वह विद्या है जिससे अपने को छिपाये रखकर सब कुछ देखा जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—(पहला-दासी) हल्के लाल, हरे और पीले, सचमुच वसंत-माह के जीवन ऋतु के मङ्गल (हे) आम-बौर, तुम्हारा दर्शन कर लिया; तुम्हारा अभिनंदन करती हूँ।

अन्वय—आताम्रहरितपाण्डुर सत्यम् वसन्तमासस्य जीवित ऋतुमङ्गल (हे) चूतकोरक दृष्टः असि। त्वाम् प्रसादयामि।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** एका (चेटी, वदति) **आताम्र** ईषत् अरुण **हरितपाण्डुर** पीत। **सत्यम्** वस्तुतः। **वसन्तमासस्य** मधुमासस्य। **जीवित** जीवन। ऋतोः **मङ्गल** प्रशस्त। **चूतस्य** आम्रस्य **कोरक** मञ्जरि। **दृष्टः** अवलोकितः। **असि**। **त्वाम्**। **प्रसादयामि** स्वागतम् व्याहरामि।

हिन्दी-व्याख्या—"आ" को ताम्र, हरित और पाण्डुर—तीनों के साथ लगाने पर तीनों रंग हल्के माने जा सकते हैं। "सत्यम्" शपथपूर्वक कहने के लिये है। "कसम से" कहने की रीति अब भी है। वसन्त के दो मास होते हैं; यहाँ सामान्य अर्थ में एक वचन से हर मास का अर्थ निकल सकता है। मंजरी पहली बार दिखी है। इसे हर्षविभोर होकर वर्णन करने से लगता है कि दासियाँ बहुत समय से पहला बौर देखने के लिये लालायित थीं। ऋतु के लिये पहली मंजरी का निकलना शुभ सगुन (मंगल) है।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य। **अलङ्कार**—स्वभावोक्ति और रूपक।

द्वितीया—**परहुदिए किं एआइणी मंतेसि ?।** [परभृतिके किमेकाकिनी मन्त्रयसे ?।]

प्रथमा—**महुअरिए चूदकलिअं देक्खिअ उम्मत्तिआ परहुदिआ होदि ।** [मधुकरिके ! चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति ।]

द्वितीया—(सहर्ष त्वरयोपगम्य) **कहं उवट्ठिदो महुमासो ।** [कथमुपस्थितो मधुमासः ।]

प्रथमा—**महुअरिए । तव दाणिं कालो एस। मदविब्भमगीदाणं ।** [मधुकरिके ! तवेदानी काल एष मदविभ्रमगीतानाम्।]

हिन्दी-अनुवाद—दूसरी (चेटी)—(हे) परभृतिका, क्या अकेली अकेली कह रही है ?

संस्कृत-टीका—**द्वितीया** अपरा (चेटी) (वदति यत) (हे) **मधुकरिके** (सबुद्धौ नाम्ना)। **किम्** केन कारणेन । **एकाकिनी** केवला (सती)। **मन्त्रयसे** वदसि ।

हिन्दी-व्याख्या—परभृतिका का अर्थ नन्हीं कोयल (कोयलिया) है। दासियों का नाम नाटकों में ऋतु के अनुकूल आता है, इससे काव्यमयता बढ़ती है । साहित्य-दर्पण (६।१४—१४२) के अनुसार : "चेटचेटिकयोस्तथा । वसन्तादिषु वर्ण्यस्य वस्तुनो नाम यत् भवेत् ।"

हिन्दी अनुवाद—पहली—(हे) मधुकरिका, आम्र बौर देखकर कोयल पागल हो जाती है।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** एक (चेटी) (वदति यत्)। (हे) **मधुकरिके** (संबुद्धौ) । **चूतस्य** आम्रस्य **कलिकाम्** मञ्जरीम् । **दृष्ट्वा** विलोक्य । **उन्मत्ता** वातुला । **परभृतिका** कोकिला (अहम् परभृतिका नाम चेटी च)। **भवति** ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ दूसरी दासी का नाम मधुकरिका है जिसका अर्थ नन्हीं भ्रमरी (भौंरों की मादा) है। "परभृतिका" का अर्थ कोयल भी होने से पहली चेटी अपने नाम का कौशल-पूर्ण प्रयोग कर रही है।

हिन्दी-अनुवाद——दूसरी (आनन्द के साथ शीघ्रता से पास पहुँचकर) क्या कहा, आ गया वसन्त ?

संस्कृत-टीका—**द्वितोया** अपरा (चेटो मधुकरिका) **हर्षेण** मोदेन **सह** वर्त्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा । **त्वरया** शीघ्रतया । **उपगम्य** समीपे गत्वा (वदति यत्)। **कथम्** किम् (उक्तम्)। **उपस्थितः** प्राप्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—कितनी ललित मान्यता है कि वसन्त ऋतु ज्योतिषियों के कहे अनुसार न मानकर उस क्षण से माना जायेगा जब आम में पहला बौर दिखे। प्रत्यक्ष प्रमाण को वरीयता दी गई है।

हिन्दी-अनुवाद—पहली—(हे) मधुकरिका, अब यह तुम्हारा मस्ती, विलास और गीतों का समय (मौसम) है ।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** (परभृतिका) (वदति यत्) (हे) **मधुकरिके** (संबुद्धौ) **तव** (कृते) **इदानीम्** अधुना । **कालः** समयः । **एषः** अयम् **मदः** उन्मदः च **विभ्रमः** विलासः च **गीतानि** गानानि च मदविभ्रमगीतानि, तेषाम् ।

द्वितीया—सहि अवलंबस्स मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवअच्चणं करेमि। [सखि, अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि।]

प्रथमा—जइ मम वि खु अद्धं अच्चणफलस्स। [यदि ममापि खल्वर्धमर्चनफलस्य।]

द्वितीया—अकहिदे वि एदं संपज्जइ। जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुवा ठ्ठिदं सरीरं (सखीमवलम्ब्य स्थिता चूतांकुरं गृह्णाति)। अए अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो ऐत्थ बंधणभंगसुरभो होदि (इति कपोतहस्तकं कृत्वा) [अकथितेऽप्येतत्संपद्यते। यत एकमेव नौ जीवितं द्विधा स्थितं शरीरम्। अये अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति।]

हिन्दी व्याख्या—"मदविभ्रमगीत" का अर्थ "मद से उत्पन्न विभ्रम-गीत" भी लगाया जा सकता है। यहाँ मदादि का सम्बन्ध भ्रमरी व चेटी दोनों के साथ बैठ सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरी (दासी)—(हे) सखी, मुझे सहारा दो; जरा पैर के अगले भाग (पंजे) पर खड़ी होकर आम्र-बौर लेकर कामदेव की पूजा करूँ।

संस्कृत-टीका—द्वितीया (दासी) (वदति यत्)। **सखि** (हे) आलि। **अवलम्बस्व** आलम्बम् देहि। **माम्**। **यावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **पादयोः** चरणयोः **अग्रे भूत्वा**। उत्थिता। **चूतस्य** आम्रस्य **कलिकाम्** मञ्जरीम्। **गृहीत्वा** उत्पाट्य। **कामदेवस्य** मदनस्य **अर्चनम्** पूजाम्। **करोमि** विदधामि।

हिन्दी-व्याख्या—कामदेव की अर्चना प्राचीन काल में जगह-जगह मिलती है; आजकल इसका सर्वथा लोप है। उस समृद्धिकाल में लोगों का ऐसी पूजा के प्रति प्रवृत्त होना स्वाभाविक था।

हिन्दी-अनुवाद—पहली—अगर पूजा के फल (पुण्य) में मेरा भी आधा भाग हो (तभी मदद करूँगी)।

संस्कृत-टीका—प्रथमा (चेटी) (वदति यत्)। **यदि** चेत्। **मम**। **अपि**। **खलु** निश्चयेन। **अर्धम्** द्वितीयः भागः। **अर्चनस्य** पूजनस्य **फलस्य** (स्यात् तदा एव अवलम्बम् दास्यामि)।

हिन्दी व्याख्या—उक्ति हँसी की और सुन्दर है। आज भी इससे मिलती-जुलती बातें सुनने को मिलती हैं।

हिन्दी अनुवाद—दूसरी (दासी)—बिना कहे भी यह तय है क्योंकि हम दोनों का जीवन एक ही है; (भले ही) शरीर दो रूपों में स्थित है। (सहेली का सहारा लेकर खड़ी होकर आम्र-बौर लेती है) अरे ! यहाँ न खिला हुआ भी आम्र-बौर वृन्त टूटने पर सुगन्धित होता है। (इसके बाद हाथ संपुटित कर)

संस्कृत-टीका—**द्वितीया**—अपरा (चेटी) (वदति यत्) न **कथिते** उक्ते (प्रतिज्ञाते) (यत् अर्द्धम् फलम् स्यात्)। अपि। **एतत्** इदम् (उक्तम् अर्द्धफलसंविभागः)। **संपद्यते** प्रतिपद्यते। **यतः**। यस्मात् कारणात्। **एकम्** एकीभूतम् (स्नेहेन)। **नौ** आवयोः। **जीवितम्** जीवनम् (प्राणाः) **द्विधा** द्विप्रकारकम्। **स्थितम्**। **शरीरम्** देहः (न तु प्राणाः)। **सखीम्** आलीम्। **अवलम्ब्य** अवलम्बम् गृहीत्वा। **स्थिता** उत्थिता (सती)। **चूतस्य** आम्रस्य **अङ्कुरम्** मञ्जरीम्।

तुमं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स गहीदधणुअस्स ।
पहिअजणजुवइलक्खो पंचब्महिओ सरो होहि ॥ ३ ॥
[त्वमसि मया चूताङ्कुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे ।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव ॥]

गृह्णाति उत्पाटयति । अये भोः । न प्रतिबुद्धः विकसितः (अविकसितः) । अपि । चूतस्य आम्रस्य प्रसवः मञ्जरी । अत्र इह (उपवने) । बन्धनात् वृन्तात् भङ्गेन उत्पाटनेन सुरभिः सुगन्धी । भवति । इति ततः । कपोतहस्तकम् कपोताकारः पारावतसमः हस्तः करः कपोतहस्तः स एव कपोतहस्तकः तम् कृत्वा विधाय ।

हिन्दी व्याख्या—हिन्दी उर्दू में प्राण एक और शरीर दो के लिये "एक जान दो कालिब" आता है। पंजे पर खड़े होने से संतुलन बिगड़ने पर गिरने का डर रहता है, अतः सहेली का सहारा लिया गया है। खिले फूल से सुगन्ध आती है। यहाँ अभी मंजरी की अवस्था है जिससे सुगन्ध का प्रश्न नहीं है। किन्तु तोड़ने पर टूटे वृन्त से सुगन्ध आती है। वृन्त, बन्धन या प्रसव-बन्धन, डोर-से लगे उस स्थल को कहते हैं जो फूल और टहनी के बीच में होती है। "कपोतहस्तक" कबूतर की तरह बनाया गया हाथ है। संगीतरत्नाकर के अनुसार करकपोत तब होता है जब आगे और पीछे के कर-भाग जुटे हों; यह प्रणाम और गुरु-संभाषण के समय करना चाहिये :—

कपोतोऽसौ करो यत्र श्लिष्टमूलाग्रपार्श्वकः । प्रणामे गुरुसंभाषे......॥

हाथ जोड़कर बीच में तोड़ी मंजरी रखने से बीच का भाग फूल गया। यों भी हाथ जोड़ने पर पंजे की आकृति कबूतर की-सी हो जाती है।

हिन्दी-अनुवाद—(हे) आम्र-मंजरी, धनुष लिये हुये कामदेव पर मैंने तुम्हें चढ़ा दिया। (अब) पथिक-लोगों (जो घर नहीं पहुँच सके हैं; वियोगी) की (वियोगी) युवती स्त्रियों को लक्ष्य बनाकर (काम का) छठा बाण बन जाओ।

अन्वय—(हे) चूताङ्कुर मया त्वम् गृहीतधनुषे कामाय दत्तः असि। (अधुना) पथिकजन-युवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरः भव।

संस्कृत-टीका—(हे) चूतस्य आम्रस्य अङ्कुर मञ्जरि (संबुद्धौ)। मया। त्वम्। गृहीतम् आत्तम् धनुः शरासनम् येन तस्मै। कामाय कन्दर्पाय। दत्तः अर्पितः। असि भवसि। (अधुना) (त्वम् पथिकजनानाम् विरहिणाम् युवतयः (पत्न्यः) लक्ष्यम् शरव्यम् यस्य तादृशः। पञ्चानाम् (प्रसिद्धानाम् कामशराणाम्) अभ्यधिकः व्यतिरिक्तः (षष्ठः)। शरः बाणः। भव एधि।

हिन्दी-व्याख्या—इस ऋतु में काम धनुष धारण किये रहता है, यह "गृहीतधनुषे" से सूचित होता है। वियोगी को वसन्त में प्रियजन की याद विशेष रूप से आती है, कवि कहते हैं कि काम के बाण पीड़ित करते हैं; वे विरही युवतियों को लक्ष्य बनाते हैं। काम के ५ बाण तो काम के पास रहते ही हैं; यहाँ आम्रमंजरी के रूप में एक बाण पैदा हो गया है, अतः इसे छठा बाण बताया गया है। "धनुष्" पद समासांत में आने पर "धन्वन्" में बदल जाता है। ("धनुषश्च" अष्टाध्यायी ५।४।१३२) तदनुसार यहाँ "गृहीतधनुषे" की जगह "गृहीतधन्वने" होना चाहिये। समासान्त-

(इति चूताङ्कुरं क्षिपति) प्रविश्यापटीक्षेपेण कुपितः)

कञ्चुकी—मा तावत् अनात्मज्ञे, देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभङ्गं किमारभसे ? ।

उभे—(भीते) पसीददु अज्जो । अग्गहीदत्थाओ वअं [प्रसीदत्वार्यः । अगृहीतार्थे आवाम् ।]

कञ्चुकी—न किल श्रुतं युवाभ्यां यद्वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च । तथा हि—

विधि का पालन जरूरी नहीं माना जाता, (समासान्तविधेरनित्यत्वात्), कहकर समाधान किया जाता है ।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य ।

अलंकार—अतिशयोक्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—इसके बाद आम्र बौर फेंकती है । (परदा न उठाकर, सीधा ही हिलाकर, क्रोधित होकर प्रवेश कर) ।

कञ्चुकी—अपने को न जानने वाली (क्या समझती है अपने को ?) बन्द कर । महाराज के द्वारा बन्द किये गये वसन्तोत्सव में तूने मंजरी तोड़ना क्यों आरम्भ कर दिया ?

संस्कृत-टीका—इति ततः । **चूतस्य** आम्रस्य **अङ्कुरम्** मञ्जरीम् । **क्षिपति** (पूजार्थम्) अस्यति । **प्रविश्य** रङ्ग आगत्य । **अपटीक्षेपेण** तिरस्करिणीतिरस्कारेण । **कुपितः** क्रुद्धः । **कञ्चुकी** काञ्चुकीयः । **मा** न । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । (रे) **अनात्मज्ञे** स्वभावानभिज्ञे । **देवेन** राज्ञा । **प्रतिषिद्धे** निषिद्धे । **वसन्तस्य** मधुमासस्य **उत्सवे** पर्वणि । **त्वम्** । **आम्रस्य** सहकारस्य **कलिकायाः** मञ्जर्याः **भङ्गम्** उत्पाटनम् । **किम्** केन हेतुना । **आरभसे** कर्तुम् प्रवर्त्तसे ।

हिन्दी-व्याख्या—किसी भी पात्र का प्रवेश या निष्क्रमण बिना पूर्व सूचना के नहीं होता (नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वा); यहाँ घबड़ाहट के कारण कंचुकी ने ऐसा किया है, इसलिये अपटीक्षेप-पूर्वक प्रवेश कहा गया है । राजा के दुःख में प्रजा को अपने त्यौहार बन्द कर देने पड़ते थे । ऐसा आदेश से अथवा प्रजा की सहानुभूति से होता था । आतंक के कारण बिना आदेश के भी ऐसा हो सकता है । आम्रमंजरी तोड़ना तक त्यौहार मनाने में सम्मिलित था ।

हिन्दी अनुवाद—दोनों (डरी हुई)—श्रीमान् क्षमा करें । हम दोनों को (उक्त) बात का पता न था ।

संस्कृत-टीका—**उभे** द्वे (चेट्यौ) । **भीते** भयपूर्णे (सत्यौ) (वदतः वत्) **प्रसीदतु** मर्षयतु । **आर्यः** । **न** गृहीतः प्राप्तः **अर्थः** वस्तु (निषेधवृतान्तः) याभ्याम् तादृशे आवाम् ।

हिन्दी-अनुवाद—तुम दोनों को नहीं मालूम कि वसन्त में फूलने वाले वृक्षों ने और उन पर शरण लेने वाले पक्षियों ने भी महाराज के आदेश को प्रमाण माना है । देखो तो :—

संस्कृत-टीका—**कञ्चुकी** काञ्चुकीयः (वदति यत्) । **न** । **किल** (वाक्यालङ्कारे) । **श्रुतम्** ज्ञातम्, **युवाभ्याम्** (चेटीभ्याम्) । यत् । **वासन्तिकैः** वसन्ते मधौ पुष्पन्ति इति । **तरुभिः** वृक्षैः **अपि** ।

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका वध्नाति न स्वं रजः
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया ।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ॥४॥

देवस्य महाराजस्य (दुष्यन्तस्य)। **शासनम्** आज्ञा । **प्रमाणीकृतम्** प्रमाणम् इति विहितम् (स्वीकृतम्) । **तदाश्रयिभिः** तेषु (वृक्षेषु) निवासिभिः । **पत्त्रिभिः** खगैः । च । **तथा हि** उदाह्रियते ।

हिन्दी-व्याख्या—"प्रमाणीकृत" का अर्थ है अप्रमाण को प्रमाण बनाना । यहाँ अप्रमाण की स्थिति नहीं है अतः प्रयोग चिन्त्य है।

अलङ्कार—उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति ।

हिन्दी अनुवाद—आम्र-वृक्षों की मञ्जरी देर से निकली हुई होने पर भी अपना पराग नहीं दिखाती । यद्यपि कुरवक तैयार खड़ा है, तथापि वह (स्थिति) कली की दशा में है । शिशिर-ऋतु के चली जाने पर भी कोकिलों के कण्ठों में कूजन रुक गया है । मुझे लगता है कि कामदेव ने भी चकित होकर तूणीर से आधा खींचा गया बाण रोक लिया है ।

अन्वयः—चूतानाम् कलिका चिरनिर्गता अपि स्वम् रजः न बध्नाति । यदपि कुरवकम् संनद्धम् स्थितम् (तथापि) तत् (स्थितम्) कोरकावस्थया (युक्तम्) । शिशिरे गते अपि पुंस्कोकिलानाम् रुतम् कण्ठेषु स्खलितम् । शङ्के स्मरः अपि चकितः (सन्) तूणार्द्धकृष्टम् शरम् संहरति ।

संस्कृत-टीका—**चूतानाम्** आम्रवृक्षाणाम् । **कलिका** मञ्जरी । **चिरात्** बहोः कालात् **निर्गता** निष्क्रान्ता (उद्भूता) अपि । **स्वम्** आत्मनः । **रजः** परागम् । **न** । **बध्नाति** दृष्टम् करोति । **यदपि** यद्यपि । **कुरबकम्** । **संनद्धम्** (निर्गन्तुम्) उद्यतम् । **स्थितम्** (तथापि) । **तत्** (स्थितम्) । **कोरकस्य** कलिकायाः **अवस्थया** दशया (स्थितम्) । **शिशिरे** शीतर्तौ । **गते** व्यतीते । **अपि** । **पुंस्कोकिलानाम्** पिकानाम् । **रुतम्** रवः । **कण्ठेषु** गलेषु । **स्खलितम्** अवरुद्धम् । **शङ्के** मन्ये । **स्मरः** कामः । **अपि** । **चकितः** विस्मितः (भीतः वा) (सन्) । **तूणात्** निषङ्गात् **अर्द्धम्** अपूर्णम् यथा स्यात् तथा **कृष्टम्** निःसारितम् । **शरम्** बाणम् । **संहरति** निवर्तयति ।

हिन्दी-व्याख्या—अभी आम्र पर मंजरी आई ही है, पराग का समय नहीं हुआ है यही हाल कुरवक का है, उस पर कली तो आई पर फूलने नहीं पाई है । कोयल की आवाज और काम का प्रभाव क्रमशः लड़खड़ाई और शून्य है, यह कल्पना-मात्र है । प्रकृति का सभी व्यापार हो रहा है पर राजा के प्रति आत्मीयता से कंचुकी को ऐसी प्रतीति होती है कि वसंत भी राजा का आदेश शिरोधार्य कर रहा है । दो दिन में परागादि की प्राप्ति नहीं हो जायेगी, यह अभी से कैसे कहा जा सकता है ? कलिका और मंजरी दोनों 'हाल में निकली हुई' होती हैं । इस समानता से कलिका, लक्षणाद्वारा अपना मुख्य अर्थ "कली" त्यागकर मञ्जरी ग्रहण करती है । इसका प्रयोजन "अविकसित होना" व्यक्त करना है । "स्वम्" जोर देकर यह ध्वनित करता है कि रज अवश्य आना चाहिये

उभे—णत्थि संदेहो । महाप्पहाओ राएसी । [नास्ति संदेहो महाप्रभावो राजर्षिः ।]

प्रथमा—अज्ज कदि दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्ठिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं । इत्थं अ णो पमदवणस्स पालणकम्म समप्पिदं । ता आअंतुअदाए असुदपुव्वो अम्हेहि सो वुत्तंतो । [आर्य ! कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः । इत्थ च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम् । तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः]

था पर नहीं आया । उस तरह रजः प्राप्ति नहीं हुई जैसे किसी युवती को प्रथम-रज-दर्शन न हुआ हो। "सन्नद्ध" का अर्थ है (युद्ध के लिये) बाहर निकलना । कुरवक पुष्प भी निकलने (खिलने) को है । इस साम्य से लक्षणा हुई है । प्रयोजन अत्यन्त शोभावत्ता बताना है ।

छन्द—१।२९ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—समासोक्ति, मालाविशेषोक्ति, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (छेक, श्रुति तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—शक नहीं । राजर्षि (दुष्यन्त) का प्रभाव (रोब) महान् है ।

संस्कृत-टीका—**उभे** चेटयौ (वदतः यत्) **न** । **अस्ति** । **संदेहः** शङ्का । **महान्** बहुः **प्रभावः** बलम् यस्य तादृशः । **राजा** नृपः च **असौ ऋषिः** मुनिः च (दुष्यन्तः) ।

हिन्दी-व्याख्या—विधेय, "महाप्रभावः" का पहले आना बातचीत में ज्यादा स्वाभाविक है ।

हिन्दी-अनुवाद—पहली (दासी)—महोदय, कुछ दिन हुये राष्ट्रिय (राजा के साले) मित्रावसु ने हम दोनों को रानी जी के चरणों में भेजा था । इस तरह हम दोनों को प्रमद-वन की रखवाली का काम सौंपा था, इसलिये अजनबी होने के कारण हम लोगों को यह समाचार पहले नहीं सुनाई दिया था ।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** (चेटी) (वदति यत्) । **आर्य** महोदय । **कति** कतिपयानि । **दिवसानि** दिनानि । **आवयोः मित्रावसुना** । **राष्ट्रियेण** । नृपश्यालेन । **भट्टिन्याः** राज्ञ्याः **पादयोः** चरणयोः **मूलम्** तलम् । **प्रेषितयोः** प्रहितयोः । **इत्थम्** एवम् च । **नौ** आवाभ्याम् । **प्रमद्**जनकम् **वनम्** उपवनम् तस्य । **पालनम्** रक्षणम् एव **कर्म** कार्यम् । **समर्पितम्** दत्तम् । **तत्** अतः । **आगन्तुकतया** नवागतत्वेन । **पूर्वम्** प्राक् **अश्रुतः** अनाकर्णितः **आवाभ्याम्** । **एषः** अयम् **वृत्तान्तः** उदन्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—पीछे के किसी समय को बताने के लिये अवधि को प्रथमा में, कर्त्ता को तृतीया में और कर्म को षष्ठी में रखा जाता है; इसे व्यक्त करने में अक्सर गलती होती है । दिवस का प्रयोग यहाँ नपुंसकलिंग में है, वह शब्द प्रायः पुलिंग में आता है पर होता उक्त दोनों में है । "भट्टिनी" यहाँ महारानी वसुमती के लिये है जिनका भाई मित्रावसु है । यों "महादेवी" शब्द महारानी के लिये और "भट्टिनी" शब्द शेष रानियों के लिये आता है, यहाँ यह अन्तर नहीं माना गया है, उस समय दोनों का अर्थ समान माना जाता होगा । राष्ट्रिय अपनी व्युत्पत्ति (राष्ट्रे नियुक्तः) के अनुसार राज्य

कञ्चुकी—भवतु । न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम् ।

उभे—अज्ज कोदूहलं णो । जदि इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु अअं किंणिमित्तं भट्टिणा । वसंतुस्सवो पडिसिद्धो । [आर्य कौतूहलं नौ । यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं कथयत्वय किंनिमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः ।]

सानुमती—उस्सवप्पिआ खु मणुस्सा । गुरुणा कारणेण होदव्वं । [उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः । गुरुणा कारणेन भवितव्यम् ।]

में शान्ति व्यवस्था रखने वाला अधिकारी है जो आज इन्स्पेक्टर जनरल आफ पुलिस कहलाता है। यह राजा का जाति का ही होने से उच्च-पदस्थ है । जब राजा किसी शूद्र लड़की से शादी करता है तब उसका शूद्र साला, "नागरिक" नामक छोटा अधिकारी होता है । मित्रावसु ने अपनी बहन की सेवा के लिये दो दासियाँ उपहार-रूप में भेजी हैं, पहले यह प्रथा थी जो अब भी संपन्नों में पाई जाती है । "प्रमद" का अर्थ आनन्द है, इसकी व्युत्पत्ति प्रमदानाम् वनम् भी हो सकती है । "ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्" (अष्टाध्यायी ६।३।६३) के अनुसार स्त्रीलिंग शब्द समास के पूर्व हों तो अन्तिम दीर्घ स्वर विकल्प से ह्रस्व हो सकता है, "कालिदास" शब्द भी इसी तरह बना है। "आगन्तुक" पद बताता है कि चेटियों को आये ज्यादा समय नहीं हुआ । प्रमद-वन में रानियों, राजा और चुनी हुई दासियों के अलावा किसी का प्रवेश शायद ही होता रहा हो जिससे वहाँ तक सब समाचार नहीं पहुँच पाते थे ।

हिन्दी-अनुवाद—कञ्चुकी—खैर; छोड़ो । फिर ऐसा काम न करना ।

संस्कृत-टीका—**कञ्चुकी** काञ्चुकीयः (वदति यत्) **भवतु** यत् जातम् तत् जातम् । **न पुनः** भूयः । **एवम्** इत्थम् (आज्ञाविपरीतम्) **प्रवर्तितव्यम्** करणीयम् ।

हिन्दी-व्याख्या—दोनों महोदय, हमें एक उत्सुकता है; यदि मेरे सुनने लायक हो (गोपनीय न हो) तो बतायें कि किसलिये स्वामी के द्वारा वसन्तोत्सव की मनाही कर दी गई है ।

संस्कृत-टीका—**उभे** द्वे (अपि चेटयौ) (वदतः यत्) आर्य महोदय । **कौतूहलम्** (एका) उत्सुकता । **नौ** आवयोः **यदि** चेत् । **अनेन** एतेन । **जनेन** व्यक्त्या (मया) । **श्रोतव्यम्** श्रवण-योग्यम् (गोपनीयम् न) । **कथयतु** वदतु । **अयम्** एषः (उत्सवः) । **किं निमित्तम्** हेतु यस्य तत् यथा स्यात् तथा (केन कारणेन), **भर्त्रा** स्वामिना (दुष्यन्तेन) । **वसन्तस्य** मधोः **उत्सवः** पर्व । **प्रतिषिद्धः** निषिद्धः ।

हिन्दी-व्याख्या—दोनों का एक साथ कहना अस्वाभाविक है पर संस्कृत नाटकों में यह दोष अक्सर पाया जाता है; कोई प्रसिद्ध गीत कोरस में गाना एक बात है और सामान्य बातचीत एक। "नौ" द्विवचन और "जनेन" एक-वचन से खटक पैदा होती है । बातचीत में और वह भी दासियों की बातचीत में यह खटक नहीं के बराबर मानी जा सकती है ।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती (अप्सरा)—मनुष्य तो निश्चय ही उत्सवप्रिय होते हैं; जरूर कोई भारी कारण है ।

संस्कृत-टीका—**सानुमती** (तन्नाम्नी अप्सराः) (वदति यत्) । **उत्सवः** पर्वाणि **प्रियाः**

कञ्चुकी—बहुलीभूतमेतत्किं न कथ्यते । किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम् ।

उभे—सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अगुलीअअदंसणं । [श्रुतं राष्ट्रियमुखाद्यावदङ्गुलीयकदर्शनम् ।

कञ्चुकी—(आत्मगतम्) तेन ह्यल्पं कथयितव्यम् । (प्रकाशम्) यदैव खलु स्वाङ्गुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मे तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात्प्रत्यादिष्टेति तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः । तथा हि ।

दृश्याः येषाम् तादृशाः । खलु निश्चयेन । मनुष्याः नराः (भवन्ति) गुरुणा महता । कारणेन हेतुना । भवितव्यम् भूयेत ।

हिन्दी-व्याख्या—अपनी प्रिय वस्तु—उत्सव मनाना आदमी साधारण कारण से नहीं छोड़ देगा, कोई गम्भीर घटना जरूर हुई है, यह अन्दाज अप्सरा लगा रही है। जैसा पहले आया है, वह दोनों दासियों के बीच में है ।

हिन्दी-अनुवाद—कंचुकी—यह (तो) फैल चुका है; क्यों नहीं कहा जा सकता ? क्या आप दोनों ने शकुन्तला के अस्वीकार से हुई बदनामी नहीं सुनी ?

संस्कृत-टीका—कञ्चुकी काञ्चुकीयः (वदति यत्) । अबहुलम् अनधिकम् बहुलीभूतम् अधिकीभूतम् (व्याप्तम्) एतत् (वृत्तम्) । किम् कथम् । न । कथ्यते कथ्येत । किम् । अत्रभवत्योः भवत्योः । कर्णस्य श्रवणस्य पन्थानम् मार्गम् । न । आयातम् आगतम् । शकुन्तलायाः प्रत्यादेशात् अस्वीकारात् कौलीनम् निन्दा ।

हिन्दी-व्याख्या—बहुलीभूत, प्रत्यादेश और कौलीन, क्रमशः प्रसिद्ध, इनकार और बदनामी के लिए हैं। कौलीन की व्युत्पत्ति कुल से व्युत्पन्न कुलीन से की जाती है। कुलीनों के कुछ न कुछ चर्चा-योग्य होता ही है, अकुलीनों को बदनामी का डर ही नहीं होता, अतः उनकी बदनामी महत्त्वपूर्ण नहीं होती। बड़ों की बदनामी अचरज की चीज है जो उत्सुकता पैदा कर फैलती जाती है। कौ का अर्थ पृथ्वी (कु) में और लीन का अर्थ समाप्त होना या फैलना होता है। इस तरह यह झूठी निन्दा जो कालान्तर में सत्य प्रगट होने पर पृथ्वी में लीन हो जाय। (जैसा यही होगा), या जो पृथ्वी भर में फैल जाय, उसे कौलीन कह सकते हैं। इन विभिन्न व्युत्पत्तियों से "कौलीन" की प्रकृति का पता चलता है। "अत्रभवत्योः" को "अत्र" और "भवत्योः" में तोड़ा जा सकता है, एक साथ रखने से आदरार्थक हो जाता है। संभव है, स्त्री-माता या मानवमात्र के लिये "अत्रभवत्" का प्रयोग स्वाभाविक रहा हो। सुनने के अर्थ में कर्णपथ में जाना, संस्कृत का मुहावरा है।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—अँगूठी के देखने तक का हाल राष्ट्रिय (राज-श्याल) के मुख से सुना है ।

संस्कृत-टीका—उभे द्वे (अपि चेट्यौ) (वदतः यत्) । श्रुतम् आकर्णितम् । राष्ट्रियस्य राजश्यालस्य मुखात् वदनात् । यावत् पर्यन्तम् । अङ्गुलीयकस्य मुद्रायाः दर्शनम् ।

हिन्दी-अनुवाद—कञ्चुकी (आत्मगत)—तो थोड़ा ही कहना होगा । (प्रकाश में) जिस

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः ।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ॥ ५ ॥

क्षण अपनी अँगूठी को देखने से महाराज को याद आई कि अज्ञान-वश अस्वीकार कर दी गई आदरणीय शकुन्तला से वास्तव में मैंने पहले ब्याह किया था, उसी क्षण से महाराज को पश्चात्ताप हुआ है । देखो न :—

संस्कृत-टीका—**कञ्चुकी** काञ्चुकीयः । **आत्मगतम्** । **तेन** अतः । **हि** निश्चयेन । **अल्पम्** अंशमात्रम् । **कथयितव्यम्** श्रोतव्यम् । **प्रकाशम्** । **यदा** । यस्मिन् क्षणे । **एव** । **खलु** (वाक्यालङ्कारे) । **स्वस्य** निजस्य **अङ्गुलीयकस्य** मुद्रिकायाः **दर्शनात्** अवलोकनात् । **अनुस्मृतम्** । **देवेन** नृपेण दुष्यन्तेन) **सत्यम्** । वस्तुतः । **पूर्वम्** अतीते काले **ऊढा** परिणीता । **मे** मम (मया) । **तत्रभवती** माननीया । **रहसि** एकान्ते । **शकुन्तला** (या) **मोहात्** अज्ञानात् । **प्रत्यादिष्टा** अनङ्गीकृता । **इति** । **तदा** तस्मात् क्षणात् । **प्रभृति** आ । **एव** । **पश्चात्तापम्** परितापम् । **उपगतः** प्राप्तः । **देवः** नृपः (दुष्यन्तः) । **तथा** हि उदाह्रियते ।

वामन के काव्यालङ्कार सूत्र ५।२।१० के अनुसार "ते" व "मे" पद निपात (अव्यय) हैं और "त्वया" व "मया" के अर्थ में क्रमशः आते हैं (ते मे शब्दौ निपातौ त्वया मयेत्यर्थे ।)

हिन्दी व्याख्या—यहाँ बीच की कथा का सारांश दिया गया है । ये अधिकांश सुन चुकी हैं; इन्हें बाद की थोड़ी सी ही कथा सुनानी है जानने पर बूढ़ा कंचुकी राहत की साँस लेता है; बुड्ढा होने से अधिक बोलने में होने वाले कष्ट से मुक्ति इसका कारण हो सकता है । "तदा" में सप्तमी का अर्थ माना जाता है; यहाँ "प्रभृति" के साथ आने से इसमें पञ्चमी का अर्थ भी निगूढ है, ऐसा लगता है । यह भी माना जा सकता है कि "प्रभृति" का प्रयोग पंचमी और काल-वाचक अव्ययों के साथ होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—रमणीय वस्तुओं को देख नहीं सकते जैसे पहले मंत्रियों के द्वारा प्रति दिन सेवित होते थे, वैसे नहीं होवे (न चाहकर दूर रहते हैं), जगे जगे ही सेज के किनारे करवटों में रातें बिता देते हैं और शिष्टाचार-वश जब रानियों को उचित (समझकर या होने के कारण) उत्तर देते हैं तब नाम में त्रुटि कर (रानी के नाम की जगह शकुन्तला संबोधित कर) देर तक लज्जा से विस्मित रहते (सकपका जाते) हैं ।

अन्वय—(नृपः) रम्यम् द्वेष्टि । यथा पुरा (तथा अधुना) प्रकृतिभिः प्रत्यहम् न सेव्यते । उन्निद्रः एव शय्याप्रान्तविवर्तनैः क्षपा विगमयति । यदा च अन्तःपुरेभ्यः उचिताम् वाचम् दाक्षिण्येन ददाति तदा गोत्रेषु स्खलितः (सन्) चिरम् व्रीडाविलक्षः भवति ।

संस्कृत-टीका—(नृपः दुष्यन्तः) **रम्यम्** (स्रक्चन्दनचन्द्रकिरणादिकम्) उत्तमम् वस्तु । **द्वेष्टि** । चक्षुषा अपि न पश्यति । **यथा** यद्वत् । **पूरा** भूतकाले (तथा अधुना) । **प्रकृतिभिः** मन्त्रिभिः ।

सानुमती—पिअं मे। [प्रियं मे।]

कञ्चुकी—अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः।

उभे—जुज्जइ। [युज्यते।] (नेपथ्ये)

एदु एदु भवं। [एतु एतु भवान्।]

कंचुकी—(कर्णं दत्त्वा) अये इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्।

प्रत्यहम् प्रतिदिनम्। **न**। **सेव्यते** सेव्यमानः स्याम् इति न इच्छति (पृथक् तिष्ठति)। **उन्निद्रः** निद्रारहितः। **एव**। **शय्यायाः** आस्तरणस्य **प्रान्तयोः** तटयोः **विवर्तनैः** परिवर्तनैः। **क्षपाः** रात्रीः। **विगमयति** नयति। **यदा** यस्मिन् काले। **च**। **अन्तःपुरेभ्यः** पत्नीभ्यः। **उचिताम्** योग्याम्। **वाचम्** वाणीम् (उत्तरम्)। **दाक्षिण्येन** सौजन्येन। **ददाति** प्रयच्छति। **तदा** तस्मिन् काले। **गोत्रेषु** (पत्नी) नामसु। **स्खलितः** अन्यनामग्रहणावसरे अन्यनामग्रहणम् कुर्वन् (सन्)। **चिरम्** अतिकालम्। **व्रीडया** लज्जया। **विलक्षः** विस्मितः। **भवति**।

हिन्दी-व्याख्या—"दाक्षिण्येन" पद से यह ध्वनित होता है कि अत्यावश्यक हो जाने पर ही उत्तर देते हैं; जहाँ तक संभव होता है टाल जाते हैं। "दुष्यन्त को भी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है" यह सोचकर विस्मित हो जाते हैं।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—पर्यायोक्ति, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति)।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—मेरी प्रिय बात (हुई)।

संस्कृत-टीका—**सानुमती** (अप्सराः) (वदति यत्)। **प्रियम्** अभीष्टम्। **मे** मम।

हिन्दी-व्याख्या—दुष्यन्त शकुन्तला के लिये दुःखी है, यह बात शकुन्तला को सान्त्वना और पुनर्मिलन की आशा प्रदान करेगी, यह सोचकर सानुमती प्रसन्न है।

हिन्दी-अनुवाद—**कंचुकी**—इससे उत्पन्न खिन्नता से (महाराज के द्वारा) त्यौहार की मनाही कर दी गई है।

संस्कृत टीका—**कंचुकी** काञ्चुकीयः। **अस्मात्** उपर्युक्तात्। **प्रभवतः** उद्भूतात् **वैमनस्यात्** खिन्नतायाः। **उत्सवः** पर्वः। **प्रत्याख्यातः** निषिद्धः।

हिन्दी अनुवाद—दोनों—उचित है। (नेपथ्य में)

संस्कृत-टीका—**उभे** द्वे (अपि चेट्यौ) (वदतः यत्)। **युज्यते** उचितम्। **नेपथ्ये**।

हिन्दी-अनुवाद—आयें आयें आप।

संस्कृत-टीका—**एतु** आगच्छतु। **एतु** आगच्छतु। **भवान्** त्वम्।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ किसी (राजा) के आने की सूचना दी गई है। वेत्रवती रास्ता दिखाने के लिये संभवतः कह रही है।

हिन्दी-अनुवाद—कंचुकी (कान देकर)—अरे! इधर ही महाराज आ रहे हैं। अपना काम किया जाय।

उभे—तह । (इति निष्क्रान्ते) [तथा ।]

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा, विदूषकः प्रतीहारी च)

कंचुकी—(राजानमवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् । एवमुत्सुकोऽपि प्रिय-दर्शनो देवः । तथा हि

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं
विभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः ।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते ॥६॥

संस्कृत-टीका—कंचुकी काञ्चुकीयः । कर्णम् श्रवणम् । दत्त्वा सज्जीकृत्य । अये अहो । इतः अत्र । एव । अभिवर्तते आगच्छति । देवः महाराजः स्वस्य निजस्य कर्म कृत्यम् । अनुष्ठीयताम् क्रियताम् (अस्माभिः) ।

हिन्दी व्याख्या—गप्पें लगाते देखकर राजा टोकेंगे, या मन में रुष्ट होंगे, अतः उन्हें दिखाने के लिये सब अपने-अपने काम में लग जाते हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—ठीक है । (यह कहकर निकल जाती हैं ।)

संस्कृत टीका—उभे द्वे (अपि चेटयौ) (वदतः यत्) । तथा आम् । इति ततः । निष्क्रान्ते निर्गच्छतः ।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद पश्चात्ताप के अनुकूल वेष धारण किये हुए राजा, विदूषक और द्वारपालिका दिखते हैं ।)

कंचुकी—(राजा को देखकर) अरे ! सब हालतों में असाधारण आकारों (व्यक्तियों) को सुन्दरता होती है । इस प्रकार उत्कण्ठ होकर भी महाराज का स्वरूप आकर्षक (हो) है । देखो तो—

संस्कृत-टीका—ततः तत्पश्चात् । प्रविशति दृश्यते । पश्चात्तापस्य परितापस्य सदृशः अनुकूलः वेषः रूपम् यस्य तादृशः । राजा नृपः (दुष्यन्तः) । विदूषकः (माढव्यः) प्रतीहारी द्वारपालिका (वेत्रवती) च । कञ्चुकी काञ्चुकीयः । राजानम् नृपम् (दुष्यन्तम्), अवलोक्य दृष्ट्वा (वदति यत्) । अहो (आश्चर्यं) । सर्वासु अशेषासु । अवस्थासु दशासु । रमणीयत्वम् सुन्दरता (भवति) । आकृतिषु रूपेषु विशेषाणाम् उत्कृष्टानाम् । एवम् इत्थम् । उत्सुकः उत्कण्ठितः । अपि । प्रियम् आकर्षकम् दर्शनम् रूपम् यस्य तादृशः । देवः महाराजः (दुष्यन्तः) । तथा हि उदाह्रियते ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास ।

हिन्दी अनुवाद—(ये राजा) विशेष प्रसाधन करना त्यागकर, बायें प्रकोष्ठ (कलाई के ऊपर का भाग) में पहना हुआ सोने का एक ही कंगन धारण करते हुये, साँस से हलका लाल निचला ओंठ लेकर, चिन्ता-जन्य जागरण से पस्त पड़ी आँखों वाले होकर अपने तेज के गुण से निखार के लिये खरादी गई (क्षीण) महान् मणि के समान क्षीण होकर भी (क्षीण) नहीं दिखते ।

अन्वयः—(एषः राजा) प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिः (सन्) वामप्रकोष्ठार्पितम् एकम् एव काञ्चनम्

सानुमती—(राजानं दृष्ट्वा) ठाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउंदला किलम्मदि त्ति । [स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति ।]

वलयम् बिभ्रत् श्वासोपरक्ताधरः (सन्) चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनः (सन्) आत्मनः तेजोगुणात् संस्कारोल्लिखितः महामणिः इव क्षीणः अपि न आलक्ष्यते ।

संस्कृत टीका—(एषः राजा) **प्रत्यादिष्टः** निराकृतः **विशेषस्य** उत्कृष्टस्य **मण्डनस्य** अलङ्करणस्य **विधिः** धारणम् येन तादृशः (सन्) **वामस्य प्रकोष्ठस्य** मणिबन्धोर्ध्वभागस्य **अर्पितम्** दत्तम् । **एकम्** केवलम् । **एव** । **काञ्चनस्य** काञ्चनस्य स्वर्णस्य इदम् । **वलयम्** कङ्कणम् । **बिभ्रत्** धारयन् । **श्वासैः उपरक्तः** ईषत् अरुणः **अधरः** यस्य तादृशः (सन्) । **चिन्तायाः जागरणेन** अनिद्रायाः प्रकर्षेण **तान्ते** क्लान्ते **नयने** नेत्रे यस्य तादृशः (सन्) । **आत्मनः** निजस्य **तेजः** ओजः एव **गुणः** तस्मात् । **संस्कारार्थम् उल्लिखितः** (शाणेन) उद्घृष्टः । **महान्** श्रेष्ठः च असौ **मणिः** रत्नम् च । **इव क्षीणः** कृशः । अपि । (तथा) न । **आलक्ष्यते** दृश्यते ।

हिन्दी व्याख्या—"विशेष मण्डन" से तात्पर्य उन प्रसाधनों से है जिन्हें मंगलादि के लिये धारण करना आवश्यक नहीं है । बायीं कलाई के ऊपर कंगन राजा के लिये पहनना अनिवार्य है, अतः वह पहना, अन्य गहने (अँगूठी आदि) नहीं । विशेष मण्डन के बिना भी जिसकी शोभा नहीं घटती, वह गुण "रूप" कहलाता है:—

'अङ्गान्यभूषितान्येव प्रक्षेप्याद्यैर्विभूषणैः । येन भूषितवद् भान्ति तद्रूपमिह कथ्यते ॥"

यहाँ ध्वनित होता है कि दुष्यन्त रूपवान् थे, तभी क्षीण होने पर क्षीणता नहीं दिखी । गहनों से क्षीण होना भी क्षीण होना है । दूसरा कंगन दायें हाथ में धारण करने में अपनी दुर्बलता के कारण असमर्थ हो गये थे, यह ध्वनित होता है । विरही होने से साँसें गर्म हो गई उनसे छूकर निचले ओठ की ललाई कम हो गई, पर उससे शोभा में कमी नहीं आई । जागने से आँखें थक जाती हैं जिससे उनके किनारे लाल हो जाते हैं जिससे शोभा बढ़ जाती है । हीरा आदि रत्न सान पर घिस जाने पर छोटे हो जाते हैं, पर उनकी सुन्दरता और मूल्यवत्ता बढ़ जाती है जिसमें क्षीणता छिप जाती है । यहाँ अलङ्करण, अधर की ललाई आदि के क्षीण होने पर राजा की सुन्दरता बढ़ गई है जिससे क्षीणता होने पर भी वह नहीं दिखती ।

चिन्ता, जागरण, क्षीण और प्रत्यादिष्ट शब्दों से क्रमशः संकल्प, निद्रा-छेद, तनुता और विषय-निवृत्ति—ये कामावस्थायें सूचित की गई हैं । यहाँ माधुर्य नामक गुण है जिसके रहते हर हालत में आकर्षण रहता है :—तन्माधुर्यं यत्र गात्रदृष्ट्यादेः स्पृहणीयता । सर्वावस्थासु सर्वत्र ॥

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य ।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास (छेक, श्रुति तथा वृत्ति) ।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती (राजा को देखकर)—स्वीकार होकर अपमानित होने पर भी शकुन्तला इनके लिये तड़पती है, वह नितान्त समीचीन है ।

संस्कृत-टीका—**सानुमती** (अप्सराः) । **राजानम्** नृपम् (दुष्यन्तम्) । **दृष्ट्वा** विलोक्य (वदति यत्) । **स्थाने** उचितम् । **खलु** निश्चयेन । **प्रत्यादेशात्** निराकरणात् **विमानिता**

राजा—(ध्यानमन्दं परिक्रम्य)

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम् ।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं प्रति विबुद्धम् ॥ ७ ॥

सानुमती—णं ईदिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि । [नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि ।]

अपमानिता । अपि । अस्य एतस्य (दुष्मन्तस्य) कृते । शकुन्तला क्लाम्यति कष्टम् अनुभवति ।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला के विरह से राजा का पीड़ित होना उनके हृदय में शकुन्तला के प्रति अपार प्रेम सूचित करता है। इसके अतिरिक्त वे कृश अवस्था में भी इतने सुंदर हैं. इन दो महान् गुणों से ऐसे पति के लिये अपमानित होकर भी शकुन्तला क्यों तड़पती है, इसका रहस्य सानुमती की समझ में आ गया है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—ध्यान के कारण धीरे-धीरे घूमकर।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः)। ध्यानेन स्मरणेन। मन्दम् यथा स्यात् तथा। परिक्रम्य मण्डलाकारेण चलित्वा।

हिन्दी-व्याख्या—यदि चलते समय कुछ सोचा जाय तो सारे अङ्ग मन के साथ हो जाते हैं जिससे चाल धीमी हो जाती है।

हिन्दी-अनुवाद—पहले (तो) हरिण-नयना प्रिया (शकुन्तला) के द्वारा जगाये जाने पर भी यह मुआ हृदय सोया था; अब पश्चात्ताप के कष्ट के लिये जग गया है।

अन्वयः—प्रथमम् सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानम् अपि (मे) इदम् हतहृदयम् सुप्तम् (आसीत्)। संप्रति अनुशयदुःखाय विबुद्धम्।

संस्कृत-टीका—प्रथमम् पूर्वम्। सारङ्गस्य हरिणस्य अक्षिणी नेत्रे इव अक्षिणी नेत्रे यस्या तादृश्या प्रियया दयितया (शकुन्तलया)। प्रतिबोध्यमानम् स्मारितम्। अपि (मे)। इदम्। एतत्। हतम् दुष्टम् च तत् हृदयम् अन्तरम् च। सुप्तम् निद्रागतम् (आसीत्)। संप्रति अधुना। अनुशयः पश्चात्तापः एव दुःखम् क्लेशः तस्मै। विबुद्धम् प्रतिबुद्धम्।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ "सुप्तम्" को "हृदयम्" का विशेषण बनाकर एक वाक्य भी किया जा सकता है। "सुप्त" का अर्थ विस्मृति-परायण है। "हत" गाली है। "विबुद्ध" से आशय है "जिसको पुरानी बातें याद आ गई हैं।" वे अब न याद आतीं तो कष्ट न होता; याद आने से अपने अपकर्म पर पछतावा होता है।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य।

अलंकार—विशेषोक्ति, विभावना, उपमा और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—सचमुच; यह बेचारी (शकुन्तला) का भाग्य है।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्) ननु निश्चयेन। ईदृशानि एतानि (यथा राज्ञा उक्तम् तथा)। तपस्विन्याः अनुकम्पार्हायाः (शकुन्तलायाः)। भागधेयानि भाग्यानि।

विदूषकः—(अपवार्य) लंघिदो एसो भूओ वि सउंदलावाहिणा । ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति । [लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना । न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति ।]

कञ्चुकी—(उपगम्य) जयतु जयतु देवः । महाराज ! प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः । यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः ।

राजा—वेत्रवति ! मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि । चिरप्रबोधनान्न संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम् । यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति ।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि । [यद्देव आज्ञापयति ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक (अपवारित कर) शकुन्तला के रोग से ये फिर ग्रस्त हो गये । न जाने कैसे ठीक होंगे ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) अपवार्य (वदति यत्) । लङ्घितः ग्रस्तः । एषः अयम् (दुष्यन्तः) । भूयः पुनः । अपि । शकुन्तलासकाशात् व्याधिः (शकुन्तला एव व्याधिः) रोगः तेन । न । जाने अवगच्छामि । कथम् । केन प्रकारेण । चिकित्सितव्यः साध्यरोगः (नीरोगः) । भविष्यति । इति ।

कञ्चुकी काञ्चुकीयः । उपगम्य उपसृत्य (वदति यत्) । जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । देवः महाराजः । महाराजः ! प्रत्यवेक्षिताः (निःशङ्कसंचारार्थम्) दृष्टाः । प्रमदवनस्य आनन्दोद्यानस्य भूमयः प्रदेशाः । यथाकामम् कामम् इच्छाम् अनतिक्रम्य (यथेच्छम्) । अध्यास्ताम् तिष्ठतु । विनोदपूर्णानि क्लमापनोदनकारकाणि स्थानानि प्रदेशान् । महाराजः ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(हे) वेत्रवति (द्वारपालिका), मंत्री श्री पिशुन से मेरा (यह) संदेश कहना कि देर तक जागरण से मेरे लिये न्यायासन पर बैठना आज संभव नहीं है । श्रीमान् ने नगरवासियों के जो कार्य देखे हैं, उन्हें पत्र में लिखकर (यहाँ) भिजवा दें ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) (हे) वेत्रवति द्वारपालिके ! मम वचनात् । अमात्यम् मन्त्रिणम् आर्यः आदरणीयः च असौ पिशुनः (मन्त्रिनाम) च तम् । ब्रूहि कथय । चिरम् बहुकालम् यावत् प्रबोधनात् जागरणात् । न । संभावितम् शक्यम् । अस्माभिः मया । अद्य । धर्मासनम् न्यायासनम् । अध्यासितुम् स्थातुम् । यत् । प्रत्यवेक्षितम् दृष्टम् । पौराणाम् नगरवासिनाम् कार्यम् कृत्यम् । आर्येण श्रीमता (भवता) । तत् । पत्रम् । आरोप्य लिखित्वा । दीयताम् प्रेष्यताम् ।

हिन्दी-व्याख्या—"चिरप्रबोधन" का अर्थ "देर से उठना" भी हो सकता है । अधि+आस् के योग में अधिकरण, कर्म हो जाने से द्वितीया में आया है ['अधिशीङ्स्थासां कर्म'] । इस वर्णन से लगता है कि राजा की अनुपस्थिति में मंत्री कार्य देखते थे और उसकी रिपोर्ट सूचनार्थ राजा के पास भेज देते थे, पर देखने के पहले राजा की आज्ञा आवश्यक थी ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका—जैसी महाराज की आज्ञा । (इसके बाद बाहर जाती है ।)

राजा—वातायन त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु ।

कंचुकी—यदाज्ञापयति देवः ! (इति निष्क्रान्तः) ।

विदूषकः—किदं भवदा णिम्मच्छिअं । संपदं सिसिरातवच्छेअरमणीए इमस्सिं पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि । [कृतं भवता निर्मक्षिकम् । सांप्रतं शिशिरातपच्छेदरमणीयेऽस्मिन्प्रमदवनोद्देश आत्मानं रमयिष्यसि ।]

राजा—वयस्य ! रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि वचः । कुतः ?

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका (वदति यत्) । **यत्** यथा । **देवः** महाराजः । **आज्ञापयति** कथयति (तथा क्रियते) । **इति** ततः **निष्क्रान्ता** निर्गता ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(हे) **वातायन** (कंचुकी-नाम), तुम भी अपना कार्य (ड्यूटी) पूर्ण करो (अपनी जगह लो) ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) (हे) **वातायन** (कञ्चुकिनः नाम) । **त्वम्, अपि** । **स्वम्** स्वस्य । **नियोगम्** कृत्यम् । **न शून्यम्** रिक्तम् (पूर्णम्) । **कुरु** विधेहि ।

हिन्दी-अनुवाद—कंचुकी—जैसी महाराज की आज्ञा ! (इसके बाद बाहर जाता है ।)

संस्कृत टीका—**कञ्चुकी** काञ्चुकीयः (वदति यत्) **यत्** यथा । **आज्ञापयति** वदति । **देवः** महाराजः (तथा क्रियते) । **इति** ततः । **निष्क्रान्तः** निर्गतः ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—आपने एकान्त कर दिया । अब शिशिर और ग्रीष्म (ऋतुओं) के मध्यकाल (वसन्त) से कमनीय इस प्रमद-वन के प्रदेश में अपना मनोरञ्जन कीजिये ।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (वदति यत्) । **कृतम्** विहितम् । **भवता** त्वया । **निर्मक्षिकम्** एकान्तः । **साम्प्रतम्** अधुना **शिशिरः** शीतर्तुः **आतपः** ग्रीष्मर्तुः च तयोः **छेदः** मध्यकालः (वसन्तर्तुः) तेन **रमणीये** कमनीये । **अस्मिन्** अत्र । **प्रमदवनस्य** आनन्दोद्यानस्य, **उद्देशे** स्थले । **आत्मानम्** निजम् । **रमयिष्यसि** विनोदयिष्यसि (विनोदय) ।

हिन्दी व्याख्या—"छेद" का अर्थ "नाश" करने पर "ठण्ड व गर्मी से रहित" (वातानुकूल) अर्थ निकल सकता है ।

हिन्दी अनुवाद— राजा—मित्र, जो यह कहा जाता है कि छिद्र (दोष) होने पर आफतें टूट पड़ती हैं, यह वचन शत-प्रतिशत सही है, क्योंकि—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **रन्ध्रोपनिपातिनः** छिद्रेषु सत्सु आक्रमणकारकाः । **अनर्थाः** उपद्रवाः । **इति** इदम् । **यत्** , **उच्यते** कथ्यते (लोके) । **तत्** । **न व्यभिचारि** असत्यम् (सत्यम्) । **वचः** वचनम् । **कुतः** यतः ।

हिन्दी-व्याख्या—"व्यभिचारिन्" से नपुंसकलिङ्ग में व्यभिचारि हो जाता है । जो हेतु ठीक नहीं होता, उसे "न्याय (दर्शन)" शास्त्र में व्यभिचारी कहते हैं । "रन्ध्रोपनिपातिनः अर्थाः" उक्ति

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ ८ ॥

विदूषकः—चिट्ठ दाव। इमिणा दंडकट्ठेण कंदप्पवाहिं णासइस्सं। [तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयिष्यामि।] (इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूताङ्कुरं पातयितुमिच्छति)।

राजा—(सस्मितम्) भवतु दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे ! क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिद-नुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि।

सुन्दर है। इसकी समानार्थक लोकोक्तियाँ "क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्" और "छिद्रेष्वनर्था बहुली-भवन्ति" हैं।

हिन्दी अनुवाद—(हे) मित्र, मुनि कन्या के स्मरण में बाधक मोह (अज्ञान) ने यह मेरा मन मुक्त कर दिया है (याद दिला दी है) और कामदेव ने भविष्य में प्रहार करने के लिये धनुष पर आम्र-पल्लव का बाण चढ़ा लिया है।

संस्कृत-टीका—**सखे**। मित्र! **मुनेः** ऋषेः (कण्वस्य) **सुतायाः** कन्यायाः (शकुन्तलायाः) **प्रणयस्य** प्रेम्णः **स्मृतिः** स्मरणम् **तद्रोधिना** तद्बाधकेन। **तमसा** मोहेन। **च**। **इदम्** एतत्। **मम**। **मनः** अन्तरम्। **मुक्तम्** त्यक्तम्। **मनसिजेन** कामदेवेन च: **प्रहरिष्यता** भविष्यति प्रहारम् कुर्वता। **धनुषि** शरासने। **चूतम्** आम्र-पल्लवः तद एव **शरः** बाणः। **निवेशितः** स्थापितः।

हिन्दी-व्याख्या—राजा ने शकुन्तला के दरबार में आने पर उसे अपनी पत्नी के रूप में न मानकर मुनि की कन्या-मात्र माना था; उस भूल की ओर संकेत के लिये "मुनिसुता" प्रयोग है। स्मरण आने और काम के बाण चढ़ाने की घटनायें एक साथ हुईं, यह बताने के लिये दो "च" आये हैं। वियोग और वसंत दोनों विपत्तियाँ आ गई हैं। वियोग छिद्र (विपत्ति) के रहने वसंत-छिद्र (विपत्ति) आ पहुँची है। शकुन्तला, आलंबन विभाव और वसन्त उद्दीपन विभाव है।

छन्द—२।११ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—समुच्चय, स्मरण और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—जरा ठहरना, इस डण्डे से काम की बीमारी के कारण को नष्ट करूँगा। (इसके बाद डण्डा उठाकर आम्र-मञ्जरी गिराना चाहता है)।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **तिष्ठ** प्रतिपालय। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **अनेन** पुरः दृश्येन। **दण्डकाष्ठेन** लगुडेन। **कन्दर्पः** कामः एव **व्याधिः** रोगः यस्मात् तम् (आम्र-प्रसवम्)। **नाशयिष्यामि** पातयिष्यामि। **इति** ततः। **दण्डकाष्ठम्** लगुडम्। **उद्यम्य** उत्थाप्य। **चूतस्य** आम्रस्य **अङ्कुरम्** पल्लवम्। **पातयितुम्**। **इच्छति** कामयते।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक, कामियों और विरहियों की भावुकता में भी विदूषक हास्य उत्पन्न कर देता है।

हिन्दी अनुवाद—राजा (मुस्कराकर)—जाने दो, बस करो, ब्रह्मतेज देख लिया। मित्र, कहाँ बैठ कर प्रिया (शकुन्तला) का कुछ अनुकरण करने (से कुछ मिलने) वाली लताओं में दृष्टि को प्रसन्न करूँ।

विदूषकः—णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा। माहवीमंडवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउंदलाये पडिकिदिं आणेहि त्ति। [नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टा। माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति।]

राजा—ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तत्तमेव मार्गमादेशय।

विदूषकः—इदो इदो भवं। [इत इतो भवान्।] (उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति।]

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः)। स्मितेन विहासेन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा (वदति यत्)। भवतु अस्तु। दृष्टम् विलोकितम्। ब्रह्मणः विप्रस्य वर्चः तेजः। (हे) सखे मित्र! क्व कुत्र। उपविष्टः स्थितः (सन्)। प्रियायाः दयितायाः (शकुन्तलायाः)। किञ्चित् ईषत्। अनुकारिणीषु संवदन्तीषु। लतासु वल्लरीषु। दृष्टिम् चक्षुः। विलोभयामि नन्दयामि।

हिन्दी व्याख्या—"ब्रह्म-तेज देख लिया" में विनोद है कि वह (ब्रह्म-तेज) केवल आम्र मंजरी भर गिरा सकता है। "वर्चम्" के अन्त में "अ" "ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः" (अष्टाध्यायी ५।४।७८) सूत्र के अनुसार आया है।

हिन्दी अनुवाद—अरे भूल गये, व्यक्तिगत सेविका चतुरिका से आपने कहा है कि माधवी के मण्डप में यह समय बिताऊँगा। वहाँ मेरे पास आदरणीय शकुन्तला का चित्र-पट में वर्तमान और अपने ही हाथ से अंकित चित्र ले आना।

संस्कृत-टीका—ननु विस्मृतम् किम्। आसन्ना निकटवर्त्तिनी च सा परिचारिका दासी च। चतुरिका (नाम)। भवता त्वया। संदिष्टा आज्ञप्ता। माधव्याः मण्डपे। इमाम् एताम्। वेलाम् समयम्। अतिवाहयिष्ये नेष्यामि। तत्र तस्मिन् स्थाने। मे मह्यम्। चित्रस्य फलके पटे गताम् वर्त्तमानाम्। स्वस्य निजस्य हस्तेन करेण लिखिताम्। अङ्किताम्। तत्रभवत्याः आदरणीयायाः। शकुन्तलायाः। प्रतिकृतिम् चित्रम्। आनय। इति।

हिन्दी-व्याख्या—मालिश, गन्ध पदार्थ, सजाने आदि में सहायता करने वाली राजा की सहायिका परिचारिका कहलाती है : "संवाहने च गन्धे च तथा चैव प्रसाधने। तथाभरणसंयोगमाल्यसंग्रथनेषु च॥ विज्ञेया नामतः सा तु नृपतेः परिचारिका।" (मातृगुप्त)

हिन्दी-अनुवाद—राजा—ऐसा स्थान है दिल बहलाने का। तो वही राह (जो वहाँ ले जाती है) बताओ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः दुष्यन्तः (वदति यत्)। ईदृशम् एतादृशम् (रमणीयम्)। हृदयस्य अन्तरस्य विनोदनार्थम् रञ्जनार्थम् स्थानम् प्रदेशः। तत् तदा। तम्। एव। मार्गम् पन्थानम् (यः माधवीलतामण्डपम् याति) आदेशय वद।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—इधर से इधर से श्रीमान्। (दोनों घूमते हैं। सानुमती अनुसरण करती है।)

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) इतः अनेन पथा इतः अनेन पथा।

विदूषकः—एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमंडवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि । ता पविसिअ णिसीददु भवं । [एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति । तत्प्रविश्य निषीदतु भवान् ।] (उभौ प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ ।)

सानुमती—लतासंस्सिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं । तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं । (इति तथा कृत्वा स्थिता ।) [लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत्सख्याः प्रतिकृतिम् । ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि ।]

राजा—सखे, सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम् । कथितवानस्मि भवते च । स भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत् । पूर्वमपि न त्वया

भवान् त्वम् । **उभौ** द्वौ (अपि) । **परिक्रामतः** मण्डलाकृति गच्छतः । **सानुमती** (अप्सराः) । **अनुगच्छति** अनुसरति ।

हिन्दी-अनुवाद—**विदूषकः**—यह रहा मणिशिला की पटिया से युक्त माधवी (लता) का मण्डप, जो निश्चय ही उपहार (अपने फूल की भेंट) की कमनीयता से, जो मानो स्वागत (आयोजन) हो, हम दोनों का वाट देख रहा है ।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (वदति यत्) । **एषः** अयम् । **मणेः** रत्नस्य **शिलायाः** प्रस्तरस्य **पट्टकेन** खण्डेन **सनाथः** युक्तः । **माधव्याः मण्डपः** । **उपहारेण** पुष्पोपायनेन **रमणीयतया** । कमनीयतया । **निःसंशयम्** निःसंदेहम् । **स्वागतेन** सम्मानायोजनेन । **नौ** आवाम् । **प्रतीच्छति** प्रतीक्षते । **तत्** तदा । **प्रविश्य** अन्तःगत्वा । **निषीदतु** उपविशतु । **भवान्** त्वम् । **उभौ** द्वौ (अपि) । **प्रवेशम्** अन्तः गमनम् । **कृत्वा** विधाय । **उपविष्टौ** निषण्णौ ।

हिन्दी-व्याख्या—जैसे कोई माली फूलों के गुच्छे लेकर स्वागत की वाट देखे, उस तरह माधवी का वृक्ष अपने फूल लिये वाट देख रहा है, ऐसा लगा । माधवी, चमेली की एक जाति है ।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—लता का सहारा लेकर जरा सहेली (शकुन्तला) का चित्र देखूँगी । फिर इस (शकुन्तला) से (उसके) पति का बहुमुखी अनुराग बताऊँगी । (इसके बाद वैसाकर स्थित हो गई ।)

संस्कृत-टीका—**सानुमती** (अप्सरा) (वदति यत्) । **लताम्** वल्लरीम् । **संश्रिता** आश्रिता । **द्रक्ष्यामि** विलोकयिष्यामि । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **सख्याः** आल्याः (शकुन्तलायाः) । **प्रतिकृतिम्** चित्रम् । **ततः** तदुपरि । **अस्याः** (शकुन्तलायै) । **भर्तुः** (तस्याः) पत्युः । **बहूनि** अनेकानि **मुखानि** प्रकाराः यस्य तादृशम् । **अनुरागम्** प्रेमाणम् । **निवेदयिष्यामि** वदिष्यामि । **इति** ततः । **तथा** पूर्वोक्तप्रकारेण । **कृत्वा** विधाय (लताम् आश्रित्य) । **स्थिता** ।

हिन्दी व्याख्या—अनुराग के प्रकार चिन्ता, अस्त-व्यस्तता, दुर्बलता, पश्चात्ताप, चित्ररचना आदि हैं जिससे वह (अनुराग) बहुमुखी है; एकाङ्गी नहीं ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मित्र, अब शकुन्तला का आरम्भ का सारा वृत्तान्त याद आ रहा

कदाचित्संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम्?

विदूषकः—ण विसुमरामि। किं तु सव्वं कहिअ अवसाणे उण तुए परिहास-विअप्पओ एसो ण भूदत्थो त्ति आअक्खिदं। मए वि मिप्पिण्डबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वदा खु बलवदी। [न विस्मरामि। किंतु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एष न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता खलु बलवती।]

सानुमती—एव्वं एदं। [एवमेवैतत्।]

है। तुमसे भी कहा है। तुम अस्वीकार करने के समय मेरे पास नहीं थे। पहले भी तुमने उस आदरणीया का नाम कभी नहीं लिया। मेरी ही तरह तुम भी भूल तो नहीं गये थे?

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) **सखे** (हे) मित्र (माढव्य)। **सर्वम्** सम्पूर्णम्। **इदानीम्** अधुना। **स्मरामि**। **शकुन्तलायाः**। **प्रथमः** पूर्वः च सः **वृत्तान्तः** कथा तम्। **कथितवान्** उक्तवान्। **अस्मि**। **भवते** त्वाम्। च **सः** (कथनेन ज्ञातवृत्तान्तः) **भवान्** त्वम्। **प्रत्यादेशस्य** निराकृतेः। **वेलायाम्** अवसरे। **मम समीपे** निकटे। **गतः** स्थितः। **न**। **आसीत्**। **पूर्वम्** प्राक्। **अपि**। **न**। **त्वया**। **कदाचित्** कदापि। **संकीर्तितम्** वर्णितम्। **तत्र-भवत्याः** आदरणीयायाः (शकुन्तलायाः)। **नाम**। **कच्चित्** किम्। **अहम्**। **इव**। **विस्मृतवान्**। **असि**। **त्वम्**।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—नहीं भूलता, लेकिन सब कुछ कहकर अन्त में फिर तुमने चर्चा की थी कि यह हँसी में बकी हुई बात है; सत्य नहीं। मिट्टी के लोंदे के समान बुद्धि वाले मैंने भी वैसा ही ग्रहण किया (समझा), या कहना चाहिये कि निश्चय ही होनी बलवान् है।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **न**। विस्मरामि। किं तु। **सर्वम्** सकलम् वृत्तम्। **कथयित्वा** उक्त्वा। **अवसाने** अन्ते। **पुनः** भूयः। **त्वया**। **परिहासे** विनोदे **विजल्पः** कथितम्। **एषः** अयम्। **न**। **भूतः** तथ्यः च असौ **अर्थः** वस्तु च। **इति** इदम्। **आख्या-तम्** वर्णितम्। **मया**। **अपि**। **मृदः** मृत्तिकायाः **पिण्डम्** तद्वत् **बुद्धिः** मतिः यस्य तादृशेन। **तथा** तद्रूपम्। **एव**। **गृहीतम्** ज्ञातम्। **अथ वा** यद्वा। **भवितव्यता** नियतिः। **खलु** निश्चयेन। **बलवती** प्रबला।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक २।१८ की ओर संकेत कर रहा है। झूठ कहने का फल बुरा होता है। यदि राजा ने सच-सच बता दिया होता तो विदूषक ने बीच-बीच में याद दिलाई होती और विस्मरण की नौबत न आती। कबीर की उक्ति "होनी होके रही" भी वही अर्थ व्यक्त करती है। कालिदास ने अन्यत्र भी भवितव्यता का इसी तरह वर्णन किया है:

'सर्वज्ञपा भगवती भवितव्यतैव॥' (मालविकाग्निमित्र १।२३)

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—यह सच (इसी प्रकार) है।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः)(वदति यत्)। **एवम्** सत्यम्। **एव**। **एतत्** पूर्वोक्तम्

राजा—(ध्यात्वा) सखे त्रायस्व माम् ।

विदूषकः—भोः किं एदं ? अणुववण्णं खु ईदिसं तुह । कदा वि सप्पुरिसा सोअवत्तव्वा ण होंति । णं पवादे वि णिक्कंपा गिरीओ । [भोः किमेतत् ? अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वाय । कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति । ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः ।]

राजा—वयस्य निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि । सा हि

इतः प्रत्यादेशात स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे ।
पुनर्दृष्टि वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥ ९ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा (सोचकर) मित्र, मुझे बचाओ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) । ध्यात्वा चिन्तयित्वा (वदति यत्) । सखे मित्र । त्रायस्व रक्ष । माम् ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—अरे ! यह क्या ! इस प्रकार की बात तुमको निश्चय नहीं शोभा देती । सज्जन कभी शोक के कारण दूसरे के उपदेश-पात्र नहीं बनते । देखें न; आँधी में भी पहाड़ अडिग होते हैं ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) भोः अहो । किम् (अनौचित्यम्) एतत् (पूर्वोक्ता प्रलापावस्था) । अनुपपन्नम् अयुक्तम् । खलु निश्चयेन । ईदृशम् एतत्प्रकारकः अर्थः । त्वयि भवति (राज्ञि दुष्यन्ते) । कदापि कस्मिन्नपि काले । सन्तः श्रेष्ठा च ते पुरुषाः जनाः च । शोकेन दुःखेन (परैः) वक्तव्याः उपदेशयोग्याः । न । भवन्ति । ननु निश्चयेन । प्रवाते अतिशयितवाते । अपि । निष्कम्पा अचलाः । गिरयः पर्वताः ।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—'मित्र, अस्वीकार करने से आकुल प्रिया की दशा को याद कर बहुत असहाय हूँ, क्योंकि वह—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । वयस्य मित्र ! निराकरणेन प्रत्यादेशेन विक्लवायाः विह्वलायाः । प्रियायाः दयितायाः (शकुन्तलायाः) । समवस्थाम् दशाम् । अनुस्मृत्य स्मृत्वा । बलवत् अत्यधिकम् । न शरणम् साहाय्यम् यस्य तादृशः (असहायः) अस्मि । सा । हि यतः ।

हिन्दी-अनुवाद—इधर (मेरी ओर) से अस्वीकृति से आत्मीय जनों (बन्धुओं) के अनुसरण का प्रयत्न करती हुई अनन्तर "ठहर" इस प्रकार पिता-तुल्य पिता के शिष्य के जोर से कहने पर फिर मुझ क्रूर पर जो उसने आँसुओं के फैलाव से मलिन दृष्टि डाली, वह जहर में बुझी बर्छी की तरह मुझे जला रही है ।

सानुमती—अम्महे ईदिसी स्वकज्जपरदा। इमस्स संदावेण अहं रमामि। [अहो ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य संतापेनाहं रमे।]

विदूषकः—भो अत्थि मे तक्को केण वि तत्तहोदी आआससंचारिणा णीदेत्ति। [भोः अस्ति मे तर्कः केनापि तत्रभवत्याकाशसंचारिणा नीतेति।]

अन्वयः—इतः प्रत्यादेशात् स्वजनम् अनुगन्तुम् व्यवसिता मुहुः तिष्ठ इति गुरुसमे गुरु-शिष्ये उच्चैः वदति (सति) पुनः क्रूरे मयि वाष्पप्रसरकलुषाम् दृष्टिम् यत् अर्पितवती तत् माम् सविषम् शल्यम् इव दहति।

संस्कृत टीका—**इतः** अस्माकम् पश्चात्। **प्रत्यादेशात्** निराकृत्या। **स्वस्य** (स्वः वा) **जनः** तम्। **अनुगन्तुम्** अनुसर्तुम्। **व्यवसिता** प्रयत्नम् कुर्वाणा। **मुहुः** अनन्तरम्। **तिष्ठ** विरम। **इति** इदम्। **गुरुणा** पूज्यजनेन (पित्रा) **समे** तुल्ये। **गुरोः** पितुः। **शिष्ये** अन्तेवासिनि। **उच्चैः** तारस्वरेण। **वदति** कथयति (सति)। **पुनः** भूयः **बाष्पाणाम्** अश्रूणाम् **प्रसरेण** व्याप्त्या **कलुषाम्** आविलाम्। **दृष्टिम्** चक्षुः। **यत्**। **क्रूरे** निर्दये। **मयि**। **अर्पितवती** निहितवती। **तत्**। **विषेण** गरलेन **सह** वर्तमानम्। **शल्यम्** शङ्कुः। **इव**। **माम्**। **दहति** ज्वलयति।

हिन्दी व्याख्या—"क्रूर" का अर्थ कठोर है; यहाँ इसका प्रयोग व्यंग्य के लिये है; "धर्म का झूठा लबादा धारण करने वाले कपटी" अर्थ देकर यह "अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य" का उदाहरण बनता है। "दहति" का अर्थ "जलाता है" है, पर "दृष्टि डालने" में दाहकता न होने से ताप लक्षित और तापातिशय व्यंजित होता है। इस तरह यह पद अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य का उदाहरण है। यह पद्य-विशेषतः अंतिम २ पंक्तियाँ-बहुत मर्मस्पर्शी हैं।

छन्द—२१९ द्रष्टव्य। **अलंकार**—उपमा और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—अरे! ऐसी है अपने कार्य के प्रति प्रवृत्ति। इनके क्लेश से मैं प्रसन्न हो रही हूँ।

हिन्दी व्याख्या—"कार्य के प्रति प्रवृत्ति" से आशय है जो विषय (शकुन्तलाशोक) हृदय में है, उसके प्रभाव की तीव्रता। संताप पर संतोष अजीब लगता है। "बेचारी शकुन्तला के प्रति ऐसा निर्दय आचरण किया तो अच्छा है, कष्ट भोगें" यह सोचकर प्रसन्नता है या इससे प्रसन्नता है कि जितना संताप होगा, उतना शकुन्तला का सौभाग्य है कि उसे उसके पति इतना मानते हैं और उसी के अनुरूप प्राप्ति का प्रयत्न भी करेंगे।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—भाई, मेरा तो अनुमान है कि आदरणीया (शकुन्तला) को कोई आकाश-चारी ले गया है।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **भोः** शृणु। **अस्ति**। **मे**। मम। **तर्कः** अनुमानम्। **केनापि** केनचित्। **तत्रभवती** आदरणीया (शकुन्तला)। **आकाशसंचारिणा** व्योमविहारिणा। **नीता**। **इति**।

राजा—कः पतिदेवतामन्यः परामष्टुमुत्सहेत । मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि । तत्सहचारिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते ।

सानुमती—संमोहो खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो । [संमोहः खलु विस्मयनीयो न प्रतिबोधः ।]

विदूषकः—जइ एव्वं अत्थि खु समाअमो कालेण तत्तहोदीये । [यद्येवमस्ति खलु समागमः कालेन तत्रभवत्या ।]

राजा—कथमिव ?

हिन्दी अनुवाद—राजा—जिसका देवता पति ही है, उसे पराया कौन छू सकने की हिम्मत रखता है । सुना है, तुम्हारी सहेली (शकुन्तला) का जन्म स्रोत मेनका है उनकी सखियाँ तुम्हारी सखी को ले गई हैं, यह मेरा हृदय कहता है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । कः । पतिः भर्ता देवता । इष्टदेवः यस्याः तादृशीम् (शकुन्तलाम्) । अन्यः । परकीयः । परामष्टुम् स्प्रष्टुम् । उत्सहेत क्षमेत । मेनका । किल (ऐतिह्ये) । सख्याः आल्याः (शकुन्तलायाः) । ते तव जन्मनः उत्पत्तेः प्रतिष्ठा स्थानम् । इति इदम् । श्रुतवान् आकर्णितवान् । अस्मि । तस्याः (मेनकायाः) सहचारिणीभिः (सहचरीभिः अप्सरोभिः) । सखी आली (शकुन्तला) ते तव । हृता नीता । इति इदम् मे मम । हृदयम् अन्तरम् । आशङ्कते मन्यते ।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—अज्ञान ही आश्चर्यजनक है; ज्ञान नहीं ।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्) । संमोहः अज्ञानम् (विस्मृतिः) । खलु एव । विस्मयनीयः आश्चर्यजनकः । न । प्रतिबोधः ज्ञानम् (स्मृतिः) ।

हिन्दी-व्याख्या—संमोह अस्वाभाविक है, अतः उस पर अचरज होना चाहिये । प्रेम की उत्कटता में प्रेयसी शकुन्तला का विस्मरण अचरज पैदा कर सकता है, स्मरण तो स्वाभाविक है, क्योंकि देर तक भावना की प्रबलता दबी नहीं रह सकती ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—अगर ऐसा है तो कुछ समय में आदरणीया (शकुन्तला) से आपका मिलन निश्चित है ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) यदि चेत् । एवम् पूर्वोक्तम् । अस्ति भविष्यति । खलु निश्चयेन । समागमः मिलनम् । कालेन (कियतापि) समयेन । तत्रभवत्या माननीयया (शकुन्तलया) ।

हिन्दी-व्याख्या—समय और मार्ग के वाचक शब्दों में तृतीया होती है यदि उतने समय या उतनी दूरी के अन्दर फल मिल जाय ('अपवर्गे तृतीया', अष्टाध्यायी २।३।६) ।

हिन्दी-अनुवाद—कैसे ?

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) कथम् केन प्रकारेण । इव (वाक्यालङ्कारे) ।

विदूषक—ण खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं पेक्खिदुं पारेंति।
[न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः।]

राजा—वयस्य !

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम्।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेते मनोरथा नाम तटप्रपाताः॥ १०॥

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर विदूषक की कही बात स्पष्ट है पर चूँकि राजा को प्रिय है, अतः उसे वार-बार, और विस्तार से सुनने के लिये यह प्रश्न किया गया है। "इव" का रूपान्तर "कैसा-कैसा" के रूप में हिन्दी में सुरक्षित है।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—माता पिता से पति के विरह से दुखी बेटी नहीं देखी जाती।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। न। खलु निश्चयेन। माता जननी च पिता जनकः च। भर्तुः पत्युः वियोगेन विरहेण दुःखिताम् आकुलाम्। दुहितरम् पुत्रीम्। द्रष्टुम् अवलोकयितुम्। पारयतः शक्नुतः।

हिन्दी-व्याख्या—विदूषक का आशय है कि माँ मेनका अधिक समय तक अपने पास बेटी को नहीं रख पायेगी, क्योंकि उसकी दुर्दशा माँ होकर न देख पायेगी तब आपके पास पहुँचाने का प्रयत्न करेगी।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मित्र !

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। वयस्य (हे) मित्र।

हिन्दी-अनुवाद—(वह शकुन्तला से प्रथम मिलन) सपना था, इन्द्र-जाल था, बुद्धि की भ्रान्ति थी या वह अल्प पुण्य था जिसका फल बस उतना ही (थोड़े दिनों का साथ) था। वह सब फिर वापस न होने के लिये बीत गया। ये झूठे मनोरथ (तो) नदी-तट के कगार हैं।

अन्वयः—(तत्) स्वप्नः नु माया नु मतिभ्रमः नु तावत्फलम् एव क्लिष्टम् पुण्यम् नु। तत् (सर्वम्) असंनिवृत्त्यै अतीतम्। एते मनोरथाः नाम तटप्रपाताः।

संस्कृत-टीका—(तत् प्रथमम् शकुन्तलामिलनम्) स्वप्नः। नु (वितर्के)। माया इन्द्रजालम्। नु (वितर्के)। मत्याः बुद्धेः भ्रमः भ्रान्तिः। नु (वितर्के) तावत् अल्पदिनसंभाषणादिकम् एव फलम् यस्य तादृशम्। एव। क्लिष्टम् अल्पम्। पुण्यम् सुकृतम्। तत् (पूर्वानुभूतम् शकुन्तला-मिलनसुखम्)। न संनिवृत्त्यै पुनः आगमाय (अपुनरागमनाय)। अतीतम् गतम्। एते इमे (पूर्वोक्ताः) मनोरथाः आशाः नाम अलीकाः (अलीकमनोरथाः)। तटस्य नदीतीरस्य प्रपाताः प्रतटाः।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला के साथ आनन्द से बिताया समय अवर्णनीय होने के साथ क्षणिक था जिससे स्वप्न, माया, मति-भ्रम और अल्प पुण्य का फल कहा है। सपने, जादू और भ्रान्ति में जो चीज दिखती है, वह थोड़ी देर के लिये सत्य और बाद में हमेशा के लिये असत्य और दुर्लभ हो जाती है। पूर्वानुभूत सुख भी कुछ ही समय तक रहा, फिर हमेशा के लिये दुर्लभ हो गया। पहले

विदूषकः—मा एव्वं णं अंगुलीअअं एव्व णिदंसणं अवस्संभावी अचिंतणिज्जो समाअमो होदि त्ति । [मैवम् नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवतीति ।]

किये गये अच्छे कर्मों का संचित फल पुण्य होता है। थोड़े पुण्य से थोड़ा फल मिलता है जो थोड़े ही समय तक टिकता है, अतः वह सुख अल्पपुण्य का फल कहा गया है। बार-बार 'नु' का प्रयोग सूचित करता है कि राजा उस सुख का वर्णन करने में कठिनता अनुभव कर रहे हैं; उसका अवर्णनीय होना इसका कारण है। अभी तक चर्चा चल रही थी कि वह सुख फिर प्राप्त होगा, पर राजा का विषाद उनका हृदय डुबा दे रहा है। मनोरथ झूठे हैं; कभी सच्चे नहीं सिद्ध होंगे। ये बनते हैं और बिगड़ते हैं। अभी-अभी जो मनोरथ संभावित लग रहा था, वही अब असंभव लग रहा है। नये नये मनोरथ बनते हैं और गिरकर नष्ट हो जाते हैं जैसे नदी के किनारे के कगार पानी की टक्कर खा-खाकर गिरते जाते हैं। संस्कृत-हस्त-लिपियों में पदों को अलग-अलग कर लिखने की रीति न होने से चतुर्थ चरण "मनोरथानाम्" और "अतटप्रपात" का अर्थ गिरना हो जायेगा। ऐसे "तट" का अर्थ "तीर" और "प्रपात" का अर्थ "कगार" है। "किनारे से किसी का गिरना जैसे उसे नदी में विलीन कर देता है, उसी तरह मनोरथ विलीन होते जा रहे हैं" यह अर्थ भी लगाया जा सकता है। पद्य में, विशेषतः तृतीय चरण में, उत्कण्ठा का अतिशय है और चतुर्थ चरण दिल को डुबा देता है। यदि व्यापक परिभाषा के अनुसार थोड़ी देर तक जो सत्य रहे या लगे वह स्वप्न, माया या भ्रम हो तो अस्वप्न (जाग्रत दशा), माया-प्रभाव के अभाव और अभ्रान्ति में देखी गई वस्तुएँ अस्थायी होने पर स्वप्नादि कही जा सकती हैं। वेदान्ती, संसार को जो मिथ्या कहते हैं, उसका कारण यही है। स्वप्न मन की कल्पना-मात्र है, माया में मन संमोहित कर स्वप्नावस्था में पहुँचा दिया जाता है और भ्रम में कुछ (असत्) को कुछ (सत्) समझ लिया जाता है। पहली दो दशाओं में कल्पना थी जो असत् है और अन्तिम दशा में भी असत् को सत् मानने से वह भी असत् है। असत् होने पर भी ये दशाएँ सत् बनकर अनिर्वचनीय आनन्द दे सकती हैं, उसी प्रकार राजा को शकुन्तला से प्रथम मिलन के क्षण अस्थायी होने पर भी अनिर्वचनीय हैं।

छन्द—२।७ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—संदेह, रूपक (भिन्न), पुनरुक्तवदाभास तथा अनुप्रास (छेक और वृत्ति)।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—मत कहें ऐसा (अशुभ)। निश्चय ही अँगूठी ही इसका उदाहरण है कि अवश्म्भावी मिलन का होना विचार के परे है (नहीं सोचा जा सकता कि कब होगा)।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **मा** न (वद)। **एवम्** ईदृशम् (अशुभम्)। **ननु** निश्चयेन। **अङ्गुलीयकम्** मुद्रिका। **एव**। **निदर्शनम्** उदाहरणम्। **अवश्यंभावी** अनिवारणीयः। अ-चिन्तनीयः अचिन्त्यः। **समागमः** मिलनम्। **भवति**। **इति**।

हिन्दी व्याख्या—अशकुन की बात मुँह पर लाना ठीक नहीं है, अतः राजा को रोका गया है। जिस तरह अँगूठी का मिलना अवश्यंभावी था तो मिल गई; सपने में भी नहीं सोचा गया था कि मिलेगी। इसी तरह मिलन भी होता है। होना होगा तो होकर रहेगा। भले ही हम उनके होने की संभावना की कल्पना भी न कर सकें।

राजा—(अङ्गुलीयकं विलोक्य) अये इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम् ।

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन ।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु ।। ११ ।।

हिन्दी अनुवाद—राजा (अँगूठी देखकर)—अरे ! जो (अब) सुलभ नहीं है, उस स्थान से गिरी हुई यह (इसकी दशा) शोचनीय है ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **अङ्गुलीयकम्** मुद्राम् । **विलोक्य** दृष्ट्वा । **अये** अहो । **इदम्** एतत् । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) न सुलभम् प्राप्यम् (असुलभम् च तत् स्थानम् आधारः च) तद्भ्रंशि तस्मात् च्युतम् (अतः) **शोचनीयम्** ।

हिन्दी-व्याख्या—अँगूठी जिसके हाथ से या जिससे गिरी है, वह, अँगूठी और दुष्यन्त दोनों को अब असुलभ है ।

हिन्दी-अनुवाद—(ओ) अँगूठी, निश्चय ही तेरा पुण्य मेरे पुण्य की तरह अत्यन्त अल्प है, यह फल से जाना जा सकता है जो उस (शकुन्तला) के लाल नखों के कारण मन हर लेने वाली उँगलियों में स्थान पाकर (वहाँ से) गिर गई हो ।

अन्वयः—अङ्गुलीय नूनम् तव सुचरितम् मम (सुचरितम्) इव प्रतनु (इति फलेन विभाव्यते यत् अरुणनखमनोहरासु तस्याः अङ्गुलीषु लब्धपदम् च्युतम् असि ।

संस्कृत-टीका—**अङ्गुलीय** (हे) मुद्रिके ! **नूनम्** निश्चयेन । **तव** । शोभनम् च तत् चरितम् कृत्यम् च (पुण्यम्) । **मम** (सुचरितम्) । **इव** । **प्रतनु** अत्यल्पम् । (इति) । **फलेन** (अल्पकालेन सङ्गसुखेन) । **विभाव्यते** ज्ञातुम् शक्यते । **यत्** यतः । **अरुणाः** रक्ताः च ते **नखाः** नखराः च तैः मनोहरासु हृदयाकर्षिणीषु । **तस्याः** (शकुन्तलायाः) **अङ्गुलीषु** । **लब्धम्** प्राप्तम् **पदम्** स्थानम् येन तादृशम् (भूत्वा) । **च्युतम्** पतितम् (विरहितम्) **असि** ।

हिन्दी-व्याख्या—पुण्य इन्द्रिय-गोचर नहीं है, उसका फल प्रतनु है, यह कैसे जाना जा सकता है ! इस शंका के समाधान के लिये "फलेन" दिया है । फल देखकर अनुमान से जाना जा सकता है कि वह (फल) अल्प है तो पुण्य भी अल्प रहा होगा । "मम इव" से यह सूचित होता है कि मेरे पुण्य की तरह तुम्हारा पुण्य भी अल्प है । "अरुण नख" से अपना अनुभव बताया गया है । लाल नखों वाली स्त्री रानी होती है, ऐसा "स्त्री लक्षण" में कहा गया है—

"···रक्तनखा·········। तादृगङ्गुलयो यस्याः सा भवेद्राजवल्लभा ॥"

"अङ्गुलि" में बहुवचन आदर के लिये है जैसे बंगाली चिट्ठी में पूज्य के चरणों में प्रणाम के लिये "चरणकमलेषु" का प्रयोग करते हैं । दुष्यन्त की मोटी उँगलियों में आने वाली अँगूठी शकुन्तला की उँगली में ढीली पड़ती होगी जिससे उसने बदल बदलकर उँगलियों में पहनी होगी । अत्यंत प्यारा प्रिय-प्रदत्त उपहार होने से उसका सुख हर उँगली को देने के लिये बदल-बदलकर प्रत्येक उँगली में पहनी गई होगी, यह अर्थ भी निकल सकता है । विरह से उँगलियों के पतली हो जाने से २ या उससे अधिक उँगलियों में भी पहनी जा सकती है, कवि अँगूठी को कंगन बना देते हैं ।

सानुमती—जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे। [यद्यन्यहस्तगतं भवेत्सत्यमेव शोचनीयं भवेत्।]

विदूषकः—भो इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थाब्भासं पाविदा। [भोः इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याशं प्रापिता।]

सानुमती—मम वि कोदूहलेण आआरिदो एसो। [ममापि कौतूहलेनाकारित एषः।]

राजा—श्रूयताम् स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यति इति।

तस्याः किञ्चित्सुभग तदभूत्तानवं त्वद्वियोगाद्,
येनाकस्माद्वलयपदवीमङ्गुलीयं प्रयाति।

छन्द—१।३१ द्रष्टव्य।

अलंकार—अनुमान, काव्यलिङ्ग, अनुप्रास और सहोपमा।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—अगर दूसरे के हाथ में जाती तो सचमुच शोचनीय होती।

संस्कृत-टीका—**सानुमती** (अप्सराः) (वदति यत्)। **यदि** चेत्। **अन्यस्य** नृपेतरस्य **हस्तम्** करम् **गतम्** प्राप्तम् **भवेत्** अभविष्यत् (तदा)। **सत्यम्** वस्तुतः। **एव**। **शोचनीयम्**। **भवेत्** अभविष्यत्।

हिन्दी-व्याख्या—एक योग्य (शकुन्तला) के हाथ से दूसरे योग्य (दुष्यन्त) के पास आई है, शोचनीय नहीं है। हाँ, दुष्यन्त के अलावा किसी अन्य को प्राप्त होती तो अवश्य शोचनीय होती यह आशय है।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (वदति यत्)। **भोः** शृणु (वद)। **इयम्** एषा। नामयुक्ता मुद्रा अङ्गुलीयकम्। **केन**। **उद्घातेन** समुपक्रमेण। तत्रभवत्याः माननीयायाः (शकुन्तलायाः)। हस्तस्य करस्य **अभ्याशम्** नैकट्यम्। **प्रापिता** (त्वया)।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—मेरे कौतूहल ने भी इस (विदूषक) को पुकारा (प्रेरित किया) है।

संस्कृत-टीका—**सानुमती** (अप्सराः) (वदति यत्)। **मम**। **अपि**। **कौतूहलेन** जिज्ञासया। **आकारितः** आहूतः (प्रेरितः) **एषः** अयम् (विदूषकः)।

हिन्दी व्याख्या—विदूषक की उत्सुकता ने तो उससे यह प्रश्न कराया ही है, मेरी उत्सुकता ने भी उसमें योग दान किया है, यह आशय है। इसे दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि, मुझे भी यह जानने का कौतूहल था।

अलङ्कार—गम्योत्प्रेक्षा।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—सुनो, अपने नगर के लिये रवाना हो चुके मुझसे प्रिया ने (आँखों में) आँसू लेकर कहा, "कितनी देर में (कब) स्वामी समाचार देंगे ?

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **श्रूयताम्** आकर्ण्यताम्। **स्वस्य**

विदूषकः—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

राजा—पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता—

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं नामाक्षरं गणय गच्छति यावदन्तम् ।
तावत्प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ॥ १२ ॥

तच्च दारुणात्मना मया मोहान्नानुष्ठितम् ।

निजस्य **नगराय** पुराय (राजधान्यै) **प्रस्थितम्** प्रचलितम् । **माम्** । **प्रिया** दयिता (शकुन्तला) । वाष्पेण अश्रुणा सहितम् तथा यथा स्यात् तथा । **आह** अवदत् । **कियच्चिरेण** कियता विलम्बेन । **आर्यपुत्रः** स्वामी । **प्रतिपत्तिम्** वार्त्ताम् । **दास्यति** प्रेषयिष्यति । **इति** ।

विदूषकः—फिर; फिर (क्या हुआ) ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) । **ततः** तत्पश्चात् (किम् जातम्) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—इसके बाद यह अँगूठी उसकी उँगली में पहनाते हुए मैंने उत्तर दिया—(हे) प्रिये, रोज-रोज इस (अँगूठी) पर खुदे मेरे नाम का एक-एक अक्षर गिनना, जब अंत हो जायेगा, तब मेरे रनिवास में प्रवेश कराने वाला आदमी तुम्हारे पास पहुँचेगा ।

अन्वयः—प्रिये, दिवसे दिवसे अत्र मदीयम् एकैकम् नामाक्षरम् गणय । यावत् अन्तम् गच्छति तावत् मदवरोधगृहप्रवेशम् नेता जनः तव समीपम् एष्यति इति ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । (हे) **प्रिये** दयिते ! **दिवसे** अहनि । **दिवसे** अहनि, **अत्र** अस्मिन् (अङ्गुलीयके) (विद्यमानम्) । **मदीयम्** मम । **एकैकम्** एकम् एकम् । **नाम्नः** **अक्षरम्** । **गणय** । **यावत्** यदा । **अन्तम्** समाप्तिम् । **गच्छति** याति (गमिष्यति) । तावत् तदा (एव) । मम **अवरोधगृहे** अन्तःपुरे **प्रवेशः** तम् । **नेता** प्रापयिता । **जनः** भृत्यः । **तव** । **समीपम्** निकटम् । **एष्यति** गमिष्यति । **इति** ।

हिन्दी-व्याख्या—"प्रत्येक" की जगह "एकैक" का विशेषणात्मक प्रयोग संस्कृत में आता है; स्वयं प्रत्येक इस अर्थ में नहीं आता । "गच्छति" वर्त्तमान काल में है पर आसन्न भविष्य बता रहा है । यही नामाक्षर-गणना से भी व्यक्त होता है । ३–४ दिन में नाम के अक्षरों की गिनती प्रतिदिन १ अक्षर की दर से समाप्त हो जायेगी, तब तक आदमी यहाँ पहुँच जायेगा । आशय है कि मेरे राजधानी में पहुँचने के बाद वहाँ से मेरे आदेश से चल पड़े दूत के यहाँ तक पहुँचने भर की देर है ।

छन्द—११८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—और वह (काम) कठोर हृदय वाले मैंने अज्ञान-वश नहीं किया ।

संस्कृत-टीका—**तत्** (दूतप्रेषणम्) । **च** । **दारुणः** कठोरः **आत्मा** हृदयम् यस्य तादृशेन । **मया** । **मोहात्** अज्ञानात् **न अनुष्ठितम्** कृतम् ।

सानुमती—रमणीओ खु अवही विहिणा विसंवादिदो । [रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः ।]

विदूषकः—कहं धीवलकप्पिअस्स रोहिदमच्छस्स उदलब्भंतले आसि । [कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत् ।]

राजा—शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम् ।

विदूषकः—जुज्जइ । [युज्यते ।]

सानुमती—अदो एव्व तवस्सिणीए सउंदलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए संदेहो आसि अहवा ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि कहं विअ एदं । [अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये संदेह आसीत् । अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् ।]

हिन्दी-व्याख्या—"दारुणात्मा" विशेषण इस "मया" से व्यंग्य को लाने के लिये है कि "जो वैसा स्नेह भूल गया अतः अधम है ।"

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—निश्चय ही रमणीय कार्य-क्रम विधाता के द्वारा अस्त-व्यस्त कर दिया गया ।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्) । **रमणीयः** कमनीयः । खलु निश्चयेन । **अवधिः** समयः । **विधिना** दैवेन । **विसंवादितः** पर्यस्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—इधर प्रिय के नामाक्षर प्रतिदिन एक-एक कर गिने जायेंगे, और जैसे ही समाप्त होंगे वैसे ही उधर से प्रिय का आदमी आकर ले जायेगा । यह अवधि कितनी प्यारी है । भाग्य ने शाप बनकर इसे नष्ट कर दिया ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—कैसे (वह अँगूठी) मछुए के द्वारा काटी गई रोहू मछली के पेट के अन्दर थी ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) । **कथम्** केन प्रकारेण । धीवरेण कैवर्त्तेन **कल्पितस्य** खण्डितस्य **रोहितमत्स्यस्य** रोहितनामकस्य मीनस्य । **उदरस्य अभ्यन्तरे** अन्तः । आसीत् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—शची-तीर्थ को प्रणाम कर रही तुम्हारी सखी के हाथ से गङ्गा जी के बहाव में गिर गई थी ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **शचीतीर्थम्** । **वन्दमानायाः** नमन्त्याः **सख्याः** आल्याः । **ते** तव (शकुन्तलायाः) । **हस्तात्** करात् । **गङ्गायाः** भागीरथ्याः **स्रोतसि** प्रवाहे । **परिभ्रष्टम्** च्युतम् (अङ्गुलीयकम्) ।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—बात समझ में आती है ।

संस्कृत-टीका – विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) । **युज्यते** उचितम् अस्ति ।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—इसीलिये अधर्म से डरने वाले इन राजर्षि को बेचारी शकुन्तला के व्याह के विषय में शंका थी । या (पर क्या) इस प्रकार के प्रेम की पहचान की आवश्यकता होती है । यह कैसे ?

राजा—उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम्।

विदूषकः—(आत्मगतम्) गहीदो णेण पन्था उम्मत्तआणं। [गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम्।]

राजा—(अङ्गुलीयकं विलोक्य) मुद्दिके !

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

संस्कृत टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्)। **अतः** अस्मात् कारणात्। **एव**। तपस्विन्याः अनुकम्पार्हायाः। **शकुन्तलायाः**। **अधर्मात्** पापात् **भीरोः** भीतस्य। **अस्य**। **राजा** नृपः च **ऋषिः** मुनिः च तस्य (मनसि)। **परिणये** पाणिग्रहणविषये। **संदेहः** शङ्का। **आसीत्**। अथ वा यद्वा। **ईदृशः** एतादृशः (प्रगाढः) **अनुरागः** प्रेम। **अभिज्ञानम्** परिचयचिह्नम्। **अपेक्षते**। **कथम्** केन प्रकारेण। **इव** (वाक्यालंकारे)। **एतत्** इदम् (पूर्वोक्तम्)।

हिन्दी-व्याख्या—अप्सरा को शाप की बात नहीं मालूम है जिससे उसकी यह शंका नहीं दूर हो पा रही है कि क्या कारण है कि इतना प्रगाढ़ प्रेम होने पर भी व्याह तक को याद न रही और पहचान की जरूरत पड़ गई।

हिन्दी अनुवाद—राजा—मैं तो इस अँगूठी को ही उलाहना दूँगा।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **उपालप्स्ये** निन्दिष्यामि। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **इदम्** एतत्। **अङ्गुलीयकम्** मुद्रिकाम्।

हिन्दी व्याख्या—यह उन्माद की अवस्था है जिसमें अचेतन अंगूठी को भी उलाहना दिया जा रहा है।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—(आत्मगत)—इन्होंने पागलों का रास्ता पकड़ लिया।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) **आत्मगतम्** (वदति यत्), **गृहीतः** अङ्गीकृतः। **अनेन एतेन** (दुष्यन्तेन)। **पन्थाः** मार्गः। **उन्मत्तानाम्** वातुलानाम्।

हिन्दी अनुवाद—राजा (अँगूठी देखकर)—(ओ) अँगूठी !

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः)। **अङ्गुलीयकम्** मुद्रिकाम्। **विलोक्य** दृष्ट्वा। **मुद्रिके** (हे) अङ्गुलीयक !

हिन्दी-अनुवाद—यह कैसे संभव हुआ कि वह हाथ, जिसकी उँगलियाँ सुन्दर और मुलायम थीं छोड़कर (तुम) पानी में डूब गई हो ?

अन्वय—कथम् नु बन्धुरकोमलाङ्गुलिम् तम् करम् विहाय अम्भसि निमग्नम् असि ?

संस्कृत टीका—**कथम्** केन कारणेन। **नु** (प्रश्ने)। बन्धुराः सुन्दराः च कोमलाः मृदवः च अङ्गुलयः यत्र तादृशम्। **करम्** हस्तम् (शकुन्तलायाः) **विहाय** त्यक्त्वा। **अम्भसि** जले। **निमग्नम्**। असि।

हिन्दी-व्याख्या—"तम्" बताता है कि हाथ के स्पर्श का अनुभव पहले किया था। एक तो वह हाथ जान-बूझकर छोड़ा, दूसरे जानबूझकर ही डूबकर अदृश्य हो गई, ये दो उपालंभ हैं। इस पद्य का अर्धभाग आगे आ रहा है।

अथवा—

अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥१२॥

विदूषकः—(आत्मगतम्) कहं बुभुक्खाए खादिदव्वो म्हि [कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि ।]

राजा—अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन ।

हिन्दी अनुवाद—या ।

संस्कृत टीका—अथवा यद्वा ।

अलङ्कार—वृत्ताक्षेप ।

हिन्दी अनुवाद—अचेतन तो गुणों को नहीं देखता, मैंने ही क्यों प्रिया का तिरस्कार किया !

अन्वयः—अचेतनम् नाम गुणम् न लक्षयेत् । मया एव कस्मात् प्रिया अवधीरिता ।

संस्कृत टीका—**अचेतनम्** जडम् (वस्तु) (कर्तृ) । **नाम** (प्रसिद्धौ) । **गुणम्** प्रेमादिकम् । **न** । **लक्षयेत्** पश्येत् (विचारयेत्) (तर्हि तत् क्षमार्हम्) । **मया** (सचेतनेन) । **एव** अपि । **कस्मात्** केन कारणेन (अकारणम्) । **प्रिया** दयिता (शकुन्तला) । **अवधीरिता** तिरस्कृता (अस्वीकारेण) ।

हिन्दी व्याख्या—"जब मैंने सचेतन होकर भी, और अपनी प्रिया तक का, तिरस्कार किया तब तुमने अचेतन होकर यदि एक नारी का त्याग कर दिया तो कौन बड़ी बात है, मेरा अपराध इतना बड़ा है, तुम्हारा तो कुछ भी नहीं" अँगूठी से यह कहकर राजा उसे उलाहना देते-देते अपनी निन्दा करने लगते हैं । यह श्लोक का उत्तरार्ध है; पूर्वार्द्ध पहले आ चुका है ।

छन्द—६।१८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—समासोक्ति (अतिशयोक्तिगर्भा), अर्थान्तरन्यास, विभावना, अनुप्रास (श्रुति और वृत्ति) और संकर ।

हिन्दी अनुवाद—(आत्मगत)-क्या भूख द्वारा खा ही डाला जाऊँगा ?

संस्कृत टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) । **आत्मगतम्** (वदति यत्) । **कथम्** किम् । **बुभुक्षया** क्षुधया । **खादितव्यः** भक्षितव्यः । **अस्मि** ।

हिन्दी व्याख्या—विदूषक का आशय है कि ये महाराज तो उन्माद में अपनी बात ही समाप्त न करेंगे और शिष्टाचार-वश मुझे इनके साथ रहना ही पड़ेगा जिससे भोजन के लिये नहीं जा पाऊँगा जिससे लगता है कि भूख मुझे खा ही डालेगी ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(प्रिये), अकारण परित्याग के पश्चात्ताप से तप्त हृदय वाले मुझ पर पुनर्दर्शन से अनुकम्पा करो ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) (प्रिये) । अविद्यमानम् **कारणम्** हेतुः यत्र तादृशः च सः **परित्यागः** निराकृतिः च तस्मात् यः **अनुशयः** पश्चात्तापः तेन **तप्तम्**

(प्रविश्यापटीक्षेपेण चित्रफलकहस्ता)

चतुरिका—इअं चित्तगदा भट्टिणी। [इयं चित्रगता भट्टिनी।] (इति चित्रफलकं दर्शयति।)

विदूषकः—साहु वअस्स। महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो। क्खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु। [साधु वयस्य! मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः। स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु।]

सानुमती—अम्मो एसा राएसिणो णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति। [अहो! एषा राजर्षेर्निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति।]

शोकाकुलम् **हृदयम्**। अन्तरम् यस्य तादृशः। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **अनुकम्प्यताम्** दयापात्री-क्रियताम्। **अयम्** एषः। **जनः** व्यक्तिः (अहम्)। **पुनः** भूयः। **दर्शनेन**।

हिन्दी-व्याख्या—ऊपर राजा ने जो श्लोक कहा है, उसके अन्त में "प्रिया" पद आया है! उसे कहते ही उन्माद की अवस्था में वे प्रिया को कल्पना के नेत्रों से देखकर प्रार्थना करते है।

हिन्दी-अनुवाद—(परदा हिलाकर चित्र-पट हाथ में लिये हुये प्रवेश कर) चतुरिका—ये हैं चित्र में अंकित रानी जी। (यह कहकर चित्रपट दिखाती है।)

संस्कृत-टीका—**प्रविश्य** अन्तः आगत्य। **चित्रस्य** आलेख्यस्य **फलकम्** पटः **हस्ते** करे यस्याः तादृशी। **अपटयाः** जवनिकायाः क्षेपेण चालनपूर्वकम्। **चतुरिका** (परिचारिका) (वदति यत्)। **इयम्** एषा। **चित्रम्** आलेख्यम् **गता** अपिता। **भट्टिनी** राज्ञी (शकुन्तला)। **इति** ततः। **चित्रस्य** आलेख्यस्य **फलकम्** पटम् **दर्शयति**।

हिन्दी व्याख्या—राजा ने पुनर्दर्शन चाहा और संयोग-वश वह चित्र-रूप में आ गया।

हिन्दी अनुवाद—धन्य है मित्र! आकर्षक आकृति के कारण भावों का निवेशन दर्शनीय है। मेरी दृष्टि ऊँची-नीची जगहों पर ठोकर-सी खाती (रुकती) है।

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **साधु** धन्यः असि। **वयस्य** (हे) मित्र। **मधुरम्** चेतोहरम् च तत् **अवस्थानम्** आकृतिः च तेन **दर्शनीयः** दर्शनयोग्यः। **भावानाम्** **अनुप्रवेशः** अभ्यन्तरीकरणम्। **स्खलति** विरमति। **इव**। **मे** मम। **दृष्टिः** चक्षुः। **निम्नाः** अवनताः च **उन्नताः** उच्चाः च ते प्रदेशाः स्थानानि च तेषु।

हिन्दी व्याख्या—जिसका चित्र है, उसके साक्षात् होने पर अङ्गों के ऊँचे-नीचे भागों पर दृष्टि रुकती (देखती) हैं; किसी समतल पृष्ठ पर चित्र बनता है अतः दबे और उठे भाग का प्रश्न ही पैदा नहीं होता; पर कलाकार की कुशल रेखाओं और रंगों की विभिन्नता या हल्के-गाढ़े रंगों (Shades) से दबे और उठे भागों की प्रतीति होती है। यहाँ दुष्यन्त की कला की उत्कृष्टता सराही गई है।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—धन्य है राजर्षि की यह निपुणता! लगता है, सखी (शकुन्तला) मेरे सामने है।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्)। अहो (आश्चर्ये)। **एषा** इयम्

राजा—

यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम् ॥ १४ ॥

सानुमती—सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिनेहस्स अणवलेवस्स अ।

विदूषकः—भो दाणिं तिण्हिओ तत्तहोदीओ दीसंति। सव्वाओ अ दंसणीआओ।

(चित्ररूपे) राजा नृपः च सः ऋषिः मुनिः च तस्य निपुणता पटुता (चित्रकलायाम्) जाने प्रतीयते। सखी आली (शकुन्तला।) अग्रतः समक्षम्। मे मम। वर्तते विद्यते। इति।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)।

हिन्दी अनुवाद—(यद्यपि इस) चित्र में जो-जो (भाग) ठीक नहीं है, वह-वह (भाग) बदल दूँगा, तथापि रेखा ने उसके लावण्य का कुछ-कुछ अनुसरण कर लिया है।

अन्वयः—(यद्यपि अस्मिन्) चित्रे यत् यत् साधु न स्यात् तत् तत् अन्यथाक्रियते तथापि तस्याः लावण्यम् रेखया किंचित् अन्वितम्।

संस्कृत-टीका—(यद्यपि। अत्र) चित्रे आलेख्ये। यत्। यत्। साधु समीचीनम्। न स्यात् भवेत्। तत् तत्। अन्यथा संशोधितम्। क्रियते करिष्यते। तथापि तदपि। तस्याः (शकुन्तलायाः)। लावण्यम् कान्तिः। रेखया। किञ्चित् ईषत्। अन्वितम् अनुगतम् (अनुकृतम्)।

हिन्दी व्याख्या—राजा ने इतना सुन्दर चित्र बनाया है; फिर भी उन्हें शकुन्तला के अवर्णनीय सौन्दर्य की झलक उसमें पूरी-पूरी नहीं मिल पा रही है, अतः वे उसे बदलने का विचार रखते हैं लेकिन अब पूर्ण संशोधित न होने पर भी चित्र में लावण्य कुछ-कुछ उतर आया है जिससे वे संतुष्ट हैं। लावण्य असीम है, अतः पूरा-पूरा न तो आ पाया है और न आ पायेगा।

छन्द—पथ्यावक्त्र (१।५ द्रष्टव्य) यह अनुष्टुप् ही है, और कभी-कभी उसका भेद कहा जाता है; अन्तर इतना है कि दूसरे व चौथे चरण में ४-४ अक्षरों के बाद जगण (।ऽ।) आता है—'युजोर्जेन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्' [वृत्तरत्नाकर २।२२]।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—यह पश्चात्ताप के कारण अधिक और निर्दोष (स्वाभाविक) स्नेह के अनुकूल (ही) है।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्)। सदृशम् अनुकूलम् (एव)। एतद् (दुष्यन्तोक्तिः)। पश्चात्तापेन परितापेन गुरोः अधिकस्य। स्नेहस्य प्रेम्णः। अविद्यमानः अवलेपः दोषः यत्र तादृशस्य (स्नेहस्य)।

हिन्दी-व्याख्या—राजा को जो अपने चित्र में कसर रह जाना प्रतीत होता है और जो उसे संशोधनापेक्ष मानते हैं, यह सूचित करता है कि अगाध प्रेम से उन्हें शकुन्तला ऐसी सुन्दर लगती है जिसका ठीक चित्र कभी पूरा हो ही नहीं सकता। उक्त भाव के लिये यहाँ "एतत्" आया है।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—अरे! अब तीन माननीयाएँ दिख रही हैं और सबकी सब देखने

कदमा एत्थ तत्तहोदी सउंदला। [भोः इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला।]

सानुमती—अणभिण्णो खु ईदिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो। [अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोहदृष्टिरयं जनः।]

राजा—त्वं तावत्कतमां तर्कयसि ?

विदूषकः—तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबन्धणुव्वंतकुसुमेण केसंतेण उब्भिण्णसेअविंदुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे ईसिपरिस्संता विअ आलिहिदा सा सउंदला। इदराओ सहीओ त्ति। [तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा शकुन्तला। इतरे सख्याविति।]

लायक हैं। इनमें कौन-सी माननीया शकुन्तला है ?

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **भोः** अये। **इदानीम्** अधुना। **तिस्रः**। **तत्रभवत्यः** माननीयाः। **दृश्यन्ते** अवलोक्यन्ते। **सर्वाः** सकलाः। **च**। **दर्शनीयाः** दर्शनयोग्याः (रूपवत्यः)। **कतमा** का। **तत्रभवती** माननीया। **शकुन्तला**।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—मुग्ध दृष्टि वाली मैं तो इस प्रकार के सौन्दर्य के विषय में कोरी ही हूँ।

संस्कृत-टीका—सानुमती—(अप्सराः) (वदति यत्)। **अनभिज्ञः** अपरिचितः। **खलु** निश्चयेन। **ईदृशस्य** एतत्प्रकारकस्य। **रूपस्य** सौन्दर्यस्य। **मोहः** मुग्धता **दृष्टौ** चक्षुषि यस्य तादृशः। **अयम्** एषः। **जनः** व्यक्तिः (अहम्)।

हिन्दी अनुवाद—राजा—अच्छा, तुम्हें कौन (शकुन्तला) लगती है ?

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **त्वम्** **तावत्**। **कतमाम्** काम्। **तर्कयसि** मन्यसे।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—मेरा ख्याल है कि छिड़काव से चिकने हुए नये पल्लवों वाले आम के पेड़ के पास यह जो ढीले केश-बन्धन से बाहर निकले फूल वाले केश-पाश (से) तथा छलछला आई पसीने की बूँदों वाले मुख (से) तथा अधिक लटकी भुजाओं से जरा थकी-सी चित्रित की गई है, वह शकुन्तला है। अन्य दो सहेलियाँ हैं।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। **तर्कयामि** मन्ये। **या**। **एषा**। इयम्। **शिथिलः** श्लथः च असौ **केशानाम्** मूर्धजानाम् **बन्धः** बन्धनम् तेन **उद्वान्तानि** निर्गतानि **कुसुमानि** (प्रसाधन) पुष्पाणि यस्मात् तेन (केशान्तेन)। **केशानाम्** मूर्धजानाम् **अन्तेन** प्रदेशेन (केशपाशेन)। **उद्भिन्नाः** उद्गताः **स्वेदस्य** श्रमजलस्य बिन्दवः कणाः यत्र तेन (वदनेन)। **वदनेन** मुखेन। **विशेषतः** अधिकम्। **अपसृताभ्याम्** नतांसाभ्याम्। **बाहुभ्याम्** भुजाभ्याम्। **अवसेकेन** ईषत् जलप्रदानेन **स्निग्धाः** **तरुणाः** नूतनाः च **पल्लवाः** पत्राणि यस्य तादृशस्य। **चूतपादपस्य** आम्र-

राजा—निपुणो भवान्। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्।

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।

अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात् ॥ १५ ॥

वृक्षस्य। पार्श्वे समीपे। **ईषत्** किञ्चित्। **परिश्रान्ता** क्लान्ता। **इव आलिखिता** लिखिता। **सा**। **शकुन्तला**। **इतरे** अन्ये (द्वे बाले)। **सख्यौ** (शकुन्तलायाः) आल्यौ।

हिन्दी व्याख्या—जिस लक्षण (जटादि) से उपलक्षित (युक्त) होकर विशेष स्वरूप (तापसादि) प्राप्त होता है, उसे उपलक्षण कहते हैं और उसमें तृतीया ("उपलक्षणे तृतीया") होती है। उक्त नियम के अनुसार परिश्रान्त होने में केशान्त, वदन, और बाहु कारण हैं अतः तृतीया में आये हैं। चिन्ता, कथा, जागरणादि से शकुन्तला थक गई होगी, अतः थकी हुई ही वह है, इस तरह अनुमान लगाया गया है।

हिन्दी अनुवाद—राजा—तुम चतुर हो; इस पर मेरे (सात्त्विक) भाव पसीने व आँख का चिह्न है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (वदति यत्): **निपुणः** चतुरः। **भवान्** त्वम्। **अस्ति** विद्यते **अत्र** अस्मिन् (शकुन्तलाचित्रे)। **मे** मम। **भावेन** सात्त्विकभावेन (स्वेदेन अश्रुणा च कृतम्) **चिह्नम्**।

हिन्दी-व्याख्या—शकुन्तला का चित्र बनाते समय प्रेमविह्वलता से राजा को पसीना आ गया था और आँखें डबडबा आई थीं जिसकी निशानी चित्र पर रह गई थी।

हिन्दी अनुवाद—पसीने से तर उँगलियों का विन्यास (रचना) रेखाओं के किनारों पर मलिन दिखता है और गाल पर गिरा आँसू रंग के फूल जाने से यह दिख रहा है।

अन्वयः—स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशः रेखाप्रान्तेषु मलिनः दृश्यते कपोलपतितम् च अश्रुवर्तिकोच्छ्वासात् इदम् दृश्यम्।

संस्कृत टीका—**स्विन्नाः** स्वेदयुक्ताः च ताः **अङ्गुलयः** च तासाम् **विनिवेशः** स्थापनम्। **रेखाणाम् प्रान्तेषु** तटेषु। **मलिनः** आविलः। **दृश्यते** विलोक्यते,। **कपोले** प्रिया (चित्रस्य) गण्डदेशे **पतितम्** गलितम्। **च**। **अश्रु** वाष्पम्। **वर्तिकायाः** चित्रपटे रङ्गलेपः **उच्छ्वासात्** उच्छूनत्वात्। **इदम्** प्रत्यक्षम्। **दृश्यम्** नेत्रगोचरः।

हिन्दी-व्याख्या—चित्र बनाते समय सारे शरीर में पसीना आ गया; उँगलियों पर छलका पसीना छाप छोड़ गया जो रंगों पर उतना नहीं दिखता जितना उनके किनारे पर दिखता है, दुष्यन्त की आँख से चूकर आंसू चित्र की शकुन्तला के गाल पर पड़ गया जिससे वहाँ लगा हुआ रंग-लेप फूल गया। पानी पड़ने से रंग या पट (कागज आदि) फूल आता है। "इदम्" का प्रयोग बताता है कि पसीने से बड़ा आंसू का प्रमाण है जो ज्यादा प्रत्यक्ष है और जिसमें शक नहीं हो सकता; पसीना न होने पर भी हाथ की रगड़ से रंग खराब हो सकता है। पसीना, आँसू, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भाव कहे जाते हैं जो अनुभाव के अङ्ग हैं। यहाँ इन्हें केवल भाव कहा गया है।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य।

राजा—चतुरिके अर्धलिखितमेतद्विनोदनस्थानम्। गच्छ वर्तिकाम् तावदानय।

चतुरिका—अज्ज माढव्व अवलंब चित्तफलअं जाव आअच्छामि।
[आर्य माढव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि।]

राजा—अहमेवैतदवलम्बे। (इति यथोक्तं करोति) (निष्क्रान्ता चेटी)।

राजा—(निःश्वस्य) अहं हि

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम् ॥ १६ ॥

अलङ्कार—अनुमान और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—(हे) चतुरिका, मन-बहलाव का यह आधार (चित्र) आधा (ही) अंकित है; जाओ, जरा कूँची ले आओ।

संस्कृत टीका—(हे) चतुरिके! **अर्धम्** अपूर्णम् यथा स्यात् तथा **लिखितम्** अङ्कितम्। **एतत्** इदम्। **विनोदनस्य** मनोरञ्जनस्य **स्थानम्** आधारः (अतः) **गच्छ** व्रज **वर्तिकाम्** तूलिकाम्। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)। **आनय**।

हिन्दी अनुवाद—चतुरिका—माढव्य जी, चित्र-पट सँभालो; आ रही हूँ।

संस्कृत-टीका—**चतुरिका** (परिचारिका) (वदति यत्)। **आर्य** श्रीमन्। **माढव्य** (संबुद्धौ), **अवलम्बस्व**। (तावत्) **चित्रस्य फलकम्** पटम्। **यावत्** यत्पर्यन्तम्। **आगच्छामि** निवर्त्ते।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मैं स्वयं इसे सँभालता हूँ। (यह कहकर ऊपर कहे अनुसार करते हैं) (दासी बाहर जाती है)।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **अहम्** । **एव** स्वयम्। **एतत्** (चित्रफलकम्) **अवलम्बे**। इति ततः। **उक्तम्** पूर्वोक्तम् अनतिक्रम्य। **करोति** विदधाति (अवलम्बते)। **निष्क्रान्ता** बहिः गता। **चेटी** परिचारिका (चतुरिका)।

हिन्दी-व्याख्या—अपनी प्रिय वस्तु अपने ही हाथ में लेकर मनुष्य बार-बार देखना चाहता है और तृप्त ही नहीं होता। शकुन्तला का चित्र खुद पकड़ने में यही कारण है।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(साँस छोड़कर) मैं तो—

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः)। **निःश्वस्य अहम्**। हि तु।

हिन्दी अनुवाद—(हे) मित्र, पहले साक्षात् पास आई प्रिया का तिरस्कार कर अब चित्र में बनी हुई इस (प्रिया) को बहुत मानता हुआ मैं रास्ते में पड़ी प्रचुर जल वाली नदी को पीछे छोड़ मृगतृष्णा का अनुरागी हो गया हूँ।

अन्वयः—सखे पूर्वम् साक्षात् उपगताम् प्रियाम् अपहाय पुनः चित्रार्पिताम् इमाम् बहु मन्यमानः (अहम्) पथि निकामजलाम् स्रोतोवहाम् अतीत्य मृगतृष्णिकायाम् प्रणयवान् जातः।

विदूषकः—(आत्मगतम्) एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिअं संकंतो, (प्रकाशम्) भो अवरं किं एत्थ लिहिदव्वं । [एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः । अपरं किमत्र लिखितव्यम् ।]

सानुमती—जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे । [यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपस्तं तमालिखितुकामो भवेत् ।]

संस्कृत टीका—सखे (हे) पूर्वम् आदौ । साक्षात् प्रत्यक्षम् । उपगताम् समीपे प्राप्ताम् । प्रियाम् दयिताम् (शकुन्तलाम्) । अपहाय अवगणय्य । पुनः ततः (अधुना) । चित्रे आलेख्ये अर्पिताम् रचिताम् । इमाम् (प्रियाम्) बहु नितराम् । मन्यमानः आदरेण अवलोकमानः, पथि मार्गे । निकामम् पूर्णम् जलम् वारि यत्र तादृशीम् । स्रोतोवहाम् नदीम् । अतीत्य पृष्ठतः उपेक्ष्य । मृगतृष्णिकायाम् मृगमरीचिकायाम् । प्रणयवान् प्रीतियुक्तः । जातः संवृत्तः ।

हिन्दी व्याख्या—राघव भट्ट, "अपहाय" का अर्थ "त्यागकर" होने पर भी न लगाकर "तिरस्कार" लगाते हैं; उनके अनुसार, महापुरुष के लिये अनौचित्य का प्रसंग उपस्थित हो जाता है यदि वे एक वार त्यागी हुई वस्तु फिर ग्रहण कर लेते हैं । प्रिया और जलपूर्ण नदी, पूर्वकाल और मार्ग तथा प्रिया-चित्र और मृगतृष्णा की तुलना है । रेगिस्तान में रेत से टकराकर धूप रेत-कणों की चमक और अपने से लगकर गर्म हुई हवा से ऐसा दृश्य उपस्थित करती है जैसे पानी पास ही है; हरिण उस भ्रांति में दौड़ता ही चला जाता है; वह पानी का आभास दूर से दूरतर होता चला जाता है । चित्र भी मृगतृष्णा की तरह असत्य है; उसे देखने में खिन्नता ही बढ़ती है ।

छन्द—१.८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—हेतु, निदर्शना और अनुप्रास (छेक, वृत्ति और श्रुति) ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक (आत्मगत)—ये श्रीमान् नदी लाँघकर मृगतृष्णा में स्थानान्तरित हो गये । (प्रकाश) हाँ, बताये कि इसमें और क्या (चित्र) बनाना है ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (आत्मगतम्) (वदति यत्) । एषः अयम् । अत्रभवान् पूज्यः (दुष्यन्तः) । नदीम् सरितम् । अतिक्रम्य उल्लङ्घ्य । मृगतृष्णिकाम् मृगमरीचिकाम् । संक्रान्तः प्राप्तः । भोः अये । अपरम् अन्यत् । किम् । अत्र अस्मिन् (चित्रपटे) । लिखितव्यम् रचितव्यम् ।

हिन्दी व्याख्या—ये तो उन्मादी हो गये हैं इनका उन्माद छुड़ाकर इन्हें प्रकृतिस्थ किया जाय, यह विदूषक के आत्म-गत कथन का आशय है ।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—मेरी सहेली (शकुन्तला) से संबद्ध जो-जो स्थान सुन्दर हैं, उन्हें चित्रित करना चाहते होंगे ।

संस्कृत टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्) । यः । यः । प्रदेशः स्थानम् । सख्याः आल्याः (संबन्धी) मे मम । अभिरूपः सुन्दरः । तम् । तम् । आलिखितुम् चित्रे अर्पयितुम् कामः इच्छा यस्य तादृशः (राजा) । भवेत् स्यात् ।

राजा—श्रूयताम्

> **कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी**
> **पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।**
> **शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः**
> **श्रृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥ १७ ॥**

हिन्दी अनुवाद-राजा-सुनो।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **श्रूयताम्** आकर्ण्यताम् !

हिन्दी अनुवाद-(मुझे) मालिनी नदी बनानी है जिसके रेतीले किनारे पर हंस-युगल स्थित है तथा उस (नदी) के पास हिमालय के पवित्र करने वाले चरण बनाने हैं जहाँ हरिण बैठे हैं। फिर, जिनकी डालों से पेड़ की छाल के कपड़े लटके हैं। उन वृक्षों के तले कृष्णमृग के सींग से अपनी बायीं आँख खुजलाती हुई हिरनी बनाना चाहता हूँ।

अन्वयः—सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी कार्या । ताम् अभितः निषण्णहरिणाः पावनाः गौरीगुरोः पादाः (कार्याः) । शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोः अधः कृष्णमृगस्य श्रृङ्गे वामनयनम् कण्डूयमानाम् मृगीं निर्मातुम् इच्छामि ।

संस्कृत टीका—सैकते वालुकातटे **लीनम्** विश्रान्तम् **हंसयोः** मरालयोः **मिथुनम्** युगलम् यस्याः तादृशी । **स्रोतोवहा** नदी । **मालिनी** (तन्नाम्नी) । **कार्या** रचितव्या । **ताम्** (मालिनीम्) । **अभितः** समीपे । **निषण्णाः** उपविष्टाः **हरिणाः** मृगाः यत्र तादृशाः । **पावनाः** पवित्रताजनकाः । **गौर्याः** पार्वत्याः **गुरोः** पितुः (हिमालयस्य) । **पादाः** चरणाः (निम्नभूमयः) (लिखितव्याः) । **शाखायाम् आलम्बितानि** अवलम्बितानि **वल्कलानि** वृक्षत्वचः यस्य तादृशस्य । **तरोः** वृक्षस्य । **अधः** तले । **कृष्णमृगस्य** कृष्णसारस्य । **श्रृङ्गे** विषाणे । **वामम्** सव्यम् च तत् **नयनम्** लोचनम् च तत् **कण्डूयमानाम्** घर्षणेन कण्डूम् दूरीकुर्वाणाम् । **मृगीम्** हरिणीम् । **निर्मातुम्** लिखितुम् । **इच्छामि** कामये ।

हिन्दी-व्याख्या—हंस का जोड़ा, स्रोत (धार) वाली नदी (स्रोतोवहा), हरिणपरिवार और नर के सींग से अपनी बायीं आँख रगड़ती हिरनी—ये सब उद्दीपन विभाव हैं, आलम्बन विभाव शकुन्तला साथ में थी ही। हिरन बैठे हैं जिससे सूचित होता है कि स्थान निर्जन है। आश्रम में पूर्वानुभूत उद्दीपन विभावों का स्मरण घबड़ाहट में जल्दी-जल्दी बाहर जाने से उत्पन्न वियोग का पोषक है। 'अभितः' परितः, उभयतः, समया, निकषा' आदि के योग में द्वितीया होती है जिससे "ताम्" (द्वितीया) आया है। जहाँ पर्वत के चरण होते हैं, वह स्थान उपत्यका, प्रत्यन्त पर्वत या तराई कहा जाता है। "वल्कल" से ध्वनित होता है कि वह स्थान आश्रम से दूर नहीं था। नर के सींग से बायीं आँख खुजलाना मृगी का स्वभाव है।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—स्वभावोक्ति, उदात्त तथा अनुप्रास (छेक, वृत्ति और श्रुति) ।

विदूषकः—(आत्मगतम्) जह अहं देक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लंबकुच्चाणं तावसाणं कदंबेहिं । [यथाहं पश्यामि पूरितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः ।]

राजा—वयस्य अन्यच्च शकुन्तलाया प्रसाधनमभिप्रेतमस्माभिः ।

विदूषकः—किं विअ । [किमिव ।]

सानुमती—वणवासस्स सोउमारस्स विणअस्स अ जं सरिसं भविस्सदि । [वनवासस्य सौकुमार्यस्य विनयस्य च यत्सदृशं भविष्यति ।]

हिन्दी अनुवाद—विदूषक (आत्मगत)—जैसा मैं देख रहा हूँ, ये चित्रपट को लम्बी कूँची (दाढ़ी) वाले तपस्वियों के झुण्ड से भरकर मानेंगे ।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) । आत्मगतम् (वदति यत्) । यथा । अहम् । पश्यामि विलोकयामि (तदनुसारेण) । पूरितव्यम् । अनेन (दुष्यन्तेन) । चित्रस्य फलकम् पटम् । लम्बम् कूर्चम् कपोलचिबुककेशाः येषाम् तादृशानाम् । तापसानाम् तपस्विनाम् । कदम्बैः समूहैः ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा की प्रवृत्ति चित्र में और वस्तुएँ चित्रित करने को देखकर विदूषक डर रहा है कि कहीं शकुन्तला का मनोरम चित्र मुनियों के भर जाने से अपनी सुन्दरता न खो दे; घनापन अक्सर चित्रों को खराब कर देता है ।

हिन्दी अनुवाद--राजा—मित्र, दूसरी बात यह है कि मुझे शकुन्तला की सज्जा अभीष्ट है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । अन्यत् अपरम् । च (इदम् कथनीयम् यत्) । शकुन्तलायाः । प्रसाधनम् सज्जा । अभिप्रेतम् अभीष्टम् । अस्माभिः मया ।

हिन्दी-व्याख्या—"अस्माभिः" (कर्ता) तृतीया में रखा गया है क्योंकि "अभीष्टम्" क्रिया है; हिन्दी की तरह केवल संज्ञा नहीं ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—कौन-सा (प्रसाधन अभीष्ट है) ?

संस्कृत-टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्) । किम् । इव (वाक्यालङ्कारे) (अभीष्टम्) ।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—जो जंगल में रहने, अत्यन्त कोमलता और नम्रता के अनुरूप होगा ।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्) । वने विपिने वासः वसतिः तस्य । सौकुमार्यस्य अत्यन्तमृदुत्वस्य विनयस्य नम्रतायाः । च । यत् । सदृशम् अनुरूपम् । भविष्यति स्यात् ।

हिन्दी-व्याख्या—भविष्य-काल न होने पर भी "भविष्यति" प्रयोग (भविष्यकाल का) किया गया है; यहाँ विधि-लिङ् होना चाहिये । भाव विभोर होकर सानुमती दूसरे के प्रश्न का उत्तर स्वयं देकर खुद को सुनाती है ।

राजा—

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥ १८ ॥

विदूषकः—भोः किं णु तत्त होदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चइदचइदा विअ ठिआ । आ एसो दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणं अहिलंघेदि महुअरो । (सावधानं निरूप्य दृष्ट्वा) [भोः किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयपल्लवशोभिनाऽग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता । आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनमभिलङ्घयति मधुकरः ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (कथयति यत्) ।

हिन्दी-अनुवाद—मित्र, न तो, गाल तक जिसका पराग लटक रहा है, उस सिरस का वृन्त कान में लगाया है और न शरत् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान मुलायम कमल डंठल के रेशे दोनों स्तनों के बीच में लगाये हैं ।

अन्वयः—सखे न आगण्डविलम्बिकेसरम् शिरीषम् कर्णार्पितबन्धनम् कृतम् न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलम् मृणालसूत्रम् स्तनान्तरे रचितम् ।

संस्कृत टीका—**सखे** (हे) मित्र । **गण्डम्** कपोलम् **आ** मर्यादीकृत्य विलम्बिनः केसराः यस्य तत् । **शिरीषम्** । **कर्णयोः** श्रवणयोः **अर्पितम्** दत्तम् **बन्धनम्** वृन्तम् यस्य तत् । **कृतम्** विहितम् । **न** । वा च । **शरदः** शरदृतोः **चन्द्रस्य** विधोः **मरीचयः** किरणाः इव **कोमलम्** मृदुलम् । **मृणालस्य** कमलदण्डस्य **सूत्रम्** तन्तुः । **स्तनयोः** कुचयोः **अन्तरे** मध्ये । **रचितम्** प्रसाधितम् ।

हिन्दी-व्याख्या—शिरीष, अत्यन्त कोमल पुष्प है । कोमल का शृंगार कोमल से ही होना उचित है, अतः शिरीष को प्रसाधन के रूप में ग्रहण किया गया है । वह गालों तक लटकता है जिनसे उनका भी शृंगार हो जाता है । स्तन इतने घने हैं कि बीच में एक मृणाल-सूत्र भर की जगह है यह स्तनान्तर में मृणाल-सूत्र रचना से ध्वनित होता है ।

छन्द—४।१८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—समुच्चय और अनुप्रास (श्रुति, वृत्ति और छेक) ।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—अरे ! क्या बात है कि माननीया (शकुन्तला) लाल कमल की पखुड़ी के समान सोह रहे हाथ के अग्र-भाग से मुख को आड़ में कर डरी-डरी सी स्थित हैं । अरे ! यह पुष्प-रस-चोर दासी-पुत्र भ्रमर मान्या (शकुन्तला) के मुख पर चढ़ता है । (सावधानीपूर्वक गौर से देखकर)

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (वदति यत्) । **भोः** अये । **किम् नु** (वितर्के) **तत्रभवती** मान्या । **रक्तम्** अरुणम् च तत् **कुवलयम्** कमलम् च । तस्य **पल्लवः** पत्रम् तद्वत् **शोभिना** विलसता । **हस्तस्य** करस्य **अग्रेण** । **मुखम्** वदनम् । **अपवार्य** अन्तराले कृत्वा । **चकित-**

राजा—ननु वार्यतामेष धृष्टः।

विदूषकः—भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि। [भवानेवाविनीतानां शासितास्य वारणे प्रभविष्यति।]

राजा—युज्यते अयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि।

चकिता अतिभीता। इव स्थिता। आः अरे (क्रोधे)। एषः अयम्। दास्याः परिचारिकायाः। पुत्रः तनयः। कुसुमस्य पुष्पाय रसस्य पाटच्चरः चौरः। तत्रभवत्याः। वदनम् मुखम्। अभिलङ्घति आक्रामति। मधुकरः भ्रमरः अवधानेन सावधानतया सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा निरूप्य ध्यानेन। दृष्ट्वा विलोक्य।

हिन्दी व्याख्या—"कुवलय" का अर्थ नील कमल है, पर कभी-कभी यह कमल-मात्र के लिये आता है जैसे यहाँ आया है। 'अग्र" पद संज्ञा की तरह आने पर भी साधारणतः विशेषण की तरह पहले आ जाता है। यहाँ भी यही स्थिति है। दासियाँ अविवाहित होती थीं; दासी पुत्र का अर्थ कुमारी-पुत्र होने के कारण गाली है, भौंरा एक तो फूल का रस चुराने से चोर है ही, दूसरा अपराध यह कर रहा है कि शकुन्तला के मुँह पर बैठने की धृष्टता कर रहा है। राजा का बनाया चित्र इतना सजीव है कि विदूषक को धोखा हो रहा है। हँसी या राजा की अप्रत्यक्ष चाटुकारी के लिये भी विदूषक यह अभिनय कर सकता है।

हिन्दी अनुवाद—राजा—जरा रोकना (तो) इस उद्दण्ड को।

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। ननु प्रार्थये। वार्यताम् दूरीक्रियताम्। एषः अयम्। धृष्टः उच्छृङ्खलः (भ्रमरः)।

हिन्दी व्याख्या—राजा अपने होश में नहीं है; विदूषक के भी वैसा वर्णन करने पर वे उसी तन्मयता में बोलते जाते हैं।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—उद्दण्डों के शासक आप ही इसके निवारण में समर्थ होंगे।

संस्कृत टीका—विदूषकः (माढव्यः) (वदति यत्)। भवान् त्वम्। एव न विनीतानाम् नम्राणाम् (उद्दण्डानाम्)। शासिता शासकः। अस्य एतस्य (भ्रमरस्य)। वारणे रोधने। प्रभविष्यति समर्थः भविष्यति।

हिन्दी व्याख्या—विदूषक विनोद में टाल देता है और याद दिलाता है कि उद्दण्डों को ठीक करने का काम राजा का है। "प्रभविष्यति" के भविष्यकाल की जगह विधि (लिङ्) का प्रयोग यहाँ ठीक होता क्योंकि भविष्य का भाव इष्ट नहीं है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—ठीक कहते हो। भाई मेरे, पुष्प-लता प्रिया के अतिथि (भ्रमर) यहाँ उड़ने का श्रम क्यों अनुभव कर रहे हो (व्यर्थ है)?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। युज्यते उचितम् अस्ति। अयि (कोमलामन्त्रणे)। भोः शृणु। कुसुमयुक्ता लता वल्लरी एव प्रिया दयिता तस्याः अतिथिः प्राघुणिकः तत्सम्बुद्धौ। किम्। अत्र अस्मिन् (शकुन्तलाकपोले) परिपतनम् उड्डयनम् एव खेदम् श्रमम् अनुभवसि प्राप्नोषि।

एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता ।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति ॥ १९ ॥

सानुमती—अज्ज अभिजादं खु एसो वारिदो । [अद्याभिजातं खल्वेष वारितः ।]

हिन्दी व्याख्या—पुष्पित लता तुम्हारी प्रिया है; वहाँ तुम्हारा अतिथि की भाँति आदर होगा और मधु भी मिलेगा; शकुन्तला मुख छोड़ो; यहाँ मधु की जगह श्रम ही प्राप्त होगा, यह भाव है। "कुसुम" सद्भाव का सूचक है। लता, फल लेकर तुम अभ्यागत का स्वागत कर रही हो, वहाँ जाना उचित है। यह सूचना प्राप्त होती है।

हिन्दी अनुवाद—फूल पर बैठी, तुम्हारे प्रति अनुरागिणी यह भ्रमरी प्यासी बाट जोह रही है; तुम्हारे बिना निश्चय ही मधु नहीं पीती।

अन्वयः—एषा कुसुमनिषण्णा (भवन्तम्) अनुरक्ता मधुकरी भवन्तम् प्रतिपालयति तृषिता सती अपि न खलु त्वया विना मधु पिबति।

संस्कृत टीका—एषा पुरःदृश्या। कुसुमे पुष्पे निषण्णा। उपविष्टा। अनुरक्ता (भवन्तम् प्रति) स्निग्धा। मधुकरी भ्रमरी। भवन्तम् त्वाम्। प्रतिपालयति प्रतीक्षते। तृषिता पिपासुः। सती। अपि। न। खलु निश्चयेन। त्वया। विना। मधु। पुष्परसम्। पिबति।

हिन्दी व्याख्या—राजा, उन्माद की अवस्था में विदूषक की सारी बातें सच मान लेते हैं। चित्र में पास ही पुष्पित लता पर भ्रमरी चित्रित है, राजा, भ्रमर को उसके पास भेजते हैं जो अकेली-अकेली मधु-पान नहीं करना चाहती। मधु, पुष्प-रस और मदिरा दोनों अर्थ देता है। फूल पर बैठी है, अतः आसानी से उसके पास पहुँचा जा सकता है, अनुरक्त है अतः उसे अपनाना उचित है, प्यासी होकर भी तुम्हारे बिना मधु-पान नहीं करना चाहती, अतः सती है जिससे उसका साथ देना तुम्हारा कर्तव्य है। और पीने के लिये भी साधारण वस्तु नहीं, बल्कि पुष्प-मधु है यह ध्वनित होता है। "सती" का अर्थ "होती हुई" और "पतिव्रता" दोनों है। जिससे स्नेह हो, उसमें प्रायः सप्तमी होती है, यहाँ "अनुरक्ता" होने से "अनु" अलग मानकर उसके योग में द्वितीया की गई है।

छन्द—११२ द्रष्टव्य।

अलंकार—अतिशयोक्ति, समासोक्ति, रूपक (एकदेश-विवर्त्ती) तथा अनुप्रास (छेक और वृत्ति)।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती–इस समय निश्चय ही इन्हें शिष्टता से (भ्रमर को) हटाया है।

संस्कृत टीका—सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्)। अद्य अधुना। अभिजातम् न्याय्यम् यथा स्यात् तथा। खलु निश्चयेन। एषः अयम् (भ्रमरः)। वारितः।

हिन्दी व्याख्या—भ्रमर अनुरागी जीव है, उसे असभ्यतापूर्वक हटाना भावुकताविरोधी आचरण है, यहाँ हटने को न कहकर अपनी प्रिया के पास जाने को कहकर परोक्ष रूप से हटाने में शिष्टता से कार्यसिद्धि का यत्न किया गया है, साँप भी मरा और लाठी भी नहीं टूटी। "अद्य" का तत्कालीन-जन-प्रचलित प्रयोग "अब" के अर्थ में किया गया है। "आज" अर्थ ही लेने पर यह लगाया जा सकता है कि सानुमती ने भ्रमर को अनेक बार अनेक व्यक्तियों के द्वारा निवारित देखा है पर आज पहली बार ही शिष्ट रीति से निवारित देखा है इस अर्थ में दुष्यन्त की अद्वितीय प्रशंसा है।

विदूषकः—पडिसिद्धा वि वामा एसा जादी। [प्रतिषिद्धापि वामैषा जातिः।]

राजा—एवं भोः न मे शासने तिष्ठसि। श्रूयतां तर्हि संप्रति—

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं स्पृशसि चेद्भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम् ॥२०॥

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक–रोकने पर भी यह (भ्रमर) जाति विपरीत चलती है। (नहीं मानती)।

संस्कृत टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (वदति यत्)। **प्रतिषिद्धा** निवारिता। **अपि**। **वामा** प्रतिकूला। **एषा** इयम्। **जातिः** (भ्रमरजातिः)।

हिन्दी अनुवाद–राजा–अरे! ऐसी बात है? मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते तो अब सुनो।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **एवम्** इत्थम् (आचरन्) **भोः** (अये) **न मे** मम। **शासने** आदेशे। **तिष्ठसि** वर्तसे (आज्ञापालकः भवसि)। **श्रूयताम्** आकर्ण्यताम् (त्वया)। **तर्हि** तदा। **संप्रति** अधुना।

हिन्दी-अनुवाद–भ्रमर यदि वृक्ष में लगे हुए, बिना मसले हुए और नये पल्लव के समान सुन्दर और मेरे द्वारा मिलन उत्सवों पर सदयतापूर्वक ही (न कि निर्दयतापूर्वक) पान किये गये बिम्ब (कुँदरू) के समान प्रिया-अधर का स्पर्श करोगे तो तुम्हें कमल के अन्दर कैद करा दूँगा।

अन्वयः—भ्रमर! अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयम् मया रतोत्सवेषु सदयम् एव पीतम् प्रियायाः बिम्बाधरम् स्पृशसि चेत् त्वाम् कमलोदरबन्धनस्थम् कारयामि।

संस्कृत टीका—**अक्लिष्टः** केनापि न मृदितः च **बालः** नवीनः च **तरोः** वृक्षस्य **पल्लवः** पत्रम् तद्वत् **लोभनीयम्** सुन्दरम्। **मया**। **रतेषु** मिलनेषु एव **उत्सवेषु**। **दयया** अनुकम्पया सह वर्त्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा। **एव** (न तु निर्दयम्) **पीतम्** उपभुक्तम्। **प्रियायाः** दयिताया (शकुन्तलायाः) **बिम्बाधरम्** बिम्बसदृशम् **अधरम्**। **स्पृशसि**। **चेत्** यदि (तर्हि)। **त्वाम्** **कमलस्य** पङ्कजस्य **उदरे** अन्तः **बन्धनस्थम्** बद्धम्। **कारयामि**।

हिन्दी व्याख्या—"तरु" का प्रयोग इसलिये किया गया है जिससे तरु पर लगा हुआ पल्लव "तात्स्थ्य" संबंध से आ सके, अन्यथा "पल्लव" कह देने से अर्थ निकल सकता था। "अक्लिष्ट" से कौमार्य, "बाल" से कोमलता और "पल्लव" से रक्तिमा व्यक्त होती है। कोमलता के कारण अधर के पान के समय सदयता दिखाई, उत्कण्ठाधिक्य के कारण निर्दयता नहीं। कमल में कैद करने को सामर्थ्य भौंरे को डराने के लिये हो सकती है। इससे यह भी ध्वनित होता है कि सूर्य भी लोहा मानता है; जब भौंरा कमल के अन्दर दिन में बैठेगा तो सूर्य को आदेश से हटाकर अँधेरा कर देंगे, जिससे पंखड़ियों के बन्द होने से वह (भौंरा) बन्द हो जायेगा।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अतिशयोक्ति, समासोक्ति, श्लेष, हेतु, रूपक, उपमा और अनुप्रास।

विदूषकः—एव्वं तिक्खणदंडस्स किंण भाइस्सदि। (प्रहस्य आत्मगतम्) एसो दाव उम्मत्तो। अहं वि एदस्स संगेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। (प्रकाशम्) भो चित्तं खु एदं। [एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति। एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवर्ण इव संवृत्तः। भोः चित्रं खल्वेतत्।]

राजा—कथं चित्रम्।

सानुमती—अहं वि दाणिं अवगदत्था किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो। [अहमपीदानीमवगतार्था किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः।]

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—इस प्रकार कठोर दण्ड (देने) वाले से क्यों न डरेगा? (अट्टहास कर आत्मगत)। ये तो ठहरे उन्मत्त, मेरे भी अक्षर (वचन) इनकी संगति से इसी प्रकार के हो गये हैं। (प्रकाश) अरे! यह तो चित्र है।

संस्कृत-टीका—**विदूषकः** (माढव्यः) (वदति यत्)। **एवम्** इत्थम्। **तीक्ष्णः** कठोरः **दण्डः** निग्रहः यस्य तादृशस्य (राज्ञः दुष्यन्तस्य)। **किम्** केन कारणेन। **न**। **भेष्यति** भीतः भविष्यति (भ्रमरः)। **प्रहस्य** अट्टहासपूर्वकम्। **आत्मगतम्**। **एषः** अयम् (दुष्यन्तः) **तावत्** तु। **उन्मत्तः** वातुलः। **अहम्**। **अपि**। **एतस्य** अस्य। **सङ्गेन** सङ्गत्या। **ईदृशाः** एवंभूताः **वर्णाः** अक्षराणि (वचनानि) यस्य तादृशः। **इव**। **संवृत्तः** जातः। **भोः** अये। **चित्रम्** आलेख्यम्। **खलु** (निश्चयेन) **एतत्**।

हिन्दी-व्याख्या—"तीक्ष्णदण्डस्य" पद से हँसी उड़ाई गई है। विदूषक, चित्र की कला पर सुध-बुध गँवाकर भ्रमर को सत्य मानने लगा था थोड़ीदेर बाद यथार्थ जगत् में पहुँचकर वह राजा के उन्माद की संक्रामकता को अपने विस्मरण का कारण समझता है और झकझोर कर राजा को भी यथार्थ के दर्शन कराता है। भ्रम का प्रसंग उक्त भ्रांति नामक नाट्य-संधि-अंग के अंतर्गत है जहाँ प्रसङ्ग का निश्चय न कर पाने से किसी को विपरीत ज्ञान होता है।

"भ्रान्तिर्विपर्ययज्ञानं प्रसङ्गस्याविनिश्चयात्।"

हिन्दी अनुवाद—ऐं! चित्र है?

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्)। **कथम्** किम्। **चित्रम्** आलेख्यम्।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—मैंने तक असलियत अब जानी; इन (राजा) का तो कहना ही क्या जो चित्रांकन के अनुसार अनुभव कर रहे हैं।

संस्कृत टीका—**सानुमती** (अप्सराः) (वदति यत्)। **अहम्**। **अपि** असंबद्धा। **इदानीम्** अधुना (न तु पूर्वम्)। **अवगतः** ज्ञातः **अर्थः** वस्तु यया तादृशी। **किम्**। **पुनः**। **लिखितम्** चित्रितम् अनतिक्रम्य यथालिखितम् तत् अनुभावयति अनुभवति इति। **एषः** अयम् (दुष्यन्तः)।

हिन्दी व्याख्या—अप्सरा का कहना है कि मैं इस प्रसंग से अपरिचित हूँ; जब मैं तक सुध-बुध खोकर चित्र को असली समझ बैठी, तब राजा क्यों न समझेंगे जो चित्रांकन के अनुसार हृदय में उन पुरानी घटनाओं का अनुभव भी कर रहे हैं। राघव भट्ट ने "एषः" का अर्थ "विदूषक" किया है।

राजा—वयस्य किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम् ।

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥ २१ ॥

(इति वाष्पं विहरति) सानुमती—पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विरहमग्गो । [पूर्वापर-विरोध्यपूर्वं एष विरहमार्गः ।]

(जो चित्रांकन की यथार्थता के अनुसार राजा को अनुभव कराता है कि यह वस्तुतः चित्र है, न कि शकुन्तला) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—मित्र, यह नुक्ताचीनी क्यों की ?

संस्कृत टीका—राजा नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । वयस्य (हे) मित्र । किम् केन कारणेन (व्यर्थम्) । इदम् पूर्वोक्तरीत्या । अनुष्ठितम् कृतम् । पौरोभाग्यम् दोषदर्शित्वम् ।

हिन्दी अनुवाद—तल्लीन अन्तर से साक्षात् की भाँति (प्रिया) दर्शन के आनन्द का अनुभव कर रहे मुझे याद दिलाकर तुमने मेरी प्रिया को फिर से चित्र बना दिया ।

अन्वयः—स्मृतिकारिणा त्वया तन्मयेन हृदयेन साक्षात् इव दर्शनसुखम् अनुभवतः मे कान्ता पुनः अपि चित्रीकृता ।

संस्कृत टीका—स्मृतिकारिणा स्मरणम् कृतवता । त्वया । तन्मयेन शकुन्तलामयेन । हृदयेन अन्तःकरणेन । साक्षात् प्रत्यक्षीकृतम् । इव दर्शने मिलने । सुखम् आनन्दम् । अनुभवतः प्राप्नुवतः । मे मम । कान्ता प्रिया । पुनः भूयः । अपि चित्रीकृता अचित्रम् चित्रम् कृता ।

हिन्दी-व्याख्या—जब तक राजा उन्माद के कारण चित्र को प्रिया समझे थे तब तक उस भ्रान्तिमूलक आनन्द से उल्लसित थे; याद दिलाने से चित्र को चित्र समझकर राजा ने वह आनन्द खो दिया जिससे उन्हें कष्ट हो रहा है । "कि तो स्मृति पर बन गया चित्र" यह शब्द-शक्ति-मूलक विरोधाभास व्यंग्यार्थ है । "चित्र" का अर्थ राघव भट्ट ने इस स्थल पर "आश्चर्य" भी किया है, पर वह इतना अच्छा नहीं बैठता । चित्ररचना "चित्र" नामक सन्धि-अङ्ग माना गया है—चित्रं तदाकारस्य विलेखनम् ।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अनुप्रास (छेक, श्रुति और वृत्ति) तथा स्मरण (भोज द्वारा सरस्वतीकण्ठाभरण में उद्धृत) ।

हिन्दी-अनुवाद—(यह कहकर आँसू गिराते हैं) सानुमती—पहली और बाद की अवस्था के विरोध से युक्त यह वियोग-पथ अपूर्व है ।

संस्कृत-टीका—इति ततः । वाष्पम् अश्रु । विहरति त्यजति । सानुमती (अप्सराः) (वदति यत्) । पूर्वम् प्रथमावस्था च अपरम् उत्तरावस्था च तयोः विरोधः वैपरीत्यम् अस्य अस्ति इति । अपूर्वः अभूतपूर्वः । एषः अयम् (दुष्यन्तसम्बन्धी) । विरहस्य वियोगस्य मार्गः पन्थाः ।

हिन्दी-व्याख्या—"पहले चित्र को चित्र समझा, फिर चित्र को प्रिया समझा तथा फिर अन्त में

राजा—वयस्य ! कथमेवमविश्रान्तदुःखमनुभवामि ।

प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः ।
वाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥ २२ ॥

सानुमती—सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउंदलाए । [सर्वथा प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः ।]

चित्र को चित्र समझा" इस तरह पहले और बाद की दशाओं में विरोध है। ऐसा विरह, अप्सरा ने अन्य किसी सम्बन्ध में पहले नहीं देखा था जिससे इसे अपूर्व कहती है। उन्माद के बाद मूर्च्छादि न होने से भी यह विरह अपूर्व (आश्चर्यकारी) कहा जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मित्र, किस प्रकार ऐसा अविराम दुःख सह रहा हूँ।

संस्कृत-टीका—राजा—नृपः (दुष्यन्तः) (वदति यत्) । **कथम्** केन प्रकारेण । **एवम्** इत्थम् । न **विश्रान्तम्** विरतम् (अविरामम्) । **दुःखम्** क्लेशम् (विरहजम्) । **अनुभवामि** प्राप्नोमि । (सहे) ।

हिन्दी-अनुवाद—स्वप्न में हुआ उससे मिलन जाग जाने से रुक गया। दूसरी ओर आँसू इसे चित्र में स्थित रूप में भी (मुझे) देखने नहीं देता।

अन्वयः—स्वप्ने तस्याः समागमः प्रजागरात् खिलीभूतः। वाष्पः तु चित्रागताम् अपि एनाम् द्रष्टुम न ददाति।

संस्कृत टीका—स्वप्ने । तस्याः (शकुन्तलायाः) । **समागमः** संयोगः । **प्रजागरात्** जागरणात् । **खिलीभूतः** निरुद्धः । **वाष्पः** अश्रु । तु पुनः **चित्रम्** आलेख्यम् गताम् प्राप्ताम् (चित्ररूपाम्) । **अपि** । **एनाम्** (शकुन्तलाम्), **द्रष्टुम्** अवलोकयितुम् (मह्यम्) **न ददाति** ।

हिन्दी-व्याख्या—स्वप्न और चित्र में होने वाला संयोग नकली है पर दुर्भाग्य वह भी नहीं होने देता, असली की तो बात ही क्या है ? जागने से सपना टूट जाता है और वह मिलन नष्ट हो जाता है। आँसू आ जाने से आँखें देख नहीं पातीं जिससे चित्र-रूप में जो मिलन होता है, वह समाप्त हो जाता है। उत्तरार्ध में "ददाति" और "द्रष्टुम्" दो क्रियाएँ हैं, इनका कर्ता एक ही होना चाहिये, पर अलग-अलग क्रमशः "वाष्प" और 'अहम्' है। "ददाति" के साथ चतुर्थी की अपेक्षा होने से "मह्यम्" आ गया। एक पद में दो कारक न हो सकने से "वाष्प" को ही कर्त्ता बनाना पड़ा। इस तरह कारक एक के स्थान पर दो रखना "देने" के ऐसे मुहावरेदार प्रयोग में ही मान्य है, अन्यत्र नहीं।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य।

अलंकार—हेतु और अनुप्रास।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—तुमने शकुन्तला का, अस्वीकार से उत्पन्न कष्ट, सर्वथा मिटा दिया।

संस्कृत-टीका—सानुमती (अप्सराः) वदति यत् । **सर्वथा** सर्वेण प्रकारेण । **प्रमार्जितम्** दूरी-

(प्रविश्य)

चतुरिका—जेदु जेदु भट्टा । वट्टिआकरंडअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिद म्हि । [जयतु जयतु भर्ता । वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थितास्मि ।]

राजा—किंच ।

चतुरिका—सो मे हत्थादो अंतरा तरलिआदुदीआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो । [स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्योपनेष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः ।]

विदूषकः—दिट्ठिआ तुमं मुक्का । [दिष्ट्या त्वं मुक्ता ।]

चतुरिका—जाव देवीए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता [यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा ।]

कृतम् । त्वया (दुष्यन्तेन) । प्रत्यादेशजन्यम् दुःखम् क्लेशः । शकुन्तलायाः ।

हिन्दी व्याख्या—शकुन्तला अपने पति का पश्चात्ताप सुनेगी तो इस प्यार को सोचकर अपना वह दुःख भूल जायेगी जो उसे पति के अस्वीकार से हुआ था । भाव-विभोर होकर सानुमती राजा को ही सम्बोधित कर कह रही है । वह दिखाई नहीं पड़ता और राजा को चमत्कृत करना उद्देश्य नहीं है, अतः इस तरह कह रही है कि राजा न सुनें, दर्शक सुनेंगे ।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर) चतुरिका—स्वामी की जय हो, जय हो ! कूँची और रंग का वर्तन लेकर चली थी (कि) ।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य अन्तः आगत्य, चतुरिका (परिचारिका) (वदति यत्) । जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम् । भर्ता स्वामी । वर्तिकां तूलिकाम् च करण्डकम् रङ्गभाण्डम् च । गृहीत्वा । इतः इह मुखम् वदनम् यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् यथा । प्रस्थिता प्रचलिता । अस्मि ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—फिर क्या (हुआ) ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (वदति यत्) । किम् । च ।

हिन्दी-अनुवाद—चतुरिका—बीच में उसे (तूलिका और रंग का वर्तन) मेरे हाथ से तरलिका सहित रानी वसुमती ने "मैं ही स्वामी के पास ले जाऊँगी" कहकर छीन लिया ।

संस्कृत-टीका—चतुरिका । सः तूलिकाकरण्डकः । मे मम । हस्तात् करात् । अन्तरा मध्ये । तरलिका द्वितीया संगिनी यस्याः तया । देव्या राज्ञ्या । वसुमत्या । अहम् । एव आर्यपुत्रस्य स्वामिनः, उपनेष्यामि समीपं प्रापयिष्यामि । इति इदम् उक्त्वा । बलात्कारेण बलेन सह वर्तमानम् तत् यथा स्यात् तथा । गृहीतः ।

हिन्दी-अनुवाद—भाग्य से तुम बच गई ।

संस्कृत-टीका—विदूषकः । दिष्ट्या सौभाग्येन । त्वम् । मुक्ता न दण्डिता ।

हिन्दी-अनुवाद—जब तक रानीजी का डाल में फँसा उत्तरीय (ऊपरी वस्त्र) तरलिका छुड़ाये, तब तक मैंने जान बचाई (भाग निकली) ।

राजा—वयस्य, उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु।

विदूषकः—अत्ताणं ति भणाहि। जइ भवं अंतेउरकालकूडादो मुंचीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छंदे प्पसादे सद्दावेहि। [आत्मानमिति भण। यदि भवानन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय।] (इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः)।

सानुमती—अण्णसंकंतहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि सिढिलसोहद्दो दाणिं एसो। [अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते शिथिलसौहार्द इदानीमेषः।]

संस्कृत-टीका—चतुरिका। यावत्! देव्या राज्ञ्या। विटपे शाखायाम्। लग्नम् च तत् उत्तरीयम् च तरलिका। मोचयति। तावत्। मया। निर्वाहितः रक्षितः। आत्मा प्राणाः।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मित्र, रानी आ पहुँची है और बहुत सम्मान से अहंकारी भी हैं (इसलिये अच्छा हो कि) तुम इस चित्र को बचाओ।

संस्कृत-टीका— राजा नृपः। वयस्य (हे) मित्र। उपस्थिता प्राप्ता। देवी राज्ञी। बहुः अधिकः च सः मानः संमानः च तेन गर्विता अहङ्कारयुक्ता। च। भवान् त्वम्। इमाम् एताम् (दीयमानाम्)। प्रतिकृतिम् (शकुन्तला-) चित्रम्। रक्षतु।

हिन्दी-व्याख्या—"रक्षतु" से आशय "छिपाने" से है। राजा को डर है कि कहीं रानी आकर चित्र को ही न ले जायँ, फिर वह उपलब्ध न हो पाये।

हिन्दी-अनुवाद—विदूषक—"अपने को" यह कहें। (चित्र-पट) लेकर और उठकर अगर आप रनिवास के हालाहल से छूटेंगे तो मुझे मेघ-प्रतिच्छन्द नामक महल में पुकारियेगा। (यह कहकर तेज कदमों से निकल जाता है)।

संस्कृत-टीका—विदूषकः। आत्मानम् विदूषकम् राजानम् वा। इति एवम्। भण वद। यदि चेत्। भवान् त्वम्। अन्तःपुरस्य अवरोधस्य कालकूटात् हालाहलात्। मोक्ष्यते मुक्तः भविष्यति। तदा तर्हि। माम् मेघप्रतिच्छन्दे (तन्नामके)। प्रासादे भवने। शब्दापय आह्वय। इति ततः। द्रुतानि आशूनि पदानि चरणक्षेपाः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा। निष्क्रान्तः निर्गतः।

हिन्दी-व्याख्या—"प्रतिच्छन्द" का अर्थ समता है; पूरे पद का अर्थ होगा—जो (महल) बादलों के समान है (मेघस्य प्रतिच्छन्दः यस्य सः तस्मिन्) ऊँचाई होने से ऐसा नाम दिया गया प्रतीत होता है। विदूषक ने "कालकूट" पद से संकेत किया है कि अब रानी आकर कलह करेंगी। "यदा" न कहकर "यदि" विनोद में कहा गया है, जिसका आशय है, बचना न बचना कोई नहीं जानता।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—इस समय (पुरानी रानी के प्रति) ढीले पड़ गये स्नेह वाले ये (राजा) हृदय के दूसरी (शकुन्तला की) ओर चले जाने पर भी पूर्व स्नेह का ध्यान रखते हैं।

संस्कृत-टीका—सानुमती। अन्यस्मिन् परस्मिन् (शकुन्तलायाम्) सङ्क्रान्तम् गतम् हृदयम् अन्तरम् यस्य तादृशः (सन्) अपि। प्रथमा पूर्वा च सा संभावना आदरः च ताम्। अपेक्षते संमानयति। शिथिलम् श्लथीभूतम् सौहार्दम् प्रेम (वसुमत्याम्) यस्य तादृशः। इदानीम् अधुना। एषः अयम् (दुष्यन्तः)।

(प्रविश्य पत्रहस्ता) प्रतीहारी—जेदु जेदु देवो। [जयतु जयतु देवः।]

राजा—वेत्रवति न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी।

प्रतीहारी—अह इं। पत्तहत्थं मं देक्खिअ पडिणिउत्ता। [अथ किम् ? पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता।]

राजा—कार्यज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति।

प्रतीहारी—देव समच्चो विण्णवेदि अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति। [देव अमात्यो विज्ञापयति अर्थ-जातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितं तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोतु—इति।]

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ दुष्यन्त की शिष्टता की सराहना की गई है कि शकुन्तला के प्रति अनुरागी होकर भी वे पहले के स्नेह को नहीं ठुकराते। जो व्यक्ति अनचाहे (वसुमती) का भी संमान रखता है वह चाहे (शकुन्तला) का संमान क्यों न रखेगा, यह कल्पना अप्सरा को शकुन्तला के प्रति स्नेह होने से पुलकित कर रही है।

हिन्दी-अनुवाद—(अन्दर आकर हाथ में पत्र लिये) द्वारपालिका—महाराज की जय हो; जय हो।

संस्कृत-टीका—प्रविश्य अन्तः आगत्य। पत्रम् लेखः हस्ते करे यस्याः तादृशी प्रतीहारी द्वारपालिका। जयतु। जयतु। देवः महाराजः।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—वेत्रवति, तुमने राह में रानी को तो नहीं देखा ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। वेत्रवति (हे) द्वारपालिके। न। खलु (वाक्यालङ्कारे)। अन्तरा मार्गे। दृष्टा विलोकिता। त्वया। देवी राज्ञी।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका—जी हाँ मेरे हाथ में चिट्ठी देखकर लौट गई हैं।

संस्कृत-टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका। अथ किम् माम् पत्रम् लेखः हस्ते करे यस्याः तादृशीम्। माम्। प्रेक्ष्य दृष्ट्वा प्रतिनिवृत्ता।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—काम समझती है; मेरे कार्य में विघ्न को बचाती है। (नहीं होने देती)।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। कार्यम् कृत्यम् जानाति इति (राजनियोगगौरवाभिज्ञा सती)। कार्ये कृत्ये उपरोधम् बाधाम्। मे मम। परिहरति त्यजति।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका—महाराज, मंत्री जी निवेदन करते हैं कि धन (कर) समूह की गणना की अधिकता से नगर-वासियों का एक ही मामला देखा है; उसे महाराज पत्र पर लिखा हुआ देख लें।

संस्कृत-टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका। देव (हे) महाराज। अमात्यः मन्त्री विज्ञापयति निवेदयति। द्रव्य (कर) समूहस्य गणनायाः बहुलतया आधिक्येन। एकम् एव। पौराणाम् नगरवासिनाम् कार्यम् कृत्यम्। अवेक्षितम् दृष्टम्। तत् (कार्यम्)। देवः महाराजः। पत्रम् लेखम् आरूढम् गतम्। प्रत्यक्षीकरोतु पश्यतु। इति।

राजा—इतः पत्रिकां दर्शय (प्रतीहार्युपनयति)

राजा—(अनुवाच्य) कथम् । समुद्र-व्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्नः । अनपत्यश्च किल तपस्वी । राजगामी तस्यार्थसंचयः इत्येतदमात्येन लिखितम् । कष्टं खल्वनपत्यता । बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम् । विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात् ।

प्रतीहारी—देव दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिआ णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदि । [देव, इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते ।]

हिन्दी-अनुवाद—राजा—इधर (लाओ): चिट्ठी दिखाओ (द्वारपालिका लाती है)

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **इतः** इह (आगत्य) । **पत्रिकाम्** पत्रम् । **दर्शय** । **प्रतीहारी** द्वारपालिका । **उपनयति** समीपे नयति ।

हिन्दी-अनुवाद—(मन में पढ़कर) ऐं ! "समुद्र-द्वारा व्यापार करने वाला काफिले का मालिक धनमित्र जहाज-दुर्घटना में मर गया ! बेचारा निःसंतान सुना गया है; उसका धन का ढेर सरकारी खजाने में जा रहा है।" इतना मंत्री ने लिखा है। निःसंतान होना निश्चय ही कष्टकर है। वे बहुत पैसे वाले होने से अनेक स्त्रियों वाले होंगे। पता लगाओ कि उनकी पत्नियों में कोई गर्भवती है क्या ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **अनुवाच्य** निःशब्दम् पठित्वा । **कथम्** अहो । **समुद्रेण** सागरमार्गेण **व्यवहारी** वाणिज्यकर्ता **सार्थवाहः** नौकासमूहस्वामी । **धनमित्रः** । **नाम** (वाक्यालङ्कारे) नावः नौकायाः **व्यसने** दुर्घटनायाम् । **विपन्नः** मृतः । न **अपत्यम्** संततिः यस्य तादृशः । **च** । **किल** श्रूयते । **तपस्वी** अनुकम्पापात्रम् । **राजगामी** राज्यकोषगामी । **तस्य** । **अर्थानाम्** धनानाम् **संचयः** संग्रहः । **इति** । **एतत्** इदम् । **अमात्येन** मन्त्रिणा । **लिखितम्** । **कष्टम्** क्लेशकरम् । **खलु** निश्चयेन । **अनपत्यता** निःसन्तानता । **बहु** अधिकम् **धनम्** वित्तम् यस्य तत्त्वात् । **बहवः** अनेकाः पत्न्यः भार्याः यस्य तादृशेन । **तत्रभवता** । **भवितव्यम्** । **विचार्यताम्** अन्विष्यताम् । **यदि** । **काचित्** कापि (भार्या) । आपन्नम् प्राप्तम् सत्त्वम् जीवः (गर्भः) याम् (गर्भवती) **तस्य** (वणिजः) **भार्यासु** पत्नीषु । **स्यात्** भवेत् ।

हिन्दी व्याख्या—व्यवहारी, सार्थ, व्यसन, विचार्यताम् तथा आपन्नसत्त्वा क्रमशः व्यापारी, काफिला, दुर्घटना (संकट), खोजो तथा गर्भवती के लिये हैं। "धनमित्र" (धन का मित्र या जिसका मित्र धन ही है) नाम बनिये के लिये कितना सटीक है। तब पैसे वालों के ऊँचे स्तर में अनेक पत्नियों का होना भी सम्मिलित था।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—महाराज, अभी-अभी सुना गया है कि इनकी पत्नी का, जो अयोध्या के सेठ की बेटी है, पुंसवन-संस्कार संपन्न किया गया है।

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका । **देव** महाराज । **इदानीम्** अधुना । **एव** । **साकेतस्य** अयोध्यायाः । **श्रेष्ठिनः** । **दुहिता** पुत्री । **निर्वृत्तम्** संपन्नम् **पुंसवनम्** (संस्कारः) यस्याः तादृशी । **जाया** भार्या । **अस्य** (समुद्रवणिजः) । **श्रूयते** ।

राजा—ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति । गच्छ एवममात्यं ब्रूहि ।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि । [यद्देव आज्ञापयति ।] (इति प्रस्थिता)

राजा—एहि तावत् ।

प्रतीहारी—इयमस्मि ।

हिन्दी व्याख्या—"पुंसवन" संस्कार माँ का न होकर गर्भस्थ जीव का होता है। वह पुत्र हो, पुत्री नहीं, यह इसका उद्देश्य है। परिवार-प्रबन्ध में पुरुष जाति के अधिक योग को स्वीकार कर प्राचीन समाज ने पुत्र को वरीयता दी थी। यह संस्कार गर्भ का निश्चित पता चल जाने पर तीसरे माह में किया जाता है; यदि पता तीसरे माह न लगे तो चौथे माह किया जाता है; "व्यक्ते गर्भे तृतीये तु मासे पुंसवनं भवेत्। गर्भेऽव्यक्ते तृतीये चेच्चतुर्थे मासि वा भवेत् ॥" (शौनकसंहिता ४।२२)

हिन्दी-अनुवाद—निश्चय ही गर्भ (गर्भ का जीव), पैतृक धन का अधिकारी है। जाओ; ऐसा मंत्री से कहना।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। **ननु** निश्चयेन। **गर्भः** गर्भस्थः जीवः। **पित्र्यम्** पितृसम्बन्धि **रिक्थम्** धनम्। **अर्हति**। **गच्छ** याहि। **एवम्** इत्थम् (पूर्वोक्तम्)। **अमात्यम्** मन्त्रिणम् (पिशुन-नामानम्)। **ब्रूहि** वद।

हिन्दी व्याख्या—इससे पता चलता है कि दुष्यन्त बहुत न्यायशील थे : मंत्री ने अपने सुझाव में कहा है कि धन खजाने में ले लिया जाय। सेवक ऐसी राह बताते हैं जो राजा के लिये अधिक अनुकूल हो। कहीं ऐसा न हो कि राजा जायदाद हड़प करना चाहते हों, और मेरा न्याय उसके विपरीत हो, यह सोचकर मंत्री फायदे वाला सुझाव देता है। यदि न्यायी होने से राजा सुझाव नहीं भी मानेंगे तो उचित न्याय से उसके अहम् को तुष्टि देकर मंत्री कृपा-दृष्टि पायेगा। यह भी संभव है कि उस समय के कानून के अनुसार गर्भ की जाँच करके विशेष स्थिति में गर्भस्थ जीव को उत्तरा-धिकारी बनाने का विशेषाधिकार केवल राजा को प्राप्त हो। इस घटना से पता लगता है कि कालिदास के समय में विधवा को पति की संपत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं था; संतान को अधिकार था चाहे वह गर्भ में ही क्यों न हो। पुत्र न होने पर पुत्री को भी अधिकार था क्योंकि गर्भ-जीव पुत्री भी हो सकता था। इस घटना की सृष्टि, यहाँ इसलिये की गई है जिससे सन्तानहीनता से राजा की विकलता उभरे और सानुमती की सान्त्वना के लिये अच्छा समाचार मिले।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—जैसी महाराज की आज्ञा ? (यह कहकर रवाना हो जाती है)

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका। **यत्** यथा। **देवः** महाराजः। **आज्ञापयति** वदति (तथा क्रियते), **इति** ततः। **प्रस्थिता** प्रचलिता।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—जरा आना (सुनना) तो।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **एहि** आगच्छ। **तावत्** (वाक्यालङ्कारे)।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—आ गई।

राजा—किमनेन संततिरस्ति नास्तीति ।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥२३॥

प्रतीहारी—एव्वं णाम घोसइदव्वं । (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) काले पवुट्ठं विअ अहिणंदिदं देवस्स सासणं । [एवं नाम घोषयितव्यम् । काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम् ।]

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका । **इयम्** एषा (उपस्थिता) । **अस्मि** ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—इससे क्या (करना है) कि संतान है या नहीं है ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **किम्** (प्रयोजनम्) । **अनेन** (वक्ष्यमाणेन) । **संततिः** सन्तानः । **अस्ति** विद्यते । **न** । **अस्ति** । **इति** ।

हिन्दी-अनुवाद—"पाप या पापी के अतिरिक्त जिस-जिस प्रिय आत्मीय जन से प्रजा का विछोह हो, उस (प्रजा) का वह-वह प्रिय जन दुष्यन्त है" यह घोषणा की जाय ।

अन्वयः—पापात् ऋते येन येन स्निग्धेन बन्धुना प्रजाः वियुज्यन्ते तासाम् सः सः दुष्यन्तः इति शासनम् ।

संस्कृत-टीका—**पापात्** दुरितात् (पापिनः वा) । **ऋते** विना । येन । येन । **स्निग्धेन** प्रियेण, **बन्धुना** आत्मीयेन । **प्रजाः** जनाः । **वियुज्यन्ते** विरहिताः भवन्ति । **तासाम्** (जनानाम्) सः सः (बन्धुः) । **दुष्यन्तः** (अहम्) । **इति** इदम् । **घुष्यताम्** घोषयितव्यम् ।

हिन्दी-व्याख्या—'पाप" का अर्थ पापी और पाप—दोनों हैं । किसी का पति मर जाय तो वह राजा को पति समझे या किसी का चोर बाप मर जाय, वह उन्हें चोर बाप समझे—ऐसे समझने में पाप है, अतः इन स्थितियों का अपवाद बनाया गया है । यदि कोई पापी मरे तो उसकी जगह दुष्यन्त अपने को प्रस्तुत करने को तैयार नहीं हैं । पापी के संबंधी कष्ट उठावें, राजा को सहानुभूति नहीं है, यह आशय है । यहाँ प्रजा के प्रति दुष्यन्त की आत्मीयता दिखाई गई है । "येन" में पंचमी की जगह तृतीया है, क्योंकि वियोजक (वियुक्त करने वाला) कर्त्ता बनाया जाता है । 'ऋते' के योग में जिसके बिना उसमें पंचमी होती है ।

छन्द—१।५ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अनुप्रास (छेक और वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका—निश्चय ही इस प्रकार घोषणा की जायेगी । (बाहर जाकर फिर प्रवेश कर) समय पर हुई वर्षा की भाँति महाराज की आज्ञा का (जनता में) स्वागत हुआ है ।

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका । **एवम्** पूर्वोक्तप्रकारेण । **नाम** निश्चयेन । **घोषयितव्यम्** घोषणा करिष्यते । **निष्क्रम्य** निर्गत्य । पुनः भूयः । **प्रविश्य** । **काले** यथासमयम् । **प्रवृष्टम्** वर्षाः । **इव** । **अभिनन्दितम्** स्वागतविषयीकृतम् । **देवस्य** महाराजस्य । **शासनम्** आज्ञा ।

राजा—(दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य) **एवं भोः संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूल-पुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति । ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रीरकाल इवोप्तबीजा भूरेवं वृत्ता ।**

प्रतीहारी—पडिहदं अमंगलं । [प्रतिहतममङ्गलम् ।]

राजा—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् ।

सानुमती—असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिंदिदो णेण अप्पा । [असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा ।]

हिन्दी अनुवाद—राजा (गहरी और गर्म सांस खींचकर)—अहो ! इस प्रकार संतान न होने से असहाय वंशों की सम्पत्तियाँ आधार-स्वरूप व्यक्ति का अन्त होने पर दूसरे के पास चली जाती है। मेरा भी अन्त होने पर पुरुकुल की लक्ष्मी असमय बोये बीज वाली पृथ्वी की तरह ऐसी हो गई है।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । **दीर्घम्** आयतम् । **उष्णम्** तप्तम् । **च निःश्वस्य** । **एवम्** इत्थम् । **भोः** अये । **संततेः** सन्तानस्य **छेदेन** अभावेन **निर्गतम्** समाप्तम् **अवलम्बनम्** शरणम् येषाम् तादृशानाम् । **कुलानाम्** वंशानाम् । **मूलभूतः** आधाररूपः च सः **पुरुषः** जनः च तस्य **अवसाने** मृत्यौ । **संपदः** धनानि । **परम्** अन्यम् (जनम्) । **उपतिष्ठन्ति** गच्छन्ति । **मम** । **अपि** । **अन्ते** मृत्यौ । **पुरोः वंशस्य** कुलस्य श्रीः लक्ष्मीः । **अकाले** असमये । **उप्तम् बीजम्** यस्याः तादृशी । **भूः** पृथ्वी । **एवम्** ईदृशी । **वृत्ता** जाता ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "मूल" का अर्थ "वंश का पहला व्यक्ति" न होकर "मरने वाला कुल का पोषण करने वाला व्यक्ति है।"

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—अशकुन नष्ट हो।

संस्कृत टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका । **प्रतिहतम्** नष्टम् भवतु । **अमङ्गलम्** अपशकुनम् ।

हिन्दी-व्याख्या—मरने और वंश के उत्तराधिकारी रह जाने की बात अमंगल की है; मुंह से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये जो मृत्यु आदि की हो। आजकल इस अर्थ में "मरे दुश्मन" कहने का रिवाज है।

हिन्दी अनुवाद—राजा—प्राप्त कल्याण (शकुन्तला) का अपमान करने वाले मुझको धिक्कार है।

संस्कृत-टीका—धिक् । **माम्** । **उपस्थितम्** प्राप्तम् च तत् **श्रेयः** (शकुन्तलारूपम्) कल्याणम् च । तस्य **अवमानिनम्** तिरस्कुर्वाणम् ।

हिन्दी-अनुवाद—सानुमती—इसमें शक नहीं है कि (मेरी) सहेली (शकुन्तला) को ही हृदय में रखकर (सोचकर) इन्होंने अपनी निन्दा की है।

संस्कृत टीका—सानुमती—**अविद्यमानः संशयः** संदेहः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा । (मम) **सखीम्** आलीम् (शकुन्तलाम्) । **एव** । **हृदये** मनसि । **कृत्वा** निधाय (विचार्य) **निन्दितः** गर्हितः । **अनेन** (राज्ञा) । **आत्मा** स्वः ।

राजा—संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा ।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ॥ २४ ॥

सानुमती—अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि । [अपरिच्छिन्नेदानीं ते संततिर्भविष्यति ।]

चतुरिका—(जनान्तिकम्) अए इमिणा सत्थवाहवुत्तंतेण द्विउणुव्वेओ भट्टा । णं अस्सासिदुं मेहप्पडिच्छदादो अज्जं माढव्वं गेण्हिअ आअच्छामि । [अयि अनेन

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मुझ नीच ने आत्मा का रोपण करने पर भी समय आने पर भी जिससे खूब पैदावार होने की संभावना है, उस पृथ्वी की भाँति जिसमें बीज बोया जा चुका है, कुल की प्रतिष्ठा धर्म-पत्नी का तिरस्कार कर दिया ।

अन्वय—आत्मनि संरोपिते अपि मया नाम काले महते फलाय कल्पिष्यमाणा उप्तबीजा वसुन्धरा इव कुलप्रतिष्ठा धर्मपत्नी त्यक्ता ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **आत्मनि** स्वस्मिन् । **संरोपिते** पुत्ररूपेण उत्पादिते । अपि । **मया** । **नाम** (कुत्सायाम्) । **काले** परिपाकसमये (अपि) । **महते** अधिकाय । **फलाय** सस्याय । **कल्पिष्यमाणा** भविष्ये समर्था । **उप्तानि बीजानि** यत्र तादृशा । **वसुन्धरा** पृथ्वी । **त्यक्ता** तिरस्कृता ।

हिन्दी-व्याख्या—पुरुष, पत्नी के गर्भ में स्वयं उत्पन्न होता है, इसीलिये पुत्र को आत्मा कहा गया है ।

"पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते । जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥" (मनुस्मृति ९।८) "आत्मा वै पुत्रनामासि" । (आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१५)

पुत्र-प्रसव से कुल चलता है, नष्ट नहीं होता, अतः सपुत्रा स्त्री कुलप्रतिष्ठा कही गई है । "नाम" संभावना के लिये भी हो सकता है । जैसा राघवभट्ट का कहना है—क्योंकि शकुन्तला को गर्भवती जानकर यह संभावना थी कि गर्भ में पुत्र है । क्लृप् के योग में जिसको पाने की संभावना होती, उसमें चतुर्थी आती है । यहाँ आत्मा और बीज, धर्मपत्नी और वसुन्धरा एवं प्रतिष्ठा और फल की तुलना है । संरोपित और उप्त तथा नाम और कल्पिष्यमाणा-पद एक-दूसरे की जोड़ी के हैं ।

छन्द—२।७ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—उपमा, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (श्रुति) ।

हिन्दी-अनुवाद—अब आपकी परम्परा निर्बाध रहेगी ।

संस्कृत-टीका—**सानुमती** । न **परिच्छिन्ना** सीमिता (निर्बाधा) । **इदानीम्** अधुना । **ते** तव । संततिः वंशपरम्परा । **भविष्यति** ।

हिन्दी-व्याख्या—अप्सरा का संकेत शकुन्तला-गर्भ से है । पुत्र हो चुका है, यह सूचना संकेत से मिलती है; जरा आगे ही पुष्टि होगी ।

हिन्दी-अनुवाद—चतुरिका—(जनान्तिक) अरी, व्यापारी के वृत्तान्त से स्वामी की

सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्त्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्य माढव्यं गृहीत्वागच्छामि।]

प्रतीहारी—सुट्ठु भणासि। [सुष्ठु भणसि] (इति निष्क्रान्ता)

राजा—अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः। कुतः

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपनानि नियच्छतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं धौताश्रु शेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥ २५ ॥

आकुलता दूनी हो गई है। इन्हें ढाढ़स बँधाने के लिये मेघ-प्रतिच्छन्द (नामक महल) से श्रीमाढव्य को लेकर आती हूँ।

संस्कृत-टीका—**चतुरिका**। **जनान्तिकम्**। **अयि** (कोमलामन्त्रणे) **अनेन** (प्रस्तुतेन)। **सार्थवाहस्य** वणिजः **वृत्तान्तेन** चर्चया। **द्विगुणः उद्वेगः** आकुलता यस्य तादृशः। **भर्त्ता** स्वामी। **एनम्** इमम्। **आश्वासयितुम्** उपसान्त्वयितुम्। **मेघप्रतिच्छन्दात्** तन्नामकात् सौधात्। **आर्यम्** श्रीमन्तम्। **माढव्यम् गृहीत्वा** आनीय। **आगच्छामि** निवर्त्ते।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—ठीक कहती हो (यह कहकर बाहर जाती है)।

संस्कृत-टीका—**प्रतीहारी** द्वारपालिका। **सुष्ठु** समीचीनम्। **भणसि** वदसि। **इति** ततः। **निष्क्रान्ता** निर्गता।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—अरे! दुष्यन्त के पुरखे संकट में पड़ गये; क्योंकि—

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **अहो** हन्त। **दुष्यन्तस्य** (मम)। **संशयम्** संकटम्। **आरूढाः** प्राप्ताः। **पिण्डभाजः** पितरः। **कुतः** यतः।

हिन्दी-व्याख्या—अपनी निन्दा के लिये राजा ने अपना नाम लिया है। पिण्ड देने वाला रह जाने पर पितर बहुत कष्ट पाते है; "दुष्यन्त के पुत्र न होगा तो पिण्ड नहीं मिलेगा और फिर घोर यातनाएँ सहनी पड़ेंगी", यह सोचकर पितर संशय-ग्रस्त होंगे—यह राजा सोच रहे हैं।

हिन्दी-अनुवाद—"हन्त! इसके बाद हमारे वंश में वेद के अनुसार भरा पूरा (अनेक उपकरणों से युक्त) श्राद्धादि कौन देगा।" यह सोचकर लगता है कि पितर, संतान-रहित मेरे द्वारा दिया हुआ जल, जो आँसू को धोकर बचा हुआ है, पी रहे हैं।

अन्वयः—बत अस्मात् परम् नः कुले कः यथाश्रुति संभृतानि निवपनानि नियच्छति इति नूनम् पितरः प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तम् धौताश्रुसेकम् उदकम् पिबन्ति।

संस्कृत-टीका **बत** हन्त। **अस्मात्** इतः (दुष्यन्तात्)। **परम्** पश्चात्। **नः** अस्माकम्। **कुले** वंशे। **श्रुतिम्** वेदान् अनतिक्रम्य। **संभृतानि** बहूपकरणयुक्तानि। **निवपनानि** श्राद्धादानानि पितृदानानि। **कः**। नियच्छति ददाति (दास्यति)। **इति** एवम् (विचिन्त्य)। **नूनम्** मन्ये। **पितरः** पूर्वजाः **प्रसूतेः** सन्तानात् **विकलेन** रहितेन। **मया**। **प्रसिक्तम्** दत्तम्। **धौतम्** प्रक्षालितम् **अश्रु** बाष्पः येन तत् च **शेषम्** अवशिष्टम् च। **उदकम्** जलम्। **पिबन्ति**।

हिन्दी-व्याख्या—"धौताश्रुशेषम्" यहाँ "उदक" का विशेषण है। इसे क्रिया-विशेषण करने पर अर्थ होगा—जल को इस प्रकार पी रहे हैं कि आँसू धोने के बाद वह शेष बच जाय (थोड़े में

चतुरिका—(ससंभ्रममवलोक्य) समस्ससदु भट्टा । [समाश्वसितु भर्त्ता ।]

सानुमती—हद्धी हद्धी । सदि खु दीवे ववधाणदोसेण ऐसो अंधआरदोसं अणुहोदि । अहं दाणिं एव्व णिव्वुदं करेमि । अहवा सुदं मए सउदलं समस्सअंतीए महेंदजणणीए मुहादो जण्णभाओस्सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्सति जहअइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणंदिस्सदि त्ति । ता ण जुत्तं कालं पडिपालिदुं । जाव इमिणा वुत्तंतेण पिअसहिं समस्सासेमि । [हा धिक् ! सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति । अहमिदानीमेव निर्वृतं करोमि । अथ वा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखाद्यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाचिरेण धर्मपत्नीं भर्त्ताभिनन्दिष्यतीति । तन्न युक्तं कालं प्रतिपालयितुम् । यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि ।] (इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता)

आँसू धोकर शेष बचाकर)। अश्रु पितरों के हैं; दुष्यन्त के भी हो सकते हैं। "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" (अष्टाध्यायी ३।३।१३१) के अनुसार आसन्नभविष्य के अर्थ में "नियच्छति" वर्तमान (लट् लकार) में है।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास।

हिन्दी अनुवाद—चतुरिका (घबराहट के साथ देखकर)—स्वामी, धैर्य धारण करें।

संस्कृत-टीका—**चतुरिका**। **संभ्रमेण** आवेगेन सह। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। **समाश्वसितु** धैर्यम् धारयतु। **भर्त्ता** स्वामी।

हिन्दी अनुवाद—सानुमती—हाय ! हाय ! दीपक (पुत्र) के होने पर भी आड़ के दोष से ये अन्धकार का अनुभव कर रहे हैं। मैं अभी शान्त करती हूँ। या ऐसा करूँ; मैंने शकुन्तला को धैर्य देती हुई इन्द्र की माता (अदिति) के मुख से सुना है कि यज्ञ-भाग के लिये लालायित देवता ही कुछ ऐसा करेंगे। जिससे स्वामी (दुष्यन्त) शीघ्र ही धर्म-पत्नी (शकुन्तला का स्वागत करेगा, अतः समय विताना ठीक नहीं है। अब इस समाचार से प्यारी सखी को ढाढ़स दूँगी। (यह कहकर सीधी ऊपर की उड़ान से मंच के बाहर होती है।)

संस्कृत-टीका—**सानुमती**। हा हन्त। (दैवम्) धिक्। हा। धिक्। **सति** वर्तमाने। **खलु** अपि। **दीपे** वंशदीपके (पुत्रे)। **व्यवधानम्** देशान्तरेण बाधा तत एव **दोषः** तेन **नृपः** अयम् (दुष्यन्तः) **अन्धकारः** तमः (शोकः) एव **दोषः** तम्। **अनुभवति** प्राप्नोति। **अहम्**। **इदानीम्** अधुना। एव। **निर्वृतम्** शान्तम्। **करोमि** विदधामि। **अथवा** यद्वा **श्रुतम्** आकर्णितम्। **मया**। **शकुन्तलाम्**। **समाश्वासयन्त्या** उपसान्त्वयन्त्या, **महेन्द्रस्य** पुरन्दरस्य **जनन्याः** मातुः (अदित्याः) **मुखात्** वदनात्। **यज्ञस्य भागः** तस्मै **उत्सुकाः** प्राप्तुम् इच्छुकाः। **देवाः** सुराः। **एव**। **तथा** तेन प्रकारेण। **अनुष्ठास्यन्ति** करिष्यन्ति। **यथा** यत्। **नचिरेण** अविलम्बेन (शीघ्रम्)। **धर्मपत्नीम्** भार्याम्। **भर्ता** स्वामी (दुष्यन्तः)। **अभिनन्दिष्यति** सादरम् नेष्यति। **इति**। **तत्** अतः। **न**।

(नेपथ्ये) अब्बम्हण्णं । [अब्रह्मण्यम् ।]

राजा—(प्रत्यागतचेतनः कर्णं दत्त्वा) अये माढव्यस्येवार्तस्वरः । कः कोऽत्र भोः ! (प्रविश्य)

प्रतीहारी—(संभ्रमम्) परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं । [परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम् ।]

राजा—केनात्तगन्धो माणवकः ।

युक्तम् उचितम् । कालम् समयम् । प्रतिपालयितुम् (अत्र) प्रतीक्षितुम् विलम्बम् कर्तुम् । यावद् (वाक्यालङ्कारे) अनेन । वृत्तान्तेन वार्त्तया । प्रिया हृद्या च सा सखी आली च ताम् (शकुन्तलाम्) । समाश्वासयामि उपसान्त्वयामि । इति ततः । उद्भ्रान्तकेन उत्प्लुतिकरणेन । निष्क्रान्ता निर्गता ।

हिन्दी-व्याख्या—"दीप" पद का प्रयोग ध्वनित करता है कि पुत्र उत्पन्न हो चुका है। ऊपर "अपरिच्छिन्ना" से संकेत मिल चुका था। दुष्यन्त शकुन्तला-विरह से यज्ञ नहीं कर रहे हैं जिससे देवता भूखे रहते हैं, शकुन्तला के मिलने पर वे उसे पटरानी बनाकर यज्ञ करेंगे तब उन्हें भोजन मिलेगा।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) अवध्य है।

संस्कृत-टीका—नेपथ्ये । न ब्रह्मण्यम् ब्रह्मणि साधु (अवध्यः अस्मि)।

हिन्दी-व्याख्या—"ब्राह्मण के लिये उचित" को ब्रह्मण्य कहते हैं। उस समाज में ब्राह्मण को प्रमुखता प्राप्त होने से "अब्रह्मण्य", "गजब हो गया" के अर्थ में भी आता था।

हिन्दी-अनुवाद—(होश में आकर कान देकर)—अरे, माढव्य की आह जैसा है। कौन है, यह कौन है जी ? (अन्दर आकर)

संस्कृत टीका—राजा नृपः । प्रत्यागतम् निवृत्तम् चेतनम् संज्ञा यस्य तादृशः (सन्) । कर्णम् श्रवणम् । दत्त्वा । अये भोः । माढव्यस्य (विदूषकस्य) । इव । आर्त्तः क्लेशव्यञ्जकः च सः स्वरः नादः च । कः । कः । अत्र इह । भोः अये प्रविश्य ।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका (घबराकर)—महाराज, जोखिम में पड़े मित्र को बचायें।

संस्कृतटीका—प्रतीहारी द्वारपालिका । संभ्रमेण व्यग्रतया सह । परित्रायताम् रक्षतु । देवः महाराजः । संशये सङ्कटे गतम् प्राप्तम् वयस्यम् मित्रम् (माढव्यम्) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—किसने मूर्ख को दबा लिया है ?

संस्कृत टीका—राजा नृपः । केन आत्तः निष्कासितः गन्धः अभिमानः यस्य (अभिभूतः) तादृशः । माणवकः मूर्खः मानवः ।

हिन्दी व्याख्या—"आत्तगन्ध", "अभिभूत" को कहते हैं (आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्) । मानव ही माणव है जब कुत्सित या मूढ अर्थ में प्रयुक्त हो (मनोः अपत्यम् कुत्सितम् माणवः)—

प्रतीहारी—अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छंदस्स प्पासादस्स-अग्गभूमिं आरोविदो। [अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः।]

राजा (उत्थाय)—मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथ वा—

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः॥ २६॥

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।
नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः॥

[महाभाष्य अष्टाध्यायी ४।१।१६१ पर]

राजा का अनुमान है कि विदूषक ने अपनी ढिठाई में कहीं कोई अपराध किया होगा, अतः उसे मूर्ख कहा है।

हिन्दी अनुवाद—द्वारपालिका—लुप्त रूप में किसी भूत-प्रेत ने आक्रमण कर (विदूषक को) "मेघप्रतिच्छन्द" नामक महल की छत पर डाल दिया है।

संस्कृत टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका। न दृष्टम् विलोकितम् च तत् रूपम् आकृतिः च तेन। केनापि (अज्ञातेन)। सत्त्वेन प्राणिना। अतिक्रम्य आक्रम्य। मेघप्रतिच्छन्दस्य। प्रासादस्य भवनस्य। भूमेः अग्रम् उपरितनम् भागम्। आरोपितः निवेशितः।

हिन्दी व्याख्या—"सत्त्वं", भूत-प्रेत आदि के लिए आता है। "अग्र", "आगे" के लिये उतना प्रसिद्ध नहीं है जितना "ऊपरी" के लिये। छत, चहारदीवारी से रहित और छोटी प्रतीत होती है जिससे डर लगे। यह भी कारण हो सकता है कि डर कर विदूषक छत से चिल्लायेगा तो लोग इकट्ठे होंगे; ऊपर की आवाज नीचे आसानी से आती है।

हिन्दी अनुवाद—राजा (उठकर)—मत कहो ऐसा। मेरे घर पर भी भूत-प्रेत का आक्रमण होगा ? या—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। उत्थाय। मा न (वद)। तावत् (वाक्यालङ्कारे) मम। अपि। सत्त्वैः भूतादिभिः। अभिभूयन्ते आक्रम्यन्ते। गृहाः भवनम्। अथ वा यद्वा।

हिन्दी व्याख्या—राजा "ममापि" वाले वाक्य में प्रश्न कर रहे हैं, उन्हें पूर्ण विश्वास है कि मेरे जैसे धार्मिक व्यक्ति के घर में भूत-प्रेत का आक्रमण नहीं हो सकता। "गृह" शब्द नपुंसकलिंग है पर बहुवचन में पुंलिङ्ग भी होता है, तब प्रायः "महल" अर्थ देता है।

अलङ्कार—प्रश्न काकु।

हिन्दी अनुवाद—अपनी ही रोज-रोज की असावधानी से हुई त्रुटि जानना सम्भव नहीं है; (फिर) जनता में कौन किस रास्ते चल रहा है, यह पूर्णतः जानने की शक्ति (कहाँ) है ?

अन्वयः—आत्मनः एव तावत् अहनि अहनि (कृतम्) प्रमादस्खलितम् ज्ञातुम् न शक्यम्। प्रजासु कः केन पथा प्रयाति इति अशेषतः वेदितुम् शक्तिः अस्ति।

(नेपथ्ये) भो वअस्स अविहा अविहा । [भो वयस्य अविहा अविहा ।]

राजा (गतिभेदेन परिक्रामन्)-सखे न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

(नेपथ्ये)

(पुनस्तदेव पठित्वा) कहं ण भाइस्सं ? एस मं को वि पच्चवणद सिरोहरं इच्छुं विअ तिएणभंगं करेदि । [कथं न भेष्यामि ? एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति]

राजा—(सदृष्टिक्षेपम्) धनुस्तावत् ।

संस्कृत टीका—आत्मनः स्वस्य । एव । तावत् (वाक्यालङ्कारे) । अहनि दिने । अहनि दिने । प्रमादेन अनवधानेन स्खलितम् विपरीतकरणम् । ज्ञातुम् । न । शक्यम् संभवम् । प्रजासु जनेषु । कः (जनः) । केन । पथा मार्गेण । प्रयाति गच्छति । इति इदम् । अशेषतः पूर्णतः । वेदितुम् ज्ञातुम् । शक्तिः सामर्थ्यम् । अस्ति (किम्) ।

हिन्दी-व्याख्या—पूर्वार्ध का "न" उत्तरार्ध में लाया जा सकता है, पर "काकु" करने से अर्थ ज्यादा अच्छी तरह निकलता है । "तावत्" का अर्थ "आदौ" (पहले) भी किया जा सकता है ।

छन्द—उपजाति (२।७ द्रष्टव्य)

अलङ्कार—अर्थ व अनुप्रास (छेक और वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) हे मित्र, हाय हाय (बचाओ)

संस्कृत-टीका—नेपथ्ये । भोः अये । वयस्य मित्र (राजन्) । अविहा हा । अविहा हा ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (चाल बदलकर मण्डलाकार चलते हुये)-मित्र, मत डरो, मत डरो ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । गत्याः भेदेन परिवर्तनपूर्वकम् । परिक्रामन् मण्डलाकृतिं चलन् । सखे (हे) मित्र । न मा । भेतव्यम् भैयम् अनुभवितव्यम् ।

हिन्दी अनुवाद—(नेपथ्य में) फिर वही पढ़कर, कैसे न डरूँ ? यहाँ कोई मेरी गरदन को झुकाकर ईख की तरह मरोड़ रहा है ।

संस्कृत टीका-(नेपथ्ये) पुनस्तदेव 'अविहा अविहा' इति पठित्वा उच्चार्य, कथं न भेष्यामि भयं कथं न करोमि, एष कोऽपि अदृश्यः मां विदूषकं प्रत्यवनता पृष्ठतः वक्रीकृता शिरोधरा ग्रीवा यस्य तथाविधम् अतएव इक्षुमिव त्रिभङ्गं त्रिषु स्थानेषु भङ्गः वक्रता यस्य तथाविधं करोति ।

हिन्दी व्याख्या—अदृश्य से फिर पहिले कहे हुए 'अविहा अविहा' कहकर विदूषक (जिसे कि मातलि ने आक्रान्त कर लिया था) अपनी दशा बता रहा है और राजा को उलाहना दे रहा है कि मेरी रक्षा तो कर नहीं पा रहे हो यहाँ जानपर बीती जा रही है कैसे न डरूँ । गर्दन मरोड़ने की ऊख का डण्डा मरोड़ने से सटीक उपमा है, भूत प्रेतादि अदृश्य योनियां इसी प्रकार आक्रमण करती हैं आक्रान्त व्यक्ति आक्रमणकारी को तो नहीं देख पाता किन्तु आक्रमण का शिकार हो जाता है ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(नजर डालकर) धनुष लाओ ।

(प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता)

यवनी—भट्टा एदं हत्थावावसहिदं सरासणं। [भर्तः एतद्धस्तावापसहितं शरासनम्]

(राजा सशरं धनुरादत्ते) (नेपथ्ये)

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्॥ २७॥

संस्कृत-टीका—राजा–दृष्टिक्षेपेण सह इति **सदृष्टिक्षेपम्** सर्वतः दृष्ट्वा इत्यर्थः। धनुः चापम्। तावत् (वाक्यालंकारे) आनयेति शेषः।

हिन्दी-व्याख्या—राजा चारों ओर नजर दौड़ाते हैं पर दीखता कुछ नहीं अतः क्रोध में आकर धनुष मांगते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—(प्रवेश करके धनुष हाथ में लेकर) यवनी–हे स्वामिन्! यह दस्ताने सहित धनुष है। (राजा बाण सहित धनुष लेते हैं)।

संस्कृत-टीका—**प्रविश्य** प्रवेशं कृत्वा, शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्ग शृङ्गनिर्मितं यत् तत् (धनुः) हस्ते यस्याः सा। **यवनी** वदति यत् **भर्तः** स्वामिन् हस्तम् आवपति रक्षति इति **हस्तावापः** हस्तरक्षकं चर्ममयं वस्तु, तेन सहितं युक्तं शरासनं धनुः। (राजा सशरं बाणयुक्तं धनुः आदत्ते यवनी हस्तात् गृह्णाति)।

हिन्दी-व्याख्या—प्राचीन काल में धनुष कई प्रकार से बनते थे। उनमें भैंस के सींग का धनुष विशेष समझा जाता था। कालान्तर में शार्ङ्ग शब्द धनुष के अर्थ में रूढ़ हो गया।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) यह गले के ताजे-ताजे रक्त का इच्छुक मैं हाथ-पैर पटकते तुम्हें वैसे मार डालता हूँ जैसे सिंह पशु को मार देता है। पीड़ितों का डर दूर करने के लिये जिन्होंने धनुष ग्रहण किया है वे दुष्यन्त अब तुम्हारी शरण हों (तुम्हें बचायें तो देखूं)।

अन्वय—एषः अभिनवकण्ठशोणितार्थी (अहम्) शार्दूलः पशुमिव चेष्टमानम् त्वाम् हन्मि। आर्तानाम् भयम् अपनेतुम् आत्तधन्वा दुष्यन्तः इदानीम् तव शरणम् भवतु।

संस्कृत-टीका—**एषः** अयम्। **अभिनवम्** प्रत्यग्रम् च असौ **कण्ठस्य** ग्रीवायाः शोणितम् रक्तम् च तदर्थी तदिच्छुकः (अहम्)। **शार्दूलः** व्याघ्रः। **पशुम्** साधारणम् जन्तुम् इव। **चेष्टमानम्** (प्राणरक्षार्थम्) प्रयतमानम्। **त्वाम्**। **हन्मि** मारयामि। **आर्तानाम्** पीडितानाम् **भयम्** भीतिम् **अपनेतुम्** दूरीकर्तुम् **आत्तम्** आदत्तम् (गृहीतम्) **धनुः** शरासनम् येन तादृशः दुष्यन्तः। **इदानीम्** अधुना। **तव**। **शरणम्** सहायकः। भवतु।

हिन्दी-व्याख्या—चीते का स्वभाव है कि वह ताजा-ताजा गले का खून पीता है "पशु" के साथ "अन्य" पद लगना चाहिये था क्योंकि यहाँ शार्दूलादि से आशय नहीं है। "अभिनव०" विशेषण उपमान (शार्दूल) में भी लगेगा। ताजे खून का इच्छुक होना और हाथ-पैर चलाते हुये को मारने की बात वीभत्स रस ध्वनित करती है।

राजा—(सरोषम्) कथं मामेवोद्दिशति । तिष्ठ कुणपाशन त्वमिदानीं न भविष्यसि। (शार्ङ्गमारोप्य) वेत्रवति सोपानमार्गमादेशय ।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो । [इत इतो देवः ।] (सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति ।)

राजा—(समन्ताद्विलोक्य) शून्यं खल्विदम् । (नेपथ्ये)

अविहा अविहा । अहं अत्तभवंतं पेक्खामि । तुमं मं ण पेक्खसि । विडालग्गहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो । [अविहा अविहा, अहमत्रभवन्तं पश्यामि । त्वं मां न पश्यसि । विडालगृहीतो मूषिक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृतः ।]

छन्द—प्रहर्षिणी है जिसमें मगण, नगण, जगण, रगण और गुरु होता है तथा ३ और १० पर यति होती है—म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् । (वृत्तरत्नाकर, ३।७०)

हिन्दी-अनुवाद—राजा (क्रोध में)—एँ ! मेरी ओर ही संकेत करता है । रुक राक्षस, अब तुम नहीं बचोगे । (सींग का धनुष चढ़ाकर) वेत्रवती, सीढ़ी की राह दिखाना ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । रोषेण कोपेन सह । कथम् किम् । माम् । एव । उद्दिशति निर्दिशति । तिष्ठ विरम । कुणपाशन राक्षस । त्वम् । इदानीम् अधुना । न । भविष्यति जीविष्यसि । शार्ङ्गम् शृङ्गमयम् धनुः । आरोप्य बाणयुतम् कृत्वा । वेत्रवति द्वारपालिके । सोपानस्य मार्गम् पन्थानम् । आदेशय वद ।

हिन्दी-व्याख्या—कुणप (लाश) खाने वाला (कुणपः शवः अशनम् यस्य तादृशः) कुणपाशन (राक्षस) होता है । राजा ने अनुमान लगाया कि मनुष्य का रक्त चाहने वाला होने से यह आक्रमणकारी कोई राक्षस ही होगा ।

हिन्दी-अनुवाद—द्वारपालिका—इधर से, इधर से, महाराज । (सभी जल्दी से पास जाते हैं) ।

संस्कृत टीका—प्रतीहारी द्वारपालिका । इतः अनेन पथा । इतः । देवः महाराजः । सर्वे (राजा यवनी प्रतीहारी च) । त्वरया शीघ्रतया सह सत्वरम् । उपसर्पन्ति समीपे गच्छन्ति ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा के पास रहने से स्त्रियों को भी डर नहीं है और वे भूत-जैसे लग रहे आक्रान्ता के पास भी चली जाती हैं। "सर्वे" पुंल्लिङ्ग में है, विशेषण, विभिन्न लिङ्गों के विशेष्य रहने पर नपुंसकलिङ्ग में होता है; उसके न रहने पर पुंल्लिङ्ग में होता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (चारों ओर देखकर) यह तो सूना है । (नेपथ्य में)

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । समन्तात् चतसृषु दिक्षु । विलोक्य दृष्ट्वा । शून्यम् , खलु निश्चयेन । इदम् एतत् स्थानम् । नेपथ्ये ।

हिन्दी अनुवाद—हाय ! हाय ! मैं श्रीमान् (आप) को देख रहा हूँ । आप मुझे नहीं देख रहे हैं । जीवन के विषय में बिलाव द्वारा पकड़े हुए चूहे की भाँति निराश हो गया हूँ ।

संस्कृत-टीका—अविहा हन्त । अविहा । अहम् । अत्र भवन्तम् (पूज्यम् त्वाम्) । पश्यामि विलोकयामि । त्वम् । माम् । न । पश्यसि विलोकयसि । विडालेन मार्जारेण गृहीतः वशीकृतः

राजा—भोस्तिरस्करिणीगर्वित मदीयं शस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति । एष तमिषुं संदधे ।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम् ।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २८ ॥

मूषिकः आखुः, इव । निर्गता आशा संभावना यस्मात् तादृशः । **अस्मि** । **जीविते** जीवने (विषये) । **संवृत्तः** जातः ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा के आगे दिये कथन से स्पष्ट हो जायेगा कि तिरस्करिणी (विद्या के) प्रभाव से आक्रमणकारी ने अपने को व विदूषक को–दोनों को गायब कर लिया था । बिल्ली और चूहे से क्रमशः आक्रमणकारी व अपनी तुलना हँसी पैदा करती है । विदूषक संकट में पड़कर भी अपनी आदत से मजबूर है, उसके मुख से अभ्यस्त उपमाएँ, मुहावरे आदि ही निकलते हैं जो मनोविनोदकर हैं ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—अरे तिरस्करिणी (विद्या के) अभिमानी, मेरा शस्त्र तुम्हें देखेगा । यह (देखो), (मैं) वह बाण चला रहा हूँ ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **भोः** रे । **तिरस्करिण्या** अन्तर्धानेन विद्यया **गर्वित** अहंकारिन् । **मदीयम्** मम । **शस्त्रम्** आयुधम् । **त्वाम्** । **द्रक्ष्यति** विलोकयिष्यति । **एषः** अयम् (अहम्) **तम्** । **इषुम्** बाणम् । **संदधे** धनुषा योजयामि ।

हिन्दी-व्याख्या—"एषः" का अपने लिये (अहम् के साथ विशेषणात्मक रूप में) प्रयोग ध्यान देने योग्य है । अंतिम वाक्य का संबंध आगे के श्लोक से है ।

हिन्दी-अनुवाद—(वह बाण चला रहा हूँ) जो मारने योग्य तुम्हें मार डालेगा और रक्षा करने योग्य ब्राह्मण (विदूषक) की रक्षा करेगा, क्योंकि हंस दूध ले लेता है और उसमें मिला पानी छोड़ देता है ।

अन्वय—यः वध्यम् त्वाम् हनिष्यति रक्ष्यम् द्विजम् च रक्षति । हंसः हि क्षीरम् आदत्ते तन्मिश्राः अपः च वर्जयति ।

संस्कृत-टीका—**यः** (बाणः) । **वध्यम्** हननयोग्यम् । **त्वाम्** । **हनिष्यति** मारयिष्यति । **रक्ष्यम्** रक्षायोग्यम् **द्विजम्** विप्रम् (विदूषकम्) । **रक्षति** रक्षिष्यति । **हंसः** मरालः । **हि** यतः । **क्षीरम्** दुग्धम् । **आदत्ते** गृह्णाति । **तन्मिश्राः** दुग्धमिश्रिताः । **अपः** जलम् । **वर्जयति** त्यजति ।

हिन्दी-व्याख्या—कालिदास ने इस विचित्र बाण की कल्पना की है जो वध्य को ही मारता है, अवध्य को नहीं । आङ् उपसर्ग पहले लगा होने पर "दा" धातु का अर्थ "लेना" हो जाता है और इसे आत्मनेपद में माना जाता है । अपनी ताकत का बखान करना "व्यवसाय" नामक अङ्ग माना जाता है :—व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः (दशरूपक १।४७), "रक्षति" आसन्न भविष्य के लिये है । "हनिष्यति" की तरह "रक्षिष्यति" करने पर एकरूपता रहती, वह न होने से खटकता है । पर क्रोध में ऐसी त्रुटि स्वाभाविक है ।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य ।

(इत्यस्त्रं संधत्ते) (ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः)

मातलिः—राजन्

कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम् ।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ॥ २९ ॥

राजा (ससंभ्रममस्त्रमुपसंहरन्)—अये मातलिः । स्वागतं महेन्द्रसारथेः ।

अलङ्कार—दृष्टान्त और उपमा (श्रौती) ।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद अस्त्र (शर) संधान करते हैं ।) (इसके बाद विदूषक को छोड़कर मातलि दिखता है ।)

मातलि—(हे) महाराज,

संस्कृत-टीका—इति ततः । **अस्त्रम्** आयुधम् (बाणम्) **संधत्ते** धनुषा योजयति । **ततः** तत्पश्चात् । **प्रविशति** दृश्यते । **विदूषकम्** । **उत्सृज्य** त्यक्त्वा । **मातलिः** इन्द्रसारथिः ।

हिन्दी-अनुवाद—इन्द्र ने आपका लक्ष्य असुरों को बनाया है; (अतः) यह धनुष उनके प्रति खींचिये । मित्रों पर सज्जनों की कृपा से शीतल दृष्टि पड़ती है, न कि प्रचण्ड बाण ।

अन्वयः—हरिणा तव शरव्यम् असुराः कृताः । तेषु इदम् शरासनम् विकृष्यताम् । सुहृज्जने प्रसादसौम्यानि सताम् चक्षूंषि पतन्ति, न (तु) दारुणाः शराः (पतन्ति) ।

संस्कृत-टीका—**हरिणा** इन्द्रेण । **तव** भवतः । **शरव्यम्** लक्ष्यम् । **असुराः** राक्षसाः । **कृताः** विहिताः । **इदम्** प्रस्तुतम् । **शरासनम्** धनुः । **तेषु** तान् प्रति । **विकृष्यताम्** आकृष्यताम् । **सुहृत्** मित्रम् च सः **जनः** व्यक्तिः च तस्मिन् । **प्रसादेन** कृपया **सौम्यानि** अनुग्राह्याणि । **चक्षूंषि** दृष्टिः । **पतन्ति** निधीयन्ते । **न** (तु) **दारुणाः** भयङ्कराः । **शराः** बाणाः ।

हिन्दी-व्याख्या—पहले चरण में मातलि ने आने का उद्देश्य और इन्द्र का संदेश बताया है । तीसरे चरण में राजा की सज्जन कहकर प्रशंसा की है और अपने को मित्र बताया है । बाण मुझ पर क्या छोड़ते हैं, छोड़ना है तो (शत्रु-असुरों पर छोड़िये, कहकर मातलि मनोरंजक ढंग से अपने को प्रस्तुत करता है ।

छन्द—१।१८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास, परिसंख्या, काव्यलिङ्ग, सम, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्यतिरेक और अनुप्रास (वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (घबराहट के साथ हथियार वापस करते हुए)—अरे ! मातलि हैं, इन्द्र के सारथि का स्वागत है (प्रवेश कर)

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **संभ्रमेण** संभ्रान्त्या सह । **अस्त्रम्** आयुधम् (बाणम्) । **उपसंहरन्** प्रत्यावर्तयन् । **अये** कथम् । **मातलिः** । **स्वागतम्** अभिनन्दनम् । **महेन्द्रस्य** इन्द्रस्य **सारथेः** रथचालकस्य ।

(प्रविश्य)

विदूषकः—अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणंदीअदि।
[अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते ।]

मातलिः (सस्मितम्) —आयुष्मन्, श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः।

राजा—अवहितोऽस्मि ।

मातलिः—अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः ।

राजा—अस्ति । श्रुतपूर्वं मया नारदात् ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा मातलि को पहचानते हैं। दोनों ने पहले भी एक-दूसरे को देखा था, ऐसा प्रतीत कराया गया है। "सारथि" का पद महत्त्वपूर्ण माना जाता था या सम्मानित व्यक्ति के नौकर-चाकर भी सम्मान पाते हैं, जिसके कारण मातलि का स्वागत स्वयं राजा कर रहे हैं। मातलि का महत्त्व (इन्द्र का) सारथि होने से है, अतः "महेन्द्र-सारथेः" कहा गया है।

हिन्दी-अनुवाद—(प्रवेश करके) विदूषक—जिसने मुझे यज्ञ के पशु को मारने की तरह मारा, उसे ये (राजा) स्वागत से समादृत कर रहे हैं।

संस्कृत-टीका—(प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा) विदूषकः । **अहम्** । येन (मातलिना)। **इष्टिपशुमारम्** इष्टिपशुः इव । **मारितः** निहतः । **सः** (मातलिः)। **अनेन** एतेन (नृपेण)। **स्वागतेन**। **अभिनन्द्यते** आद्रियते ।

हिन्दी व्याख्या—यज्ञ में पशुओं की क्रूर हत्या कालिदास के समय में प्रचलित थी, यही स्पष्ट है। "इष्टि" का अर्थ पूजा या यज्ञ है, "पशुमारम्" में णमुल्-प्रत्यय है। यज्ञ में घूँसे मार-मार कर पशु का वध करते थे, विदूषक को भी घूँसे पड़े होंगे।

हिन्दी अनुवाद—मातलि (मुस्कराकर)—चिरंजीवी, सुनिये, इन्द्र ने मुझे आपके पास भेजा है।

संस्कृत-टीका—**मातलिः** । **स्मितेन** विहासेन सह । **आयुष्मन्** चिरंजीविन्। **श्रूयताम्** आकर्ण्यताम् । **यत्** । **अस्मि** । **हरिणा** इन्द्रेण । **भवतः सकाशम्** समीपे । **प्रेषितः** प्रहितः ।

हिन्दी-व्याख्या—बात-चीत करते समय मुख पर मुस्कान लाना सौहार्द की निशानी है। "आयुष्मन्" आशीर्वादात्मक सम्बोधन है, सारथि, प्रायः वृद्ध और सम्मानित व्यक्ति होते थे, अतः उनकी ओर से राजाओं के लिये यह सम्बोधन आता है।

हिन्दी अनुवाद—राजा—सावधान हूँ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **अवहितः** सावधानः **अस्मि** ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—कालनेमि की सन्तान "दुर्जय" नामक दानवों का दल है।

संस्कृत-टीका—**मातलिः** । **अस्ति** वर्तते । **कालनेमेः प्रसूतिः** जन्म यस्य सः । दुर्जयः । **नाम** (वाक्यालङ्कारे) । **दानवानाम्, दनुजानाम्, गणः** समूहः ।

हिन्दी-व्याख्या—कश्यप की पत्नी दनु से उत्पन्न पुत्र दानव कहलाते हैं। "अस्ति" का प्रयोग प्रारम्भ में कथा कहने के लिये आता है और कभी-कभी भूतकाल भी बताता है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (हाँ) है; मैंने पहले नारद से सुना है।

मातलिः—

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्य-
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्ति-
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥

स भवानात्तशस्त्र एव इदानीं तमैन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम् ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । **अस्ति** वर्तते । **पूर्वम्** पुरा श्रुतः आकर्णितः । **मया** । **नारदात्** ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—यह प्रसिद्ध है कि आपके मित्र इन्द्र के हाथों वह (दल) नहीं जीता जा सकता; लड़ाई के अगले मोर्चे पर उस (दल) के नाशक के रूप में आपकी याद की गई है । जिसे सूर्य उखाड़ने में समर्थ नहीं होते, वह रात का अन्धकार चन्द्रमा दूर कर देता है ।

अन्वयः—सः किल ते सख्युः शतक्रतोः अजय्यः । रणशिरसि त्वम् तस्य निहन्ता स्मृतः । यत् उच्छेत्तुम् सप्तसप्तिः न प्रभवति तत् नैशम् तिमिरम् चन्द्रः अपाकरोति ।

संस्कृत-टीका—सः (दानवगणः) । **किल** (प्रसिद्धौ) । **ते** तव । **सख्युः** मित्रस्य । **शतक्रतोः** इन्द्रस्य । **अजय्यः** जेतुम् अशक्यः । **रणस्य** संग्रामस्य **शिरसि** अग्रे । **त्वम्** **तस्य** (दानवगणस्य) **निहन्ता** नाशकरूपेण । **स्मृतः** (इन्द्रेण) । **यत्** । **उच्छेत्तुम्** उन्मूलयितुम् । **सप्तसप्तिः** । सूर्यः **न** । **प्रभवति** शक्नोति । **तत्** **नैशम्** निशासम्बन्धि । **तिमिरम्** अन्धकारम् । **चन्द्रः** शशी । **अपाकरोति** दूरीकरोति ।

हिन्दी व्याख्या—मित्र और उनके द्वारा विपत्ति में याद किया जाना बताकर यह संकेत किया गया है कि मित्र की सहायता आड़े समय में करना धर्म है । सौ यज्ञ (क्रतु) करने से इन्द्र और सात घोड़े (सप्ति) होने से सूर्य क्रमशः शतक्रतु और सप्तसप्ति कहलाते हैं । "नैश" का अर्थ "निशा का" (सम्बन्धी) है । मातलि ने राजा को चन्द्रमा बनाकर प्रशंसा की है पर साथ ही स्वामी इन्द्र की असमर्थता को छिपाने के लिये उन्हे सूर्य कह दिया है और उनकी विवशता भाग्य के कारण बताई है । दोनों के प्रति औचित्य का निर्वाह करते हुए यह दिखाया है कि अधीन को अपने अधिकारी के सम्मान का ध्यान हर समय रखना चाहिये ।

छन्द—६।२७ द्रष्टव्य ।

अलंकार—दृष्टान्त और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—ऐसे (उपर्युक्त) आप शस्त्र लिये-लिये ही अब इन्द्र के प्रसिद्ध रथ पर चढ़कर विजय के लिये रवाना हों ।

संस्कृत-टीका—सः उपर्युक्तः । **भवान्** त्वम् । **आत्तम्** गृहीतम् **शस्त्रम्** आयुधम् येन तादृशः (सन्) । **एव** । **इदानीम्** अधुना । **तम्** प्रसिद्धम् । **ऐन्द्रः** इन्द्रसम्बन्धी च सः **रथः** स्यन्दनम् च तम् । **आरुह्य** उपविश्य । **विजयाय** जयार्थम् । **प्रतिष्ठताम्** प्रचलतु ।

राजा—अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माढव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्।

मातलिः—तदपि कथ्यते। किञ्चिन्निमित्तादपि मनःसंतापादायुष्मान्मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात्कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः।

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः॥ ३१॥

हिन्दी-व्याख्या—"आङ्" उपसर्ग पाकर "दत्त" "आदत्त" और "आत्त" दोनों—रूप धारण करता है। "ऐन्द्ररथ" में "ऐन्द्र" पद "इन्द्र" संज्ञा पद से बना है जिससे तद्धितान्त है; तद्धित प्रत्यय से बने पद कर्मधारय समास में कम रखे जाते हैं "ऐन्द्रम् रथम्" कहने से "ऐन्द्र" पर जोर पड़ता और भाषा भी अधिक मुहावरेदार होती।

हिन्दी अनुवाद—राजा—इन्द्र के इस आदर से मैं कृतकृत्य हूँ। अच्छा (यह तो बतायें), आपने माढव्य के प्रति ऐसा (व्यवहार) क्यों किया?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। अनुगृहीतः कृपाविषयीकृतः। अहम्। अनया। मघवतः इन्द्रस्य। संभावनया आदरेण। अथ (वाक्यालङ्कारे)। माढव्यम् (विदूषकम्)। प्रति। भवता त्वया। किम्। एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण। प्रयुक्तम् कृतम्।

हिन्दी व्याख्या—इन्द्र ने इस लायक समझा, यह आदर है। "अथ" का प्रयोग नया प्रकरण (बात) प्रारम्भ करने के लिए माना जा सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—वह भी बताता हूँ। किसी कारण से हुए मानसिक संताप से आयुष्मान् (आप) को मैंने व्याकुल देखा। उसके बाद आयुष्मान् (आप) को गुस्सा दिलाने के लिए वैसा किया, क्योंकि—

संस्कृत टीका—मातलिः। तत्। अपि कथ्यते उच्यते। किञ्चित् किमपि निमित्तम् हेतुः यस्य तादृशात्। अपि च। मनसः मानसस्य संतापात् क्लेशात्। आयुष्मान् चिरंजीवी (भवान्)। मया विक्लवः आकुलः। दृष्टः वीक्षितः। पश्चात् ततः। कोपयितुम् क्रुद्धम् कर्तुम्। आयुष्मन्तम् चिरंजीविनम्। तथा तादृशम् (पूर्वोक्तम्)। कृतवान् विहितवान्। अस्मि। कुतः यतः।

हिन्दी-व्याख्या—मातलि "किञ्चित्" कहकर संक्षेप में निमित्त को कहकर टाल जाता है क्योंकि शौर्य का कार्य करने के लिए उद्यत व्यक्ति के सामने मन की कमजोरी की चर्चा करना ठीक नहीं होता। उस विषाद में मातलि यदि संदेश कहता तो राजा के ऊपर उतना असर न पड़ता। उनके क्रोध को जाग्रत करके मातलि ने पृष्ठभूमि तैयार की है।

हिन्दी अनुवाद—हिलाये ईंधन वाली आग जलती है, छेड़ा गया साँप फन निकालता है। मनुष्य क्षोभ से (ही) प्रायः अपना बड़प्पन प्राप्त करता है, यह निश्चित है।

अन्वय—अग्निः चलितेन्धनः (सन्) ज्वलति। पन्नगः विप्रकृतः (सन्) फणाम् कुरुते। जनः हि प्रायः क्षोभात् (एव) स्वम् महिमानम् प्रतिपद्यते।

राजा—(जनान्तिकम्) वयस्य अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा । तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि ।

त्वन्मतिः केवला तावत्परिपालयतु प्रजाः ।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥३२॥ इति ।

संस्कृत-टीका—**अग्निः** हुताशनः । **चलितम्** चालनम् प्राप्तम् **इन्धनम्** (काष्ठादि) ज्वलन-द्रव्यम् यस्य तादृशः (सन्) । **ज्वलति** । **पन्नगः** सर्पः । **विप्रकृतः** कोपितः (सन्) **फणाम्** फटाम् । **कुरुते** ऊर्ध्वम् करोति । **जनः** व्यक्तिः । **हि** निश्चयेन । **प्रायः** बाहुल्येन । **क्षोभात्** चित्तक्षौर्याद (एव) । **स्वम्** आत्मनः । **महिमानम्** प्रभावम् । **प्रतिपद्यते** प्राप्नोति ।

हिन्दी-व्याख्या—जलती लकड़ियों से ठीक से लपट न निकलने पर उनके अगले भाग कुछ ठोंस-ठांस दिये जाते हैं तो लपट निकलने लगती है; बीच में हवा पहुँचने से आग धधकती है । क्षोभ, अशान्ति है ।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—मालादृष्टान्त, अप्रस्तुतप्रशंसा और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (जनान्तिक)—मित्र, स्वर्ग के स्वामी (इन्द्र) का आदेश अनुल्लंघनीय है, इसलिए इस विषय में मंत्री पिशुन को सारी बातों से परिचित कराकर मेरा (यह) संदेश देना ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **जनान्तिकम्** । **वयस्य** मित्र । **न** । **अतिक्रमणीया** उल्लंघनीया । **दिवः** स्वर्गस्य **पत्युः** स्वामिनः **आज्ञा** आदेशः । **तत्** । अतः । **अत्र** अस्मिन् विषये । **परिगतः** ज्ञातः **अर्थः** (सकलम्) वस्तु येन तादृशम् । **कृत्वा** विधाय । मम **वचनात्** । **अमात्यः** मन्त्री च असौ **पिशुनः** च तम् । **ब्रूहि** वद ।

हिन्दी-व्याख्या—"दिवस्पति (स्वर्ग के स्वामी)" पर्याय देने से गौरव-बोध कराया गया है । ऐसे महान् व्यक्ति का आदेश कैसे न माना जाय, यह आशय है । पिशुन, मन्त्री का नाम है ।

हिन्दी-अनुवाद—अकेली आपकी बुद्धि प्रजा का पालन करे, यह प्रत्यंचायुक्त धनुष, दूसरे कार्य में व्यस्त हो गया है ।

अन्वयः—केवला त्वन्मतिः तावत् प्रजाः परिपालयतु (यतः) इदम् अधिज्यम् धनुः अन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतम् ।

संस्कृत-टीका—**केवला** एका । तव **मतिः** बुद्धिः । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **प्रजाः** जनान् । **परिपालयतु** रक्षतु । **इदम्** । **अधिज्यम्** अध्यारूढा ज्या मौर्वी यत्र तादृशम् (मौर्वीयुक्तम्) । **धनुः** शरासनम् । **अन्यस्मिन्** परस्मिन् (इन्द्रप्रार्थिते) । **कर्मणि** कृत्ये । **व्यापृतम्** लग्नम् । **इति** ।

हिन्दी व्याख्या—अभी तक प्रजा-पालन में मन्त्री की बुद्धि और राजा के धनुष—दोनों का ही योग था; अब मन्त्री को अपनी बुद्धि के ही भरोसे काम चलाना है जिससे ज्यादा उत्तरदायित्व आ गया है । अन्य कार्य, इन्द्र का दिया हुआ दानव-विध्वंस है ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। [यद्भवानाशापयति।] (इति निष्क्रान्तः)

मातलिः—आयुष्मान् रथमारोहतु। (राजा रथाधिरोहणं नाटयति।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(इति षष्ठोऽङ्कः)

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य।

हिन्दी अनुवाद—विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा। (इसके बाद बाहर जाता है।)

हिन्दी अनुवाद—मातलि—चिरञ्जीवी, (आप) रथ पर सवार हों। (राजा रथ पर चढ़ने का अभिनय करते हैं।) (इसके बाद सब बाहर जाते हैं) छठा अङ्क समाप्त हुआ।

संस्कृत-टीका—मातलिः। आयुष्मान् रथम् स्यन्दनम्। आरोहतु उपविशतु। राजा नृपः रथे स्यन्दने अधिरोहणम् उपवेशनम्। नाटयति अभिनयति। इति ततः॥ निष्क्रान्ताः निर्गताः। सर्वे सकलाः (अभिनेतारः)। षष्ठः। अंकः (समाप्तः)।

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च)

राजा—मातले अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये ।

मातलिः—(सस्मितम्) **आयुष्मन् उभयमप्यपरितोषं समर्थये ।**

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान् ।
गणयत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ॥ १ ॥

हिन्दी-अनुवाद—सातवाँ अङ्क-(इसके बाद आकाश-मार्ग से चलते हुए रथ पर चढ़े राजा और मातलि दिखते हैं ।)

राजा—(हे) मातलि, आज्ञा का पालन करके भी इन्द्र के विशिष्ट सत्कार से (को देखते हुए) अपने को अयोग्य सा मानता हूँ ।

संस्कृत-टीका—सप्तमः (अंक प्रारभ्यते) । **ततः** तत्पश्चात् । **प्रविशति** दृश्यते । **आकाशस्य** नभसः **यानेन** मार्गेण (गच्छन्) **रथम्** स्यन्दनम् **अधिरूढः** उपविष्टः । **राजा** नृपः (दुष्यन्तः) । **मातलिः** । **च** । **राजा** नृपः । (हे) **मातले** । **अनुष्ठितः** कृतः **निदेशः** आज्ञा येन तादृशः । **अपि** (अहम्) । **मघवतः** इन्द्रस्य । **सत्क्रियायाः** सत्कारस्य **विशेषात्** गौरवात् । न **उपयुक्तम्** योग्यम् । **इव** । **आत्मानम्** स्वम् । **समर्थये** मन्ये ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा ने इन्द्र के प्रति विनय, गुण-ग्राहकता और कृतज्ञता दिखाई है जो मुझ उपयोग-रहित व्यक्ति को भी उन्होंने इतना गौरव प्रदान किया ।

अलङ्कार—सूक्ष्म ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि (मुस्कराकर)—आयुष्मन् , (मैं तो) दोनों (आप और इन्द्र) को (अपने कार्य के प्रति) संतोष-रहित मानता हूँ ।

संस्कृत-टीका—मातलिः । **स्मितेन** विहासेन सह । **आयुष्मन्** । **उभयम्** द्वयम् (इन्द्रः त्वम् च) । **अपि** । अविद्यमानः **परितोषः** संतोषः यत्र तादृशम् । **समर्थये** मन्ये ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा अपने कार्य को इन्द्र के दिये सत्कार की तुलना में तुच्छ मानकर असंतुष्ट हैं और इन्द्र राजा के कार्य की तुलना में अपना आदर तुच्छ मानकर असन्तुष्ट हैं । विस्तार आगे दिया गया है ।

हिन्दी-व्याख्या—आप इन्द्र के द्वारा (पश्चात्) दिये गये सम्मान के कारण (को देखते हुए)

राजा—मातले मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य—

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा॥ २॥

(उस सम्मान के) पहले अपने द्वारा किये उपकार को तुच्छ मानते हैं और वे आपके सराहनीय कार्य से ठगे से रहकर (अपने द्वारा किये गये) सम्मान के वैभव को तृणतुल्य समझते हैं।

अन्वयः—भवान् मरुत्वतः प्रतिपत्त्या प्रथमोपकृतम् लघु मन्यते। सः अपि भवतः अवदानविस्मितः सत्क्रियागुणान् न गणयति।

संस्कृत-टीका—भवान् त्वम्। मरुत्वतः इन्द्रस्य (इन्द्रेण पश्चात् दत्तया)। प्रतिपत्त्या गौरवेण। प्रथमम् आदि (कृतम्) च तत् उपकृतम् उपकारः च। लघु तुच्छम्। मन्यते जानाति, सः (इन्द्रः)। अपि च। भवतः तव (त्वया कृतेन), अवदानेन प्रशस्तेन कर्मणा। विस्मितः आश्चर्यान्वितः। सती च सा क्रिया च (सम्मानः) तस्याः गुणान् वैभवम्। न गणयति तृणवत् जानाति।

हिन्दी-व्याख्या—"गुण" में बहुवचन से सम्मान का आधिक्य ध्वनित होता है। "अभिराम" टीका के अनुसार गुण का अर्थ आवृत्ति (गणित को गुणोत्तर श्रेणी) है जिससे "बार-बार किया हुआ (आदर)" अर्थ निकलेगा।

छन्द—२।१८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—उदात्त, हेतु, श्रुति; अनुप्रास, उपमेयोपमा, अन्योन्य, विशेषोक्ति, विभावना और संदेहसंकर।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मातलि, मत कहो; ऐसा मत कहो। निश्चय ही विदाई की बेला का वह सम्मान मनोरथों से भी पर है, देखो न, देवताओं के सामने आधे सिंहासन पर बैठाये गये मुझे—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः (हे) मातले। मा न। मा। एवम् इत्थम् (पूर्वोक्तम्) (वद)। सः खलु निश्चयेन। मनोरथानाम् चिन्तितस्य। अपि। अभूमिः अविषयः। विसर्जनस्य प्रस्थानस्य। अवसरे वेलायाम् सत्कारः सम्मानः मम हि पश्य। दिवौकसाम् सुराणाम्। समक्षम् पुरः। अर्धम् च तत्। आसनम् इन्द्रसिंहासनम् च तत्र। उपवेशितस्य स्थापितस्य।

हिन्दी-व्याख्या—"मम" "अर्धासन" और "उपवेशित" पदों से यह ध्वनित होता है कि मैं मनुष्य हूँ फिर भी मेरा ऐसा सत्कार हुआ, आस-पास के आसन का उतना महत्त्व न समझकर अपनी गद्दी का ही आधा भाग देकर मेरे प्रति विशेष सत्कार दिखाया तथा मैं नहीं बैठ रहा था, पर आदरातिशय से जबर्दस्ती बैठाकर मेरा अभूतपूर्व सम्मान किया। "अगोचर" और "अविषय' के अर्थ में "अभूमि" शब्द ध्यान देने योग्य है, इसका प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है।

हिन्दी-अनुवाद—जिसके हृदय में (मन्दार-माला) की याचना थी उस निकट-स्थित जयन्त को देखकर (भी उपेक्षा कर) इन्द्र ने, मन्दार-पुष्पों की माला जिसमें सोने के पुँछे हुए हरिचन्दन की छाप लगी थी, मुस्कराकर पहना दी।

मातलिः—किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति । पश्य—

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम् ।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः ॥ ३ ॥

अन्वयः—अन्तर्गतप्रार्थनम् अन्तिकस्थम् जयन्तम् उद्वीक्ष्य कृतस्मितेन हरिणा आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला (मम) पिनद्धा ।

संस्कृत-टीका—अन्तः हृदये । गता प्राप्ता (स्थिता) । प्रार्थना (मन्दारमालाविषयिणी) वाञ्छा यस्य तादृशम् । अन्तिकस्थम् समीपस्थितम् । जयन्तम् (एतन्नामकम् स्वपुत्रम्) उत अधिकम् । वीक्ष्य दृष्ट्वा । कृतम् विहितम् । स्मितम् विहासः येन तादृशेन । हरिणा इन्द्रेण । आमृष्टम् स्पृष्टम् च तत् । वक्षसः उरसः । हरिचन्दनम् च तत् एव । अङ्कः चिह्नम् यत्र तादृशी । मन्दाराणाम् मन्दराख्यपुष्पाणाम् । माला स्रक् । पिनद्धा (स्वयम्) परिधापिता ।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र की छाती पर हरिचन्दन का लेप लगा रहता है और मन्दार-पुष्पों की माला पड़ी रहती है । ये दोनों चीजें उनका (परम सौभाग्य सूचित करती हैं) हरिचन्दन और मन्दार स्वर्गलोक के वृक्ष हैं—

पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥
(अमरकोष)

ऊपर बताया गया है कि देवताओं के सामने अपने आधे आसन पर मुझे बैठाया । उसके बाद अपने पुत्र को अपने गले की माला न पहनाकर मुझे पहनाई, उससे भी अधिक सौभाग्य की सूचना के लिए कहा गया है । जयन्त दूर होता तो शायद उसका ध्यान न आता; वह पास ही था उसका मन उस माला से भर गया होता तो भी एक बात थी; वह तो उस माला का प्रार्थी था; शायद कभी उसने अपनी वह इच्छा अपने पिता से कही भी हो । इन्द्र और राजा, दोनों की कृतज्ञता और गुण-ग्राहकता ध्वनित होती है । जयन्त से भी अधिक सम्मान किया गया, यह आशय है ।

छन्द—उपजाति (२।७ द्रष्टव्य) ।

अलङ्कार—उदात्त और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—ऐसी कौन-सी चीज है जो आयुष्मान् इन्द्र से पाने के अधिकारी नहीं हैं । देखें ।

संस्कृत टीका—मातलिः किम् । इव (वाक्यालङ्कारे) । नाम (संभावनायाम्) । आयुष्मान् । अमराणाम् देवानाम् ईश्वरात् स्वामिनः (इन्द्रात्) । न । अर्हति । पश्य विलोकय ।

हिन्दी व्याख्या—दबी गाँठों वाले आपके बाणों से इस समय और नृसिंह (अवतार) के नाखूनों से पहले—(इस प्रकार) दोनों से सुखासक्त इन्द्र के स्वर्ग राज्य से दानव-रूपी काँटे उखाड़ दिये गए हैं ।

अन्वयः—नतपर्वभिः तव शरैः अधुना नतपर्वभिः च पुरुषकेसरिणः नखैः पुरा (एवम्) उभयैः सुखपरस्य हरेः त्रिदिवम् उद्धृतदानवकण्टकम् कृतम् ।

राजा—अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः ।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ ४ ॥

संस्कृत-टीका—नतानि समानि पर्वाणि ग्रन्थिभागाः येषाम् तादृशैः तव । **शरैः** बाणैः । **अधुना** इदानीम् । **नतानि** मांसलतया सुदूरम् प्रविष्टानि पर्वाणि मांसनखसन्धिभागाः येषाम् तादृशैः । **पुरुषकेसरिणः** नृसिंहस्य । **नखैः** नखरैः । **उभये** (पूर्वोक्तैः) द्विप्रकारकैः (उपायैः) **सुखम्** आनन्दः **परम्** सर्वोत्कृष्टम् वस्तु यस्य तादृशस्य । **हरेः** इन्द्रस्य । **त्रिदिवम्** स्वर्गः । **उद्धृतानि** उत्खातानि **दानवाः** दनुजाः एव **कण्टकम्** यस्य तादृशम् । **कृतम्** विहितम् ।

हिन्दी व्याख्या—इन्द्र सुखजीवी हैं अतः वे अपना काम अपने छोटे भाई विष्णु या उनके समकक्ष (मित्र) दुष्यन्त से लेते हैं । इस तरह मातलि ने राजा को विष्णु के समान बताया है । बाण की नोक या नाखून से जिस तरह गड़ा काँटा निकाल दिया जा सकता है, उसी तरह राजा के बाणों और नृसिंह के नखों ने दानवों को उखाड़ दिया है । दानव और कण्टक तथा बाणों और नखों के साथ-साथ दुष्यन्त और विष्णु की तुलना की गई है । "नत" का अर्थ दबा या दूरतक धँसा हुआ तथा "पर्व" का अर्थ गाँठ या नख और मांस का संधि भाग है । गाँठों का भाग समतल होने से बाण सीधा, शीघ्रगामी और मनोहर हैं, यह ध्वनित होता है । "दानवकण्टकम्" में रूपक नहीं है; वैसा मानने पर कण्टक की प्रधानता हो जायेगी और फिर दुष्यन्त का पराक्रम गौण हो जायेगा । हिरण्यकशिपु ने इन्द्र को पद-च्युत कर तीनों लोकों में त्राहि-त्राहि मचा दी थी; उसे विष्णु ने नृसिंह-अवतार लेकर मारा था । उन्होंने जो कृपा इन्द्र पर की थी, वैसी कृपा दुष्यन्त ने की, यह गौरवाधिक्य नृसिंह की उपमा से यहाँ ध्वनित किया गया है । "उभयैः" में बहुवचन ध्यान देने योग्य है । बाण और नख एक-एक होते तो दोनों के लिये "उभय" पद एक वचन में आता, पर दोनों बहुवचन में हैं, अतः "उभय" को भी बहुवचन में रखा गया है ।

छन्द—२।११ द्रष्टव्य ।

अलंकार—तुल्ययोगिता, उपमा और अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—इस विषय में निश्चय ही इन्द्र की महिमा सराहनीय है ।

संस्कृत-टीका—**राजा**—नृपः । **अत्र** अस्मिन् विषये । **खलु** निश्चयेन । **शतक्रतोः** इन्द्रस्य । **एव** । **महिमा** महत्त्वा । **स्तुत्यः** प्रशंसनीयः ।

हिन्दी-अनुवाद—सेवक जो महान् कार्यों में भी सफल होते हैं, सो स्वामियों के गौरव का गुण ही है, यह जानिये । क्या अरुण अन्धकार का नाशक हो पाता, यदि सूर्य ने उसे आगे न किया होता ।

अन्वयः—यत् नियोज्याः महत्सु अपि कर्मसु सिध्यन्ति तम् ईश्वराणाम् संभावनागुणम् अवेहि । किम् वा अरुणः तमसाम् विभेत्ता अभविष्यत् सहस्रकिरणः चेत् तम् धुरि न अकरिष्यत् ।

मातलिः—सदृशमेवैतत् । (स्तोकमन्तरमतीत्य) आयुष्मन्, इतः पश्य नाकपृष्ठ-प्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः ।

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।
विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ॥५॥

संस्कृत-टीका—यत् । **नियोज्याः** सेवकाः । **महत्सु** । **अपि** । **कर्मसु** कार्येषु । **सिध्यन्ति** कार्यनिष्पादकाः भवन्ति । **तम्** । **ईश्वराणाम्** प्रभूणाम् । **संभावना** गौरवम् **एव गुणम्** । **अवेहि** जानीहि । **किम्** । **वा** (वाक्यालंकारे) । **अरुणः** सूर्यः । **तमसाम्** अन्धकाराणाम् । **विभेत्ता** नाशकः । **अभविष्यत्** । **सहस्रम्** अनन्ताः **किरणाः** मयूखाः यस्य सः (सूर्यः) । **चेत्** यदि । **तम्** । **धुरि** अग्रे । **न अकरिष्यत्** ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ संभावना का अर्थ दिया गया आदर और "धुरि" का अर्थ आगे बढ़ाना अर्थात् आदर देना नहीं है; इसके विपरीत क्रमशः स्वामी की महिमा और नियुक्त करना है । आशय यह है कि स्वामी महान् हो तो उसके रोब से सारा काम होता है, न कि सेवक के पुरुषार्थ से । सूर्य का सारथि अरुण पंगु (पैर-रहित) है और उसमें स्वतः अंधकार दूर करने की ताकत नहीं है पर उसके पीछे अनन्त तेजः किरणों वाले स्वामी सूर्य की ताकत है जिससे अन्धकार भागता है, उसी प्रकार मुझसे दानवों को भगाने की योग्यता नहीं है, प्रतापी इन्द्र का प्रताप मेरा पृष्ठ-पोषक है जिसके रोष में आकर दानव भागे हैं और मुझे मुफ्त का यश मिल गया है । इस प्रकार दुष्यन्त अपनी नम्रता दिखाते हैं । "विभेत्ता अभविष्यत्" की जगह एक क्रिया-पद "व्यभेत्स्यत्" होता तो भाषा ज्यादा मुहावरेदार होती पद्य में कोई खटक नहीं है । एक शर्त के होने पर दूसरी शर्त पूरी होने की अवस्था क्रियातिपत्ति या क्रियातिपात है, दोनों शर्तें भूतकाल की होनी आवश्यक हैं । ऐसी स्थिति में लङ् लकार होता है । भूतकाल की शर्तें लगी होने से उस दिन के सूर्य से आशय है । सामान्य सूर्य के लिये होने पर विधि लिङ् का प्रयोग उचित है । "किम् वा" का अर्थ "कथम्" (किस प्रकार) भी हो सकता है ।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा, उदात्त, दृष्टान्त और अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि यह (आपके) अनुरूप ही है । (थोड़ी दूरी तय कर) आयुष्मन् इधर अपने यश का स्वर्ग-पृष्ठ पर प्रतिष्ठित सौभाग्य देखिये ।

संस्कृत टीका—मातलिः । **सदृशम्** (भवतः) अनुरूपम् । **एव** । **एतत्** । **स्तोकम्** अल्पम् । **अन्तरम्** अवकाशम् । **अतीत्य** अतिक्रम्य । **आयुष्मन्** । इतः इह । **पश्य** विलोकय । ना **कस्य स्वर्गस्य पृष्ठे** (स्वर्गतले) **प्रतिष्ठितस्य** प्रतिष्ठाम् प्राप्तस्य । **सौभाग्यम्** ऐश्वर्यम् । **आत्मनः** स्वस्य **यशसः** कीर्तेः ।

हिन्दी-व्याख्या—मातलि विषय बदल रहा है, क्योंकि आगे विशेष वर्णनीय वस्तु दिख गई है । वर्णन आगे के पद्य में है ।

हिन्दी-अनुवाद—ये देवता देवलोक की सुन्दरियों के अङ्गराग से (बनाने के बाद) बचे हुये

राजा—मातले असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता मया न लक्षितः स्वर्गमार्गः। कतरस्मिन् मरुतां पथि वर्तामहे।

मातलिः—त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मि।

रंगों से कल्पलता (वृक्ष) से प्राप्त वस्त्रों पर गाने के योग्य अर्थसमूह सोचकर तुम्हारी जीवन कथा लिखते हैं।

अन्वय—अमी दिवौकसः सुरसुन्दरीणाम् विच्छित्तिशेषैः वर्णैः कल्पलतांशुकेषु गीतक्षमम् अर्थजातम् विचिन्त्य त्वच्चरितम् लिखन्ति।

संस्कृत-टीका—**अमी** इमे। **दिवौकसः** सुराः। **सुरसुन्दरीणाम्** अप्सरसाम्। विच्छित्तेः अङ्गरागात् शेषैः अवशिष्टैः। **वर्णैः** रङ्गैः। **कल्पलतायाः** कल्पवृक्षस्य **अंशुकेषु** वस्त्रेषु। **गीतक्षमम्** गातुम् योग्यम्। **अर्थानाम्** वस्तूनाम् **जातम्** समूहम्। **विचिन्त्य** विचार्य। तव **चरितम्** जीवनकथाम्। **लिखन्ति**।

हिन्दी-व्याख्या—विच्छित्ति, अङ्गराग (अंगों को रँगने के रंग) हैं जो (साधन) है। कल्पवृक्ष के द्वारा प्रदान किये गये वस्त्र आधार हैं। देवता कर्ता (लिखने वाले) हैं। इस तरह कर्त्ता, साधन और आधार सभी विशिष्ट हैं। "अर्थ-जात" तब संज्ञा माना जायेगा और इससे यह अर्थ निकलेगा कि सारी जीवन-कथा लिखना असम्भव है, अतः उसके वे अंश, जो विशेष रूप से गेय या सराहनीय हैं, सोच-सोचकर लिखे जा रहे हैं। बहुव्रीहि समास मानकर "अर्थों (घटनाओं) का जात (समूह) है जिसमें" (अर्थानाम् जातम् यत्र तत्) विग्रह कर इसे "चरित" का विशेषण भी बना सकते हैं: तब "गीतक्षमं" पद इसका विशेषण न होकर "चरित" का ही विशेषण हो जायेगा। यह ध्वनित होता है कि देवता आपकी जीवन-गाथा लिखने के लिये कल्प-लता के दिये वस्त्रों और अप्सराओं के अङ्गराग ही योग्य समझते हैं, साधारण पत्र व स्याही को नहीं।

छन्द—उपजाति (२.७ द्रष्टव्य)।

अलङ्कार—उदात्त, परिणाम तथा अनुप्रास (श्रुति और वृत्ति)।

हिन्दी अनुवाद—राजा—मातलि, पिछले दिन असुरों को मारने के लिये उत्सुक होकर आकाश पर चढ़ते हुए मैंने स्वर्ग-पथ नहीं देखा था। (हम) किस वायु-मार्ग में हैं।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **मातले** (संबुद्धौ)। **असुराणाम्** दानवानाम् **संप्रहारार्थम्** नाशार्थम् **उत्सुकेन** उत्कण्ठेन। **पूर्वेद्युः** गते दिवसे। **दिवम्** आकाशम्। **अधिरोहता** आरोहणम् कुर्वता। **मया**। **न**। **लक्षितः** दृष्टः। **स्वर्गस्य** देवलोकस्य **मार्गः** पन्थाः। **कतरस्मिन्** कस्मिन्। **मरुताम्** वायूनाम्। **पथि** मार्गे। **वर्तामहे** विद्यामहे।

हिन्दी व्याख्या—किसी चिन्ता में डूबे रहने पर आस-पास की चीजों की ओर दृष्टि खुली रहने पर भी कुछ नहीं दिखता; दुष्यन्त राक्षसों की बात में इतने लीन थे कि आकाशमार्ग से स्वर्ग जाते समय राह के वायु-मार्ग उन्होंने देखकर भी नहीं देखे। यह लक्ष्य के प्रति तन्मयता है।

हिन्दी अनुवाद—मातलि इस मार्ग को उस परिवह वायु का मार्ग कहा जाता है जो आकाश

तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं
वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥ ६ ॥

राजा—मातले ! अतः खलु सबाह्यकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति (रथाङ्गमवलोक्य) मेघपदवीमवतीर्णौं स्वः ।

मातलिः—कथमवगम्यते ।

में स्थित गंगा को धारण करता है, और जो किरणें बाँटकर नक्षत्रों को घुमाता है; यह (मार्ग) (वामन अवतार में) विष्णु के दूसरे कदम (के रखने) से पाप-रहित है ।

अन्वयः—द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कम् इमम् (मार्गम्) तस्य परिवहस्य वायोः मार्गम् (विज्ञाः) वदन्ति यः गगनप्रतिष्ठाम् त्रिस्रोतसम् वहति प्रविभक्तरश्मि च ज्योतींषि वर्तयति ।

संस्कृत-टीका—**द्वितीयः** च असौ **हरेः** वामनावतारे विष्णोः **विक्रमः** पदक्षेपः तेन निर्गतम् **तमः** पापम् यस्मात् तादृशम् । **इमम्** एतम् (मार्गम्) । **तस्य** (वक्ष्यमाणस्य) **परिवहस्य** (एतन्नामकस्य) । **वायोः** पवनस्य । **मार्गम्** पन्थानम् । (विज्ञाः) **वदन्ति** कथयन्ति । **यः** । **गगने** नभसि **प्रतिष्ठा** स्थितिः यस्याः तादृशीम् । **त्रिस्रोतसम्** गङ्गाम् । **वहति** धारयति । **प्रविभक्ताः** **रश्मयः** किरणाः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा **ज्योतींषि** नक्षत्राणि । **वर्तयति** परिभ्रमयति ।

हिन्दी व्याख्या—सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि और विष्णुपुराण के अनुसार उक्त मार्ग "प्रवह" होना चाहिये पर ब्रह्माण्डपुराण और वायुपुराण के अनुसार "परिवह" नाम ठीक है । राजा बलि से ३ पग धरती का दान लेकर वामन-अवतार में विष्णु भगवान् ने दूसरे पग से आकाश नापा था ।

छन्द—१.८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—उदात्त और अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—मातलि, इसीलिये इन्द्रियों के साथ मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न है (चकवे को देखकर) । हम दोनों मेघ-मार्ग में उतर आये हैं ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । (हे) **मातले** । **अतः** अनेन कारणेन । **खलु** एव । **बाह्यानि** च तानि **करणानि** इन्द्रियाणि च तैः सह वर्तमानः । **मम** । **अन्तरात्मा** आन्तरम् करणम् । **प्रसीदति** मोदते । **रथाङ्गम्** चक्रवाकम् । **अवलोक्य** दृष्ट्वा । **मेघानाम्** जलधराणाम् **पदवीम्** मार्गम् । **अवतीर्णौ** । **स्वः** ।

हिन्दी-व्याख्या—सांख्य के अनुसार ५ ज्ञानेन्द्रियां (कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका) तथा ५ कर्मेन्द्रियां (मलेन्द्रिय, मूत्रेन्द्रिय, हाथ, पांव और वाणी) हैं । ये १० इन्द्रियां बाह्य करण हैं । आन्तर करण या अन्तरात्मा में मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त का समावेश है ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—कैसे पता चला ।

संस्कृत-टीका—**मातलिः** । **कथम्** केन प्रकारेण । **अवगम्यते** ज्ञायते (भवता) ।

राजा—अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-
हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते सीकरक्लिन्ननेमिः ॥ ७ ॥

मातलिः—क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते ।

राजा—(अधोऽवलोक्य) वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः । तथा हि—

हिन्दी-अनुवाद—राजा—आपका जल कण से भींगे रिमवाला यह रथ तीलियों के छिद्रों से निकल रहे चातकों और बिजलियों की चमक से घिरे घोड़ों से उन बादलों के ऊपर (अपना) जाना सूचित कराता है जिनके उदर वारि-गर्भ (वाले) हैं (उदर के अन्दर पानी है)।

अन्वयः—सीकरक्लिन्ननेमिः अयम् ते रथः अरविवरेभ्यः निष्पतद्भिः चातकैः अचिरभासाम् च तेजसा अनुलिप्तैः हरिभिः वारिगर्भोदराणाम् घनानाम् उपरि गतम् पिशुनयति ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । सीकरैः जलकणैः क्लिन्नाः आर्द्राः नेमयः चक्रप्रान्ताः यस्य सः । अयम् पुरः दृश्यमानः । ते तव । रथः अराणाम् चक्राङ्गानाम् । विवरेभ्यः छिद्रेभ्यः । निष्पतद्भिः निःसरद्भिः । चातकैः पक्षिविशेषैः (च) । अचिरभासाम् विद्युताम् । च । तेजसा दीप्त्या । अनुलिप्तैः परीतैः । हरिभिः अश्वैः । वारि जलम् गर्भे अन्तः यस्य तादृशम् उदरम् येषाम् तादृशानाम् । घनानाम् जलदानाम् । उपरि । गतम् गमनम् । पिशुनयति सूचयति ।

हिन्दी-व्याख्या—सुने या पढ़े अनुसार लक्षणों को देखकर राजा समझ जा रहे हैं कि रथ बादलों के ऊपर है । चातक बादलों में ही है क्योंकि वे जमीन पर गिरा पानी न पीकर बीच में ही बरस रहा पानी पीते हैं । मल्लिनाथ के अनुसार, जमीन पर गिरा पानी उसके लिये हितकर नहीं है ('सर्वसहापतितमम्बु न चातकस्य हितमिति शास्त्रात्') अर, हरि, सीकर, क्लिन्न और नेमि क्रमशः रिम (पहिये के किनारे का भाग) घोड़े, जल कण, गीला व तीली (Spoke) के लिये आये हैं । "गतम्" का अर्थ गति या गमन है । "क्त" प्रत्यय से बनने वाले शब्द भाववाचक संज्ञा भी होते हैं; तब नपुंसकलिङ्ग में आते हैं (नपुंसके भावे क्तः) "गर्भ" और "उदर" में से एक पद हटाया जा सकता है । "गर्भ" का अर्थ "अभ्यन्तर" (अन्दर) और "उदर" का अर्थ "पेट" लगाकर बैठाया जा सकता है ।

छन्द—१।१० द्रष्टव्य ।

अलंकार—हेतु, काव्यलिङ्ग, संकर और अनुप्रास (छेक तथा वृत्ति)

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—क्षण भर बाद आयुष्मान् अपने अधिकार क्षेत्र में होंगे ।

संस्कृत-टीका—मातलि । क्षणात् (ऊर्ध्वम्) । आयुष्मान् । स्वस्य निजस्य अधिकारः शासनम् यस्याम् सा स्वाधिकारा सा च सा भूमिः क्षेत्रम् च । वर्तिष्यते प्राप्स्यति ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (नीचे देखकर)—तेजी से उतरने से मनुष्य-लोक ऐसा दिखता है कि देखने में अचरज हो ।

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्वन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः ।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥ ८ ॥

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **अधः** नीचैः । **अवलोक्य** दृष्ट्वा । **वेगेन** तीव्रगत्या **अवतरणात् आश्चर्यम्** विस्मयः **दर्शने** यस्य तादृशः । **संलक्ष्यते** दृश्यते। **मनुष्याणाम्** मर्त्यानाम् **लोकः** जगत् । **तथा हि** उदाह्रियते ।

हिन्दी व्याख्या—"अवलोक्य" के "अव" उपसर्ग से "नीचे" अर्थ अपने आप निकल आता है, अतः "अधः" देने की जरूरत नहीं है; ऐसा इसलिये किया गया है क्योंकि "अव" का यह अर्थविशेष नहीं रह गया है जिससे "अवलोक्य" का अर्थ "देखकर" ही होता है; "नीचे देखकर" नहीं "मनुष्यलोक" कहकर राजा ने अभी-अभी देखे स्वर्ग से उसे अलग किया है; फिर मातलि दूसरे लोक का है जिससे "मेरे" या "हमारे" कहकर अपना-परायापन नहीं दिखाया गया है: नाम ले लेना ऐसे स्थल पर अधिक अच्छा है ।

हिन्दी अनुवाद—देखो, उन्मग्न (डुबकी के बाद सिर बाहर निकाल) हो रहे पर्वतों की चोटी से पृथ्वी उतर-सी रही है। तने प्रगट होने से वृक्ष, पत्तों के मध्य हुई अतिशय विलीनता का त्याग कर रहे हैं। दुबलेपन के कारण जिनका पानी अदृश्य हो गया था (पानी ऊपर से नहीं दिखता था), वे नदियाँ विस्तार के कारण प्रगट हो रही हैं और संसार मेरे पास लाया जा रहा है मानों उसे कोई फेंक रहा है ।

अन्वयः—पश्य मेदिनी उन्मज्जताम् शैलानाम् शिखरात् अवरोहति इव । पादपाः स्कन्धोदयात् पर्णस्वन्तरलीनताम् विजहति । तनुभावनष्टसलिलाः आपगाः संतानैः व्यक्तिम् भजन्ति । भुवनम् उत्क्षिपता केनापि मत्पार्श्वम् आनीयते इव ।

संस्कृत टीका—**पश्य** विलोकय । **मेदिनी** पृथ्वी । **उन्मज्जताम्** किञ्चित् दृश्यानाम् । **शैलानाम्** गिरीणाम् । **शिखरात्** शृङ्गात् । **अवरोहति** अधो याति । **इव** इति प्रतीयते । **पादपाः** वृक्षाः । **स्कन्धस्य** प्रकाण्डस्य उदयात् प्राकट्यात् पर्णेषु सुष्ठु अतिशयेन **अन्तरे** मध्ये **लीनताम्** विलयम् । **विजहति** त्यजन्ति । **तनोः** (दुर्बलस्य) **भावः** तनुता कृशता तेन **नष्टम्** अदृश्यम् **सलिलम्** जलम् यासां तादृश्यः । **आपगाः** सरितः । **संतानैः** विस्तारैः । **व्यक्तिम्** प्राकट्यम् । **भजन्ति** यान्ति । **भुवनम्** संसारः । **उत्क्षिपता** अस्यता । **केनापि** केनचित् जनेन । **मम पार्श्वम्** समीपे । **आनीयते** । **इव** ।

हिन्दी व्याख्या—उन्मज्जन और प्राकट्य क्रमशः कारण और कार्य हैं और पहला लक्षक तथा अपर लक्षित है । अल्पता ध्वनित होती है । "शिखर" में एकवचन जाति को सूचित करता है (जात्येकवचनम्) "उदय" पद प्राकट्य लक्षित कर प्राकट्य को अतिशय ध्वनित करता है । कवि की कल्पना-शक्ति का चमत्कार ऐसे स्थलों पर कसौटी पर चढ़ता है । पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से

मातलिः—साधु दृष्टम् (सबहुमानमवलोक्य) अहो उदाररमणीया पृथिवी।

राजा—मातले ! कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिस्यन्दः सान्ध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते ।

बाहर गया व्यक्ति जब पृथ्वी को देखता है तब उसे ठीक ऐसा ही अनुभव होता है। स्पुतनिक, अपोलो आदि के यात्रियों के वर्णन से यह वर्णन हूबहू मिलता है। पर्वत, वृक्ष, नदियाँ, उनका जल और पृथ्वी उससे बड़े-बड़े स्थान ही ऊपर से थोड़े-बहुत दिख सकते हैं। तेज यान पर चलने वाले को अपना चलना पता नहीं लगता, सामने के दृश्य का चलना प्रतीत होता है। यह उलटा अनुभव रेल में होता है जब बगल की चीजें (तार आदि) चलती दिखती हैं। सामने के दृश्य इसी प्रकार, निकट आते दिखेंगे यदि ऊपर से नीचे चला जाय।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित। द्रष्टव्य १।१४

अलंकार—उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, काव्यलिङ्ग, संसृष्टि और अनुप्रास (छेक, वृत्ति व श्रुति)।

हिन्दी अनुवाद—मातलि—बहुत अच्छा ! देख लिया । (बहुत आदर के साथ देखकर) धरती कितनी विशाल और सुन्दर है ।

संस्कृत टीका—**मातलिः**। **साधु**। **दृष्टम्** अवलोकितम्। बहुः प्रचुरः च सः मानः आदरः च तेन सह। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। **अहो** (आश्चर्य)। **उदारा** विशाला च सा **रमणीया** सुन्दरा च, **पृथिवी** धरा।

हिन्दी व्याख्या—"साधु" और "अहो" के प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं। "अहो" का प्रयोग करने पर "कितनी" और "है" को लिखने की जरूरत नहीं है। "उदार" का अर्थ "बड़े आकार का" है; उससे "महान्" अर्थ लक्षित होता है। "पृथिवी" और "पृथ्वी" दोनो शब्द ठीक हैं।

हिन्दी अनुवाद—राजा—मातलि, यह कौन पर्वत दिखाई पड़ रहा है जिसने पूर्व और अपर दिशा (पश्चिम) के समुद्रों में प्रवेश किया है, पिघले सोने के प्रवाह-सा है तथा सायंकालीन बादलों की अर्गला सा है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। (हे) **मातले**। **कतमः** कः। **अयम्** पुरतः दृश्यमानः। **पूर्वः** च **अपरः** (पूर्वेतरः पश्चिमः इति यावत्) च **समुद्रौ** सागरौ च तयोः **अवगाढः** प्रविष्टः। **कनकस्य** स्वर्णस्य **रसस्य** द्रवस्य **निष्यन्दः** प्रवाहः। **सान्ध्यः** सायंकालीनः। **इव**। **मेघः** जलधरः **परिघः** अर्गलः इव। **सानुमान्** पर्वतः। **आलोक्यते** दृश्यते।

हिन्दी-व्याख्या—बहुत ऊपर से देखने से पृथ्वी इतनी छोटी हो जाती है कि पूर्व और पश्चिम के समुद्र एक साथ दिखते हैं जैसे यहाँ से सूर्य आदि के सारे किनारे दिखते हैं। आगे ही पता चल जायेगा कि यह हेमकूट पर्वत है जहाँ की चोटियाँ सोने की हैं; दूर से सोने की, विशेषतः प्रकाश में चमक रहे सोने को, देखने से पिघले सोने का प्रवाह सा लगता है यहाँ भी सम्भव है कि सोने की भूमि पर बह रहा सामान्य पानी ऊपर से तरल स्वर्ण के प्रवाह-सा दिख रहा हो। सायंकाल नी मेघ

मातलिः—आयुष्मन् ! एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम् । पश्य—

स्वायंभुवमरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥९॥

लाल और पीला होता है । यही चमकदार सोने का रंग है, अतः सांध्य मेघ की उपमा दी गई है । मार्कण्डेय पुराण (५४।३) के अनुसार पूर्व-पश्चिम-समुद्र में प्रत्येक वर्ष-पर्वत प्रविष्ट है (अवगाढा उभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ) ।

हिन्दी अनुवाद—मातलि—आयुष्मन्, यही हेमकूट नामक किंपुरुष-वर्ष का पर्वत है जो तपस्यासाधन का स्थान है । देखिये !

संस्कृत-टीका—**मातलिः** । (हे) आयुष्मन् । **एषः** । समीपवर्ती । **खलु** एव । **हेमकूटः** । **नाम** (वाक्यालङ्कारे) । किंपुरुष (वर्षस्य) **पर्वतः** गिरिः । **तपसः** तपस्यायाः **संसिद्धिः** साधनम् यत्र तादृशम् च तत् **क्षेत्रम्** स्थानम् च । **पश्य** विलोकय ।

हिन्दी व्याख्या—पौराणिक भूगोल के अनुसार जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च और शाक नाम के ७ द्वीपों से यह संसार बना है । जम्बुद्वीप के अन्तर्गत ९ वर्ष (देश) हैं जो कुरु, हिरण्मय, रम्यक, इलावृत, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किन्नर (या किम्पुरुष) और भारत हैं । ये वर्ष, वर्ष-पर्वतों से बँटे हैं जिनके नाम हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत और शृङ्गी हैं । भारतवर्ष के उत्तर में किंपुरुष वर्ष है और दोनों के बीच में हेमकूट पर्वत सीमा-रेखा है । जम्बूद्वीप लक्ष-योजन का माना गया है (विष्णुपुराण) भारतवर्ष से आरम्भ कर किम्पुरुषवर्ष और हरिवर्ष तक की चर्चा करता है और अन्तिम को मेरु पर्वत के दक्षिण में बताता है—"भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज" कुछ लोग हरिवर्ष को यूरोप मानते हैं । किंपुरुष या किन्नर एक देव जाति मानी जाती है । "किम्" का अर्थ कुत्सित (कुत्सितः पुरुषः किंपुरुषः) माना जाता है, वह इसलिये क्योंकि इनके सिर या धड़ में से एक भाग पुरुष का और शेष घोड़े का होता है । विष्णुपुराण जहाँ भारतवर्ष के बाद किम्पुरुष-वर्ष बताता है, वहाँ हिमालय के बाद हेमकूट और उसके दक्षिण में निषध को बताता है :—हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे । "संसिद्धि (=सफलता)" से यह सूचित होता है कि यहाँ किया तप सफल होता है ।

हिन्दी अनुवाद—स्वयंभू (ब्रह्मा) के पुत्र मरीचि से जो प्रजापति (कश्यप) उत्पन्न हुये वे देवताओं तथा राक्षसों के पिता यहाँ पत्नी के साथ तप कर रहे हैं ।

अन्वय—यः प्रजापतिः स्वायंभुवमरीचेः प्रबभूव सः सुरासुरगुरुः अत्र सपत्नीकः (सन्) तपस्यति ।

संस्कृत टीका—**यः** । **प्रजापतिः** (कश्यपः) **स्वायंभुवः** स्वयंभुवः ब्रह्मणः सम्बन्धितः **मरीचेः** । **प्रबभूव** जातः । **सः सुराः** देवाः च **असुराः** राक्षसाः च तेषाम् **गुरुः** पिता । **अत्र** अस्मिन् (हेमकूटे) । **पत्न्या** भार्यया सह वर्तमानः । **तपस्यति** तपः आचरति ।

राजा—तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि । प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि ।

हिन्दी व्याख्या—"स्वयंभू" का अर्थ है जो अपने-आप उत्पन्न हुये हों। यह ब्रह्मा का पर्यायवाची है। संसार बनने पर इसे बसाने के लिये ब्रह्मा ने पुत्रों की इच्छा की, मन की इच्छा से ही पुत्र हुये, उन्हें मन से उत्पन्न होने के कारण मानस पुत्र कहा गया। प्रजा (सन्तान) के आदि-कारक होने से वे प्रजापति कहलाये। इनमें मरीचि एक हैं। उनके पुत्र कश्यप का नाम महाभारत (आदिपर्व ६६।१० व शांतिपर्व २०६।२०), विष्णुपुराण (१।७।४-६), वायुपुराण (उत्तर भाग ४।४४।४७) और मनुस्मृति (७।३४।३५) में प्रजापतियों की गणना में नहीं है। इन प्रजापतियों की संख्या महाभारत और वायुपुराण में ६-७ तक रहने के बाद विष्णुपुराण में ९ और मनुस्मृति में १० हो गई। वायुपुराण (उत्तरभाग ४।४४।३२, ३५ व ५४) ने कर्दम, कश्यप, शेष, विक्रान्त, सुश्रवा आदि को भी प्रजापतियों में सम्मिलित कर लिया है—

अपरे प्रजानां पतयस्तान् शृणुध्वमतन्द्रिताः ॥
कर्दमः कश्यपः शेषो विक्रान्तः सुश्रवास्तथा ।
इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वराः ॥

लगता है कि प्रजापति के पुत्र होने और सृष्टि के प्रमुख जनक होने से बाद में इन्हें भी प्रजापति माना गया। अपने चाचा दक्ष प्रजापति की ६० कन्याओं में से १३ से कश्यप का ब्याह हुआ और उनकी सन्तानों में मनुष्य ही नहीं सर्प, पक्षी आदि प्राणी भी हुए। उस समय आजकल को तरह विचार में मातृ-पक्ष में ५ से ७ पीढियों तक एक गोत्र होने का निषेध विकसित नहीं हो पाया था क्योंकि उन्होंने १३ चचेरी बहिनों से शादी की थी। विलियम ने 'हिन्दू थियेटर' (जिल्द ११ के पृष्ठ १२) में कुछ लोगों का यह मत उद्धृत किया है कि मध्य एशिया में जाने वाली जाति को "कश्यप" कहकर उसे एक जीवन्त प्राणी बना दिया गया है। कश्यप, कोह, कास, गौकासस, कास्पियन तथा काश्मीर शब्दों में अपभ्रंश रूप में विद्यमान है। ये (कश्यप), राजा के मित्र इन्द्र (भगवान् विष्णु, सूर्य आदि) के पिता हैं, अतः राजा ने इनके दर्शन की विशेष उत्सुकता आगे चलकर दिखाई है। "तपस्यति" क्रिया तपस् संज्ञा से क्यङ् प्रत्यय लगाकर बनाई गई है। उसका-सा आचरण करने के अर्थ में संस्कृत में हर संज्ञा से क्रिया बन जाती है। ये क्रियाएँ नाम-धातु कहलाती हैं।

हिन्दी अनुवाद—राजा—तो कल्याण अनुल्लंघनीय है। श्रीमान् की परिक्रमा करके जाना चाहता हूँ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः। तेन हि तर्हि। अनतिक्रमणीयानि अनुल्लङ्घनीयानि। श्रेयांसि कल्याणानि। प्रदक्षिणीकृत्य। भगवन्तम् श्रीमन्तम्। (गृहम्) गन्तुम् यातुम्। इच्छामि कामये।

हिन्दी व्याख्या—देवता ब्रह्मा की सन्तान होने और इन्द्र, विष्णु, सूर्य आदि देवताओं के

मातलिः—प्रथमः कल्पः । (नाट्येनावतीर्णौ)

राजा—(सविस्मयम्)

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥ १० ॥

पिता होने से कश्यप भी देवता माने जा सकते हैं । मनुस्मृति (४।३९) के अनुसार मृदङ्ग, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहे और वृक्षों की परिक्रमा करनी चाहिये—

मृदङ्गं दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥

हिन्दी अनुवाद—प्रस्ताव (बात) उत्तम है । (अभिनय-पूर्वक उतरते हैं ।)

संस्कृत टीका—**मातलिः** । **प्रथमः** उत्तमः । **कल्पः** पक्षः । **नाट्येन** अभिनयेन **अवतीर्णौ** ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (अचरज के साथ)—पृथ्वी का स्पर्श न करने के कारण पहियों के रिम आवाज नहीं करते, धूल उड़ती हुई नहीं दिखती और रोक न होने से उतारा होने पर भी आपका रथ उतारा हुआ नहीं लगता ।

अन्वयः—अभूतलस्पर्शतया रथाङ्गनेमयः उपोढशब्दाः न । न च रजः प्रवर्तमानम् दृश्यते । अनिरुद्धः तव रथः अवतीर्णः (सन्) अपि (तथा) न लक्ष्यते ।

संस्कृत-टीका—अविद्यमानः **भूतलस्य** भूमेः **स्पर्शः** यस्य तादृशः (रथः) तत्ता तया । **रथाङ्गस्य** चक्रस्य **नेमयः** प्रधयः । **उपोढः** कृतः **शब्दः** ध्वनिः याभिः तादृश्यः । **न** । **न च** । **रजः** धूलिः । **प्रवर्तमानम्** उड्डीयमानम् , **दृश्यते** विलोक्यते । न निरुद्धम् निरोधः तत्तः (अप्रतिबन्धात्) । **तव** । **रथः** स्यन्दनः । **अवतीर्णः** (सन्) । **अपि** । (तथा) न । **लक्ष्यते** प्रतीयते ।

हिन्दी-व्याख्या—पहिये की परिधि (रिम) की रगड़ जमीन पर लगने से आवाज होती है, उसी से धूल उठती है और रथ जब जमीन की रोक पाता है तब पृथ्वीवासी को पता चलता है कि रुक गया । दिव्य (देवताओं का) रथ देवताओं की भाँति ही रुकने पर भी जमीन को नहीं छूता, उसके कुछ ऊपर ही रहता है । यह, शायद, इसलिये जरूरी है क्योंकि देवता पृथ्वी नहीं छूते; रथ या विमान पृथ्वी छुएगा तो उस पर बैठे होने से वे भी पृथ्वी छू लेंगे । देवता पृथ्वी नहीं छू सकते, इस विषय पर वाल्मीकिरामायण (सर्ग १८ से १९) में आया है—

"पृथ्वीं नास्पृशत पद्भ्याम्......।"

महाभारत वनपर्व (५१।२५) में भी यही बात है—"अस्पृशतः क्षितिम्" ।

यहाँ भूमि से ऊपर चलने वाले यान की अच्छाइयाँ बताकर मानव की सोयी हुई लालसा को उभारा गया है कि कैसे इस तरह का यान प्राप्त हो । राजा उतरकर रथ को हवा में लटका देखते हैं तो उन्हें अचरज होता है ।

छन्द—१।१८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—विशेषोक्ति, अनुप्रास (श्रुति) व विरोधाभास ।

मातलिः—एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः ।

राजा—मातले कतमस्मिन्प्रदेशे मारीचाश्रमः ।

मातलिः—(हस्तेन दर्शयन्)—

वल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥११॥

हिन्दी अनुवाद—मातलि—इन्द्र और आयुष्मान् (आप) में इतना ही अन्तर है ।

संस्कृत टीका—**मातलिः एतावान्** इयान् । **एव** केवलम् । **शतक्रतोः** इन्द्रस्य । **आयुष्मतः** (भवतः), **च** । विशेषः अन्तरम् ।

हिन्दी व्याख्या—इन्द्र का रथ भूमि नहीं छूता और राजा का छूता है, बस यही अंतर है; वीरतादि में दोनों बराबर हैं, यह भाव है ।

अलङ्कार—व्यतिरेक ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(हे) मातलि, किस स्थान में मरीचि-पुत्र (कश्यप) का आश्रम है ?

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **मातले** । **कतमस्मिन्** कस्मिन् । **प्रदेशे** स्थाने । **मारीचस्य** मरीचिनाम्नः (प्रजापतेः) जातस्य । **आश्रमः** ।

हिन्दी अनुवाद—मातलि (हाथ से दिखता हुआ)—

जहाँ ठूँठ के समान स्थिर वे ऋषि (कश्यप) सूर्य-मण्डल की ओर मुख करके स्थित हैं । उनका शरीर बाँबी के ऊपर भाग में गड़ा है, उनकी छाती से साँप की केंचुल लिपटी है, उनका गला, पुरनी लताओं के रेशों की फांस से बुरी तरह कसा हुआ है तथा वे जटा का घेर धारण किये हुए हैं जो कंधे तक फैला है उसमें पक्षियों के घोंसले फैले हुए हैं ।

अन्वयः—यत्र वल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिः संदष्टसर्पत्वचा उरसा कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेन अत्यर्थसंपीडितः अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितम् जटामण्डलम् बिभ्रत् स्थाणुः इव अचलः असौ मुनिः अर्कबिम्बम् अभि स्थितः ।

संस्कृत-टीका—(तस्मिन् प्रदेशे मरीचाश्रमः) **यत्र** यस्मिन् (प्रदेशे) । **वल्मीकस्य** पिपीलिका-कृतमृत्पुञ्जस्य **अग्रे** उपरि **निमग्ना मूर्तिः** शरीरम् यस्य सः । **संदष्टाः** लग्नाः **सर्पस्य** अहेः त्वचः निर्मोकाः यत्र तेन **उरसा** वक्षसा (उपलक्षितः) । **जीर्णाः** शुष्काः च ताः **लताः** वल्लयः च तासाम् **प्रतानानाम्** तन्तूनाम् **वलयेन** वेष्टनेन । **अत्यर्थम्** नितान्तम् **संपीडितः** बद्धः । **अंसौ** स्कन्धौ व्याप्नोति इति **अंसव्यापि** । **शकुन्तानाम्** खगानाम् **नीडः** कुलायः । **निचितम्** व्याप्तम् **जटानाम् मण्डलम्** समूहम् **बिभ्रत्** धारयन् । **स्थाणुः** वृक्षकाण्डः । **इव** । **अचलः** स्थिरः । **असौ** दूरे

राजा—नमस्ते कष्टतपसे ।

मातलिः (संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा)—महाराज ! एतावदितिपरिवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः ।

राजा—स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम् । अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि ।

मातलिः—(रथं स्थापयित्वा) अवतरत्वायुष्मान् ।

दृश्यमानः । मुनिः ऋषिः (कश्यपः) । अर्कस्य सूर्यस्य बिम्बम् मण्डलम् अभि लक्ष्यीकृत्य । स्थितः ।

हिन्दी व्याख्या—"निमग्न" से ध्वनित होता है कि तपस्या करते हुए बहुत समय हो गया है जिससे चींटियों के द्वारा लाई गई मिट्टी ने उनके शरीर का अधिकांश ढक दिया है । "जीर्ण" और "वलयः" भी ध्वनित करते हैं कि तप आरंभ किये बहुत समय बीत गया है । पक्षियों के घोंसले भी इसी कारण लग गये हैं । "स्थाणु" उस वृक्ष को कहते हैं जिसमें पत्ते, फूल और फल न हों । हवा का असर उस पर विशेष न होने से वह नहीं हिलता । चींटियाँ, सर्प और चिड़ियाँ अपनी हानि न देखकर वहाँ आती-जाती हैं । सारे विशेषण स्थाणु के साथ भी लगाये जा सकते हैं; तब उरस् का अर्थ मध्य भाग कण्ठ के समीप का भाग (उपकण्ठ) और अंस का ऊपरी भाग होगा ।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य ।

अलंकार—परिकर, श्लेष, उपमा और अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—कठोर तप वाले, आपको प्रणाम है ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः । नमः नमामि । ते तुभ्यम् (कश्यपाय) । कष्टम् क्लेशप्रदम् तपः तपस्या यस्य तादृशाय ।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ दूर से ही प्रणाम किया गया है जिस तरह देव-मूर्ति को करते हैं ।

हिन्दी अनुवाद—मातलि (रथ की लगाम रोककर) राजन् ये हम दोनों प्रजापति (कश्यप) के आश्रम में प्रविष्ट हो गये हैं जहाँ अदिति के द्वारा पाला गया मन्दार का वृक्ष है ।

संस्कृत-टीका—मातलिः । संयताः नियमिताः प्रग्रहाः रश्मिरज्जवः यस्य तादृशम् । रथम् स्यन्दनम् । कृत्वा विधाय । महान् च असौ राजा नृपः च तत्संबुद्धौ । एतौ (आवाम्) । अदित्या कश्यपपत्न्या परिवर्धितः पालितः मन्दारवृक्षः यत्र तादृशम् । प्रजापतेः (कश्यपस्य) । आश्रमः । प्रविष्टौ स्वः ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा-स्वर्ग से (भी) ज्यादा शांति की जगह है । लगता है, मैंने अमृत के सरोवर में प्रवेश किया है ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः । स्वर्गात् सुरपुरात् । अधिकतरम् । निर्वृतेः शान्तेः स्थानम् । अमृतस्य सुधायाः ह्रदम् सरः । इव । अवगाढः प्रविष्टः । अस्मि ।

हिन्दी अनुवाद—मातलि (रथ रोककर)—आयुष्मान् उतर जायें ।

राजा—(अवतीर्य) मातले ! भवान् कथमिदानीम् ।

मातलिः—संयन्त्रितो मया रथः । वयमप्यवतरामः । (तथा कृत्वा) इत आयुष्मन् (परिक्रम्य) दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः ।

राजा—ननु विस्मयादवलोकयामि ।

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया ।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयः तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥१२॥

संस्कृत-टीका—मातलिः । रथम् स्यन्दनम् । स्थापयित्वा । अवतरतु आयुष्मान् ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (उतरकर)—मातलि, आप अब क्या करेंगे ?

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । अवतीर्य । (हे) मातले । भवान् । कथम् किम् । इदानीम् अतः परम् ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा ने सोचा कि मातलि शायद साथ न जाना चाहें, क्योंकि रथ को अकेला छोड़ना कदाचित् ठीक न हो ! "आप भी साथ देने का कष्ट करें" कहने में संकोच के कारण इस तरह कहा गया है जिससे पता चल जाय कि चलना चाहते हैं या नहीं वैसी स्थिति में प्रार्थना की आवश्यकता ही नहीं रह जाती । इसके पूर्व एक स्थान पर उतरे नहीं थे; केवल उतरने की तैयारी की थी (अभिनय किया था) ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—मैंने रथ का नियंत्रण भली भाँति कर लिया है । मैं भी उतरता हूँ । (वैसा कर) इधर से आयुष्मान् । (घूमकर) पूज्य मुनियों के तपोवन के स्थल देखें ।

संस्कृत-टीका—मातलिः । संयन्त्रितः सम्यक् स्थापितः । मया । रथः स्यन्दनः । वयम् अहम् । अपि । अवतरामः अवतरामि । तथा पूर्वोक्तप्रकारेण । कृत्वा विधाय (अवतीर्य) । इतः अनेन मार्गेण (आगच्छतु) । आयुष्मान् । परिक्रम्य मण्डलाकृति चलित्वा । दृश्यन्ताम् विलोक्यन्ताम् , अत्रभवताम् पूज्यानाम् । ऋषीणाम् मुनीनाम् । तपसे तपस्यार्थं वनस्य विपिनस्य भूमयः प्रदेशाः ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा सचमुच अचरज से देख रहा हूँ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । ननु निश्चयेन । विस्मयात् आश्चर्येण । अवलोकयामि पश्यामि ।

हिन्दी अनुवाद—कल्पवृक्ष से युक्त जंगल में (प्राणों के लिए अवश्य करणीय जीविका प्राण-वायु से की जा रही है सोने के कमलों के पराग से पिङ्गल (पीले लाल या सुनहरे) वर्ण के जल में धर्म (पुण्य) के लिए की गई स्नान-विधि संपादित की जा रही है, मणियों के शिलापट्टों पर ध्यान किया जा रहा है और देवाङ्गनाओं के सामीप्य में इन्द्रिय-निग्रह किया जा रहा है (आशय यह है)

मातलिः—उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्य आकाशे) अये वृद्धशाकल्य किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः। किं ब्रवीषि। दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयतीति।

कि दूसरे (पृथ्वी के) ऋषि जो (कल्पवृक्ष, स्वर्ण-कमल आदि) तपस्याओं से चाहते हैं, ये (ऋषि) उनके रहने पर (भी) तप करते हैं।

अन्वय—सत्कल्पवृक्षे वने उचिता (प्राणानाम्) वृत्तिः प्राणानाम् अनिलेन (क्रियते)। काञ्चनपद्मरेणुकपिशे तोये धर्माभिषेकक्रिया (विधीयते)। रत्नशिलातलेषु ध्यानम् (संपाद्यते)। विबुधस्त्रीसन्निधौ (च) समयः (अभ्यस्यते)। अन्यमुनयः तपोभिः यत् काङ्क्षन्ति तस्मिन् (सति अपि) अमी (मुनयः) तपस्यन्ति।

संस्कृत-टीका—**सन्** विद्यमानः **कल्पवृक्षः** यत्र तादृशे **वने** विपिने **उचिता** अवश्यकर्त्तव्या, **प्राणानाम्** असूनाम्। **वृत्तिः** जीविका (धारणोपायः)। **प्राणानाम्** असूनाम्। **अनिलेन** पवनेन (प्राणवायुना) (क्रियते) **काञ्चनस्य** स्वर्णस्य **पद्मानाम्** कमलानाम् **रेणुभिः** रजोभिः **कपिशे** पिङ्गले (स्वर्णाभे)। **तोये** जले। **धर्माय** पुण्याय **अभिषेकस्य** स्नानस्य **क्रिया** विधिः (निर्वर्त्यते)। **रत्नानाम्** मणीनाम् **शिलातलेषु** प्रस्तरपट्टेषु। **ध्यानम्** समाधिः (विधीयते)। **विबुधस्त्रियः** अप्सरसः तासाम् सन्निधौ सामीप्ये। (च) **संयमः** इन्द्रियनिग्रहः (अभ्यस्यते)। **अन्ये** अपरे च ते मुनयः ऋषयः च। **तपोभिः** कृच्छ्रैः। **यत्** यानि यानि वस्तुनि (कल्पवृक्षस्वर्णपद्मादीनि)। **काङ्क्षन्ति** इच्छन्ति। **तस्मिन्** (सति अपि)। **अमी** इमे (मुनयः)। **तपस्यन्ति** तप्यन्ते।

हिन्दी-व्याख्या—प्राणों की रक्षा आवश्यक है, अतः हवा पीते हैं, अन्यथा उसकी भी कामना नहीं है। कल्पवृक्ष पास है पर उससे अच्छा भोजन नहीं मांगते। पद्म सोने का है तो पराग भी उसी रंग का है। स्नान, भोग (सुख) के लिए नहीं करते, बल्कि धर्म (मुनि-कर्त्तव्य) के लिए करते हैं। हेमकूट, देव-भूमि है, अतः वहां अप्सराएँ आती रहती हैं। पर इस सबके होने पर भी वे ध्यान, संयम आदि निर्बाध रूप से करते हैं। लोग कहा करते हैं कि न होने पर तो सभी संयमी बनते हैं, होने पर भी जो संयमी बन सके, वह संयमी है। यहाँ वही कठोर आदर्श है। अन्य ऋषि (पृथ्वी के) सकाम तप करते हैं, उनके तप का उद्देश्य कल्पवृक्षादि पाना होता है, पर ये ऋषि उनकी प्राप्ति हो जाने पर भी बैठे नहीं रहते तपस्या करते ही जाते हैं, यह वैशिष्ट्य है। उनके लिए 'भोजन शरीर के लिए' है, न कि 'शरीर भोजन के लिए'। स्वर्ण कमल-युक्त जल और साधारण जल में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि उद्देश्य स्नान मात्र करना है, सुन्दरता और सुगन्ध लेना नहीं। रत्न की पटियाएँ आधार मात्र हैं, सुख के लिए नहीं। कल्पवृक्ष और अप्सराएँ वस्तु-मात्र हैं, कामना के ईंधन नहीं। किसी प्राणी, विशेषतः स्त्री का साथ होने पर इन्द्रियों का संयम सध नहीं पाता, फिर अप्सराओं का साथ होने पर भी वे संयम साध लेते हैं। उनके धैर्य का अतिशय बताया गया है।

छन्द—१।१२ द्रष्टव्य।

अलंकार—विशेषोक्ति और अनुप्रास (छेक, श्रुति व वृत्ति)

हिन्दी-अनुवाद—महान् व्यक्तियों की इच्छा निश्चित ही ऊर्ध्वगामिनी होती है। (घूमकर

राजा—(कर्ण दत्वा)—अये प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः ।

मातलिः (राजानमवलोक्य)—अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान् यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि ।

राजा—यथा भवान् मन्यते । (इति स्थितः)

आकाश में) हे वृद्ध शाकल्य, श्रीमान् मरीचि पुत्र क्या कर रहे हैं ? तुम क्या कह रहे हो ? दक्ष की पुत्री (अदिति) के धर्म के विषय में पूछने पर महर्षियों की पत्नी के साथ उनको बता रहे हैं ।

संस्कृत-टीका—मातलिः । उत् उच्चैः सर्पति गच्छति इत्येवं शीला (उत्तरोत्तरम् वर्धमाना) । **खलु** निश्चयेन । **महताम्** महाजनानाम् । **प्रार्थना** इच्छा । **परिक्रम्य** मण्डलाकृति गत्वा । **आकाशे अये** भोः । **वृद्धः** जरन् च असौ **शाकल्यः** शाकलशाखापाठी च तत्सबुद्धौ **किम्** **अनुतिष्ठति** करोति । **भगवान्** श्रीमान् । **मारीचः** मरीचिपुत्रः (कश्यपः) । **किम्** । **ब्रवीषि** वदसि । **दाक्षायण्या** दक्षपुत्र्या (अदित्या) । **पतिव्रतानाम्** सतीनाम् **धर्मम्** कर्त्तव्यम् । **अधिकृत्य** (विषयीकृत्य) । **पृष्टः** । तस्यै (अदित्यै) । **महान्तः** श्रेष्ठाः च ते **ऋषयः** च तेषाम् **पत्नीभिः** भार्याभिः **सहितायै** युक्तायै (अदित्यै) । **कथयति** वदति । इति ।

हिन्दी-व्याख्या—"उत्सर्पिणी" का अर्थ है उच्च से उच्चतर होने वाली । पहले स्वर्ग-भोग चाहा, वह मिला तो उससे भी ऊपर की वस्तु चाही और उसके लिये प्रयत्न किया । संस्कृत में प्रार्थना का अर्थ इच्छा है । "अधिकृत्य" का प्रयोग "विषय में" के अर्थ में ध्यान देने योग्य है ।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (कान लगाकर)—अरे ! प्रसंग सचमुच ऐसा है कि (उचित) अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः । **कर्णम्** श्रवणम् । **दत्वा** । **अये** भोः । **प्रतिपाल्यः** प्रतीक्षणीयः **अवसरः** उचितः कालः यस्य तादृशः । **खलु** निश्चयेन । **प्रस्तावः** प्रसङ्गः ।

हिन्दी-व्याख्या—काम ऐसा जरूरी है कि हम लोगों को प्रतीक्षा करनी चाहिये; उन्हें टोकना उचित नहीं है; यह भाव है ।

हिन्दी अनुवाद—मातलि (राजा को देखकर)—तब तक आयुष्मान् अशोक वृक्ष की इस जड़ पर बैठें जब तक मैं इन्द्र के पिता (कश्यप) को सूचित करने के लिये अवसर का पता न लगा लूँ ।

संस्कृत-टीका—**मातलिः** । **राजानम्** नृपम् । **अवलोक्य** दृष्ट्वा । **अस्मिन्** । **अशोकवृक्षस्य मूले** तले । **तावत्** तत्पर्यन्तम् । **आस्ताम्** उपविशतु । **आयुष्मान्** (भवान्) । **यावत्** यत्पर्यन्तम् । **त्वाम्** । **इन्द्रस्य** सुरपतेः **गुरवे** पित्रे । **निवेदयितुम्** सूचयितुम् । **अन्तरस्य** अवसरस्य **अन्विष्यति** मृगयते यः सः । **भवामि** ।

हिन्दी-व्याख्या—हिन्दी में "जब तक" से आरम्भ होने वाले उपवाक्य में "न" आता है, संस्कृत में "यावत्" के साथ यह "न" नहीं आता ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—जैसी आपकी इच्छा । (यह कहकर स्थित हो जाते हैं)

मातलिः—आयुष्मन् साधयाम्यहम्। (इति निष्क्रान्तः)

राजा—(निमित्तं सूचयित्वा)—

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।
पूर्वावधीरितश्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥१३॥

(नेपथ्ये) मा खु चावलं करेहि। कहं गदो जेव्व अत्तणो पकिदिं। [मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।]

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **यथा** यत्। **भवान्** त्वम्। **मन्यते** समर्थयति। **इति** ततः। **स्थितः**।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—आयुष्मान् मैं जा रहा हूँ। (इसके बाद बाहर जाता है)

संस्कृत-टीका—**मातलिः**। (हे) **आयुष्मन्**। **साधयामि** गच्छामि। **अहम्**। **इति** ततः। **निष्क्रान्तः** निर्गतः।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (शकुन सूचित कर) मन की कामना पूर्ण होने की आशा नहीं है, (हे) भुजा, व्यर्थ क्यों फड़कती है, क्योंकि पहले तिरस्कृत किया हुआ कल्याण कठिनाई से लौटता है।

अन्वय—मनोरथाय न आशंसे। बाहो वृथा किम् स्पन्दसे। पूर्वावधीरितम् हि श्रेयः दुःखम् परिवर्तते।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **निमित्तम्** शकुनम्। **सूचयित्वा** प्रकटीकृत्य। **मनोरथाय** अभीष्ट-(शकुन्तला) प्राप्त्यै। **न**। **आशंसे** सम्भावयामि। **बाहो** (हे) भुज। **वृथा** मुधा। **किम्**। **स्पन्दसे** स्फुरसि। **पूर्वम्** प्राक् **अवधीरितम्** तिरस्कृतम्। हि यस्मात् कारणात् (यतः), **श्रेयः** कल्याणम्। **दुःखम्** कृच्छ्रेण। **परिवर्त्तते** निवर्तते।

हिन्दी-व्याख्या—पुरुष की भुजा का फड़कना महान् से महान् अभिलाषा पूर्ण करता है, पर दुष्यन्त की सबसे बड़ी अभिलाषा (शकुन्तला) को पाना सम्भावना से भी परे है और कल्याण जब एक बार ठुकराया जाता है, तब फिर हाथ नहीं आता। "दुःखम्" का अर्थ "दुःखपूर्ण रीति से" है जिससे यह क्रिया-विशेषण है। "दुःखम् परिवर्तते" का अर्थ "बदल कर दुःख हो जाता है" भी हो सकता है।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास और अनुप्रास (वृत्ति)।

हिन्दी-अनुवाद—(नेपथ्य में) अरे, चंचलता मत कर। अयँ! अपने स्वभाव को पहुँच ही गया?

संस्कृत-टीका—**नेपथ्ये**। **मा** न **खलु** निश्चयेन। **चापलम्** चञ्चलताम्। **कुरु** विधेहि। **कथम्** किम्। **गतः** प्राप्तः। **एव**। **आत्मनः** स्वस्य। **प्रकृतिम्** स्वभावम्।

राजा—(कर्णं दत्त्वा) अभूमिरियमविनयस्य । को नु खल्वेष निषिध्यते । (शब्दानुसारेणावलोक्य सविस्मयम्) अये को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्त्वो बालः ।

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ।। १४ ।।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां सह बालः)

बालः—जिम्भ सिंघ दंताइं दे गणइस्सं । [जृम्भस्व सिंह दन्तांस्ते गणयिष्ये ।]

हिन्दी-अनुवाद—राजा (कान लगाकर)—यह स्थान उद्दण्डता के लिये नहीं है । यह कौन होगा जिसे मना किया जा रहा है । (आवाज के अनुसार उसी दिशा में देखकर अचरज के साथ) अरे ! यह कौन बालक है जिसका बल बालकों जैसा नहीं है तथा जिसके पीछे दो तापसियाँ लगी हैं ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः । **कर्णम्** श्रवणम् । दत्त्वा । न भूमिः स्थानम् । **इयम्** । न विनयस्य नम्रतायाः (उद्दण्डतायाः) । कः नु (वितर्के) । खलु (वितर्के) । **अयम्** एषः । **निषिध्यते** निवार्यते । **शब्दस्य** ध्वनेः **अनुसारेण** लक्ष्यीकृत्य । अवलोक्य दृष्ट्वा । **विस्मयेन** आश्चर्येण सह । **अये** भोः । **कः** । नु (वितर्के) । खलु (वितर्के) । **अयम्** एषः । **अनुबध्यमानः** अनुगम्यमानः । **तपस्विनीभ्याम्** तापसीभ्याम् । **बालस्य** शिशोः सत्त्वम् बलम् इव **सत्त्वम्** बलम् यस्य सः न बालसत्त्वः **अबालसत्त्वः** **बालः** शिशुः ।

हिन्दी अनुवाद—(यह कौन बालक है जो) थन आधा (ही) पिये हुए खींच-खाँच से बिखरे आयल वाले सिंह-शावक को खेलने के लिये, माँ के पास से जबर्दस्ती खींच रहा है ।

अन्वयः—(कः नु खलु अयम् बालः) अर्धपीतस्तनम् आमर्दक्लिष्टकेसरम् सिंहशिशुम् प्रक्रीडितुम् मातुः बलात्कारेण कर्षति ।

संस्कृत-टीका—(कः नु खलु अयम् बालः) **अर्धम्** अपूर्णम् यथा स्यात् तथा । **पीतः स्तनः** पयोधरः येन तादृशम् **आमर्दन** आकृष्ट्या **क्लिष्टाः** पर्यस्ताः **केसराः** स्कन्धकेशा यस्य तादृशम् । **सिंहस्य** केसरिणः **शिशुम्** शावकम् । प्रक्रीडितुम् । **मातुः** जनन्याः (सकाशात्) । **बलात्कारेण** प्रसह्य । **कर्षति** आनयति ।

हिन्दी-व्याख्या—साधारण जीव के बच्चे को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध खींचना कठिन है, फिर सिंह के बच्चे को सामान्य स्थान से नहीं बल्कि माँ की गोद से और साधारण अवस्था में नहीं बल्कि आधा ही स्तन पीने पर खींचना तो असंभव-सा है । इस प्रकार सर्वोत्कर्ष व्यक्त होता है ।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य ।

अलंकार—स्वभावोक्ति, उदात्त तथा अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद दो तपस्विनियों के साथ वह बालक, जिसका कार्य ऊपर बताये के अनुसार है, दिखता है)

बालक—शेर, मुँह खोल; तेरे दाँत गिनूँगा ।

प्रथमा—अविणीद किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि । हंत वड्ढइ दे संरंभो । ठाणे खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि । [अविनीत किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हन्त वर्धते तव संरंभः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।]

राजा—किं नु खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः । नूनमनपत्यता मां वत्सलयति ।

संस्कृत-टीका—**ततः** तत्पश्चात् । **प्रविशति** दृश्यते । **निर्दिष्टम्** पूर्वोक्तम् अनतिक्रम्य **कर्म** कार्यम् यस्य तादृशः । **तपस्विनीभ्याम्** तापसीभ्याम् । **सह** साकम् । **बालः** शिशुः **जृम्भस्व** मुखाभ्यन्तरम् दर्शय । **सिंह** केसरिन् । **दन्तान्** रदान् **ते** तव । **गणयिष्ये** ।

हिन्दी-अनुवाद—पहली—उद्दंड, हमारे संतान-तुल्य जीवों को क्षुब्ध क्यों करते हो ? हाय ! तुम्हारा हठ बढ़ रहा है । सचमुच ठीक ही ऋषियों ने तुम्हारा नाम सर्वदमन रखा ।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** एका (तपस्विनी) । **न विनीत** नम्र (रे उच्छृङ्खल) । **किम्** । **नः** अस्माकम् । **अपत्येभ्यः** संतानेभ्यः **निर्विशेषाणि** सदृशानि । **सत्त्वानि** जीवान् । **विप्रकरोषि** कुपितान् करोषि । **हन्त** हा । **बर्धते** उपचार्यते । **तव** । संरभः निर्बन्धः । **स्थाने** उचितम् अस्ति यत् । **खलु** निश्चयेन । **ऋषिजनेन** मुनिभिः । **सर्वदमनः** सर्वेषां सकलानाम् **दमनः** अभिभवकारी । **इति** इत्थम् । **कृतम्** विहितम् **नामधेयम्** नाम यस्य सः तादृशः । **असि** ।

हिन्दी-व्याख्या—सिंह जैसा हिंसक पशु भी आश्रम में सन्तान की तरह माना जाता है । "निर्विशेषाणि" का अर्थ है जिसमें से विशेष (अन्तर) निकल गया हो । अर्थात् सदृश (निर्गतः विशेषः यस्मात् तादृशानि) । "वि" और "अ" उपसर्ग के साथ "कृ" धातु और "रभ्" के साथ "सम्" उपसर्ग लगने पर अर्थ-परिवर्तन ध्यान देने-योग्य है । सब पर हावी हो जाने से उसका नाम ऋषियों ने सर्वदमन (जो सबका दमन कर दे) रखा था ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—क्या बात है कि इस बालक के प्रति मेरा मन ऐसा स्नेह कर रहा है जैसे औरस पुत्र हो । निश्चय ही निःसन्तानता मुझे वत्सल बना रही है ।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः । **किम्** । **नु** (वितर्के) । **खलु** (वितर्के) । **बाले** शिशौ **अस्मिन्** पुरतः दृश्यमाने । **औरसे** स्वेन उत्पादिते । **इव** । **पुत्रे** तनये । **स्निह्यति** अनुरज्जते । **मे** मम । **मनः** मानसम् **नूनम्** निश्चयेन । अविद्यमानम् **अपत्यम्** संततिः यस्य तत्ता । **माम्** । **वत्सलयति** करोति ।

हिन्दी-व्याख्या—कैसी नाटकीय स्थिति है ! अपने औरस पुत्र को ही पराया समझते हुये दुष्यन्त नहीं समझ पा रहे हैं कि क्यों इसके प्रति हृदय खींच रहा है । अपनी निःसन्तानता को वे कारण समझते हैं । संतानहीन व्यक्तियों का हृदय संतान के प्रति इतना लालायित रहता है कि शिशु को देखते ही उन्हें परम आनन्द मिलता है । उसे न पाकर वे पक्षियों तक से दिल बहलाने का प्रयत्न करते हैं । मनु ने औरस क्षेत्रज आदि १२ प्रकार के पुत्र बताते हैं, इनमें औरस सबसे उत्तम होता है । जो अपनी विवाहित और समान जाति वाली से उत्पन्न होता है, वह औरस कहलाता है (उरसा औरसः जातः)—

द्वितीया—एषा खु केसरिणी तुम लंघेदि जइ से पुत्तअं ण मुंचेसि । [एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयिष्यति यदि तस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि ।

बालः—(सस्मितम्) अम्हहे बालअ खु भीतो म्हि । [अहो वलाय खलु भीतोऽस्मि । (इत्यधरं दर्शयति)

राजा—महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे ।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः ॥ १५ ॥

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् ।
तमौरसं विजानीयात् पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ (मनुस्मृति, ९।१६६)

"वत्सल" संज्ञा से बनी नामधातु से "वत्सलयति" क्रिया बनती है ।

हिन्दी-अनुवाद—सचमुच यह शेरनी तुम पर हमला कर देगी अगर तुम उसके बच्चे को नहीं छोड़ोगे ।

संस्कृत-टीका—द्वितीया अपरा (तपस्विनी) । **एषा** इयम् । खलु निश्चयेन । **केसरिणी** सिंहिनी । **त्वाम्** । **लङ्घयिष्यति** तव उपद्रवम् किंचित् । **यदि** चेत् । **तस्याः** । **पुत्रकम्** शिशुम् । **न मुंचसि** न मोक्ष्यसे ।

हिन्दी-अनुवाद—लड़का (मुस्कराकर) अरे बाप रे ! सचमुच बहुत डर गया हूँ । (यह कह-कर निचला ओंठ दिखलाता है)

संस्कृत-टीका—बालः शिशुः । **स्मितेन** विहासेन सह । **अहो** (आश्चर्ये) । **बलीयः** नितराम् । **खलु** निश्चयेन । **भीतः** भययुक्तः । **अस्मि** । **इति** ततः **अधरम्** अधरोष्ठम् । **दर्शयति** ।

हिन्दी-व्याख्या—सुन्दर बाल लीला है; लड़का मजाक करता है और निचला ओंठ ऊपर कर अपने को डरा हुआ दिखाता है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—मुझे यह बालक महान् तेज का बीज प्रतीत होता है । लगता है, चिनगारी के रूप में विद्यमान आग ईंधन की बाट जोहती हुई स्थित है ।

अन्वयः—अयम् बालः मे महतः तेजसः बीजम् प्रतिभाति । स्फुलिङ्गावस्थया वह्निः एधापेक्षः (सन्) स्थितः इव ।

संस्कृत-टीका—अयम् पुरः दृश्यमानः । **बालः** शिशुः । **मे** मम । **महतः** उत्कृष्टस्य, **तेजसः** शक्तेः । **बीजम्** मूलम् । **प्रतिभाति** प्रतीयते । **स्फुलिङ्गस्य** अग्निकणस्य **अवस्थया** स्थित्या उपलक्षितः । **वह्निः** अग्निः । **एधान्** इन्धनानि अपेक्षते इति एधापेक्षः (सन्) । **स्थितः** । **इव** ।

हिन्दी-व्याख्या—राजा को बालक तेज की पूर्वावस्था सा प्रतीत होता है; अभी तेज का बीज है; आगे साक्षात् तेज-स्वरूप हो जायेगा जैसे चिनगारी के रूप में रहने वाली अग्नि ईंधन के मिलते ही प्रचण्ड हो जाती हैं, वैसे ही बीज अवसर आने पर महान् तेज के रूप में विकसित हो जायेगा, यह आशय है ।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—उपमा व अनुप्रास ।

प्रथमा—वच्छ एदं बालमिइंदअं मुंच। अवरं दे कीलणअं दाइस्सं। [वत्स एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि।]

बालः—कहिं। देहि णं। [कुत्र। देहि तत्।] (इति हस्तं प्रसारयति।)

राजा—(बालस्य हस्तमवलोक्य) कथं चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते। तथा ह्यस्य—

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम् ॥

हिन्दी-अनुवाद—पहली—बेटा, इस बाल सिंह को छोड़ दो। तुम्हें दूसरा खिलौना दूँगी।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** एका (तपस्विनी)—**वत्स** पुत्र। **एनम्** इमम्। **बालः** शिशुः च असौ मृगाणाम् पशूनाम् इन्द्रः स्वामी (सिंहः) एनं च **मुञ्च** त्यज। **अपरम्** अन्यत्। ते तुभ्यम्। **क्रीडनकम्**। **दास्यामि**।

हिन्दी अनुवाद—कहाँ है ? दो उसे। (यह कहकर हाथ फैलाता है)।

संस्कृत-टीका—**बालः** शिशुः। **कुत्र** क्व। **देहि**। **तत्** (क्रीडनकम्) **इति** एवम् उक्त्वा। **हस्तम्** करम्। **प्रसारयति**।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (लड़के का हाथ देखकर)—अयं ! यह (तो) चक्रवर्ती (राजा) के चिह्न भी धारण करता है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **बालस्य** शिशोः। **हस्तम्** करम्। **अवलोक्य** दृष्ट्वा। **कथम्** किम्। **चक्रवर्तिनः लक्षणम्** चिह्नम्। **अपि**। **अनेन** (शिशुना)। **धार्यते**। **तथा हि** पश्य **अस्य** (बालस्य)।

हिन्दी अनुवाद—लुभावनी चीज की अभिलाषा के लिये फैला हुआ, जाल-सी गुँथी हुई उँगलियों वाला (इसका) हाथ बढ़ी हुई रक्तिमा वाली नई उषा से विकसित न दिख पा रहे पंखड़ियों के अन्तर वाले श्रेष्ठ कमल-सा सोह रहा है।

अन्वयः—प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितः जालग्रथिताङ्गुलिः करः इद्धरागया नवोषसा भिन्नम् अलक्ष्य-पत्रान्तरम् एकपङ्कजम् इव विभाति।

संस्कृत-टीका—**प्रलोभ्यम्** लोभनीयम् (सुन्दरम्) च तत् **वस्तु** (क्रीडनकम्) च तस्मिन् **प्रणयेन** अभिलाषेण **प्रसारितः जालवत् ग्रथिताः** संश्लिष्टाः **अङ्गुलयः** यत्र तादृशः। **करः** हस्तः। **इद्धः रागः** रक्तिमा यस्याः तादृश्या। **नवा** नवीना च सा **उषाः** प्रभातसन्ध्या च तया। **भिन्नम्** विकसितम्। न **लक्ष्यम्** दृश्यम् **पत्राणाम्** दलानाम् **अन्तराणि** सन्धिविभागाः यस्य तादृशम्। **एकम्** मुख्यम् च तत् **पङ्कजम्** कमलम् च। **इव**। **विभाति** शोभते।

हिन्दी व्याख्या—पंजे की उपमा कमल से दी गई है। प्रणय और उषा कारण होने से उनमें भी साम्य है। अंगुलियों के बीच के भागों में छिद्र नहीं है जैसे सुबह खिले कमल की पंखुड़ियों के बीच में नहीं होते। उँगलियों के बीच में छिद्र न होना आज भी सौभाग्यसूचक माना जाता है। सामुद्रशास्त्र में इसे चक्रवर्ती का लक्षण बताया गया है—

द्वितीया—सुव्वदे ण एक्को एसो वाआमेत्तेण विरमयिदुं । गच्छ तुमं । ममकेरए उडए मक्कंडेअस्स इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मत्तिआमोरओ चिट्ठदि । तं से उवहर [सुव्रते न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम् । गच्छ त्वम् । मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारकस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति तमस्योपहर ।]—

प्रथमा—तह । [तथा ।] (इति निष्क्रान्ता)

बालः—इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं [अनेनैव तावत्क्रीडिष्यामि ।] (इति तापसीं विलोक्य हसति)

अतिरिक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः ।
चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम् ॥

सबसे पहले विकसित होने वाला होने से कमल "एक (मुख्य)" कहा गया है । बालक का हाथ होने से भली भाँति विकसित नहीं है; प्रातःकाल का कमल होने से वह भी भली-भाँति विकसित न होकर केवल अधखिला (भिन्न) है । अधखिला होने से ही कमल की पंखुड़ियों के बीच छिद्र नहीं है ।

छन्द—१।१८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, उपमा और अनुप्रास (छेक, श्रुति व वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरी—सुव्रता (अच्छे व्रत वाली), वचन-मात्र से उसे मना करना संभव नहीं है । तुम जाओ । मेरी पर्ण-कुटी में मार्कण्डेय-नामक मुनि-पुत्र का रँगा हुआ मिट्टी का मोर है । उसे इसको दे दो ।

संस्कृत-टीका—द्वितीया अपरा (तपस्विनी) (हे) सुव्रते । न । शक्यः । एषः अयम् (बालः) । वाचामात्रेण वचनमात्रेण । विरमयितुम् । निरोद्धुम् । गच्छ व्रज । त्वम् । मदीये मम । उटजे पर्णशालायाम् । मार्कण्डेयस्य । ऋषेः मुनेः कुमारकस्य पुत्रस्य । वर्णैः (रक्तपीतादिभिः) रङ्गैः । चित्रितः । मृत्तिकायाः मृदः मयूरः । तिष्ठति वर्तते । तम् (मयूरम्) । अस्य बालस्य । उपहर देहि ।

हिन्दी व्याख्या—"सुव्रता" पद विशेषण हो सकता है पर अधिक संभावना यह है कि यह पहली तपस्विनी का नाम हो । मार्कण्डेय भी नाम है ।

हिन्दी-अनुवाद—पहली—अच्छा । (यह कहकर बाहर जाती है)

संस्कृत-टीका—प्रथमा एका । तथा आम् । इति एवम् उक्त्वा । निष्क्रान्ता निर्गता ।

हिन्दी-अनुवाद—लड़का—तब तक (जब तक मोर नहीं आता) इसी से खेलूँ । (यह कहकर तपस्विनी को देखकर हँसता है)

संस्कृत-टीका—बालः शिशुः । अनेन (सिंहशावकेन) एव । तावत् (तत्पर्यन्तम्) क्रीडिष्यामि खेलिष्यामि, इति एवम् उक्त्वा । तापसीम् तपस्विनीम् । विलोक्य दृष्ट्वा । हसति ।

राजा—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै—

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ।। १७ ।।

तापसी—होदु । ण मं अअं गणेदि । (पार्श्वमवलोकयति) को एत्थ इसिकुमाराणं । (राजानमवलोक्य) भद्दमुह एहिं दाव । मोआए हि इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिम्भलीलाए बाहीअमाणं बालमिइन्दअं । [भवतु । न मामयं गणयति । कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् ! भद्रमुख, एहि तावत् मोचयानेन दुर्मोकहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् ।]

हिन्दी अनुवाद—राजा—सचमुच इस हठी को प्यार करता हूँ ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । स्पृहयामि स्निह्यामि । खलु निश्चयेन । दुर्ललिताय निर्बन्धिने । अस्मै एतस्मै (बालाय) । स्पृहयामि ।

हिन्दी व्याख्या—"दुर्ललित" से हिन्दी में "दुलारा" शब्द आया है ।

हिन्दी-अनुवाद—धन्य लोग (ही) अकारण हासों से कुछ दिखाई पड़ रही दाँत-रूपी कलियों वाले, स्पष्ट वर्ण और कमनीय बोली वाले तथा गोद की शरण की अभिलाषा वाले पुत्रों को धारण करते हुए उनके शरीर की धूल से धूसरित होते हैं ।

अन्वयः—धन्याः (जनाः एव) अनिमित्तहासैः आलक्ष्यदन्तमुकुलान् अव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन् अङ्काश्रयप्रणयिनः तनयान् वहन्तः तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ।

संस्कृत-टीका—धन्याः सौभाग्यशालिनः (जनाः एव) न निमित्तम् कारणम् यत्र तादृशाः (अनिमित्ताः) च ते हासाः हसितानि च तैः । आ ईषत् लक्ष्याः दृश्याः दन्ताः रदाः मुकुलाः कलिकाः इव येषाम् तादृशान् । न व्यक्ताः स्पष्टाः अव्यक्ताः तादृशाः च ते वर्णाः अक्षराणि च तैः रमणीया कमनीया वचसाम् वचनानाम् प्रवृत्तिः व्यापारः येषाम् तादृशान् । अङ्कस्य क्रोडस्य आश्रयः शरणम् (उपवेशनम्) तत्प्रणयिनः तदभिलाषुकान् । तनयान् पुत्रान् । वहन्तः धारयन्तः । तेषाम् (पुत्राणाम्) अङ्गानाम् अवयवानाम् रजसा धूलिभिः । अमलिनाः मलिनाः भवन्ति ।

हिन्दी व्याख्या—अंतिम चरण से व्यक्त होता है कि पुत्रहीन मैं अधन्य हूँ ।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—अप्रस्तुतप्रशंसा व अनुप्रास (छेक, वृत्ति व श्रुति) ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्विनी—छोड़ो । (अरे !) यह मुझे गिनता (ही) नहीं । (पास देखती है) मुनि-पुत्रों में से यहाँ कौन है ? (राजा को देखकर) सुमुख (अच्छी आकृति वाले), जरा आयं, इसकी न छुड़ाई जाने योग्य हाथ की पकड़ से बाल-क्रीडा में परेशान किये जा रहे शिशु सिंह को छुड़ा दें ।

संस्कृत टीका—तापसी तपस्विनी । भवतु अलम् । न माम् । अयम् (बालः) । गणयति किमपि मन्यते । पार्श्वम् समीपम् । अवलोकयति पश्यति कः । अत्र इह । ऋषीणाम् मुनीनाम् कुमाराणाम् सुतानाम् । राजानम् नृपम् अवलोक्य दृष्ट्वा भद्रम् शोभनम् । मुखम् वदनम् यस्य

राजा—(उपगम्य सस्मितम्) अयि भो महर्षिपुत्र ।

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति जन्मतस्त्वया ।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दुष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनम् ॥ १८ ॥

तापसी—भद्दमुह ण खु अअं इसिकुमारओ । [भद्रमुख न खल्वयं ऋषिकुमारः ।]

सः तत्सम्बुद्धौ । **एहि** आगच्छ । **तावत्** (वाक्यालङ्कारे) । **मोचय** रक्ष । **अनेन** (बालेन) । **दुर्मोक्षः** मोचयितुम् अशक्यः हस्तेन करेण **ग्रहः** ग्रहणम् यस्य तेन (बालकेन) । **डिम्भस्य** बालस्य **लीलया** क्रीडया । **बाध्यमानम्** पीड्यमानम् । **बालः** शिशुः च सः **मृगाणाम्** पशूनाम् **इन्द्रः** स्वामी च तम् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(पास पहुँचकर मुस्कराकर) ओ प्यारे मुनि-पुत्र ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **उपगम्य** उपसृत्य । **स्मितेन** विहासेन सह । अयि (कोमलामन्त्रणे) । **भोः** हे । **महान्** उत्कृष्टः च असौ **ऋषिः** मुनिः च तस्य **पुत्रः** सुतः तत्संबुद्धौ ।

हिन्दी-अनुवाद—इस प्रकार आश्रम-विरोधी आचरण वाले, तुम क्यों जन्म से ही प्राणियों को आश्रय से सुख देने वाले इस संयम को भी उसी प्रकार दूषित कर रहे हो जिस प्रकार कृष्णसर्प का बच्चा चन्दन के वृक्ष को दूषित करता है ।

अन्वयः—एवम् आश्रमविरुद्धवृत्तिना त्वया चन्दनम् कृष्णसर्पशिशुना इव सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि संयमः जन्मतः किमिति दूष्यते ।

संस्कृत-टीका—**एवम्** पूर्वोक्तप्रकारेण (सिंहशावकपीडनेन) **आश्रमात्** तपोवनात् **विरुद्धा** प्रतिकूला **वृत्तिः** आचरणम् यस्य तादृशेन **त्वया** । **चन्दनम्** चन्दनवृक्षः । कृष्णसर्पस्य **शिशुना** शावकेन । **इव** । **सत्त्वानाम्** प्राणिनाम् **संश्रयेण** आश्रयप्रदानेन सुखयति इति । **अपि** । **संयमः** अहिंसादिव्रतम् । **जन्मतः** जन्म आरम्य (एव) । **किमिति** केन कारणेन । **दूष्यते** मलिनीक्रियते ।

हिन्दी व्याख्या—शेर के बच्चे को कष्ट देना हिंसा है जो आश्रम के संयम (अहिंसादि) के विरुद्ध है । "जन्म" का अर्थ बचपन लग सकता है । "कृष्णसर्प" एक विशेष प्रकार का साँप है अतः "कृष्ण" को अलग नहीं लिखा जाता । संयम और चन्दन की तुलना है पर दोनों के लिङ्ग अलग-अलग हैं; बाद के साहित्य में समान-लिङ्ग ही देखा जाता है । "चन्दनः" कर देने से ठीक हो सकता है । "सत्त्व०" विशेषण चन्दन के साथ भी लग सकता है । शीतलता के कारण प्राणी चन्दन के आश्रय में सुख पाते हैं पर कृष्णसर्प उससे लिपट कर प्राणियों को हटा देता है ।

छन्द—रथोद्धता जिसमें रगण, नगण, रगण, लघु व गुरु होता है 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।' राघवभट्ट ने इसे "स्वागता" कहा है जो भूल है ।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—तपस्विनी, (हे) सुमुख, यह मुनि-पुत्र नहीं है ।

संस्कृत टीका—**तापसी** तपस्विनी । **भद्रम्** शोभनम् **मुखम्** वदनम् यस्य सः तत्सम्बुद्धौ । **न** । **खलु** निश्चयेन । **अयम्** बालः । **ऋषेः** मुनेः **कुमारः** पुत्रः ।

राजा—आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति । स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः । (यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य आत्मगतम्) ।

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यायमङ्कात्कृतिनः प्ररूढः ॥१९॥

तापसी—(उभौ निर्वर्ण्य) अच्छरिअं अच्छरिअं । [आश्चर्यमाश्चर्यम् ।]

राजा—आर्ये किमिव ।

तापसी—इमस्स बालअस्स दे वि संवादिणी अकिदी त्ति विम्हाविदम्हि । अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति । [अस्य बालकस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिरिति विस्मापितास्मि । अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति ।]

हिन्दी-अनुवाद—राजा—आकृति के अनुरूप इसकी चेष्टा ही (ऐसा) बता रही है, पर स्थान के विश्वास से मैं ऐसा अन्दाज लगा रहा हूँ । (जैसी प्रार्थना की गई थी, उसके अनुसार—शेर के बच्चे को छुड़ाते हुए—करते हुए बालक का स्पर्श पाकर आत्मगत)

संस्कृत-टीका—**राजा** । **आकारेण** आकृत्या **सदृशम्** अनुरूपम् । **चेष्टितम्** कार्यम् । **अस्य** । **कथयति** सूचयति । **स्थानस्य** प्रदेशविशेषस्य **प्रत्ययात्** विश्वासेन । **तु** । परम् । **वयम्** अहम् । **एवंतर्किणः** तथानुमानकारकाः । **अभ्यर्थितम्** प्रार्थनाम् अनतिक्रम्य । **अनुतिष्ठन्** आचरन् । **बालस्य** शिशोः **स्पर्शम्** । **उपलभ्य** प्राप्य । **आत्मगतम्** ।

हिन्दी-व्याख्या—जैसा स्थान होता है, उसी के अनुसार विश्वास किया जाता है, आश्रम में किसी के होने से यह विश्वास किया जाता है कि यह ऋषि या ऋषिकुमार है ।

हिन्दी-अनुवाद—इस किसी (अज्ञात) वंश-अंकुर से छुए गये मेरे अङ्गों में ऐसा सुख हो रहा है । उसके हृदय में यह कितनी शांति न पैदा करता होगा जिस भाग्यशाली की गोद से यह उगा है ।

अन्वय—कस्यापि कुलाङ्कुरेण अनेन स्पृष्टस्य मम गात्रेषु एवम् सुखम् । तस्य चेतसि अयम् काम् निर्वृतिम् कुर्यात् यस्य कृतिनः अङ्कात् प्ररूढः ।

संस्कृत-टीका—**कस्यापि** अज्ञातस्य । **कुलस्य** वंशस्य **अङ्कुरेण** प्ररोहेण । **अनेन** (बालेन) **स्पृष्टस्य** । **मम** । **गात्रेषु** अवयवेषु । **एवम्** अनुभूतम् वर्णनातीतम् । **सुखम्** आनन्दः । **तस्य** । **चेतसि** हृदये । **अयम्** (बालः) । **काम्** । **निर्वृतिम्** शान्तिम् । **कुर्यात्** विदध्यात् । **यस्य** । **कृतिनः** भाग्यवतः । **अङ्कात्** क्रोडात् । **प्ररूढः** उत्पन्नः ।

हिन्दी-व्याख्या—"कस्यापि" से "अवर्णनीयम्" अर्थ भी निकल सकता है । "अङ्कुर" से छोटी उम्र, कोमलता, मनोरमता आदि ध्वनित होती है । "जिसके अङ्क से प्ररूढ है" कहकर पिता माता को संकेतित किया गया है ।

छन्द—२।७ द्रष्टव्य ।

अलंकार—अर्थापत्ति, रूपक और अनुप्रास (छेक, वृत्ति व श्रुति) ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्विनी (दोनों को देखकर)—अचरज ! अचरज !

राजा—(बालकमुपलालयन्)—न चेन्मुनिकुमारोऽयम् अथ कोऽस्य व्यपदेशः।

तापसी—पुरुवंसो। [पुरुवंशः।]

राजा—(आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम। अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत्पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम्।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
नियतैकपतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्॥ २०॥

संस्कृत-टीका—तापसी तपस्विनी। उभौ उभयम् (बालम् दुष्यन्तम् च)। निर्वर्ण्य दृष्ट्वा। आश्चर्यम् विस्मयः। आश्चर्यम्।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—महोदया, कैसा (अचरज)?

संस्कृत टीका—राजा। आर्ये (हे) महोदये। किम इव कथम् (कथंभूतम् आश्चर्यम्)।

हिन्दी अनुवाद—तपस्विना—इस लड़के और आपकी आकृति मिलती-जुलती है जिससे अचरज में पड़ गई हूँ। यह अपरिचित के भी अनुकूल हो गया है।

संस्कृत-टीका—तापसी। अस्य। बालकस्य। ते तव। अपि च। संवादिनी सदृशी। आकृतिः। इति। विस्मापिता आश्चर्ये पातिता। अस्मि। न पारचितस्य। अपि। ते तव। न प्रतिलोमः विपरीतः (अनुकूलः)। संवृत्तः जातः।

हिन्दी-व्याख्या—अन्त का वाक्य भी विस्मय का कारण है और वाक्य समाप्ति-सूचक "इति" पद भी अन्त में लगा है जिससे "विस्मापित" के पहले उसे आना चाहिये था। बात-चीत या अचरज में क्रम बिगड़ गया है, यह नितान्त स्वाभाविक है।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (बालक को दुलारते हुए)—यदि यह ऋषि का पुत्र नहीं है तो इसका वंश क्या है?

संस्कृत टीका—राजा। बालकम्। उपलालयन् वत्सलतया आचरन्। न। चेत् यदि। मुनेः कुमारः पुत्रः। अयम्। अथ तदा। कः। अस्य। व्यपदेशः वंशः।

हिन्दी अनुवाद—तपस्विनी—पुरु-वंश।

संस्कृत-टीका—तापसी। पुरोः वंशः।

हिन्दी-अनुवाद—(आत्म-गत)—अयँ! मेरे वंश वाला ही है, इसी से आप इसे मुझसे मिलता-जुलता बता रही हैं। (लेकिन) पुरु-वंशियों के कुल का यह अन्तिम व्रत है।

संस्कृत टीका—राजा। आत्मगतम्। कथम् किम्। एकः समानः अन्वयः वंशः यस्य तादृशः मम। अतः अनेन कारणेन। खलु एव। मम अनुकारिणम् संवदन्तम्। एनम् इमम् (बालम्)। अत्रभवती पूज्या (भवती)। मन्यते जानाति। (किंतु) अस्ति। एतद्। पौरवाणाम् पुरुकुलोत्पन्नानाम्। अन्त्यम् अन्तिमम्। कुलस्य वंशस्य व्रतम् नियमः।

हिन्दी-अनुवाद—जो (पुरु-वंशी) पहले पृथ्वी की रक्षा के लिये अत्यत आनन्द वाले महलों में रहना चाहते हैं, उनका घर बाद में, पेड़ की जड़ें हो जाती हैं जहाँ एकमात्र नियम धारण करने

(प्रकाशम्) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेव विषयः ।

तापसी—जह भद्दमुहो भणादि अच्छरासंबंधेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे प्पसूदा । [यथा भद्रमुखो भणत्यप्सरःसंबन्धेनास्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता ।]

राजा—(अपवार्य)—हन्त द्वितीयमिदमाशाजननम् अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ।

वाली पतिपरायणा स्त्री (साथ) रहती है ।

अन्वयः—पूर्वम् ये रसाधिकेषु भवनेषु क्षितिरक्षार्थम् निवासम् उशन्ति, पश्चात् तेषाम् नियतैक-पतिव्रतानि तरुमूलानि गृहीभवन्ति ।

संस्कृत-टीका—पूर्वम् आदौ (शैशवे यौवने च)। **ये**। **रसः** आनन्दः **अधिकः** प्रचुरः यत्र तादृशेषु । **भवनेषु** प्रासादेषु । **क्षितेः** पृथिव्याः **रक्षार्थम्** । **निवासम्** । **उशन्ति** इच्छन्ति । **पश्चात्** तदुपरि (वार्धके)। **तेषाम्** । **नियता** नियमव्यापृता **एका** केवला पतिव्रता सती स्त्री यत्र तादृशानि । **तरोः** वृक्षस्य **मूलानि** तलानि । **गृहीभवन्ति** अगृहाणि गृहाणि भवन्ति ।

हिन्दी-व्याख्या—आशय यह है कि पुरुवंशी बुढ़ापे में स्त्री के साथ वन में रहते हैं; यह बालक यहाँ (वन में) कैसा आ गया ? रहते हैं तो आसक्ति-वश नहीं, बल्कि पृथ्वी की रक्षा के लिये रहते हैं, यह "क्षितिरक्षार्थम्" से ध्वनित होता है। पत्नी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में रहते हैं। पत्नी नियम-युक्त रहती है, अतः पुत्र जन्म की संभावना नहीं है; फिर यह बालक कहाँ से आ गया, यह बताने के लिये ही "नियता" विशेषण रखा गया है।

छन्द—३।२१ द्रष्टव्य । **अलंकार**—रूपक व अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—(प्रकाश)—और न अपने स्वरूप से ही यह मनुष्य- गोचर है ।

संस्कृत-टीका—प्रकाशम् । **न**। **पुनः** च । **आत्मनः** स्वस्य **गत्या** स्वरूपेण **मानुषाणाम्** मनुष्याणाम् । **एव** । **विषयः** गोचरः ।

हिन्दी-व्याख्या—वह आश्रम कश्यप, अदिति आदि देव-जाति वालों का स्थान था, अतः मनुष्य (पुरु-वंशी) का होना वहाँ संभव न लगना स्वाभाविक है ।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्विनी—सुमुख, (आप) का कहना सही है; अप्सरा के संबंध (लड़की-होने) से इसकी माँ ने देवों के पिता (कश्यप) के इस तपोवन में बच्चे को जन्म दिया था ।

संस्कृत-टीका—तापसी । **यथा** यत् । **भद्रमुखः** (भवान्) **भणति** वदति (तत् तथा एव) । **अप्सरसः संबन्धेन** (दुहितृत्वात्)। **अस्य** (बालस्य) । **जननी** माता । **अत्र** अस्मिन् **देवानाम् गुरोः** पितुः । **तपोवने** आश्रमे । **प्रसूता** (पुत्रम्) जनितवती ।

हिन्दी-अनुवाद—(अपवारित कर)—अहा ! यह आशा की दूसरी उत्पत्ति है। (प्रकाश) अच्छा; वह माननीया, किस नाम के राजर्षि की स्त्री है ?

संस्कृत-टीका—राजा । **अपवार्य** । **हन्त** (हर्षे) । **द्वितीयम्** अपरम् । **इदम्** उक्तम् । **आशाया मनोरथस्य जननम्** उत्पत्तिः । **प्रकाशम्** । **अथ** । **सा** । **अत्रभवती** मान्या । **का आख्या**

तापसी—को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीत्तिदुं चिंतिस्सदि। [कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति।]

राजा (स्वगतम्)—इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि। अथवाऽनार्यः परदारव्यवहारः। (प्रविश्य मयूरहस्ता)।

तापसी—सव्वदमण सउंदलावण्णं पेक्ख। [सर्वदमन शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व।]

बालः—(सदृष्टिक्षेपम्) कहिं वा मे अज्जू। [कुत्र वा मम माता।]

उभे—णामसारिस्सेण वञ्चिदो माउवच्छलो। [नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः।]

नाम यस्य तादृशस्य। राजा च असौ ऋषिः च तस्य। पत्नी स्त्री।

हिन्दी-अनुवाद—तपस्विनी—कौन उस धर्म-पत्नी का त्याग करने वाले का नाम लेने को सोचेगा ?

संस्कृत-टीका—तापसो कः। तस्य। धर्मदाराणाम् धर्मपत्न्याः परित्यागिनः निराकर्तुः। नाम (अपि)। संकीर्तयितुम् वक्तुम्। चिन्तयिष्यति चिन्ताम् (अपि) करिष्यति।

हिन्दी-अनुवाद—राजा (स्वगत)—निश्चय ही यह बात मुझे ही निशाना बना रही है। और जो इस बालक को माँ का नाम पूछूँ ? पर पराई स्त्री की चर्चा अनुचित है। (हाथ में मोर लिये हुए स्त्री प्रवेश कर)

संस्कृत-टीका -राजा। स्वगतम्। इयम्। खलु निश्चयेन। कथा चर्चा। माम्। एव। लक्ष्यम् लक्ष्यम् करोति (सूचयति)। यदि चेत्। तावत् (वाक्यालङ्कारे) अस्य। शिशोः बालकस्य। मातरम् जननीम्। नामतः नाम्ना। पृच्छामि अथवा किं तु। अनार्यः अनुचितः। परस्य अन्यस्य। दाराणाम् पत्न्याः। व्यवहारः चर्चा। प्रविश्य। मयूरः शिखी हस्ते करे यस्याः तादृशो।

हिन्दीव्याख्या—"नाम पूछने" की जगह "नाम से पूछना" संस्कृत का मुहावरा है। स्त्री का नाम पूछना स्त्री-चर्चा में आने से अशिष्टता मानी गई है।

हिन्दी अनुवाद—तपस्विनी—सर्वदमन, शकुन्त (पक्षी) का सलोनापन देखो।

संस्कृत टीका—तापसी। (हे) सर्वदमन। शकुन्तस्य पक्षिणः लावण्यम् सौन्दर्यम्। प्रेक्षस्व पश्य।

हिन्दी-व्याख्या—यहाँ "शकुन्त" से "लावण्य" का "ला" मिलने से "शकुन्तला" आवाज सुनाई पड़ी जिससे बालक को भ्रम होता है।

अलंकार—श्लेषवक्रोक्ति।

हिन्दी-अनुवाद—(दृष्टि डालकर)—कहाँ है मेरी माँ ?

संस्कृत-टीका—बालः। दृष्ट्याः चक्षुषः क्षेपेण पातनेन सह। कुत्र क्व। वा (वाक्यालङ्कारे) मम माता।

हिन्दी अनुवाद—दोनों—नाम की समानता से माँ को प्यार करने वाले ने धोखा खाया।

द्वितीया—वच्छ इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं देक्ख त्ति भणिदो सि। [वत्स अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि।]

राजा—(आत्मगतम्) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते।

बालः—अज्जुए रोआदि मे इसो भद्दमोरओ। [मातः रोचते म एष भद्रमयूरः।] (इति क्रीडनकमादत्ते।)

प्रथमा—(विलोक्य सोद्वेगम्) अम्हहे रक्खाकरंडअ से मणिबंधे ण दीसदि। [अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते।]

संस्कृत-टीका—उभे द्वे (अपि तापस्यौ)। **नाम्नः सादृश्येन** तुल्यतया। **वञ्चितः** भ्रान्तः। **मातुः** जनन्याः **वत्सलः**।

हिन्दी-अनुवाद—दूसरी (तापसी)—बेटा, मिट्टी के इस मोर की सुन्दरता देखो, यह तुमसे कहा गया है। (न कि तुम्हारी माँ का नाम लिया गया है)।

संस्कृत-टीका—**द्वितीया** अपरा (तापसी)। **वत्स** पुत्र। **अस्य**। **मृत्तिकायाः** मृदः **मयूरस्य** शिखिनः। **रम्यत्वम्** सुन्दरताम्। **पश्य** विलोकय। **इति**। **भणितः** कथितः। असि।

हिन्दी अनुवाद—राजा (आत्म-गत)—क्या इसकी माँ का नाम शकुन्तला है पर नामों की समानताएँ तो होती हैं। कहीं नाम भर का प्रसङ्ग मृगतृष्णिका की तरह मेरे लिये दुःख कारक न हो जाय!

संस्कृत-टीका—**राजा**। **आत्मगतम्**। **किम्**। **वा** (वाक्यालङ्कारे)। **शकुन्तला**। **इति**। **अस्य** (बालकस्य)। **मातुः** जनन्याः। **आख्या** नाम। **सन्ति** भवन्ति। **पुनः** तु। **नामधेयस्य** नाम्नः **सादृश्यानि** तुल्यताः। **अपि** (प्रश्ने)। **नाम** (सम्भावनायाम्)। **मृगतृष्णिका** मरुमरीचिका। **इव**। **नाम** एव **नाममात्रम्** तस्य **प्रस्तावः** प्रसङ्गः। **मे** मम। **विषादाय** क्लेशाय।

हिन्दी अनुवाद—लड़का—माँ, यह अच्छा मोर मुझे भाता है। (यह कहकर खिलौना लेता है)।

संस्कृत टीका—**बालः** (हे) **मातः**। **रोचते**। **मे** मह्यम्। एषः। **भद्रः** सुन्दरः च सः **मयूरः** च। **इति** ततः। **क्रीडनकम्**। आदत्ते गृह्णाति।

हिन्दी अनुवाद—पहली (आकुलता के साथ देखकर)—अरे! इसकी कलाई में रक्षा के लिए बाँधी गई ताबीज नहीं दिख रही है।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** (तापसी) **विलोक्य** दृष्ट्वा। **उद्वेगेन** आकुलत्वेन सह। **अहो रक्षार्थम्** करण्डकम् बद्धः ओषधि-ग्रन्थिविशेषः (बीटिका)। **अस्य** (शिशोः)। **मणिबन्धे** करतलमूले)। **न**। **दृश्यते** विलोक्यते।

राजा—अलमलमावेगेन । नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात्परिभ्रष्टम् । (इत्यादातुमिच्छति)

उभे—मा खु एवं अवलंबिअ । कहं गहीदं णेण । [मा खल्विदमवलम्ब्य । कथं गृहीतमनेन ।] (इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः)

राजा—किमर्थं प्रतिषिद्धा स्मः ।

प्रथमा—सुणादु महाराओ । एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा । एत किल मादापिदरो अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हादि । [शृणोतु महाराजः एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता । एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति ।]

हिन्दी अनुवाद—राजा—मत घबरायें । यह रहा; सिंह-शावक को इसके खींचने से गिर गया था । (यह कहकर लेना चाहते हैं) ।

संस्कृत-टीका—राजा । अलम् (निषेधे) । अलम् (निषेधातिशये) । **आवेगेन** व्यग्रतया । **ननु** निश्चयेन । **इदम्** (रक्षाकरण्डकम्) **अस्य** बालस्य । **सिंहस्य शावस्य** शिशोः । **विमर्दात्** आकर्षणात् । **परिभ्रष्टम्** च्युतम् । **इति** ततः । **आदातुम्** ग्रहीतुम् । **इच्छति** कामयते ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—इसे मत लो । अरे ! इन्होंने ले लिया ? (यह कहकर अचरज से छाती पर हाथ रखकर एक-दूसरी को देखती हैं ।

संस्कृत-टीका--उभे द्वे (अपि तापस्यौ) । **मा** न । **खलु** (निषेधे) । **इदम्** (रक्षाकरण्डकम्) । **अवलम्ब्य** गृहीत्वा । **कथम्** अहो । **गृहीतम्** आदत्तम् । **अनेन** (अभ्यागतेन) । **इति** ततः । **विस्मयात्** आश्चर्येण । **उरसि** वक्षसि **निहितः** स्थापितः **हस्तः** करः याभ्याम् **तादृश्यौ** (सत्यौ) । **परस्परम्** मिथः । **अवलोकयतः** । पश्यतः ।

हिन्दी-व्याख्या—आगे पता चलेगा कि वह तावीज माँ-बाप के अलावा कोई छुए तो मर जाय, यह स्थिति थी । बालक के पिता के आने की कोई सम्भावना नहीं थी, अतः तापसियों को डर लगा कि कहीं उसके प्राण न चले जायँ ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—किसलिये मुझे रोका गया है ?

संस्कृत टीका—राजा । किमर्थम् केन कारणेन **प्रतिषिद्धाः** निवारिताः । **स्मः** ।

हिन्दी-अनुवाद—पहली (तापसी)—महाराज सुनें; अपराजिता नामक यह औषधि (जड़ी-बूटी) इसके "जातकर्म" के समय श्रीमान् कश्यप ने दी थी । भूमि पर पड़ी होने पर इसे भूलकर भी माता-पिता के और अपने अलावा दूसरा नहीं ग्रहण करता ।

संस्कृत-टीका—प्रथमा (तापसी) । **शृणोतु । महाराजः । एषा अपराजिता । नाम** (वाक्यालङ्कारे) । **ओषधिः । अस्य** (बालकस्य) । **जातकर्मणः** (संस्कारस्य) **समये** अवसरे । **भगवता** श्रीमता **मारीचेन** मरीचिपुत्रेण (कश्यपेन) । **दत्ता । एताम्** (ओषधिम्) । **किल**

राजा—अथ गृह्णाति ।

प्रथमा—तदो तं सप्पो भविअ दंसइ । [ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति ।]

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ।

उभे—अणेअसो [अनेकशः] ।

राजा—(सहर्षम् आत्मगतम्) कथमिव संपूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि । (इति बालं परिष्वजते)

द्वितीया—सुव्वदे एहि इमं वुत्तंतं णिअमव्वावुडाए सउंदलाए णिवेदेम्ह । [सुव्रते एहि । इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः ।] (इति निष्क्रान्ते)

निश्चयेन । माता च पिता च तौ । **आत्मानम्** । **च वर्जयित्वा** त्यक्त्वा । **अपरः** अन्यः । **भूमौ** पृथिव्याम् । **निपतितां** निहिताम् । **न** । **गृह्णाति** आदत्ते ।

हिन्दी-व्याख्या—"जातकर्म" एक संस्कार है जो नाल काटने के पहले बच्चे को सोने की सलाई से शहद और घी को चटाकर किया जाता है :

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ [मनुस्मृति, २।२९]

हिन्दी अनुवाद—राजा—और ले तो ?

संस्कृत-टीका—**अथ** यदि । **गृह्णाति** (तदा किम् भवति ।)

हिन्दी-अनुवाद—पहली—तो साँप होकर उसे काट लेती है ।

संस्कृत-टीका—**प्रथमा** । **ततः** तर्हि । **तम्** । **सर्पः** । **भूत्वा** । **दशति** ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—आप दोनों ने कभी इसका (सर्प में) बदलना देखा है ?

संस्कृत-टीका—**राजा** । **भवतीभ्याम्** युवाभ्याम् । **कदाचित्** जातु । **अस्याः** (औषधेः) **प्रत्यक्षीकृता** दृष्टा । **विक्रिया** (सर्पत्वे परिणतिरूपः) विकारः (परिवर्तनम्) ।

हिंदी व्याख्या—संस्कृत में "विक्रिया", "विकार" या "विकृति" शब्द परिवर्तन के पर्याय-वाची हैं ।

हिन्दी-अनुवाद—दोनों—कई बार ।

संस्कृत टीका—**उभे** द्वे (अपि तापस्यौ) **अनेकशः** बहुधा ।

हिन्दी अनुवाद—(आनन्द से आत्मगत) क्यों (मैं) पूर्ण हो जाने पर भी अपनी मनः-कामना (पुत्र) का अभिनन्दन नहीं कर रहा हूँ ? (यह कहकर बालक को छाती से लगाते हैं ।)

संस्कृत टीका—**राजा** । **हर्षेण** आनन्देन सह । आत्मगतम् । **कथम्** किम् । **इव** (वाक्यालङ्कारे) । **संपूर्णम्** । **अपि** । **मे** मम (निजम्) । **मनोरथम्** मनःकामनाम् (पुत्रम्) **न** । **अभिनन्दामि** । **इति** ततः । **बालम्** शिशुम् । **परिष्वजते** आलिङ्गति ।

हिन्दी अनुवाद—दूसरी—(हे) सुव्रता, आओ; यह समाचार तप में लगी हुई शकुन्तला से बताया जाय । (इसके बाद दोनों बाहर जाती हैं ।)

बालः—मुञ्च मं। जाव अज्जाए सआसं गमिस्सं। [मुञ्च माम्। यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि।]

राजा—पुत्रक मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि।

बालः—मम खु तादो दुस्सदो। ण तुमं। [मम खलु तातो दुष्यन्तः। न त्वम्।]

राजा—(सस्मितम्)—एष विवाद एव प्रत्याययति।

(ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला)

शकुन्तला—विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसि अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं। [विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न मे आशासीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा

संस्कृत-टीका—द्वितीया। (हे) सुव्रते। एहि आगच्छ। इमम् पूर्वोक्तम्। वृत्तान्तम् चर्चाम् नियमे तपसि (व्रते) व्यापृतायै रतायै। शकुन्तलायै। निवेदयावः सूचयावः। इति ततः। निष्क्रान्ते निर्गते।

हिन्दी-व्याख्या—"नियम" से यह बताया गया है कि अब तक शकुन्तला दुष्यन्त की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है।

हिन्दी-अनुवाद—लड़का—छोड़ो मुझे। माँ के पास जाऊँगा।

संस्कृत टीका—बालः। मुञ्च त्यज माम्। यावत् (वाक्यालङ्कारे)। मातुः जनन्याः। सकाशम् समीपे। गमिष्यामि यास्यामि।

हिन्दी अनुवाद—राजा—मुन्ना, मेरे साथ ही माँ का अभिनन्दन करना।

संस्कृत-टीका—राजा। पुत्रक जात। मया। सह समम्। एव। मातरम् (स्वस्य) जननीम्। अभिनन्दिष्यसि।

हिन्दी-अनुवाद—लड़का—मेरे पिता तो दुष्यन्त हैं; तुम नहीं।

संस्कृत-टीका—बालः शिशुः। मम। खलु निश्चयेन। तातः पिता। दुष्यन्तः। न। त्वम्।

हिन्दी अनुवाद—राजा (मुस्कराकर) यह विरोधी कथन ही विश्वास दिलाता है (कि तुम मेरे पुत्र हो)।

संस्कृत टीका—राजा नृपः। स्मितेन विहासेन सह। एषः पूर्वोक्तः। विवादः (बालकस्य) विरुद्धम् कथनम्। एव। प्रत्याययति विश्वासयति।

हिन्दी-व्याख्या—इसके पहले नाम, कथा, तावीज आदि प्रमाणों में शंका का अवसर थोड़ा-बहुत था भी; "दुष्यन्त" को पिता बनाकर राजा को "पुत्रक" कहने से रोकना ऐसा प्रमाण है जिससे पूर्व प्रमाणों की पुष्टि हो जाती है और कोई शक नहीं रह जाता। विरोधी कथन निषेध करता है, यहाँ उलटे उससे विधि सिद्ध हो गई है, यह चमत्कार है।

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद एक चोटी धारण करने वाली शकुन्तला प्रवेश करती है।)

शकुन्तला—विकार के समय भी स्वाभाविक स्थिति में (हो) सर्वदमन (बालक) की औषधि

सानुमत्याख्यातं तथा संभाव्यत एतत् ।]

राजा—(शकुन्तलां विलोक्य)—**अये सेयमत्रभवती शकुन्तला । यैषा—**

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।

अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥२१॥

रह गई, यह सुनकर (भी) अपना भाग्य खुलने की आशा नहीं थी । या, जैसा सानुमती ने बताया है, यह वैसा (ही) हो सकता है ।

संस्कृत टीका--**ततः** पश्चात् । **प्रविशति** । **एका** केवला असौ **वेणी** च **तद्धरा** तद्धारिणी । **शकुन्तला विकारस्य** परिवर्तनस्य **काले** समये । **अपि** । **प्रकृतिस्थाम्** स्वभावगताम् (अपरिवर्तिताम्), **सर्वदमनस्य** (शिशोः) **ओषधिम्** । **श्रुत्वा** निशम्य । **न** । **मे** मम । **आशा** संभावना । **आसीत्** । **आत्मनः** स्वस्य । **भागधेयेषु** सौभाग्येषु । **अथ वा** यद्वा । **यथा** यत् । **सानुमत्या** (अप्सरोभिः) **आख्यातम्** कथितम् । **तथा** तद् । **संभाव्यते** संभवम् । **एतत्** पुरः दृश्यमानम् ।

हिन्दी-व्याख्या—पति के स्थायी विरह में भी शृंगार न करना और एक चोटी ही रखना सती स्त्रियों का व्रत माना गया है । सुनी बात की पुष्टि देखकर हो गई है; शकुन्तला उक्त सारी बात दुष्यन्त को प्रत्यक्ष करके कह रही है, जाने के पहले सानुमती, पहले, कह चुकी है कि अदिति के अनुसार दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला का अभिनन्दन देवता करायेंगे । वही बात उसने शकुन्तला से भी कही होगी । जिसकी चर्चा अपर ने यहाँ की है ।

हिन्दी-अनुवाद--राजा (शकुन्तला को निहारकर)--अरे ! मान्य शकुन्तला यह है जो यह—

संस्कृत-टीका-**राजा** नृपः । **शकुन्तलाम्** । **विलोक्य** दृष्ट्वा । **अये** अहो । **सा** पूर्वानुभूता । **इयम्** पुरः दृश्यमाना । **अत्रभवती** मान्या । **शकुन्तला** । **या एषा** पुरतः ।

हिन्दी अनुवाद—(दो मटमैले कपड़े पहने, तप से दुबले मुँह वाली, एक वेणी धारण किये और शुद्ध स्वभाव (चरित्र) वाली (यह) मुझ अत्यन्त निर्दय के लिये दीर्घ काल का वियोग व्रत धारण कर रही है ।

अन्वयः—परिधूसरे वसने वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः शुद्धशीला (च) अतिनिष्करुणस्य मम दीर्घम् विरहव्रतम् बिभर्ति ।

संस्कृत-टीका—**परिधूसरे** मलिने । **वसने** (द्वे) वस्त्रे । **वसाना** आच्छादयन्ती । **नियमेन** (चान्द्रायणादि-) व्रतेन **क्षामम्** कृशम् **मुखम्** वदनम् यस्याः तादृशी । **धृता एका** केवला (एव) वेणी यया तादृशी । **शुद्धम्** पवित्रम् **शीलम्** स्वभावः (चरितम्) यस्याः तादृशी (च) (सती) **अतिनिष्करुणस्य** अतिनिर्दयस्य । **मम** । मत्संबन्धिनम् **दीर्घम्** बहुकालीनम् । **विरहे** वियोगे **व्रतम्** नियमम् । **बिभर्ति** धारयति (आचरति) ।

हिन्दी-व्याख्या— तप में लगा और दुखी व्यक्ति वस्त्र और सजावट से विमुख रहता है जिससे कपड़े गन्दे हैं और वेणी एक ही है ।

छन्द—३।२१ द्रष्टव्य ।

शकुन्तला—(पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा)—ण खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामंगलं दारअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि। [न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति।]

बालः—(मातरमुपेत्य) अज्जुए एसो कोवि पुरिसो मं पुत्त त्ति आलिंगदि [मातः एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति।]

राजा—प्रिये क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तम् यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग, स्वभावोक्ति और अनुपास (छेक व वृत्ति)।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (पछतावे से कान्ति-रहित राजा को देखकर)—निश्चय ही यह व्यक्ति स्वामी सा नहीं है। तो यह कौन है जो इस समय रक्षा-सूत्र पहने हुए मेरे बेटे को (अपने) शरीर के स्पर्श से दूषित कर रहा है।

संस्कृत टीका—शकुन्तला। पश्चात्तापेन अनुशयेन विवर्णम् कान्तिरहितम्। राजानम् (दुष्यन्तम्) दृष्ट्वा। न। खलु निश्चयेन। आर्यपुत्रः स्वामी। इव। ततः तर्हि। कः। एषः। इदानीम् अधुना। कृतम् धारितम् रक्षामङ्गलम् रक्षासूत्रम् येन तादृशम्। दारकम् पुत्रम्। मे मम। गात्राणाम् अङ्गानाम्। संसर्गेण स्पर्शेन। दूषयति अपवित्रम् करोति।

हिन्दी व्याख्या—रक्षा-सूत्र पहने या तपस्वी पुत्र को साधारणतः परस्पर्श से बचाया जाता है।

हिन्दी-अनुवाद—लड़का (माँ के पास पहुँचकर)—(हे) माँ, यह न जाने कौन आदमी "पुत्र" मानकर मुझे गले लगा रहा है।

संस्कृत टीका—बालः शिशुः। मातरम् जननीम् (शकुन्तलाम्) उपेत्य आगत्य। (हे) मातः जननि। एष समीपे स्थितः। कोऽपि अज्ञातः। पुरुषः नरः। माम्। पुत्रः सुतः। इति इत्थम् (मत्वा)। आलिङ्गति परिष्वजते।

हिन्दी-अनुवाद—(हे) प्रिये, मेरी निर्दयता भी तुम्हारे प्रति प्रयुक्त होकर अनुकूल फल वाली हो गई है जो मैं इस समय अपने को तुम्हारे द्वारा पहचान लिया गया देख रहा हूँ।

संस्कृत टीका—राजा नृपः। (हे) प्रिये दयिते। क्रौर्यम् निर्दयता। अपि। मे मम। त्वयि तव विषये। प्रयुक्तम् कृतम्। अनुकूलः सुखकरः। परिणामः परिपाकः (फलम्) यस्य तादृशम्। संवृत्तम् जातम्। यत्। अहम्। इदानीम् अधुना। त्वया। प्रत्यभिज्ञातम् परिचितम् (न तु निराकृतम्), आत्मानम् स्वम्। पश्यामि विलोकयामि।

हिन्दी व्याख्या—न पहचान कर अस्वीकार कर राजा ने क्रूरता दिखाई, पर वह भी शकुन्तला से सम्बद्ध होने के कारण या सौभाग्य से अनुकूल हो गई; क्योंकि उसको प्रतिक्रिया के वश होकर शकुन्तला ने नहीं पहचाना, ऐसी बात नहीं है। ऐसा दुर्व्यवहार करने वाले के लिये यह आश्चर्य है। स्वाभाविक तो यह होता कि ऐसे क्रूर को वह पहचानने और स्वीकार करने से इन्कार कर

शकुन्तला—(आत्मगतम्)—हिअअ अस्सस अस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअम्पिअ म्हि देवेण। अज्जउत्तो क्खु एसो। [हृदय आश्वसिहि आश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितास्मि दैवेन आर्यपुत्रः खल्वेषः।]

राजा—प्रिये।

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम् ॥ २२ ॥

देती। मलिन वस्त्र, एक-वेणी व्रत की कृशता और आँखों का भाव सब सूचित करते हैं कि उसमें प्रतिहिंसा नहीं है; क्षमा है।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (आत्म-गत)—(हे) हृदय, ढाढस रखो; ढाढस रखो। भाग्य ने जलन (डाह) त्याग कर कृपा की है। आर्य-पुत्र ही हैं यह।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला**। **आत्मगतम्**। (हे) **हृदय** अन्तर। **आश्वसिहि** धैर्यम् धारय। आश्वसिहि। **परित्यक्तः** विसृष्टः **मत्सरः** असूया येन तादृशेन। **अनुकंपिता** दयापात्रीकृता। अस्मि। **दैवेन** भाग्येन। **आर्यपुत्रः** स्वामी। **खलु** एव। **एषः**।

हिन्दी-अनुवाद--राजा--(हे) प्रिये!

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः (दुष्यन्तः) (हे) प्रिये दयिते (शकुन्तले)।

हिन्दी अनुवाद—हे सुन्दर मुख वाली, स्मरण आ जाने से जिसका अज्ञान अन्धकार कट चुका है, उस मेरे सम्मुख तुम भाग्य से विद्यमान हो। ग्रहण समाप्त हो जाने पर चन्द्रमा से रोहिणी का मिलन हो गया है।

अन्वयः—सुमुखि दिष्ट्या स्मृतिभिन्नमोहतमसः मे प्रमुखे स्थिता असि। उपरागान्ते रोहिणी शशिनः योगम् समुपगता।

संस्कृत-टीका—शोभनम् **मुखम्** वदनम् यस्याः सा तादृशी **सुमुखी** तत्संबुद्धौ। **दिष्ट्या** सौभाग्येन। **स्मृत्या** स्मरणेन **भिन्नम्** नष्टम् (मोहः एव तमः) **मोहतमः** यस्य तादृशस्य। **मे** मम। **प्रमुखे** संमुखे। **स्थिता**। **असि**। **उपरागस्य** (चन्द्र–) ग्रहणस्य। **अन्ते** समाप्तौ। **रोहिणी**। **शशिनः** चन्द्रस्य। **योगम्** समागमम्। **समुपगता** प्राप्तवती।

हिन्दी-व्याख्या—राघवभट्ट ने "तमः" का अर्थ गाढता दिखाने के लिये "राहु" किया है पर "अन्धकार" अर्थ ज्यादा अच्छा है क्योंकि उसके कारण पहचानने में कठिनाई होती है। रोहिणी एक नक्षत्र है। दक्ष-प्रजापति की २७ पुत्रियाँ चन्द्रमा को ब्याही हैं; ये २७ नक्षत्र हैं; इनमें एक का नाम रोहिणी है। ज्योतिष में इसका क्रम चौथा है।

छन्द—१।२ द्रष्टव्य।

अलंकार—निदर्शना, दृष्टान्त, संकर (संदेह–) व अनुप्रास (छेक व श्रुति)।

शकुन्तला—जेदु जेदु अज्जउत्तो··· । [जयतु जयत्वार्यपुत्रः···] (इत्यर्धोक्ते वाष्पकण्ठी विरमति) ।

राजा—सुन्दरि !

वाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया ।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम् ॥ २२ ॥

बालः—अज्जुए को एसो । [मातः क एषः ।]

शकुन्तला—वच्छ दे भाअहेआइं पुच्छेहि । [वत्स ते भागधेयानि पृच्छ ।]

राजा—(शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य)

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—स्वामी की जय हो; जय हो (इतना आधा ही कहे जाने पर कण्ठ के गद्‌गद हो जाने से रुक जाती है ।)

संस्कृत टीका—शकुन्तला । जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । जयतु । आर्यपुत्रः स्वामी । इति इदम् । अर्धम् अपूर्णम् (एव) उक्ते कथिते । वाष्पः अश्रु कण्ठे गले यस्याः तादृशी । विरमति ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—(हे) सुन्दरी !

संस्कृत टीका—राजा नृपः । (हे) सुन्दरि शोभने !

हिन्दी-अनुवाद—"जय" शब्द के आँसू से रुक जाने पर भी मेरी "जय" हो गई जो शृंगार-अभाव से भी श्वेत-रक्त ओष्ठ-पुट वाला तुम्हारा मुख मुझे दिख गया ।

अन्वय—जयशब्दे वाष्पेण प्रतिषिद्धे अपि मया जितम् यत्—असंस्कार-पाटलोष्ठपुटम् ते मुखम् मया दृष्टम् ।

संस्कृत-टीका—जयशब्दे "जयतु" इति पदे । वाष्पेण अश्रुणा । प्रतिषिद्धे विरते । अपि । मया । जितम् जयः प्राप्तः । यत् यतः । असंस्कारेण संस्कारस्य प्रसाधनस्य अभावेन पाटलः श्वेतरक्तः ओष्ठपुटः यस्य तादृशम् । ते तव । मुखम् वदनम् (मया) । दृष्टम् विलोकितम् ।

हिन्दी-व्याख्या—आँसुओं से गला रुँध जाना व्यक्त करता है कि भावना के ज्वार ने सीमा तोड़ दी है ।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—विरोधाभास, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (श्रुति व वृत्ति) ।

हिन्दी अनुवाद—लड़का—माँ, कौन हैं ये ?

संस्कृत टीका—बालः शिशुः । मातः (हे) जननि । कः । एषः ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—बेटा, अपने भाग्य से पूछ ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । वत्स (हे) पुत्र । ते तव (स्वस्य) । भागधेयानि भाग्यम् । पृच्छ ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (शकुन्तला के पाँवों में पड़कर)—

सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु प्रवृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ २४ ॥

शकुन्तला—उट्ठेदु अज्जउत्तो । णूणं मे सुअरिअप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणाममुहं आसि जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ विरसो संवुत्तो। [उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः ।] (राजोत्तिष्ठति)

हे सुन्दर शरीर वाली, तुम्हारे हृदय से मेरे अस्वीकार करने से हुई नाराजी दूर हो; मेरे मन का अज्ञान उस समय न जाने क्यों बहुत बढ़ा-चढ़ा था। प्रबल अन्धकार या तमोगुण वाले लोगों की प्रवृत्तियाँ कल्याणकारी वस्तुओं के विषय में प्राय: ऐसी ही होती हैं। अन्धा व्यक्ति सिर पर डाली गई माला को भी साँप की शंका से हटा देता है।

अन्वयः—सुतनु हृदयात् ते प्रत्यादेशव्यलीकम् अपैतु। तदा मे मनसः संमोहः किमपि बलवान् अभूत्। प्रबलतमसाम् प्रवृत्तयः शुभेषु एवंप्रायाः (भवन्ति)। अन्धः शिरसि क्षिप्ताम् स्रजम् अपि अहिशङ्कया धुनोति।

संस्कृत टीका—शोभना तनुः शरीरम् यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । हृदयात् मनसः। ते तव। प्रत्यादेशात् (मया कृतेन) निराकरणेन (जातम्) व्यलीकम् अप्रियम्। अपैतु दूरीभवतु। तदा तस्मिन् (निराकरण-) काले। मे मम। मनसः चित्तस्य। संमोहः अज्ञानम्। किमपि अनिर्वचनीयरूपेण। बलवान् दृढः। अभूत् आसीत्। प्रबलम् दृढम् तमः तमोगुणः (अन्धकारः) येषाम् तादृशानाम्। प्रवृत्तयः विचाराः। शुभेषु मङ्गलानाम् विषये। एवं प्रायाः बहुतरम् यत्र तादृशाः (भवन्ति)। अन्धः नेत्रहीनः। शिरसि मस्तके। क्षिप्ताम् निहिताम्। स्रजम् मालाम्। अपि। अहेः सर्पस्य शङ्कया सन्देहेन (भयेन)। धुनोति अपसारयति।

हिन्दी-व्याख्या—पूरा श्लोक क्षमा-प्रार्थना है। अज्ञान के कारण वैसा हुआ; जानबूझकर नहीं। अब वह अज्ञान चला गया है। अज्ञानी शुभ को अशुभ समझता है। अज्ञान से मैं अन्धा हो गया था और अन्धा अच्छी वस्तु को भी शक से बुरी समझता है, आदि, हृदय का आशय राजा प्रगट कर रहे हैं। राघवभट्ट ने "किमपि" का अर्थ "दूषित" (तुच्छ) कर उसे "मनसः" के साथ जोड़कर बहुव्रीहि समास बनाया है जो जटिलता पैदा करता है और कालिदास के प्रसाद-गुण के विपरीत लगता है।

छन्द—३।१० द्रष्टव्य।

अलङ्कार—अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, भ्रान्तिमान्, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (श्रुति व छेक)।

हिन्दीअनुवाद—शकुन्तला—स्वामी उठ जायँ। निश्चय ही मेरा पुण्य का बाधक पूर्व कर्म उन दिनों फल देने पर उतारू था, जिससे दयालु होकर भी स्वामी मेरे प्रति उदासीन हो गये थे। (राजा उठते हैं)

राजा—उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि—

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते
यो वाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः ।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य
वाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम् ॥ २५ ॥

शकुन्तला—अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो। [अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभाग्ययं जनः ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । उत्तिष्ठतु । आर्यः स्वामी । नूनम् निश्चयेन । मे मम । शामनम् च तत् चरितम् (पुण्यम्) च तस्य प्रतिबन्धकम् बाधकम् । पुरा पूर्वम् । कृतम् कर्म । तेषु (निराकरणकाले) । दिवसेषु दिनेषु । परिणामः परिपाकः (फलम्) तन्मुखम् तदुन्मुखम् । आसीत् । येन । अनुक्रोशेन दयया सहितः (सन्) । अपि । आर्यपुत्रः स्वामी । मयि माम् प्रति । विरसः विगतः रसः रुचिः यस्य तादृशः (उदासीनः) । संवृत्तः जातः । राजा नृपः । उत्तिष्ठति ।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—अच्छा मुझ दुखिया को स्वामी ने कैसे याद किया ?

संस्कृत टीका—शकुन्तला । अथ । कथम् केन प्रकारेण । आर्यपुत्रेण स्वामिना । स्मृतः दुःखभागा दुःखी । अयम् जनः अहम् ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—दुख के काँटे से मुक्त होकर कहूँगा ।

संस्कृत टीका—राजा । उद्धृतम् दूरीकृतम् (हृदयात्) विषादरूपम् क्लेशरूपम् शल्यम् शङ्कुः येन तादृशः (सन्) । कथयिष्यामि वदिष्यामि ।

हिन्दी-व्याख्या—स्मृति क्यों आई, इस कथा से पहले अपने हृदय के शोक के काँटे को निकालना जरूरी है; तभी शांति से कथा सुनाई जा सकती है । क्षमा माँगने, आँसू पोंछने आदि से वह काँटा निकलेगा ।

हिन्दी अनुवाद—(हे) सुन्दर अंग वाली, अज्ञान से मैंने पहले तुम्हारे निचले ओंठ को पीड़ा दे रहे जिस अश्रु विन्दु की उपेक्षा कर दी थी, उसे, जो अब थोड़ी टेढ़ी बरौनी में (कम हो जाने से) अश्रु-मात्र के रूप में अटका है, पहले आज (जरा) पोंछकर पश्चात्ताप-(दुख) रहित हो लूँ !

अन्वयः—सुतनु पूर्वम् मया अधरम् परिबाधमानः यः ते वाष्पविन्दुः मोहात् उपेक्षितः तम् आकुटिलपक्ष्मविलग्नम् वाष्पम् अद्य तावत् प्रमृज्य विगतानुशयः भवेयम् ।

संस्कृत टीका—(हे) सुतनु मनोरमशरीरे । पूर्वम् प्राक् (अस्वीकृतिकाले) । मया । अधरम् अधरोष्ठम् । परिबाधमानः पीडयन् । यः । ते तव । वाष्पस्य अश्रुणः विन्दुः कणः । मोहात् अज्ञानात् । उपेक्षितः । तम् । ईषत् कुटिलेषु वक्रेषु पक्ष्मसु नेत्रलोमसु विलग्नम् युक्तम् । वाष्पम् अश्रु । अद्य अधुना । तावत् आदौ । प्रमृज्य अपसार्य । विगतः दूरीभूतः अनुशयः पश्चात्तापः (दुःखम्) यस्य तादृशः । भवेयम् स्याम् ।

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति) शकुन्तला (नाममुद्रां दृष्ट्वा)—अज्जउत्त एदं ते अंगुलीअअं। [आर्यपुत्र इदं तेऽङ्गुलीयकम्।]

राजा—अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात्खलु स्मृतिरुपलब्धा।

शकुन्तला—विसमं किदं णेण जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि। (विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत्।)

हिन्दी-व्याख्या—"मया" कहने से परम-विवेकी, धर्मभीरु और विदग्ध अर्थ निकलने से वाच्य अर्थ अर्थान्तरसंक्रान्त हो जाता है। "बाष्प" "ब्" से आरम्भ होता है जो व्युत्पत्ति-सिद्ध है पर "ब्" से लिखना चल पड़ा है। "बिन्दु" ब् से होना चाहिये; "विन्दु" लिखने पर "विद्वान्" अर्थ हो जाता है। यद्यपि "ब्" और "व्" में भेद नहीं माना जाता। 'बवयोर्भेदो नास्ति', पर वह यमक आदि के लिए है, सामान्य प्रयोग के लिए नहीं। "परिबाधमान" से ध्वनित होता है कि आँसू देर से गिर रहे थे, अधिक थे और जलन से कष्ट दे रहे थे जिससे निचले ओंठ तक चले आये थे, अब वह कारण न रह जाने से वे केवल बरौनी तक हैं। पहले अधर तक आ जाने पर भी नहीं पोंछा था, अब आँख से चलने के पहले ही पोंछ रहा हूँ। राजा को देखते ही पुराना कष्ट याद आने से अथवा खुशी से आँसू निकल आये हैं। अधिक होने से पहले आँसू बूँद के रूप में लुढ़क-लुढ़क कर अधर तक गया था, अब उसने अश्रु-मात्र का रूप धारण कर लिया है जिससे "बाष्प" आया है। साधारणतः ऐसा-दुबारा-प्रयोग नहीं होता जिससे खटक पैदा हुई है। दुष्यन्त की अवस्था इस समय सामान्य नहीं है, अतः "बाष्प" की पुनरुक्ति हो गई है, यह भी कहा जा सकता है।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य।

अलङ्कार—विशेषोक्ति, व्यतिरेक और अनुप्रास (श्रुति व वृत्ति)

हिन्दी-अनुवाद—(इसके बाद कहे-अनुसार करते—आँसू पोंछते—हैं) शकुन्तला (नाम की अँगूठी देखकर)—स्वामी, यह तुम्हारी (वाली वह) अँगूठी है ?

संस्कृत-टीका—**इति** ततः। **उक्तम्** पूर्वकथितम् अनतिक्रम्य। **अनुतिष्ठति** (अश्रुमार्जनम्) करोति। शकुन्तला। **नाममुद्राम्** अङ्गुलीयकम्। **दृष्ट्वा** विलोक्य। **आर्यपुत्र** (हे) स्वामिन्। **इदम्** (तव करे)। **ते** तव। **अंगुलीयकम्** मुद्रिका।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—इस अँगूठी की प्राप्ति से ही याद आई।

संस्कृत टीका—**राजा**–नृपः। **अस्मात्**। **अङ्गुलीयस्य** मुद्रायाः **उपलम्भात्** प्राप्तेः। **खलु** एव। **स्मृतिः** स्मरणम्। **उपलब्धा** प्राप्ता।

हिन्दी अनुवाद—इसने अनर्थ कर दिया था जो उस समय अप्राप्य हो गई थी जब मैं स्वामी को विश्वास दिलाने (प्रमाण देने) चली थी।

संस्कृत टीका—शकुन्तला। **विषमम्** अनर्थः। **कृतम्** विहितम्। **अनेन**। **यत्**। **तदा** (अस्वीकृतिकाले)। **आर्यपुत्रस्य** स्वामिनः। **प्रत्ययकाले** प्रमाणोपस्थापनसमये। **दुर्लभम्** अप्राप्यम्। **आसीत्** अभूत्।

राजा—तेन ह्यृतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम्।

शकुन्तला—ण से विस्ससामि। अज्जउत्तो एव्व णं धारेदु। [नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु] (ततः प्रविशति मातलिः)

मातलिः—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान् वर्धते।

राजा—अभूत्संपादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्।

मातलिः—(सस्मितम्)—किमीश्वराणां परोक्षम्। एत्वायुष्मान्। भगवान्मारीचस्ते दर्शनं वितरति।

हिन्दी अनुवाद—राजा—तो (अब) लता (शकुन्तला) ऋतु (दुष्यन्त) से हो रहे मिलन की निशानी के रूप में पुष्प (अँगूठी) धारण करे।

संस्कृत-टीका—तेन हि (वाक्यालङ्कारे)। ऋतोः वसन्तादेः समवायः मिलनम् तस्य चिह्नम् लक्षणम्। प्रतिपद्यताम् प्राप्नोतु। लता वल्लरी (कर्त्री)। कुसुमम् पुष्पम्।

अलङ्कार—अप्रस्तुतप्रशंसा।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला—इसका विश्वास नहीं करती। स्वामी ही इसे धारण करें। (इसके बाद मातलि दिखता है।)

संस्कृत-टीका—शकुन्तला। न। अस्य। विश्वसिमि। आर्यपुत्रः स्वामी एव। एतत् धारयतु। ततः पश्चात्। प्रविशति। मातलिः।

हिन्दी अनुवाद-मातलि-आयुष्मान् को धर्मपत्नी-मिलन व पुत्र-मुख-दर्शन की बधाई।

संस्कृत टीका-मातलिः। दिष्ट्या भाग्येन। धर्मपत्न्याः भार्यायाः समागमेन मिलनेन। पुत्रस्य सुतस्य मुखस्य वदनस्य दर्शनेन अवलोकनेन। च। आयुष्मान्। वर्धते वृद्धिम् प्राप्नोति।

हिन्दी-अनुवाद—राजा मेरे मनोरथ में स्वादिष्ट फल लग गया। (हे) मातलि, इन्द्र को तो यह समाचार नहीं विदित होगा?

संस्कृत टीका—राजा नृपः। अभूत् जातः। संपादितम् उत्पन्नम् (स्वादु स्वादिष्टम् च तत् फलम् च) स्वादुफलम् यस्य तादृशः मे मम मनोरथः कामना। (हे) मातले। न खलु (वाक्यालङ्कारे)। विदितः ज्ञातः। अयम्। आखण्डलेन इन्द्रेण। वृत्तान्तः वृत्तम्। स्यात् भवेत्।

हिन्दी-व्याख्या—यह समाचार परम मित्र—इन्द्र— को भी ज्ञात हो जाय जिससे उन्हें मेरी खुशी से खुशी होगी; उनके पास आने से यह सौभाग्य प्राप्त हुआ, आदि से सौहार्द प्रगट होता है।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि (मुस्कराकर)—समर्थों से क्या छिपा है? आयुष्मान्! आर्य श्रीमान् मरीचि-पुत्र (कश्यप) आपको दर्शन दे रहे हैं (देने की स्वीकृति दी या कृपा की है)।

हिन्दी-व्याख्या—मुस्कराकर बोलना सौहार्द का चिह्न है। इससे यह भी सूचित होता है कि मातलि यह सोचकर, कि सब इन्द्र का ही रचा नाटक है और राजा को पता ही नहीं आनन्द ले रहा है। ब्रह्मा के पुत्र होने से मरीचि की महिमा बहुत थी जिससे पुत्र (कश्यप) का महत्त्व बढ़ाने के लिये उन्हें "मारीच" कहा जा रहा है।

राजा—शकुन्तले अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि।

शकुन्तला—हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गंतुं। [जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपे गन्तुम्।]

राजा—अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषु। एह्येहि। (सर्वे परिक्रामन्ति) (ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः।)

मारीचः—(राजानमवलोक्य)—दाक्षायणि !

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी
दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं
तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः॥ २६॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(हे) शकुन्तला, बेटे को सँभालो; तुम्हें आगे कर श्रीमान् (कश्यप) का दर्शन करना चाहता हूँ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। (हे) शकुन्तले अवलम्ब्यताम् गृह्यताम्। पुत्रः सुतः। त्वाम् पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा। भगवन्तम् श्रीमन्तम् (कश्यपम्)। द्रष्टुम् विलोकितुम्। इच्छामि कामये।

हिन्दी अनुवाद—शकुन्तला—स्वामी के साथ गुरु-जनों के पास जाते लाज लग रही है।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला। जिह्रेमि लज्जे। आर्यपुत्रेण स्वामिना। सह समम्। गुरूणाम् पूज्यजनानाम् समीपे अन्तिके। गन्तुम् यातुम्।

हिन्दी अनुवाद—राजा—उन्नति के अवसरों पर यह तो शिष्टाचार भी है। आओ; आओ। (सब घूमते हैं) (इसके बाद अदिति के साथ आसन पर स्थित मरीचिपुत्र, कश्यप, दिखते हैं।)

संस्कृत-टीका—राजा नृपः। अपि। आचरितव्यम् कर्तव्यम्। अभ्युदयस्य उन्नतेः कालेषु अवसरेषु। एहि आगच्छ। एहि। सर्वे सकलाः (जनाः)। परिक्रामन्ति मण्डलाकृति गच्छन्ति। ततः पश्चात्। प्रविशति दृश्यते। अदित्या (पत्न्या)। सार्धम् सह। आसनस्थः आसने आसीनः। मारीचः मरीचिपुत्रः (कश्यपः)।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र (कश्यप) (राजा को देखकर)—दक्ष-पुत्री !

संस्कृत-टीका—मारीचः मरीचिपुत्रः (कश्यपः)। राजानम् नृपम्। अवलोक्य दृष्ट्वा। (हे) दाक्षायणि दक्षसुते।

हिन्दी व्याख्या—"मारीच" और "दाक्षायणी" शब्द क्रमशः मरीचि और दक्ष से सम्बन्ध होने से सन्तान का गौरव बढ़ाते हैं।

हिन्दी-अनुवाद—ये तुम्हारे बेटे (इन्द्र) के युद्ध के अगले मोर्चे पर आगे-आगे चलने वाले विश्व के स्वामी "दुष्यन्त" कहे जाते हैं जिनके धनुष से सम्पन्न हुए कार्य वाला तीक्ष्ण-धार-युक्त वह वज्र इन्द्र की शोभा (मात्र) रह गया है।

अदितिः—संभावणीआणुभावा से आकिदी । [संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः] ।

मातलिः—आयुष्मन् एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः । तावुपसर्प ।

राजा—मातले एतौ ।

अन्वयः—अयम् ते पुत्रस्य रणशिरसि अग्रयायी भुवनस्य भर्ता दुष्यन्तः इति अभिहितः यस्य चापेन विनिवर्तितकर्म तत् कोटिमत् कुलिशम् मघोनः आभरणम् जातम् ।

संस्कृत टीका—अयम् पुरतः विद्यमानः जनः **ते** तव (अदितेः) **पुत्रस्य** सुतस्य (इन्द्रस्य) । **रणस्य** युद्धस्य **शिरसि** अग्रभागे । **अग्रयायी** अग्रगामी । **भुवनस्य** लोकस्य । **भर्ता** स्वामी । **दुष्यन्तः** । **इति** एवम् । **अभिहितः** उक्तः (लोकैः) । **यस्य चापेन** धनुषा । **विनिवर्तितम्** सम्पादितम् **कर्म** कृत्यम् यस्य तादृशम् । **कोटिमत्** तीक्ष्णप्रान्तम् तत् प्रसिद्धम् । **कुलिशम्** वज्रम् । **मघोनः** इन्द्रस्य । **आभरणम्** भूषणम् (शोभा) (एव) **जातम्** वृत्तम् ।

हिन्दी-व्याख्या—"कोटिमत्" से युद्ध की क्षमता ध्वनित होती है कि वज्र का जो दानव-नाश रूपी कार्य है, वह दुष्यन्त का धनुष कर देता है, अतः वज्र को कुछ नहीं करना पड़ता; वह अस्त्र न होकर भूषण हो गया है । माँ के सामने उसके पुत्र के हितैषी के रूप में किसी को प्रस्तुत करना उसे विशेष आकर्षक बनाता है, यहाँ अदिति के सामने राजा को उसी रूप में पेश किया गया है ।

छन्द—१।७ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—उदात्त, रूपक और अनुप्रास (छेक व वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—इनके स्वरूप से (ही) (इनके) प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है ।

संस्कृत टीका—अदितिः देवमाता । **संभावनीयः** अनुमेयः **अनुभावः** प्रभावः यस्याः तादृशी । **अस्य** (राज्ञः) । **आकृतिः** स्वरूपम् ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—(हे) आयुष्मन्, आयुष्मान् (आप) को देवों के ये माता-पिता पुत्र-स्नेह-सूचक दृष्टि से देख रहे हैं । उनके समीप जायें ।

संस्कृत-टीका—मातलिः इन्द्रसारथिः । (हे) आयुष्मन् ! **एतौ** । पुत्रे सुते प्रीतिः प्रेम तस्य **पिशुनेन** सूचकेन । **चक्षुषा** दृष्ट्या । **दिवम् स्वर्गः ओकः** गृहम् येषाम् तेषाम् (देवानाम्) । माता पिता जनकः च (पितरौ) । **आयुष्मन्तम्** (भवन्तम्) । **अवलोकयतः** पश्यतः । **तौ** एतौ । **उपसर्प** समीपे गच्छ ।

हिन्दी व्याख्या—इन्द्र इनके पुत्र हैं, राजा उन (इन्द्र) के मित्र और उपकारी मित्र हैं, अतः राजा के प्रति इन (अदिति व कश्यप) का पुत्र-स्नेह स्वाभाविक है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—(हे) मातलि, ये दोनों—

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । (हे) मातले ! **एतौ** (अदितिः कश्यपः च) ।

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम् ।
यस्मिन्नात्मभवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम् ॥ २७ ॥

हिन्दी-अनुवाद—दक्ष और मरीचि से उत्पन्न विधाता से एक (पीढ़ी) के अन्तर वाला वह (प्रसिद्ध) जोड़ा है जिसे ऋषियों ने बारह रूपों में विद्यमान तेज (आदित्य) का कारण माना है, जिन्होंने तीनों लोकों के स्वामी और यज्ञ में भाग प्राप्त करने वालों (देवों) के राजा (इन्द्र) को जन्म दिया है तथा जन्म के लिये जिनमें अपने से उत्पन्न होने वाले परम पुरुष (विष्णु) ने भी स्थान बनाया था ।

अन्वयः—इदम् दक्षमरीचिसंभवम् स्रष्टुः एकान्तरम् तत् द्वन्द्वम् यत् मुनयः द्वादशधा स्थितस्य तेजसः कारणम् प्राहुः यत् भुवनत्रयस्य भर्त्तारम् यज्ञभागेश्वरम् सुषुवे यस्मिन् (च) भवाय आत्मभवः परः पुरुषः अपि आस्पदम् चक्रे ।

संस्कृत-टीका—**इदम्** पुरतः वर्तमानम् । **दक्षः** च **मरीचिः** च **दक्षमरीची** तयोः **संभवः** जन्म यस्य तादृशम् । **स्रष्टुः** विधेः । **एकम्** एकपुरुषमात्रम् **अन्तरम्** व्यवधानम् यस्य तादृशम् । **तत्** प्रसिद्धम् । **द्वन्द्वम्** युगलम् । **यत्** (कर्म) **मुनयः** ऋषयः (व्यासादयः) । **द्वादशधा** द्वादशमूर्तिधरतया (द्वादशकलात्मकतया वा) । **स्थितस्य** विद्यमानस्य **तेजसः** आदित्यस्य । **कारणम्** निदानम् । **प्राहुः** वदन्ति । **यत्** (कर्तृ) । **भुवनानाम्** लोकानाम् **त्रयम्** त्रयी तस्या । **भर्तारम्** स्वामिनम् ; **यज्ञे भागः** येषाम् ते यज्ञभागाः (देवाः) तेषाम् **ईश्वरम्** अधिपतिम् (इन्द्रम्), **सुषुवे** जनयामास । **यस्मिन्** (च) **भवाय** जन्मप्राप्तये । **आत्मनः** स्वस्मात् **भवः** जन्म यस्य सः । **परः** परमः **पुरुषः** (विष्णुः) । **आस्पदम्** स्थानम् । **चक्रे** कृतवान् ।

हिन्दी-व्याख्या—अदिति के पुत्र आदित्य कहलाते हैं जो तेजस्वरूप माने जाते हैं । ये इन्द्र, विष्णु, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशु और भग हैं । विष्णुपुराण में ये निम्नलिखित क्रम से गिनाये गये हैं—

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च अज्ञाते पुनरेव हि ।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशुर्भगश्चादितिज आदित्या द्वादश स्मृताः ॥

१२ मासों में सूर्य की मूर्तियाँ अलग-अलग मानकर उन्हें "द्वादशधा स्थित" कहा जा सकता है । "द्वादशधा" से "द्वादश कलात्मक-रूप में" अर्थ भी हो सकता है । ये कलाएँ निम्न श्लोक में गिनाई गई हैं—'तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः । सुषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ॥' द्वादश आदित्यों में से इन्द्र और उपेन्द्र के विशेष प्रतापी होने से उनका वर्णन मध्य में कर दिया गया है, शेष इतने प्रसिद्ध नहीं है, अतः "द्वादशधा" में उनका संकेत मात्र कर दिया

मातलिः—अथ किम् ।

राजा—(उपगम्य)—उभाभ्यामपि वासवानुयोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति ।

मारीचः—वत्स चिरं जीव । पृथिवीं पालय ।

अदितिः—वच्छ अप्पडिरहो होहि । [वत्स अप्रतिरथो भव ।]

है । इस तरह कोई विरोध नहीं रह जाता । वेदकालीन देवताओं में इन्द्र की और पुराणकालीन देवताओं में विष्णु की महिमा विशेष है, अतः दोनों का विशेष वर्णन किया गया है । इससे यह सूचित होता है कि कवि ऐसे समय में हुआ जब वैदिक देवताओं का प्रभाव पौराणिक देवताओं के कारण पूरी तरह मिट नहीं गया था । "श्रय" और "यज्ञ भाग" पदों से इन्द्र का और "आत्म" और "पर" पदों से विष्णु का उत्कर्ष बताकर अदिति और कश्यप को उनका भी पिता कहकर इनका माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है । वामनावतार में विष्णु ने अदिति और कश्यप के पुत्र के रूप में जन्म लिया था । विष्णुपुराण में यह कथा आती है—

मन्वन्तरे च संप्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज ।
वामनः कश्यपाद् विष्णुरदित्यां संबभूव ह ॥

ब्रह्मा के मानस-पुत्र दक्ष और मरीचि हैं । दक्ष की पुत्री अदिति है और मरीचि के पुत्र कश्यप हैं । इस तरह ब्रह्मा और अदिति-कश्यप के युगल के बीच एक पीढ़ी का व्यवधान है ।

छन्द—१।१४ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—उदात्त, अर्थापत्ति और अनुप्रास (छेक व वृत्ति) ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि–बिलकुल ठीक ।

संस्कृत-टीका—मातलिः अथ किम् आम् ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (पास जाकर)—इन्द्र का सेवक दुष्यन्त आप दोनों को प्रणाम करता है ।

संस्कृत-टीका—राजा नृपः । उपगम्य समीपे गत्वा । उभाभ्याम् द्वाभ्याम् (युवाभ्याम्) । अपि । वासवस्य इन्द्रस्य अनुयोज्यः सेवकः दुष्यन्तः प्रणमति वन्दते ।

हिन्दी व्याख्या—"नम्" धातु के योग में द्वितीया होती है, पर कभी-कभी चतुर्थी होती है, यहाँ "उभाभ्याम्" में चतुर्थी है ।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र (कश्यप)—बेटा, दीर्घ-जीवी होओ; पृथ्वी का पालन करो ।

संस्कृत-टीका—मारीचः मरीचिपुत्रः (कश्यपः) । वत्स (हे) पुत्र । चिरम् बहुकालम् यावत् । जीव । पृथिवीम् भुवम् । पालय रक्ष ।

हिन्दी-अनुवाद—अदिति—बेटा, तुम्हारी जोड़ का कोई न रहे ।

संस्कृत-टीका—अदितिः देवमाता । वत्स (हे) पुत्र । प्रतिकूलः रथः यस्य सः प्रतिरथः न प्रतिरथः अप्रतिद्वन्द्वी यस्य तादृशः । भव ।

शकुन्तला—दारअसहिदा वो पादवंदणं करेमि । [दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि ।]

मारीचः—वत्से

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव ॥ २८ ॥

अदितिः—जादे भत्तुणो अभिमदा होहि । अवस्सं दीहाऊ वच्छओ उहअकुलणंदणो होदु । उवविसह । [जाते भर्तुरभिमता भव । अवश्यं दीर्घायुर्वत्सक उभयकुलनन्दनो भवतु । उपविशत ।] (सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति ।)

मारीचः—(एकैकं निर्दिशन्)—

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम् ॥ २९ ॥

हिन्दी-अनुवाद—पुत्र के साथ मैं, आप दोनों के चरणों में, प्रणाम करती हूँ ।

संस्कृत-टीका—शकुन्तला । **दारकेण** बालकेन **सहिता** युता । **वाम्** युवयोः । **पादयोः** चरणयोः **वन्दनम्** प्रणामम् । **करोमि** विदधामि ।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचिपुत्र (कश्यप)—बेटी, तुम्हारे पति इन्द्र के तुल्य और पुत्र जयन्त के समान है। तुम इन्द्राणी के सदृश होओ; और आशीर्वाद उपयुक्त नहीं है ।

अन्वयः—भर्ता आखण्डलसमः । सुतः जयन्तप्रतिमः । पौलोमीसदृशी भव । अन्या आशीः ते योग्या न ।

संस्कृत-टीका—मारीचः मरीचिपुत्रः (कश्यपः) । **वत्से** (हे) पुत्रि । **भर्ता** (ते) पतिः । आखण्डलेन इन्द्रेण समः तुल्यः । **सुतः** (ते) पुत्रः । **जयन्तः** इन्द्रपुत्रः **प्रतिमा** उपमा यस्य तादृशः । पुलोम्नः अपत्यम् स्त्री **पौलोमी** शची तस्याः **सदृशी** तुल्या । **भव** (इति एव आशीः युक्ता) । **अन्या** अपरा । **आशीः** शुभकामना । **ते** तव । **योग्या** युक्ता । **न** ।

छन्द—६।१४ द्रष्टव्य ।

अलंकार—काव्यलिङ्ग, उपमा और अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—अदिति—बेटी, पति के मन के अनुकूल होओ । अवश्य ही (तुम्हारा) दीर्घायु लाड़ला दोनों (माँ व पिता के) कुलों को प्रसन्न करने वाला हो । (तुम लोग) बैठ जाओ । सब, प्रजापति (कश्यप) के पास बैठते हैं ।

संस्कृत-टीका—अदितिः देवमाता । जाते (हे) पुत्रि । **भर्तुः** पत्युः । **अभिमता** अभीष्टा **भव** । **अवश्यम्** नूनम् । **दीर्घायुः** आयुष्मान । **वत्सकः** प्रियः पुत्रः उभयम् द्वयम् । च तत् कुलम् वंशः च तयोः **नन्दनः** आनन्दवर्धकः । **भवतु** । **उपविशत** । सर्वे (दुष्यन्तः मातलिः शकुन्तला बालः च) सकलाः । **प्रजापतिम्** (कश्यपम्) **अभितः** समीपे । **उपविशन्ति** ।

हिन्दी-व्याख्या—"अभितः" के योग में (यहाँ "प्रजापति" के साथ) द्वितीया होती है ।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि पुत्र (कश्यप) (हर एक की ओर संकेत कर)—सती शकुन्तला, यह अच्छी संतति और आप (क्रमशः) श्रद्धा, धन और अनुष्ठान—इन तीनों का जो यह मिलन हो

राजा—भगवन् प्रागभिप्रेतसिद्धिः। पश्चाद्दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। कुतः—

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः॥ ३०॥

गया है, वह बड़े सौभाग्य की बात है।

अन्वयः—साध्वी शकुन्तला इदम् सत् अपत्यम् भवान् (च) श्रद्धा वित्तम् विधिः च इति च इति त्रितयम् (यत्) समागतम् तत् दिष्ट्या।

संस्कृत टीका—मारीचः मरीचिपुत्रः (कश्यपः)। एकैकम् प्रत्येकम्। निर्दिशन् संकेतयन्। साध्वी सती। शकुन्तला। इदम् (निर्दिष्टम्)। सत् उत्तमम्। अपत्यम् संततिः। भवान् (तत्सद्गुणोत्कृष्टः)। श्रद्धा। वित्तम् धनम्। विधिः अनुष्ठानम्। च। इति इदम् त्रितयम् त्रयी (यत्) समागतम् (परस्परेण) मिलितम्। तत्। दिष्ट्या सौभाग्येन (एव)।

हिन्दी व्याख्या—"इदम्" का प्रयोग तीन की जगह एक बार और "भवान्" के साथ विशेषण की एकरूपता न होना प्रक्रम-भङ्ग है। अध्याहार से "इयम्" और "अयम्" लगाकर तथा "भवान्" को अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य मानकर किसी तरह समाधान किया जा सकता है। "त्रितयम्" कहकर पति के समान ही पत्नी और पुत्र को भी महत्व दिया गया है।

छन्द—६ १४ द्रष्टव्य।

अलंकार—निदर्शना।

हिन्दी अनुवाद—राजा—श्रीमन्, पहले अभीष्ट पूरा हो गया; पीछे दर्शन हुए, इसलिये निश्चय ही आपकी कृपा अपूर्व है, क्योंकि—

संस्कृत-टीका— राजा नृपः। भगवन् (हे) श्रीमन्। प्राक् पूर्वम्। अभिप्रेतस्य इष्टस्य सिद्धिः प्राप्तिः। पश्चात् तदनु। दर्शनम् (भवताम्)। अतः। अपूर्वः अद्वितीयः। खलु निश्चयेन। वः युष्माकम्। अनुग्रहः कृपा। कुतः यतः।

हिन्दी-व्याख्या—भरत के अनुसार देवताओं में भी जो देवता, महात्मा और महर्षि होते हैं, उन्हें "भगवन्" कहकर पुकारना चाहिये—"देवनामपि ये देवा महात्मानो महर्षयः। भगवन्निति ते वाच्याः।"

हिन्दी-अनुवाद—पहले फूल निकलता है, पीछे फल। पहले घटा उठती है; पीछे पानी आता है। कारण और कार्य का क्रम यह है, लेकिन संपत्तियाँ (फल) तो आपकी कृपा (कारण) के पहले ही हो गयी हैं।

अन्वय—पूर्वम् कुसुमम् उदेति ततः फलम् (उदेति)। प्राक् घनोदयः तदनन्तरम् पयः। अयम् निमित्तनैमित्तिकयोः क्रमः। संपदः तु तव प्रसादस्य पुरः (एव)।

संस्कृत-टीका—पूर्वम् प्राक्। कुसुमम् पुष्पम्। उदेति उद्गच्छति। ततः तदुपरि फलम् (जायते) प्राक् पूर्वम्। घनस्य जलधरस्य उदयः प्राकट्यम्। तस्य अनन्तरम् पश्चात् (एव)।

मातलिः—एवं विधातारः प्रसीदन्ति ।

राजा—भगवन् इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात्प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य । पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम् । तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति ।

पयः जलम् । **अयम्** । निमित्तम् कारणम् नैमित्तिकम् (निमित्तात् निर्वृत्तम्) कार्यम् तयोः । **क्रमः** पौर्वापर्यम् (भवति) । **संपदः** समृद्धयः (सफलता) **तु** एतद्विपरीतम् । **तव** । **प्रसादस्य** कृपायाः । **पुरः** प्राक् (एव) (न तु पश्चात्) ।

हिन्दी-व्याख्या—संसार के सभी कार्यों का कारण पहले होता है पर महापुरुषों की कृपा में यह संबन्ध भी नहीं रह जाता, अतः वह विलक्षण होती है । उसके पहले ही सफलता दौड़कर आने लगती है । आशय यह है, कारण और कार्य के बीच में विलंब की तो बात ही क्या, कार्य कारण के भी पहले होकर अति कर देता है । यहाँ अदितिकश्यप के दर्शन व आशीर्वाद मिले पर उनका फल—शकुन्तला प्राप्ति व पुत्र-दर्शन—पहले ही मिल गया । दूसरे शब्दों में, यों कहें कि उक्त मिलन कश्यप व अदिति की कृपा से हुआ, यह कहकर राजा अपनी अतिशय गुण-ग्राहकता और कृतज्ञता प्रगट कर रहे हैं ।

छन्द—१.१८ द्रष्टव्य ।

अलंकार—दीपक (क्रिया), अर्थापत्ति (माला), अतिशयोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा व अनुप्रास ।

हिन्दी-अनुवाद—मातलि—विधाता-गण इस प्रकार कृपा करते हैं ।

संस्कृत-टीका—**मातलिः** इन्द्रसारथिः । **एवम्** इत्थम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) एव । **विधातारः** स्रष्टारः । **प्रसीदन्ति** कृपाम् कुर्वन्ति ।

हिन्दी व्याख्या—सृष्टि का आरंभ होने से विधाता का विशेष महत्त्व था और वे सभी कश्यप से संबद्ध थे, यहाँ "विधाता" का प्रयोग, कश्यप के लिये है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—आपकी आज्ञाकारिणी इस (शकुन्तला) से गान्धर्व विवाह की रीति से विवाह कर, कुछ समय बाद बान्धवों के द्वारा लाई गई इसे स्मरण की शिथिलता से अस्वीकार कर, आपके गोत्र के पूज्य कण्व का अपराधी हूँ । बाद में अँगूठी देखने से मुझे पता लगा कि उनकी पुत्री से मैंने पहले ब्याह किया था । वह (सब) मुझे विचित्र-सा लगता है (ऐसा क्यों हुआ ?) ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **भगवन्** श्रीमन् । **इमाम्** । **आज्ञाकरीम्** आदेशपालिनीम् (दासीम्) । **वः** युष्माकम् । **गान्धर्वेण** । **विवाहस्य विधिना** रीत्या । **उपयम्य** परिणीय । **कस्यचित्** । **कालस्य** समयस्य (पश्चात्) **बन्धुभिः** (शार्ङ्गरवादिभिः) । **आनीताम्** । **स्मृतेः** स्मरणस्य । **शैथिल्यात्** अभावात् । **प्रत्यादिशन्** निराकुर्वन् । **अपराद्धः** सदोषः । अस्मि । **तत्रभवतः** पूज्यस्य । **युष्माकम् सगोत्रस्य** (समानम् गोत्रम् कुलम् यस्य तस्य) **कण्वस्य** (काश्यपस्य) । **पश्चात्** तदनु । **अङ्गुलीयकस्य** मुद्रिकाया **दर्शनात्** विलोकनात् । **पूर्वम्** प्राक् **ऊढाम्** परिणी-

यथा गजो नेति समक्षरूपे तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात् ।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः ॥ ३१ ॥

मरीचः—वत्स अलमात्मापराधशंकया । संमोहोऽपि त्वय्यनुपपन्नः । श्रूयताम् ।

राजा—अवहितोऽस्मि ।

ताम् । तस्य **दुहितरम्** पुत्रीम् । **अवगतः** ज्ञातवान् । **अहम्** । तत् पूर्वोक्तम् अनुभूतम् (सर्वम्) । **चित्रम्** आश्चर्यम् । **इव** । **मे** मम । **प्रतिभाति** प्रतीयते ।

हिन्दी व्याख्या—कश्यप सर्वज्ञ हैं, अतः राजा उनसे स्मृति-शिथिलता का रहस्य पूछ रहे हैं ।

हिन्दी अनुवाद—जैसे जिसकी आकृति सामने है, उस वस्तु (गज) के विषय में "यह हाथी है" कहकर उसके चले जाने पर शंका हो (कि वह हाथी तो नहीं था) । (फिर) पैर के निशान देखकर विश्वास हो (कि ऐं, हाथी ही था), उसी प्रकार का मेरे मन का विकार (परिवर्तन) था ।

अन्वयः—यथा समक्षरूपे (पदार्थे) गजः न इति तस्मिन् अपक्रामति संशयः स्यात् । पदानि तु दृष्ट्वा प्रतीतिः भवेत् । मनसः मे विकारः तथाविधः (आसीत्) ।

संस्कृत टीका—**यथा** उदाह्रियते । **समक्षम्** पुरः **रूपम्** आकृतिः यस्य तत्र गजरूपे (पदार्थे) (सति) । (अयम्) **गजः** हस्ती । **न** । **इति** इदम् (प्रतीतिः भवेत्) । **तस्मिन्** (गजे) । **अपक्रामति** गते । **संशयः** सन्देहः । **स्यात्** भवेत् । **पदानि** चरणचिह्नानि । **तु** परम् । **दृष्ट्वा** । **प्रतीतिः** विश्वासः (दृढम् ज्ञानम्) । **भवेत्** स्यात् । **मनसः** अन्तरस्य । **मे** मम । **विकारः** परिवर्तनम् । तथाविधः तथा तादृशी विधा प्रकारः यस्य सः (तादृशः) (आसीत्) ।

हिन्दी व्याख्या—पहला भ्रम या मिथ्या ज्ञान हुआ है जिसमें विपरीत प्रतीति हुई है, गज को अगज (यह गज नहीं है) (प्रकरण में पत्नी-शकुन्तला—को पत्नी नहीं) माना गया है । चले जाने पर संशय हुआ है कि हाथी था या नहीं (प्रकरण में वह पत्नी थी या नहीं) । इसमें मिथ्याज्ञान और तत्त्व-ज्ञान समान मात्रा में मिले रहते हैं; कभी ऐसा लगता है कि वह बात सही है; फिर तुरन्त ही लगने लगता है कि नहीं; गलत है । अन्त में पदचिह्न (प्रकरण में अँगूठी) देखकर अनुमान-प्रमाण से तत्त्व-ज्ञान हुआ है कि हाथी ही था (प्रकरण में पत्नी ही थी) ।

छन्द—उपजाति (२।७ द्रष्टव्य) ।

अलंकार—निदर्शना और अनुप्रास ।

हिन्दी अनुवाद—मरीचि-पुत्र (कश्यप)—बेटा, अपने दोष की शङ्का मत करो । तुममें अज्ञान भी असिद्ध (असम्भव) है । सुनो ।

संस्कृत-टीका—**मारीचः** मरीचिपुत्रः (कश्यपः) । **वत्स** (हे) पुत्र । **अलम्** कृतम् (निषेधे) । आत्मनः स्वस्य अपराधः दोषः तस्य **शङ्का** सन्देहः (भयम्) तया । **संमोहः** अज्ञानम् । **अपि** । **त्वयि** । **न उपपन्नः** सिद्धः (असिद्धः) **श्रूयताम्** आकर्ण्यताम् ।

हिन्दी-व्याख्या—निषेधार्थक "अलम्" के योग में तृतीया (यहाँ "शङ्का" में) होती है ।

हिन्दी-अनुवाद—राजा—सावधान हूँ ।

मारीचः—**यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात्प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति । स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः ।**

राजा—(सोच्छ्वासम्)—**एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि ।**

शकुन्तला (स्वगतम्)—**दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो । ण हु सत्तं अत्ताणं सुमरेमि । अहवा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो । अहो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अगुलीअअं दंसइदव्वंत्ति ।** [दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः । न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि । अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यया न विदितः । अतः सखीभ्यां संदिष्टास्मि भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति ।]

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः । **अवहितः** सावधानः । अस्मि ।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचिपुत्र (कश्यप)—जिस क्षण अप्सरस् तीर्थ में उतरकर दिखाई दे रही विकलता वाली शकुन्तला को लेकर मेनका दक्ष-पुत्री (अदिति) के पास पहुँची, उसी क्षण मैं ध्यान से जान गया हूँ कि दुर्वासा के शाप से यह दया-पात्र सहचरी तुम्हारे द्वारा अस्वीकार कर दी गई है, कोई दूसरी बात नहीं है । और इस (शाप) का अन्त अँगूठी देखना है ।

संस्कृत-टीका—**मारीचः** मरीचिपुत्रः । **यदा** यस्मिन् समये । **एव** । **अप्सरस्तीर्थे अवतरणात्** । **प्रत्यक्षम्** दृश्यम् **वैक्लव्यम्** व्यग्रता यस्याः सा तादृशीम् । **शकुन्तलाम्** । **आदाय** गृहीत्वा । **मेनका** । **दाक्षायणीम्** दक्षपुत्रीम् (अदितिम्) । **उपगता** आगता । **तदा** ततः (प्रभृति) । **एव** । **ध्यानात्** चिन्तनात् । **अवगतः** ज्ञातवान् । **अस्मि** । **दुर्वाससः** । **शापात्** । **इयम्** । **तपस्विनी** अनुकम्पनीया । **सहधर्मचारिणी** सहचरी । **त्वया** । **प्रत्यादिष्टा** निराकृता । **न** । **अन्यथा** अन्येन कारणेन । इति । **स** । **च** । **अयम्** (शापः) । **अङ्गुलीयकस्य** मुद्रायाः **दर्शनम्** (एव) **अवसानम्** समाप्तिः यस्य तादृशः ।

हिन्दी अनुवाद—राजा (उसाँस के साथ)—मैं निन्दा से छूटा ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । उच्छ्वासेन गम्भीरश्वासेन सह । **एषः** अहम् **वचनीयात्** निन्दातः । **मुक्तः** रक्षितः । अस्मि ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (स्वगत)—सौभाग्य से स्वामी बिना कारण इन्कार कर देने वाले नहीं रहे । मुझे तो शाप पाने की याद बिलकुल नहीं है । या यों कहूँ कि पाया हुआ वह शाप, वियोग से सूने हृदय वाली मुझे, पता ही न लगा जिससे सखियों ने सहेजा था कि पति को अंगूठी दिखा देना ।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला** । **स्वगतम्** । **दिष्ट्या** सौभाग्येन । न कारणम् यत्र तादृशम् **प्रत्यादेशी** कृतनिराकरणः । **न** । **आर्यपुत्रः** स्वामी । **न** । खलु निश्चयेन । **शप्तम्** शापयुक्तम् । **आत्मानम्** स्वम् । **स्मरामि अथवा** यद्वा (पूर्वाक्षेपे) । **मया** । **सः** । **हि** (वाक्यालङ्कारे) । **शापः** । **विरहया** वियोगेन **शून्यम्** ज्ञानरहितम् हृदयम् अन्तरम् यस्याः तादृश्याः । न । **विदितः**

मारीचः—वत्से चरितार्थासि । सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः । पश्य—

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव ॥
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥३२॥

ज्ञातः । अतः अनेन कारणेन । सखीभ्याम् आलीभ्याम् (अनसूयया प्रियंवदया च)। संदिष्टा उक्ता । अस्मि आसम् । भर्तुः स्वामिनः । अङ्गुलीयकम् मुद्रा । दर्शयितव्यम् ।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र—बेटी, कृत-कृत्य हो गई हो। सहचर के प्रति तुम गुस्सा मत होना; देखो।

संस्कृत-टीका—मारीचः । वत्से (हे) पुत्रि । चरितः कृतः (ज्ञातः) अर्थः कार्यम् (तत्त्वम्) यया तादृशी । असि । सहधर्मचारिणम् सहचरम् । प्रति । न । त्वया मन्युः कोपः । कार्यः करणीयः । पश्य ।

हिन्दी-व्याख्या—"चरितार्था" का अर्थ "वास्तविक बात जानने वाली" भी हो सकता है।

हिन्दी-अनुवाद—शाप के कारण याद में रुकावट आ जाने से रूखे हुए पति तक तुम्हारी पहुँच नहीं हो पाई थी, अब उनके अन्धकार-रहित हो जाने पर उन पर तुम्हारा ही प्रभुत्व (स्थान) है। गन्दगी से जिसकी निर्मलता जाती रही है, उस आईने के ऊपर प्रतिबिम्ब नहीं आता। लेकिन उस (दर्पण) के स्वच्छ होने पर वह (प्रतिबिम्ब) अनायास ही स्थान बना लेता है।

अन्वय—शापात् भर्तरि स्मृतिरोधरूक्षे (सति) प्रतिहता असि । (भर्तरि) अपेततमसि (सति) तव एव प्रभुता । छाया मलोपहतप्रसादे न मूर्च्छति शुद्धे (दर्पणतले) तु सुलभावकाशा (भवति)।

संस्कृत टीका—शापात् । भर्तरि पत्यौ । स्मृतेः स्मरणस्य रोधेन बाधया । रूक्षे निःस्नेहे । (सति) । प्रतिहता रुद्धगतिः (निराकृता) । असि आसीः । (भर्तरि) अपेतम् दूरीभूतम् तमः अंधकारः (अज्ञानम्) यस्मात् तादृशे (सति) । तव । एव । प्रभुता प्रभुत्वम् (गतिः) (अस्ति) छाया प्रतिबिम्बम् । मलेन धूल्यादिना उपहतः नष्टः प्रसादः स्वच्छता यस्य तादृशे दर्पणतले मुकुरे । न । मूर्च्छति प्रसरति । शुद्धे निर्मले (दर्पणतले) । तु एतद्विपरीतम् छाया सुलभः सुकरः अवकाशः स्थानम् यस्य तादृशी (भवति) ।

हिन्दी-व्याख्या—पति की रुखाई में उनका (पति का) दोष नहीं था; शाप कारण था, यह आशय है। स्मृति-रोध ही तम है। "शाप" व "मल" "प्रतिहता" व "न मूर्च्छति" "स्मृतिरोधरूक्ष" व "मलोपहतप्रसाद", "भर्ता" व "दर्पणतल" "अपेततमसि" व "शुद्ध" एवम् "प्रभु" व "सुलभा-वकाशा" जोड़ के शब्द हैं जिनमें तुलना है।

छन्द—१।८ द्रष्टव्य ।

अलङ्कार—दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, हेतु और अनुप्रास (छेक व वृत्ति)

राजा—यथाह भगवान् ।

मारीचः—वत्स कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः ।

राजा—भगवन् अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा ।

मारीचः—तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान् । पश्य ।

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः ।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात् ॥ ३३ ॥

हिन्दी-अनुवाद—राजा—श्रीमान् ठीक कह रहे हैं।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **यथा** उचितम् । **आह** वदति । **भगवान्** श्रीमान् ।

हिन्दी अनुवाद—मरीचि-पुत्र—बेटा, तुमने शकुन्तला से उत्पन्न इस बेटे का, जिसका जात-कर्म मैंने विधि पूर्वक किया था, स्वागत तो कर लिया ?

संस्कृत टीका—**मारीचः** मरीचिपुत्रः (कश्यपः) । **वत्सः** (हे) पुत्र । **कच्चित्** अपि (किम्) । **अभिनन्दितः** । **त्वया** । **विधिवत्** उचितेन प्रकारेण । **अस्माभिः** । **अनुष्ठितम्** कृतम् **जातकर्म** तदाख्यः संस्कारः यस्य तादृशः । **पुत्रः** सुतः । **एषः** । **शाकुन्तलेयः** शकुन्तलायाः अपत्यम् पुमान् (ढक् प्रत्ययः) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—श्रीमन्, इस पर तो मेरे कुल की स्थिति (निर्भर करती) है।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **भगवन्** (हे) श्रीमन् । **अत्र** अस्मिन् । **खलु** निश्चयेन । **मे** मम । **वंशस्य** कुलस्य । **प्रतिष्ठा** स्थितिः ।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र—उसी प्रकार तुम इसे भावी चक्रवर्ती समझो । देखो ।

संस्कृत टीका—**मारीचः** मरीचिपुत्रः (कश्यपः) । **तथा** तेन (एव) प्रकारेण । **भाविनम्**, **एनम्** । **चक्रवर्तिनम्** । **अवगच्छतु** जानातु । **भवान्** त्वम् । **पश्य** विलोकय ।

हिन्दी अनुवाद—प्रतिद्वन्द्वी-रहित यह, हिचकोलों से रहित होने से शांत चाल वाले रथ पर चढ़कर, समुद्र पारकर, सात द्वीपों वाली पृथ्वी पर विजय प्राप्त करके रहेगा । यहाँ प्राणियों का बल-पूर्वक दमन करने के कारण यह ("सर्वदमन") है; अब संसार (या लोगों) के पालन से यह "भरत" नाम प्राप्त करेगा।

अन्वयः—अप्रतिरथः (सन्) अयम् अनुद्घातस्तिमितगतिना रथेन तीर्णजलधिः सप्तद्वीपाम् वसुधाम् पुरा जयति । इह अयम् सत्त्वानाम् प्रसभदमनात् सर्वदमनः पुनः लोकस्य भरणात् भरत इति आख्याम् यास्यति ।

राजा—भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन् वयमाशास्महे ।

अदितिः—भअवं इमाए दुहिदुमणोरहसम्पत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु । दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व उपचरती चिट्ठदि । [भगवन् अनया दुहितृ-मनोरथसंपत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम् । दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती तिष्ठति ।]

शकुन्तला (आत्मगतम्)—मणोरहो खु मे भणिदो भअवदीए । [मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या ।]

संस्कृत टीका—न विद्यते प्रतिद्वन्द्वी रथः यस्य सः । **अयम्** (बालः) । न **उद्घाताः** स्खलितानि यस्याः अतः **स्तिमिता** निश्चला **गतिः** वेगः यस्य तेन । **रथेन** स्यन्दनेन । **तीर्णाः जलधयः** समुद्राः येन तादृशः (सन्) **सप्तद्वीपानि** यस्याः तादृशीम् । **वसुधाम्** भुवम् । **पुरा** निश्चयेन । **जयति** जेष्यति । **इह** अत्र (तपोवने) । **सत्त्वानाम्** जीवानाम् । **प्रसभम्** बलात्कारेण **दमनात्** अभिभवात् सर्वदमनः (अयम्) । **पुनः** पश्चात् । **लोकस्य** जगतः (जनानाम्) । **भरणात्** पालनात् । **भरतः** **इति** एवम् । **आख्याम्** नाम । **यास्यति** प्राप्स्यति ।

हिन्दी व्याख्या—कथाओं में आता है कि पहले कुछ राजाओं को आकाश और जल पर रथ से चलने की शक्ति प्राप्त थी । जल पर चलने से हिचकोलों की समस्या नहीं उठती । पौराणिक भूगोल के अनुसार मुख्यतः (कहीं-कहीं ९ या १८) द्वीप होते हैं जो प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, जम्बू, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर हैं । इनमें "जम्बू" द्वीप को पृथ्वी का केन्द्र माना गया है । "पुरा" और "यावत्" के साथ निश्चयात्मक भविष्य के अर्थ में वर्तमान काल (लट् लकार) आता है (यावत्पुरानिपातयोर्लट्—अष्टाध्यायी ३।३।४) । ये दोनों नाम महाभारत (आदिपर्व ९५।३२।३३) में भी आये हैं । उस ग्रन्थ में "भरत" नाम की व्युत्पत्ति दूसरे ढंग की है । देवता कहते हैं कि आप हमारी सूचना से अपने पुत्र भरत का पालन-पोषण (भर्तव्य) कर रहे हैं, अतः इसका नाम भरत होगा ।

छन्द—१।९ द्रष्टव्य ।

अलंकार—स्वभावोक्ति, भाविक, काव्यलिङ्ग और अनुप्रास (छेक व वृत्ति) ।

हिन्दी अनुवाद—राजा—श्रीमान् के द्वारा सम्पन्न संस्कार वाले इस पुत्र से हमें समस्त आशायें हैं ।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः । **भगवता** श्रीमता । **कृतः** विहितः **संस्कारः** यस्य तादृशे । **सर्वम्** सकलम् । **अस्मिन्** (बाले) **वयम्** अहम् । **आशास्महे** सम्भावयामि ।

हिन्दी-अनुवाद—अदिति—श्रीमन्, पुत्री के सम्पन्न मनोरथ से विस्तारपूर्वक कण्व को भी अवगत करा दें । पुत्री के प्रति वत्सल मेनका यहीं सेवा करती हुई रह रही है ।

हिन्दी-अनुवाद—शकुन्तला (आत्मगत)—भगवती (अदिति) ने मेरे मन की ही बात कह दी ।

संस्कृत-टीका—**शकुन्तला आत्मगतम् मनोरथः** अभिलाषः । **खलु** निश्चयेन । **मे** । मम । **भणितः** उक्तः । **भगवत्या** देव्या (अदित्या) ।

मारीचः——तपःप्रभावात्प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः।

राजा—अतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः।

मारीचः——तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः। कः कोऽत्र भोः।
(प्रविश्य)

शिष्यः——भगवन् अयमस्मि।

मारीचः—गालव! इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात्तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीता इति।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र (कश्यप)—तपस्या के बल से उन मान्य को सभी प्रत्यक्ष है।

संस्कृत-टीका—**मारीचः** मरीचिपुत्रः। **तपसः** तपस्यायाः **प्रभावात्** बलेन। **प्रत्यक्षम्** दृश्यम्। **सर्वम्** सकलम्। **एव**। **तत्रभवतः** मान्यस्य (कण्वस्य)।

हिन्दी-अनुवाद—इसी से (वे) ऋषि (कण्व) मुझसे प्रकुपित नहीं हैं।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः **अतः** अनेन कारणेन। **खलु** एव। **मम**। **न**। अतिक्रुद्धः प्रकुपितः। **मुनिः** ऋषिः (कण्वः)।

हिन्दी-व्याख्या—"अति" से वर्ग-पहेली के ढंग के तर्क द्वारा यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि ज्यादा गुस्सा नहीं हैं, कम गुस्सा हैं। यदि उन्हें न मालूम होता तो वे अत्यन्त कुपित हो जाते," इस प्रकार निषेधात्मक अर्थ लगाने पर हिन्दी की वाक्य-रचना ठीक बैठती है। राजा को कण्व का कोई शाप नहीं मिला, जिससे उन्होंने अनुमान लगाया कि कुपित नहीं हैं।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र—फिर भी हमें प्रिय बात सुनानी चाहिये। कोई है ? (अन्दर आकर)—

संस्कृत टीका—**मारीचः** कश्यपः। **तथापि** तदपि। **प्रियम्** आकर्षकम् वृत्तम्। **अस्माभिः** मया। **श्रावयितव्यः** श्रावणीयः। **कः**। **कः**। **अत्र** इह। **भोः**। **प्रविश्य**।

हिन्दी-व्याख्या—सुनाने योग्य बात प्रयत्न कर सुना देनी चाहिए; यह नहीं सोच लेना चाहिए कि वह तो मालूम हो गई होगी।

हिन्दी-अनुवाद—शिष्य—श्रीमन्, मैं हूँ।

संस्कृत टीका—**शिष्यः** अन्तेवासी। **भगवन्** श्रीमन्। **अयम्** अहम्। **अस्मि**।

हिन्दी अनुवाद—मरीचि-पुत्र (कश्यप)—(हे) गालव, अभी आकाश-मार्ग से जाकर श्री कण्व को मेरे वचनों से प्रिय की सूचना दो कि पुत्रवती शकुन्तला अपना शाप समाप्त हो जाने पर स्मृति-युक्त दुष्यन्त के द्वारा अंगीकार कर ली गई।

संस्कृत टीका—**मारीचः** मरीचिपुत्रः (कश्यपः), (हे) गालव। **इदानीम्** सम्प्रति। **एव**। **विहायसा** आकाशमार्गेण। **गत्वा** प्राप्य। **मम**। **वचनात्**। तत्रभवते श्रीमते। **कण्वाय**। **प्रियम्**

शिष्यः—यदाज्ञापयति भगवान्। (इति निष्क्रान्तः।)

मारीचः—वत्स त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व।

राजा—यदाज्ञापयति भगवान्।

मारीचः—वत्स किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि।

राजा—अतः परमपि प्रियमस्ति! यदिह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हीदमस्तु (भरतवाक्यम्)—

(वृत्तम्) आवेद्य वद। **यथा** यत्। **पुत्रवती**। **शकुन्तला**। तस्याः **शापस्य निवृत्तौ** समाप्तौ। **स्मृतिमता** स्मरणयुक्तेन। दुष्यन्तेन **प्रतीगृहीता** स्वीकृता। **इति**।

हिन्दी-व्याख्या—जिससे निवेदन करते हैं, उसमें चतुर्थी आती है। "कि" के अर्थ में "यथा" होता है। "यथा" के रहने पर भी बात के अन्त में "इति" आ सकता है।

हिन्दी अनुवाद—शिष्य—जैसी श्रीमान् को आज्ञा। (इसके बाद बाहर जाता है।)]

संस्कृत-टीका—**शिष्यः** अन्तेवासी। **यत्** यथा। **आज्ञापयति** वदति। **भगवान्** श्रीमान्। **इति** ततः, **निष्क्रान्तः** निर्गतः।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचि-पुत्र—बेटा, तुम भी अपनी सन्तान और पत्नी के साथ मित्र इन्द्र के रथ पर चढ़कर अपनी राजधानी को प्रस्थान करो।

संस्कृत-टीका— **मारीचः** मरीचिपुत्रः (कश्यपः)। **वत्स** (हे) पुत्र। **त्वम्**। **अपि**। **स्वस्य** आत्मनः **अपत्येन** संतत्या (पुत्रेण) **दारैः** पत्न्या **सहितः** समेतः। **सख्युः** मित्रस्य। **आखण्डलस्य** [illegible] : [illegible]। **आरुह्य**। **ते** तव (स्वस्य)। **राजधानीम्** प्रधाननगरीम्। **प्रतिष्ठस्व** प्रयाहि।

हिन्दी-अनुवाद—जैसी श्रीमान् की आज्ञा।

संस्कृत-टीका—**राजा** नृपः। **यत्** यथा। **आज्ञापयति** वदति। **भगवान्** श्रीमान्।

हिन्दी-अनुवाद—मरीचिपुत्र (कश्यप)—बेटा, पुनः तुम्हारा क्या प्रिय करूँ?

संस्कृत-टीका—**मारीचः** मरीचि-पुत्रः (कश्यपः)। **वत्स** (हे) पुत्र! **किम्**। **ते** तव। **भूयः** पुनः। **प्रियम्** अनुकूलम्। **उपकरोमि**।

हिन्दी अनुवाद—राजा—इससे भी बढ़कर प्रिय हो सकता है? (यतः) श्रीमान् अब (और) प्रिय करना चाहते हैं तो यह हो (करें) (भरत-वाक्य)।

संस्कृत टीका—**राजा** नृपः। **अतः** पूर्वोक्तात्। **परम्** अधिकम्। **अपि**। **प्रियम्** अभीष्टम्, **अस्ति** संभवति (किम्) **यत्** यतः। **इह** अस्मिन् काले। **भगवान्** श्रीमान्। **प्रियम्** अनुकूलम्। **कर्तुम्** विधातुम्। **इच्छति** वाञ्छति। **तर्हि** तदा। **इदम्** एतत्। **अस्तु** भवतु। **भरतानाम्** नटानाम् **वाक्यम्** कथनम्।

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतमहतां महीयसाम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥ ३४ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) (सप्तमोऽङ्कः)

समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम्।

हिन्दी अनुवाद—राजा, प्रजा की भलाई के लिये प्रवृत्त हों, वेदादि-श्रवण से महान् उत्कृष्ट शक्ति वालों की विद्या फैले और व्याप्त शक्ति वाले स्वयंभू-शिव मेरे पुनर्जन्म को नष्ट कर दें। (इसके बाद सब बाहर जाते हैं)।

अन्वयः—पार्थिवः प्रकृतिहिताय प्रवर्तताम्। श्रुतमहताम् महीयसाम् सरस्वती प्रवर्तताम्। अपि च परिगतशक्तिः आत्मभूः नीललोहितः मम पुनर्भवम् क्षपयतु।

संस्कृत-टीका—पार्थिवः राजा। **प्रकृतीनाम्** प्रजानाम् **हिताय** कल्याणाय। **प्रवर्तताम्** प्रवृत्तः भवतु। **श्रुतेन** वेदादिना **महताम्** गरिष्ठानाम्। **महीयसाम्** उत्कृष्टशक्तिमताम्। **सरस्वती** विद्या। **प्रवर्तताम्** प्रसिद्धा भवतु। **अपि** अन्यत्। **च परिगता** व्याप्ता शक्तिः यस्य तादृशः। **आत्मभूः** आत्मना भवति इति। **नीललोहितः** शिवः। **मम**। पुनः भूयः। **भवम्** जन्म। **क्षपयतु** नाशयतु। इति ततः। निष्क्रान्ताः निर्गताः। **सर्वे** सकलाः (अभिनेतारः)।

हिन्दी-व्याख्या—श्लोक, भरत-वाक्य है। भरत, नट को कहते हैं। राघवभट्ट के अनुसार प्रस्तावना के बाद नट का कथन नहीं आ सकता, अतः "नट" की जगह "भरत" पद आता है। सारे अभिनेता अन्त में एक साथ मङ्गल-कामना करते हैं, इसे भरत-वाक्य कहते हैं, अब भी यह प्रथा पाई जाती है। नाटक के जन्म-दाता भरत का नाम अमर करने के लिये इस मङ्गल का नाम उनके नाम पर रख दिया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। नाटक के आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल प्रशस्त माना जाता है। आदि में नान्दी और अन्त में भरत-वाक्य ये दो मङ्गल अधिक प्रसिद्ध हैं। "श्रुत" का अर्थ वेद करके, इस श्लोक में बौद्धों के कारण वैदिकों की मर्यादा समाप्त होने के बाद पुष्यमित्र शुंग के समय फिर वेद की प्रतिष्ठा नये सिरे से होने पर यह कारुण संकेत प्रगट किया गया है, ऐसा इतिहास में माना जाता है। शिव जी के गले में अटके हालाहल के कारण कण्ठ काला और उनकी जटा लाल दिखती है। जिससे वे नील (=काले) लोहित (लाल) कहे जाते हैं। कालिदास शिव के उपासक थे, इस मान्यता की पुष्टि इस श्लोक से होती है। जन्म दुःख का कारण है, इस दर्शन-सिद्धान्त को प्रमुखता दी गई है।

छन्द—रुचिरा है। इसमें जगण, भगण, सगण, जगण, और गुरु तथा ४ व ९ के बाद यति होती है, जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।

अलङ्कार—दीपक (क्रिया)। समुच्चय (क्रिया) और अनुप्रास (छेक व वृत्ति)।

पद्यों की वर्णानुक्रमसूची

इस नाटक में प्रयुक्त छन्द

नियम के लिये द्रष्टव्य

छन्द	अंक	पद्य	पृष्ठ
१ अनुष्टुप् (श्लोक)	१	५	२०
२ अपरवक्त्र	४	६	२८४
३ आर्या	१	२	११
४ इन्द्रवज्रा	४	२१	३०५
५ उद्गाथा (गीति)	१	४	१६
६ उपजाति	२	७	१७५
७ द्रुतविलम्बित	२	११	१८६
८ पथ्यावक्त्र	६	१४	४०८
९ पुष्पिताग्रा	१	३१	१४५
१० प्रहर्षिणी	६	२७	६२५
११ मन्दाक्रान्ता	१	१५	५२
१२ मालभारिणी	३	२१	२४६
१३ मालिनी	१	१०	३५
१४ रथोद्धता	७	१८	६७०
१५ रुचिरा	७	३४	७१३
१६ वंशस्थ (वंशस्थविल)	१	१८	६२
१७ वसन्ततिलका	१	८	२८
१८ वियोगिनी (सुन्दरी)	२	१८	२०७
१९ शार्दूलविक्रीडित	१	१४	५०
२० शालिनी	५	३०	३६१
२१ शिखरिणी	१	९	३१
२२ सुन्दर (वियोगिनी)	२	१८	२०७
२३ स्रग्धरा	१	१	५
२४ हरिणी	३	१०	२२८

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, बंगलौर, वाराणसी, पुणे, पटना

मूल्य : रु० १९५ (सजिल्द); रु० ९५ (अजिल्द)